UNIVERSAL LIBRARY
OU_182950
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—390—29-4-72—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 31 I55 V   Accession No. H 3348

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

विद्यापति और उनका

[विद्यापति के व्यक्तित्व एव कृतित्व तथा उनकी पदावली का आलोचनात्मक और व्याख्यात्मक अध्ययन]

देशराजसिंह भाटी एम० ए०

एव

जीवनप्रकाश जोशी

कृष्ण शर्मा
्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६
ाच—
ाजान्ची रोड, पटना—४

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम सस्करण
जनवरी १९६३

१८.००)

विषय-सूची

आलोचना-खण्ड

१. **विद्यापति का जीवन-वृत्त**

जन्म-स्थान और जन्मकाल, मृत्युकाल वंश-परिचय, किंवदन्तियाँ और रचनाएँ। १–१३

२. **विद्यापति का युग**

राजनीतिक परिस्थितियाँ, साहित्यिक परिस्थितियाँ और तत्कालीन राजवंश। १४–२०

३. **विद्यापति का धर्म-सम्प्रदाय**

वैष्णव, पंचदेवोपासक, एकेश्वरवादी, शाक्त, शैव, आलोचना, निष्कर्ष। २१–२९

४ **विद्यापति की बहुज्ञता**

इतिहास, पुराण, भूगोल, स्मृति, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, कूटनीति-शास्त्र, भाषाएँ। ३०–३१

५. **विद्यापति पर पूर्ववर्ती प्रभाव**

माघ, अमरुक, गोवर्धनाचार्य, कालिदास, जयदेव। ३५-

६. **विद्यापति भक्त या शृङ्गारी**

भक्त कवि, शृङ्गारी, एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न।

७. **विद्यापति की रस-योजना**

रसराजत्व, शृङ्गार रस, शृङ्गार रस का विवेचन, सयोग
आलबन का रूप, आलबन की चेष्टाएँ, मिलन-क्रीडाएँ,
उद्दीपन रूप, वियोग वर्णन, चार प्रकार, तीनो प्रकार
उद्दीपन रूप, दस अवस्थाए, तुलना—जायसी और वि
और विद्यापति, निष्कर्ष।

८. **विद्यापति का मुक्तक काव्य**

मुक्तक और प्रगीत, मुक्तक की परिभा
अमरुक, गोवर्धनाचार्य, कालिदास, ज

९. विद्यापति की गीति-कला

उत्पत्ति और परम्परा, वर्गीकरण, गीति की परिभाषा, गीति तत्त्व, विद्यापति की गीति कला, आत्माभिव्यक्ति और वैयक्तिकता, रागात्मक अनुभूति अथवा भाव-प्रवणता, लोकगीति, जयदेव, चण्डीदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, गुप्त, प्रसाद, महादेवी, निष्कर्ष। ९१–१०९

१०. विद्यापति का प्रकृति-चित्रण

प्रकृति-वर्णन की विधाएँ, गीति काव्य और प्रकृति-चित्रण, आलकारिक रूप, उद्दीपन रूप, मानवीकरण, स्वतंत्र चित्रण। ११०–११८

११. विद्यापति का काव्य-सौन्दर्य

भावपक्ष, कलापक्ष, अप्रस्तुत विधान, अलकार-योजना, वाग्वैदग्ध्य और उक्ति-वैचित्र्य, भाषा, सफल भावाभिव्यक्ति, चित्रमयता, अनुरणात्मकता, शब्द-शक्ति, लोकोक्तियाँ और मुहावरे। ११९-१३१

१२. विद्यापति के कृष्ण और राधा

कृष्ण का विकास, कृष्ण की लीलाएँ, विद्यापति के कृष्ण, राधा का विकास, विद्यापति की राधा। १३२–१४०

१३. विद्यापति की सौन्दर्य-भावना

नारी सौन्दर्य, पुरुष-सौन्दर्य, प्रकृति का सौन्दर्य, अभिव्यजना का सौन्दर्य। १४१–१४

१४. विद्यापति का नायिका-भेद

नायिका-भेद, विद्यापति का नायिका-भेद, मुग्धा-नायिका, मध्या, प्रौढा, गुप्ता, विदग्धा, विलक्षिता, अभिसारिका, मानवती, प्रोषित पतिका। १४८–१५

विद्यापति का लोकपक्ष

रावली का काल और वातावरण, पदावली मे सुभाषित वाक्य और क्ति, निष्कर्ष। १५७–१६

ति का मूल्यांकन

वियो का प्रभाव, परवर्ती कवियो पर प्रभाव, जनता पर १६३–१६

व्याख्या-खण्ड

४.	सद्य स्नाता	२२०
५.	प्रेम-प्रसग	२२६
६	दूती	२६५
७	नौक-झोक	२६२
८.	सखी-शिक्षा	३०१
९.	मिलन	३२१
१०.	सखी-सम्भाषण	३५४
११	कौतुक	३७४
१२	अभिसार	३८७
१३	छलना	४२२
१४	मान	४३५
१५	मान-भग	४८८
१६.	विदग्ध-विलास	४९९
१७	वसन्त	५२०
१८.	विरह	५४४.
१९	भावोल्लास	६०९
२०	[illegible]ना और नचारी	[illegible]२४
२१	[illegible]विध	६६८

परिशिष्ट

सहायक-पुस्तक-सूची

परिशिष्ट

सहायक पुस्तक-सूची

१. कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा —शिवप्रसाद सिंह
२. गीतगोविन्द काव्यम् —जयदेव
३. प्राकृत व्याकरण —हेमचन्द्र
४ महाकवि विद्यापति —शिवनन्दन ठाकुर
५. मध्यकालीन धर्मसाधना —हजारीप्रसाद द्विवेदी
६ विद्यापति पदावली —रामवृक्ष बेनीपुरी
७. विद्यापति —जनार्दन मिश्र
८. विद्यापति —श्री खगेन्द्रनाथ मिश्र
९. विद्यापति ठाकुर —डा० उमेश मिश्र
१०. विद्यापति —डा० शिवप्रसाद सिंह
११. विद्यापति की पदावली —कुमुद विद्यालकार
१२. विद्यापति और उनकी पदावली —कृष्णदेव शर्मा
१३. विद्यापति पदावली —नगेन्द्रनाथ गुप्त
१४. विद्यापति पदावली —बिहार राष्ट्रभाषा परिषद
१५. विद्यापति का अमर काव्य —गुणानन्द जुआल

पत्र-पत्रिकाएँ

१. साहित्य सन्देश —आगरा
२. आलोचना —दिल्ली
३. सरस्वती संवाद —आगरा
४. समालोचक —आगरा
५. सम्मेलन-पत्रिका —प्रयाग
६. नागरी प्रचारिणी पत्रिका —वाराणसी

को अपनाने मे असमर्थ हो रही थी परिणामत: मुसलमानो के द्वारा हिन्दुओ पर मनमाने तथा अमानुषिक अत्याचार हो रहे थे । प० शिवनन्दन ठाकुर के शब्दो मे—

"मुसलमानो के कुव्यवहार से हिन्दू-जाति की दुर्दशा हो गई थी । हिन्दू-जाति के राजा हिन्दुओ की भरपूर सहायता करने के लिए, अपने विरोधियो को तलवार के बल हटा देने के लिए स्वय ही देश, धर्म और हिन्दू-जाति के नाम पर मर-मिटने को तैयार थे । इस अवस्था मे कभी जय, कभी पराजय, कभी उत्साह, कभी विषाद, कभी धर्म-परायणता के कारण मृत्यु से भी नही डरना, कभी बलात्कार से अधर्म की शरण लेना आदि विरोधी घटनाए तो प्रतिदिन ही हुआ करती थी ।"[1] इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से विद्यापति का युग अशात और विक्षोभयुक्त था । विद्यापति ने 'कीर्तिलता' मे इन परिस्थितियो और तज्जन्य प्रभावो का वर्णन करते हुए लिखा है कि मिथिला मे कोई गुण अवशिष्ट नही रहा । कवि लोग भिक्षुक बनकर मारे-मारे फिरते रहे—

"अक्खर रस बुज्झनिहार नहिं कबि कुल भमि भिक्खारि भउ ।
तिरहुत तिरोहित सब्ब गुणे रा' गणेस जब सग्ग गउ ।"[2]

धार्मिक परिस्थितियां—उपर्युक्त राजनीतिक हलचलो से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय धर्म की क्या अवस्था होगी ? बलात् धर्म परिवर्तन तो हो ही रहे थे, भारत वाले स्वय भी अनेक सम्प्रदायो मे बटे हुए थे और प्रत्येक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय को नीचा दिखाकर स्वय सर्वश्रेष्ठ होना चाहता था । वैष्णव, शैव और शाक्तो का तो समूचे देश मे ही बोल-बाला था । मिथिलावासी धर्म के सम्बन्ध मे अत्यन्त सहिष्णु थे । वे लोग धर्म के नाम पर लडने वाले न थे, बल्कि समन्वयवादी थे । उनकी इसी समन्वय-भावना की ओर इगित करते हुए प० शिवनन्दन ठाकुर लिखते है—

"मिथिला के चूडात विद्वानो की तो बात ही क्या, उनकी छत्रच्छाया मे सुख और शाति से सोती हुई मिथिला की साधारण जनता पर भी किसी विरोधी धर्म का जरा भी प्रभाव नही पडा । निश्चित रूप से यह बतलाना कठिन है कि वैष्णव और शैव दो प्रकार के भक्त मिथिला मे थे या नहीं, किन्तु इतना निश्चित है कि दो भक्ति-मार्गो के होने पर भी दोनो मे ज़रा भी विद्रोह नही था । विद्यापति की रचना इस बात की साक्षी है । मिथिला मे विष्णु और शिव एक ही देव के दो रूप माने जाते थे । दोनो को एक मानकर भी वैष्णव विष्णु के रूप मे और शैव शिव की उपासना करते थे । यही दोनों मे अन्तर था । वैष्णव शिव की और शैव विष्णु की निदा कभी भी नही करते थे ।"[3]

यही समन्वय-भावना विद्यापति के काव्य मे चरम कोटि को पहुच गई है जिसके

१—महाकवि विद्यापति, पृष्ठ ७३
२—कीर्तिलता, पृ०२, १४-१५
३—महाकवि विद्यापति, पृष्ठ ७२-७३

कारण इनके धार्मिक सम्प्रदाय का निर्णय विवाद का विषय बना हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति के समय मे मिथिला मे पुराणो की यह मान्यता कि पचदेवो—सूर्य, गणेश, दुर्गा, विष्णु, अग्नि और शिव—की पूजा के बाद ही इष्टदेव की पूजा का अधिकार प्राप्त होता है—

"गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्नि विष्णु शिव शिवाम्।
सम्पूज्य देवषटकञ्च सोऽधिकागी च पूज्यते।"

आज भी मिथिला मे पचदेवो की पूजा का प्रचलन है।

साहित्यक परिस्थितिया—विद्यापति से पूर्व हिन्दी साहित्य की दो धाराये पूर्ण-रूप से परिपक्व होकर अवसानप्राय थी। एक थी अपभ्रश-काव्यधारा और दूसरी थी देशभाषा-काव्यधारा। सिद्धो और योगियो की विशेषताए तथा रासोकाल की महानताए सभी विद्यापति के युग मे पुजीभूत हो गई थी। कवि के राजाश्रित होने की परपरा अक्षुण्ण थी। विद्यापति के सभी पूर्वज किसी न किसी मिथिला-नरेश के दरबारी कवि भी थे और प्रधान कर्मचारी भी। स्वय विद्यापति को भी अनेक राजा-रानियो के सरक्षण मे रहना पडा और उनकी आज्ञाओ के अनुसार अपनी कृतियो का सृजन करना पडा। स्पष्टत इस काल का साहित्य तत्कालीन राजवशो के सरक्षण मे फूला और फला।

यहा पर यह बात विचारणीय है कि राजदरबारी होते हुए भी यह साहित्य रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति से भिन्न है। रीतिकालीन साहित्य लोकपक्ष मे दूर—बहुत दूर—केवल पाडित्य-प्रदर्शन की या अपने आश्रयदाताओ के होठो पर स्मित-रेखा खीचने के प्रयास की आधार-शिला पर टिका हुआ है, किन्तु यह साहित्य न तो लोकपक्ष से दूर है और न इसमे आश्रयदाताओ की चाटुकारी का ही प्रयास है। इसमे राजनीतिक इतिहास है, धार्मिक भावनाओ का मोह है, साहित्यिक परम्परा का पालन है और लोक-कल्याण की चिन्ता है। केवल विद्यापति की समस्त रचनाओ पर दृष्टिपात करने से ही इस कथन की सत्यता प्रमाणित हो जाती है। इस प्रसग मे श्री शिवप्रसादसिह के ये शब्द उल्लेखनीय हैं—

"विद्यापति दरबारी कवि थे। दरबारी कवि होना कोई बहुत अच्छी बात नही मानी जाती। मध्ययुग के दरबारी कवियो के प्रति हमारे मन मे श्रद्धा का प्राय अभाव पाया जाता है, क्योकि हम यह मानते है कि इस प्रकार के कवियो ने कविता को जन-मानस की अधीश्वरी के स्थान से हटाकर उसे दरबार की नर्तकी बना दिया। उन्होने काव्य के महत् उद्देश्य के साथ व्यभिचार किया, किन्तु विद्यापति इनसे भिन्न हैं। दरबारो के चाकचिक्य, योग-वैभव और दम-घोट वातावरण मे इनकी आत्मा मरी नही। दरबारो से इन्होने जीवन का रस ग्रहण किया। उस वातावरण से इन्होने कई प्रकार के अनुभव

प्राप्त किये जिनसे इनके जीवन मे एक विशेष प्रकार का अभिजात सस्कार हुआ ।"[1]

तत्कालीन अन्य कवियो की भाति विद्यापति की काव्य-प्रतिभा भी दरबारो मे विकसित, पल्लवित और पुष्पित हुई। अत इनसे सबद्ध उन राजवशो के इतिहास पर विहगम दृष्टिपात अनुपयुक्त न होगा ।

तत्कालीन राजवश—राजा नान्यदेव मिथिला के सर्वप्रथम ऐतिहासिक नरेश हैं। इन्होने तथा इनके वशजो ने २२६ वर्ष तक राज्य किया । तदुपरात मिथिला का राज्य मथिल ब्राह्मणो के आधिपत्य मे आ गया । ये मैथिल ब्राह्मण 'ओइनी' ग्राम के उपार्जक थे, इसीलिए 'ओइनिवार' ब्राह्मण कहलाते थे । ओइनिवार ब्राह्मणो के सर्वप्रथम राजा राजपण्डित सिद्ध कामेश्वर थे जिन्होने राज्य के प्रति उदासीनता दिखला कर राज्यभार अपने ज्येष्ठ पुत्र योगीश्वर ठाकुर को दे दिया। इन्होने ३३ वर्ष तक राज्य किया।

योगीश्वर के बाद गणेश्वर राजा हुए जो अत्यन्त नीतिनिपुण और सर्वगुण-सम्पन्न थे। इन्होने ११ वर्ष तक राज्य किया। इनके तीन पुत्र थे—वीरसिह, कीर्त्तिसिह और राजसिह । वीरसिह एक युद्ध मे काम आए, इसीलिए कीर्त्तिसिह को शासन-भार सौपा गया। ये तीनो भाई नि सन्तान थे, फलत कीर्त्तिसिह के बाद मिथिला का राज्य कीर्त्तिसिह के पितामह-भातृपुत्र देवसिह को दिया गया । देवसिह महाराज भवसिह की दूसरी स्त्री के पुत्र थे । महाराज भवसिह की विद्यापति ने मुक्तकठ से प्रशसा की है ।

देवसिह ने अपना उपनाम 'गरुड नारायण' रक्खा और अपनी राजधानी दरभगा बनाई । देवसिह प्रजापालक और दानवीर थे। इनके समय मे विद्यापति ने बहुत सी कविताए लिखी और सस्कृत मे 'भूपरिक्रमा' नामक ग्रथ की रचना की।

देवसिह के दो पुत्र हुए—शिवसिह और पद्मसिह। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण शिवसिह राजा बने और इन्होने अपना उपनाम 'रूपनारायण' रक्खा (यह बात अभी तक विवादग्रस्त है कि रूपनारायण इन्ही का उपनाम था, अथवा कोई अन्य राजा था जिसके आश्रय मे विद्यापति रहे क्योकि इस नाम के अन्य राजा भी इस वश मे हुए हैं)। इन्होने अपनी राजधानी देवकुली से हटाकर गजरथपुर (उपनाम शिवपुरी) मे स्थापित की।

शिवसिह की अनेक रानिया थी जिनमे लक्ष्मणा देवी (लखिमादेवी) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योकि विद्यापति ने अपने पदो मे इन्ही को सम्बोधित किया है। ये बडी पण्डिता थी और सस्कृत मे अनेक ग्रथो की प्रणयनकर्त्री हैं । लखिमा के पाडित्य के विषय मे अनेक किवदन्तिया प्रचलित हैं । कहते हैं कि उस समय के सबसे महान् पडित और दार्शनिक लखिमा का पाडित्य सुनकर उनसे शास्त्रार्थ करने आ रहे थे कि मार्ग मे लखिमा दासी का वेश बनाकर और घडा लेकर उनके पास पहुच गई और उन्हे घूर-घूरकर देखने लगी। इस बात पर असतुष्ट होकर पडित जी बोले—

१—विद्यापति, पृष्ठ ८-९

"किं मा निरीक्षसि घटेन कटिस्थितेन, वक्त्रेण चारुपरिमीलितलोचनेन।
अन्य निरीक्ष पुरुष तव कार्य योग्य, नाह घटाङ्कितकटि प्रमदा स्पृशामि ॥"

अर्थात् कमर पर घडा रखकर चतुरता के साथ आखे मूद-मूदकर मेरी ओर क्या देख रही हो ? अपने कार्य-योग्य किसी दूसरे पुरुष की ओर देखो क्योकि मै घडा ढोने से चिह्नित कटि वाली स्त्री को छूता भी नही हू।

लखिमा ने यह स्वर्णावसर हाथ से न जाने दिया। तुरन्त उत्तर दिया—

"सत्य ब्रवीमि मकरध्वज बाणमुग्ध !
नाह त्वदर्थमनसा परिचिन्तयामि।
दासोऽद्य मे विघटितस्तवतुल्यरूप
स त्व भवेन्नहि भवेदिति वितर्क. ॥"

अर्थात् हे काम पीडित ! मै सत्य कहती हू कि मै तेरे विषय मे मन से भी नही सोचती हू। तेरे सदृश ही आज मेरा दास खो गया है। तू वही है या और कोई है, यही भ्रम मेरे मन मे उत्पन्न हो रहा है।

एक और उदाहरण लीजिए। इसमे सख्यावाचक शब्दो के द्वारा अर्थ समझने मे जितनी माथा-पच्ची करनी पडती है उतनी कदाचित् कबीर की उलटबासिया या सूर के दृष्टिकूटो के लिए भी अपेक्षित नही। जिसमे माथापच्ची न करनी पडे वह पाडित्य-प्रदर्शन ही क्या ! अपनी पत्नि से उदासीन अपने जामाता को लखिमा यह सदेश भेजती है—

"सन्तप्ता दशमध्वजस्य गतिना सर्मूच्छिता निर्जले।
तुर्य द्वादश वद् द्वितीयमतिमत्येकादशा भस्तनी ॥
सा षष्ठी कटि पचमी च नवमभ्रू सप्तमी वर्जिता।
प्राप्तोत्यष्टम वेदना त्वमधु ना तूर्णं तृतीयो भव ॥"

अर्थात् कामदेव के प्रवेश से सन्तप्त, जलहीन स्थान मे मछली और केकडे के समान मूर्च्छित, बैल के समान बुद्धिहीन, कुम्भसदृश स्तनो वाली, सिह के समान पतली कमर वाली, धनुष के समान तिरछी भौहो वाली, उचित न्याय न पाने वाली तुम्हारी पूर्व परिचित यह युवती बाला बिच्छू के डक की वेदना के समान दु खप्रद स्मरवेदना को प्राप्त हुई है, अत तुम शीघ्र ही आकर गृहस्थ धर्म का पालन करो।

लखिमादेवी के इस प्रकाड पाडित्य पर शिवसिह ही नही, विद्यापति भी मुग्ध थे। यही कारण है कि बगाल मे यह धारणा-सी बन गई है कि विद्यापति लखिमा के प्रति अनुरक्त थे और उसके देखे बिना विद्यापति की काव्य-प्रतिभा कुठित हो जाती थी। इसी धारणा के आधार पर नरहरि कहते हैं—

"लखिमा रूपिणी राधा इष्ट वस्तु यार।
यारे देखि कविता स्फुरय शतधार ॥"

किन्तु यह धारणा सगत प्रतीत नही होती क्योकि विद्यापति कुलीन ब्राह्मण और महाराज शिवसिह के राजपडित थे। यदि लखिमा के प्रति इनका अनुराग होता तो वे शिवसिह के प्रमभाजन न बनकर कोपभाजन बनते। दूसरी बात यह है कि शिवसिह की मृत्यु के पश्चात् लखिमादेवी तथा विद्यापति अनेक वर्षों तक जीवित रहे, परन्तु तब के पदो मे विद्यापति ने लखिमा का नाम नही दिया क्योकि पति के साथ ही पत्नी का नाम लेना भारत की प्राचीन प्रथा है। तीसरी बात यह है कि उस लडाई से पहले जिसमे शिवसिह या तो मारे गये या पराजित होकर अज्ञातवासी बन गये, उन्होने अपने परिवार को विद्यापति के साथ राजा पुरादित्य के पास भेजा था। इससे सिद्ध होता है कि विद्यापति पर और उनके सुदृढ चरित्र पर शिवसिह को अगाध विश्वास था।

मैथिल इतिहासवेत्ताओ का मत है कि शिवसिह के बाद लखिमादेवी ने १२ वर्ष तक राज्य किया, किन्तु यह बात किसी भी ठोस प्रमाण से पुष्ट नही होती। सच तो यह है कि शिवसिह की मृत्यु अथवा अज्ञातवास के पश्चात् लखिमा सपरिवार पुरादित्य के सरक्षण मे चली गई थी।

शिवसिह के बाद उसके छोटे भाई पद्मसिह गद्दी पर बैठे। इन्होने केवल एक वर्ष तक ही राज्य किया। तत्पश्चात् इनकी रानी विश्वासदेवी ने राज्य-भार सभाला। विद्यापति ने इन्ही के आदेश से 'शैवसर्वस्वसार', 'शैवसर्वस्वसार-प्रमाणभूतपुराणसग्रह' तथा 'गगावाक्यावली' की रचना की। इस समय से विद्यापति की प्रवृत्ति विशेषरूप से शिव और गगा की भक्ति की ओर उन्मुख हुई।

विश्वासदेवी के बाद भवसिह की तृतीय रानी के पुत्र हरिसिंह (हरसिंह) सिहासनारूढ हुए। इनका वर्णन विद्यापति ने 'विभागसार' मे किया है।

इसके बाद नरसिहदेव (दर्पनारायण उपनाम) राजा हुए। इन्ही की आज्ञा से विद्यापति ने 'विभागसार' ग्रथ की रचना की। इनकी रानी धीरमति के आदेश से विद्यापति ने 'दानवाक्यावली' लिखी। नरसिह के पश्चात् इनके ज्येष्ठ पुत्र धीरसिह (हृदयनारायण उपनाम) राजा बने। धीरसिह के बाद इनके छोटे भाई भैरवसिह (हरिनारायण उपनाम ?) सिहासन पर बैठे। इन्ही की आज्ञा से विद्यापति ने 'दुर्गाभक्तितरगिणी' लिखी। ये अत्यन्त दयालु और प्रजापालक थे। वाचस्पति मिश्र (द्वितीय) ने लिखा है कि इन्होने सैकडो तालाब खुदवाए, नगर, ग्राम, पत्तन आदि दान दिए और तुला-दान भी करवाए।

इनके अतिरिक्त विद्यापति की रचनाओ मे राघवसिह, रुद्रसिह आदि के भी नाम मिलते है।

इन राजवशो ने विद्यापति के कवि को अत्यन्त प्रभावित किया है और सच तो यह है कि इन वशो का और विद्यापति का अटूट सम्बन्ध है। इनका परिचय प्राप्त किए बिना विद्यापति का जीवनवृत्त अधूरा ही नही रह जाता, वरन् इनके काव्य का सही

मूल्याकन भी नहीं हो सकता। डा० उमेश मिश्र के शब्दो मे—

"विद्यापति का जीवन-काल राजाओ की सभा मे अनेक प्रकार के प्रकाड विद्वानो के साथ व्यतीत हुआ। इसलिए विद्यापति ने यद्यपि मैथिली भाषा की उन्नति ही मे अपना प्रधान समय लगाया, तथापि शास्त्रो का भी पूरा व्यवसाय रक्खा था। आजकल के भाषा-कवियो की तरह कोरे भाषा-कवि ही वह नही थे।"[1]

---

१. विद्यापति ठाकुर

: ३ :

विद्यापति का धर्म-सम्प्रदाय

किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय की स्थापना करने वाले व्यक्ति मे मस्तिष्क की ही प्रधानता होती है। वह अपने सम्प्रदाय को तर्क-वितर्कों की नीरस कसौटी पर कसकर सवारता है और तब उसे कतिपय निर्णीत नियमो की परिधि मे सीमित कर देता है। ये नियम ही उस सम्प्रदाय के अनुयायियो के लिए 'ब्रह्म-वाक्य' बन जाते हैं, किंतु मौलिक चिन्तक अनुयायी इन नियमो की महत्ता स्वीकार करते हुए भी प्राय इनकी सीमित परिधि का जाने-अनजाने उल्लघन कर जाते हैं। उनकी भावनाए जब आवेशमयी हो जाती हैं तो सीमा के बन्धन तोडकर, अध-विश्वास और परम्परा के कगार गिराकर वे स्वच्छद विचरण करने लगती हैं, और मस्तिष्क के नीरस तर्क-वितर्कों की अवहेलना करके, परम्परा के अधानुकरण का परित्याग करके हृदय की सरस और मौलिक भावधारा मे बहने लगती है। चाहे जिस किनारे पर लगे, इसकी मौलिक चिन्तको को कोई चिन्ता नही होती। वे तो भावावेश मे बस बह जाते हैं। यही कारण है कि कबीर का रहस्यवाद तत्कालीन अनेक सम्प्रदायो का 'विश्वकोश' बन गया है, तुलसी के राम का रूप अत्यन्त जटिल हो गया है और मीराँ की भक्ति-साधना उलझ कर रह गई है।

ठीक यही बात विद्यापति के धर्म-सम्प्रदाय के विषय मे भी लागू होती है। विभिन्न विद्वान् भिन्न-भिन्न तर्कों द्वारा विद्यापति के भिन्न-भिन्न धर्म-सम्प्रदाय सिद्ध करते हैं। फलत इस विषय को लेकर विद्वानो मे प्रमुख रूप से पाच वर्ग बन गए हैं। एक वर्ग इन्हे वैष्णव मानता है तो दूसरा पचदेवोपासक। तीसरा एकेश्वरवादी कहता है तो चौथा शाक्त और पाचवा शैव। आज तक कोई भी वर्ग उस परिणाम पर नही पहुच सका जो सभी वर्गों के विद्वानो को मान्य हो। सक्षेप मे इन वर्गों का विवरण दिया जाता है।

वैष्णव—इस वर्ग के विद्वानो मे डा० ग्रियर्सन, डा० श्यामसुन्दर दास, बाबू ब्रजनदन सहाय, प्रो० विपिनबिहारी मजूमदार और डा० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी प्रमुख हैं। डा० ग्रियर्सन का कहना है कि विद्यापति के 'लगभग सभी पद वैष्णव प्रार्थनाए या भजन है।"[1]

डा० श्यामसुन्दरदास के मत मे 'विद्यापति पर माध्व सम्प्रदाय का ही ऋण नही

1 They are nearly all Vaishnva hymns or *Bhajanas*.

है, उन्होने विष्णुस्वामी तथा निम्बार्काचार्य के मतो को भी ग्रहण किया था।[1] इनके अनुसार विद्यापति को कृष्ण की चिर-प्रेयसि के रूप मे राधा का स्वरूप विष्णुस्वामी और निम्बार्क-सम्प्रदाय से ही पहले-पहल प्राप्त हुआ था।

बाबू ब्रजनन्दन सहाय तो विद्यापति को 'वैष्णव-कवि-चूडामणि' विशेषण से अलकृत करते है।

प्रो० विपिनबिहारी मजूमदार ने 'सर्चलाइट' मे प्रकाशित अपने लेख मे विद्यापति को वैष्णव सिद्ध करते हुए कहा है कि 'धनी होने पर भी दूसरो से न लिखवाकर विद्यापति ने भागवत की स्वय रचना की।' प्रो० मजूमदार के लिए विद्यापति को वैष्णव मानने का यह प्रबल आधार है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते है—**"जो लोग विद्यापति के बारे मे कहा करते हैं कि वे शैव थे, अतएव वैष्णव भक्त नहीं हो सकते, वे उस काल की इस मन स्थिति को नहीं जानते। समूचा उत्तर भारत प्रधानरूप से स्मार्त था, शिव के प्रति उसकी अखड भक्ति बनी हुई थी, परन्तु उसमे अपूर्व सहनशीलता का विकास हुआ था और विष्णु को भी वह उतना ही महत्त्वपूर्ण देवता मानता था। शिव सिद्धिदाता थे, विष्णु भक्ति के आश्रय।"**[2]

इस वर्ग का एक महत्त्वपूर्ण तर्क यह भी है कि महाकवि विद्यापति की महानता वैष्णव-विचारधारा के कारण ही है, क्योकि इनकी महत्ता का मूल्याकन सर्वप्रथम बगाल के वैष्णव-भक्तो के द्वारा ही हुआ, जिनमे महाप्रभु चैतन्यदेव का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। चैतन्य मत के दो रूप है—गोस्वामी और सहजिया। सहजिया मत के अनुसार शरीर मे ही सम्पूर्ण ब्रह्माड स्थित है और शरीर की सेवा ही परमार्थ की प्राप्ति है। इस मत मे स्त्री-प्रेम ही ईश्वर-प्रेम है। विद्यापति के पदो मे स्त्री-प्रेम का सरस और सागोपाग वर्णन है। इसीलिए सहजिया इन्हे 'सातवा रसिक भक्त' मानते है और इसीलिए चैतन्य महाप्रभु इनके पदो को गाते-गाते भावावेश मे सज्ञाहीन हो जाते थे। आज भी बगाल मे कृष्ण-कीर्तन के अवसरो पर विद्यापति के पदो का गायन होता है।

पंचदेवोपासक—इस वर्ग के प्रतिनिधि महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री है। "कीर्त्तिलता" की भूमिका मे शास्त्रीजी ने इस मत का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि "विद्यापति स्मार्त थे और स्मृति के अनुसार सूर्य, गणपति, अग्नि (विष्णु), दुर्गा और शिव इन पाचो देवताओ की उपासना आवश्यक है। विद्यापति ने इन समस्त देवताओ की अपनी रचनाओ मे यथा अवसर स्तुतिया की है। इससे स्पष्ट है कि ये पचदेवोपासक थे।"

एकेश्वरवादी—प्रो० जनार्दन मिश्र इस वर्ग के आधार-स्तम्भ है। उनका कहना

१—हिन्दी साहित्य

२—हिन्दी साहित्य का आदिकाल

है कि पुराणो मे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की प्रधानता है। किसी-किसी उपपुराण मे दुर्गा को भी प्रधानता दी गई है ब्रह्म की इच्छा से, माया और गुणो के सयोग से ही किसी आकृति का आरम्भ होता है। सत्व, रज और तम मे एक-एक गुण को प्रधान मानकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश और दुर्गा के रूप मे ब्रह्म की कल्पना की गई है शकर के स्वरूप मे कल्पना करते समय आदि ब्रह्म को देवाधिदेव, महादेव इत्यादि कहा गया है। इनकी मूर्ति का अनुमान करना कठिन है, तो भी कहा जा सकता है कि ये व्योम-वेश हैं। आकाश की नीलिमा ही इनके बाल है। दृश्य-जगत् का सबसे सुन्दर रत्न चन्द्रमा इनका शिरोभूषण है, इसीलिए ये चन्द्रशेखर हैं। इनकी शक्ति के सामने भयकर कालरूपी सर्प की कोई गणना ही नही है। इसलिए वह कभी जटा मे खेलता है, कभी कलाई पर झूलता है और कभी यज्ञोपवीत बन जाता है। अनत विस्तार वाला दिक् भी इतना तुच्छ है कि वह अच्छी तरह इनकी कमर भी नही ढक सकता इसलिए ये दिगम्बर है। सती पार्वती महाशक्ति है "

इन सिद्धान्तो का मनन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि साकार के अनेक रोचक स्वरूपो के रहते हुए भी सनातन हिन्दू-धर्म एकेश्वरवादी है, तथा निराकार और साकार को अभिन्न समझकर दोनो की समान श्रद्धा से उपासना करता है। वैदिक और पौराणिक साहित्य के अध्ययन करने से इस सिद्धान्त के विषय मे कोई भ्रम नही रह जाता।

विद्यापति सस्कृत के प्रगाढ विद्वान् थे। इनकी वृत्ति पठन-पाठन थी। शास्त्र-पुराणादि की चर्चा का प्रसग सर्वथा उपस्थित रहता था। इसलिए आर्य-सिद्धान्तो के इन गूढ रहस्यो से ये पूर्णत परिचित थे। यही कारण है कि हठ-धर्म ने इनके हृदय मे स्थान नही पाया था। हिन्दू देवी-देवताओ के यथार्थ रूप से परिचित होने के कारण उनके किसी विशेष रूप की ओर इनका भेदभाव वा पक्षपात नही था। समान श्रद्धा से ये सबकी उपासना करते थे। शकर और विष्णु के अभिन्न स्वरूप का इन्होने इस प्रकार वर्णन किया है—

"भल हरि भल हर भल तुअ कला।
खन पित बसन खनाई बघछला॥"

इसी प्रकार मातृरूप मे ब्रह्म का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

"विदिता देवी विदिता हो अविरल केस सोहन्ती।
एकानेक सहस को धारिनि अरिरगा पुरनन्ती॥
कजल-रूप तुअ काली कहिअउ, उजल रूप तुअ बानी।
रवि-मडल परचडा कहिए, गङ्गा कहिए पानी॥
ब्रह्मा घर ब्रह्मानी कहिए, हर घर कहिए गौरी।
नारायण घर कमला कहिए, के जान उतपति तोरी॥"

इन अवतरणो से विद्यापति के धर्म-भाव का स्पष्टीकरण हो जाता है।

इसलिए विशुद्ध वैदिक-धर्म का सच्चा स्वरूप यहा सर्वदा वर्तमान रहा`` इसलिए प्राचीनकाल से ही धर्म का एक निश्चित स्वरूप अबाधगति से अपना कार्य कर रहा है। इसमे सप्रदाय या फिरका कभी पैदा नही हुआ।····· यही कारण है कि मिथिला समाज मे देव-देवियो के भेद से किसी प्रकार की कट्टरता का प्रचार नही हुआ, और इस समय भी उनकी यही मनोवृत्ति है।"

इन उद्धरणो से जनार्दन मिश्र ने यह सिद्ध किया है कि साकार के अनेक रूप होने पर भी सनातन-हिन्दू धर्म एकेश्वरवादी है तथा निराकार और साकार को अभिन्न समझकर दोनो की समान श्रद्धा से उपासना करता है।

शाक्त—प० श्रीभागवत शुक्ल 'पाथोद' इस वर्ग के नेता है। इन्होने जनवरी १९३६ ई० की 'माधुरी' मे 'विद्यापति का निजी मत या सम्प्रदाय' शीर्षक से एक लेख लिखा था जिसमे विद्यापति को शाक्त सिद्ध किया गया है। इनके तर्क इस प्रकार हैं—

१ 'पुरुष-परीक्षा' के मगलाचरण मे विद्यापति ने आदि-शक्ति को शिव की पूज्या, विष्णु की ध्येया और ब्रह्मा की प्रणम्या बतलाया है। श्लोक यह है—

"ब्रह्मापि यान्नौति नुत सुराणा यामर्चितोऽप्यर्चयतीन्दुमौलिः।
या ध्यायति ध्यानगतोऽपि विष्णुस्तामादिशक्ति शिरसा प्रपद्ये॥"

२ विद्यापति के पदो मे 'हरि-विरचि-महेश शेखर चुम्ब्यमानपदे' और 'जगतिपालन-जनमारणरूप-कार्य सहस्र कारण' शक्ति का विशेषण, 'हरिहर ब्रह्मा पुछइत भमे एकओ न जान तुअ' आदि शक्ति के वर्णन विद्यापति के शाक्त होने के साक्षी है।

३. मिथिला के विद्वान् इस समय भी शाक्त होते है और उस समय भी शाक्त होते थे। इसलिए विद्यापति का शाक्त होना स्वाभाविक है।

शैव—इस वर्ग मे बाबू रामवृक्ष बेनीपुरी, प० शिवनन्दन ठाकुर तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति विद्वान् प्रमुख हैं। अपने मत के प्रतिपादन मे बाबू रामवृक्ष बेनीपुरी ने जो तर्क प्रस्तुत किए है, वे ये है—

१ इनके पिता शैव थे। शिव की उपासना के बाद ही उन्होने यह पुत्ररत्न प्राप्त किया था। ऐसी अवस्था मे इनका शैव होना बहुत सम्भव है।

२ 'बिसपी' से उत्तर 'भेडवा' नामक एक गाव मे आज भी बाणेश्वर महादेव है। कहते है कि ये इसी महादेव की उपासना करते थे।

३ इनके बनाए हुए अनेकानेक शिवगीत या नचारिया है जो मिथिला मे इनकी पदावली से भी अधिक प्रसिद्ध है। मिथिला मे इनकी पदावली तो विशेषत स्त्रियो मे प्रचलित है। अधिकतर स्त्रिया ही इनके पद गाती है। पुरुषो मे तो नचारिया ही प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानो को जाती हुई झुड की झुड कोकिलकठी रमणिया जिस प्रकार इनके मधुर पद गाती-झूमती जाती हैं, उसी प्रकार तीर्थ-यात्री पुरुष के झुड बडे प्रेम से नचारिया गाते हैं।

४. कहते हैं, स्वय महादेव इनकी भक्ति पर मुग्ध थे और उदना या उगना नाम से इनके भृत्य हो गये थे।[1]

प० शिवनन्दन ठाकुर ने विद्यापति को शैव सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किए हैं—

१ उदना की किंवदन्ती प्रसिद्ध है। विद्यापति के द्वारा स्थापित बाणेश्वर शिव वर्तमान है।

२. विद्यापति के पूर्वज शैव थे। किंवदन्ती है कि इनके पिता गणपति ठाकुर ने 'कपिलेश्वर' नामक शिव की उपासना कर विद्यापति के सदृश पुत्र-रत्न को प्राप्त किया था।

३ विद्यापति के आश्रयदाता राजा शैव थे।

४ विद्यापति की चिता पर अभी तक शिव-मन्दिर विद्यमान है। वैष्णवो की चिता पर शिव की स्थापना, शिवलिग की उत्पत्ति होना—आदि कही भी नही सुना जाता है।

५ विद्यापति ने 'पुरुष-परीक्षा' मे धर्म का मार्मिक विवेचन किया है, किन्तु जब उपासना की बारी आई तब ससार से विरक्त रत्नागद राजा से शिव की उपासना की प्रतिज्ञा करवाई है।

६. विद्यापति-रचित महेशबानी प्रसिद्ध है। शिव-मन्दिरो मे शिवरात्रि आदि शिवपर्वों के अवसर पर ये पद गाए जाते है। इनमे शिव की प्रार्थना, पार्वती-विवाह, विवाह के समय मेनका की उदासीनता, शिव के लिए गौरी की उत्सुकता आदि का वर्णन है।

७ विद्यापति ने शिवपूजा के विषय मे 'शैवसर्वस्वसार', शिवजटावलम्बिनी गगा के विषय मे 'गगावाक्यावली' और शिव की अर्द्धाङ्गिनी दुर्गा की पूजा के विषय मे 'दुर्गाभक्तितरगिणी' लिखी, किन्तु विष्णु की आराधना पर किसी ग्रन्थ की रचना नही की।

८ विद्यापति ने जब अपनी उपासना का रूप स्थिर किया और शिवजी को अपना इष्टदेव बनाया तब शाक्त और विशिष्टाद्वैत मतो से प्रभावान्वित होने के कारण केवल शिवजी को अपना इष्टदेव नही रखकर युगलमूर्ति 'गौरीशकर' को अपना इष्टदेव बनाया—

"लोढ़ब कुसुम तोड़ब बेलपात,
पूजब सदा शिव गौरि क सात।"

× × ×

---

१ —विद्यापति की पदावली भूमिका बेनीपुरी पृ० १५-१८

"जय जय शकर, जय त्रिपुरारि।
जय अध पुरुस, जयति अध नारि ।।
आध धवल तनु, आधा गोरा।
आध सहज कुच, आध कटोरा ।।"
× × ×
"भने कविरतन, विधाता जाने।
दुइ कएल बाँहल एक पराने ।।"[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपना मत इन शब्दो मे व्यक्त किया है—

"विद्यापति शैव थे। उन्होने इन पदो की रचना शृगार-काव्य की दृष्टि से की है, भक्त के रूप मे नही। विद्यापति को कृष्ण-भक्तो की परम्परा मे नही समझना चाहिए।"[2]

आलोचना—विद्यापति के धर्म-सम्प्रदाय के विषय मे विभिन्न विद्वानो के मत और तर्क जान लेने पर यह प्रश्न अनायास ही उत्पन्न हो जाता है कि इनमे कौनसा मत ठीक है। अत इनकी पृथक् पृथक् आलोचना करना आवश्यक प्रतीत होता है।

यदि विद्यापति को वैष्णव माना जाय तो यह प्रश्न अनायास ही उठ खडा होता है कि क्या विद्यापति के समय मे वैष्णव-धारा इतनी प्रबल हो गई थी कि उससे विद्यापति जैसे महाकवि का प्रभावित होना अनिवार्य था ? इसके उत्तर मे कहा जा सकता है कि यद्यपि विद्यापति के समय मे वैष्णव-विचारधारा समस्त उत्तर भारत मे फैल चुकी थी, किन्तु उसमे उस शक्ति का अभाव था जो १३वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे निम्बार्क और विष्णुस्वामी द्वारा प्रदान की गई। फलत इन दोनो महानुभावो का विद्यापति पर प्रभाव मानना ऐतिहासिक तथ्यो के प्रति अत्यन्त उदासीनता प्रकट करना है क्योकि यदि वैष्णव-धारा का ऐतिहासिक अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति पर जयदेव का प्रभाव है, निम्बार्क और विष्णुस्वामी का नही। कारण यह है कि वैष्णवो के प्रथम आचार्य रामानुज की मृत्यु सन् ११३७ ई० मे हुई थी और विष्णुस्वामी तथा निम्बार्क १३वी शताब्दी के प्रारम्भ मे विद्यमान थे। जयदेव का जन्मकाल ११२० ई० के लगभग है। इससे यह स्पष्ट है कि जयदेव के काव्य-प्रेरक चाहे जो तत्त्व रहे हो, किन्तु वे वैष्णव आचार्य नही है। निम्बार्क और विष्णुस्वामी द्वारा प्रचलित और बल्लभाचार्य द्वारा विकसित राधा-कृष्ण की भक्ति बगाल और बिहार मे १५वी शताब्दी मे आई, तब तक पदावली का प्रणयन हो चुका था क्योकि आचार्य शुक्ल सन् १४०३ ई० के लगभग विद्यापति का शिवसिह के दरबार मे होना मानते है।

शृगार वैष्णव-भक्ति का एक प्रमुख अग है और सम्भवत इसी कारण महाप्रभु

१.—महाकवि विद्यापति, पृ० १७५–१८०

२.—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५७

चैतन्यदेव विद्यापति के पदो को गाते-गाते भावावेश मे मूर्च्छित हो जाते थे, किन्तु विद्यापति की इस श्रृङ्गार-भावना का सम्बन्ध वैष्णव-सम्प्रदाय से न होकर शाक्त-सम्प्रदाय मे सम्भव है क्योकि वैष्णव-विचारधारा से तो विद्यापति अछूते ही थे जैसा कि उपर्युक्त पक्तियो मे अभी कहा गया है। उस समय शाक्तो के दो वर्ग थे—वैदिक और अवैदिक। वैदिक वर्ग वेद, स्मृति और पुराणो का अनुयायी था और अवैदिक वर्ग वेद-विरोधी था। विद्यापति पर इन दोनो वर्गों का प्रभाव परिलक्षित होता है। एक ओर जहा ये वैदिक वर्ग के अनुसार वेद, स्मृति और पुराणो के सजग पाठक थे, वहा दूसरी ओर अवैदिक शाक्तो के प्रभाव के फलस्वरूप इन्होने वज्रयान की उस स्थूलता को भी अपनी भक्ति ? मे स्थान दिया जो इनकी पदावली मे राधा-कृष्ण के विलास और काम-क्रीडाओ के रूप मे बिखरी पडी है। श्रीरामवाशिष्ट के शब्दो मे—

"श्रृगार शाक्तो की भक्ति मे प्रमुख था, इसीलिए विद्यापति के भी अपने काव्य मे श्रृगार की प्रधानता थी।"[1]

रही भागवत रचना करने की बात, केवल इसी एक रचना के आधार पर इनका सम्प्रदाय वैष्णव नही माना जा सकता क्योकि यह रचना इनके मत की परिचायिका नही, अपितु इनकी समन्वयात्मकता की द्योतिका है। जिस प्रकार 'कृष्णगीतावली' के कारण तुलसी को कृष्ण भक्त नही माना जाता, उसी प्रकार इसी रचना के कारण इन पर भी वैष्णव-विचारधारा नही थोपी जा सकती।

विद्यापति को पचदेवोपासक भी नही माना जा सकता। यह सत्य है कि इनकी रचनाओ मे पचदेवो की स्तुतिया मिलती हैं, किन्तु यह तो तत्कालीन धार्मिक परम्परा का ही प्रभाव है। विद्यापति पुराणो के विद्वान् थे और पुराणो का मत इन्हे मान्य भी था। पुराणो मे बताया गया है कि पचदेवो अर्थात् सूर्य, गणेश, दुर्गा, विष्णु (अग्नि) और शिव की पूजा करने के बाद ही इष्टदेव की पूजा करने का अधिकार प्राप्त होता है—

"गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्नि विष्णु शिव शिवाम्।
सम्पूज्य देवषटकञ्च सोऽधिकारी च पूज्यते॥"[2]

इसके अतिरिक्त उस समय मिथिला मे पचदेवो की पूजा का प्रचलन भी था जो आज भी है। प० शिवनन्दन ठाकुर के शब्दो मे—"मिथिला मे इस समय भी प्रथा है कि किसी तरह की पूजा हो, शैव, वैष्णव या शाक्त कोई भी पूजक हो, पहले पचदेवता की पूजा कर ली जाती है। सम्भव है विद्यापति के समय मे भी यही प्रथा हो।"[3]

१—गीतिकार विद्यापति, पृ० १९४
२—ब्रह्मवैवर्तपुराण
३—महाकवि विद्यापति, पृष्ठ १७१

प्रो० जनार्दन मिश्र का यह कथन कि विद्यापति एकेश्वरवादी हैं, सत्य सिद्ध नही होता। पहली बात तो यह है कि विद्यापति की रचनाओ मे अनेक देवी-देवताओ की स्तुतिया मिलती है जिससे यह सिद्ध करना कि विद्यापति की सॅचमुच आराध्या या आराध्य कौन हैं, नितात दुष्कर कार्य है। दूसरे, विद्यापति का दृष्टिकोण समन्वयात्मक था। इनकी आस्था जितनी शिव के प्रति थी, उतनी ही विष्णु के प्रति थी। अत यह मन्तव्य भी युक्तियुक्त सिद्ध नही होता।

अब केवल दो वर्ग शेष रह जाते हैं। एक है शाक्त मानने वाला और दूसरा शैव मानने वाला। मिथिला मे शाक्त और शैव मतावलबियो का प्राधान्य विद्यापति के युग मे भी था और आज भी है। विद्यापति के पूर्वज और आश्रयदाता राजा शाक्त और शैव दोनो थे। इससे यह सिद्ध होता है कि वे दोनो धाराए कभी अत्यन्त निकटवर्तिनी रही होगी और कालातर मे इनमे व्यवधान पनपता गया। इस समस्या का समाधान करने के लिए विद्यापति की पूर्ववर्ती धार्मिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि का अवलोकन आवश्यक है।

विद्यापति के समय मे वज्रयान और सहजयान शाखाओ का अस्तित्व था। इनमे सिद्धियो की प्रधानता थी। तान्त्रिक परपराओ से सबधित यक्ष-समाज सामाजिक बधनो से मुक्त विलास का समाज था। स्त्रिया निर्बंध और पूज्या थी, क्योकि इन्हे सृजन का मूल कारण समझा जाता था। इस मातृसत्तात्मक समाज मे योनि-पूजा का अत्यधिक महत्त्व था।

जब पुरुष को अपनी सत्ता के महत्त्व का आभास हुआ, सृजन मे अपने योग का बोध हुआ तो योनि के साथ लिंग की पूजा भी प्रचलित हुई। इस प्रकार शक्ति और शिव का समन्वय हुआ। यह मत वाम-मार्ग की सज्ञा मे अभिभूत हुआ। इससे जनता मे उन्मुक्त विलास की भावना पनपी और नैतिकता नाम की कोई वस्तु ही नही रह गई जिसके विरोध स्वरूप हठयोगियो और नाथ-पथियो ने सघर्ष छेडा।

शाक्त सम्प्रदाय ने प्राय सपूर्ण भारत के सभी सम्प्रदायो को प्रभावित किया। शाक्तो के अनुसार दुर्गा आदिशक्ति मानी जाती है। शव को शिवत्व प्रदान करने वाली यही शक्ति है। शाक्तो का विश्वास है कि शिव मूलत शव है। जब आदिशक्ति दुर्गा उनके साथ विपरीत रति करती है, तभी शव शिवत्व को प्राप्त करता है। दार्शनिक शब्दावली मे—ब्रह्म स्वय कुछ नही करता। जब वह माया अथवा शक्ति से सपन्न होता है तभी सृष्टि आविर्भूत होती है। दक्षिण के वैष्णव धर्म-प्रचार से पूर्व गाथा सप्तशती तथा अन्य लोकगीतो मे राधा और कृष्ण की जो परम्परा उपलब्ध होती है और जो जयदेव से विद्यापति तक जाती है वह मूलत शाक्त का ही प्रभाव है। साहित्य-जगत् मे दुर्गा को राधा और शिव को कृष्ण का रूप दिया गया। यही शाक्त और शैवो की एकता का मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसी एकता को विद्यापति ने अपने पदो मे अनेक स्थानो पर

प्रदर्शित किया है। समस्त देवताओ को शक्ति का आराधक और उपासक बताया है।

विद्यापति मे यह समस्त परम्पराए हमको मिलती हैं। शाक्तोपासना मे नारी देवी का पर्याय है। नारी के समस्त रूप सामान्य है। विद्यापति मे नारी के कामिनी और माता ये दो स्वरूप प्रधान मिलते हैं। क्रीडारता नारी शाक्तो की परम उपास्या है। विद्यापति ने उसका प्रभूत वर्णन किया है। स्थूल की यह समाराधना शाक्त मतानुसार शक्ति के बाह्य लालित्य का प्रतीक है। फिर भी यह कहना कि शाक्त मत का विद्यापति पर कितना प्रभाव पडा, आसान नही है क्योकि "विद्यापति के समय मे मिथिला मे क्या, सपूर्ण उत्तर भारत मे शैव, शाक्त और वैष्णव तीनो प्रकार के मतो का काफी प्रचार हो गया था।"[1]

निष्कर्ष—इतना विवेचन करने के उपरात भी यह स्पष्ट नही हो पाता कि वस्तुत विद्यापति का धर्म-सम्प्रदाय क्या था ? हमारा मन्तव्य तो यह है कि विद्यापति जैसे समन्वयवादी कवि को किसी सम्प्रदाय विशेष की परिधि मे सीमित करना अनुचित-सा ही प्रतीत होता है, क्योकि इनकी समन्वय-भावना लोकनायक तुलसी की भावना से किसी प्रकार भी कम नही है। जिस प्रकार तुलसी के काव्य मे तत्कालीन धार्मिक विचार-धाराओ का सगम है, उसी प्रकार विद्यापति ने भी अपने धार्मिक दृष्टिकोण मे महती उदारता दिखाई है। श्री नरेन्द्रनाथ दास के शब्दो मे—**"हमारी यह धारणा है कि विद्यापति युगल मूर्ति के एक उत्कृष्ट और स्मार्त उपासक थे, किसी सम्प्रदाय विशेष के नहीं थे।"**

यथार्थ भी यही है। विद्यापति जैसे समन्वयवादी कवि को किसी सम्प्रदाय-विशेष मे घसीटना इनके प्रति सरासर अन्याय है। यदि इनके साथ किसी वाद को जोडने का दुराग्रह अदम्य ही है तो कहना पडेगा कि ये मानवतावादी कवि थे। इनका मानस मानवता की असीमता से सबद्ध था, किसी सम्प्रदाय की समीपता से इनका कोई लगाव न था। यहा श्री शिवप्रसादसिंह का यह वक्तव्य उल्लेखनीय है—

"विद्यापति का व्यक्तित्व नाना प्रकार की परस्पर विरोधी विचारधाराओ का स्तबक है। इस व्यक्तित्व मे इस प्रकार का परस्पर विरोध सभवतः उस युग का परिणाम है जिसमे विभिन्न प्रकार की देशी-विदेशी विचारधाराएं सघर्ष-रत थीं। विद्यापति वस्तुत सक्रमण काल के प्रतिनिधि कवि हैं, वे दरबारी होते हुए भी जन-कवि हैं, शृगारिक होते हुए भी भक्त है, शैव, शाक्त या वैष्णव कुछ भी होते हुए भी वे धर्म-निरपेक्ष हैं, सस्कारी ब्राह्मण वश मे उत्पन्न होने पर भी विवेक संत्रस्त या मर्यादावादी नहीं हैं। इस प्रकार विद्यापति का व्यक्तित्व अत्यन्त गुफित और उलझा हुआ है—यह नाना प्रकार के फूलो की वनस्थली है, एक फूल का गमला नहीं।"[2]

●

१.—विद्यापति, पृष्ठ ७६

१.—विद्यापति, पृष्ठ ४

: ४ :

विद्यापति की बहुज्ञता

यह सत्य है कि काव्य मे हृदयजन्य भावनाओ की प्रधानता होती है, किन्तु केवल भावनाओ पर काव्य का अमर और भव्य प्रासाद निर्मित नही किया जा सकता। अमर काव्य के लिए जहा भावुक हृदय की अपेक्षा होती है, वहा विकसित मस्तिष्क भी अनिवार्य है। कहना अनुपयुक्त न होगा कि भावुक हृदय और विकसित मस्तिष्क काव्य के दो आवश्यक स्तम्भ है जिनपर प्रतिष्ठित होकर काव्य देश-काल को चुनौती देकर सार्वभौमिकता और अमरत्व प्राप्त करता है। इसीलिए महाकवि के लिए हृदय की सरसता के साथ-साथ मस्तिष्क की परिपुष्टता भी अत्यन्त आवश्यक बताई गई है, अर्थात् कवि को जीवन और जगत् के सूक्ष्मतम और गभीरतम परिज्ञान के साथ-साथ काव्येतर साहित्य का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, उसमे [illegible]-निपुणता के साथ ही लोक-वैचक्षण्य भी हो, तभी वह अमर कवि बनकर अनश्वर काव्य की सृजना कर सकता है। मम्मटाचार्य के शब्दो मे—

"शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।"[1]

शास्त्रो मे कुशल पर लोकाचार से अनभिज्ञ पडित उपहासास्पद बनते देखे गये हैं।

विद्यापति बहुज्ञ थे। पूर्ववर्ती और समकालीन साहित्य का ज्ञान तो इनका अपार था ही, काव्येतर विषयो पर भी इनका पूर्ण अधिकार था। इतिहास, पुराण, भूगोल, स्मृति, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि के ये प्रकाड पडित थे। कई भाषाओ पर इनका असाधारण अधिकार था।

इतिहास—काव्यालोक मे विचरण करने वाले मनीषियो की इतिहास के प्रति उदासीनता देखकर प्राय यह धारणा-सी बन गई है कि काव्य और इतिहास का परस्पर कोई विशेष सम्बन्ध नही है, अथवा काव्य-मनीषी इतिहास से अनभिज्ञ ही होते है। आधुनिक परिस्थितियो मे इस धारणा को केवल धारणा कहकर झुठलाया नही जा सकता। इसमे बहुत-कुछ सत्य का अश है, किन्तु विद्यापति के विषय मे ऐसा नही कहा जा सकता। इनकी कृतिया—कीर्त्तिलता, कीर्त्तिपताका और पुरुष-परीक्षा आदि इनके

१—काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास

ऐतिहासिक ज्ञान की साक्षी है। महामहोपाध्याय डा० हरप्रसाद शास्त्री का तो यहा तक विश्वास है कि प्रत्येक इतिहासवेत्ता को विद्यापति की 'पुरुष-परीक्षा अवश्य' पढनी चाहिए।

विद्यापति की 'कीर्त्तिलता' मे ऐतिहासिक सामग्री तो मिलती ही है, तत्कालीन समाज का यथार्थ रूप भी प्राप्त होता है। प० शिवनन्दन ठाकुर ने अपनी पुस्तक 'महाकवि विद्यापति' मे विद्यापति की रचनाओ से खोजकर अनेक ऐसी घटनाओ की सूची दी है जिनसे इतिहास-वेत्ताओ को अमूल्य सहायता मिल सकती है।

पुराण—विद्यापति सस्कृत के प्रगाढ विद्वान् थे। इनकी वृत्ति पठन-पाठन थी। शास्त्र-पुराणादि की चर्चा का प्रसग सर्वदा उपस्थित रहता था। 'शैवसर्वस्वसार' और 'शैवसर्वस्वसार-प्रमाणभूतसग्रह' स्मृति-ग्रन्थो को पढकर विद्यापति के पुराणो-सबधी गहन अध्ययन का पता लग जाता है।

भूगोल—'भूपरिक्रमा' नामक रचना विद्यापति के भौगोलिक ज्ञान की कसौटी है। इस रचना मे शापग्रस्त बलराम की तीर्थ-यात्रा के ब्याज से कवि ने भारत के विभिन्न तीर्थो के वर्णन का अवकाश पा लिया है। कोशल, काशी, प्रयाग आदि के सजीव और यथार्थ वर्णनो से ऐसा प्रतीत होता है जैसे विद्यापति काव्य और भूगोल का समन्वय प्रदर्शित करके व्यावहारिक शिक्षा के लिए भूगोल विद्या की उपयुक्तता सिद्ध कर रहे हो।

स्मृति—स्मृति-ज्ञान विद्यापति के वश की परपरा थी। इनके पूर्वज भी स्मृतियो के दिग्गज थे और स्मृतियो के आधार पर महान् ग्रन्थो का प्रणयन कर चुके थे। अपने पूर्वजो की भाति विद्यापति का भी स्मृतियो पर असाधारण अधिकार था। इन्होने छ स्मृति-ग्रन्थो की रचना की है जिनके नाम है—शैवसर्वस्वसार, गगावाक्यावली, दानवाक्यावली, दुर्गाभक्तितरगिणी, गयापत्तलक और वर्षकृत्य। पदावली मे भी यथावकाश स्मृति-ज्ञान की अभिव्यक्ति है जो अत्यन्त सरस और कवित्वपूर्ण। यथा—

"अपन अपन पहु सबहुँ जेमाओलि
मूखल तुअ जजमान।
त्रिबलि-तरग सितासित सगम
उरज सम्भु निरमान।
आरति पति मँगइछ परतिग्रह
करु धनि सरबस-दान।"

इनके अतिरिक्त 'विभागसार' नामक एक अन्य ग्रथ भी अनुमित किया जाता है जिसमे 'दाय-भाग' का वर्णन है।

धर्मशास्त्र—विद्यापति को शृगारिक कवि माना जाता है, लेकिन इन्होने केवल रूप-यौवन और तज्जन्य भाव-भगिमाओ तक ही अपने कवि को सीमित नही रक्खा,

बल्कि समाज-सुधार और धर्म-सुधार तक के विषयो को अपनाया। इन्हे धर्म-शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था और ये अपने समय की प्रचलित सभी धर्म-धाराओ से पूर्णरूपेण अवगत थे। गोस्वामी तुलसीदास के विषय मे आचार्य शुक्ल ने लिखा है—**"निर्गुणधारा के सतों की बानी मे लोक-धर्म की अवहेलना छिपी हुई थी। कबीर, दादू आदि के लोक-धर्म-विरोधी स्वरूप को यदि किसी ने पहचाना तो गोस्वामी जी ने।"**[1] ठीक ये ही शब्द विद्यापति के विषय मे भी कहे जा सकते हैं। इन्होने भी अपने युग की धार्मिक कमज़ोरियो को पहचाना और अपने ग्रन्थो द्वारा तथा अपने अनुपम समन्वय द्वारा वही स्तुत्य कार्य किया जो गोस्वामी जी ने अपने समय मे किया। अत कहा जा सकता है कि विद्यापति केवल धर्म-शास्त्रो के ज्ञाता ही नही थे, अपितु धार्मिक महत्त्वो को प्रयोग मे लाने वाले भी थे। ये व्यावहारिक धर्म-नेता थे। यही कारण है, विद्यापति की रचनाओ मे लोकोक्तियों की भरमार मिलती है।

नीतिशास्त्र—'पुरुष-परीक्षा' की रचना का उद्देश्य बताते हुए विद्यापति ने कहा है—

"शिशूना सिद्ध्यर्थन्नयपरिचितेर्नूतनधिया,
मुदे पौरस्त्रीणा मनसिजकथाकौतुकजुषाम्।"[2]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रथ को लिखने के दो उद्देश्य कवि के समक्ष थे—एक तो नीतिशास्त्र से अनभिज्ञ मनुष्यो को नीतिशास्त्र की शिक्षा देना और दूसरे काम-कला मे चतुर नागरिक नारियो को आनन्द देना। जीवन मे ये दो पहलू अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण हैं। समाज मे भिन्न-भिन्न प्रकृति और रुचि के मनुष्य होते है। जो व्यक्ति इन विभिन्नताओ को पहचान कर यथायोग्य आचरण करता है, वह अपने प्रत्यक ध्येय मे आशातीत सफलता प्राप्त करता है। इसीलिए किसी भी व्यक्ति के लिए, जो सफलता का इच्छुक है, मानव-वृत्तियो को जानना अत्यन्त आवश्यक है। 'परुष-परीक्षा' मे विद्यापति ने इन्ही वृत्तियो का स्पष्टीकरण किया है।

काम-कला जीवन का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है। सफलता के लिए 'पुरुष-परीक्षा' जितनी अनिवार्य है, काम-विद्या का पारगत होना भी उतना ही आवश्यक है। दोनो के समन्वय मे ही जीवन की पूर्णता है।

कूटनीति-शास्त्र—राजवशो से निकटतम सबध होने के कारण विद्यापति का कूटनीतिज्ञ होना स्वाभाविक ही है, लेकिन इन्होने इस विद्या को अपने जीवन मे कभी महत्त्व नही दिया। धर्म के नाम पर मर-मिटने वाले हिन्दुओ मे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण और धर्म-सुधारक होकर विद्यापति कूटनीति को अपनाते भी कैसे? फिर भी इनमे कूट-नीतिज्ञो के प्रति गहन आस्था थी। ये कूटनीतिज्ञों का सम्मान करते थे, किंतु उनकी

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १३८
२—पुरुष-परीक्षा

प्रशसा करते समय 'कूटनीति' के स्थान पर 'विद्या' और 'बुद्धि' शब्दो का प्रयोग करते थे। इस बात से विद्यापति के हृदय की विशालता प्रकट होती है।

भाषाएं—विद्यापति कई भाषाओ के पारगत विद्वान् थे। सस्कृत, अपभ्र श और मैथिली पर इनका समान अधिकार था। सस्कृत मे लिखित इनके ११ ग्रथ हैं जिनके नाम हैं—भूपरिक्रमा, पुरुष-परीक्षा, लिखनावली, विभागसार, वर्षकृत्य, शैवसर्वस्वसार, गगा-वाक्यावली, दानवाक्यावली, दुर्गाभक्तितरगिणी, गयापत्तलक और मणिमजरी। प० शिवनदन ठाकुर के शब्दो मे—"**विद्यापति के ताम्रपत्र मे बडे ही सुन्दर श्लोक हैं और विद्यापति की पुरुष परीक्षा मे अनेक ऐसे श्लोक हैं जिनके सुनने पर आनन्द के मारे रोगटे खडे हो जाते हैं। विद्यापति के सस्कृत-कवि होने मे मेरे पास काफी प्रमाण हैं।**"[1] महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री और भाषा-विज्ञान-वेत्ता नलिनीमोहन सन्याल का मत है कि सस्कृत के विमुग्धकारी गीतो मे से यदि विद्यापति एक भी गीत न लिखते तो भी सस्कृत भाषा मे रचित ग्रथो के कारण ही ये अति उज्ज्वल मनीषी गिने जाते।

विद्यापति ने अपनी दो रचनाओ—कीर्त्तिलता और कीर्त्तिपताका का प्रणयन अपभ्रश भाषा मे किया है। जिस भाति राजशेखर, सातवाहन, गोवर्धनाचार्य आदि महाकवियो का विश्वास था कि सस्कृत की अपेक्षा प्राकृत मे अधिक माधुर्य और सरसता है, उसी भाति विद्यापति को अपभ्रश पर विश्वास था। इन्होने कहा भी है—

"सक्कय बाणी बुहअन भावइ, पाउ अ रस को मम्म न पावइ।
देसिल वअना सबजन मिट्ठा, ते तैसन जम्पो अवहट्ठा॥[2]

अर्थात् सस्कृत भाषा केवल विद्वानो को ही अच्छी लगती है, और प्राकृत भाषा इस का मर्म नही पाती। देशी भाषा सबको मीठी लगती है, इसी से मैं अवहट्ठ (अपभ्रश) मे रचना करता हू।

मैथिली विद्यापति की मातृभाषा थी। प्रारम्भ काल मे इसी भाषा ने सबमे समृद्ध देश-भाषा बग-भाषा को समुन्नत किया था, इसीलिए विद्यापति की कोमलकात और सरस पदावलियो को देखकर बगाली उनपर मुग्ध हो गये और विद्यापति को बगाली कवि सिद्ध करने का दुराग्रह ही अपना लिया। बहुत दिनो तक बगालियो का यह दुराग्रह विवाद का विषय बन गया, किंतु आज यह निर्विवाद है कि विद्यापति की भाषा

---

१. महाकवि विद्यापति, पृष्ठ ८६
२ कीर्त्तिलता, प्रथम पल्लव

बगला नही, हिन्दी है। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दो मे—"**विद्यापति को लेकर हिन्दी और बगला वालो मे काफी झगडा हुआ है। दोनो ही उन्हे अपनी ओर खींचने में प्रयत्नशील रहे हैं। किन्तु यह वाद-विवाद अब समाप्त हो चुका है। वास्तव मे विद्यापति के पदो की भाषा हिन्दी के ही अधिक निकट है।**"[1]

इस प्रकार हम देखते है कि विद्यापति मे बहुमुखी प्रतिभा थी। इनकी जानकारी अपार और गभीर थी।

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १५८

: ५ :

विद्यापति पर पूर्ववर्ती प्रभाव

समसामयिक युग से तो यत्किंचित् सभी कवि प्रभावित होते हैं, किन्तु बहुज्ञ और प्रतिभा-सम्पन्न कवियो पर पूर्ववर्ती युग का भी पर्याप्त प्रभाव होता है। उस प्रभाव को ग्रहण करके उसपर अपने मौलिक चिन्तन और प्रतिभा की छाप लगा देना महाकवियो की विशेषता होती है। उस छाप से अकित होकर वह प्रभाव मौलिकता के साचे मे ढलकर और भी प्रभावपूर्ण हो जाता है।

विद्यापति पर पूर्ववर्ती कवियो का प्रभाव पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है। ये विशेष रूप से माघ, कालिदास, अमरुक, गोवर्धनाचार्य, जगन्नाथ और जयदेव से प्रभावित है। इनसे प्रभाव ग्रहण करके भी विद्यापति ने अपनी काव्य-प्रतिभा से वर्णन मे जो नवीनता जोड दी है, उससे ये कही-कही इनसे भी बहुत आगे निकल गये है। इन कवियो के साथ विद्यापति का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

माघ—सस्कृत-साहित्य मे माघ की गणना सर्वश्रेष्ठ कवियो मे की जाती है। इनके विषय मे यह उक्ति बहुत ही प्रचलित है—

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दाण्डिन पदलालित्य माघे सन्ति त्रयोगुणा ॥"

अर्थात् माघ के काव्य मे उपमा, अर्थ-गौरव और पदलालित्य तीनो ही गुण मिलते है। सद्य स्नाता नायिका का वर्णन दोनो कवियो ने किया है, माघ ने भी और विद्यापति ने भी। माघ का वर्णन इस प्रकार है।

"वासासि न्यवसत यानि योषितस्ता:
शुभ्राभ्रद्युतिभिरहासि तैर्मुदेव।
अत्याक्षु स्नपनगलज्जानि यानि
स्थूलाश्रुस्नुतिभिररोदि तै: शुचेव॥"

अर्थात् स्त्रियो ने नवीन सफेद वस्त्र धारण किए। वे वस्त्र खुशी के मारे हसने लगे (वस्त्रो की धवलता ही उनकी हसी है) और जिन वस्त्रो का परित्याग किया, वे शोक से व्याकुल होकर आसू बहाने लगे (वस्त्रो से जल गिरना ही उनका आसू बहाना है)

विद्यापति का वर्णन भी देखिए—

"ओ नुकि करत चाहि किय देहा।
अबहि छोड़ब मोहि तेजब नेहा॥
ऐसन रस नहि पाओब आरा।
इये लागि रोइ गए जलधारा॥"

नहाने से भीग जाने के कारण वस्त्र देही से चिपक जाते हैं और उनके छोरो से पानी निकलता रहता है। इन्ही दो बातो को लेकर विद्यापति ने यह उत्प्रेक्षा की है। वे कहते हैं कि वस्त्र अपने को छिपाना चाहता है (देही से चिपक जाना ही उसके छिपने का प्रयास है) क्यो? इसलिए कि उसे यह आशका हो आई है कि नायिका अब उससे और प्रेम करने का छाड देगी। ऐसा रस उसे कही दूसरी जगह नही मिलेगा, यह सोचकर वस्त्र रो रहा है।

माघ और विद्यापति के इन वर्णनो मे एक ही घटना को एक ही उपमा से वर्णित किया गया है। माघ वस्त्रो के आसू दिखाकर ही मौन हो जाते हैं, किन्तु विद्यापति उसका कारण भी बताते है। कारण का वर्णन करने से ध्वन्यार्थ को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुची है, वरन् नायिका का रूप-सौन्दर्य और भी निखर गया है। वस्त्र जैसा निर्जीव पदार्थ भी जब उसके रूप-सौन्दर्य का लोभी है तो सजीव प्राणियो की तो बात ही दूसरी है। कहना न होगा कि इन वर्णनो मे विद्यापति का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक सरस और प्रभावपूर्ण है।

अमरुक—शृगार-कवियो मे अमरुक और इनकी कृति 'अमरुक-शतक' का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। अमरुक ने शृगार रस के अन्तर्गत आने वाली छोटी-मोटी सभी घटनाओ का सफल वर्णन किया है। सखिया अपनी सखी को बार-बार मान करने की शिक्षा दिया करती है, बल्कि एक प्रकार से उसे बाध्य किया करती है। सखियो के बार-बार के आग्रह करने पर भी नायिका का मान स्थिर नही रह पाता। नायक के सम्मुख आते ही वह भग हो जाता है। अपनी इसी दशा का वर्णन नायिका अपनी सखियो से 'अमरुकशतक' मे इस प्रकार करती है—

"भ्रूभगे रचितेऽपि दृष्टिरधिक सोत्कठमुद्वीक्षते
रुद्धायामपि वाचि सस्मितमिद दग्धानन जायते।
कार्कश्य गमितेऽपि चेतसि तनूरोमाचमालम्बते
दृष्टे निर्वहण भविष्यति कथ मानस्य तस्मिञ्जने॥'[1]

अर्थात् भौहे चढाने पर भी (नायक के सामने आने पर) मेरी आखे और भी अधिक उत्कठा के साथ उसे देखने लगती है। बोलना बन्द करने पर यह मेरा अभागा मुख मुस्कराने लगता है। मन को कर्कश कर लेने पर भी शरीर मे रोगटे खडे हो जाते है, अत उस (नायक) के सामने आने पर मेरा मान किस प्रकार निभ सकता है?

इसी घटना का वर्णन विद्यापति की नायिका इस प्रकार करती है —

"दुरहि रहिअ करिअ मन आन
नअन पिआसल हूँटल न मान।
हास सुधारस तसु मुख हेरि
बाँध लेआ बाँध निबी कत बेरि।
कि सखि करब धरब कि गोय
करबि मान जो आइति होय।
धसमस करय रहओ हिय जाँति
सगर सरीर धरब कत भाँति।
गोपहि न पारिअ हृदय उलास
मुनलओ बदन बेकत होअ हास।"

अर्थात् मै दूर ही खडी हो गई और मन भी दूसरी ही ओर ले गई, किन्तु प्यासे नेत्र हठ के कारण नही माने। उसके मुख की सुधारससम हसी को देखकर मेरा नीबी-बन्धन शिथिल हो गया और मैने उसे न जाने कितनी बार कडा किया ? हे सखी, मैं क्या करू, और अपने मन क भाव को किस तरह छिपाऊ ? यदि मुझ अपन ऊपर अधिकार होता तो मैं मान अवश्य करती। छाती पर पत्थर रखन पर भी हृदय कापने लगता है। मै नही जानती कि अपन समस्त शरीर को किस प्रकार स्थिर रक्खू ? हृदय का उल्लास छिपाये नही छिपता, आखे मूदने पर भी हसी प्रकट हो जाती है।

इन दोनो वणनो की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि अमरुक की अपेक्षा विद्यापति का वर्णन अधिक सजीव और विस्तृत है। विद्यापति नायिका की अवस्था के वर्णन से ही सतुष्ट नही होते, बल्कि कारण और अपनाय गये उपाय भी बता देते है। विद्यापति की नायिका म अपेक्षाकृत अधिक भोलापन, विवशता और सरसता है, क्योकि अमरुक की नायिका केवल भ्रूभग ही करती है जबकि विद्यापति की नायिका दूर खडी होकर मन को भी दूर ले जान का प्रयास करती है। अमरुक की नायिका बालती ही नही है। उसका विश्वास है कि न बोलने पर प्रम की गति थोडी देर क लिए रुक जाएगी। विद्यापति की नायिका और भी गहरे पानी पैठती है। वह सोचती है कि केवल चुप रहने से ही काम नही चलेगा, बल्कि उसे देखा ही न जाय, वरना नायक के दर्शनमात्र से ही उसका मन विचलित हो जायेगा और उसका निश्चय ही मान-भग हो जायेगा। विद्यापति की नायिका का आखे मूद लेना नायिका क भोलेपन की सहज अभिव्यक्ति है।

एक अभिसारिका नायिका का उदाहरण देखिए। अमरुक का श्लोक है—

"क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे,
प्राणाधिको वसति यत्र जन प्रियो मे।

एकाकिनी वन कथ न बिभेषि बाले!
नन्वस्ति पुङ्खितशरो मदन सहाय ।"[1]

अभिसारिका अभिसार के लिए जा रही है। उस समय उसकी सखी उससे पूछती है—हे करभोरु! रात के निविड अधकार मे तुम कहा जा रही हो? वह उत्तर देती हैं—जहा प्राणो से भी अधिक प्यारा मेरा प्रेमी है। प्रश्न—तुम अकेली होकर भी डरती नही हो? उत्तर—धनुष पर बाण चढाए हुए कामदेव मेरे साथी है।

यही वर्णन विद्यापति का भी सुनिए—

"निसि निसिअरे भय भीम भुअगम
जलधर बीजुरि उजोर।
तरुन तिमिर निसि तइओ चलसि जासि
बड सखि साहस तोर।
सुन्दरि कओन पुरुख धन जे तोर हरल मन
जसु लोभे चल अभिसार।
आँतर दुतर नदि से कैसे जयबइ तरि
आरति न करिय झाँप।
तोरा अछि पँचसर तें तोरा नहिं डर
मोर हृदय बड काँप।"

सखी की अभिसारिका के प्रति उक्ति है—रात मे निशाचर और भयकर सर्प घूमते हैं। बादलो मे विद्युत् चमक रही है। रात मे निविड अधकार है, तो भी तुम जा रही हो। यह तुम्हारा बहुत बडा साहस है। वह सौभाग्यशाली पुरुष कौन है जिसने तुम्हारा मन हर लिया है और जिसके लिए तुम सकेत-स्थान पर जा रही हो? बीच मे दुस्तर नदिया हैं, उन्हे तुम कैसे पार करोगी? प्रेम मत छिपाओ। कामदेव तुम्हारा सहायक है, इसलिए तुम्हे तो कोई डर नही है, परन्तु मेरा तो हृदय बहुत जोरो से काप रहा है।

अमरुक के श्लोक और विद्यापति के पद मे सबसे सीधा अन्तर तो यह है कि अमरुक वातावरण का इतना भयावह और विस्तृत चित्रण नही कर सके, जितना विद्यापति ने किया है। फलत विद्यापति की नायिका अधिक साहसी और प्रेमपगी बन गई है। दूसरी बात यह है कि विद्यापति के पद की अन्तिम दो पक्तियो मे ध्वन्यार्थ है। सखी के यह कहने से कि तुम्हारा तो कामदेव सहायक है, लेकिन मुझे डर लग रहा है, यह ध्वन्यार्थ निकलता है कि सखी उसे अकेले नायक मिलन का अवसर दे रही है।

गोवर्धनाचार्य—गोवर्धनाचार्य शृगार-रस के सर्व-श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। गीत गोविन्दकार जयदेव ने इनके विषय मे कहा है—

---

१. अमरुकशतक

"श्रृंगारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्य गोवर्धनस्पर्धी कोऽपि न विश्रुत ।"

अर्थात् श्रृ गार-रस की निर्दोष रचना मे कोई भी आचार्य गोवर्धन की समता नही कर सकता। 'आर्यासप्तशती' मे इनका एक श्लोक यह है—

"अगृहीतानुनयां मामुपेक्ष्य सख्यो गता वनैकाहम्।
प्रसभ करोषि मयि चेत्त्वदुपरि वपुरद्य मोक्ष्यामि ॥"[1]

नायिका नायक से कहती है—मैंने मान का त्याग नही किया है, बल्कि सखियाँ मुझे अकेली छोडकर चली गई है। यदि तुम बलात्कार करोगे तो मैं अभी मर जाऊगी। श्लोक से व्यग्यार्थ है—मैं तुम्हारे शरीर पर अपने शरीर को गिरा दूंगी।

विद्यापति का यही वर्णन इस प्रकार है—

"ए हरि बलें जवि परसबि मोय।
तिरि-बध-पातक लागत तोय ॥
तुहु रस-आगर नागर ढीठ।
हम न बुझिअ रस तीत कि मीठ।"

हे हरि ! यदि तुम मुझे बलात् छुओगे तो तुम्हे स्त्री-वध का पाप लगेगा। तुम रसागार, नागर और ढीठ हो और मैं नही जानती कि रस मीठा होता है या तीखा।

इन दोनो वर्णनो की तुलना प० शिवनन्दन ठाकुर के शब्दो मे इस प्रकार है—"आर्यासप्तशती की नायिका आत्महत्या की धमकी देकर बलात्कार करने से रोकती है, किन्तु विद्यापति की नायिका उसकी अनुमति के बिना छूने से भी रोकती है और कहती है कि यदि तुमने मेरा स्पर्श किया तो तुम्हे स्त्री-वध का पाप लगेगा। सीधे आत्महत्या की घुडकी की अपेक्षा स्त्री-वध का भय दिखलाने मे कितनी अधिक सरसता है, यह सहृदय हृदय ही समझ सकता है। इस पर भी वह स्पष्ट शब्दो मे कह देती है—"तुम रस के समुद्र हो, नागरिक हो और प्रौढ हो, इसलिए रस का परिचय देना और अपनी ढिठाई दिखलाना तुम्हारे लिए स्वाभाविक है। मैं तो जानती ही नही कि रस क्या है। इसलिए हत्यापराध लग जाने की धमकी देकर अरसिकता प्रकट करना मेरे लिए स्वाभाविक है। यदि मैं अरसिकता प्रकट करना नही छोडती हू तो फिर तुम अपनी रसिकता क्यो छोडोगे ?" इस व्यग्य अर्थ के द्वारा बलात्कार करने का इशारा करती है। श्लोक के द्वारा अस्वाभाविक अर्थ (मै अपना शरीर तुम्हारे शरीर पर गिरा दूंगी) की कल्पना की अपेक्षा यह व्यग्य अर्थ-रसिक कवियो को कही अधिक मीठा और ताज़ा रस पिलाकर उन्मत्त कर देता है। कोई भी मानिनी अचानक यह नही कह सकती है—"मैं तुम्हारे शरीर पर अपना शरीर गिरा दूंगी।" यह सर्वथा अस्वाभाविक है। इसलिए मेरी समझ मे यहा विद्यापति गोवर्धनाचार्य से कई एक कदम आगे बढ गये है।"[2]

१. आर्यासप्तशती

कालिदास—शृ गार-तिलक के रचयिता कालिदास सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। शृ गार-तिलक मे एक श्लोक इस प्रकार है—

"यामिन्येषा बहुलजलदैर्बद्ध भीमान्धकारा
निद्रां यातो मम पतिरसौ क्लेशित: कर्मदु खै ।
बाला चाह मनसिजभयात् प्राप्तगाढप्रकम्पा
ग्रामश्चोरैरयमुपहत पान्थ निन्द्रा जहीहि ।"[१]

किसी नायिका के घर मे एक पथिक सोया हुआ है। नायिका उससे कह रही है—हे पथिक निद्रा को छोडो क्योकि यह रात है। बादलो के घिर जाने के कारण भयकर अन्धकार है। भाग्यदोष से दुखी होकर मेरे पति सो गये है। मैं बाला हू, कामदेव के भय से मेरा शरीर अत्यन्त काप रहा है और इस गाव मे चोरो का उपद्रव भी है।

यही वर्णन विद्यापति के निम्नलिखित पद मे भी है—

"हम जुवती पति गेलाह बिदेस
लग नहि बसय पड़ोसिया कलेश,
सासु दोसरि किछुओ नहि जान
आँखि रतौंधी सुनय न कान।
जागह पथिक जाह जनु भोर
राति अन्हार गाम बड चोर।
भरमहु भौंरि न देअ कोतबार
काहु क केओ नहि करम विचार।
अधिप न कर अपराधहुँ साति
पुरुख महत सब हमरे जाति।"

अर्थात् मैं युवती हू, पति विदेश चले गये है, पास मे पडौस लेशमात्र भी नहीं है। घर मे केवल सास है जो कुछ नही समझती और जिसे रचौधा भी आता है तथा बहरी भी है। हे पथिक जागो, सवेरे मत जाओ क्योकि रात अधेरी है और यह गाव बडा चोर है। कोतवाल भूलकर भी पहरा नही देता। यहा कोई किसी का ध्यान नही रखता। राजा अपराधियो को दण्ड नही देता। इस गाव के सब महान् पुरुष हमारी ही जाति के हैं।

शृ गार-तिलक में कवि ऐसा वातावरण नही बना पाया, जहा निर्भय होकर केलि-क्रीडा की जा सके, क्योकि नायिका का पति पास ही सोया हुआ है जिसके जाग जाने की आशका से रस की पूर्ण अनुभूति नही हो सकती। विद्यापति ने इस कमी को परखा है और अपने पद मे इसे दूर कर दिया है। इन्होने पति को विदेश भेज दिया, पडोसियो को पास नही फटकने दिया, अधी, बहरी और मूर्ख बताकर सास का भय भी दूर कर

१. शृगार तिलक

दिया तथा कोतवाल के पहरे का डर भी नही रहने दिया। इस प्रकार विद्यापति ने ऐसे वातावरण की सृष्टि कर दी जिसमे रति-क्रिया का नि शक होकर घटो तक आनन्द लूटा जा सकता है। यही नही, बिरादरी का भय भी नही छोडा। इस प्रकार यदि शृ गार-तिलक का वर्णन रसाभास के योग्य है तो विद्यापति का वर्णन पूर्ण रसानुभूति के लिए उपयुक्त है।

एक बात और, शृ गार-तिलक की नायिका 'मनसिजभयात् प्राप्तगाढप्रकम्पा' कहकर लज्जा के आवरण का बिलकुल अनावरण कर देती है जो उसकी नग्न कामाधता और अरसिकता का ही परिचायक है। इसके विपरीत विद्यापति की नायिका 'हम जुवती पति गेलाइ बिदेस' कहकर स्त्रियोचित भाषा मे ही अपने भावो की अभिव्यक्ति करती है और साथ ही पति का विदेश-वास बताकर अपने जीवन की विवशता भी प्रकट कर देती है जो उसके परपुरुष-सहवास के दोष पर एक भीना सा पर्दा डाल देती है। अत यहा विद्यापति का निरीक्षण अधिक व्यापक और सफल है।

जयदेव—उपर्युक्त कवियो की अपेक्षा विद्यापति जयदेव से ही अधिक प्रभावित है। जयदेव के अधिकाश गुण विद्यापति के काव्य मे मिलने के कारण ही ये 'अभिनव जयदेव' की उपाधि से विभूषित किए गये, लेकिन कही कही विद्यापति जयदेव को भी पीछे छोड गये है। जयदेव के विरही नायक की कामदेव के प्रति यह उक्ति है—

"हृदि विसलताहारो नाम भुजगमनायकः
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युति।
मलयजरजो नेद भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्याऽनग क्रुधा किमु धावसि?"[1]

हे कामदेव! यह सर्पराज नही है, अपितु विरह-वेदना से व्याकुल हृदय को शीतल करने के लिए कमल-नाल है। यह विष नही है, गले मे नीले कमल का हार है। यह भस्म नही है, चन्दन की रज है। इसलिए भूल से मुझे शिवजी समझकर मुझपर बाण न चलाओ और क्रोधाभिभूत होकर मेरी ओर मत दौडो।

यही वर्णन विद्यापति के शब्दो मे देखिए—

"कत न वेदन मोहि देसि मदना
हर नहि बला मोहि जुबति-जना।
बिभुत-भूषन नहि चानन क रेनू
बघछाल नहि नेतक बसनू।
नहि मोरा जटाभार चिकुर क बेनी
सुरसरि नहि मोरा कुसुम क सेनी।

---

१. गीतगोविन्द

नहि मोरा कालकूट मृगमद चारू
फनपति नहि मोरा मुकता-हारू।
भनइ विद्यापति सुन देव कामा
एक पय दूखन नाम मोर बामा।"

हे मदन ! तू मुझे दुःख मत दे क्योकि मैं हर नही, युवती हू। यह भस्म नही, चदन की रज है; यह बाघ-छाला नही, मेरी चुनरी है, यह जटा नही, मेरे बालो की गुथी हुई वेणी है, यह गगा नही, मेरे कुसुमो की पक्ति है, यह विष नही, सुवासित कस्तूरी है, यह सर्पराज नही, मेरा मोतियो का हार है। विद्यापति कहते हैं कि युवती ने कामदेव से कहा कि हे काम सुनो ! मेरा अपराध केवल इतना है कि मेरा नाम बामा है (शिवका नाम बामदेव है), इसी समानता पर पहिचानने मे भूल करके तुम मुझे दुःख देते हो।

यहा विद्यापति के शब्दो का प्रयोग अधिक सार्थक और चमत्कारिक है। कामदेव के लिए जयदेव ने 'अनग' शब्द का प्रयोग किया है और विद्यापति ने 'मदन' का। 'अनग' मे शिव के प्रति कामदेव की शत्रुता निहित है। 'मदन' का अर्थ है—प्रसन्न करने वाला, लेकिन दे रहा है वह दुःख। विद्यापति के इस प्रयोग मे यही सार्थकता है। जयदेव ने विरही नायक को खडा किया है और विद्यापति ने काम-वाण से व्याकुल युवती के द्वारा नाम सादृश्य के कारण प्रहार करने वाले काम की अविवेकिता प्रकट कर अपनी रसिकता का परिचय दिया है।

यहा तक तो हुई उन भावो की बात जिन्हे विद्यापति ने दूसरो से ग्रहण करके अपनी प्रतिभा तथा कवित्व शक्ति की निकष पर कसकर और अधिक हृदयग्राही एव चमत्कारिक बना दिया है, लेकिन कही कही विद्यापति ने दूसरे कवियो के भावो को ज्यो का त्यो अपना लिया है और केवल अपने शब्दो मे उन्हे दोहरा दिया है। 'गीतगोविंद' के कुछ उदाहरण देखिए—

१—"रजनि-जनित-गुरु-जागर-राग—
कषायितमलसनिवेशनम्।"— जयदेव
"लोचन अरुन बुझल बड भेद
रअनि उजागर गरुअ निवेद"—विद्यापति

२—"हरि हरि याहि माधव याहि माधव मा वद कैतववादम्
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम्।"
—जयदेव।

"ततह जाइ हरि करह न लाथ
रअनि गमओलह जनिके साथ।"—विद्यापति।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि विद्यापति अपने पूर्ववर्ती कवियो से अत्यत

: ७ :

विद्यापति की रस-योजना

जिसका आस्वादन किया जाए, या जिससे आस्वादन किया जाए, वह रस कहलाता है। इस परिभाषा के अनुसार गुडादि व्यजनो के द्वारा निर्मित अनेक रस होते है जिनका जिह्वा आस्वादन करती है किन्तु काव्य मे वर्णित रस इन रसो से भिन्न होता है क्योकि यह इन्द्रिय का रस न होकर मन का रस है। यह रस अखड, अभेद्य चिन्मय और ब्रह्मानद-सहोदर होता है। काव्य-रस की निष्पत्ति के विषय मे भरतमुनि का यह सूत्र अत्यन्त प्रसिद्ध है—

'विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्ति ।

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारियो के सयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस सूत्र मे 'सयोग' और 'निष्पत्ति' शब्द विवादग्रस्त है जिनका अर्थ परवर्ती आचार्यो ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है।

रसराजत्व

सस्कृत के आचार्यो ने रसो की सख्या नौ मानी है—शृगार, वीर, रौद्र, अद्भुत, वीभत्स, भयानक, हास्य, करुण और शात। परवर्ती आचार्यो ने वत्सल और भक्ति-रस को जोडकर यह सख्या ११ कर ली है। इन रसो के रसराजत्व मे भी विद्वानो का मतैक्य नही है। कविराज विश्वनाथ के पितामह श्री नारायण कृति ने अद्भुत को प्रधान या मूल रस माना है। करुणमूर्ति महाकवि भवभूति करुण रस को ही रसराज मानते हैं और अन्य सभी रसो का उसमे अन्तर्निहित होना बताते हैं—

एको रस करुण एव निमित्तभेदात्।

कुछ आचार्यो ने वीर रस को रसराज सिद्ध किया है, किन्तु अधिकाश आचार्य शृगार रस का ही रसराजत्व स्वीकार करते है। हिन्दी के इन आचार्यों मे केशव प्रमुख है। केशव ने अन्य सभी रसो का शृगार रस मे समावेश करने का प्रयास किया है, यहा तक कि जुगुप्सा और वीभत्स जैसे वर्जित रसो को भी नही छोडा है—

श्री वृषभानुकुमारी हेतु 'शृगार' रूप भय।
वास 'हास' रस हरे, मात-बचन 'करुणामय'।
केशी प्रति अति 'रौद्र', 'वीर' मारो वत्सासुर।
'भय' दावानल पान पियो 'बीभत्स' बकी उर।

अति 'अद्भुत' बच बिरच मनि, 'शांत' सतते शोच चित।
कहि केशव सेवउ रसिकजन, नव रस मे ब्रजराज नित।

इन पक्तियो मे कवि ने कृष्ण के व्यक्तित्व मे नव रसो को एक ही स्थान पर पुजीभूत कर दिया है, अर्थात् 'रसिक जन' कृष्ण मे शेष आठो रसो की प्रतिष्ठापना कर दी है। यह सत्य है कि केशव अपने इस प्रयोग मे सफल नही हुए है, फिर भी शृगार रस के रसराजत्व के प्रति उनके अथाह मोह की दाद ही देनी चाहिए।

शृगार रस

यदि प्रसार और व्यापकता की दृष्टि से देखा जाए तो शृगार रस सबसे अधिक व्यापक और विस्तृत है। इसकी सीमा मे हृदय की प्राय सभी वृत्तियाँ आ जाती है, जीवन का लगभग सम्पूर्ण विस्तार समा जाता है। जीवन केवल उत्साह, क्रोध, विस्मय, जुगुप्सा, भय, हास, शोक, शम या वात्सल्य ही नही है, बल्कि सुख-दुख का समुचित समन्वय है। केवल सुख को ही जीवन समझने वाले लोगो को 'प्रसाद' की यह चेतावनी याद रखनी चाहिए—

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओ का मूल।
ईश का वह रहस्य वरदान,
कभी मत जाओ इसको भूल।[1]

कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन अपने सुखात्मक और दुखात्मक समन्वय मे ही पूर्ण है। इसमे तनिक भी सदेह नही कि शृ गार रस ही अपने दो पक्षो—सयोग और वियोग—के कारण समग्र जीवन को स्वय मे समोने मे समर्थ है। अन्य रसो मे यह सामर्थ्य कहाँ ? अत शृ गार रस को रसराज मानना उचित है।

शृगार रस की महत्ता के विरुद्ध कुछ आलोचको का यह आक्षेप है कि इसका क्षेत्र अभद्र और अश्लील भी है। यह आक्षेप नया नही। इसका उत्तर देते हुए भरतमुनि ने कहा है कि वस्तुत. शृगार रस सब रसो मे निर्मल और आत्मा को उच्च बनानेवाला है।[2] शारदातनय की शृ गार सम्बन्धी धारणा अत्युच्च है। उनके अनुसार आत्मा का प्रेम ही बाह्य पदार्थो या व्यक्ति के प्रति प्रेम मे प्रकाशित होता है। शृ गार रस मे अभिव्यक्त प्रेम वस्तुत सात्विक कोटि का होता है।[3] स्वय भोज की धारणा भी इसके सम्बन्ध मे

---

१ कामायनी श्रद्धासर्ग

२. नाट्यशास्त्र अध्याय ६

३ या चैशमिच्छा जगता सिसृक्षो परमात्मन ।
विषमाक्ता रति सैव शृगार इति गीयते ।
—भोज शृगार-प्रकाश जिल्द १, भाग २ पृष्ठ ४६२

बहुत उदात्त थी। डा० नगेन्द्र ने भी शृ गार-रस की महत्ता इन शब्दो मे स्वीकार की है—

"शृ गार का अर्थ है कामोद्रेक। उसके आगमन अर्थात् उत्पत्ति का कारण ही शृ गार कहलाता है। उत्तम प्रकृति का ही कामोद्रेक जिसमे शारीरिकता का ही प्राधान्य हो, शृ गार के अन्तर्गत नही आ सकता।"[1]

अभिप्राय यह है कि शृ गार के अन्तर्गत रति के वे ही भाव आयेगे जो रसानुभूति का उद्रेक करते है। जो भाव अश्लील या अभद्र होकर रसानुभूति मे बाधक होगे, वे शृ गार रस नही, शृगार रसाभास कहे जायेगे।

शृगार रस का विवेचन

शृगार रस का स्थायी भाव रति है। प्रारभ मे रति-भाव की सीमा केवल कान्ता विषयक-रति तक ही सीमित थी, किन्तु कालान्तर मे इसका विस्तार होता गया। शनै शनै आचार्यो ने कान्ता विषयक, पुत्र-विषयक, देव-विषयक और राजा-विषयक रति को भी 'रतिभाव' की परिधि मे सम्मिलित कर लिया। निस्सदेह, इन नये आलबनो का ग्रहण हृदय के विकसित, परिष्कृत, सुसस्कृत तथा समुन्नत होने का परिचायक है। अनुराग की कोई सीमा नही हो सकती, इसलिए रति के आलबन भी असख्य हो सकते है। विद्यापति का शृ गार-वर्णन केवल कान्ता-विषयक रति तक ही सीमित है, अत हमे अधिक विस्तार मे जाने की आवश्यकता नही।

शृ गार रस के दो पक्ष होते है—सयोग और वियोग। सयोग मे प्रेमी-युगल साथ साथ रहता है तथा वियोग मे बिछुड जाता है। सयोग पक्ष मे कवि की बहिर्मुखी वृत्ति प्रधान होती है और वियोग मे अन्तर्मुखी। सयोग मे आलबन के रूप, उसकी चेष्टाओ और मिलन-क्रीडाओ के साथ साथ प्रकृति का उद्दीपन रूप मे वर्णन किया जाता है। वियोग मे आलबन की दशाओ का वर्णन होता है। प्रकृति का उद्दीपन रूप इसमे भी आता है, किन्तु प्रयोग मे अन्तर होता है। सयोग मे प्रकृति मिलन-सुख को उद्दीप्त करती है और वियोग मे विरह दुख को। सयोग मे इसका वर्णन षड्ऋतु के रूप मे किया जाता है और वियोग मे बारहमासे के रूप मे। प्रकृति की एक ही अवधि के ये दो भिन्न-भिन्न नामकरण मनोविज्ञान पर आधारित है। षड्ऋतु और बारहमासे मे दूनी अवधि का भेदाभास होता है। इसका मनोवैज्ञानिक अर्थ यही है कि सुख की घडिया देखते-देखते ही बीत जाती है और दुख के दिन काटे नही कटते। कहने की आवश्यकता नही कि विद्यापति की पदावली मे शृ गार-रस के दोनो पक्षो—सयोग और वियोग—का विस्तृत वर्णन है।

---

१ विचार और विवेचन, पृष्ठ ३७

U75/5

सयोग-वर्णन

जैसा कि अभी कह चुके हैं, सयोग-वर्णन के अन्तर्गत आलबन का रूप, उसकी चेष्टाएँ, आलबन और आश्रय की मिलन-क्रीडाएँ तथा प्रकृति का उद्दीपन रूप आता है। विद्यापति की पदावली मे सयोग के इन सभी अगो का इतना सजीव और यथा-तथ्य वर्णन है कि कतिपय आलोचक इनके सयोग वर्णन को वियोग-वर्णन की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट और सफल मानते है, अत इसके प्रत्येक अग पर पृथक् पृथक् विचार करना अनुपयुक्त न होगा।

आलबन का रूप

रूप चित्रण का विश्लेषण करने के लिए आलबन को दो रूपो मे देखना होगा। उसका एक रूप बाह्य है और दूसरा आन्तरिक। बाह्य रूप के अन्तर्गत उसका सौन्दर्य आता है और आन्तरिक रूप के अन्तर्गत उसकी मन स्थिति। इन दोनो रूपो का समन्वित रूप ही रूप का पूर्णरूप है। अत आलबन के रूप-वर्णन मे उसके बाह्य और आन्तरिक दोनो रूपो को देखना चाहिए। इसमे सदेह नही कि विद्यापति के रूप-चित्रण मे इन दोनो रूपो का वर्णन मिलता है।

विद्यापति की पदावली का आलबन राधा है। पदावली मे राधा का दर्शन तब होता है जब वह बचपन के भोले जगत को छोडकर यौवन के मदमाते लोक मे प्रवेश कर रही है। सूर के काव्य की भाँति यहाँ बालिका राधा के लिए कोई स्थान नही है। यहाँ तो वह सिसुता की झलक' छोड बिना ही 'अगो मे यौवन की झलक' लिए हुए है। उसका अगला कदम यौवन-प्रदेश की सीमा पर आ गया है और पिछला अभी पूरी तरह से बाल-सीमा को लाघ नही पाया है। नायिका की इसी अवस्था को 'वय सधि' कहा जाता है। वय सधि मे प्रविष्ट होते ही नायिका के अगो और भावो मे एक अभूतपूर्व परिवर्तन आ जाता है। विद्यापति ने इस बय का वर्णन इस प्रकार किया है—

संसब जौबन दरसन भेल,
दुहु पथ हेरइत मनसिज गेल।
मदन क भाव पहिल परचार,
भिन जन देल भिन अधिकार।
कटि क गौरब पाओल नितम्ब,
एकक खीन अओक अवलम्ब।
प्रकट हास अब गोपत भेल,
उरज प्रकट अब तान्हिक लेल।
चरण चपल गति लोचन पाब,
लोचन क धइरज पदतल जाब।

यौवन की देहरी पर कदम रखते ही शारीरिक अवयवो और मानसिक स्थितियो मे जो महान् तथा स्वाभाविक परिवर्तन आ जाते है, उनका इस पद मे सजीव वर्णन है। कटि पतली और नितम्ब भारी हो गए है, छिपे हुए उरोज तनिक लालिमा लिए प्रकट होने लगे है, चरणो मे धीरता और नयनो मे चचलता आ गई है तथा प्रकट हँसी को अब छिपाने का प्रयास किया जाता है। इनमे कटि, उरोज और नितम्बो के परिवर्तनो को छोडकर शेष सभी परिवर्तनो मे मन स्थिति कार्य कर रही है। जिस प्रकार वय सधि स्वय—बचपन और यौवन का—एक द्वन्द्व है, उसी प्रकार यह वर्णन भी द्वन्द्वात्मक है। कुछ शारीरिक अवयवो पर मन स्थिति का अकुश नही है और कुछ (चरण, लोचन, हास) पर पूर्णरूप से नियन्त्रण है। नायिका की वस्तुत जैसी स्थिति है, इस वर्णन का क्रम भी वैसा ही उलझा हुआ है।

यो तो सस्कृत और हिन्दी के कवियो ने भी वय सधि के वर्णन किए हैं, किन्तु विद्यापति के वर्णन की-सी प्रभावोत्पादकता और काव्यत्व का उनमे अभाव है। उदाहरणार्थ, काव्यप्रकाश का यह वर्णन देखिए—

'श्रोणी वन्धस्त्यजति तनुता सेवते मध्यभागः।
पद्भ्या मुक्तास्तरल गतय सश्रिता लोचनाभ्याम्॥
वक्ष प्राप्त कुचसचिवतामद्वितीयन्तु वक्त्रम्।
तद् गात्राणा गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन॥'[1]

इसमे शारीरिक परिवर्तनो का तो वर्णन है, किन्तु कामदेव राजा की कल्पना के अभाव मे नायिका की मानसिक हलचल और परवशता का अभाव है। इसीलिए यह अपेक्षाकृत कम प्रभावशाली है।

बिहारी ने राजा कामदेव की कल्पना तो की है, परन्तु नायिका की मन स्थिति के वर्णन का उनमे भी अभाव है—

'अपने अँग के जानि कै जोवन-नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितब को बडो इजाफो कीन॥'[2]

यदि काव्यप्रकाशकार और बिहारी इन दोनो के वर्णनो को एक साथ मिला भी दिया जाए, तो भी विद्यापति की समता नही कर पाते। यही है विद्यापति की काव्य-प्रतिभा की महत्ता!

वय सधि के पश्चात् तो बचपन का सारल्य बिलकुल तिरोहित हो जाता है और शरीर पर यौवन का पूर्णरूप से अधिकार हो जाता है। शरीर के समस्त अवयव सौन्दर्य की अनुपम कूँची से निखार पाकर दमक उठते है। उस समय नायिका रूप-यौवन की छलकती हुई गगरी बन जाती है। विद्यापति ने इस अवस्था के रूप-वर्णन मे

---

१ काव्य-प्रकाश
२ बिहारी रत्नाकर पृष्ठ ४

प्राचीन परम्परा का ही अनुसरण किया है और इसका विशद चित्रण 'नखशिख' शीर्षक के अन्तर्गत किया है। डा० रामरतन भटनागर के शब्दो मे—

"इस नखशिख के लेखन मे उन्होने (विद्यापति ने) प्राचीन कवियो के काव्य से पद-पद पर सहारा लिया है और नारी के अगो के सम्बन्ध में प्रचलित सभी काव्य-रूढ़ियों को आत्मसात् कर लिया है।"[1]

विद्यापति की नायिका अनुपम सुदरी है। सौन्दर्य के सभी उपमान उस मे ____र एक स्थान पर ही पुंजीभूत हो गए है—

> कि आरे ! नब जौवन अभिरामा।
> जत देखल तत कहए न पारिअ,
> छओ अनुपम एक ठामा।
> हरिन इन्दु अरबिन्द करिनि हेम,
> पिक बूझल अनुमानी।
> नयन बदन परिमल गति तन रुचि,
> अओ अति सुललित बानी।
> कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल
> ता अरुझायल हारा।
> जनि सुमेरु ऊपर मिलि उगल,
> चाद बिहिनु सब तारा।
> लोल कपोल ललित मनि कुडल,
> अधर बिम्ब अध जाई।
> भौंह भ्रमर नासापुट सुदर,
> से देखि कीर लजाई।

इस वर्णन मे कवि ने परपरागत उपमानो के द्वारा नायिका के रूप का चित्रण किया है। हरिण, चन्द्रमा, कमल, हस्तिनी, सोना और कोकिल के द्वारा नायिका के नेत्रो का सौन्दर्य, मुख-सुषमा, शरीर की सुगन्धि, मस्तानी चाल, देह की काति और वाणी की मधुरता व्यजित है।

रूप-वर्णन मे नायिका के शरीर का कोई भी अग ऐसा नही बचा जिस पर महाकवि विद्यापति की दृष्टि न पहुँची हो, वरन् एक ही अग के सौन्दर्य-वर्णन के लिए भाँति-भाँति के उपमान सजाए गए है। ऐसा प्रतीत होता है कि नायिका का अपूर्व सौन्दर्य देखकर कवि की सौन्दर्य-भावना सहस्र धाराओ मे फूट पडती है। एक ही अग का विविध उपमानो से वर्णन करने के पश्चात् भी कवि की सौन्दर्यानुभूति तृप्त होती दिखाई नही देती। जिस प्रकार घनानद की 'मौन पुकार' मे उसकी अन्तर्वेदना की

१ विद्यापति, पृ० ६७

सबल अभिव्यक्ति निहित है, इसी प्रकार विद्यापति की इस अतृप्ति मे नायिका का अगाध और अनिद्य सौदर्य-सागर हिलोरे ले रहा है। इस प्रसग मे श्री नरेन्द्रदास का यह मन्तव्य अत्यन्त सार्थक है—

"राधा के भुवन मोहन लावण्यता के एक से एक सुन्दर पद विद्यापति ने लिखे हैं जिनमे उनकी सुन्दरता अक्षर-अक्षर पर निखर रही है। कहाँ तक कहा जाए, राधा का अलौकिक रूप-लावण्य कवि के लिए पहेली बन गया है। इस पहेली को समझाने को कवि ने अनेको प्रकार की कल्पना की है।"

आलबन के एक ही अवयव के सौन्दर्य-वर्णन के लिए विद्यापति ने भिन्न-भिन्न उपमानो का प्रयोग किया है। उन्हे सक्षिप्त विधि से इस प्रकार देखा जा सकता है—

मुख के लिए—

चन्द्रमा, शशि, निशाकर, कलकहीन चन्द्र, कमल, कनक, मुकुर आदि।

अधर के लिए—

बिम्बफल, प्रबाल, मधुरिफुल, राग, विद्रुम-पल्लव आदि।

दाँतो के लिए—

दाडिम बिजु, मुक्ता कुन्द, गजमोति-पाति, मणि आदि।

वेणी के लिए—

राहु, फणि, भृग, शैवाल, चमरी, तम, यमुना, जलधर आदि।

नेत्रो के लिए—

हरिण, सारग, चकोर, कुरगिनी, नलिनि, सफरि, मधुकर, भृगि, खजन, जोति, भृग, मदनधनु, कमल, नवजलधर, कुवलय आदि।

कुन्तलों के लिए—

सारग, भ्रमर, जलधर, तिमिर, चामर आदि।

शरीर की कमनीयता के लिए—

कनकलता, तडित दण्ड, हेम मजरी, विद्युत् रेखा, द्रोणलता आदि।

नासिका के लिए—

कीर, तिलकुल, गरुड-चचु आदि।

भौंहों के लिए—

लता, धनु, भ्रमर, भुजगिनी, अर्द्धचन्द्र, कमान, मदन चाप आदि।

स्तनो के लिए—

कमल, चकोर, श्रीफल, तालमुग, हेमकलश, गिरि, उलटा हुआ कनक-कटोरा, कमल कोरक, घट, दाडिम, शभु, कचनगिरि, बदरि, नवरग, बडा नीबू, कनक महेश, सुमेरु, कुभ, हेमनलिन आदि।

लोमलतावलि के लिए—

शैवाल, कज्जल, मन्मथ-धनु, भुजगिणी आदि।

जघा के लिए—

कनक कदलि, कदली, करिवर कर, विपरीत कनक कदली आदि।

गति के लिए—

गजराज, राजहस, हस्तिनी आदि।

त्रिबली के लिए—

तरग लीला, लता, यमुना-तरग आदि।

पद-तल के लिए—

अबल अरुण, स्थल पकज, पल्लवराज आदि।

बाहुओ के लिए—

कनक मृणाल, हेम कमल मिहिर, पकज आदि।

नाभि के लिए—

सरोवर, सरोरुह दल, विवर आदि।

इन विविध उपमानो के प्रयोग मे यह निष्कर्ष अनायास ही निकल आता है कि विद्यापति की सौन्दर्य-पिपासा असाधारण है जो विभिन्न उपमान-कूपो का शीतल जल-पान करने के बाद भी ज्यो की त्यो दिखाई देती है। हाँ, इस प्रकार कवि ने उसे बुझाने का प्रयत्न अवश्य किया है। डा० रामरतन भटनागर का यह यथन उचित ही है—

"विद्यापति ऐन्द्रिय और अतीन्द्रिय प्रेम एव सौन्दर्य का कवि है। वह उपमानों और अलकारो के बिना चित्र सजा सकता है, परन्तु उसे सौन्दर्य से अत्यन्त प्रेम है, अत अनेक प्रकार से उसे पुष्ट करता है।"[1]

जिस मनुष्य का मन जिस बात मे रमा रहता है, वह उसके लिए अनेकानेक अवसर खोजा करता है। विद्यापति की सौन्दर्य-भावना भी ऐसे अवसरो को या तो ढूंढ निकालती है, या उनका निर्माण कर लेती है। वय सधि और नखशिख के अतिरिक्त पूवराग और अभिसार क प्रसगो मे भी रूप-चित्रण बहुलता से मिलते है। अभिसार-प्रसग के ये वर्णन देखिए--

'चानन आनि आनि अँग लेयब,
भूषन　　कए　　गजमोति।
अजन　　बिहुन　　लोचन-जुगल,
धरत　　धवल　　जोति॥'

×　　×　　×

---

1 विद्यापति पृष्ठ ८३

'देह-जोति ससि-किरन समाइति
के बिभिताबए पार ।'

इन पदो मे शुक्लाभिसारिका नायिका के रूप का वर्णन है। उसकी काजल-विहीन स्वच्छ आँखो मे ज्योत्स्ना की-सी धवलता है और शरीर की काति तो चादनी मे घुलकर ऐसी मिल जाती है कि किसी प्रकार पृथक् ही नही हो सकती।

नायिका के अतिरिक्त विद्यापति ने नायक के रूप का भी वर्णन किया है। काली-कलूटी लैला मे सौन्दर्य का अमित सागर देखनेवाली मजनूं की-सी आँखे तो सबको सुलभ नही होती, अतः प्रेम की परिपक्वता के लिए दोनो ओर सौन्दर्य की छलछलाहट आवश्यक है। विद्यापति की नायिका—राधा—यदि सर्वसुन्दरी है तो नायक—कृष्ण—भी सुन्दरता मे अपना उपमान नही रखते। राधा जितनी लावण्यमयी है, कृष्ण भी उतने ही सौन्दर्यागार है। यही सौन्दर्य तो प्रेम-नाटक की भूमिका का सर्वप्रथम और सर्व-प्रमुख आधार है। नायिका अपनी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का बर्णन इन शब्दो मे करती है—

ए सखि ! पेखलि एक अवरूप,
सुनइत मानबि सपन सरूप ।
कमल जुगल पर चाँद क माल,
तापर उपजल तरुन तमाल ।
तापर बेढल बिजुरिलता,
कालिदी-तट धीरे चल जता ।
सखा-सिखर सुधारस पाति,
ताहि नव पल्लव अरुनक भाति ।
बिमल बिम्बफल जुगल बिकास,
तापर कीर थीर करु बास ।
तापर चचल खजन जोर,
तापर सापिनी झाँपल मोर ।

इस वर्णन के पढने से ज्ञात होता है कि विद्यापति की सौन्दर्य-भावना नायिका-नायक दोनो के लिए समान है। समानता की समतल धरा पर ही तो प्रेम का पौधा पल्लवित और पुष्पित होता है, विद्यापति इस रहस्य से अभिज्ञ थे, तभी तो इन्होने नायक के सौन्दर्य का शृगार भी उन्ही उपमानो से किया है, जो नायिका के लिए प्रयुक्त हुए है। और ऐसे रूप-राशि कृष्ण को देखकर राधा का ज्ञान लुप्त हो जाना स्वाभाविक ही है।

आलंबन की चेष्टाए

चेष्टाओ का सामान्य अर्थ है सकेत। यो तो किसी भी सकेत को चेष्टा कहा जा

सकता है, किन्तु साहित्य मे इसका प्रयोग सामान्य अर्थ मे नहीं विशेष अर्थ मे होता है। काव्य मे चेष्टाए केवल वे ही सकेत कहे जाते हैं जिनके द्वारा नायक-नायिका अपनी मन:-स्थिति की अभिव्यजना करते हैं। प्रेम की भाषा की प्रभावोत्पादकता वाणी मे नही, चेष्टाओ मे ही निहित है। हमारी तो धारणा यह है कि वाणी के माध्यम से व्यक्त प्रेम हलका और फीका पड जाता है।

ज्योहि नायक-नायिका बचपन को पूर्णरूप से छोडे बिना ही यौवन मे उतरते है, उनमे अभूतपूर्व परिवर्तन आ जाते है। वय सधि मे शारीरिक परिवर्तनो के अतिरिक्त मानसिक परिवर्तन भी आ जाते है। एक ओर बचपन की सहज सरलता का पुलिन होता है तो दूसरी ओर यौवन का तरगित प्रवाह। नायिका इन दोनो के बीच मे फँसकर डग-मगाने लगती है। उस समय उसकी दशा भवरो मे पडी उस नाव की-सी होती है जो कभी पुलिन की ओर बह चलती है तो कभी धारा के प्रवाह की ओर। नायिका का जीवन दो विरोधी भावधाराओ के सघर्ष का युद्धस्थल बन जाता है। विचारो और क्रिया-कलापो के इन्ही वैविध्यो का वर्णन विद्यापति ने इस प्रकार किया है—

खने-खन नयन कोन अनुसरई,
खने खन बसन धूलि तनु भरई।
खने खन दसन-छटा छुट हास,
खने खन अधर आगे गहु बास।
चउकि चलए खने खन चलु मन्द,
मनमथ पाठ पहिल अनुबन्ध।
हिरदय मुकुल हेरि-हेरि थोर,
खने आँचर दए खने होए भोर।

इन पक्तियो मे विविध चेष्टाओ के माध्यम से नायिका की उन अस्त-व्यस्त क्रियाओ का सजीव चित्रण है जो मन्मथ की पहली ही भूमिका मे वह प्रारभ कर देती है। क्षण-क्षण मे कटाक्ष करना, अचल को धूल मे गिरा देना, मुस्कुराना और फिर हँसी को वस्त्र से छिपा लेना, कभी चौंक कर चलना और कभी मद गति से चलना आदि अनेक चेष्टाए इस पद मे पुजीभूत हैं।

प्रेम-प्रसग मे भी नायिका की चेष्टाओ के वर्णन हैं। राधा कृष्ण से मिली और अनेक प्रकार की उत्तेजक चेष्टाए करके चली गई—आधे अचल को खिसकाकर, मुस्कुराकर, तीखा कटाक्ष करके, अधखुले उरोजो को दिखाकर—वह चली गई और बाद मे कृष्ण को कामाग्नि मे जलने के लिए छोड गई—

आध आँचर खसि आध बदन हसि,
आधहि नयन तरग।

आध उरज हेरि आध आंचर भरि,
तबधरि दगधे अनग ।

मिलन-क्रीड़ाए

मिलन (सभोग) सयोग की वह अन्तिम सीमा है जिस तक पहुचने के लिए नायक-नायिकाओ को जितने सुखद-मधुर कल्पनाओ से रगे हुए, मजुल सपनो से सजे हुए, आवेग-उद्वेगो से भरे हुए तथा दुखद-बधनो के तीक्ष्ण कटको से परिपूर्ण, कसकती आहो से दोलायमान, सिसकती श्वासो से स्पदित प्रदेश पार करने पडते है, प्रथम दर्शन-जन्य प्रेमाकुर को पुष्पित और फलित वृक्ष बनने के लिए समीरण के जितने चुबन और झझावात के जितने विषम प्रहार अपेक्षित है, उन सभी का विद्यापति ने पूर्ण मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । विद्यापति के मिलन-चित्र अत्यत स्वाभाविक हैं ।

मिलन से पूर्व भय और लज्जा का नायिका मे आधिक्य होता है । वह प्रियतम के पास जाने मे भय भी खाती है और लजाती भी है । उसके पैर शयन-कक्ष की ओर नहीं उठते । तब उसकी सखिया ही उसे वहा तक पहुचाती है । राधा की सखिया भी उसे मधुर भत्सना देती हैं—

सुन्दरि चललिहु पहु-घर ना ।
चहुदिस सखि सब कर धर ना ॥

सखियो के इस आग्रह का राधा पर एक ही उत्तर है—

अहे सखि अहे सखि लए जनि जाह ।
हम अति बालिक आकुल नाह ॥

इस उत्तर मे कितनी स्वाभाविकता और विवशता है । एक ओर प्रियतम की कठोर मिलनोत्कठा है और दूसरी ओर नायिका के हृदय का बचपन जैसा भोलापन । दोनो का मिलन असगत ही है और इनके मिलाने का दुराग्रह हृदय की हृदय-हीनता ही है । लेकिन सखियो के लिए यह अनुनय-विनय कोई नई बात नही । यह तो अभोग्या युवती की शाश्वत प्रार्थना है । वे राधा को कृष्ण के पास छोड ही आती हैं ।

शयन कक्ष की एकातता मे काम-पीडित नायक को देखकर नायिका का जीवन एक बार तो डोल ही जाता है । वह अन्य उपाय न देखकर अपने ही वस्त्रो मे स्वय को छिपाने का उपक्रम नही, प्रयास करती है, पर मन का भय तो प्रयासमात्र से दूर नहीं होता । उसकी प्रतिक्रिया होती है कम्पन—

आंचर लेइ बदन पर झांप ।
थिर नहि होइअ थर-थर कांप ॥

पर प्रियतम को सतोष कहा ? वह तो चन्द्र मुख का अवलोकन निर्निमेष दृष्टि से कर लेना चाहता है और लज्जावती नायिका उस पर बार-बार आवरण डालने का प्रयत्न करती है जिसका परिणाम होता है कि नायक नायिका को गोद मे भर लेता है—

मुख हेरि ताकए भमर झाँपि लेल ।
अकम भरि कँ कमलमुखि लेल ।।

शैया के निकट आकर सब उपायो को असफल देखकर अपनी लाज पर आवरण डालने के लिए नारी का पैर की अगुलियो से धरती को कुरेदना नारी हृदय का यथातथ्य चित्रण है—

जतने आएलि धनि सयन क सीम ।
पागुर लिखि खिति नत रहु गीम ।।

कहने का अभिप्राय यह है कि सयोगावस्था के जितने चित्र हो सकते हैं वे सब पदावली मे भली-भाति मिल जाते है, किन्तु कही-कही वे अधिक स्थूल, मासल और अश्लील भी हो गए हैं । यथा—

निबि-बधन हरि किए कर दूर,
एहो पए तोहर मनोरथ पूर ।
हेरने कम्रोन सुख न बुझ बिचारि,
बड़ तुहु ढीठ बुझल बनमारि ।
हमर सपथ जौं हेरइ मुरारि,
लहु लहु तब हम पारब गारि ।

कतिपय आलोचक ऐसे पदो पर अलौकिकता का आवरण डालकर उनकी अश्लीलता को आच्छादन करने का प्रयास करते है, पर झीने पर्दे की रुकावट ही क्या होती है, और फिर ऐसे पदो पर पर्दा पड भी कैसे सकता है । काव्य मे यथार्थ अथवा भावना के नाम पर भी शालीनता का उल्लघन सहज नही हो सकता ।

प्रकृति का उद्दीपन

अनादि काल से ही मानव की भावनाओ का प्रकृति से अटूट सबध रहा है । मानव ने प्रकृति मे सदैव ही अपने मनोविकारो की छाया देखी है, अत प्रकृति उसकी भावनाओ के उद्दीपन का साधन है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सयोग मे प्रकृति मिलनेच्छा तथा वासनाओ को उद्दीप्त करती है और वियोग मे दुख की दारुणता की वृद्धि करती है । पदावली मे प्रकृति का दोनो अवस्थाओ मे ही प्रयोग किया गया है ।

अवधि की सीमा के अनुसार सयोग मे प्रकृति का वर्णन षड्ऋतु के अन्तर्गत किया जाता है, किन्तु विद्यापति ने केवल बसन्त ऋतु को ही चुना है, सभवत इसलिए कि बसत ऋतुराज होने के साथ-साथ कामोद्दीपन का प्रमुखतम कारण भी है । बसत मे जब सुवासित मलयानिल मंद-मद बहता है और भौरे अपनी गुजारो से स्पदित वातावरण के जीवन मे गहरी मादकता घोल देते हैं, तब कुसुमसायक अपने अस्त्र-शस्त्रो से सज्जित होकर निकल ही पडता है । उद्दीपन रूप मे विद्यापति का यह वर्णन देखिए—

"मलय पवन बह। भसत विजय कह॥
भमर करइ रोर। परिमल नहि ग्रोर॥
रितुपति रग देला। हृदय रभस भेला॥
ग्रनग मगल मेलि। कामिनी करथु केलि॥"

ऐसे वातावरण मे स्त्रियो में कोई भेद नही रहता। चाहे जिस स्वभाव की हो, चाहे जिस वग की हो, एक ही वारि (काम-वासना) मे डूबने लगती हैं—

"हस्तिनि, चित्रिनि, पदुमिनि नारि।
गोरी सामरी एक बूढ़ि बारि॥"

निष्कर्ष यह है कि विद्यापति का सयोग-वर्णन ग्रत्यन्त उत्कृष्ट ग्रौर सजीव है। ग्रालबन के ग्रगाध सौन्दर्य-सागर के साथ-साथ उनकी ग्रन्तर्वृत्तियो का भी स्वाभाविक चित्रण है। प्रेम के ग्रकुरित होने से सयोगावस्था की जितनी भी दशाए होती है, वे सब इनके पदो मे उपलब्ध हैं। प्रकृति का उद्दीपन रूप केवल बाह्य वातावरण का ही शृगार नहीं, ग्रन्तर्वृत्तियो का उद्दीपक भी है। श्री रामवाशिष्ठ के शब्दो मे—

"विद्यापति ने ग्रपनी सूक्ष्मान्वेषी दृष्टि के द्वारा सयोग-पक्ष मे भी ग्रान्तरिक भावों के साथ ही बाह्य चेष्टाग्रों का सहयोग करके ग्रपने काव्य को ग्रमर बना दिया है।"[१]

वियोग-वर्णन

सयोग-सुख मे डूबते-उतराते प्रेमी-प्रेमिकाग्रो का प्रेम जब शिथिल होने लगता है, तब उसे नवजीवन प्रदान करने के लिए वियोग ग्रपेक्षित है। प्रेम-जगत् मे विरह की सत्ता सनातन है। भिन्न-भिन्न मनीषियो ने भिन्न-भिन्न शब्दावलियो को ग्रहण करते हुए भी प्रेम-लोक मे विरह की महानता को स्वीकार किया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ का मन्तव्य है—

"न विना विप्रलम्भेन संयोग सुखमऽश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् राग प्रवर्त्तते॥"[२]

ग्रर्थात् जिस प्रकार बिना पुट दिए वस्त्र पर रग नही चढता, उसी प्रकार विरह के बिना सयोग सुख की प्राप्ति नही होती।

एक ग्रन्य विद्वान् का कथन है—

"सगम विरह विकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्या।
सङ्गे सैव यदेका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥"

ग्रर्थात् सयोग-वियोग की तुलना मे सयोग की ग्रपेक्षा विरह ही ग्रधिक श्रेष्ठ है,

---

१. गीतिकार विद्यापति, पृष्ठ १५५
२ साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३

क्योकि सयोग मे जो प्रेमिका अकेली होती है, विरह मे त्रिभुवन उसी प्रेमिका के रूप मे परिणत हो जाता है।

कविकुल गुरु कालिदास का मत है कि वियोगावस्था मे प्रेम का भोग न होने से वह राशीभूत हो जाता है—

"स्नेहानाहु: किमपि विरहे ध्वंसिनस्तेत्वयोगा—
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशी भवन्ति ॥"[1]

इन सभी मन्तव्यो से यही परिणाम निकलता है कि वियोग प्रेम के लिए वह सुधा-रस है जो उसे विशद, व्यापक, अजर और अमर बना देता है।

पाश्चात्य विद्वानो ने भी विप्रलभ शृगार की महत्ता लगभग इन्ही अर्थों मे स्वीकार की है। करुणप्रतिमा शेले का कहना है कि करुणतम कहानी की अभिव्यक्ति ही मधुरतम गीत हैं। इस प्रकार पौर्वात्य और पाश्चात्य सभी विद्वानो ने विरह की महानता को अंगीकार किया है। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी कहते हैं—

"वस्तुतः वियोग प्रेम के विस्तार के लिए बहुत बड़ा अवकाश निकाल लेता है। प्रेमी संयोगावस्था में चाहे वृक्षों और लताओं से प्रेम-निवेदन या प्रेम-कथन न करे, पर वियोगावस्था में जड़ पदार्थों से भी अपना प्रेम कहता फिरता है, उनसे भी मार्ग पूछता है।"[2]

वियोग ही मे मानव जड-चेतना का भेद-भाव भूलकर 'सर्वमय' बन जाता है। इससे अधिक व्यक्तित्व की व्यापकता और विशदता क्या हो सकती है?

चार प्रकार

विप्रलभ शृगार के चार प्रकार माने गये हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। प्रिय का सयोग होने से पूर्व उसके गुण-श्रवण, दर्शनादि के कारण उससे मिलने की जो अभिलाषा होती है उसकी अपूर्ति के कारण जो तडप या वेदना होती है, वही पूर्वराग है। अभिलाषा का प्राधान्य होने से इसे 'अभिलाष-हेतुक' भी कहा गया है। सयोग के पश्चात प्रेम की स्वाभाविक वृत्ति अथवा ईर्ष्या के कारण नायक-नायिका की पारस्परिक रुष्टता मान कहलाता है। मान का अपर नाम 'ईर्ष्या-हेतुक' भी है। पति के कार्यवश या किसी शाप-वश विदेश-वास को प्रवास कहते हैं। मृत्यु के पश्चात् भी जहां मिलने की आशा रहती है, वहा करुण होता है।

यदि इन चारो प्रकारो की तुलना की जाए तो प्रवास विप्रलभ ही सबसे श्रेष्ठ सिद्ध होता है, क्योकि पूर्वराग मे उत्कट अभिलाषामात्र होने से वेदना के विस्तार का अधिक अवकाश नही होता; मान का क्षेत्र और भी अधिक सकुचित होता है, क्योकि

१. मेघदूत, उत्तर भाग, पृष्ठ ४६
२. बिहारी, पृष्ठ १४२

मान मे केवल वाणी का ही नियन्त्रण होता है, वैसे प्रेमी-प्रेमिका दूर नही होते। मौन उमगो की झटपटाहट वेदना का अधिक आकार नही बन पाती। करुण विप्रलभ दैवी-व्यापारो पर आधृत है। अत प्रवास ही ऐसा प्रकार है जिसमे वियोग की समस्त सामग्री का उपयोग करके वेदना के विस्तार को मनचाहा बढ़ाया जा सकता है।

तीनों प्रकार

विद्यापति की पदावली मे करुण के अतिरिक्त अन्य तीनो प्रकार के विप्रलभ शृगार के वर्णन मिलते हैं। पूर्वराग मे नायिका स्वप्न मे देखे गये कृष्ण-सौन्दर्य द्वारा अपने ठगे जाने की बात कहती है—

"ए सखि पेखलि एक अपरूप।
सुनइत मानबि सपन सरूप॥
× × ×
ए सखि रंगिनि कहल निसान।
हेरइत पुनि मोर हरल गिआन॥"

मान का वर्णन भी पर्याप्त है। राधा रूठ गई है। कृष्ण उसके बिरह मे दुखी हैं। राधा की सखिया राधा से कृष्ण के विरह-दुख का वर्णन करती हुई कहती हैं—

"बिरह ब्याकुल वकुल तरुतर,
पेखल नन्दकुमार रे।
नील नीरज नयन सयँ सखि,
ढरइ नीर अपार रे।
पेखि मलयज-पङ्क मृगमद,
तामरस घनसार रे।
निज पानी-पल्लव मूँदि लोचन,
धरनि पड असभार रे।"

तो राधा के विरह-दुख से कृष्ण को भी अवगत करती हैं—

"मधुकर डर धनि चम्पक-तरु तल,
लोचन जल भरिपूर।
सामर चिकुर हेरि मुकुट पटकल,
टूटि भए गेल सत चूर।
तुअ गुन-गाम कहए सुक पडित,
सुनतहि उठल रोसाइ।
पिंजर झटकि-फटकि पर पटकत,
धाए धएल तहि आइ।"

विद्यापति का विरह उभयपक्षी है। इसमे दोनो ओर आग लगी हुई है। पतग के साथ दीपक भी जलता है। नायक और नायिका दोनो मान भी करते हैं और तज्जन्य दुख से दुखी भी होते हैं। जिस प्रकार सम-प्रेम विषम-प्रेम की अपेक्षा अधिक गहन और बधन मुक्त होता है, उसी प्रकार सम-विरह भी अधिक प्रभावपूर्ण होता है। यही विद्यापति के शृगाररस-वर्णन की एक प्रमुख विशेषता है।

विद्यापति का प्रवास-विप्रलभ-वर्णन अपेक्षाकृत अधिक मार्मिक है। कृष्ण विदेश जा रहे हैं। राधा को जब इस समाचार का पता चलता है तो वह उन्हे रोकना तो चाहती है पर लज्जावश स्वय नही कह पाती। वह अपनी सखी से सिफारिश करती है—

"सखि हे बालम जितब विदेस।
हम कुलकामिनि कहइत अनुचित
तोहहु दे हुनि उपदेस।
ई न विदेसक बेलि॥"

इससे भी उसे सन्तोष नही होता। "कुलकामिनि" के बधनो को तोडकर वह स्वयं ही कृष्ण से कह बैठती है—

"माधव ! तोहे जनु जाइ बिदेस।
हमरो रंग रभस लए जएबह,
लएबह कोन सँदेस॥"

कृष्ण के साथ ही उसके आमोद-प्रमोद चले जायेगे, यह तो ठीक है, पर राधा को इससे भी अधिक चिन्ता यह है कि वे विदेश जाकर उसे भूल जाएगे तथा और किसी अन्य के हो जाएगे—

"बनहि गमन करु होएति दोसर मति,
बिसरि जाएब पति मोरा।"

रमणी के शकालु हृदय की कितनी यथार्थ अभिव्यक्ति है! रूप-गुण से परिपूर्ण पति के विषय मे ऐसी आशका होना अत्यत ही स्वाभाविक है। पर एक दिन कृष्ण उसे सोती छोडकर चले ही गये। चकवा का जोडा बिछुड ही गया—

"एक सयन सखि सूतल रे,
आछल बालम निसि मोर।
न जानल कति खन तेजि गेल रे,
बिछुरल चकेबा जोर।"

एक ही पलग पर से अपनी प्रिया को सोती छोडकर चुपचाप उठकर चला जाने वाला प्रिय न जाने उसके कितने स्वर्णिम सपनो को मसल जाता है। उसकी सबसे बडी वेदना का मूल कारण तो यही होता है कि वह जाते समय प्रिय से कुछ कह भी न

सकी। कम से कम उससे लौटने की अवधि तो रखवा ही लेती और आशा के सबल पर उस अवधि को काटती, भले ही उसे तिल-तिल करके गलना पडता। राधा का विरह-दुख उद्दीप्त हो उठा। सर्वप्रथम उसकी दृष्टि रूप-यौवन से भरपूर अपने शरीर की ओर गई। बिना प्रिय के अब उसका मूल्य ही क्या रह गया था—

"सरसिज बिनु सर, सर बिनु सरसिज
की सरसिज बिनु सूरे।
जौबन बिनु तन, तन बिनु जौबन
की जौबन पिय दूरे।"

कुछ आलोचको की दृष्टि मे राधा का यह कथन अच्छा नही है। उन्हें इसमे काम-वासना की गध आती है। आदर्श के पखो पर चढ़कर चाहे कितना ही गगन-बिहारी बन लिया जाय, किन्तु यथार्थ के धरातल पर खडे होकर राधा का यह कथन अनुचित नही कहा जा सकता। इसमे विरहिणी युवती के हृदय का अनावृत चित्रण है। उसका यह समझना कि उसका रूप-यौवन भी उसके प्रिय के वशीभूत होने का एक प्रमुख कारण है, गलत नही है। यौवन की सार्थकता भी तो यही है। प्रिय के बिना वह है ही कितनी कौडी का। यौवन के बीतने पर यदि प्रिय से मिलन भी हुआ तो क्या लाभ ? बहार बीत जाने पर यदि 'गुलशन मे बुलबुल का तराना' अनसुना कर दिया जाए तो क्या आश्चर्य ? राधा इसी भाव-भूमि पर खडी होकर सोचती है—

"अकुर तपन-ताप जदि जारब
कि करब बारिद मेहे।
ई नब जौबन बिरह गमाएब
कि करब से पिआ-नेहे।"

इन्ही बातो को सोचकर राधा का हृदय फूट पडता है, उसकी विरहाग्नि मे घृताहुति पड जाती है। कभी-कभी स्वप्न मे मिलन हो जाता था, पर नीद भी ऐसी गई कि फिर आई ही नही। विधाता को यह स्वप्न-मिलन भी न रुचा। अब तो सिवाय अवधि के दिन गिनने के राधा के पास और कुछ चारा ही न रह गया—

"सखि मोर पिया।
अबहु न आओल कुलिस-हिया।
नखर खोआओलुं दिबस लिखि-लिखि।
नयन अधाओलुं पिया - पथ देखि।"

राधा के इन शब्दो मे कितनी मार्मिकता है, अपनी विवश एव दयनीय दशा का कितना मर्मस्पर्शी चित्रण है ! प्रियागमन की अवधि को गिनते-गिनते नाखून घिस गए, प्रिय-पथ को देखते-देखते आखें ज्योति-शून्य हो गईं, पर वह निष्ठुर नही लौटा। 'कुलिस-हिया' मे अपनत्व की कैसी अभूतपूर्व भावना है।

विरह के समय सयोग की बीती बातो का स्मरण स्वाभाविक ही है। राधा को भी वे दिन याद आ ही गए जब कृष्ण उसके अपरिपक्व यौवन के पकने की प्रतीक्षा मे थे। जब उनकी प्रतीक्षा पूर्ण हुई तो वे छोडकर चले गये। यही स्मृति राधा को झिकझोर देती है—

"आस क लता अगाओल सजनी
नयन क नीर पराय।
से फल अब तरुनत भेल सजनी
आँचर तर न समाय।"

विरहिणी का हृदय अत्यन्त शकालु हो जाता है। कभी वह प्रिय की गति-विधियो पर ननु-नच करती है तो कभी स्वय मे गलती खोजने लगती है। ठीक यही दशा राधा की भी है। उसे शका है कि कही उसका रूप-यौवन तो क्षीण नही हो गया जिससे उसमे प्रिय को बाधने की शक्ति ही न रह गई हो और वे ठुकराकर चले गये—

"जौबन रूप अछल दिन चारि।
से देखि आदर कएल मुरारि।।"

और अब—

"धनिक क आदर सब तहँ होय।
निरधन बापुर पुछय न कोय।"

प्रिय चाहे कितना ही निष्ठुर क्यो न हो, प्रिया की सद्भावनाए सदैव उसके साथ रहती है। उसकी मधुरतम साध यही होती है कि वे जहा भी रहे, कुशल रहे। यही प्रेम की महत्ता है जो दुत्कारे जाने पर भी प्रतिकार की भावना से दूर रहता है। निरादृत युवतियो का अपने प्रेमियो की जवानियो की खैर मनाना केवल वाणी का ही व्यापार नही, निष्कपट और भाव-भरे हृदय की सच्ची पुकार होती है। राधा भी अपने प्रिय की कुशल-कामना करती हुई कहती है—

"माधव हमर रहल दुर देस।
केओ न कहइ सखि कुसल-सनेस।
युग-युग जीबथु बसथु लाख कोस।
हमर अभाग हुनक नहि दोस।
हमर करम भेल बिहि बिपरीत।
तेजलनि माधव पुरुबिल पिरीत।"

विद्यापति की राधा को केवल काम-पुत्तलिका समझने वालो के लिए यह करारा जवाब है।

प्रकृति का उद्दीपन रूप

प्रकृति विरहिणी के साथ कभी सहानुभूति नही दिखाती। वह अपने रूप

परिवर्तित करके उसकी वेदना को उद्दीप्त करती रहती है। राधा के साथ भी यही हुआ। भादो का महीना आया। आकाश पर घुमड-घुमडकर घन मडराने लगे। राधा का विरह उसके कोमलहृ दय को कचौंटने लगा—

"सखि हें हमर दुख क नहि ओर।
ई भर बादर माह भादर सून मन्दिर मोर।"

यही नही, प्रिय-विहीन शून्य मदिर मे मेढक और डाहुक के शब्दो से उसको भारी आघात पहुचता है। सावन के महीने मे जब समस्त वसुधरा जल से भरकर उन्मत्त हो उठती है तब विरहिणी राधा अपने सूनेपन को याद करके फूट पडती है—

"पचसर-सर छुटत रे कइसे
जीअए विरहिन नारि ?"

और माधव मास ! यह तो विरहिणियो का चिरिपरिचित रिपु ही है। प्रकृति अपने वैभव से पूरी तरह सजकर मदोन्मत्त हो नृत्य करने लगती है। इस वातावरण को घायल हृदय कैसे सह सकता है ?

राधा को दुख केवल इतना है कि ऐसा वातावरण देखकर भी वह जीवित है—

"ई सुख समय सहए एत सकट
अबला कठिन पराने रे।"

इसी प्रकार एक के बाद दूसरा, बारह महीने आते और चले जाते हैं। राधा का विरह दिन दूना और रात चौगुना होता रहता है। अन्त मे, उसकी दशा का वर्णन देखिए—

"सरदक ससधर मुखरुचि सोपलक
हरिन के लोचन-लीला।
केसपास लए चमरि के सोपलक
पाए मनोभव पीला।
माधव ! जानल न जीवति राही।"

जिसने अपने मुख की काति शारदीय चन्द्रमा को सौप दी हो, नेत्रो की चचलता हरिणो को दे दी हो, केश-विन्यास चमरी गाय को अर्पित कर दिया हो, उसके जीवित रहने की क्या आशा हो सकती है ? ऐसा ही भाव कालिदास के मेघदूत मे भी है—

"आशाबन्ध कुसुम सदृश प्रायशोऽह्यङ्गनानाम्।
सद्यः पाति प्रणमि हृदय विप्रभोगे रुणद्धि॥"

अब तो राधा राधा नही रह गई। अपना अस्तित्व वह कृष्ण मे समाविष्ट करके कृष्णमय ही बन गई है—

"अनुखन माधब माधब सुमरइत
सुन्दरि भेल मधाई।

श्रो निज भाव सुभावहि बिसरल
अपने गुन लुबुधाई ।"

यही प्रेम-साधना की चरम सीमा है जहा प्रिया और प्रियतम का भेद सर्वथा तिरोहित हो जाता है, वे तदाकार बन जाते हैं। वही भोली राधा जो स्त्रियोचित विश्वास का अचल पकडकर प्रियागम का सदेश लाने वाले काग को कनक कटोर मे खीर देने का वचन देती है—

"काक भाख निज भाषह रे
पिग्र आग्रोत मोरा ।
क्षीर खीर भोजन देब रे
भरि कनक कटोरा ।"

अन्त मे स्वय ही प्रियतम बन गई। यही प्रेम-पथ की वह सीमा है जहा से आगे कोई राह ही नही रहती ।

कही-कही विद्यापति ने विरह-वर्णन मे ऊहात्मक पद्धति को भी अपनाया है । यथा—

"नील नलिनि लए जब कर बाए,
हृदय रहए भय उडि जनु जाए ।"

नीले कमल से राधा को शीतलता प्रदान करने के लिए हवा करती हुई सखियो को भय है कि कही वह हवा से उड न जाए, परन्तु जब राधा दर्पण मे अपना मुख देखकर और उसे चन्द्रमा समझकर उसकी तपन से सज्ञा-शून्य हो ही जाती है तो बेचारी सखिया क्या करे—

"मनिमय मुकुर देखि पुनि निज मुख
चान भरम मुरझाय ।"

लेकिन इस प्रकार के वर्णन बहुत कम है। इस पद्धति के लिए विद्यापति की मर्मज्ञता को चुनौती नही दी जा सकती, क्योकि सस्कृत की यह एक लम्बी परम्परा है जिसमे विद्यापति भी यदा-कदा बह गए हैं। ऐसे कुछ स्थलो को छोडकर विद्यापति का विरह-वर्णन सर्वत्र सहज, स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक, प्रभावपूर्ण और कवित्वमय है।

दस अवस्थाए

भारतीय काव्यशास्त्र मे विरह की दस अवस्थाए मानी गई है—स्मरण, गुण-कथन, अभिलाषा, मूर्च्छा व्याधि, उद्वेग, प्रलाप, जडता, उन्माद और मरण। विद्यापति ने अपने विरह-वणन मे इन दसो अवस्थाग्रो का वर्णन अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है। यथा—

स्मृति—

"मोहन मधुपुर बास रे, हमहुँ जायब तनि पास रे।
भल लनि कुबजा के नेह रे, तजलनि हमरो सनेह रे ॥"

गुण-कथन—

"पहिले पिया मोर सुख मुख हेरि हेरि तिलयक छोड़लन अङ्ग।
अपरुब प्रेम-पास तनु गाथल, अब तेजल मोर सङ्ग।"

अभिलाषा—

"कत दिन पिय मोर पुछब बात, कबहु पयोधर देहब हाथ।
कत दिन लेइ बैठाइब कोर, कत दिन मनोरथ पूरन मोर।"

मूर्च्छा—

"सो रामा हे! सो किय बिछुरन जाय,
कर धरि माथुर अनुमति मागलि ततहि पडलि मुरछाय।
नहि बहे नयन क नीर,
मुरछि पडे तरु-तीर ?"

व्याधि--

"कि कहब सुन्दरि तोहर कहिनी
कहहि न पारिअ देखल जहिनी
अनिल अनल समल मलअज बोख
जे छल सीतल से भेला तीख
चाँद सतावय सविताहु जीनि
नहि जीवन एकमत भेला तीनि
किछु उपचार न माधब आन
एही बेआधि अधिक पचबान ॥"

उद्वेग—

"सजनी के कह आओब मधाई।
बिरह पयोधि पार किए पाओब
मझु मन नहि पति आई।
एखन-तखन करि दिवस गमाओल
छोड लूं जीवन आसा।
बरस बरस कर समय गमाओल
खोयलूं कानुक आसा।"

प्रलाप—

"पिय यदि तेजल सौलह सिंगार सब
यमुन सलिल सब डार रे।
सीस के सेंदुर सजनी दुर करु
पिय बिन सकल निसार रे।"

उन्माद—

"अनुखन माधब माधब सुमरत
सुन्दरि भेलि मधाई।"

मरण—

"मधुपुर गेल भगवान रे।
तुन बिन त्यागब प्रान रे।"

विद्यापति का विरह-वर्णन उभयपक्षी है। राधा कृष्ण के वियोग मे दुखी है तो कृष्ण राधा के। राधा के विरह का समाचार सुनकर वे एकदम मूर्च्छित हो जाते हैं। वे सदेश देते हैं—

"दुइ एक दिबस निचय हम जाओब
तुहु परबोध बिराई।"

और इस सदेश के पश्चात् ही वे अपना दु ख दूती को सुनाने लग जाते हैं—

"तिल एक सयन ओत जिउ न सहए
न रहए दुहु तनु भीन।
माझे पुलक गिर अन्तर मानिए
अइसन रह निसि-दीन।"

विद्यापति का उभयपक्षी विरह-वर्णन हिन्दी-साहित्य मे अपनी ही एक प्रमुख विशेषता है। विरह के पदो के कारण ही ये वैष्णव-भक्तो से समादृत हुए और उन्हीं के कारण इनका इतना महत्त्व बढा। डा० रामरतन भटनागर विद्यापति के विरह-वर्णन की उत्कृष्टता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

"विद्यापति सयोग शृगार मे जहा अत्यन्त उत्कृष्ट कवि के रूप मे आते हैं, वहा विप्रलभ शृगार मे उससे भी अधिक बढ़े हैं यही वे स्थल है जिनके कारण विद्यापति वैष्णव-कवियो को ग्राह्य हुए, नहीं तो उनके सयोग-शृगार की गर्हित भावनाओं ने उन्हे सदा के लिए लांछित कर दिया था।"[1]

विद्यापति के विरह-वर्णन मे सभी अपेक्षित विशेषताए उपलब्ध होती है। राधा की मनोभावनाओ का चित्रण अत्यन्त सहज, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। पाडित्य

१. विद्यापति, पृष्ठ ३९

प्रदर्शन के मोह मे कही-कही ऊहात्मक वर्णन तथा दृष्टिकूट अवश्य आ गए हैं, पर इनकी सख्या अधिक नही। विरहिणी की जितनी भी अन्तर्दशाए और भाव हो सकते हैं, वे सभी इनके विरह-वर्णन मे मिल जाते हैं। शास्त्रीय निकष पर भी इनका विरह-वर्णन खरा ही उतरता है।

तुलना

विद्यापति के अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य मे और दो महाकवि हैं जो अपने वियोग-वर्णन के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। एक है जायसी, और दूसरे हैं सूरदास। अत इनके साथ विद्यापति की तुलना अनिवार्य ही प्रतीत होती है।

जायसी

जायसी का 'नागमती का विरह-वर्णन' हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है। विद्यापति की राधा और जायसी की नागमती दोनो ही स्वकीया हैं और अपने प्रियतमो के प्रेम मे विभोर है। विरह मे दोनो ही सूख गई हैं। यदि राधा कातरदृष्टि से चारो ओर देख-देखकर अश्रुपात करती रहती है और विरह मे अपने तन को क्षीण बना रही है—

"कातर विठि करि चौदिसि हेरि हेरि
नैन गरए जलधारा।
तोहर बिरह दिन छन-छन तनु छिन
चौदसि चाद समान।"

तो नागमती के शरीर का रक्त भी विरहाग्नि मे जला है—

"रकत न रहा बिरह तन जरा।
रती रती होइ नैनन्ह ढरा।"[1]

यही नहीं, उसके सब हाड किकरी और सभी नसे तात बन गई है। जायसी के इस वर्णन मे अत्युक्ति तो है, पर भाव की गम्भीरता का हनन नही। इस प्रकार के वर्णनो का कारण यह है कि जायसी फारस-पद्धति से प्रभावित थे और विद्यापति भारतीय पद्धति के आराधक थे।

नागमती और राधा दोनो के हृदयो का विस्तार हुआ है। मानव-समाज के अतिरिक्त उनकी दृष्टि पक्षी-वर्ग पर भी गई है। नागमती कौआ और भौंरा के द्वारा अपने विरह का सदेश अपने प्रियतम तक पहुचाना चाहती है—

"पिउ सो कहउ सदेसडा हे भौंरा हे काग।
उहि धनि बिरहै जरि मुई तेहिक धुआ हम लाग।"[2]

---

१ जायसी-ग्रथावली, पृष्ठ ३५६

२ जायसी-ग्रथावली, पृष्ठ ३८८

राधा कौए के द्वारा अपने प्रियतम का सदेश प्राप्त करना चाहती है—

"काक भाख निज भाषह रे
पिय आओत मोरा।
क्षीर खीर भोजन देब रे
भरि कनक कटोरा।"

पक्षी वर्ग से काम लेने के दोनो के प्रयोजन भिन्न-भिन्न हैं। नागमती सदेश भेजना चाहती है और राधा प्राप्त करना। यदि नागमती के शब्दो मे विरह-व्यथा का अथाह सागर समाहित है तो राधा के वचनो मे भोले नारी-हृदय का विश्वास बोल रहा है। दोनो के पति अन्य नारियो के चगुल मे हैं। नागमती पद्मावती से परिचित है और राधा कुब्जा से। ये समान परिस्थितिया भी दोनो के मनोभावो पर समान ही प्रभाव डालती हैं। नागमती पद्मावती के लिए केवल इतना-सा सदेश भेजना चाहती है कि तुम दूसरे के पति को बाहुपाश मे बाधे हुए हो, और राधा केवल इतना कि हे कुब्जा ! तुम दूसरे के धन से धनवती बनी हुई हो। इन दोनो सदेशो से नागमती और राधा के सयम का पता चलता है। ऐसी परिस्थितियो मे नारी का सयम साधारण बात नही है।

प्रकृति का उद्दीपन रूप मे दोनो कवियो ने वर्णन किया है। अषाढ की वर्षा मे नागमनी और राधा दोनो दुखी है। नागमती कहती है—

'पुष्य नखत सिर ऊपर आवा
हौं बिनु नाह मदिर को छावा॥'[1]

तो अकेली राधा को अपने शून्य मदिर मे डर लगता है—

"सखि हे हमर दुखक नहि ओर।
ई भर बादर माह भादर
सून मदिर मोर॥"

इन दोनो वर्णनो की तुलना करने पर कहा जा सकता है कि नागमती के शब्दो मे सलज्जा विरहिणी का हृदय बोल रहा है। वह अपने विरह की बात न कहकर मदिर के छाने की बात कहती है और राधा प्रत्यक्ष अपने विरह का निवेदन करती है। अत. यहा नागमती के शब्दो मे अधिक प्रभाव है। वैसे भी, 'मदिर छावा' कहकर जायसी ने नागमती को एक सामान्य नारी के रूप मे जिस भाव-भूमि पर लाकर खडा कर दिया है, विद्यापती इस मर्म को न पहचान सके। यही कारण है कि नागमती का विरह विशद है और राधा का एकागी। राधा अपने ही व्यक्तित्व मे सिमटी हुई है, नागमती की भाति उसकी दृष्टि मे लोक-पक्ष नही।

बारहमासा का वर्णन दोनो ही कवियो ने एक ही प्रयोजन से किया है, किन्तु प्रकृति के साथ मानवीय भावनाओ का तादात्म्य जायसी अधिक सफलता से कर

१ जायसी-ग्रथावली, पृष्ठ ३४३

सके है । उदाहरणार्थ फाल्गुन मास का वर्णन देखिए—

जायसी—

"फागुन पवन झकोरा बहा।
चौगुन सीउ जाइ नहि सहा॥
तन जस पियर पात भा मोरा।
तेहि पर बिरह देहि झकझोरा॥"[1]

विद्यापति—

**"फागुन मास धनि जीब उचाट॥
बिरह-बिखिन भेल हेरश्रो बाट॥
श्रायल मत्त पिक पचम गाब।
से सुनि कामिनी जीबहु सताब॥"**

इन दोनो वर्णनो के तुलनात्मक अध्ययन से यह परिणाम निकलता है कि जायसी का वर्णन अधिक प्रभावशाली है। फागुन के महीने मे पत्ते पीले हो जाते हैं और तनिक-सा आघात लगने से ही झड पडते हैं। यदि उस पत्ते को झिकझोरा जाए तो उसकी क्या अवस्था होगी ? यही कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। ठीक ऐसी ही दशा नागमती की है। शरीर तो पहले ही पीला पडा हुआ है, इस पर विरह के ज़बर-दस्त धक्के। प्रकृति के माध्यम से जायसी ने विरहिणी की दशा का कितना सफल और प्रभावोत्पादक वर्णन किया है !

अब विद्यापति का वर्णन देखिए। राधा कहती है कि फागुन का महीना नवयुवतियो के प्राणो मे उचाट भरने वाला होता है। मै विरह से क्षीण होकर प्रिय की राह देख रही हू। मत्त कोयल पचम स्वर मे गा रही है जिसे सुनकर कामिनियो के जीवन सकट मे पड गए है।

यह वर्णन बिलकुल सीधा है। कवि सारी बाते स्वय कह गया है। पाठक को सोचने की आवश्यकता नही। अत इस वर्णन मे प्रभावोत्पादकता नही। लेकिन इसका यह तात्पर्य नही कि विद्यापति सर्वत्र ही असफल रहे है। एक मुक्तककार के नाते तो यह पद भी सफल ही कहा जा सकता है, क्योकि अपने सीमित क्षेत्र मे विद्यापति इतने सक्षिप्त रूप मे इससे अधिक कह भी क्या सकते थे। हा, महाकाव्यकार जायसी की तुलना मे अवश्य हलके पड गए है। श्री रामवाशिष्ठ का यह कथन सही है —

"विद्यापति मुक्तक रचना के कारण अपनी भावनाओ को उतनी व्यापकता नही दे सके जितनी कि जायसी दे सके। इसलिए यह कहना ही अधिक उचित होगा कि जायसी ने नागमती की वेदना को एक विस्तृत और व्यापक क्षेत्र मे देखा, किन्तु

---

१. जायसी-ग्रथावली, पृष्ठ ३५०

विद्यापति ने मुक्तक के कलेवर मे ही राधा के हृदय-सागर से अनेकों रत्न खोज निकाले।"[1]

तथापि अपने अपने क्षेत्रो मे दोनो कवि सफल हैं।

सूरदास—

विद्यापति और सूर दोनो ने ही राधा-कृष्ण का विरह-वर्णन किया है और दोनो ही मुक्तककार हैं। लेकिन अपने सीमित क्षेत्र मे भी सूर ने विरह की जिस व्यापकता का प्रदर्शन किया है, विद्यापति मे उसका अभाव है। विद्यापति की दृष्टि केवल विरहिणी राधा तक ही आबद्ध रही है, जबकि सूर ने समूचे ब्रज को उसमे डुबो दिया है।

सूर ने वात्सल्य को भी विरह के अन्तर्गत लिया है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर नन्द और यशोदा अत्यन्त दुखी हो जाते है। नन्द यशोदा के सिर पर दोषारोपण करते हैं तो यशोदा नन्द के। इन दम्पत्तियो के शब्दो मे अत्यन्त सरलता के साथ सूर ने इनके हृदयो की मार्मिक व्यथा का सजीव चित्रण कर दिया है। यशोदा नन्द से कहती है—

"छाँडि सनेह चले मथुरा कत दौरि न चीर गह्यौ।
फाटि न गई बज्र की छाती कत यह सूल सह्यौ।"[2]

तो नन्द भी इसी प्रकार का उत्तर देते हैं—

"तब तू मारिवोही करति।
रिसनि आगे कहै जो आवत, अब लै भांडे भरति।
रोस कै करि दाँवरी लै फिरति घर घर धरति।
कठिन हिय करि तब जो बाँध्यो अब वृथा करि परति॥"[3]

दम्पत्ति के इन सम्वादो मे पुत्र-वियोग का असह्य दुख मुखरित हो उठा है।

सूर ने ब्रज के कुज, कुटीर, कछार और यमुना तट आदि सभी को अपने विरह मे स्थान दिया है। कृष्ण के बिना सम्पूर्ण ब्रज सूना दिखाई देता है और काट खाने को दौड़ता है। जिन कुजो मे कृष्ण रास लीला किया करते थे, वे भयावने लगते है और यमुना तो कृष्ण-विरह के दुख मे जलकर काली ही पड गई है। गौए पागल-सी हो इधर-उधर दौडती है और बार-बार उन्ही स्थानो पर आकर खडी हो जाती हैं जहा कृष्ण उन्हें दुहा करते थे। उनके वत्सो की भी यही दशा है। इस प्रकार सूर ने अपने विरह-वर्णन को अधिक व्यापक और प्रभावशाली बना दिया है।

विद्यापति ने अपना वर्णन राधा तक ही सीमित रक्खा है। बहुत हुआ तो यह कह दिया—

---

१. गीतिकार विद्यापति, पृष्ठ ७८
२. सूरसागर, दशम स्कध, पृष्ठ ११७१
३. सूरसागर, दशम स्कध, पृष्ठ १३३२

"हरि मथुरापुर गेल आज गोकुल सून भेल।
रोदति पिंजर सुके धेनु धाइब मथुरा मुखे।
अब सोइ जमुना कूले गोप-गोपी नहि बूले।"

लेकिन ये ही वर्णन सूर की भावधारा मे मिलकर अत्यधिक सजीव और प्रभावपूर्ण बन गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति ने केवल विरह की व्यापकता दिखाने के लिए ही इन पक्तियो को गढ दिया, हृदय ने उन्हें कोई सहयोग नही दिया।

प्रकृति का दोनो कवियो ने उद्दीपन रूप मे वर्णन किया है। आकाश मे उमडते और फटते बादलो को देखकर विरहिणी की व्यथा असीम हो जाती है। विद्यापति की राधा कहती है—

"झपि घन गरजति सतत
भुवन भरि बरसतिया।
कन्त पाहुन काम दारुन
सघन खर सर हतिया॥
कुलिस कत सत पात मुदित
मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक
फाटि जायत छातिया॥"

सूर की विरहिणी भी इस परिस्थिति मे व्याकुल हो उठती है—

"देखियत चहुँ दिसि ते घन घोरे।
मानो मत्त मदन के हथियन बल करि बन्धन तोरे।
कारे तन अति चुवत गड मद बरसत थोरे-थोरे।
रुकत न पवन महावत हू पै मुरत न अकुस मोरे।"[1]

वर्षा के समान ही विद्यापति की विरहिणी के नेत्र हैं—

"बिपत अपत तरु पाओल रे पुन नव-नव पात।
बिरहिन नयन बिह्ल बिहि रे अबिरल बरसात।
सखि अन्तर बिरहानल रे नित बाढ़ल जाय।
बिनु हरि लख उपचारहु रे हिय दुख न मिटाय॥"

विद्यापति की राधा कहती है कि विधि ने विरहिणी के नेत्रों को अविरल बरसने के लिए ही बनाया है, किन्तु सूर की विरहिणी पर तो सदा पावस ऋतु बनी रहती है—

१. सूरसागर, दशम स्कध, पृष्ठ १३८०

"निसदिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहत पावस ऋतु हम पर जब ते स्याम सिधारे ।"[1]

और यदि ऐसे नयनो से घन हार जाये तो आश्चर्य ही क्या ? बिना ऋतु बरसने वालो से ऋतु मे बरसने वाला घन कैसे समानता कर सकता है ? नि सन्देह, सूर ने प्रकृति के माध्यम से जिन भावो का सृजन किया है, वे विद्यापति के काव्य मे अप्राप्य है। सूर के हृदय से जो धारा बह निकलती है, विद्यापति का हृदय उससे अनजान है ।

विद्यापति और सूर दोनो ने कृष्ण के विरह का भी वर्णन किया है। विद्यापति के कृष्ण दूती से अपनी व्यथा कहते हैं—

"कठिन कलेवर तेइँ चलि आओल
चित्त रहलि सोइ ठामा ।
से बिनु राति दिबस नहि भावए
ताहि रहल मन लागी ।
आन रमनि सयँ राज सम्पद माय
आछिए जइसे बिरागी ।।"

ता सूर के कृष्ण उद्धव को अपनी वेदना सुनाते है—

"ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाही ।
हससुता की सुन्दर कगरी और कुजन की छाही ।
ग्वाल बाल सब करत कोलाहल नाचत गहि गहि बाहीं ।।"[1]

बाते दोनो कवियो की एक ही हैं, परन्तु सूर के वर्णन मे सजीवता अपेक्षाकृत अधिक है ।

सूर और विद्यापति दोनो ही सफल महाकवि है । उन्होने वियोग की सम्पूर्ण अवस्थाओ को अपने काव्य मे चित्रित किया । दोनो ने ही हृदय की अनेक दशाओ को देखा, भावो की गहराई को बडे मनोवैज्ञानिक ढग से अभिव्यक्त किया, वेदना की कसक को विरहिणी के शब्द-शब्द से निसृत किया, किन्तु सूर का क्षेत्र व्यापक होने के कारण तथा पुष्टिमार्गी भक्ति के प्रचारक होने के कारण उन्होने विरह की मर्म-व्यथा को अधिक सामान्य भावभूमि पर लाकर परखा। विद्यापति ने अपनी सीमित परिधि मे रहकर भी मानवीय भावनाओ की अशेष और सहज अभिव्यक्ति की ।

अत कहा जा सकता है कि शास्त्रीय दृष्टि से भी, मनोवैज्ञानिक निकष से भी और काव्यात्मकता की कसौटी से भी विद्यापति का विरह-वर्णन साग तथा सफल है ।

●

१. सूरसागर, दशम स्कध, पृष्ठ १६४४

६

विद्यापति का मुक्तक काव्य

विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से श्रव्य काव्य के दो भेद किए जा सकते है—प्रबध और मुक्तक। प्रबधकाव्य मे विषय की समग्रता होती है, उसके खड-चित्र कथा के तन्तुओ से आबद्ध होकर परस्पर सबद्ध होते है, इसीलिए उसमे नीरस स्थलो के खप जाने की भी गुँजायश होती है। मुक्तक काव्य मे विषय के किसी एक खड का चित्रण होता है जो अपने मे स्वत पूर्ण होता है। कथा का अभाव होने के कारण यहा नीरस स्थलो के खप जाने की गुंजायश नही होती।

अत मुक्तककार को ऐसे पदो अथवा श्लोको की रचना करनी पडती है जो अपने अर्थ मे स्वत पूर्ण भी होते है और चमत्कार-विधायक भी। इसीलिए अग्निपुराण मे मुक्तक की परिभाषा इस प्रकार की गई है—

"मुक्तक श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षम सताम्।"[1]

अभिनवगुप्ताचार्य ने मुक्तक की व्याख्या इन शब्दो मे की है—

"मुक्तकमन्येनालिगितम्। तस्य सज्ञाया कन। पूर्वापरनिरपेक्षणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्।"[2]

अर्थात् मुक्तक वह रचना है जो परस्पर निरपेक्ष होते हुए भी रसास्वादन मे समर्थ हो। सफल मुक्तककार वही है जिसके निरपेक्ष पद का श्लोक मे भी प्रबध का-सा रस-सागर प्रवाहमान हो। ध्वन्यालोककार आनद वर्द्धनाचार्य ने मुक्तककार की इसी विशेषता की ओर इगित करते हुए लिखा है—

"मुक्तकेषु हि प्रबधेषु इव रसबधाभिनिवेशिन कवयो दृश्यन्ते। यथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तका श्रृगाररसस्यन्दिन प्रबधायमानाः प्रसिद्धा एव।"[3]

अर्थात् मुक्तक काव्यो मे कवि कूट-कूटकर रस भर देते है। उदाहरणार्थ अमरुक कवि के श्लोक प्रस्तुत किए जा सकते है जिनमे श्रृगार रस टपक-सा रहा है और जिसका प्रत्येक श्लोक प्रबधकाव्य है।

मुक्तक काव्य मे रस की अनिवार्यता भारतीय ही नही, पाश्चात्य विद्वानो को

---

१ अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, पृष्ठ ३१

२ ध्वन्यालोक की लोचन टीका ३।७

३ ध्वन्यालोक, उद्योत ३, कारिका ७

भी मान्य है। अर्नेस्ट राइस के अनुसार सफल मुक्तक वही है जिसमे भाव या भावात्मक विचार का भाषा मे स्वाभाविक स्पष्टीकरण हो। अर्नेस्ट राइस के इन शब्दो मे रस की परोक्ष अभिव्यक्ति है।

मुक्तक और प्रगीति

हिन्दी के कुछ आलोचक मुक्तक और प्रगीत काव्य मे कोई भेद नही मानते। एक आलोचक का कथन है—

"मुक्तक या प्रगीत काव्य मे व्यक्तिगत अनुभूति की प्रधानता रहती है, अतः गीतिकाव्य की रचना उसी समय होती है जिस समय भाव घनीभूत होकर आवेश के साथ काव्योचित भाषा मे अभिव्यक्त किये जाते है। भारतीय साहित्य मे गीतिकाव्य या मुक्तक का कोई अलग विभाजन नही, क्योकि काव्य गेय ही होता है।"

जहाँ तक गेयता का सबध है, आज यह काव्य का अनिवार्य अग नही रह गया है। गीतिकाव्य और मुक्तक काव्य के मध्य गहरी विभाजक रेखा खीचते हुए श्री रामखेलावन पाण्डेय का कथन है—

"वस्तुत गीतिकाव्य और मुक्तक काव्य मे भारी अन्तर है। गीतिकाव्य अनुभूति की अन्विति उपस्थित करना है, ऐसी अवस्था मे उसके पद्य अपने ही अन्य पद्यो की आकाक्षा अवश्य रखते हैं। मुक्तक छद की इकाई मात्र उपस्थित करते हैं।"[१]

इसके अतिरिक्त भी इनमे कुछ भेद ये है—

१ गीतिकव्य मे गेयता अनिवार्य है, मुक्तक मे अनिवार्य नही।

२ गीतिकाव्य मे भाव या पक्तियो की पुनरावृति होती है, या हो सकती है। मुक्तक काव्य मे ऐसा कोई विधान नही है।

३ गीतिकाव्य मे एक ही भाव कई ढगो से दोहराया जाता है, या दोहरा सकते है। मुक्तक काव्य मे इसके लिए स्थान नही।

एक बात और, सरस और नीरस नाम से मुक्तक के दो भेद किए जाते है। नीरस वर्ग के अन्तर्गत केवल चमत्कारविधायिनी और नीतिबद्ध उक्तियाँ आती है। बिहारी की सतसई मे भी ऐसी उक्तियाँ यत्र तत्र मिल जाती है। रहीम और वृन्द तो कविता के माध्यम से नीतिशास्त्र का भी बखान करते है, पर ऐसी सभी उक्तियाँ काव्य नही कही जा सकती। काव्य की परिधि मे वे ही उक्तियाँ आयेगी जो रसोद्रेक मे समर्थ होगी अन्यथा उन्हे सूक्ति ही कहा जायगा। सूक्तियाँ किसी रस या भाव की व्यजना का उद्रेक नही करती, वे केवल चमत्कारविधायिका होती है। इसीलिए मुक्तक का सरस होना आवश्यक है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्दो मे—

१. गीतिकाव्य, पृष्ठ ६

"मुक्तको मे मर्मस्पर्शी वृत्तो का चुनाव इतना साफ होना चाहिए कि पाठक उस तक शीघ्र पहुँच सके और यह चुनाव भी सामान्य जीवन-क्षेत्र से ही होना चाहिए जिससे उसमे सबको अनुरजित करने की क्षमता हो। जिन मुक्तको मे प्रसग के आक्षेप मे कठिनाई पडती है और जिसके लिए नाना प्रकार के अवतरणो का आक्षेप सभाव्य है, उन्हे मुक्तको की दृष्टि से उतना उत्तम नहीं कहा जा सकता।"[1]

मुक्तक की परिभाषा

इन सभी विशेषताओ को दृष्टि मे रखकर मुक्तक की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—

मुक्तक वह काव्यरूप है जो निरपेक्ष और स्वय मे परिपूर्ण हो, जिसमे रसोद्रेक की क्षमता हो तथा जो अपने सामान्य प्रसगो के द्वारा शीघ्र ही पाठको को अनुरजित कर सके।

अब देखना यह है कि विद्यापति का मुक्तककारो मे क्या स्थान है। विद्यापति का जो महत्त्व आज हिन्दी-साहित्य मे है, अपनी पदावली के ही कारण है, इसमे कोई सन्देह नही। पदावली मुक्तक रचना है।

पूर्ववर्त्ती मुक्तककार

मुक्तक काव्य की परम्परा सस्कृत-साहित्य मे काफी प्राचीन है। अमरुक, गोवर्धनाचार्य, कालिदास, जगन्नाथ और जयदेव आदि विद्वान् सस्कृत के मुक्तक काव्य के देदीप्यमान नक्षत्र माने जाते है। विद्यापति इन्ही विद्वानो से विशेषरूपेण प्रभावित है और इन्ही की सस्कृत-परम्परा को हिन्दी मे विद्यापति लाए भी है। इनसे भाव ग्रहण करके भी विद्यापति ने अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर उन्हे बिलकुल मौलिकता प्रदान की है, बल्कि कही-कही तो वे अपने पूर्ववर्ती इन कवियो से भी कई हाथ आगे बढ गये है। किसी भी महाकवि की यही विशेषता होती है। यदि उपर्युक्त कवियो से विद्यापति की तुलना की जाए तो इनकी इस विशेषता पर मुग्ध होना पडता है।

अमरुक

अमरुक सस्कृत के मुक्तककारो मे अग्रणी है। आनदवर्द्धनाचार्य तो इनके काव्य से इस प्रकार प्रभावित हुए कि उन्होने इनके एक-एक श्लोक को प्रबध काव्य ही मान लिया। इसमे सन्देह नही कि अमरुकशतक मे रस का अथाह सागर तरगित है, किन्तु बहुत स्थल ऐसे है जहाँ विद्यापति अमरुक को काफी पीछे छोड जाते है। उदाहरण के लिए अमरुक का यह श्लोक लीजिए—

"तद्वक्त्राभिमुख मुख विनमित दृष्टि. कृता पादयो—
स्तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोत्रे निरुद्धे मया।

---

१ बिहारी, पुष्ठ १००

पाणिभ्या च तिरस्कृत सपुलकः स्वेदोद्गमो गण्डयो
सख्यः किं करवाणि यान्ति शतधा यत्कञ्चुके सन्धय. ।"[1]

यह उस नायिका की उक्ति है जो मान करने मे असमर्थ है और अपनी विवशता सखियो से कह रही है—हे सखियो ! मै क्या करूँ ? मेरी चोली मे सैकडो छेद हो गये है । मैने अपनी मानरक्षा के लिए क्या कुछ नही किया ? उनकी ओर देखते हुए मैंने अपने मुँह को मोडा, दृष्टि को पैरो की ओर किया, बातचीत सुनने के लिए आकुल कानो को रोका और कपोल पर आये पसीने को हाथो से पोछा ।

इसी भाव का विद्यापति का यह पद है—

"अवनत आनन कय हम रहलिहुँ वारल लोचन चोर ।
पिया मुख-रुचि पिवय धाओल जनि से चाँद चकोर ।।
ततहु सओ हठे हँटि आनल धएल चरन राखि ।
मधुक मातल उडए न पारए तइओ पसारल पाँखि ।।
माधव बोलल मधुरी बानी से सुनि मृदु मोञे कान ।
ताहि अवसर ठाम बाम भेल धरि धनु पचबान ।।
तनु पसेवे पसाहनि भासलि तइसन पुलक जागु ।
चुनि-चुनि भय काँचुअ फाटलि बाहु बलआ भाँगु ।।
भन विद्यापति कम्पित कर हो बोलल बोल न जाय ।"

यदि अमरुक के इस श्लोक और विद्यापति के इस पद की तुलना की जाय तो यह सिद्ध हो जाता है कि विद्यापति मे अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविकता, सरसता और प्रभावोत्पादकता है क्योकि 'अमरुक की नायिका नायक से दृष्टि हटाकर अपने पैर की ओर ले जाती है । विद्यापति ने इसी भाव पर रग चढाकर इसे कैसा सरस बना दिया है ? विद्यापति की नायिका आँखो की चचलता और चोरी से पूर्ण परिचित है । इसीलिए सबसे पहले वह उन्हे रोकती है, किन्तु आँखे रुकती नही है, अत चोरो की तरह उन्हे पकडकर वह चरणरूपी कारागार मे रख देती है, या पकडे जाने पर आँखे पैरो पर गिर पडती है अर्थात् क्षमा के लिए प्रार्थना करती है । अमरुक की नायिका के कान नायक के वचन सुनने के लिए व्याकुल हो रहे है, किन्तु नायिका जबरदस्ती उन्हे रोकती है । विद्यापति की नायिका नायक की बाते सुनना नही चाहती, किन्तु माधव का वचन सुनकर उसके कानो की कर्कशता दूर हो गई, वे मृदु हो गये और वचन सुनने के लिए विवश हो गये । यहाँ मृदु शब्द ने कमाल कर दिया है । अमरुक की नायिका के गाल मे थोडा पसीना हुआ जिसे वह पोछकर छिपा लेती है, किन्तु विद्यापति की नायिका के शरीर मे पसीने की धारा उमड पडी है जिसे वह छिपा नही सकती है । अमरुक की नायिका कहती है कि उसकी चोली के सैकडो टुकडे हो गये, किन्तु विद्यापति की

१ अमरुक शतक

नायिका कहती है कि वह केवल चोली कटने का चुन-चुन शब्द सुन सकी थी कि उसका बाला टूट गया, हाथ काँपने लगे और उसके मुँह से एक भी बात नही निकल सकी। यही कारण है कि अमरुक की नायिका की तरह वह स्पष्ट शब्दो मे यह नही कह सकी कि मै क्या करूँ ? किस तरह मान की रक्षा करूँ ? इस मौनोक्ति मे जो सरसता है वह गला फाड-फाडकर चिल्लाने मे कहाँ ? अमरुक ने नायिका के पसीना होने का कोई कारण नही बतलाया, किन्तु विद्यापति ने धनुष पर पाँच बाणो का सधान कर कामदेव को खडा कर दिया। अबला के सामने धनुष पर पाँच बाण चढाकर यदि कोई वीर खडा हो जाय तो पसीना होना, काँपना आदि स्वाभाविक हे।'

गोवर्धनाचार्य

गीतगोविन्दकार जयदेव ने गोवर्धनाचार्य के काव्य की प्रशसा करते हुए लिखा है कि शृगार रस की निर्दोष रचना मे इनकी कोई भी समता नही कर सकता, किन्तु विद्यापति कही-कही इनको भी पीछे छोड गये है। गोवर्धनाचार्य का एक श्लोक इस इस प्रकार है—

"अगृहीतानुनया मामुपेक्ष्य सख्यो गता बलैकाहम्।
प्रसभ करोषि मयि चेत्त्वदुपरि वपुरद्य मोक्ष्यामि॥"

अर्थात् नायिका नायक से कहती है—मैने मान का त्याग नही किया है, बल्कि सखियाँ मुझे अकेली छोडकर चली गई हे। यदि तुम बलात्कार करोगे तो मैं अभी मर जाऊँगी। यहाँ श्लेष से 'मै तुम्हारे शरीर पर अपने को गिराऊँगी' का व्यग्यार्थ बलात्कार की ओर सकेत है।

इसी भाव को विद्यापति ने इन शब्दो मे व्यक्त किया है—

"ए हरि बले जदि परसबि मोय,
तिरिबध-पातक लागत तोय।
तुहु रस-आगर नागर ढीठ,
हम न बुझिअ रस तीत कि मीठ॥"

यदि इन दोनो की तुलना की जाए तो विद्यापति मे अधिक प्रभाव-क्षमता है। गोवर्धनाचार्य की नायिका आत्महत्या की धमकी देकर नायक को रोकती है, किन्तु विद्यापति की नायिका स्त्री-वध के पाप का भय दिखलाती है। इसमे सन्देह नही कि विद्यापति के शब्दो मे अधिक प्रभाव है। विशेष से सामान्य अधिक प्रभावशाली हुआ ही करता है। यही नही, नायिका का नायक को रस-सागर और रस-पडित बताना तथा स्वय को इस विषय मे अनभिज्ञ बताना 'त्वदुपरि वपुरद्य मोक्ष्यामि' की अपेक्षा बहुत ही स्वाभाविक और स्त्री-सुलभ-लज्जा का परिचायक हे।

कालिदास

कालिदास शृगारतिलक के रचयिता है। गोवर्धनाचार्य की अपेक्षा विद्यापति

कालिदास से अधिक प्रभावित है। विद्यापति के अनेक ऐसे पद है जिन पर शृंगारतिलक की छाया स्पष्ट है। छाया-ग्रहण करके भी विद्यापति ने अपनी काव्यप्रतिभा से उसे इस प्रकार सजोया और सँवारा है कि शृंगारतिलककार का काव्य फीका-सा प्रतीत होने लगता है। कालिदास का नायक नायिका की मुख-श्री की प्रशसा करता हुआ कहता है—

"झटिति प्रविश गेह मा बहिस्तिष्ठ कान्ते !
ग्रहणसमयबेला वर्तते शीतरश्मे.।
तव मुखमकलक वीक्ष्य नून . स राहु—
ग्रंसति तव मुखेन्दु पूर्णचन्द्र विहाय ।"[1]

अर्थात् हे कान्ता ! तुम बाहर मत रहो, शीघ्रता से घर मे प्रवेश करो। यह चन्द्रग्रहण का समय है। कलक से रहित और सुन्दर तुम्हारा मुख देखकर राहु पूर्णचन्द्र को छोडकर तुम्हारे मुखेन्द्र को ग्रस लेगा।

यही भाव विद्यापति ने इस प्रकार प्रकट किया है—

"लोलुअ बदना-सिरी धनि तोरि, जनु लागिह तोही चादक चोरि।
दरसि हलह अनु हेरहु काहू, चाँद भरम मुख गरसत राहू।
धवल नयन तोर काजर कार, तीख तरल तँहि कठाख क धार।
निरखि निहारि फाँस गुन जोलि, बाँधि हलत तोहि खजन बोलि।
सागर सार चोराओल चन्द, ता लागि राहु करय बड दन्द।
भनइ विद्यापति होउ निसक, चाँदहु काँ किछु लागु कलक।"

इन दोनो की तुलना प० शिवनन्दन ठाकुर के शब्दो मे देखिए—

"कालिदास नायिका को घर मे प्रवेश करने का उपदेश दे रहे है क्योकि उन्हे डर है कि ग्रहण के समय मुँह को चन्द्रमा समझकर राहु उसे निगल न जाय। मेरे विचार से मुख का अकलङ्कम् विशेषण अच्छा नही है क्योकि मुँह मे कलक नही होना ही सीधी पहचान है कि वह चन्द्रमा नही है। फिर इस प्रकार की आशका क्यो ? इस अस्वाभाविकता को दूर करने के लिए विद्यापति ने मुँह के विरुद्ध चन्द्रमा की चोरी का कलक लगाकर अपनी विदग्धता का परिचय दिया है। विद्यापति कहते है कि केवल राहु का ही डर नही है, डर है व्याध का भी। इसलिए खजनरूपी आँखे और चन्द्ररूपी मुँह छिपाकर रक्खो। विद्यापति ने व्याध को बुलाकर शिकार की उत्तमता पर उसे लुभाकर कामिनी की कमनीयता और भी बढा दी।"[2]

जयदेव

सस्कृत-कवियो मे विद्यापति जयदेव से इतने अधिक प्रभावित है कि इन्हे हिन्दी साहित्य मे 'अभिनव जयदेव' कहा जाता है। जयदेव की-सी सगीतात्मकता के अतिरिक्त

१ शृगार तिलक
२ महाकवि विद्यापति, पृ० १२६-२७

कही-कही भाव-साम्य भी विद्यापति मे मिलता है, किन्तु इन्होने अपनी प्रतिभा के बल पर उसमे चार चाँद लगा दिए है। उदाहरणार्थ, जयदेव का यह श्लोक देखिए—

"भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथाम्।
श्यामात्मा कुटिल करोतु कबरीभारोऽपि मारोद्यमम्।।"[1]

अर्थात् भौ रूपी धनुष पर चढाया हुआ कटाक्ष रूपी बाण मेरे मर्मस्थानो पर आघात करे। काली और तिरछी गूँथी हुई वेणी काम की सहायता करे।

यही भाव विद्यापति ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

"बेनी विमल विराज तन वसु कुसुमावलि-हार।
स्याम भुअगम देखिकहुँ कियो काम परहार।।
करु परहार मदन सर बाला कुटिल कटाख बान कनिमाला।
कम्बु कण्ठ मृणाल भुज बलित पयोधर हार।
कनक कलस रस पूरि रहु सचित मदन भँणार।।"

जयदेव ने वेणीधर को श्याम और कुटिल बताया है तथा उसमे काम के सहायक होने की योग्यता प्रदर्शित की है। विद्यापति ने उसकी तुलना साँप से की है। उस साँप मे भी काम के बाणो को रोक देने की क्षमता नही है। साथ ही विद्यापति ने नायिका को पुष्पमाला भी प्रदान की है जिससे मर्मव्यथा मे वृद्धि ही होती है। काम बाला से जूझ रहा है। युद्ध मे जय-पराजय से रस-भग न हो जाये इसलिए विद्यापति ने काम का भडार रस से परिपूर्ण बताया है। इस प्रकार विद्यापति मे जयदेव की अपेक्षा अधिक सरसता है।

परवर्ती कवि

यहाँ तक तो हुई विद्यापति के पूर्ववर्ती कवियो की बात जिनसे विद्यापति प्रभावित अवश्य है, किन्तु भावो मे उनसे बढे-चढे है। अब थोडा सा विचार विद्यापति के परवर्ती कवियो पर भी कर ले जो विद्यापति से प्रभावित तो हुए, परन्तु विद्यापति की-सी सजीवता और सरलता अपने काव्यो मे न ला सके।

बिहारी

१ विद्यापति ने वय सधि का वर्णन इस प्रकार किया है—

"सैसव जौबन दरसन भल, दुहु पथ हेरइत मनसिज गेल।
मदन क भाव पहिल परचार, भिन जन देल भिन्न अधिकार।।
कटि क गौरब पाओल नितम्ब, एक क खीन अओक अवलब।
प्रकट हास अब गोपत भेल उरज प्रगट अब तन्हिक लेल।।
चरन चपल गति लोचन पाव, लोचन क धैरज पदतल जाव।
नव कवि सेखर कि कहइत पार, भिन-भिन राज भिन्न बेबहार।।"

---

[1] गीतगोविन्द

बिहारी ने भी अकुरित यौवना का वर्णन किया हैं—

'अपने अँग के जानि के जौवन नृपति प्रबीन।
स्तन, मन, नैन, नितम्ब को बडो इजाफा कीन ॥''[1]

विद्यापति अपने पद मे जिस वातावरण की सृष्टि कर सके है, विद्यापति के दोहे मे उसका नितात अभाव है। विद्यापति ने कामदेव को राजा मानकर जिस रूप को अपनाया है वह बिहारी के 'जौवन नृपति' से अधिक सरस और प्रभावोत्पादक है।

अज्ञात यौवना के अधिक चित्र रीतिकालीन साहित्य मे प्राप्त होते है, किन्तु विद्यापति का-सा स्वाभाविक और सजीव वर्णन उसमे कही भी नही मिलता। यथा—

''खने खन नयन कोन अनुसरई
खने खन बसन धूलि तन भरई।
खने खन दसन छटा छुट हास,
खने खन अधर आगे गहु बास।
चहुँकि चलए खने खन चलु मद,
मनमथ पाठ पहिल अनुबध।
हिरदय मुकुल हेरि हेरि थोर,
खने आँचर दए खने होए भोर।''

देव

देव का अज्ञात यौवना का वर्णन इस प्रकार है—

'नैको सुहाति न जाति गडी उर पीर बडी गहि गाढी गसी क्यो ?
खैंचि खयून खरी खटकै नहि नीठि खुलै खुभि डीठि धँसी क्यो ?
'देव' कहा कहौ तोसौं जु मोसो तै आज करी बिन काज हँसी क्यो ?
गाँठीए तोरि तनी छिन् छोडि दै छातीए कंचुकि ऐंचि कसी क्यो ?''

देव के वर्णन मे नायिका की यौवन के प्रति अनभिज्ञता अवश्य है, किन्तु विद्यापति का-सा गत्यात्मक, सजीव और स्वाभाविक चित्रण यहाँ नही है।

नखशिख-वर्णन भी विद्यापति का अद्वितीय है। यथा—

''माधव की कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन बिहि आनि समारल देखल नयन सरूपे ॥
पल्लवराज चरणयुग सोभित गति गजराज क भाने।
कनक कदलि पर सिह समारल तापर मेरु समाने ॥''

सूर

इसी भाव को सूर ने भी व्यक्त किया है—

---

१ बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ ४

"अद्भुत एक अनुपम बाग ।
जुगल कमल पर गज बर क्रीडत तापर सिंह करत अनुराग ।।
रुचिर कपोल बसत ता ऊपर ताहू पर अमृत फल लाग ।
फल पर पुहुप पहुप पर पल्लब तापर शुकपिक मृग मद काग ।।"[1]

सूर ने नायिका के शरीर की उपमा एक अद्भुत बाग से देकर अपनी काव्य-प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है, किन्तु विद्यापति का सूक्ष्म निरीक्षण अधिक है । सूर ने 'जुगल कमल पर गज बर क्रीडत तापर सिंह करत अनुराग' कहकर नायिका के चरणो, जघाओ और कटि का परिचय तो दिया है, परन्तु 'कनक कदलि पर सिंह समारल' से सूक्ष्म निरीक्षण का इसमे अभाव है । 'कनक कदलि' शब्द मे नायिका की जघाओ का जो सौन्दर्य, चिक्कणता और उतार-चढाव है, वह सूर के वर्णन मे अप्राप्य है ।

प्रेम की भाषा जितनी व्यग्यपूर्ण होती है, वह उतनी ही प्रभावशाली होती है । नायिका यदि आत्मसमर्पण करते समय अभिधा मे ही अपने मन की बात कह दे तो फिर उसमे सजीवता नही रहती, बल्कि प्रेम का रूप भी कुछ-कुछ विकृत-सा हो जाता है । विद्यापति इस तथ्य से पूर्णतया अवगत थे । तभी तो इनकी राधा कहती है—

"कर धरु करु मोहे पारे,
देब पे अपरुब हारे, कन्हैया ।
सखि सब तेजि चलि गेली,
न जानू कौन पथ भेली, कन्हैया ।
हम न जाएब तुअ पासे,
जाएब औघट घाटे, कन्हैया ।"

इस पद मे नारी-मन का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण है ।

मतिराम

इसी प्रकार का एक पद मतिराम का भी है—

"आई ह्वै निपट साझ गैया गई घर माझ,
ह्यां ते दौरि आई कछु मेरो काम कीजिए ।
हौं तो हौ अकेली और दूसरो न देखियत,
बन की अधियारी सो अधिक भय भीजिए ।
कवि 'मतिराम' मनमोहन सौं पुनि-पुनि,
राधिका कहति बात साँचि कै पतीजिए ।
कब की हौं हेरति, न हेरे हरि पावत हौं,
बछडा हिरान्यौ सो हिराय नैक दीजिए ।"

---

१ सूरसागर, दशम स्कध, पृष्ठ ९६९

विद्यापति की राधा जगल मे अकेली है और कृष्ण से यमुना पार कराके औघट घाट पहुँचाने का अनुग्रह कर रही है, मतिराम की राधा बछडा ढूंढने के बहाने कृष्ण को जगल मे ले जाना चाहती है। दोनो का एक ही लक्ष्य है। मतिराम का वर्णन सामान्य जीवन की घटना पर आधृत होने से अधिक प्रभावपूर्ण है, किन्तु विद्यापति की राधा मे अधिक सयम है, अवसर परखने की अधिक चातुरी है। मतिराम अवसर का निर्माण करते है और विद्यापति अवसर का उपयोग। हमे तो ऐसा लगता है कि विद्यापति की राधा की अपेक्षा मतिराम की राधा मे कामाग्नि अधिक प्रबल है जो नारी-चरित्र के लिए अभिशाप ही है।

कहाँ तक कहे, विद्यापति का स्थान मुक्तककारो मे अग्रणी है। जिनका इन्होने अनुकरण किया उन्हे इन्होने अपनी काव्य-प्रतिभा से पछाड दिया और जिन्होने इनका अनुकरण किया, वे इनसे बहुत पीछे रह गये। कवि की महानता की कसौटी भी यही है।

१०

विद्यापति की गीति-कला

भाषा के माध्यम से जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति ही काव्य है। इस अभिव्यजना मे कवि के दो रूप होते है। एक रूप मे तो वह तटस्थ दर्शक की भाँति केवल अपने विषय का निरूपण करता चलता है और दूसरे रूप मे वह अपने विषय-निरूपण मे अपने व्यक्तित्व को समाहित कर देता है, अर्थात् पहले प्रकार मे 'कवि स्वय से पार्थक्य बनाए जगत् के कार्य और भाव का मिश्रण करता है तथा अपने व्यक्तित्व को अछूता रखकर अपने ज्ञान के आधार पर विषय का प्रतिपादन करता है"[१] और दूसरे मे कवि स्वय को विषय मे समाहित करके अपने ज्ञान, भावो और अनुभवो के द्वारा निजी प्रेरणा एव विषयो की अभिव्यजना करता है।[२] अभिव्यजना के इन प्रकारो के आधार पर पाश्चात्य काव्य-शास्त्रियो ने काव्य के दो भेद किए है—बाह्यवादी या विषय-प्रधान और अन्तर्वादी या विषयि-प्रधान। बाह्यवादी काव्य मे 'जिस प्रकार फोटो खीचने वाले किसी भी दृश्य का सम्पूर्ण चित्र अपने कैमेरा द्वारा खीच देते है, उसी प्रकार कवि भी बाह्य रूप से उसका चित्रण करते है।'[3] अन्तर्वादी काव्य मे 'जिस प्रकार नाटक के पात्र अपनी कहानी दर्शको के सम्मुख प्रस्तुत करते है, उसी प्रकार कवि भी अपनी कहानी पाठको के सम्मुख'[४] रखता है। गीति-काव्य अन्तर्वादी काव्य का ही एक भेद है।

उत्पत्ति और परम्परा

मानव-मन सदैव जीवन की दो विरोधी धाराओ मे डूबता-उबरता रहता है।

१ There is the poetry in which the poet goes out of himself, mingles with the action and passion of the world without, and deals with what he discovers there with little reference to his own individuality

२ There is the poetry in which the poet goes down into himself and finds inspiration and his subjects in his own experiences, thoughts and feelings

—An introduction to the study of literature, page 96

३ काव्य की परख, एस० पी० खत्री, पृष्ठ ७३ ७४

४ काव्य की परख, एस० पी० खत्री, पृष्ठ ७४

कभी वह आशा के स्वर्णिम शृंग पर चढकर हर्ष का तुमुल नाद करता है तो कभी निराशा की तमाच्छन्न क्रोड मे छिपकर करुण क्रन्दन करता है, कभी उल्लास की तूलिका से अपने सुनहले स्वप्नो मे गहरे रग भरता है तो कभी विषाद की स्याही से पोतकर उन्हे गहन कालिमामय बना देता है। इन्ही विरोधी धाराओ मे उसकी अनुभूति सजग होती है और जब वह अनुभूति मानस की सीमाओ मे आबद्ध नही रह पाती तो वाणी के माध्यम से स्वत फूट पडती है। हृदय की इन्ही तीव्रानुभूतियो के स्फुरण से गीति का जन्म हुआ। पतजी के मत से यह अनुभूति उल्लास की न होकर विषाद की होगी—

"वियोगी होगा पहला कवि
आह से फूटा होगा गान।
उमड कर आँखो से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।"[1]

महादेवी वर्मा गीति की आदि-अनुभूति विषाद नही, उल्लास मानती है। वे लिखती है—

'सभव है, जिस प्रकार प्रभात की सुनहली रश्मि छूकर चिडिया आनद से चहचहा उठती है, जिस प्रकार मेघ को घुमडता-फिरता देखकर मयूर नाच उठता है, उसी प्रकार मनुष्य ने भी पहले-पहल अपने भावो का प्रकाशन ध्वनि और गति द्वारा किया हो।'

चाहे जो हो, गीति-परम्परा है काफी प्राचीन। वैदिक साहित्य मे इसका उल्लेख मिलता है वैदिक साहित्य मे दो प्रकार के गीतो की चर्चा है—ऋक् और गाथा। ऋक् गीति वे है जो ईश्वर और देवताओ की प्रार्थनाओ से सबधित है और गाथा गीतो मे राजाओ तथा मनुष्यो के साहसिक कार्यो का वर्णन है। बौद्धो की 'थेर गाथाए' भी गीति ही है।

सामवेद के पश्चात् सस्कृत-साहित्य मे साहित्यिक गीतो की परपरा लुप्तप्राय: है जो जयदेव मे आकर पुन प्रवाहवती बनी है। जयदेव के गीतो की विशेषताओ को देखकर यह तो नही कहा जा सकता कि यह धारा बिलकुल लुप्त हो गई थी, वरन् अप्रत्यक्ष रूप से अवश्यमेव प्रवाहित रही है। इस धारा के अन्तर्निहित होने का कारण सभवत यह है कि भावावेशपूर्ण होने से इन गीतो मे अधिकाधिक शृगारिकता आती गई जो स्मृतिकारो को अरुचिकर थी। जयदेव ने इसी अन्तर्निहित और अविच्छिन्न धारा को रूप और प्रवाह प्रदान किया।

प्राकृत और अपभ्रश मे भी गीतो की परपरा अक्षुण्ण है। इनमे युद्ध और प्रेम दोनो प्रकार के गीति लिखे गए। यह तथ्य है कि वीरगीतो मे वीरता की भावना के अभाव मे वह गति न आ पाई जो प्रेमगीतो मे है।

१ आधुनिक कवि पन्त, पृष्ठ १५

हिंदी-साहित्य का आदिकाल प्रबधगीतो से परिपूर्ण है। 'बीसलदेव रासो' शृगार प्रधान प्रबध गीति है और 'आल्हखड' वीर रस प्रधान। आदिकाल के पश्चात् ही मिथिला की अमराइयो मे 'मैथिल कोकिल' के स्वरो मे वह स्वर्ग-सगीत छिडा जो शीघ्र ही समूचे भारत मे गूँज उठा और जिसकी अप्रतिम लहरियो से समस्त काव्योपवन पुष्पित एव सुरभित हो उठा। विद्यापति के पश्चात् तो गीतिकाव्य का मार्ग अत्यन्त ही प्रशस्त बन गया और हिंदी-साहित्य एक से एक सुदर गीतो से भर गया। इन गीतो मे प्रधानतया कृष्ण की लोकरजक लीलाओ का शृगार और माधुर्य भक्ति का प्रवाह निर्बंध उद्‌गारो मे प्रकट हुआ। भक्तिकाल मे रहस्य-गीतो की ही प्रधानता रही। उनकी मिलन-विरह की मार्मिक अनुभूतियाँ अलौकिक होते हुए भी लौकिक-सी प्रतीत होती है। महादेवी वर्मा के शब्दो मे—

"रहस्य-गीतो का मूलाधार भी आत्मानुभूत अखड चेतन है पर वह साधक की मिलन-विरह की मार्मिक अनुभूतियो मे इस प्रकार घुलमिल सका कि उसकी अलौकिक स्थिति भी लोक-सामान्य हो गई।"[1]

भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल का आविर्भाव हुआ। कला का ध्येय बदला। भक्तिकालीन अलौकिकता एकदम लौकिकता की धडकनो से स्पदित हुई। इस काल मे मुक्तक रचनाएँ तो बहुत रची गई, पर भाव-प्रधान सवेदनापूर्ण गीतो का प्रणयन कम ही हुआ, अत इस काल मे गीतिकाव्य का ह्रास ही समझना चाहिए।

आधुनिक काल मे हिंदी-गीतिकाव्य बगला और अगरेज़ी से प्रभाव ग्रहण करके पूर्ण रूप से पनप रहा है। साहित्यिक गीत और लोकगीत दोनो उत्तरोत्तर उन्नति कर रहे है। इस काल मे गीतो का प्राधान्य यहाँ तक बढा है कि महाकाव्यो मे भी इन्हे स्थान दिया जाने लगा है। नि सदेह, हिन्दी गीतिकाव्य का भविष्य उज्ज्वल है।

पाश्चात्य विद्वानो ने भी गीति की उत्पत्ति पर विचार किया है। श्री एच० टी० पेक लिखते है—

"गीतिकाव्य कविता का सर्वाधिक सहज प्रकार होने के कारण निश्चित रूप से सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ, अन्य दूसरे चेष्टाजन्य रूप निश्चित ही इनके बाद और इसी से उत्पन्न हुए।"[2]

पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि गीतिकाव्य अथवा 'लिरिक' (Lyric) शब्द का प्रादुर्भाव 'लायर' (Lyre) शब्द से हुआ जिसका अर्थ बीन अथवा वीणा है। इन लोगो का अनुमान है कि पहले-पहल लोगो ने लायर अथवा वीणा के सहयोग मे गाने योग्य गीति रचे होगे और फिर क्रमश गीतो को ही 'लिरिक' कहा जाने लगा। गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषता सगीतात्मकता, निस्सदेह इस अनुमान की आधारशिला है।

---

१ दीपशिखा की भूमिका, पृष्ठ ५८

२. The Lyrics of Tennyson.

कालक्रम की दृष्टि से ई० डब्ल्यू० हॉपकिन्स ने भारतीय गीतो को चार भागो मे विभाजित किया है—

१ वैदिक गीत (ई० पू० ८वी शताब्दी से चौथी शताब्दी तक)—इन गीतो मे धार्मिक और वीरगाथात्मक गीतियो का प्राधान्य है।

२ भक्ति गीत (ई० पू० चौथी शताब्दी से पहली शताब्दी तक)—इन गीतो मे भक्ति-भाव की प्रधानता है।

३ प्रेम गीत—इनमे विरह-मिलन की मार्मिक अनुभूतियाँ है।

४ रहस्य गीत—ये गीत है तो प्रेम गीत ही, परन्तु आध्यात्मिक और रहस्य के साथ वासना के रगो से मिले-जुले होने के कारण अत्यन्त गहन और उलझनपूर्ण है।[1]

विकास-क्रम की दृष्टि से गीतिकाव्य की तीन अवस्थाएँ हो सकती है—

१. प्रारम्भिक अवस्था मे, गीति गेय थे। उनमे भाव-प्रसार के लिए काव्यत्व का अधिक आग्रह न था। मिलन-विरह, हर्ष-विषाद का चित्रण सगीत और गेयता के द्वारा प्रस्तुत किया जाता था, भावुकता के द्वारा नही। इस अवस्था मे न तो शब्द का ही कोई महत्त्व था और न विषय-विधान का ही विकास हो पाया था। भाव-प्रकाशन के लिए वाद्य-यन्त्रो की सहायता अपेक्षित थी।

२ दूसरी अवस्था मे सगीत और गीति का अन्तर स्पष्ट हुआ। सगीत मे शास्त्रीय विधान की रक्षा का आग्रह था तो गीतो मे भावुकता और आत्माभिव्यक्ति का। इस अवस्था मे यद्यपि सगीत का मोह बराबर बना रहा, पर उसकी प्रधानता क्रमश कम होती गई। वर्णन विधान अलकृत रूप-विधान का हेतु न रहकर आत्माभिव्यजना का साधन बना।

३ तीसरी अवस्था मे भाव और सगीत की समान स्तर पर प्रतिष्ठा हुई। भाव और सगीत, विषय और विधान के एकीकरण के द्वारा गीतो की कलात्मकता का विकास हुआ। सगीत और काव्य एक दूसरे की सीमा मे साधिकार प्रविष्ट हुए। इस अवस्था मे गीतात्मकता की भावना परम्परागत और सासारिक है। छन्दो का सगीत अपने बँधे नियमो के अन्तर्गत चलता है।

वर्गीकरण

कवि की भावना गीतो के माध्यम से अनेक रूपो मे प्रस्फुटित होती है, इसलिए गीतो के असख्य भेद हो सकते है। स्थूल रूप से इनके वर्गीकरण के दो आधार हो सकते है—अभिव्यजना का आधार और विषय का आधार।

अभिव्यजना के आधार पर गीति के दो भेद है—साहित्यिक गीत और लोक गीत। साहित्यिक गीतो मे भाषा का रूप सुघड, सस्कृत और परिमार्जित होता है।

---

१. The Early Lyric Poetry of India Hopkins

इनमे शास्त्रीय विधानो का पालन होता है। लोकगीतो की भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन होती है। 'लोकगीत वस्तुत उस मानव सस्कृति और समाज के प्रतिनिधि हैं जो नागरिक वातावरण और कलात्मक साहित्यिकता से दूर ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित है। शिष्ट, मर्यादित और कलात्मक गीत (साहित्यिक गीत) समाज के केवल उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है जो कि नागरिक तथा सुसस्कृत है। इसीलिए लोक-गीत किसी भी देश की जन-सस्कृति, विचारधारा और चिन्तन-पद्धति की जानकारी मे साहित्यिक गीतो की अपेक्षा अधिक सहायक होते है।'[१] 'लोकगीतो की कला सौन्दर्य-पूर्ण भले ही न हो, किन्तु उनको अलकृत करने के लिये कोई व्यक्ति नियम-विशेष के बधन मे नही पडता, किन्तु साहित्यिक गीतो मे कला का दिव्य रूप दिखाई पडता है, जो लोकगीतो मे सभव नही।'[२]

विषय के आधार पर गीतिकाव्य के निम्नलिखित भेद किये जा सकते है—

१ धार्मिक अथवा स्तुतिपरक गीति (Hymns)

२ राष्ट्रीय गीति (Patriotic Songs)

३ प्रणय गीति (Love Lyrics)

४ शोक गीति (Elegy)

५ गौरव गीति (Ode)

६ उत्सव गीति (Convivial Lyrics)

७ चतुर्दशपदी (Sonnet)

डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतो के विभाजन के निम्नलिखित आधार माने है—

१ सस्कारो की दृष्टि से

२ रसानुभूति की प्रणाली से

३ ऋतुओ और व्रतो के क्रम से

४ विभिन्न जातियो के प्रकार से

५ क्रिया-गीत की दृष्टि से

प० रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतो को ग्यारह श्रेणियो मे विभक्त किया है—[३]

१ सस्कार सम्बन्धी गीत

२ चक्की और चरखे के गीत

३ धर्म गीत

४ ऋतु सम्बन्धी गीत

---

१. साहित्य-विवेचन, पृष्ठ १०२

२ समीक्षा-शास्त्र, पृष्ठ ८३

३ लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ २७

५—७ खेती, भिखमगी तथा मेले के गीत
८. जाति गीत
९ वीर गाथा
१० गीत कथा
११ अनुभव के बचन[१]

प० सूर्यकरण पारीक ने लोकगीतो के विषयाधार पर २९ भेद किए है ।[२] पाश्चात्य विद्वानो ने गाये जाने के आधार पर गीतो के तीन भेद किये है—

१ समूह गान (Choral)
२ एक व्यक्ति द्वारा गाए जाने वाले (Monodic)
३ नृत्य के साथ गाए जाने वाले (Doiien)

गीति की परिभाषा

जिस प्रकार कविता की परिभाषा सुनिश्चित और सर्वमान्य नही है, उसी प्रकार गीति की भी परिभाषा देना सभव नही है । भिन्न-भिन्न विद्वानो ने अपने-अपने विचारो के अनुसार अपनी-अपनी शब्दावलियो मे गीति की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ देने के प्रयास किए है । इन प्रयासो मे से मुख्य प्रयास ये है

१—वस्तुत गीति काव्य को ही कविता कहा जा सकता है । किसी कृति विशेष मे काव्यात्मकता जितनी अधिक होती है वह उसी अनुपात मे गीतात्मक होती है । नाटक जितना ही काव्यात्मक होगा वह उतना ही गीतितत्त्व से पूर्ण होगा । महाकाव्य जितना ही अधिक काव्यात्मक हो वह उतना ही गीतात्मक होता है ।[3]

—डॉ० चार्ल्स मिल्स

२—गीतिकाव्य का कवि जगत के सारे तत्त्वो को अपने मे समाहित करता है, अपने वैयक्तिक भावो के प्रभाव से इसे पूर्णतः आत्मसात् करता है और इस आत्मपरकता को सुरक्षित रखने वाली शैली में अभिव्यक्त करता है ।[२]

—हीगेल

---

१ कविता कौमदी भाग ५ पृ० ४५

२ राजस्थानी लोक गीत पृ० २२-२५

३ In other words pure poetry ın that which has the essentıally poetıc qualıty ıs lyrıc poetry Every composıtıon becomes ın cvasıngly lyrıcal as ıt become more poetıc, the more poetıcal a drama ıs the more lyrıcal ıt ın The more poetıc an epıc, the more lyrıcal ıt must be

—Methods and Materıals of lıterary crıt.cısm, page 7.

Quoted by Dr Gayloy ın Methods Materıals of lıterary crıtıcısm page 5

३. वह गाना जो लायर बाजे के साथ गाया जा सके ।[1]

—शिप्ले

४ गीतिकाव्य सामान्य कविता के लिए प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द है जो किसी गीति-वाद्य के साथ गाई जाती हो या गाई जा सके ।[2]

—ई० गोस

५ गीतिकाव्य इकहरे विचार, अनुभूति या स्थिति का चित्रण है जिसमें संक्षिप्तता, मानवीय भावना का रंग और गति अवश्य होनी चाहिए ।[3]

—पालग्रेव

६ गीतिकाव्य कल्पना की गति है जिसके द्वारा ससीम मानवात्मा असीम के साथ सम्बद्ध होने का प्रयास करती है ।[4]

—प्रो० एच० लाज

७ 'लिरिक अथवा गीतिकाव्य से प्रयोजन उन कविताओं से है जिनमें कवि ने अन्तर्वादी शैली अपनाकर अपने अन्तरतम की भावनाओं का परिचय दिया है ।[5]

—ए० एस० पी० खत्री

८ साधारणत गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुखदुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता मे गेय हो सके ।[6]

—महादेवी वर्मा

गीति-तत्व

यदि उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण किया जाय तो गीति-तत्वों का अनायास ही प्रकटीकरण हो जाता है । इन सभी परिभाषाओं का समन्वयात्मक निष्कर्ष ही गीति के तत्त्व है जो इस प्रकार है—

१ संगीतात्मकता
२ आत्माभिव्यक्ति अथवा वैयक्तिकता
३ रागात्मक अनुभूति अथवा भावप्रवणता

---

१ A poem to be sung to the lyre

—Shipley's Dictionary of world literary terms

२ Encyclopedia Britanica, 11th Edition, Vol XVIII, page 180

३ Golden Treasury of Song and Lyrics Preface

४ The Lyric, a movement of fancy by which the spirit strives to life itself form limited to the universal

—Outlines of Aesthetics H Lotze, Translated by G T Ladd, page 99

५ काव्य की परख, पृष्ठ ९

६ दीपशिखा की भूमिका, पृष्ठ ५९

अब देखना यह है कि विद्यापति के गीतो मे इन तत्त्वो का निर्वाह कितना और कैसा हुआ है।

विद्यापति की गीति-कला

गीतिकाव्य का पहला तत्त्व है सगीतात्मकता। यह दो प्रकार की होती है—स्वर-सगीत से युक्त और शब्द-योजना के सगीत से युक्त। विद्यापति के गीतो मे स्वर और शब्द दोनो का सगीत प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। यह कहना अनुचित न होगा कि इनके गीतो को लोक और साहित्य मे जो समादर प्राप्त हुआ, उसका एक विशेष कारण इनकी अपूर्व और हृदयहारी सगीतात्मकता ही है। इनके पद सगीत की अनुपम निर्झरिणियो के कल-निनाद मे इस प्रकार फूट पडते है मानो स्वय सगीत-देवी भावो की थिरकन लिए अपनी स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी गति से मचल रही हो। यथा—

"नन्दक नन्दन कदम्बक तरु-तर
धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय सकेत-निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोल पठाव।"

इन पक्तियो मे स्वर-सगीत तथा शब्द-सगीत के साथ-साथ भावो की पूर्णाभिव्यक्ति विचारणीय है। यमुना-तट पर सकेत-स्थल पर बैठे हुए कृष्ण अभिसारिका राधा की प्रतीक्षा कर रहे है। 'नन्दक नन्दन' मे 'नन्दन' शब्द कृष्ण के व्यक्तित्व का परिचायक है। इससे कृष्ण के मदोन्मत्त योवन, यौवन मे मचलती हुई अपरिमित सुनहली कामनाएँ और देह-गठन की कोमलता ध्वनित है। 'धिरे धिरे' मे कृष्ण की आकुलता और समाज-भीरुता मुखरित है। ऐसा लगता है जैसे कृष्ण की आतुरता उन्हे वशी बजाने को विवश कर रही हो, पर समाज के बधन उस आतुरता का गला दबोच रहे हो। मानस की अदम्य आतुरता और समाज-बधनो की कठोरता का भीषण द्वन्द्व धीरे-धीरे मुरली बजाने मे व्यजित है। 'बेरि बेरि बोल पठाव' मे तो आतुरता अपनी चरम कोटि पर ही पहुँच जाती है। बधनो की छातियो पर धडकनो का इतिहास लिखना प्रेमी के लिए कोई नई बात नही है। कही भी कोई शब्द न तो अनावश्यक है और न कठोर ही। प्रेम के मजुल सपनो की भाँति वाक्य-विन्यास भी मजुल है और सगीत भी मधुर है।

विद्यापति का सगीत केवल सगीत के लिए ही नही है, अपितु भावोद्रेक मे सहायक भी है। जिस प्रकार का वातावरण होता है, जैसी मन स्थिति होती है उसी के अनुरूप सगीत की लहरियाँ थिरकती है। कृष्ण विदेश चले गये है। राधा विरह की निर्धूम वह्नि मे जल रही है। अपनी मर्म-व्यथा को वह अपनी सखी से कहती है—

"लोचन धाए फेधाएल
हरि नहि आएल रे।"

प्रेमी का पथ देखते-देखते जिस विरहिणी की आँखे ही सूज गई हो, उसके हृदय की क्या गति होगी, इसकी सफल अभिव्यजना करना महाकबियो से ही सभाव्य है। इस पद के 'रे' शब्द के द्वारा विद्यापति ने इस अभिव्यजना को अभिव्यक्त ही नही किया, वरन् मानम-व्यथा को साकार ही कर दिया है। प्रिय के दर्शनो की आशा से निपट निराश प्रेमिका का असीम उच्छ्वास इस 'रे' ध्वनि से ध्वनित है।

विषाद मे जब हृदय भारी हो जाता है, कठ अवरुद्ध हो जाता है तो वाणी भी पगु बन जाती है। ऐसी स्थिति मे लम्बे-लम्बे वाक्यो का प्रस्फुटन अमनोवैज्ञानिक ही नही, असभव भी है। विद्यापति इस तथ्य से पूर्णरूपेण अभिज्ञ थे, इसीलिए इनकी विरहिणी अपनी मर्मान्तक पीडा को इन शब्दो मे प्रकट करती है—

"सखि मोर पिया।
अबहु न आओल, कुलिस-हिया।
नखर खोआओलु दिवस लिखि लिखि।
नयन अँधाओलु पिया पथ देखि।"

प्रियतम की आने की अवधि लिखते-लिखते जिसके नाखून घिस-घिस कर नष्ट हो गए हो, प्रिय-पथ देखते-देखते आँखे ही अधी हो गई हो, उस विरहिणी की व्यथा से उसकी वाणी का खडित हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। उपर्युक्त पक्तियो का सगीत भी धाराप्रवाह मे न होकर छोटे-छोटे वाक्यो मे खडित है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे विरहिणी अपनी समस्त शक्ति बटोर कर अपनी मर्म-व्यथा कहने को उद्यत हुई हो, किन्तु सिसकियो ने उसके वाक्यो को टुकडे-टुकडे कर दिया हो।

कहने का अभिप्राय यह है कि विद्यापति का सगीत केवल सगीत ही नही, भावो का उद्बोधक और अभिव्यजक भी है। इनके पदो मे सर्वत्र सगीतात्मकता का सफल बल्कि आशातीत निर्वाह हुआ है। डॉ० सुभद्र झा द्वारा सपादित विद्यापित-गीत-सग्रह मे जितने भी पद दिए गये है वे सब रागबद्ध है।[1]

१ डा० सुभद्र झा के सग्रह की रागबद्धता इस प्रकार है—

पहले	५६ पद	मालव राग
५७ से	१३० तक	धनछरी राग
१३१ से	१३५ तक	असाबरी राग
१३६ से	१४६ तक	मलारी राग
१४७ वाँ		सामरी राग
१४८ से	१५४ तक	अहिरानी राग
१५५ से	१५७ तक	केदार राग
१५८ से	१६२ तक	कानडा राग
१६३ से	१६४ तक	कोलर राग
१६६ से	२०२ तक	सारगी राग
२०३ से	२०७ तक :	गूजरी राग

इनके अतिरिक्त आगे के पदों में भी वसन्त विभास, नाटराग, ललित, बरली आदि राग दिए हुए हैं।

आत्माभिव्यक्ति अथवा वैयक्तिकता

यह गीतिकाव्य का दूसरा तत्त्व है। इसी तत्त्व की प्रधानता के कारण गीतिकाव्य और प्रबधकाव्य के मध्य भेद-रेखा खीची गई है। इस तत्त्व का अभिप्राय यह है कि सफल कवि गीतिकाव्य मे आत्माभिव्यक्ति ही करता है, अर्थात् अपनी ही पीडा से पीडित होता है, अपने ही उल्लास से उल्लसित होता है। जो कवि अपने व्यक्तित्व का समावेश नही कर सकता, वह सफल गीतिकार नही बन पता। डॉ० दशरथ ओझा के शब्दो मे—

'वास्तव मे गीत को कवि के आर्तक्रदन के पीछे छिपे हुए दु:खातिरेक के दीर्घ-निश्वास मे छिपे हुए सयम से बांधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय मे उसी भाव का उद्रेक करने मे सफल हो सकेगा। गीत यदि दूसरे का इतिहास न रहकर वैयक्तिक सुख-दुख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है।"[१]

गीतिकाव्य मे आत्माभिव्यक्ति दो प्रकार से होती है—

१ कवि अपने विषय का प्रत्यक्ष रूप से वर्णन करता है।

२ कवि अपने विषय को अप्रत्यक्ष या परोक्षरूप से प्रस्तुत करता है।

इन दोनो प्रकारो मे दूसरा प्रकार ही समीचीन, उपयुक्त और अधिक प्रभावोत्पादक है। व्यक्तित्व के अत्यधिक और प्रत्यक्ष प्रक्षेप के कारण काव्य की कलात्मकता को ठेस पहुँचती है, उसका प्रभाव कुठित हो जाता है। हिन्दी-साहित्य मे 'बच्चन' इस प्रकार के अग्रणी कवि है। आत्माभिव्यक्ति की सफलता व्यक्तित्व को अर्ध-प्रच्छन्न रखने मे है। जो नियम काव्यार्थ के सम्बन्ध मे है—

"सर्व ढके सोहत नहीं उघरे होत कुबेस।
अर्ध ढके छबि देत है कवि-अच्छर, कुच, केस॥"

यही गीतिकाव्य मे कवि के व्यक्तित्व के विषय मे भी चरितार्थ है। अत कवि को आत्माभिव्यक्ति मे सयमशील होना चाहिए।

विद्यापति के गीति आत्माभिव्यक्ति के उपर्युक्त प्रकारो मे से दूसरे प्रकार के अन्तर्गत आते है। सम्पूर्ण पदावली के भाव एक ही व्यक्ति के भावो की विभिन्न लडियाँ है। राधा और कृष्ण के मधुर मिलन मे स्वय कवि की आत्मा मुखरित है। राधा के रूप-वर्णन मे कवि की सौन्दर्य-भावना जिस प्रकार मचल उठती है उसे देखते हुए यह सभावना भी नही की जा सकती कि कवि किसी तटस्थ दर्शक की भाँति केवल कल्पना के कगार पर खडा होकर शास्त्रीय परम्पराओ का पालन कर रहा है। विद्यापति के उपमान शास्त्रीय होते हुए भी कवि के हृदय के लगाव से अछूते नही है। तभी तो ये राधा का इतना सर्वांगपूर्ण रूप-चित्रण कर पाये हैं। इन चित्रणो मे यत्र-

१ समीक्षा शास्त्र, पृष्ठ ३

तत्र कवि के हृदय की विशालता, भावो की उदात्त भावना भी फूट पडी है। यथा—

जहाँ-जहाँ पग-जुग धरई । तहिं-तहिं सरोरुह झरई ।
जहाँ-जहाँ झलकत अग । तहिं-तहिं बिजुरि तरग ।।"

इन पक्तियो मे जायसी की-सी रहस्यात्मकता[1] बिलकुल नही है। कवि का अपने हृदय का विस्तार है। यदि कवि के इस वर्णन मे हृदय सबद्ध न होता, केवल मस्तिष्क का बल होता तो सम्भवत यह वर्णन भी रसलीन के इस वर्णन की भाँति होता—

"जेहि मग दौरत निरदई तेरे नैन कजाक ।
तेहि मग फिरत सनेहिया किए गेरबा चाक ।।"

और विरह! इसमे तो प्रत्येक कवि का मानस छलकने ही लगता है। काल्पनिक विरह के सागर मे रूप-कुरूप बनाकर आकठ डूबने का दिखावा करने वाले कवियो की बात दूसरी है। फिर सुनने मे यह भी आता है कि विद्यापति की अनुरक्ति रानी लखिमादेवी मे थी। यद्यपि प्रमाण और तर्क इस अनुश्रुति की पुष्टि नही करते। हो सकता है कि विद्यापति के हृदय मे यह लहर भी आई हो, किन्तु राजा के डर से या लिहाज से या किसी अन्य कारण से इन्होने इसे हृदय मे ही दबोच दिया हो जो यथावसर गीति के माध्यम से व्यक्त होती रही हो। चाहे जो हो, विद्यापति का विरह-वर्णन केवल कल्पना की उडान नही, अपनी निजी अनुभूति की परोक्ष अभिव्यक्ति है। विरह के क्षणो मे जहाँ अनेक बाते मानस के कगारो मे टकराती है, वहाँ इस भाव का भी टकरा जाना स्वाभाविक नही, तथ्यपूर्ण है—

"अकुर तपन ताप यदि जारब,
कि करब वारिद मेह ।
ई नब जौबन बिरह गमाओब,
कि करब .से पिया गेह ।"

यौवन के बीत जाने पर ही यदि प्रियतम लौटे तो फिर यौवन और उनके आगमन की सार्थकता ही क्या रही? कतिपय आलोचको को इसमे भले ही माँसलता दिखाई दे, किन्तु इसके सत्य से इनकार नही किया जा सकता। यह उस हृदय की अभिव्यक्ति है जो अपनी कामना की पूर्ति मे तो विवश है, पर जो उसकी अभिव्यक्ति मे जगत् के बधन और शास्त्र की परम्पराओ की चिन्ता नही करता। सचमुच ऐसे पदो मे कवि का व्यक्तित्व अपेक्षाकृत प्रत्यक्ष हो गया है।

---

१ नयन जो देखा कमल भा निरमल नीर सरीर ।
हँसत जो देखा हँस भा दसन जोति नग हीर ।।

रागात्मक अनुभूति अथवा भाव-प्रवणता

रागात्मक अनुभूति अथवा भाव-प्रवणता गीतिकाव्य का प्राण है। गीति का जन्म ही अन्तर्ज्वाला से हुआ है। कवि के आकुल प्राण जब इस अन्तर्ज्वाला से झुलसने लगते है तभी वह गा उठता है, उसकी अन्तर्वेदना वाणी का सबल लेकर फूट पडती है। अन्तर्ज्वाला की यह प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न कवियो मे विभिन्न प्रकार से होती है। वर्ड्सवर्थ मे यह ज्वाला शात और गभीर है, बायरन मे तीव्र है, शेली मे पहले थोडी और बाद में सहसा भडकने वाली है, पत का अन्तर्दाह शात है, दीपक की भाँति तिल-तिल करके जलने वाला है।

विद्यापति के गीतो मे रागात्मक अनुभूति प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध है। इनका अन्तर्दाह राधा के माध्यम से अदम्य होकर फूट पडा है—

"सून सेज हिय सालए रे
पिया बिनु घर मोयँ आजि।
बिनती करओ सहलोलिनि रे
मोहि देह अगिहर साजि।"

प्रिय के बिना सूनी सेज प्रेमिकाओ को सदा से ही सालती चली आ रही है और इस दुख का केवल एक ही उपचार है—जलकर मर जाना। रागात्मक अनुभूति की यही चरम परिणति है।

प्रिय के आने की अवधि का सामीप्य जितना सुखदाई है, उतना ही प्रतिक्रिया-वादी भी है। ज्यो-ज्यो अवधि समीप आती जाती ह, मन पर अनेक प्रकार के भाव अकित होते जाते है। मन स्थिति की इस प्रक्रिया को रागात्मक अनुभूति ही सबल और सशक्त बनाती है—

"सखि हे कतहु न देखि मधाई।
काँप शरीर थीर नहि मानस,
अवधि नियर भेल आई।"

रागात्मक अनुभूति के कारण ही प्रेमी आशा निराशा, सुख-दुख, हर्ष-विषाद आदि विरोधी भावो मे सदा डूबता-उतराता रहता है। विद्यापति के गीतो मे ये सभी अवस्थाएँ सजीव और साकार है।

डा० नगेन्द्र का मन्तव्य है कि महादेवी के गीतो मे भाव-प्रवणता का अभाव तो नही है, किंतु उस परिमाण का अभाव है जो गीतिकाव्य के लिए अपेक्षित है। इसके उन्होने तीन कारण बताए है—

१ कवियत्री अपने भावो और आवेशो को सयत रखने के लिए प्रयत्न-शील है।

२ कवयित्री मे चितन तथा कल्पना की मात्रा अधिक है।

३ कवयित्री मे परोक्ष सत्ता के प्रति प्राधान्य है ।[1]

विद्यापति के गीतो मे इस प्रकार की बाधाएँ नही । इन पर न तो सयम का अकुश है, न कल्पना का आधिक्य है और न रहस्यात्मकता का आवरण । यही कारण है कि इनके गीतो का प्रवाह अबाध है, भावो का उच्छ्लन अजस्र है और अभिव्यक्ति का आघात मर्मस्पर्शी है । हिंदी-साहित्य मे घनानन्द भाव के देवता है । इनके पदो मे सहज भावो का अगाध सागर उद्वेलित है । अपनी रागात्मक अनुभूति की सीमा पर खडे होकर ये कह उठते है—

"तब हार पहार से लागत हे अब आनकै बीच मै पहार परे ।"

विद्यापति भी इनसे पीछे नही रहते । इनकी भावुकता भी छलक पडती है—

"तिल एक सयन ओत जिउ न सइए, न रहए दुहु तनु भीन ।
माँझे पुलक गिरि अतर मानिए, अइसन रह निसि-दीन ।।"

घनानन्द का व्यवधान तो 'हार' के कारण है, पर विद्यापति का नायक तो रोमाचित होने के कारण रोमाच को ही पहाड जैसा अतर मान बैठता है । इसे कल्पना की खिलवाड न समझकर रागात्मक अनुभूति की अपरिमितता ही समझना चाहिए ।

लोकगीति

अभिव्यजना के आधार पर हमने गीतो के दो भेद किए थे—साहित्यिक या कलात्मक गीति और लोकगीति । विद्यापति के साहित्यिक गीतो का विवेचन करने के पश्चात् इनके लोकगीतो पर भी चर्चा करना अनिवार्य है । केवल साहित्यिक गीतो के आधार पर गीतिकार विद्यापति का अध्ययन अधूरा ही है ।

लोकगीतो का स्वरूप समझने के लिए फ्रासिस बी० गूमर का यह कथन पर्याप्त है—

'लोकगाथाओ (लोकगीतो) का महत्व केवल इसी बात मे नही है कि उनमे अकृत्रिम काव्य-भावना उपलब्ध होती है । वे परम्परा की भाषा मे ही अपनी अभिव्यक्ति नही करते, प्रत्युत् जन-समूह की वाणी द्वारा प्रकाशन करते हैं । उनमे किसी प्रकार की गोपनीयता नही पाई जाती । जो वस्तु जैसी है उसका यथातथ्य रूप मे वे वर्णन करते है । वे स्वतन्त्र है, तथा खुली हवा की भाँति ताजे है । वायु और सूर्य का प्रकाश उनमे खेल करता है ।'[2]

श्री गूमर ने लोकगीतो के जिन तत्त्वो की ओर सकेत किया है वे इनकी मूलभूत

---

१ 'महादेवी का गीतिकला' पर दिए गए भाषण से

२ The abiding value of the ballad is that they give a hint of primitive and unspoiled poetic sensation They speak not only in the [illegible] of tradition, but also with the voice of multitude There is nothing subtle in their working and they appeal to things as they are. Form one voice of modern literature they are free— They can tell a good tale They are fresh with the open air Wind and sunshine play through them —The popular Ballad, page 417

विशेषताएँ हैं जो इस प्रकार रक्खी जा सकती है—

१ लोकगीतो मे अभिव्यजना की कृत्रिमता नही होती, अर्थात् ये हृदय के सहज स्फुरण होते है।

२ लोकगीतो पर समाज का अकुश नही होता, बल्कि वे विषय का यथातथ्य वर्णन करते है।

३ लोकगीतो पर शास्त्रीय बधन भी नही होते। इनमे वायु की-सी प्राण-दायिनी शक्ति और सूर्य-प्रकाश का-सा उल्लास होता है।

विद्यापति के साहित्यिक गीतो मे तो ये विशेषताएँ मिलती ही है, इनके अतिरिक्त इन्होने लोकगीतो का भी प्रणयन किया है। दरबार के वैभवपूर्ण वातावरण मे लोकगीतो की ओर प्रवृत्ति इनकी लोक-भावना की परिचारिका है। 'विद्यापति की कोमल-कान्त-पदावली से परिपूरित इस बोली (मैथिली) के लोकगीत भी बडे सरस और मधुर है।'[1] लोकगीतो मे अलकार-योजना श्रमसाध्य नही, स्वाभाविक होती है। भाव के प्रवाह मे बह कर जो अलकार स्वत आकर भावोद्रेक मे सहायक सिद्ध होते है वे ही इनमे खप सकते हैं। हाँ, लय और तुक पर अवश्य ध्यान रक्खा जाता है। इनमे रे, ना, हे, आहो, रामा आदि शब्दो को लय और तुक के विधान के लिए विशेष-रूप से ग्रहण किया जाता है। विद्यापति के साहित्यिक गीतो मे भी यह विधान यत्र-तत्र परिलक्षित होता है। यथा—

१ एत दिन छलि नब रीति रे।
जल मीन जेइन पिरीति रे।

२ सुन्दरि चललिहु पहु-घर ना।
चहुदिस सखि सब कर धर ना।

३ जाहि लागि गेलि हे,
ताहि कहाँ लइलि हे।

लोकगीतो मे भावाभिव्यक्ति शब्द से नही, लय की आत्मा के आधार पर होती है। विद्यापति के गीतो मे लय की यह आत्मा विद्यमान है। लोक की लय, लोक की घटना और लोक की अभिव्यक्ति मे विद्यापति का यह गीति कितना मधुर बन पडा है—

"कुंज-भवन सय निकसलि रे
रोकल गिरधारी।
एकहि नगर बस माधव रे
जनि कर बटमारी।
छाडु कन्हैया मोर आँचर रे
फाटत नब सारी।

---

१ लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ २[illegible]

अपजस होएत जगत भरि रे
जनि करिअ उघारी।"

कुँज-भवन से निकलती राधा को कृष्ण ने रोक लिया। इस पर राधा ने अपने जिस नारीत्व की दुहाई दी है, उसकी प्रभावोत्पादकता लय की लहरियो मे बह कर शतगुणी बन गई है।

कही-कही विद्यापति ने लोकगीति के तत्त्वो को इतना अपनाया है कि वे गीति बिलकुल ही लोकगीति बन गये हैं। यथा—

"मोरे रे अँगनवाँ चनन केरि गछिया
ताहि चढ कुररय काग रे।
सोने चोंच बाँधि देब तोयँ बायस
जयो पिया आवत आज रे॥"

इस गीति मे ग्रामीण वातावरण के मध्य ग्रामीण प्रोषित-पतिका का युग-युगान्तरो से चला आ रहा ग्रामीण विश्वास स्वाभाविक भाषा के माध्यम से ही व्यक्त किया गया है।

अत कहा जा सकता है कि गीतिकार विद्यापति के व्यक्तित्व मे कलात्मक और लोकगीति दोनो का सुन्दर सामञ्जस्य है। इनके गीतो मे एक ओर कलात्मक गीतो की साज-सज्जा और सुघडता के दर्शन होते है तो दूसरी ओर लोकगीतो की सरलता, स्वाभाविकता, भावमयता और स्वच्छन्दता का भी पूर्ण विकास परिलक्षित होता है। जिस प्रकार विधाता न विद्यापति की राधा के मुख की रचना चाँद-सार से की और फिर युवती ने उसे अमृत से धोकर तज्जन्य कान्ति से दसो दिशाओ को प्रकाशित कर दिया,[1] उसी प्रकार विद्यापति ने अपने गीतो मे शास्त्र और लोक का समजन करके अपूर्व भावलोक की सृष्टि की है, जो अपना उपमान स्वय ही है।

विद्यापति के गीतिकाव्य का विवेचन कर लेने के पश्चात् यह आवश्यक है कि इनकी तुलना अन्य प्रमुख गीतिकारो से की जाए।

जयदेव

सबसे पहले जयदव को लीजिए। जयदेव गीतो के सम्राट् है और विद्यापति सबसे अधिक इन्ही से प्रभावित हैं। जयदेव अपनी कोमलकान्त पदावली से समन्वित सगीतात्मकता के लिए प्रसिद्ध है और उनकी यह प्रसिद्धि ठीक ही है। 'गीतगोविंद'

१ चाद-सार लए मुख घटना करु
लोचन चकित चकोरे।
अमिय धोय आँचर धनि पोछलि
दह दिसि भेल उजोरे।

का यह श्लोक देखिए—

> "ललितलवगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।
> मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुजकुटीरे ॥"
>
> × × ×
>
> "श्रीजयदेव भणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ।
> सरसवसन्तसमयबनवर्णनमनुगतमदनविकारम् ॥"[1]

इस गीत मे वसन्त का वर्णन है। वसन्त-श्री मे जो सरसता, कमनीयता, मसृणता होती है, वही इस गीत की रचना मे भी है। लगता है जैसे सगीत, लय और शब्दो का उपयुक्त परिधान पाकर वसन्त-श्री साकार हो उठी हो। विद्यापति के गीतो मे भी ये ही विशेषताएँ है। अबाध सगीत, मधुर शब्दावली, भावानुगामिनी लय इनमे भी उपलब्ध है। यथा—

> "नन्दक नन्दन कदम्ब क तरु-तर
> धिरे धिरे मुरलि बजाव।
> समय सकेत निकेतन बइसल
> बेरि बेरि बोलि पठाव॥"

विद्यापति मे जयदेव की सभी विशेषताए मिलती है, किन्तु एक बात मे ये जयदेव से भी आगे निकल गए है। श्री रामखेलावन पाण्डेय के शब्दो मे—

'जयदेव मे एक ओर जहा वर्णन का विशेष आग्रह है, वहा विद्यापति मे रागात्मक आवेश की अभिव्यक्ति। अत विद्यापति के गीत गीतिकाव्य के अधिक समीप हैं।'[2]

चंडीदास

चडीदास और विद्यापति की तुलना करते हुए रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि विद्यापति सुख के कवि है और चडीदास दुख के। विद्यापति विरह मे कातर हो उठते है और चडीदास को मिलन मे भी सुख नही। विद्यापति जगत् मे प्रेम को ही सार मानते है और चडीदास प्रेम को ही जगत समझते है। विद्यापति भोग के कवि है, चडीदास सहन के।

कबीर

कबीर के गीतो मे साहित्यिकता कम है तथा भावावेश एव रागात्मक अनुभूति की तीव्रता और गभीरता अधिक है। यथा—

> "साई बिन दरद करेजो होय।
> दिन नहीं चैन रात नही निदिया, कासे कहू दुख रोय॥

१. गीत गोविन्द
२. गीतिकाव्य, पृष्ठ २२

आधी रतिया पिछले पहरवा, साईं बिना तरस तरस रही सोय ।]
कहत कबीर सुनो भाई प्यारे, साईं मिले सुख होय ॥"

विद्यापति मे भावावेश, रागात्मक अनुभूति की तीव्रता तथा गभीरता और साहित्यिकता सभी कुछ है । कारण यह है कि कबीर के पास केवल हृदय था, सरस्वती की छाया उन्हे प्राप्त न थी । विद्यापति मे दोनो गुण थे । भावुक हृदय के साथ-साथ मस्तिष्क की विशालता भी थी ।

तुलसी

तुलसी मे सरस हृदय की भावुकता और मस्तिष्क की विशालता तो है, किन्तु उनके काव्य पर सामाजिकता का नैतिक अकुश अधिक है । अत उनके काव्य मे लोक-सग्रह का, जन-कल्याण का एव धर्म-मर्यादा का विवेकपूर्ण विवेचन होने से वैयक्तिक रागात्मक अनुभूति की अभिव्यजना को ठेस पहुँची है । वे दार्शनिक और भक्त पहले है और गीतिकार बाद मे—

"केसव कहि न जाय का कहिए ?
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए ।"

तुलसी के ऐसे गीतो मे विद्यापति के गीतो की-सी सहज बोधगम्यता, प्रभावोत्पादकता और हृदयस्पर्शिता कहाँ ?

सूर

सूर मे सामाजिकता का बधन तो नही, पर अतिशय स्वतत्र प्रवृत्ति का आग्रह अवश्य है । कही-कही उनके गीत इस प्रवृत्ति के कारण प्रभावान्विति को खो बैठे है । लेकिन सूर-साहित्य मे ऐसे स्थल अधिक नही है । वैसे सूर के गीत कवि की सूक्ष्म-ग्राहिणी दृष्टि और अनन्त भावुकता से बहुत सफल बन गये है । यथा—

"निसिदिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहत पावस ऋतु हमपै जब ते स्याम सिधारे ।"[1]

विद्यापति के गीतो मे सूर की-सी तन्मयता तो है ही, साथ ही इनमे सूर जैसी स्वतन्त्र प्रकृति के दुराग्रह का अभाव है । इसीलिए इनके गीतो मे प्रभावान्विति सर्वत्र बनी रहती है ।

मीराँ

मीराँ ने अपने काव्य को अलकृत करने का प्रयास नही किया है । जो निश्छलता कबीर के उद्गारो मे है उसकी पूर्ण परिणति मीराँ मे हुई है । कबीर की सरलता बुद्धि-मूलक है और मीराँ की भावाकुलता मिश्रित । मीराँ की प्रेम-पीडा, भावोन्माद, मिलनोत्कण्ठा, आत्मसमर्पण, आत्मविस्मृति अनुभूति की ठोस भूमि पर लोकोत्तर हो उठी है ।

१ सूरसागर, दशम स्कध, पृ० १३८१

सहजानुभूति के क्षणो मे वे गा उठती है—

"बावल वैद बुलाइया पकरि दिखाई बाँह ।
मूरख वैद मरम नहि जानत करक करेजे माँह ॥"[1]

मीराँ की पीर अनन्त और असाध्य है। केवल 'वैद साँवलिया' ही उसका निदान करने मे समर्थ है। विद्यापति की राधा भी प्रेम-पीर से व्याकुल है—

"सखि, कि पूछसि अनुभव मोय ।
से हो पिरीत अनुराग बखानिये तिल तिल नूतन होय ॥
जनम अबधि हम रूप निहारलु नयन न तिरपित भेल ।
से हो मधु बोल स्रवनहि सूनल स्रुतिपथ परस न भेल ॥"

केवल प्रियतम ही, जिसके दर्शन से नेत्र कभी तृप्त नही होते, जिसकी वाणी के माधुर्य से कानो की प्यास नही बुझती, जीवन का ताप मिटाकर उसे सरस बनाने मे समर्थ है। इसमे मीराँ की भाँति विद्यापति के आकुल अतर की पुकार है।

मीराँ के शब्दो मे केवल सहजानुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति है, पर विद्यापति मे तो शब्द और सगीत भी एकाकार हो उठे है।

गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त की विरहिणी उर्मिला कहती है—

"तुम्हारे हँसने मे है फूल हमारे रोने में मोती ।"

अत —

"न जा अधीर धूल मे, दृगम्बु आ दुकूल मे ।"

इस गीत मे भावावेश का स्वच्छद प्रवाह नही। कल्पना और सौन्दर्य-बोध से जागृत और उद्दीप्त सगीतात्मकता से अधिक उक्ति-चित्रोपमता का आग्रह है। शब्दो के अन्तराल से फूट पडने वाले सगीत का यहाँ अभाव है। गुप्तजी की प्रतिभा गीति-काव्यात्मक नही, प्रबधात्मक है।

प्रसाद

प्रसाद के गीतो मे भावात्मकता और सगीतात्मकता तो है, पर विद्यापति की-सी सहज बोधगम्यता नही। प्रसाद का वय सधि का चित्रण देखिए—

"अधरो के मधुर कगारो मे, कलकल ध्वनि की गुंजारो मे,
मधु सरिता-सी यह हंसी तरल अपनी पीते रहते हो क्यो ?
हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो मौन बने रहते हो क्यो ?"[2]

प्रसाद के इस सौन्दर्य-चित्र की भूमिका के रूप मे विद्यापति की राधा को देखिए—

१. मीराबाई की पदावली, पृष्ठ २८
२ चन्द्रगुप्त, पृ० १२

"सैसब जोबन दुहु मिलि गेल।
स्रवन क पथ दुहु लोचन लेल॥
बचन क चातुरि लहु लहु हास।
धरनिये चाँद कएल परगास॥"

प्रसाद के वर्णन की अपेक्षा विद्यापति का वर्णन सरल तो है ही, व्यापक और प्रभावशाली भी अधिक है। जिस भूमिका मे विद्यापति राधा को रख पाए है, प्रसाद मे मे उसका अभाव है। रामखेलावन पाण्डेय के शब्दो मे—

"प्रसाद के इस सौन्दर्य-चित्र मे तरल हास भी नहीं, हसी अधरो पर छलछला नही पडती। कगारो के सीमा-बध मे पडी, कलकल ध्वनि की गु जार से मुखरित मधु-सरिता-सी हसी वह सौन्दर्य पीता रहता है। हसी अधरो के कगारो का अतिक्रमण नहीं कर पाती, अधरो पर रेखा-सी खिलकर रह जाती है। मधु सरिता की कलकल ध्वनि फैल नहीं पाती, वह सौन्दर्य उसे नित्य पीता रहता है। वह हसी कभी मुखरित भी नहीं होती, कभी मरती भी नही। प्रसाद के इस सौन्दर्य-चित्र मे विद्यापति की राधा वाली 'आधी हसी' भी नहीं, मुस्कान की क्षीण रेखा-मात्र है, सकोचहीन उल्लास-मय पूर्ण 'हास्य नहीं।"[१]

महादेवी

महादेवी के गीतो मे सहजानुभूति का अभाव है। इनमे आग-भरा उच्छ्वसित आवेश भी नही। कल्पनाजन्य विरह का विस्तार होने के कारण गीत अस्पष्ट और दुर्बोध है। भावना के स्पष्ट वर्णन के स्थान मे सकेतात्मक अभिव्यजना हुई है। उदाहरणार्थ—

"मै नीर भरी दुख की बदली!
स्पन्दन मे चिर निस्पन्द बसा, क्रदन मे आहत विश्व हँसा।
नयनो मे दीपक से जलते, पलको मे निर्झरिणी मचली।"[२]

कहने की आवश्यकता नही कि महादेवी के गीतो पर कल्पना की गहरी छाया है जो प्रतीको से और भी गहरी बन गई है। अपनी सहज सरलता के कारण हृदय पर सीधी चोट करने की शक्ति से इनके गीत वचित हैं। विद्यापति के गीति सुबोध और हृदयस्पर्शी है।

इतना विवेचन कर लेने के पश्चात् निस्सकोच कहा जा सकता है कि हिन्दी-साहित्य के गीतिकारो मे विद्यापति का मूर्धन्य स्थान है। सस्कृत के गीति-साहित्य मे जयदेव गीतो के सम्राट् हैं तो विद्यापति हिन्दी के 'अभिनव जयदेव'। इनकी इस उपाधि मे इनके गीतिकाव्य की वे सभी विशेषताये पुञ्जीभूत हो गई है जिनके कारण जयदेव का समादर है, बल्कि कही-कही विद्यापति जयदेव को भी पीछे छोड गये हैं।

१ गीतकाव्य, पृष्ठ ३०८—९
२ आधुनिक कवि भाग १ महादेवी वर्मा, पृष्ठ ८९

१०

विद्यापति का प्रकृति-चित्रण

शुभ श्री महादेवी के शब्दो मे—

"दृश्य प्रकृति मानव-जीवन को अथ से इति तक चक्रवाल की तरह घेरे रही है। प्रकृति के विविध कोमल परुष, सुन्दर विरूप व्यक्त रहस्यमय रूपो के आकर्षण-विकर्षण ने मानव की बुद्धि और हृदय को कितना परिष्कार और विस्तार दिया है, इसका लेखा-जोखा करने पर मनुष्य प्रकृति का सबसे अधिक ऋणी ठहरेगा। वस्तुतः सस्कार-क्रम मे मानव-जाति का भाव-जगत् ही नही, उसके चिन्तन की दिशाएँ भी प्रकृति से विविध रूपात्मक परिचय द्वारा तथा उससे उत्पन्न अनुभूतियो से प्रभावित है।"

नि सदेह, मानव और प्रकृति का सम्बन्ध आदिकाल से ही है। मानव ने प्रथम बार प्रकृति के मधुर प्रागरण मे ही आँखे खोली और उसीकी गोद मे फला-फूला। काल-भेद से प्रकृति के सम्बन्ध मे मानव की चिन्तन-धाराओ मे परिवर्तन होता रहा और वह प्रकृति के साथ नवीनतर सम्बन्धो से सम्बद्ध होता गया, उसके भाव-लोक मे प्रकृति के नये-नये रूप समाने लगे। मानव का यह भाव-लोक समय-समय पर काव्य-भूमि पर अवतीर्ण होता गया।

आदिकवि वाल्मीकि के महाकाव्य का प्रणयन प्रकृति की मधुर क्रोड मे ही हुआ। इनके काव्य मे प्रकृति का यथातथ्य चित्रण है। प्रकृति के चित्रो का सश्लिष्ट चित्रण ही इनके काव्य की पृष्ठभूमि है। सस्कृत के अमर महाकवि कालिदास और भवभूति भी इसी परम्परा के अन्तर्गत आते है। इन दोनो ने भी प्रकृति का सश्लिष्ट चित्रण ही किया है। शनै शनै मानव की आत्मा प्रकृति के जीवन मे नये-नये सम्बन्ध खोजती और उनकी अभिव्यक्ति करती गई। जायसी ने मानव-जीवन के साथ प्रकृति का तादात्म्य स्थापित किया। तुलसी ने प्रकृति के माध्यम से उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति की अभिव्यजना की। दीनदयाल गिरि ने अपनी अन्योक्तियो मे प्रकृति का खुलकर प्रयोग किया। रीतिकाल मे प्रकृति के उद्दीपन रूप का ही प्राबल्य रहा। उसका चक्र नायिका के इगितो पर ही चलता रहा। आधुनिक काल मे भारतीय विचारधारा पर यूरोपीय प्रभाव भी पडा। यूरोप के प्रकृतिवादी कवियो से हिन्दी के कवियो को प्रकृति-चित्रण की नई-नई प्रेरणाएँ मिली। क्रोचे ने तो यहाँ तक कह दिया—

"प्रकृति उसी व्यक्ति के लिए सुन्दर है जो उसे कलाकार की दृष्टि से देखता है। प्रकृति कला की समता मे मूर्ख है और मानव उसे जब तक वाणी नही देता, वह मूक है।"[1]

फलत मानव और प्रकृति के सम्बन्ध शतश धाराओ मे प्रवाहित होकर उमड पडे। प्रसाद, पन्त, महादेवी, निराला आदि ने प्रकृति मे अपनी विभिन्न मनोदशाओ का प्रतिबिम्ब विभिन्न रूपो मे चित्रित किया।

प्रकृति-वर्णन की विधाए

आधुनिक काल मे प्रकृति-वर्णन की अनेक विधाएँ है जिनमे से प्रमुख ये है—

१ **आलबन या यथातथ्य रूप मे**—इस रूप मे प्रकृति कवि के लिए साधन न रहकर साध्य बन जाती है। कवि प्रकृति का निरीक्षण करके उसके मनोरम रूप मे डूब जाता है। वह प्रकृति का परिगणन प्रणाली से वर्णन न करके सश्लिष्ट रूप मे वर्णन करता है। उसका मन प्रकृति के आकर्षण मे बध जाता है, वह आत्मविभोर हो उठता है।

२ **पृष्ठभूमि के रूप मे**—आलबन रूप और इस रूप मे थोडा-सा अन्तर है। आलबन रूप का कोई विशिष्ट प्रयोजन नही होता, केवल प्रकृति का सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करना होता है, किन्तु पृष्ठभूमि के रूप मे किया गया प्रकृति-वर्णन सप्रयोजन होता है। उसमे मानवीय भावो की छाया होती है।

३ **मानवीय भावनाओ के आरोप के रूप मे**—इस रूप मे प्रकृति के उपादानो के वास्तविक रूप मे किसी प्रकार की विकृति नही लाई जाती, परन्तु महत्त्व उन्ही उपादानो को दिया जाता है जो मानव की भावनाओ से साम्य रखती है।

४ **उद्दीपन रूप मे**—इस रूप मे प्रकृति मानवीय भावनाओ को उभारने का कार्य करती है। उद्दीपन रूप मे प्रकृति-चित्रण दो रूपो मे मिलता है—(१) जहाँ सयोग अवस्था मे प्रकृति प्रेमियो के आनन्द की भावनाओ को उद्दीप्त करने मे सहायक होती है। (२) जहाँ वियोग अवस्था मे प्रकृति प्रेमियो के विरह दुख को तीव्रतर बनाती है। सयोग मे प्रकृति का वर्णन षड्ऋतु के अन्तर्गत किया जाता है और वियोग मे बारहमासा के। इन विभेदो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण यही है कि सुख की घडियाँ देखते-देखते बीत जाती है और दुख का समय काटे नही कटता।

५ **प्रतीकात्मक रूप मे**—कवि अपनी भावना के आधार पर प्रकृति के उपादानो मे से अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए कुछ ऐसे प्रतीक चुन लेता है जो उसकी अभिव्यक्ति को अधिक सशक्त और प्रभावपूर्ण बना देते है।

६ **बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप मे**—इस रूप मे प्रकृति और मानवीय भावनाओ का साम्य परिलक्षित होता है।

---

१ Aesthetics, page 99

७ **उपदेशात्मक रूप मे**—यहाँ प्रकृति के माध्यम से उपदेश दिये जाते है।

८ **आलकारिक रूप मे**—इस रूप मे प्रकृति के उपादानो को सौन्दर्य के उपमान मानकर मानव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की जाती है।

९ **दूत के रूप मे**—जब प्रकृति से सदेशवाहक का कार्य लिया जाता है। कालिदास ने मेघ को दूत बनाया है, हरिऔध और गुप्तजी ने राधा और उर्मिला का सदेश पवन के द्वारा प्रेषित करने का वर्णन किया है।

१० **रहस्यात्मक रूप मे**—रहस्यवादी कवि प्रकृति मे परम तत्त्व के दर्शन करता है और इस प्रकार प्रकृति सौन्दर्य और सुषमा की निधि न रहकर रहस्य के गूढ तत्त्वो का अमित भडार बन जाती है।

११ **मानवीकरण के रूप मे**—इस रूप मे प्रकृति अचेतन न रहकर मानवात्मा की भाति सचेतन बन जाती है। प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप ही मानवीकरण है। छायावाद से पूर्व हिन्दी-साहित्य मे प्रकृति का मानवीकरण कम मिलता है।

प्रकृति-वर्णन की इन विविध विधाओ पर विहगावलोकन कर लेने के पश्चात् अब यह देखना है कि गीतिकाव्य मे किस प्रकार वर्णन उपयुक्त होता है और विद्यापति के काव्य मे यह उपयुक्तता किस सीमा तक प्राप्य है।

गीतिकाव्य और प्रकृति-चित्रण

श्री रामखेलावन पाण्डेय ने गीतिकाव्य और प्रकृति-चित्रण का सबध इन शब्दो मे प्रकट किया है—

"गीतिकाव्य मे अनुभूति और भावना की तीव्रता अपेक्षाकृत अधिक होती है। सवेदनशील क्षणो मे कवि की चेतना इतनी सजग और सक्षोभ्य होती है कि हलका से हलका स्पर्श उसे चचल कर देता है। इस स्पर्श का महत्त्व इस सवेदनशीलता के अनुसार होने और तीव्रता प्रदान करने मे है। इसलिए गीतिकाव्य मे शुद्ध प्रकृति-चित्रण का स्थान नही। शुद्ध प्रकृति-चित्रण से मेरा तात्पर्य प्रकृति के यथातथ्य चित्रण से है, बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव ग्रहण कराने से है।"[1]

विद्यापति का प्रकृति-चित्रण

विद्यापति के गीतो मे प्रकृति-चित्रण अनेक रूपो मे हुआ है, जिनमे से प्रमुख रूप निम्नलिखित है—

१. आलकारिक रूप
२. उद्दीपन रूप
३ मानवीकरण
४. आलबन रूप अथवा स्वतत्र चित्रण

१. गीतिकाव्य, पृष्ठ १३२

आलंकारिक रूप

विद्यापति ने अपने गीतो मे कृष्ण और राधा को आलवन तथा आश्रय बनाकर उन्हे प्रकृति के अनेक उपादानो से अलकृत किया हे। वस्तुत. विद्यापति सौन्दर्य के कवि है। इनका हृदय स्वाभाविक रूप से प्रकृति के सौन्दर्य की ओर आकर्षित हुआ है और इन्होने अपने काव्य मे प्राकृतिक सौन्दर्य और मानव-सौन्दर्य का अपूर्व सामञ्जस्य किया है।

राधा और कृष्ण के नख-शिख का वर्णन प्रकृति के उपमानो के द्वारा ही किया गया है। कही-कही तो प्रकृति का राधा के अवयवो पर प्रत्यक्ष आरोप है। यथा—

"माधब की कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन बिहि आनि समारल देखत नयन सरूपे॥
पल्लवराज चरन-युग सोभित गति गजराज क भाने।
कनक कदलि पर सिंह समारल तापर मेरु समाने॥
मेरु ऊपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि तजे नहि कमल सुखाई॥
अधर बिम्ब सन दशन दाडिम बिजु रवि ससि उगथिक पासे।
राहु दूर बस नियरो न आबथि तें नहि करथि गरासे॥
सारँग नयन बयन पुनि सारँग सारँग तसु समधाने।
सारँग ऊपर उगल दस सारँग केलि करथि मधुपाने॥"

कृष्ण के रूप-चित्रण मे भी कवि ने इसी प्रकार के उपमानो का प्रयोग किया है। जैसे—

"ए सखि पेखलि एक अपरूप। सुनइत मानवि सपन सरूप॥
कमल जुगल पर चाँदक माला। तापर उपजल तरुन तमाला॥
तापर बैठलि बिजुरी लता। कालिंदी तट धीरे-धीरे चलि जता॥
सखा सिखर सुधाकर पाँति। ताहि नव पल्लव अरुनक भाति॥
बिमल बिम्बफल जुगल विकास। तापर कीट थीर करु बास॥
तापर चचल खजन जोर। तापर साँपिन झाँपल मोर॥"

सौन्दर्य-निरूपण के लिए विद्यापति ने प्रकृति के परपरागत उपमानो को ही ग्रहण किया है। यथा—

"माधब की कहब सुन्दरि रूपे।
× ×
केलि करथि मधुपाने॥"

इस पद मे नायिका के चरणो के लिए कमल, चाल के लिए गज-गति, जघाओ के लिए कदलि, कटि के लिए सिंह, वक्षस्थल के लिये पर्वत, कुचो के लिए कमल-पुष्प, होठो के लिए बिम्बफल, दातो के लिए अनार के दाने, मुख के लिए चन्द्रमा, भौंहो के

लिए कामदेव का धनुष, आखो के लिए हरिण, स्वर के लिए पिक-स्वर, लटो के लिए भ्रमर का प्रयोग हुआ है। कवियो के लिए ये उपमान चिर-परिचित है।

परपरागत उपमानो का ग्रहण करके भी विद्यापति ने अपने काव्य के भाव और सौन्दर्य को किसी प्रकार की ठेस नही लगने दी है।

प्रकृति के माध्यम से सौन्दर्य और स्फुरणशीलता को साकार बना देना विद्यापति की अपनी विशेषता है। श्री रघुवश के शब्दो मे—

"विद्यापति ने सौन्दर्य के साथ यौवन की स्फुरणशील स्थिति का सकेत प्रकृति के माध्यम से दिया है। सौन्दर्योपासक प्रकृतिवादी प्रकृ के दृश्यात्मक रूप मे यौवन की व्यजना के साथ आकर्षित होता है, उसीके समानान्तर विद्यापति मानवीय सौन्दर्य के उल्लासमय यौवन से आकर्षित होकर प्रकृति रूप-योजना के माध्यम से उसे व्यक्त करते हैं।"[1]

कही-कही पर विद्यापति ने राधा के सौन्दर्य को व्यापकता प्रदान की है और इस व्यापकता मे प्रकृति का विकास दिखाया है। जैसे—

"जहँ जहँ पग जुग धरई। तहि-तहि सरोरुह झरई॥
जहँ-जहँ झलकत अग। तहि-तहि बिजुरि तरग॥
जहँ-जहँ नयन विकास। तहि-तहि कमल प्रकास॥"

यह वर्णन भी परपरागत ही है। तुलसी की सीता जी भी जिस ओर देखती है, उधर ही कमल-लोक बस जाता है। जायसी ने भी एक स्थान पर पद्मावती के सौन्दर्य का ऐसा ही वर्णन किया है—

"नयन जो देखा कवल भा निरमल नीर सरीर।
हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर॥"[2]

प्रकृति के जितने सुन्दर उपकरण है उनका सफल प्रयोग विद्यापति ने सौन्दर्य-निरूपण के लिए किया है।

उद्दीपन रूप

उद्दीपन रूप मे प्रकृति मानवीय भावनाओ को उत्तेजित करती है। सयोग मे यह मिलन-सुख का विस्तार करती है और वियोग मे विरह-दुख का। विद्यापति ने शृगार रस के अन्तर्गत प्रकृति के इस रूप का पर्याप्त प्रयोग किया है।

सयोग मे प्रकृति का प्रत्येक क्रिया-कलाप नायक और नायिका के सुख की वृद्धि करता है। वृन्दावन मे वसन्त के आ जाने पर सर्वत्र उल्लास का सागर उमड पडता है—

"नव बृन्दाबन नव-नव तरुगन नव-नव बिकसित फूल।
नवल बसन्त नवल मलयानिल मातल नव अलि कूल॥

---

१ प्रकृति और हिंदी काव्य, पृष्ठ ८१
२ जायसी ग्रन्थावली, पृष्ठ ७९

बिहरइ नवल किसोर ।
कालिंदी-पुलिन कुंज बन सोभन नब नब प्रम बिभोर ।।
नवल रसाल-मुकुल-मधु मातल नब कोकिल कुल गाय ।
नबयुवती गन चित उमताग्रई नब रस कानन धाय ।।"

प्रकृति के इस मादक प्रागण मे युवतियो का उन्मत्त हो जाना स्वाभाविक ही है । श्री रघुवश के ये शब्द तथ्यपूर्ण है—

"प्रकृति के उद्दीपन रूप की दृष्टि से विद्यापति मे लोक-गीतियो जैसी प्रवृत्ति मिलती है, परन्तु इन्ही कारणो से प्रकृति तथा जीवन मे भावो का प्रगुम्फन तीव्र हो उठता है । बसन्त का दृश्य-जगत् ग्रपने रूप मे ग्रधिक मादक है ।"[1]

जब समूचे वृन्दावन मे वसत-श्री ने ग्राकर नवीन मादकता घोल दी है तब नवयुवतियो के हृदयो मे उन्माद की तरगे उठेगी ही । यही नही, वे युवतियाँ ग्रगर स्त्रीसुलभ-लज्जा को भी चुनौती दे बैठी तो इसमे भी ग्राश्चर्य कुछ नही—

"नाचहु रे तरुनी तजहु लाज ।
ग्राएल बसन्त रितु बनिक राज ।।"

इसके विपरीत, यही मादक प्रकृति वियोग मे सतप्त करने वाली बन जाती है । तब नायिका को नव विकसित पत्तो से उल्लास नही मिलता, बल्कि वह ग्रपने विरह की लम्बी ग्रवधि का ज्ञान कर लेती है ग्रौर तब उसके उच्छ्वासो मे ग्रौर भी ग्रधिक तीव्रता ग्रा जाती है—

"बिपत ग्रपत तरु पाग्रोल रे,
पुन नव नव ताप ।
बिरहिन-नयन बिहल बिहि रे,
ग्रबिरल बरसात ।"

वर्षाऋतु तो विरहिणी के लिए कालस्वरूपा ही होती है । गगन मे घमड-घुमड कर ग्राते-जाते बादलो को देखकर उसका हृदय बैठ जाता है । उल्लसित मयूरो का स्वर उसकी वेदना को ग्रौर भी गहरी कर देता है—

"मोर बन बन सोर सुनइत
बढ़त मनमथ पीर ।
× ×
पचसर-सर छुटत रे कइसे
जीग्रए बिरहिन नारि ।"

वियोग मे समूची प्रकृति वेदनामयी हो जाती है । विद्यापति ने इसका काफी चित्रण किया है ।

---

१. प्रकृति ग्रौर हिन्दी-काव्य, पृष्ठ ४५०

एक बात और, सयोग मे प्रकृति-वर्णन षट्ऋतु के रूप मे होता है और वियोग मे बारहमासा के रूप मे। विद्यापति ने भी इसी परपरा का अनुसरण किया है।

मानवीकरण

अचेतन प्रकृति पर चेतना का आरोप ही मानवीकरण है। छायावादी काव्य की यह एक प्रमुख प्रवृत्ति है। विद्यापति की पदावली मे भी प्रकृति का इस रूप मे वर्णन मिलता है। यथा—

"माघ मास सिरि पचमी गँजाइलि
नवम मास पचमी हरुआई।
अति घन पीडा दुख बड पाओल
बनसपति भेलि धाई हे।"

इस पद मे वसन्त का बालक के रूप मे वर्णन किया गया है। बालक की उत्पत्ति की भाति ही वसन्त की उत्पत्ति भी वर्णित है। फिर वसन्त की युवावस्था आती है—

"बाल बसन्त तरुन भए धाओल
बढ़ए सकल ससारा।"

यही वसन्त फिर राजा बन जाता है। प्रकृति के अन्य उपादान इसे राजकीय समादर प्रदान करते है—

"आएल रितुपति राज बसत। धाओल अलिकुल माधबि पथ॥
दिनकर-किरन भेल पौगड। केसर कुसुम धएल हेमदड॥
नृप-आसन नब पीठल पात। काचन कुसुम छत्र धरु माथ॥
मौलिक रसाल-मुकुल भेल ताय। समुखहि कोकिल पचम गाय॥
सिखिकुल नाचत अलिकुल मत्र। द्विजकुल आन पढ आसिख मत्र॥"

छायावाद से पहले हिन्दी-साहित्य मे इस प्रकार का चित्रण बहुत कम है। विद्यापति ने अपने समय मे प्रकृति का मानवीय वर्णन करके अपनी महती प्रतिभा क परिचय दिया है।

स्वतंत्र चित्रण

गीतिकाव्य मे स्वतत्र चित्रण का अधिक अवकाश नही होता, इसलिए इस रू की ओर विद्यापति ने अधिक ध्यान नही दिया है। वसन्त-वर्णन मे केवल एक-दो प ही इस रूप मे मिलते है, अन्यथा पदावली मे इस रूप का अभाव-सा ही है। यथा—

"मधु रितु मधुकर पाँति। मधुर कुसुम मधु माँति॥
मधुर बृन्दाबन माँझ। मधुर मधुर रस साज॥
मधुर जुबति जन सग। मधुर मधुर रस रग॥"

वैसे यह वर्णन भी उद्दीपन के रूप मे लिया जा सकता है।

हैं। यह मन्तव्य सर्वथा निराधार है, क्योकि कृष्ण का विकाम ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व हो चुका था।

कृष्ण के अवतारी रूप का पूर्ण विकास पुराणो मे हुआ। हरिवशपुराण, वायुपुराण और भागवतपुराण मे गोपालकृष्ण की कथाओ का विस्तार है। हरिवशपुराण मे कृष्ण को गोपियो से सबद्ध कर दिया गया। विष्णुपुराण, पद्मपुराण और वायुपुराण मे भी कृष्ण की कथा सक्षेप मे वर्णित है, किन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराण मे इसका विस्तार है।

कृष्ण की लीलाएं

कृष्ण की लीलाओ की उत्पत्ति कृष्ण और गोपियो के सबध से सबद्ध है। सभवत आभीरो के द्वारा इन लीलाओ को प्रोत्साहन मिला, क्योकि उनमे बालगोपाल की पूजा प्रचलित थी। कुछ पाश्चात्य और भारतीय विद्वान् आभीरो को विदेशी मानते हैं, पर उनका यह मत निराधार है। कृष्ण और गोपियो की लीलाओ का स्रोत कोई बाह्य धर्म और देश नही। भारतीय साहित्य मे इनका उल्लेख ईसा से भी कई सौ वर्ष पूर्व से ही मिलता है। भास के नाटको मे कृष्ण-लीलाओ का उल्लेख है। श्री जायसवाल के अनुसार भास का समय ईसा से कई सौ वर्ष पहिले का है। वेदो मे कई स्थानो पर राधा, गोपा, अहि, वृपभानु, रोहिणी, कृष्ण और अर्जुन शब्द आए है। यद्यपि ये नाम ऐतिहासिक व्यक्तियो के नही, पर उनके नामो के आधार अवश्य हैं।

भक्ति के द्वितीय और तृतीय उत्थानकाल मे कृष्ण का अवतारी और अलौकिक चरित्र मिलता है, किन्तु भक्ति के तृतीय उत्थानकाल मे इनके रूप मे अन्तर आ जाता है।

"कृष्ण के साथ लीलाओ का सबध जुडता है। वेद मे आये गोप और व्रज शब्द को लेकर गोप-लीला प्रारभ होती है। सूतो की कल्पना के द्वारा इस गोप-लीला का सबध कृष्ण के बाल्यकाल से कर दिया जाता है। गोप-लीला का दार्शनिक पक्ष है। मानव की चित्तरजिनी वृत्ति को ही गोप-लीला के नाम से घोषित किया गया। गोपियो के साथ कृष्ण की लीलाएँ इसी चित्तरजिनी वृत्ति का विकसित रूप हैं। इन लीलाओ के लिए प्रकृति की सुरम्य गोद को चुना गया। कृष्ण की मुरली और मद-मद हास से सपूर्ण चराचर विमुग्ध हो गया। विष्णुपुराण तक यह गोप-लीला ही थी और उसमे अत्यन्त पवित्र भावना के साथ ही उसका चित्रण था। हरिवशपुराण मे इन लीलाओ और क्रीडाओ का वेग तीव्र हो जाता है। श्रीमद्‌भगवत् मे इसका रूप और प्रखर है, किन्तु वैवर्त्तपुराण मे राधा के आने से इन लीलाओ मे एक और अपूर्व शक्ति आ गई। प्रकृति और पुरुष की कल्पना भी हुई। प्रेम और अनुराग की मूर्ति राधा के आने से भक्ति तरगिनी मे लहर पर लहर आने लगी। जन-समाज आनदातिरेक मे थिरक उठा। भक्ति की इस आनददायिनी त्रिवेणी मे स्नान के लिए जनता मे भगदड मच गई और देखते-देखते भारतवर्ष का कोना-कोना इस रस से मग्न हो गया।"

विद्यापति के कृष्ण

विद्यापति की पदावली मे रहस्यवाद का दर्शन करने वाले विद्वानो को भले ही इनके कृष्ण मे अलौकिक तत्त्व दिखाई देते हो, किन्तु वस्तुत इनके कृष्ण एक सामान्य शृ गार-रसाभिभूत नायक ही हैं जो इनकी पदावली के प्रथम पद मे ही 'समय सकेत-निकेतन' मे बैठकर अत्यन्त व्याकुलता के साथ राधा की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जयदेव के कृष्ण की भाति ये भी दक्षिण नायक हैं और राधा को हर प्रकार से प्रसन्न करके उसका सहवास चाहते हैं।

पदावली के पदो को देखकर इसमे तनिक सदेह नही रह जाता कि विद्यापति की दृष्टि मे कृष्ण एक प्रेमी और शृ गारी जीव के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। तभी तो ये राधा का रूप वर्णन करते समय उन्हे उकसाते हैं—

१. "भनई बिद्यापति सुनउ मुरारि।
सुपुरुख बिलसरा से बर नारि।"

२. "बिद्यापति कह सुनु बर कान।
तरुनिय सैसब चिन्हइ न जान।"

३. "बिद्यापति कह सुनह मुरारि।
बसन लागल भाव रूप निहारि।"

इतना उकसाये जाने पर कृष्ण का मन तरगित हो ही उठता है। उन्हे एक दिन अकस्मात् राधा का साक्षात्कार हो जाता है और दोनो के हृदयो पर काम के बाण लग जाते हैं। फिर तो कृष्ण को राधा के पास अपनी दूती ही भेजनी पडती है जो वाग्बिलास से राधा को कृष्ण के अनुकूल करने मे सफल होती है। रास्ते मे रोक-टोक होने लगती है—

"कुंज-भवन सयँ निकसलि रे,
रोकल गिरिधारी।"

इसके बाद, मिलने के जो चित्र विद्यापति ने प्रस्तुत किए हैं, उनमे तो कृष्ण का रूप एकदम कामी जन का है—

"अधर मँगइते अओंध कर माथ।
सहए न पीर पयोधर हाथ॥
बिघरल नीबी कर धर जाँति।
अकुरल मदन, धरए कत भाँति॥"

कृष्ण मे दक्षिण नायक के गुण हैं। दक्षिण नायक वह होता है जो पर-स्त्री से प्रेम करके भी उसे छिपा लेता है। कृष्ण का चातुर्य भी देखिए—

"सुन सुन सुन्दरि कर अवधान।
बिनु अपराध कहसि काहे आन॥

पूजलों पसुपति जामिनि जागि।
गयन बिलम्ब भेल तेहि लागि।"

विलब होने का कितना अच्छा बहाना है। दक्षिण नायक झूठी शपथ खाने से भी कभी नही हिचकिचाता। कृष्ण भी ऐसा ही करते हैं—

"ए धनि माननि करह संजात।
तुअ कुच हेम-घट हार भुजगिनि,
ताक ऊपर धर हात।
ते हे छोडि जदि हम परसब कोय।
तुम हार-नागिन काटब मोय।"

कृष्ण का विरह भी उनकी शृ गारी भावना का ही द्योतक है—

"से बिनु राति दिबस नहि भावए
ताहि रहल मन लागी।
आन रमनि सयँ राज सम्पद माय
आछिए जइसे बिरागी।"

शृ गारी कवि विद्यापति के कृष्ण का स्वरूप निर्धारित करते हुए 'गीतिकार विद्यापति' के लेखक के ये शब्द उल्लेखनीय हैं—

"पदावली के कृष्ण को इष्टदेव मानकर उनके प्रति पवित्र भावनाएँ नहीं हो सकतीं। कृष्ण यौवन से उन्मत्त एक नायक के रूप मे ही दिखाई देते हैं। उनका राधा के प्रति जो प्रेम है वह आध्यात्मिक प्रेम नहीं, वरन् भौतिक प्रेम का विस्तृत वर्णन है। वह सौन्दर्य के उपासक हैं, पार्थिव प्रेम के पुजारी और शारीरिक बिलास मे रत रहने वाले नायक हैं।"[1]

राधा का विकास

कृष्णकाव्य मे शृ गार-रस की जो मधुर एव अबाध धारा प्रवाहित हुई है, उसमे राधा का योगदान अद्वितीय है। कृष्णभक्त कवियो ने राधा को मनचाहे भिन्न-भिन्न रूपो मे चित्रित किया है, किन्तु इन विभिन्न रूपो के चित्रण से इनका महत्त्व कुछ बढा ही है, घटा नही।

जो राधा कवियो के स्वरो मे शताब्दियो से थिरक बनकर थिरक रही है, उसका विकास क्या है? यह प्रश्न जितना स्वाभाविक है, इसका समाधान उतना ही आवश्यक है।

यह सत्य है कि कृष्ण और राधा एक-दूसरे के पूरक हैं, किन्तु यह भी सत्य है कि राधा का विकास कृष्ण की अपेक्षा बहुत समय पश्चात् हुआ। सर्वप्रथम राधा का सकेत भागवतपुराण मे मिलता है, किन्तु वहाँ राधा सज्ञा न होकर एक गोपी का ही

१. गीतिकार विद्यापति, पृष्ठ ४१

वर्णन है। भागवत के दशम स्कन्ध के तीसवे अध्याय मे एक गोपी का वर्णन है जो कृष्ण को अत्यन्त प्रिय थी। रासलीला के पश्चात् जब कृष्ण अन्तर्द्धान हो जाते हैं तो गोपियाँ उन्हे ढूंढती है। कृष्ण के पगचिन्हो के साथ ही उन्हे नारी के पगचिन्ह भी दिखाई देते है। वे कह उठती है—

"अनयाऽऽराधितो नून भगवान हरिरीश्वर।
यन्नो विहाय गोविन्द' प्रीतो यामनानयद्रह.॥"[१]

अर्थात् उसने अवश्य ही भगवान् हरिरीश्वर (श्रीकृष्ण) की आराधना की है, तभी तो वे हमे छोडकर प्रीतिपूर्वक उसे एकात मे ले गये है। सभवत यही गोपी आगे चलकर राधा नाम से अभिभूषित हुई हो।

राधा का नाम सर्वप्रथम गाथासप्तशती मे मिलता है जो प्रथम शताब्दी की रचना है। उसका एक श्लोक इस प्रकार है—

"मुहमारुएण त कह्_ण गोरअ राहिआएँ अवणेन्तो।
एताणँ बलवीण अण्णाणँ वि गोरअ हरसि॥"[२]

अर्थात् हे कृष्ण ! तुम राधा के नेत्रो की धूल अपने मुह की हवा से दूर कर दूसरी स्त्रियो का अभिमान दूर करते हो, या उसके गौरत्व का अपहरण करते हो ?

गाथासप्तशती के पश्चात् तो अनेक ग्रन्थो मे राधा का उल्लेख मिलता है। गाथा-सप्तशती की राधा की सृष्टि जनता मे प्रचलित परकीया नायिका के आधार पर है।

शृ गारिक रूप के अतिरिक्त राधा का एक अन्य रूप और है—धार्मिक। धार्मिक रूप मे राधा पुरुष की शक्ति के रूप मे चित्रित की गई है। इस रूप को सभवत वाममार्ग से महत्त्व मिला। वाममार्गियो ने नारी को अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया और उसे प्रत्येक साधना का आधार बनाया। कौलधर्म (वाममार्ग की एक शाखा) का मूल तो नारी पर ही आधारित है। जिस पुरुष के बाई ओर नारी नही, दाहिने हाथ मे मदिरा का प्याला नही वह कौलधर्म का सच्चा अनुयायी नही। नारी की इस महत्ता के कारण योनि की पूजा का प्रचलन हुआ और कालान्तर मे योनि-पूजा के साथ लिग-पूजा का भी विधान किया गया। नारी को शक्ति और पुरुष को शिव की सज्ञा दी गई। शाक्त मत से प्रभावित होकर भारत के अनेक धार्मिक सम्प्रदायो ने इसी रूप को ग्रहण किया।

ग्यारहवी शताब्दी मे जयदेव ने राधा के शृ गारिक रूप को ही अपनाया और उसे एक सामान्य नायिका के रूप मे चित्रित किया। चौदहवी शताब्दी मे निम्बार्क और विष्णुस्वामी ने राधा के शृ गारिक रूप मे अलौकिकता का समावेश करके उसे फिर से

१. भागवतपुराण, १०।३०।२४
२ गाथासप्तशती, १।२९

धार्मिक रूप दिया। आगे चलकर अष्टछाप के कवियो ने राधा की केलि-क्रीडाओ को प्रतीकार्थ देकर वैष्णव-भक्ति मे राधा का स्थान उच्च से उच्चतर बना दिया।

विद्यापति की राधा

विद्यापति जयदेव की परम्परा मे आते है। जयदेव ने अपने काव्य का प्रयोजन यह बताया है—

"यदि हरिस्मरणेसरस मनो यदि विलासकलासु कुतुहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावली शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥"[1]

पर प्रधानता 'विलासकलासु कुतुहलम्' की ही रही है। इसी प्रकार विद्यापति का काव्य भी निश्चय ही नागरो (रसिको) के मन को मोहने वाला है—

"ई निच्चय नाअर मन मोहहि।"

ऐसे काव्य मे राधा का सामान्य नायिका के रूप मे अवतरित होना स्वाभाविक ही है। विद्यापति की पदावली मे प्रतीकार्थ ढूंढने वाले आलोचको को राधा भले ही अलौकिकता के आवरण मे निहित दिखाई दे, पर यह 'आवरण उनके दुराग्रह की ही परिणति है, अन्यथा विद्यापति की राधा यौवन के भार से युक्त, रूप की काति से देदीप्यमान और शृगारिक तरगो से तरगित नायिका के अतिरिक्त और कुछ नही है।

पदावली का प्रारम्भ ही उस पद से होता है जिसमे कृष्ण राधा की प्रतीक्षा मे अत्यन्त व्याकुल है और जिसमे विद्यापति उसे कृष्ण से मिलने के लिए प्रेरित करते है—

"सामरि, तोरा लागि
अनुखन बिकल मुरारि।"

यहा 'सामरि' शब्द भी विशेष ध्यान देने योग्य है। विद्यापति ने राधा को श्यामा नायिका बताया है। श्यामा का लक्षण इस प्रकार बताया गया है—

"शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे च सुखशीतला।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते।"

यदि पदावली के अन्य पदो को छोडकर इसी पृष्ठभूमि पर विचार किया जाए तो राधा सामान्य नायिका ही सिद्ध होती है, किसी अलौकिक अर्थ की प्रतीक नही।

विद्यापति ने राधा का वर्णन नायिका-भेद के अन्तर्गत ही किया है। वय सधि मे राधा अज्ञात यौवना है—

"मुकुर लई अब करई सिंगार।
सखि पूछइ कइसे सुरत-बिहार।
निरजन उरज हेरइ कत बेरि।
हँसइ से अपन पयोधर हेरि।"

१ गीतिगोविन्द

सखी से सुरत-विहार के विषय मे पूछना और निर्जन स्थान पर उरोजो को देखना राधा के चित्र मे वासना की गहरी लकीर खीच देते हैं।

नख-शिख वर्णन मे भी विद्यापति ने सौन्दर्य के द्वारा वासना की भावनाओ को ही उत्तेजित करने का प्रयास किया है और इस प्रकार राधा को काम-पुत्तलिका बना दिया है। ऐसी यौवनोन्मादिता युवती का स्मरण भी रसिको के पुण्यो का ही फल है—

"भनइ विद्यापति पूरब पुन तट
ऐसनि भजए रसमन्त रे।"

क्योकि ऐसी कामिनी का गढ लेना विधि के विधान की भी अपूर्वता है—

"जुग-जुग के बिहि बूढ़ निरस उर
कामिनि कोने गढ़ ली।"

स्नान करते समय वह देखते ही कामदेव के पाचो वाणो से मारती है, मुनि-जन के हृदयो मे भी काम-सचार करने मे समर्थ है, नीबी बधन के खोलने पर सभी मनोरथो को पूर्ण करने वाली है। प्रेम-प्रसंग मे कृष्ण को देखते ही सुधि-बुधि हीन हो जाती है और गरुड़ से पख मागकर कृष्ण के दर्शन करके अपना मनोरथ पूर्ण कर लेना चाहती है। अपनी दूती के द्वारा अपना सदेश कृष्ण के पास भेजती है। वह वाग्विदग्धा भी है। अपना इरादा कृष्ण पर किस प्रकार प्रकट कर देती है—

"आइलि सखि सब साथ हमार।
से सब भेलि निकहि बिधि पार।"
× × ×
'हम अबला कत कहब अनेक।
आइति पडले बुझिअ बिबेक।
तोहें पर नागर हम पर नारि।
कांप हृदय तुम प्रकृति बिचारि।"

अपने अकेलेपन की सूचना देकर कृष्ण की (रसिक) प्रकृति से अपने डरने की बात कहना, क्या अर्थ रखता है इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। स्वय को परस्त्री और कृष्ण को परपुरुष कहना तो इस अनुमान को और भी सरल बना देता है। ऐसी स्थिति मे दूलह' कवि की यह पक्ति अत्यन्त सार्थ हो उठती है—

" 'हा' ते भली 'नाहीं' कहाँ ते सीखि आई हौ।' "

सखी-शिक्षा मे राधा की सखियाँ उसे काम के ही पाठ पढाती हैं। एक सखी कहती है—

"सुनु सुन्दरि नब मदन-पसार।
जनि गोपह आओब बनियार।

रोस दरस कस राखब गोए ।
धएले रतन अधिक मूल होए।"

क्योंकि—

"आरति गाहक महँग बेसाह।"

इन पक्तियो मे केलि-क्रीडा का कितना निगूढतम रहस्य अन्तर्निहित है, इसे रसज्ञ पाठक भली-भाति सोच सकते हैं।

और विरह मे तो राधा के चिर-दबोचे भाव फूट ही पडते हैं। कृष्ण के वियोग से उसे अपने आमोद-प्रमोद ही खडित होते दिखाई देते है—

"हमरो रग रभस लए जएबह
लएबह कोन सँदेस।"

यही नही, उसे वियोग मे बार-बार अपने उस यौवन का ध्यान आता है, जिसका कृष्ण के वियोग मे कोई मूल्य नही। यह बात वास्तविक भले ही हो, किन्तु मासल भी अधिक है। केवल रति को सर्वस्व समझने वाले हृदय से ही ऐसे उद्गार निकल सकते हैं। उसकी स्मृति मे मिलन की मधुर बातो मे से यदि कोई आती है तो यह कि कृष्ण सभवत अभी भी उसे बालिका समझते है, पर अब वह बालिका नही रह गई है। जिस दिन के लिए उसने अपने यौवन को पाला-पोसा है वह दिन तो आ गया, परन्तु कृष्ण के बिना चिर-सजोई मधुरतम आशा का हनन ही हो गया—

"आस क लता अगाओल सजनी
नयन क नीर पटाय।
से फल अब तरुनत भेल सजनी
आँचर तर न समाय।
काँच साँच पहु देखि गेल सजनी
तसु मन भेल कुह भान।
दिन-दिन फल तरुनत भेल सजनी
अहु खन न करु गेआन।"

कहने का अभिप्राय यह है कि विद्यापति की राधा किसी प्रतीकार्थ का आरोपण न होकर एक सामान्य नायिका है जिसकी नस-नस मे रूप-यौवन के साथ वासना का गहरा लाल रग दौड रहा है। इस प्रसग मे डा० रामकुमार वर्मा का यह कथन असदिग्ध है—

"(विद्यापति की) राधा का प्रेम भौतिक और वासनामय प्रेम है। आनन्द ही उसका उद्देश्य है और सौन्दर्य ही उसका क्रिया-कलाप। यौवन ही से जीवन का विकास है…राधा का शनैः-शनैः विकास, उसकी वय सधि, दूती की शिक्षा, कृष्ण से मिलन,

मान, विरह आदि उसी प्रकार लिखे गये हैं जिस प्रकार किसी साधारण स्त्री का भौतिक प्रेम। 'कृष्ण और राधा साधारण पुरुष-स्त्री हैं। राधा तो उस सरिता के समान है जिसमे भावनाएं तरगो का रूप लेकर उठा करती हैं। राधा स्त्री है और केवल स्त्री। उसका अस्तित्व भौतिक ससार मे ही है। उसका बाह्य रूप जितना आकर्षक है, आन्तरिक नहीं। उसकी चितवन मे कामदेव के बाण हैं, पाँच नहीं वरन् सभी दिशाओ मे छूटे हुए सहस्रबाण।"[1]

---

[1] हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५०६

विलक्षिता—गुप्ता नायिका जब प्रयत्न करने पर भी भाव अथवा सुरत का गोपन नही कर पाती तो वह विलक्षित हो जाने के कारण विलक्षिता कहलाती है ।

कुलटा—जिसका अनेक पुरुषो से सम्बन्ध हो ।

अनुशयाना—सकेत-स्थान के नष्ट हो जाने के कारण, समय पर वहा न पहुच सकने के कारण अथवा नायक से मिलने की सभावना न रहने के कारण पश्चात्ताप करने वाली नायिका अनुशयाना होती है ।

मुदिता—अनुशयाना के विपरीत परिस्थिति वाली अर्थात् सभोग शृगार की सभावना से मुदित होने वाली नायिका मुदिता कहलाती है ।

साधारणी के प्रेम को विशेष महत्त्व नही दिया गया क्योकि उसके प्रेम मे हृदय का सहयोग नही, स्वार्थ का हाथ होता है । वह धन के लिए ही प्रेम करती है ।

अवस्था के आधार पर नायिकाओ के आठ भेद किए गये है—स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, कलहान्तरिता, वासकसज्जा, विप्रलब्धा, विरहोत्कठिता, खडिता और प्रोषितपतिका ।

स्वाधीनपतिका—जिस नायिका का पति अन्यत्र आसक्त न होकर उसके ही अधीन रहता है, उसके शृगार करने मे रुचि लेता है और सदैव उसके ही पास बैठा रहना चाहता है ।

अभिसारिका—जो अभिसार के लिए सकेत स्थल पर जाती है । इसके दो भेद है—शुक्लाभिसारिका और कृष्णाभिसारिका ।

कलहान्तरिता—जो नायिका प्रणय-कलह मे प्रवृत्त होकर नायक की उपेक्षा करती है और नायक के निराश होकर चले जाने पर दुखी होती है ।

वासकसज्जा—जो प्रसाधन से सज्जित होकर प्रियतम की प्रतीक्षा मे लीन रहती है ।

विप्रलब्धा—जो नायिका सकेत-स्थल पर जाकर भी नायक को नही पाती ।

विरहोत्कठिता—जो नायिका रातभर प्रतीक्षा करने के बाद भी नायक से नही मिल पाती और तत्कारण अत्यन्त उद्विग्न हो उठती है ।

खडिता—अन्य नायिका के सभोग-चिन्ह धारण किए हुए प्रात काल ही यदि नायक नायिका के पास पहुचता है तो वह खडिता कहलाती है ।

प्रोषितपतिका—प्रवासी पति की वियोगिनी नायिका को प्रोषित पतिका कहते है । इसके तीन भेद है—

(**अ**) **प्रवत्सत्पतिका**—जिसका पति परदेश मे है ।

(**ब**) **प्रवत्स्यत्पतिका**—जिसका पति परदेश जाने वाला है ।

(**स**) **आगतपतिका**—जिसका पति परदेश से आ तो गया है, किन्तु अभी मिलन नही हुआ ।

दशा के भेद के आधार पर नायिकाओ के तीन भेद है—अन्यसभोग-दुखिता, गर्विता और मानवती।

अन्यसभोगदुखिता—नायक के पास प्रेषित अपनी सखी वा दूती को सुरत-चिन्हो से नायक द्वारा सभुक्त अनुमान करके अथवा सपत्नी के शरीर पर सुरत-चिन्हो को देखकर तीव्र वेदना अनुभव करने वाली नायिका अन्यसभोग-दुखिता कहलाती है।

गर्विता—जिसे किसी प्रकार का गर्व हो। इसके अनेक भेद हो सकते है। यथा—प्रेमगर्विता, सुरतगर्विता, गुणगर्विता, रूपगर्विता आदि।

मानवती—जो मान करने वाली नायिका हो।

प्रेमस्तर के आधार पर नायिकाओ के दो भेद होते है—ज्येष्ठा और कनिष्ठा। ज्येष्ठा पर नायक का पूर्ण प्रेम होता है और कनिष्ठा पर अपेक्षाकृत कम।

इनके अतिरिक्त नायिका की कुछ सहायिकाए भी होती है। दूती-भेद मे साहित्य-दर्पणकार ने सखी, नटी, दासी, धाय-पुत्री, पडोसिन, सन्यासिनी, शिल्पकार की स्त्री आदि का उल्लेख किया है। ये सहायिकाए भी नायिकाभेद के अन्तर्गत आती है।

विद्यापति का नायिका-भेद

पदावली मे समूचा नायिका-भेद नही खोजा जा सकता और न इतनी-सी छोटी रचना मे यह सभव ही है, तथापि अधिकाधिक नायिकाओ के भेद पदावली मे उपलब्ध हैं। पदावली की राधा का स्वरूप निर्धारित करते हुए डा० ओम्प्रकाश के ये शब्द उपयुक्त ही है—

"नायिका-भेद की प्रथा के अनुसार राधा के भी अनेक रूप हैं जिनमे से विद्यापति को उस राधा मे अधिक रुचि है जो समाज के बन्धनो को तोडती हुई प्रेम की कसौटी पर कसकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करती है, अर्थात् वह स्वकीया की अपेक्षा परकीया अधिक है, प्रौढा की अपेक्षा मुग्धा अधिक है और खडिता की अपेक्षा अभिसारिका अधिक है।"[१]

नायिका-भेद से सम्बन्धित पदावली के कतिपय उदाहरण देखिए—

मुग्धा नायिका

'रसराज' मे मुग्धा की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

"अभिनव जोबन आगमन, जाके तन मे होई।
ताको मुग्धा कहत हैं, कवि कोविद सब कोई।"

अर्थात् जिसके जीवन मे नव-यौवन का सचार हो, उसे विद्वान् कवि मुग्धा कहते हैं। विश्वनाथ महापात्र ने मुग्धा मे पाँच विशेषताए मानी है—(१) यौवन का प्रथम अवतार, (२) काम का प्रथम सचार, (३) रति मे वामाचरण, (४) मान मे मृदुता, और (५) लज्जाधिक्य। विद्यापति की मुग्धा यौवन का प्रथम अवतार है। उसका रूप मडित करने के लिए हरिण, इन्दु, अरविन्द, करिणी, हेम और पिक एक ही स्थान

१. आलोचना की ओर, पृष्ठ २१

पर एकत्र हो गये है। उसका रूप-सौन्दर्य देखकर करोडो कामदेव का मर्दन करने वाले कृष्ण भी सज्ञाहीन होकर भूमि पर गिर पडते है । यौवन के साथ ही उसमे काम का भी सचार हुग्रा है। वह मुकुर लेकर बार-बार शृगार-साधन करती है और बार-बार ग्रपनी सखी से सुरति-विहार के विषय मे पूछती है। लज्जा की तो मानो वह साक्षात् देवी ही है। जिस प्रकार हरिणी दत्तचित्त होकर सगीत सुनती है, उसी प्रकार वह रस-कथा मे निमग्न होकर भी लज्जा के ग्रावरण से विहीन नही हो पाती। कृष्ण के सम्मुख ग्रपना सर्वस्व न्यौछावर करके भी वह निर्निमेष दृष्टि से उन्हे नही देख पाती—

"ग्रवनत ग्रानन कए हम रहलिहु ·
बारल लोचन चोर।
पिया मुख-रुचि पिबए धाग्रोल
जनि से चाँद चकोर।
ततहुँ सयँ हठ हरि मो ग्रानल
धएल चरनन राखि।
मधुप मातल उडए न पारए
तइग्रग्रो पसारए पाँखि।"

यही ग्रवस्था बिहारी की मुग्धा नायिका की भी है। समान स्मर और सकोच के वश मे पडकर विवश हुई वह नायिका किसी भी एकदशा मे स्थिर नही रह पाती। नायक को देखने के लिए बार-बार उझकती है, छिपती है ग्रौर फिर छिप-छिपकर उझकती है—

"समरस-समर-सकोच-बस-बिबस न ठिक ठहराइ।
फिरि फिरि उझकति, फिरि दुरति, दुरि दुरि उझकति जाइ।"[1]

ग्रौर मतिराम की मुग्धा तो कृष्ण को देखते ही किकर्त्तव्य-विमूढ हो जाती है—

'देखत ही नन्दलाल को, बाल के पूरि रहे ग्रँसुग्रन दृगचल।
बात कही न गई, सु रही गहि, हाथ दुहूँ सो सहेली के ग्रचल।"

मध्या

मध्या मे लज्जा ग्रौर उत्कठा समान स्तर पर होती है। मुग्धा की भाति न तो उसकी कामना पर लज्जा का गहरा ग्रावरण होता है ग्रौर न प्रौढा की भाति ग्रभि-प्राय की स्पष्ट ग्रभिव्यक्ति। उसके शब्दो मे ग्रौर कार्यो मे लज्जा ग्रौर कामना का समन्वय होता है। विद्यापति की मध्या का कथन देखिए—

"तुग्र गुन गौरब सील सोभाब।
सुनि कए चढ़लिहुँ तोहरि नाब।
× × ×

---

१. बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ २१७

आइलि सखि सब साथ हमार।
से सब भेलि निकहि बिधि पार।
× × ×
तोहँ पर नागर हम पर नारि।
काँप हृदय तुअ प्रकृति बिचारि।"

इन पक्तियो मे नायिका ने अपना अभिप्राय प्रकट कर दिया है, किन्तु उस पर लज्जा का आवरण पडा हुआ है। इस पद का विश्लेषण करते हुए श्री कुमुद विद्यालकार ने लिखा है—

"तुअ गुन गौरब सील सोभाव सुनि, कए चढलिहुँ तोहरि नाब' से एक-एक कदम बढते हुए 'तोहँ पर नागर हम पर नारि, काँप हृदय तुअ प्रकृति बिचारि' तक पहुँच कर यदि आप स्त्री-हृदय को नही समझ सकते तो आप निश्चय ही कुछ नहीं समझ पाएगे।"[1]

बिहारी की मध्या हृदय से लगकर और रति-सुख प्राप्त करके भी आँखे खोल-कर नायक को नही देख पाती—

"लहि रति सुखु लगियै हियैं, लखी लजौंही नीठि।
खुलति न सो मन बँधि रही, वहै अधखुली डीठि।"[2]

और मतिराम की मध्या नायिका मे तो कामना और लज्जा स्पष्ट ही प्रकट हो जाती है—

"सैनन चरच गई, गौननि थकित भई,
नैनन मे चाह करै, बैनन मे नहियाँ।"

प्रौढ़ा

प्रौढा मे कामना की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। उसके कार्यों मे और वचनो मे लज्जा का बधन नही रह पाता। तभी तो विद्यापति की प्रौढा स्पष्ट कह देती है—

"अबहुँ तेजहु पहु मोहि न सुहाए।
पुनु दरसन होत मदन दोहाए।"

कामदेव की शपथ लेकर फिर से मिलने की प्रतिज्ञा करने मे लज्जा का कोमल आवरण ठहर ही कहा सका है? इससे अधिक स्पष्टतम अभिव्यक्ति नारी के वचनो मे सभव भी नही, साधारणी नायिका की बात और है। विदग्ध-विलास का वर्णन तो प्रौढा के मुह से ही सभव है।

बिहारी की प्रौढा तो विपरीत-रति मे भी जूझ पडती है—

---

१ विद्यापति की पदावली कुमुद, पृष्ठ १२५
२ बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ २६६

परयौ जोरु विपरीत रति रुपी सुरत रनधीर ।
करत कुलाहल किंकनीं गह्यौ मौन मंजीर ।"[1]

विद्यापति की प्रौढा भी विपरीत रति मे कम नही—

"आकुल चिकुर बेढलि मुख सोभ ।
राहु कएल ससि-मडल लोभ ।
बड अपरुब हुई चेतन मेलि ।
विपरित रति कामिनि कर केलि ।
कुच विपरीत बिलम्बित हार ।
कनक कलस बम दूध क धार ।
पिय मुख समुखि चूमि तजि श्रोज ।
चाँद अधोमुख पिबए सरोज ।
किंकिन रटत नितम्बनि छाज ।
मदन - महारथ बाजन बाज ।"

गुप्ता

गुप्ता प्रेम-व्यापार को छिपाने का प्रयास करती है। विद्यापति ने 'छलना' शीर्षक मे इसका अत्यत विस्तार से वर्णन किया है। यदि बिहारी की नायिका सुरत-गोपना मे चतुर है—

"लटकि लटकि लटकत चलत डटत मुकुट की छाह ।
चटक भर्यौ नट मिलि गयौ अटक भटक बन माह ।"[2]

तो विद्यापति की नायिका मे भी कम चातुर्य नही। दन्तक्षत को छिपाने के लिए वह कैसी कथा गढती है—

'कुसुम तोरय गेलहुं जाहाँ ।
भमर अधर खडल ताहाँ ।"

और हार तथा चूडी फूटने का यह बहाना भी कम चातुरी का नही—

"खरि नरि-बेग भासलि नाई ।
धरए न पारथि बाल कन्हाई ।
ते धँसि जमुना भेलहुं पार ।
फूटल बलुश्रा टूटल हार ।"

विदग्धा

विदग्धा नायिका अपने कार्यों से या वचनो स अपनी मन स्थिति को छिपाती

---

१. बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ ५८
२ बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ ७१

है। इसलिए इसके दो भेद हैं—क्रियाविदग्धा और वाग्विदग्धा। विद्यापति की क्रिया-विदग्धा का उदाहरण देखिए—

"दाहिनि नयन पिसुन गन बारल
परिजन बामहि आध।
आध नयन-कोने जब हरि पेखल।
तँ भेल अत परमाद।"

विद्यापति की नायिका की अपेक्षा बिहारी की नायिका अत्यधिक विदग्धा है। वह अपनी मन स्थिति को अधिक प्रभावशाली ढग से व्यक्त कर पाती है—

"लखि गुरुजन बिच कमल सौं सीस छुआओ स्याम।
हरि सन्मुख कर आरसी हिये लगाई बाम॥"

विलक्षिता

जब गुप्ता नायिका का भडाफोड हो जाता है तो वह विलक्षिता कहलाती है। राधा की सखिया उसके समस्त रहस्यो को समझ लेती हैं—

"सामरि हे झामरि तोर देह।
की कह का सयँ लाएलि नेह।
नीद भरल अछ लोचन तोर।
कोमल बदन कमल-रुचि चोर।
निरस धुसर करु अधर पवार।
कोन कुबुधि लुहु मदन-भडार।"

अभिसारिका

गुरुजनो के भय से गृह-त्याग करके सकेत-स्थल पर नायक से मिलने के लिए जाने वाली नायिका अभिसारिका कहलाती है। इसके दो भेद है—शुक्लाभिसारिका और कृष्णाभिसारिका। शुक्लपक्ष मे विचरण करने वाली नायिका शुक्लाभिसारिका और कृष्णपक्ष मे विचरण करने वाली कृष्णाभिसारिका होती है। विद्यापति ने अभिसारिका नायिका का खूब जी खोलकर वर्णन किया है। इनकी अभिसारिका की उत्कठा इतनी अदम्य है कि भयानक अँधेरी रातो मे भी, जीवन-मरण का प्रश्न बनने पर भी, दमित नही होती। इसी अदम्य भाव के कारण कुछ आलोचको ने इसे आत्मा का परमात्मा की ओर प्रयाण माना है। वस्तुत यह केवल नायिकाभेद की ही करामात है, किसी अलौकिक अर्थ की व्यजना नही। विद्यापति की शुक्लाभिसारिका अपनी सखी से कहती है—

"धबल बसन तनु झँपाएब
गमन करब मदा।
जइयो सगर गगन ऊगल
सहस सहस चदा।"

चाहे आकाश मे हजारो चन्द्रमा निकल आए, पर विद्यापति की नायिका निश्चित स्थान पर जाकर ही रहेगी। वह श्वेताम्बरो से अपने शरीर को इस प्रकार ढाँप लेगी कि कोई उसे देख ही नही पाएगा। पर बिहारी की अभिसारिका तो चादनी मे ही मिल जाती है—

"जुवति जोन्ह मे मिल गई नेकु न परति लखाइ।
सौंधे के डोरन लगी अली चली सग जाइ।"[1]

मानवती

प्रिय से रुष्ट होने वाली नायिका मानवती कहलाती है। विद्यापति ने मान का भी विस्तृत वर्णन किया है। रुष्ट राधा अपनी सखी से कहती है—

"मधु सम बचन कुलिस सम मानस
प्रथमहि जानि न भेला।
अपन चतुरपन पिसुन हाथ देल
गरुअ गरब दुर गेला।
सखि हे, मन्द प्रेम परिनामा।"

प्रोषितपतिका

प्रोषितपतिका का भी विद्यापति ने सविस्तार वर्णन किया है। इसके तीन भेद होते है—

१ प्रवत्सत्पतिका—जिसका पति परदेश मे है।

२ प्रवत्स्यत्पतिका—जिसका पति परदेश जाने वाला है।

३ आगतपतिका—जिसका पति परदेश से आ तो गया है, किन्तु अभी मिलन नही हुआ है।

पदावली मे प्रथम दो भेद ही मिलते है। प्रवत्स्यत्पतिका का उदाहरण देखिए—

"सखि हे बालम जितब विदेस।
हम कुलकामिनी कहइत अनुचित
तोहहुँ दे हुनि उपदेस।"

× × ×

"माधव, तोहे जनु जाइ बिदेस।
हमरो रग रभस लए जएबह
लएबह कौन सदेस।"

परन्तु कृष्ण न रुके। वे विदेश चले ही गए। फिर तो राधा प्रवत्सत्पतिका बन ही जाती है—

---

१. बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ ७

"माधव हमर रहल दुर देस।
केश्रा न कहइ सखि कुसल सनेस।"

यद्यपि नायिका भेद का आग्रह विद्यापति मे अनुमानित नही होता, क्योकि जयदेव जैसे नायिका-भेद का इनमे अभाव है, तथापि पदावली मे यथासभव अधिकाधिक भेद चित्रित हुए हैं।

अत मे एक प्रश्न का समाधान भी आवश्यक है। प्रश्न यह है कि विद्यापति की राधा स्वकीया है या परकीया ? जयदेव की भाति विद्यापति की राधा भी स्वकीया ही है। डा० रामरतन भटनागर ने लिखा है—

"विद्यापति के पदो से नायिका का रूप स्पष्ट नही है, परन्तु कलहान्तरित और विप्रलब्धा दशाए स्वकीया की ही होती है, परकीया की नहीं। अत उनकी नायिका भी स्वकीया है।"[1]

हमारी समझ से विद्यापति ने राधा का स्वकीया रूप स्पष्ट कर दिया है, इसलिए ऐसे अनुमान लगाने की आवश्यकता नही। अनेक बार विरह वर्णन मे राधा की स्थिति ही नही, उसके कृष्ण के प्रति सबोधन भी स्वकीया के परिचायक है। यथा—

"सखि हे बालम जितब विदेस।
× × ×
क सयन सखि सूतल रे
आछल बालम निसि मोर।
× × ×
सखि मोर पिया।
× × ×
के पतिश्रा लए जाएत रे
मोरा पियतम पास।"

ऐसे सबोधनो का साहस अपनी सखी से स्वकीया मे ही हो सकता है।

---

१. विद्यापति, पृष्ठ ६६

: १५ :

विद्यापति का लोकपक्ष

पाश्चात्य से कला कला के लिए या कला जीवन के लिए उठने वाला विवाद अब प्राय गतिशून्य सा ही हो गया है। धरा के वक्षस्थल पर नित नवीनता धारण करने वाले सघर्षो से मस्त होकर केवल कल्पनाजीवियो को भले ही कला और लोक का कोई सबध आज भी मान्य न हो, किन्तु भारतीय परम्परा साहित्य और लोक से समुचित गठबधन की रही है। अत प्रत्येक महाकवि की रचनाओ मे इस गठबधन का स्वरूप देखने को मिलता है और वस्तुत यही उसकी महानता का कारण भी है। तुलसी का लोक-नायकत्व इसी तथ्य पर आधारित है।

विद्यापति की दृष्टि भी सदैव लोकपक्ष पर रही है। इन्होने अपने सभी काव्यो मे लोकधर्म का सत्सदेश दिया है। हा, पदावली के विषय मे इस सबध मे कुछ विवाद अवश्य किया जा सकता है, किन्तु यदि इसका सम्यक् अध्ययन किया जाए तो यह निष्कर्ष सहज ही निकल आता है कि पदावली की शृगार-वीचियो मे बेतहाशा बहकर भी विद्यापति लोकपक्ष को भूल नही पाए है। पदावली का सत्सदेश गुप्त प्रेम की भर्त्सना और उसका दुष्परिणाम-प्रदर्शन है।

पदावली का काल और वातावरण

पदावली जिस काल और वातावरण मे रची गई, वह घोर शृ गारिक था। साधारण लोगो की तो कौन कहे, भक्ति-सप्रदायो के प्रणेता भी माधुर्यभाव के नाम से भक्ति मे शृगार का अमित समावेश कर चुके थे। जीवन और जगत् का कोई कोना शृ गार-रस से अछूता न रह गया था। राजा शिवसिह और लखिमादेवी तो, जिनके आश्रय मे कवि ने अपने पदो की रचना की, शृ गार-रस के आगर ही थे। राजा शिवसिह इस रस के पूर्ण ज्ञाता थे—

> **"भनइ बिद्यापति इहो रस जान।**
> **नृप सिबसिघ लखिमा बिरमान।"**

ऐसी परिस्थितियो मे विद्यापति को जो कुछ भी कहना था, वह शृगार के माध्यम से ही सभव था। प्रत्येक महाकवि अवसर की नब्ज़ पहचानता है और उसी के अनुसार अपने सदेश का प्रसार और प्रचार करता है। महाकवि विद्यापति ने भी ऐसा ही किया। इन्होने शृगार के द्वारा ही अपने सदेश को सुनाया।

इस मे तनिक भी सदेह नही कि पदावली की रचना करते समय तत्कालीन असीम शृङ्गारिकता के विरुद्ध विद्यापति के हृदय मे कुछ-कुछ क्षोभ अवश्य था जो आगे चलकर प्रार्थना और नचारी के पदो मे फूट पडा। उदाहरणार्थ कुछ पद देखिए—

"किए मानुस पसु पखि भए जनमिए
अथवा कीट पतग।
करम बिपाक गतागत पुनु पुनु
कति रह तुअ परसग।"

अथवा—

"जाबत जनम नहि तुअ पद सेबिनु
जुबती मनि मय मेलि।
अमृत तजि हलाहल किए पीअल
सम्पद आपदरि भेलि।"

या—

"हर जनि बिसरब मो ममिता,
हम नर अधम परम पतिता।"

ऐसे पद किसी एक दिन की अनुभूति नही, बल्कि चिरसचित विक्षोभ की प्रतिक्रिया है। इससे यह ज्ञात होता है कि पदावली की रचना करते समय भी विद्यापति के हृदय मे इस प्रतिक्रिया के अकुर अवश्य विद्यमान थे।

पदावली मे सुभाषित वाक्य और अन्योक्ति

पदावली मे ये अकुर दो रूपो मे देखे जा सकते है। एक तो सुभाषित वाक्यो के रूप मे और दूसरे कथा की अन्योक्ति के रूप मे। सुभाषित वाक्यो के उदाहरणार्थ इस प्रकार की पक्तिया प्रस्तुत की जा सकती है—

"दुहु मुख हेरइत दुहु भेल भोर।
समय न बूझय अचतुर चोर।"

× × ×

"जकर हिरदय जतहि रतल से धसि ततही जाए।
जइओ जतने बाधि निरोधिए निमन नीर थिराए।"

× × ×

"भनइ बिद्यापति गाओल ना।
दुख सहि सहि सुख पाओलना।"

× × ×

"असमय आस न पूरए काम।
भल जन कर कर न बिरस परिनाम।"

× × ×

"कह कबि सेखर गउग्र भूख पर करु जल थोर अहार।
अइसन दुहु मन तलफइ पुन पुन उपजल अधिक बिकार।"

× × ×

"भन विद्यापति सुनइ जुवती
साहस सफल काज।"

× × ×

"भनइ बिद्यापति सुनु मथुरापति इ थिक अनुचित काज।
माँगि लायब बित से जवि हो नित अपन करब कोन काज।"

ऐसे सैकडो उदारहण पदावली मे खोजे जा सकते हैं।

अब रहा कथा का अन्योक्ति रूप। राधा और कृष्ण किसी अलौकिक अर्थ के प्रतिपादक नही, वरन् साधारण नायिका-नायक हैं। राधा के स्वरूप पर यदि दत्तचित्त होकर विचार किया जाए तो पदावली का सत्सदेश सहज ही प्रकट हो जाता है।

विद्यापति की राधा पाठको के समक्ष उस समय आती है जब उसके बचनन पर यौवन की छाया गहनतर से गहनतम हो रही है। बाल्यकाल का स्वर्णिम लोक पीछे रह गया है और उसके पग यौवन के उन्मत्त जगत की ओर निरन्तर बढते जाते है। वय सधि मे शारीरिक परिवर्तनो के साथ-साथ मानसिक परिवर्तन स्वत हो जाते है। राधा के विचारो मे भी अस्त-व्यस्तता है। कभी बचपन की मधुर समीरण से वह सिहर उठती है तो कभी यौवन का झझा उसे झिकझोर देता है। कुछ दिन तक तो यही किकर्त्तव्य-विमूढता रहती है। फिर बाल्यकाल की अनधिकार चेष्टा समाप्त हो जाती है और उसके समस्त अगो पर यौवन का एकाधिपत्य हो जाता है। वह समस्त सौन्दर्य-उपमानो को लेकर चमक उठती है। शरीर से युवती होने पर भी उसके भावलोक मे बचपन का ही सारल्य रहता है। वह नही समझ पाती कि आखिर यह सब कुछ क्यो और कैसे हो रहा है। प्रकृति अनजाने ही उसे यौवन की मादकता की ओर धकेल देती है।

भावलोक की सरलता भी कितने दिन ठहरती ? अगो की दीप्ति के साथ-साथ मन मे कामना का जग जाना भी स्वाभाविक है। अपनी सखी से सुरत-विहार की जानकारी करना अनौचित्य नही, प्रकृति का तकाज़ा है। सखी उसके इस भोलेपन का दुरुपयोग करती है। दूती की फुसलाहट मे कोई सद्भावना नही, बल्कि उस भोली युवती को कृष्ण के जाल मे किसी भी प्रकार फसा देने का प्रयास ही परिलक्षित होता है।

किसी को बहकाने मे सफल होना बच्चो का खेल नही। दूती वही सफल हो सकती है जो मनोविज्ञान की ज्ञाता होने के साथ-साथ अवसर की परख भी जानती हो।

वह कितनी कुशलता से अपनी बात शुरू करती है—

"धनि-धनि रमनी जनम धनि तोर।
सब जन कान्हु-कान्हु करि झूरिए,
से तुम्र भाव-बिभोर॥"

जो कृष्ण सब की उपेक्षा कर राधा मे अनुरक्त हो, इससे तीखा बाण राधा के लिए और क्या हो सकता है। अपने सौन्दर्य का मूल्याकन करने वाले पुरुष के प्रति नारी का आकर्षित हो जाना स्वाभाविक ही है। राधा-कृष्ण की ओर झुकी तो सही, पर कुल की मर्यादा ने उसे सचेत करने का प्रयत्न किया। दूती ने राधा की इस द्विविधा को समझा और कहने लगी—

"प्रथम सिरिफल गरब गमम्रोलह,
जौं गुन गाहक आबे।
गेल जौबन पुनु पलहि न आबए,
केबल रह पछताबे।"

दूती स्वय नारी होने से नारी-हृदय को भली भाति समझने वाली है। नारी को अपनी प्रशसा सबसे प्रिय वस्तु है। दूती ने यही बाण छोडा और साथ ही यौवन की क्षणभगुरता से भी उसे अवगत कर दिया। राधा के हृदय मे अधिक प्रभाव भरने के लिए दूती का अपना उदाहरण प्रस्तुत करना जितना स्वाभाविक है, उतना ही प्रभावशाली भी है—

"तोंहि सनि नारि दिबस दस अछलिहुँ।
ऐसन उपजु मोहि भाने।"

यही नही, वह रूप-यौवन की सार्थकता भी बता देती है—

"जौबन रूप ताबे धरि छाजत,
जाबे मदन अधिकारी।
दिन दस गेले सखि सेहम्रो पराएत,
सकल जगत परिचारी।"

और अत मे वह राधा को बता देती है कि कुलधर्म केवल ढकोसला है। यावज्जीवन स्नेह ही ससार मे एक सारवस्तु है—

"कुलवति धरम काँच समतूल।
मदन-दलाल भेल अनुकूल॥"

× × ×

"एहि ससार सार वथु एक।
तिला एक सगम जाव जिब नेह॥"

दूती का यह जादू राधा के सिर पर चढकर बोल ही जाता है। वह कृष्ण के

समक्ष आत्मसमर्पण कर देती है। कामना की सीढियो से गुजरकर वह मुग्धा से प्रौढा तक बन जाती है। वासना जितने खेल खिलाती है, उसे सभी खेलने पडते है। वह आकाश के सहस्रो चन्द्रमाओ को चुनौती देकर, गहनतम अधेरी रात मे विपदाओ को सहन करके और जीवन-मरण की भी चिन्ता न करके सकेत-स्थल पर पहुच जाने वाली बन जाती है। यह सब उसकी सखियो की करामात है जिन्होने राधा जैसी भोली युवती को वासना के अथाह सागर मे धकेल दिया। जिस कृष्ण को वह कभी लपट समझती थी, वही उसके लिए सर्वस्व बन जाता है।

लेकिन इस गुप्त प्रेम का अत भयानक होता है। राधा के बार-बार आग्रह करने पर भी वे नही रुकते और उसे सोती छोडकर चले ही जाते है। तब राधा की आखे खुलती है। उसे अपनी वस्तुस्थिति का बोध होता है, यह सोचकर कि कृष्ण उससे नहीं, उसके सौन्दर्य मे प्रेम करते थे—

"जौबन-रूप अछल दिनचारि।
से देखि आदर कएल मुरारि॥"

उसका हृदय क्षुब्ध हो जाता है। वह सबके सम्मुख रो भी तो नही सकती। गुप्त प्रेम के लिए यदि रोना ही है तो छिपकर रोना पडता है। वह भी ऐसा ही करती है—

"जामिनि आध अधिक जब होई।
बिगलित लाज उठए तब रोई॥"

उसे अपनी सखियो पर क्रोध आता है जिन्होने 'मधु सम बचन कुलिस सम-मानस' वाले कृष्ण के जाल मे उसे फसाया—

"तोहर बचन सखि कएल आँखि देखि।
अमिय भरम-विष पाने॥"

सखी के कहने पर विश्वास करके उसने अमृत के धोखे मे विष का पान तो कर लिया था, किन्तु अब पश्चात्ताप के अतिरिक्त और उपाय ही क्या था—

"कुल-कामिनि छलौं कुलटा भए गेलौं,
तिनकर बचन लोभाई।
अपने कर हम मूड मुडाएल,
कान्ह से प्रेम बढाई॥"

अपने को कुल-कामिनी से कुलटा कहना नारी-हृदय के पश्चात्ताप की चरम सीमा है। अब आसुओ की सरिता मे स्नान करने के अतिरिक्त और चारा भी नही रह गया था—

"लोचन नीर तटिनि निरमाने।
करए कलामुखि तथिहि सनाने॥"

लेकिन इस स्नान मे भी उसे शाति नही मिलती। वह जान गई थी कि उसने जो प्रेम किया, उसका परिणाम ही दुखद है जिससे उसे कही भी शाति नही मिल सकती—

"सखि हे, मन्द प्रेम परिनामा।
बड कए जीबन कएल अपराधिन,
नहि उपचर एक ठामा।"

निष्कर्ष

राधा के प्रेम के अवसादान्त ही मे पदावली का सदेश निहित है। जो युवतिया यौवन के प्रवाह मे बहकर कामुक जनो के सम्मुख आत्मसमर्पण कर देती है, उनकी राधा जैसी ही गति होती है। इस सबध मे डॉ० ओम्प्रकाश के ये शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण है—

"विद्यापति ने भी राधा का असफल प्रेम अवसादान्त दिखलाकर मानो नारि-जगत् को चेतावनी दी है कि समाज के बन्धनो की उपेक्षा करके गुप्त प्रम मत करो, अन्यथा सारा जीवन राधा के समान रो-रोकर ही काटना पडेगा।"[1]

यही पदावली का लोकपक्ष है।

---

१. आलोचना की ओर, पृ० २८

: १६ :

विद्यापति का मूल्यांकन

साहित्य के इतिहास मे किसी भी कवि का स्थान-निर्धारण करने के लिए मुख्य-रूप से तीन प्रश्नो पर ध्यान देना होता है—

१ उस कवि ने पूर्ववर्ती कवियो के प्रभाव को किस प्रकार ग्रहण किया और कितनी अपनी मौलिकता का योग किया ?

२ उसके परवर्ती कवि उससे किस सीमा तक प्रभावित हुए ?

३ जन-सामान्य मे उस कवि का कितना समादर हुआ ?

पूर्ववर्ती कवियो का प्रभाव

विद्यापति से पूर्व हिन्दी-साहित्य की अपनी कोई विशेष परपरा न थी, फलत ये सस्कृत-परपरा के कवियो से ही प्रभावित हुए जिनमे महाकवि माघ, अमरुक, गोवर्धनाचार्य, कालिदास और जयदेव का नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। इन कवियो से प्रभाव-ग्रहण करके भी विद्यापति ने अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर उसे और भी अधिक हृदयग्राही बना दिया है। यही कवि की महानता है।[1]

परवर्ती कवियो पर प्रभाव

पूर्ववर्ती कवियो से प्रभाव-ग्रहण की अपेक्षा परवर्ती कवियो को प्रभावित करना किसी कवि की महानता की परख करने के लिए अधिक खरी कसौटी है। विद्यापति हिन्दी-साहित्य के आदि कवि है। उस समय से लेकर आजतक न जाने कितने कवि-नक्षत्र साहित्याकाश मे चमके और विलीन हुए, पर विद्यापति की भाति बहुत कम कवियो का प्रकाश अक्षुण्ण बना रह सका है। काव्य-रूप की दृष्टि से विद्यापति के काव्य को दो वर्गों मे रक्खा जा सकता है—मुक्तक काव्य और गीतिकाव्य। मुक्तकशैली का प्रभाव रीतिकालीन कवियो पर विशेष रूप से परिलक्षित होता है जिनमे बिहारी, देव, मतिराम आदि प्रमुख है। हिन्दी-साहित्य मे इन कवियो का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है, किन्तु विद्यापति से प्रभाव ग्रहण करके भी ये कवि उस प्रभाव को विद्यापति की अपेक्षा अधिक सशक्त, सजीव और मर्मस्पर्शी न बना पाये।[2]

---

१ विशेष परिचय के लिए 'पूर्ववर्ती प्रभाव' शीर्षक देखिए

२ विशेष परिचय के लिए 'विद्यापति का मुक्तक काव्य' शीर्षक देखिए

विद्यापति के काव्य का दूसरा रूप है गीतिकाव्य। इनके पदो मे गीत की सभी विशेषताए अपने सहज और स्वाभाविक रूप मे प्रस्फुटित हुई है। उन्हे लाने के लिए कवि के मस्तिष्क को किसी प्रकार का आयास नही करना पडा है। काव्य के क्षेत्र मे जब हृदय पर चढकर मस्तिष्क बोलने लगता हे तो काव्यत्व को आघात पहुँचता है। विद्यापति का काव्य इस आघात से सर्वथा शून्य उस कोमल कलकल छलछल करके बहने वाली निर्झरिणी के समान है जिसका प्रवाह सहज और गतिमय है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दी साहित्य की गीति-परम्परा के जनक महाकवि विद्यापति ही है तो अनुपयुक्त न होगा। इनकी गीति-परम्परा मे कबीर, तुलसी, सूर, मीराँ, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, महादेवी आदि अनेक भक्तिकालीन और आधुनिककालीन कवि आते है। यह विद्यापति के परवर्ती प्रभाव का प्रसार है। विद्यापति की गीति-परम्परा मे आकर भी ये कवि विद्यापति जैसी गीति-धारा को प्रवाहित करने मे अपेक्षाकृत पीछे ही रह गये है। विद्यापति के गीतो मे जो सगीतात्मकता, लयात्मकता, रागात्मक अनुभूति और समाहित प्रभाव आदि गीति-तत्त्वो का पुज है, वह इन कवियो मे प्राप्त नही होता।[1]

जनता पर प्रभाव

तीसरी कसौटी है जनता पर प्रभाव की। सच पूछो तो किसी कवि का सही मूल्याकन करने के लिए यही कसौटी सबसे खरी है। जनता के माध्यम से ही कवि अमर बनता है। जो कवि जनता का कठहार न बन सके, वह चाहे कितना ही महान् क्यो न हो, उसका पाडित्य चाहे कितना ही प्रखर क्यो न हो, शिक्षित समाज की परिधि मे ही बधकर रह जाता है, और धीरे-धीरे इस परिधि की सीमाए भी सिकुडती जाती हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी के केशव कवि को लिया जा सकता है। वे हिन्दी के रीतिकाल के प्रवर्त्तक होते हुए भी जनता से वह समादर न पा सके जो कुछ छोटे-मोटे कवियो को मिल सका है। तुलसी के लोकनायकत्व का सबसे प्रबल आधार जनता द्वारा उनका समादर ही है।

इस कसौटी पर भी विद्यापति खरे ही उतरते है। जनता मे इनका जितना समादर हुआ, और है, वह तुलसी को छोडकर हिन्दी मे और किसी को प्राप्त नही हुआ। कबीर के पदो को गुनगुनाते तो कुछ कबीर-पथी ही मिल सकेंगे, लेकिन विद्यापति के पदो को भोगी और योगी सभी ने सम्मानपूर्वक ग्रहण किया है। जयदेव का गीत-गोविन्द चाहे अपनी इस शर्त को पूरा न करता हो—

"यदि हरिस्मरणे सरस मनो यदि विलासकलासु कुतुहलम्।
मधुरकोमलकान्त पदावलीं शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।"

पर विद्यापति की पदावली जितना 'नागर' का मन मोहने मे समर्थ है, उतना ही भक्तो

---

१ विशेष परिचय के लिए 'विद्यापति की गीतिकला' शीर्षक देखिए

को अलौकिक आनन्द का आस्वादन भी करा सकती है। एक ओर रसिकजन विद्यापति के पदो मे डूब जाते है तो दूसरी ओर महाप्रभु चैतन्य जैसे भक्तप्रवर भी उन्हे सुनकर भाव-विभोर होकर मूर्च्छित हो जाते है। जीवन के दो नितान्त विभिन्न छोरो को छूकर चलने वाली कविता विश्व-साहित्य के कितने महाकवियो द्वारा प्रणीत हुई है ? सभवत ऐसे कवि खोजने पर भी न मिल सके। पर विद्यापति की यह काव्य-क्षमता समझिए अथवा बहुमुखी प्रतिभा का चमत्कार, इनका काव्य काव्य-शास्त्रियो को जितना भाव मे लीन कर सकता है, साधारण जनता का अपनी अप्रतिम सरलता के कारण उतना ही ग्राह्य जान पडता है। सरलता मे रीति और रीति मे सरलता गूथ देना बच्चो का खेल नही। इसके लिए प्रकाड पाडित्य और अथाह भावधारा अपेक्षित है। हृदय और मस्तिष्क का ऐसा सुन्दर तथा समुचित समन्वय जन्मजात कवियो (Born Poets) से ही सभाव्य है। कहने की आवश्यकता नही कि विद्यापति की पदावली मे यह अभूतपूर्व सामञ्जस्य प्राप्य है।

इनके इसी सामञ्जस्य ने भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियो को इन्हे अपनाने के लिए विवश कर दिया। मैथिल वाले इन्हे अपना ही मान बैठे, बगवासियो ने इनपर अपना एकाधिपत्य घोषित किया तो हिन्दी वाले भी इस खीच-खचेड मे पीछे न रहे। यद्यपि मस्तिष्क के तर्कों ने आज इस खीच-खचेड को कुछ ढीला अवश्य कर दिया है, तथापि हृदय की भावुकता अभी तक विद्यापति को उसी शक्ति और दुराग्रह के साथ पकडे हुए है। जनता के द्वारा समादृत काव्य का इससे प्रबल प्रमाण और क्या हो सकता है ?

कहने का अभिप्राय यह है कि एक कवि की महानता की जितनी भी कसौटियां हो सकती है, उन सब पर ही विद्यापति खरे उतरते है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का यह विश्वास और धारणा अनुचित नही है—

"हिन्दी-साहित्य की जब भी ऐतिहासिक प्रमाणो से ही छान-बीन की जाएगी तब यह निष्कर्ष आज नहीं तो कल हिन्दी-साहित्य के इतिहासज्ञो को निकालना ही पडेगा कि हिन्दी-साहित्य की परपरा की दृष्टि से विद्यापति उसके आदि कवि हैं।"

विद्यापति की पदावली

[आलोचनात्मक टीका-सहित]

वंदना

(१)

नन्दक नन्दन कदम्बक तरु-तर
धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय-संकेत-निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोलि पठाव।
सामरि, तोरा लागि
अनुखन विकल मुरारि।
जमुनाक तिर उपबन उदवेगल
फिरि-फिरि ततहि निहारि।
गोरस बेचए अबइत जाइत
जनि जनि पुछ बनमारि।
तोहे मतिमान, सुमति मधुसूदन
बचन सुनह किछु मोरा।
भनइ बिद्यापति सुनु बर जौवति
बन्दह नन्द-किसोरा।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे एक गोपी मानिनी राधा मे उसके प्रियतम श्रीकृष्ण के अनन्य प्रेम-आकर्षण का राग जागृत करते हुए उससे कह रही है कि देख, तेरे प्राण-प्यारे कृष्ण तेरी बाट किस विधि जोहते है और तू नही जानती कि तेरी प्रतीक्षा की घडियाँ वह किस भाति व्यतीत करते है। इसी भाव को दर्शाती हुई गोपी राधा से कह रही है—

नद के सुपुत्र और तेरे प्रियतम श्रीकृष्ण कदब तरु की छाँह मे बैठे मद-मद मुरली की तान लगाते है, कि तू उसे सुनकर बरबस उनके पास खिची चली आए। वह निश्चित समय पर उसी मिलन-स्थान पर बैठे, बार-बार बासुरी की धुन के मिस तुझे टेरते हैं, तुझ तक बुलाने का सदेशा पठाते है। हे श्यामा सुन्दरी! तेरे मिलन के लिये हर क्षण श्रीकृष्ण अति विकल है। यमुना के तीर पर स्थित जो मधुवन है, उस

श्रोर वह रह-रहकर देखते है कि शायद तू अब आए अब आए ! जो ग्वालिने गोरस या दूधदही बेचने के हित उधर से आती-जाती है उन-उन स्त्रियो से वह प्रेमी कृष्ण तेरे विषय मे पूछते है कि क्या वह आ रही है, आएगी ? हे मानिनी राधा, तू उनके मन मे जँची हुई है, वह तुझ पर बलिहार है। हे सयानी, श्री कृष्ण केवल तुझ पर ही रीझे है—कुछ मेरे इस कथन को सुनकर तू उसपर विश्वास भी कर ले, कि श्रीकृष्ण की इस प्रेम-अधीरता को तू समझ और उनकी मिलनाकाक्षा को पूरी कर। विद्यापति कवि कहते है कि हे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी राधे, जाओ, और श्रीकृष्ण से मिलकर उनकी कामना को पूर्ण करो; वह तुम्हारे सर्वस्व है अत उनके चरणो की वदना करो—अपनी निठुरता के लिए उनसे इस भाँति क्षमा माँगो।

विशेष—पद मे न न· त · त·· धि · धि···स· स आदि शब्दो की सगति से अत्यत कोमल अनुप्रास की छटा स्वाभाविक बन पडी है। साथ ही एक मधुर लय का नैसर्गिक प्रवाह भी प्रध्वनित होता प्रतीत होता है। "सामरि, तोरा लागि अनुखन विकल मुरारि" पक्ति मे शृगारिक भावानुभावो का सहज प्रकाशन द्रष्टव्य है। विभ्रम, रोमाच आदि सचारी भावो की व्यजना का माधुर्य सम्पर्ण गीत मे सहज बन पडा है। विशेषता अतत यह कि इस शृगारिक रोमाचकारी सृष्टि मे 'बन्दह' शब्द का प्रयोग कर कवि ने सम्पूर्ण पद की भावाभिव्यजना को 'देवी रति' विशुद्ध भाव मे परिणित कर दिया है।

शब्दार्थ—नन्द=गोकुल के स्वामी नद बाबा। क=के। नन्दन=श्रीकृष्ण। तरु=पेड। तर=नीचे या छाँह मे। धिरे=मद। बजाव=बजाते है। समय-सँकेत-निकेतन=वह साकेतिक मिलन-स्थल जहाँ समय से प्रेमी और प्रेयसी मिलते हो। बइसल=बैठे हुए। बेरि-बेरि=बारम्बार। बोलि पठाव=बोल भेजते है। आशय है कि बाँसुरी की तान के मिस आह्वान करते है, सदेश देते है। सामरि=श्यामा सुदरी, आशय है कि श्याम या श्रीकृष्ण की सुदरी—राधा। तोरा लागि=तेरे लिये। अनुखन=प्रतिक्षण। उदवेगल=उद्विग्न या परेशान। ततहि=साकेतिक स्थल की ओर। निहारि=देखते है—निराश एव समुत्सुक भाव से। गोरस=दूध-दही। बेचए=बेचने के लिये। अबइत जाइत=आते-जाते। जनि जनि=हर सभी से। पुछ=पूछते हैं। बनमारि=श्रीकृष्ण। किछु=कुछ। मोरा=मेरे। भनइ=कहते है। बर जौवति=सुदर तरुणी।

राधा की वंदना

(२)

देख देख राधा रूप अपार।
अपुरुब के बिहि आनि मिलाओल

खिति तल लावनि सार।
अगहि अग अनँग मुरछायत
हेरए पडए अथीर।
मनमथ कोटि मथन करु जे जन
से हेरि महि-मधि गीर।
कत कत लखिमी चरन-तल ने ओछए
रगिनि हेरि बिभोरि।
करु अभिलाख मनहि पद-पकज
अहोनिसि कोर अगोरि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति भक्त रसिको को दिव्य स्वरूपवती श्रीराधा जी के अतुल—अकथ सौन्दर्य की ओर इगित करते हुए, उसकी महत्ता को सर्वोपरि बताते हुए, उसके आकर्षण को दिव्य बोधित व्यजित करते हुए, अतत शृगारिक भावना को पावित्र्य की सुरसरि मे तिरोहण करते हुए लिखते है—

अरे ! देखो-देखो, श्रीराधा जी के अपरिमित रूप-सागर की ओर तो देखो। ब्रह्मा ने इस भूमण्डल पर सुन्दरता का अभिनव सार श्रीराधा जी के रूप मे निर्मित कर, मानो स्वर्ग का सौन्दर्य तत्त्व यहाँ लाकर मिला दिया है, अवतरित किया है। (व्यजना व्यापक है।) राधा के अग-अग के सौन्दर्य के कारण लज्जित होकर स्वय कामदेव तक मूर्च्छित होता है—उसे देख कम्पायमान होकर गिर पडता है। आशय यह है कि राधा के अग-अग मे कामदेव तक को स्ववश कर लेने की शक्ति भरी है—वह अत्यत काम-गर्विता है। जो रसिक जन या श्रीकृष्ण करोडो कामदेवो को भी अपने रूपाकर्षण एव पुसत्व से मर्दित करने वाले है वह सुन्दरी राधा को देखकर बीच ही मे, आशय है कि बिना पूर्णत उसे निहारे ही पृथ्वी पर मूर्च्छित हो जाते है, गिर पडते हैं। कितनी लक्ष्मियाँ उस सुन्दरी राधा के रूप-वैभव के प्रभाव से उसके चरणो तले न्योछावर होती है। और भी महान सुन्दरियाँ उसे देखकर आत्मविभोर हो जाती है। राधा के प्रति यह अभिलाषा की जाती है कि उसके चरण-कमलो को दिन-रात अपनी गोद मे रखकर सहृदयता से उनकी सुरक्षा की जाय, उन्हे पूजा जाय।

विशेष—प्रस्तुत पद मे राधा के अपार रूप-सौन्दर्य का वर्णन कवि ने बडी स्वतत्रता से किया है, जो रचनात्मकता की दृष्टि से अनूठा है। 'देख देख राधा रूप अपार' कहकर सहसा कवि "खिति तल लावनि—सार" पक्ति द्वारा चमत्कृत करता है कि रूप अपार है, पर कैसा ?—जो ब्रह्मा द्वारा रचित और पृथ्वीतल पर मानो स्वर्ग से अवतरित ! इस व्यजना से विशुद्ध काव्यानद का रस सहज उपलब्ध होता है। इसी प्रकार कामदेव की तुच्छता का प्रदर्शन कर लक्ष्मी के चरण-तल की पूजा की अभिव्यजना कर और "मनहि पद-पकज" का प्रयोग कर कवि ने एक विशेष प्रकार का वातावरण

बनाया है जो शृगार-रस मे शात-रस का बडा उत्तमोत्तम भाव व्यजित कर सका है। बिहारी को यदि शृगार के चित्र अकित करने मे पूरी सफलता मिली है तो विद्यापति को शृगार मे प्राय शान्ति के चित्र अकित करने मे पूरी सफलता मिली है—इसी से यह सोचा जाता है कि विद्यापति ने, हो-न-हो, अपनी अभिव्यजना मे कृष्ण-राधा के दिव्यतापरक भावो की व्यजना ही की है—पर यह अशत सत्य बात है। 'पद-पकज' मे रूपक अलकार है। सम्पूर्ण पद मे गेयता प्रधान है।

शब्दार्थ—अपार=असीम। अपुरुब=अपूर्व, अभिनव। बिहि=ब्रह्मा। आनि=अवतरित करके। मिलाओल=मिला दिया, भेजा। रिवति तल=भूमण्डल, पृथ्वीतल। लावनि=लावण्य, रूप। सार=तत्त्व। अगहि अग=अग-अग मे। अनग=अनग, कामदेव। मुरछायत=मूर्च्छा खाना। हेरए=निहारना, देखना। अथीर=अस्थिर, कम्पायमान। मनमथ=कामदेव। कोटि=करोडो। मथन=मर्दन। जे जन=जिस जन ने, श्रीकृष्ण ने—क्योकि वह बडे स्वरूपवान कहे जाते है। से=वह। हेरि=देखकर। महि=पृथ्वी। मधि=बीच मे। गीर=गिर पडते है। कतकत=कितनी ही। लखिमी=लक्ष्मी। ने ओछए=न्योछावर होना। रगिनि=सुन्दर तरुणी। बिभोरि=आत्मलीन हो जाना। करु=करो। अभिलाख=इच्छा, कामना। मनहि=मन मे। पद-पकज=चरण-कमल। अहोनिसि=दिन-रात। कोर=गोद। अगोरि=सुरक्षा, रखवाली, आशय पूजा से है।

देवी वंदना

(३)

जय जय भैरबि असुर-भयाउनि
पसुपति-भामिनि माया।
सहज सुमति बर दिअओ गोसाउनि
अनुगति गति तुअ पाया।
बासर रैनि सबासन सोभित
चरन, चन्द्रमनि चूडा।
कतओक दैत्य मारि मुंह मेलल
कतओ उगिल कैल कूडा।
सामर बरन, नयन अनुरंजित
जलद-जोग फुल कोका।
कट कट बिकट ओठ-पुट पाँड़रि
लिधुर फेन उठ फोका।

घन-घन घनए घुघुरु कत बाजय,
हन हन कर तुग्र काता।
बिद्यापति कवि तुग्र पद सेवक
पुत्र बिसरु जनि माता।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति भैरवि या कालीमाई की वदना करते हुए प्रार्थना करते है कि उसके रौद्र एव वीभत्समय दिव्य रूप ही से उनकी एकमात्र आसक्ति है, उसी की भक्ति-वदना से उनकी परमगति सम्भव है।

हे महादेव की अर्द्धांगिनी, दैत्यो के मन को दहलाने वाली, भयावनी, विश्व-मायारूपिणी, तुम्हारी जय हो—जय हो! हे परम देवी, तुम सरल सहज रूप मे मुझे वह सद्बुद्धि एव वरदान प्रदान करो कि जिससे तुम्हारे चरणो मे मेरी चिर अनुरक्ति हो जाय और मुझे परमगति प्राप्त हो। रात-दिन तुम्हारे चरण शवासन या मुर्दे के आसन पर आसीन रहते है, जो बडे शोभायमान प्रतीत होते है। और ललाट पर चद्र-मणि शोभायमान दीखती है। कितने ही राक्षसो को मारकर तुमने मुँह मे समेट लिया है और कितनों ही को पुन उगल कर कूडे का ढेर बना दिया है, आशय यह है कि उन राक्षसो को खाकर उनकी हड्डी उगल-उगल कर बाहर उनका ढेर लगा दिया है। हे माता, तुम्हारा काला शरीर है एव रौद्र रक्तिम वर्ण नयन! इस प्रकार श्यामवर्ण शरीर मे रक्तवर्ण नेत्र ऐसे प्रतीत होते है मानो बादलो मे रक्त-कमल विकसित हो। (उत्प्रेक्षा अलकार है) पाँडर के लाल पुष्पो की भाति तुम्हारे रक्तिम ओठो से किट-किटाहट की विकट भयानक आवाज आती है और मुख से गाढे-गाढे फेन सदृश रक्त के बुलबुले या भभूके निकल रहे है। तुम्हारे पाँवो के घुँघरू क्या बज रहे है मानो उनके घन-घन के स्वर-शब्दो के रूप मे घोर गर्जन हो रही है। 'हन-हन' अर्थात् काटो-मारो की गति मे तुम्हारा तीव्र कत्ता-हथियार लपलपा रहा है—उसके चलने की हन-हनाहट से ऐसा ही पता चलता है। यह कवि विद्यापति, हे माता, तुम्हारे चरणो का दीन सेवक है, तो अपने इस पुत्र को, तुम देखो भूल न जाना—उसे अपनी कृपा-करुणा ृष्टि का प्रसाद देती रहना।

विशेष—प्रस्तुत रचना मे कालीमाई की बडी ओजस्वी भाषा-शैली मे वदना की गई है जो आज भी मिथिला के जनो मे बडी आस्था एव श्रद्धा से उर प्रचलित है। यद्यपि यहाँ रौद्र एव वीभत्स रस की प्रधानता है कितु "पुत्र बिसरु जनि माता" जैसी अतिम उक्ति मे अनायास शात रस का प्रबोध होता है और हम भाव-गद्गद् हो जाते है। विद्यापति के काव्य मे रस-वैषम्य को मिटा कर एक रस समन्वयता की स्वर लहरी बडी स्पष्ट रही है, अत वह इस दृष्टि से बडी मौलिक उद्भावनाओ को सहज वाणी दे सके हैं। रस-विरोध को एक लय सेब ँधते हुए उन्होने छोटे-छोटे गीतो मे जो कुछ दिया है वह कला की अमूल्य निधि है। 'घन-घन घनए', 'हन-हन' आदि शब्दो मे [illegible]

क्रमश घुंघरू एव कत्ता-शस्त्र के रौद्र स्वर-शब्दो का रिकार्डिंग कर दिया हो, ऐसा लगता है। 'जलद-जोग फुल कोका' उक्ति मे एक अनूठी एव सर्वथा मौलिक कल्पना यह है कि रग-सादृश्य गुण-सादृश्य—उपमेय एव उपमान का समान प्रभावंयुक्त वर्णन चूल-से-चूल भिडा हुआ किया गया है। यदि कालीमाई का स्थूल विशालकाय है तो बादलो का भी, यदि रौद्रमय नेत्र लाल है तो लाल कमल का रूप, गुण एव आकार भी उन जैसा ही है। इस प्रकार शब्द एव भाव-चित्र का समन्वित रूप-वर्णन हम यहाँ देखते है। उपमा 'ओठ-पुट पाँडरि' उक्ति मे सुन्दर बन पडी है। 'लिधुर फेन उठ फोका' तथा 'कतओक उगिल कैल कूडा' उक्तियो मे वीभत्स रस का प्रभावशाली भाव व्यजित है।

शब्दार्थ—भैरबि=पशुपतिनाथ, महादेव की भार्या माता पार्वती। असुर=दैत्य। भयाउनि=भयदात्री। पसुपति=महादेव। भामिनि=भार्या। माया=यहाँ विश्व मायाविनी नारी से तात्पर्य है, अर्थात् ससार को स्ववश मे करने वाली। सहज=आसानी से। बर=वरदान। दिअओ=दो, प्रदान करो। गोसाउनि=देवी के लिये प्रयोग हुआ है जो मिथिला का प्रचलित शब्द है। अनुगति गति=परमपद। तुअ=तुम्हारा। बासर=दिन। रैनि=रात। सबासन=शवासन या मुर्दे का आसन। सोभित=शोभायमान। चूडा=ललाट। कतओक=कितनो ही को। मेलल=रख लिया, मिला लिया, चबा लिया। कैल कूडा=कचरा जो हड्डी चबाकर बच गया होगा। सामर बरन=श्याम शरीर वाली—काली। अनुरजित=रक्तिम। जलद=बादल। जोग=यहाँ 'मे' से तात्पर्य है। फुल कोका=कमल पुष्प। विकट=भयानक। पाँडरि=पलाश की भाँति का एक गहरा लाल पुष्प। फेन=झाग। फोका=बुलबुला। घुघुरु=घुंघरू। काता=कटार। कट कट=दाँत बजने का कठोर शब्द। घन-घन=घोर गर्जन का स्वर। कत=कहाँ। बाजय=बजते है। घनए=घनघोर। तुअ=तुम्हारे। पद सेवक=दीन चरण सेवक, भक्त। बिसरु=भूल। जनि=मत।

वयः-सन्धि

(४)

सैसव जौवन दुहु मिलि गेल।
स्रवन क पथ दुहु लोचन लेल।
बचन क चातुरि लहु-लहु हास।
धरनिये चाँद कएल परगास।
मुकुर लई अब करई सिंगार।
सखि पूछइ कइसे सुरत-विहार।
निरजन उरज हेरइ कत बेरि।

हसइ से अपन पयोधर हेरि ।
पहिल बदरि-सम पुन नवरग ।
दिन-दिन अनँग अगोरल अग ।
माधव पेखल अपुरुब बाला ।
संसव-जौवन दुहु एक भेला ।
विद्यापति कह तुहु अगेआनि ।
दुहु एक जोग हइ के कह सयानि ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद कविवर विद्यापति नववय-विकसित बालिका के भावो, अनुभावो, कामुक कटाक्षो, उत्कठाओ एव शृगारी भावो का मनोवैज्ञानिक ढग से वर्णन करते हुए लिखते है—अब नववय-विकसित बाला का बचपन एव जवानी, ये दोनो अवस्था की एक राह पर मिल गये है। कानो का मार्ग दोनो बकिम नेत्रो ने अपना लिया है। बचपन मे कान किस्से-कहानी सुनने को समुत्सुक रहते थे किंतु अब आयताकार नयन मानो अपनी कोरो से कानो की ओर कटाक्ष करने को बढ रहे है। आशय यह है कि विकसित बाला के चचल नयन कानो से अपनी मधुमय साकेतिक वय-सधि विषयक बाते कहने-सुनने को लालायित हो गए है। रूप-सुदरता की दृष्टि से बाला के नयनकोर कानो के पास तक पहुँचे प्रतीत होते है—पतजी ने लिखा है—"कान से मिले अजान नयन"। बचपन मे बाला के मनोभाव जो अटपटे वचनो द्वारा अभिव्यक्त होते थे, अब तरुणाई के आलम मे वे मद मधुर हँसी के द्वारा व्यक्त होते है। मनोवैज्ञानिक ढग से सुदरी की मृदुमुस्कान आतरिक प्रेमाकर्षण का आह्वान करती है, यहाँ इसी से आशय है। वह हँसती क्या है, मानो पृथ्वी पर चाँद की चाँदनी अपनी प्रोज्ज्वलता विकीर्ण करती है। उसकी हँसी चाँदनी के सदृश तरल एव सुखदाई है। अब वह अपने आगे दर्पण रखकर अपना शृगार करती है—अपने को प्रियमिलन के उपयुक्त बनाती है। उसके रूप-शृगार की अनुभूति इस प्रकार से प्रकट होने लगी है, वह अब सयानी हो गई है। वह अपनी सखियो से पूछने लगी है कि री, भला काम-रति-क्रीडा और शृगार-छवि कैसी होती है? एकात मे वह अपने स्तनो के उठान को कितनी ही बार निहारती है और उन्हे कसे-कसे हुए देखकर प्रफुल्लित होती है, हँसती है। कुछ पूर्व उसके वे स्तन केवल बेरी के फल के समान लघु आकार के थे और अब वे नारगी के समान बडे हो गए है। दिन-दिन कामदेव उसके मासल अगो पर चढा उनकी रखवाली कर रहा है। ऐसी अपूर्व रूप सुन्दरी बाला को माधव या रसिक या कामदेव ने देखा, कि उसमे यौवन एव शैशव मिलकर एक हो रहे हैं—वह आँखमिचोनी खेल रहे है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे बाले! तू भी कितनी, कैसी अयानी है?—अरे, तुझे कौन बताए कि तुझमे शैशव-यौवन मिल कर एक हो गए हैं—तुझ पर अनुरक्त है, और तू कितनी सयानी है कि दोनो की स्वामिनी है—पर यह कौन कहे? (व्यजना है।)

विशेष—प्रस्तुत पद मे नववय-विकसित सम्भवत १३-१४ वर्षीया उस बाला का रूप-भाव चित्रित किया है जो अपनी अल्हडता मे अजानी मस्तानी होती है किन्तु जिसके अन्तर मे काम-भावो का उद्‌भिन्न आवेग जन-आकर्षण का केन्द्र बनता है। वय-सधि की इस दशा का चित्र अनोखा है। 'स्रवन क पथ दुहू लोचन लेल' मे जहाँ एक ओर सुन्दरी के आयत नयनो के कटाक्ष की सूक्ष्म व्यजना है वहाँ मुख की सुन्दरता का अपूर्व रेखा-चित्र पुतलियो मे चित्रित हो जाता है। 'धरनिये चाँद कएल परगास'। उक्ति मे बाला को चाँदनी-सी, तरल भू की सौन्दर्य-स्वामिनी के रूप मे अभिव्यक्त किया गया है। भावो, मनोभावो की छटा का सूक्ष्म अकन समस्त पद मे अत्यत-सरल एव स्वाभाविक बना है। 'निरजन उरज हेरइ कत बेर' उक्ति मे नववय विकसित बाला के इस सूक्ष्म मनोविज्ञान का स्पष्टीकरण है कि वह अपने उरोजो के दिन-प्रति-दिन विकास को बडे आवेग मिश्रित भाव से छिप-छिप कर निहारा करती है। उरोजो के क्रमश बेर से लेकर नारगी तक के विकास का चित्र शाश्वत है, किन्तु अपरिमित सुन्दर भी। शृगार-चित्रण मे मनोविज्ञान का सजीव स्पदन भरकर विद्यापति ने इस पद को कोरी कल्पना की उडान से बचाकर बडा यथार्थदर्शी और स्पर्शी बना छोडा है।

शब्दार्थ—सैसव=बचपन। जौवन=जवानी। लहु=मद। हास=हँसी या मुस्कान। स्रवन=कान। क=के। दुहू=दोनो। लेल=लिया है। चातुरि=चतुराई, चचलता। धरनिये=धरती पर। कएल=करता है। परगास=प्रकाश। मुकुर=दर्पण। लई=लेकर। करई=करती है। सिंगार=शृगार। पूछइ=पूछती है। कइसे=कैसा। सुरत-बिहार=काम-क्रीडा। निरजन=एकान्त। उरज=उरोज, स्तन। हेरइ=देखकर। कत बेरि=कितनी ही बार। अपन=अपने। पयोधर=स्तन, उरोज। हेरि=देखकर। पहिल=पहले। बदरि=बेरी का फल। सम=बराबर। पुन=फिर। नवरग=नारगी। अनंग=कामदेव। अगोरल=सुरक्षा करना। माधव=कामदेव, रसिक। अपुरुब=अपूर्व। दुहु=दोनो। भेला=मिले। तुहु=तुम। अगेआनि=अयानी। हइ=है। के कह=कौन कहे। सयानि=चतुर।

√ (५)

सैसव-जौवन दरसन भेल।
दुहु दल-बले दन्द परि गेल।
कबहु बाँधय कच कबहु बिथारि।
कबहु झाँपय अँग कबहु उघारि।
अति थिर नयन अथिर कछु भेल।
उरज-उदय-थल लालिम देल।
चचल चरन, चित चचल भान।

जागल मनसिज मुदित नयान।
बिद्यापति कह सुनु बर कान।
धैरज धरह हिमायब आन।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति नववय विलासिनी बाला की अग-चपलता, भाव-चपलता एव सौन्दर्य-चपलता का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण करते हुए लिखते हैं—

अरे, बचपन एव तरुणाई का दर्शन मिलन क्या हुआ कि दोनो के रूप दल एव स्वभाव दल मे परस्पर बडा विचित्र राग ही ठन गया—कुछ बाल्य कौतुक, कुछ तरुणाई का जोश—मानो बाला के चरित्र मे इन दोनो की परस्पर आपा-धापी चल पडी है। और वह बाला इसके प्रभाव स्वरूप कभी तो अपने केशो को गूँथती है और कभी खोलकर बिखरा देती है। कभी वह अपने मासल अगो—स्तनो—को ढाँप लेती है और कभी खोल देती है। उसके अति स्थिर नेत्र कुछ चपल हो गये है। स्तनो के उगाव के स्थान से लाली फूट निकली हे। आशय है कि अब उस बाला से आकर्षण का सूर्य से, जो विशेषत छाती पर उगा प्रतीत होता है—उरोजो के रूप मे—मनमोहक रूप का प्रकाश प्रस्फुटित हो निकला है। चचल चरणो के साथ-ही-साथ अब उसका मन भी चचल हुआ लगता है। आँखो मे चमक या काम अलसाहट आ गई है, कामदेव जाग गया है, ऐसा उसकी आँखो को देखकर प्रतीत होता है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे रूप रस नायक श्रीकृष्ण, भली-भाति विश्वासपूर्वक सुनो कि मै इस नववय विलासिनी बाला को (राधा को) तुमसे लाकर मिला दूँगा—पर जरा धैर्य रक्खो!

विशेष—बचपन एव जवानी की वय-सधि मे विलासिनी बाला के रूप-सरोवर मे जो कामुकता की बाढ आती है, जो अग का मधुर प्रस्फुटन होता है, जो नेत्रो मे चपलता एव मन मे शवलता का सचार होता है उसका चित्र इन दो पक्तियो मे कितना सजीव, प्रभावशाली एव मधुर है—देखिये, "कबहु झाँपय अँग कबहु उघारि।" अति थिर नयन अथिर कछु भेल।" "उरज-उदय थल" उक्ति मे कामिनी के पीन उत्तुग उरोजो के मासल काम-क्रीडा प्रलोभन का भाव बडी बारीकी से अकित किया गया है—कला की पराकाष्टा है और शब्दो की करामात! 'कान' सम्बोधन कृष्ण के लिए न होकर वस्तुत कृष्ण जैसे सीमातीत रूप रसिक के लिए ही समझा जाना उचित होगा।

शब्दार्थ—सैसव=बचपन। दरसन=दर्शन। भेल=मिलन। दुहु=दोनो। दल=सेना। बले=बलशाली। दन्द=राग। परि गेल=ठन गया है। बाँधय=बाँधती है। कच=केश। बिथारि=बिखरा देना। झाँपय=ढँकती है। अँग=अग या स्तन भी। उघारि=खोलती है। थिर=स्थिर। अथिर=अस्थिर। उरज-उदय-थल=

उरोजो के उगने का स्थान, छाती। लालिम=लाली, यहाँ व्यजना आकर्षण से है। देल=देने लगना। भान=प्रतीत होना। जागल=जागता है। मनसिज=कामदेव। नयान=नेत्र। मुदित=प्रसन्न या कामतद्रा के भार से बोझिल—अलसाए। बर कान=सुन्दर कृष्ण या रूप-रसिक। धैरज=धैर्य। धरह=धरो। हिमायब=मिलन कराऊँगा। आन=उस लक्षित बाला से तात्पर्य है।

(६)

सैसव-जौवन दरसन भेल।
दुहु पथ हेरइत मनसिज गेल।
मदन क भाव पहिल परचार।
भिन जन देल भिन्न अधिकार।
कटि क गौरव पाओल नितम्ब।
एक क खीन आओक अवलम्ब।
प्रकट हास अब गोपत भेल।
उरज प्रगट अब तन्हिक लेल।
चरन चपल गति लोचन पाव।
लोचन क धैरज पदतल जाव।
नब कविसेखर कि कहइत पार।
भिन-भिन राज भिन्न बवहार।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे नववय विकसित बाला के अग-प्रत्यग का विशुद्ध काम-शृगार-सम्मत चित्रण करते हुए कविवर विद्यापति "कला की स्वच्छन्दता" की बडी प्रगल्भ अभिव्यक्ति करते है—

अरे, शैशव और यौवन की मुलाकात क्या हुई कि कामदेव ने सौभाग्य से उस नव कोमल बाला के अग-प्रत्यग के भीतर अवस्था की—बचपन एव यौवन—इन दोनो सुन्दर राहो पर घूमते, देखते और आनन्द लूटते हुए अनुगमन और विचरण किया है। कामदेव के इस प्रथम प्रवेश या आक्रमण ने ही भिन्न-भिन्न जन या शैशव-यौवन को भिन्न-भिन्न अधिकार प्रदान कर दिए है। उदाहरणार्थ कमर की स्थूलता गुरुता तो नितम्बो ने पाई और वह स्थूल रूप मे हो गए, और कमर पतली रह गई। यो एक की क्षीणता दूसरे की पीनता या गुरुता मे बदल गई। आशय यह है कि यौवन ने आते ही नववय बाला की कमर तो पतली कर दी और नितम्ब मोटे कर दिये—ऐसा होना तो स्वाभाविक ही होता है। अब बचपन का स्वच्छन्द हास-परिहास तो गुप्त हो गया है, मधुर मूक भाव मे परिणित हो गया है, और उसके एवज़ मे जो स्तन अभी तक गुप्त थे वे खिलखिला उठे है, उभर आए हैं। आशय है कि बचपन

की हँसी तो उस बाला की छिप गई है, केवल हल्की-सी अनजानी मुस्कान की रेखा बन गई है और दूसरे स्थान पर जो उरोज बचपन मे नही फूटे थे वे अब प्रस्फुटित होकर मानो उस मूक हँसी के बदले मे खिलखिला उठे है। बचपन के चरणो की चचल चाल अब नेत्रो को मिल गई है और वह बचपन के नेत्रो का हठीलापन अब पाँवो को मिल गया है। आशय यह है कि नववय विलासिनी बाला के मद भरे नेत्र चचल कटाक्ष युक्त हो गये है और स्वाभाविक नारि सज्जा के अनुरूप पाँवो की चाल ठिठकी-ठिठकी-सी हो गई है—मानो आँखो का धीरज चरणो से बँध गया हो। कवि-शिरोमणि विद्यापति भी क्या यह बात बताने मे समर्थ हो सकते है कि भिन्न-भिन्न राजाओ का अपने-अपने शासन के प्रति भिन्न-भिन्न व्यवहार और उसकी व्यवस्था होती है। आशय यह है कि शैशव एव यौवन दोनो शासको का बाला के सुन्दर शरीर पर भिन्न प्रकार से अधिकार रहा। बचपन मे बाला के अगो का कुछ और हाल था किन्तु यौवन ने उन्हे अपने ढग से व्यवस्थित किया। कविशेखर विद्यापति इस राज-शृगार की राजसी नीति का बखान करते पार नही पा सकता—वह अपरम्पार है।

विशेष—शरीरज शृगार का काम-शास्त्र-सम्मत चित्रण विद्यापति ने इस पद मे विशेष रूप मे किया है। किन्तु काव्य-सरसता का स्रोत उक्ति-चमत्कार के द्वारा पूर्णत प्रवाहित होता चला है। काम को राजसी व्यवस्था का रूपक कम-से-कम शब्दो मे जितनी निपुणता से बाँधा गया है, वह विद्यापति के कवित्व-कौशल का उत्कृष्ट नमूना बन गया है। इस प्रकार केवल शृगारी कवि बिहारी ही विद्यापति के समक्ष ठहरते है। किन्तु भाव-शबलता एव सचारी उद्वेग विद्यापति के इस पद मे मानो मिलकर एक हो गये है और भरपूर रोमाच की सृष्टि करते है—"मदन क भाव पहिल परचार" एव "चरन चपल गति लोचन पाव। लोचन क धैरज पदतल जाव" उक्तियो मे नववय विलासिनी बाला की काम लोलित भावना का भी सुन्दर एव सहज प्रकाशन होता है जो सीधा मन के तारो को छूता है। यदि यह न होता तो समस्त पद का इतिवृत्त केवल काम-विषय की छद-बद्धता का ही रूप होता पर यहाँ एक कलाकार कवि का रस विमुग्ध हृदय ही ललक रहा है क्योकि—"नव कविसेखर कि कहइत पार। भिन-भिन राज भिन्न बेवहार।"

शब्दार्थ—भेल=मिलन या भेट। दुहु=दोनो। पथ=रास्ता। हेरइत=देखते हुए। मनसिज=कामदेव। गेल=गमन करना। मदन=कामदेव। क=के। पहिल पहिले। परचार=प्रवेश या आक्रमण। भिन=भिन्न। जन=व्यक्ति, यहाँ बाला के नवविकसित अगो से तात्पर्य है। देल=दिया। कटि=कमर। गौरव=गुरुता, स्थूलता। पाओल=पाया। नितम्ब=नारी की कमर से नीचे का पीन भाग। खीन=क्षीण, पतला। अओक=दूसरे का। अवलम्ब=कारण या सहारा। प्रकट=स्पष्ट। हास=हँसी। गोपत=गुप्त। भेल=हो गई है। उरज=उरोज, स्तन। तन्हिक=उसके।

लेल=ले लेना। चपल गति=चचल चाल। पाव=पाई है। धीरज=धैर्य। पदतल=चरण। जाव= चली गई है। कविसेखर=कवि विद्यापति जो कवियो मे श्रेष्ठ है। कहइत=कहकर। पार=सीमा। राज=शासन। बेवहार=व्यवहार, व्यवस्था।

(७)

किछु-किछु उतपति अंकुर भेल।
चरन-चपल-गति लोचन लेल।
अब सब खन रह आँचर हात।
लाजे सखिगन न पुछए बात।
कि कहब माधव बयस क सधि।
हेरइत मनसिज मन रहु बधि।
तइअओ काम हृदय अनुपाम।
रोपल घट ऊचल कए ठाम।
सुनइत रस-कथा थापए चीत।
जइसे कुरगिनी सुनए सँगीत।
सैसव-जौवन उपजल बाद।
केओ न मानए जय अवसाद।
बिद्यापति कौतुक बलिहारि।
सैसव से तनु छोडनहि पारि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति नववय विकसित बाला के वय-सधि विषयक काम उद्वेलित रूप-भावो का चित्रण करते हुए लिखते है—

नववय विकसित बाला के वय-सधि के फलस्वरूप वक्षस्थल पर उरोजो का कुछ-कुछ फुटाव आरभ हो गया है। अत वे उरोज प्रस्फुटित अकुर जैसे प्रतीत होते है। उसके शैशव के चपल चरणो की चचलता अब सुन्दर नेत्रो ने धारण कर ली है। आशय है कि वय-सधि प्राप्त हो जाने के कारण अब वह बाला नेत्रो से चचल कटाक्ष करने लगी है और उसके चरणो की चाल लज्जावश मद हो गई है, वैसी चपल नही रही जैसी बाल्यकाल मे स्वाभाविकत होती है। उभरे उरोजो को साधे-छिपाये रहने के लिए अब उसके हाथ हर क्षण आँचल से लगे रहते है। नवविकसित बाला की यह क्रिया बडी स्वाभाविक होती है, कवि ने उसे यहाँ बडी मनोवैज्ञानिक रीति से काव्याभिव्यक्ति दी है। उसके हाथ अव हर क्षण आँचल से क्यो लगे रहते है—इस रहस्य को वह लाज लगने के कारण सखियो से पूछ भी नही पाती। कविवर विद्यापति कहते है कि हे माधव या रसिक या रस-शिरोमणि कृष्ण ! मैं इस वय-सधि के शृगारिक कौतुक के रहस्य वर्णन के विषय मे क्या कहूँ—यह तो वर्णनातीत है। अरे, वय-सधि प्राप्त उस बाला के रूप-सौन्दर्य को देखकर तो कामदेव तक का मन भी आकर्षण की माया-फाँस मे

बँधा का बँधा ही रह गया। परतु बलिहारी है कि उस बाला का बदी बनकर भी कामदेव ने उसके अनुपम वक्षस्थल पर उरोज रूपी घट स्थापित करके उसे गौरव प्रदान किया है—उस स्थान को ऊँचा कर दिया है। आशय यह है कि यद्यपि कामदेव स्वय उस नववय विलासिनी बाला के मनोहर रूप-जाल का बदी बन गया तथापि उसने उसे शृगार से गौरवान्वित किया, अपनी विवशता-परवशता की अवस्था मे भी अपना शृगार-उपहार दान दिया। अब वह बाला प्रणय-कहानियो को सुनाती है, उनका रस लेती है, उन्हे मन मे गुनती है, स्थापित करती है। यह भी स्वाभाविक बात है कि नववय प्राप्त स्थिति मे कुमारियो को प्रणय-कथाओ, रोमासिक-रोमाचिक घटनाओ से सहज लगाव हो जाता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य विद्यापति ने बडी निपुणता से यहाँ प्रकट किया है। वह नववय विलासिनी बाला उन प्रणय रस कथाओ को इस भाति पुलकायमान होकर चित्त पर चढाकर तन्मय हो जाती है जैसे हिरनी सगीत की धुन सुनकर मस्त हो जाती है। बाला के इस वय -सधि के अवसर पर अपने-अपने आधिपत्य को जतलाने की एक होड-सी लग जाती है और इन दोनो मे से कोई भी तो न हार पाता है और न जीत ही पाता है। आशय यह है कि इस अवस्था मे नववय विलासिनी बाला मे कुछ कौतुक शैशव के प्रकट होते है और कुछ कटाक्ष यौवन के मचलते हैं और इसी द्वद्व मे वह एक अभूतपूर्व आकर्षण को प्राप्त होती है। उसकी चेष्टाओ मे अधबचपन अधयौवन मानो आँख-मिचौनी खेलते प्रतीत होते हैं जो रसिको को उच्छवसित एव आह्लादित करते है। कविवर विद्यापति वय -सधि प्राप्त बाला के इस रूप-चाचल्य पर न्योछावर होते है, फिर भी यह निश्चय ही है कि एक दिन शैशव उसके शरीर को छोड ही देगा। वह पूर्ण तरुणी हो जायगी। व्यजना यह है कि उसकी वय -सधि की अवस्था निश्चित पार हो जायगी ·· 'यह स्वप्निल सुख छवि न रहेगी'

विशेष—प्रस्तुत पद की पहली विशेषता यह है कि कवि ने शब्दो के द्वारा वय -सधि-प्राप्त बाला का एक सजीव चित्र चित्रित किया है जिससे लज्जा, भावना, आवेग, उद्वेग, अनुभाव सचारी भाव, आगिक चपलता एव मानसिक काम-शबलता का एक साथ स्वर मुखरित होता प्रतीत होता है। जिस बाला के रूप-माधुर्य के आकर्षण-जाल मे स्वय कामदेव बदी होकर भी उसे उपहार देकर सतुष्ट होता हो, वह बाला किस दिव्य शृगार से युक्त होगी, यह बात कल्पनातीत बन जाती है। इसी कल्पना की मिठास मे वह बाला स्वय स्निग्ध है—"सुनइत रस-कथा थापए चीत। जइसे कुरगिनी सुनए सँगीत।"—तब रस का कितना वर्षण होता है, इसकी बात तो चैतन्य महाप्रभु ही को सही अर्थों मे अवगत थी या उन्हे जो विद्यापति के काव्य का सहृदयता से रस पीना चाहे। सम्पूर्ण पद मे उक्ति-चमत्कार बडे मनोवैज्ञानिक एव स्वाभाविक बन पडे है—जैसे, "सैसव-जौवन उपजल बाद। केओ न मानए जय अवसाद।" वाद-विवाद मे एक हारेगा और एक निश्चित जीतेगा ही पर यहाँ तो हठधर्मी भी नही,

वरन् बाला के वय -सधि की करामात कि दोनो ही की जोड बराबर ! इस प्रकार की होड कितनी स्वाभाविक, आकर्षक एव कौतुक-वर्द्धक होती है यह तो वही जानते है जो यौवन के रस मे भीगे है, अनुभवी है। एक शाश्वत सत्य की व्यजना—कि बचपन जाएगा, जवानी आएगी और फिर प्रौढता आएगी और बस वय -सधि की मन को मसोस देने वाली स्मृति ही शेष रह जायगी—इस लघु उक्ति मे देखिए—"सैसव से तनु छोडनहि पारि।" शब्द-लाघव के द्वारा भाव-विस्तार की क्षमता का गुण केवल विद्यापति के पदो मे बडी सफलता से परिलक्षित होता है। यथा, "अब सव खन रह आँचर हात। लाजे सखिगन न पुछए बात।" इन दो लघु उक्तियो के १२ शब्दो मे न जाने कितने मनोवैज्ञानिक भावो-स्वभावो का विस्तार है, यह किसी वय -सधि बाला की भावनाओ के प्रति किये जाने वाले अनुसधान का विषय बन सकता है। इसी पद से मिलती-जुलती शायद 'अमीर' की यह शेर पठनीय है—

"कुछ जवानी है अभी कुछ है लडकपन उनका,
यो दग़ाबाज़ो के कब्ज़े मे है यौवन उनका।"

शब्दार्थ—किछु=कुछ, लघु। उतपति=उगना, उत्पन्न हुए। अकुर=कुचो के फूटने वाले अकुरे। भेल=है, दिखाई पडते है। चपल गति=चचल चाल। लेल=ले ली है। खन=क्षण। आँचर=अचल। लाजे=लजियाने के कारण। सखि=सहेली। गन=समूह। पुछए=पूछती है। बात=इस बात का रहस्य कि आँचल पर हाथ अब किसलिये रहने लगा है। हात=हाथ। कि=क्या। कहब=कहूँ। माधव=हे रूप रसिक, कृष्ण। बयस क-सधि=वय -सधि। हेरइत=देखकर। मनसिज=कामदेव। बधि=बँधा हुआ, कैदी होना। तइअओ=तथापि, फिर भी, कामदेव ने उस बाला का कैदी बन जाने पर भी। काम=कामदेव। अनुपाम=अनुपम। रोपल=स्थापित करना। घट=यहाँ बाला के नव प्रस्फुटित उभरे हुए कुचो से तात्पर्य है। ऊचल=ऊँचा, गौरवान्वित। कए=किया। ठाम=स्थान, वक्षस्थल को। सुनइत=सुनकर। थापए=स्थापित करना, वह बाला मन मे रस-कथा को गुनती है। चीत=मन, चित्त। जइसे=जिस प्रकार से। कुरगिनी=हरिणी। उपजल बाद=होड लगी है। केओ=कोई भी। मानए=मानता है। न=नही। जय=जीत। अवसाद=पराजय। छोडनहि=छोडना ही। पारि=पडेगा। तनु=शरीर। सैसव=बचपन। से=को।

(८)

पहिल बदरि कुच पुन नवरग।
दिन दिन बाढ़ए पिड़ए अनंग।
से पुन भए गेल बीजकपोर।

अब कुच बाढ़ल सिरिफल जोर।
माधव पेखल रमनि सधान।
घाटहि भेटल करत सिनान।
तनसुक सुबसन हिरदय लागि।
जे पुरुख देखब तेकर भागि।
उर हिल्लोलित चाँचर केस।
चामर झाँपल कनक महेस।
भनइ बिद्यापति सुनहु मुरारि।
सुपुरुख बिलसए से बरनारि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कवि ने बडी सरसता से वय -सधि विलासिनी बाला के उत्तरोत्तर विकसित होने हुए स्तनो का वर्णन किया है। नवीन-नवीन उपमानो की उत्कृष्ट सगति उरोजो के साथ बिठलाते हुए कविवर विद्यापति कहते है—

नववय विलासिनी बाला के यौवनागमन पर, कुछ पूर्व, उसके उरोज बेरी के फल के सदृश लघु आकार वाले थे, फिर वय -विकास के साथ उनका उभार बढा तो वे नारगी के आकार मे बदले। यो वे अनुदिन विकसित होते गए और ज्यो-ज्यो दिन बढते गए, वह बाला तरुणाई को प्राप्त होती गई कि उसे काम-पीडन बढता गया, काम सताने लगा। फिर आगे उसके वे नारगी जैसे स्तन बडे 'टाभ' नीबू के आकार के हो गए अथवा जिस भाति 'बीज+क+पोर या बीज प्रस्फुटित होकर उसका अकुर वृद्धि करता-करता वृक्ष की मोटाई एव कठोर गाँठ की स्थिति मे परिणत हो जाता है इसी प्रकार उस नववय -सधि-प्राप्त बाला के उरोज निरतर कठोर एव दीर्घ आकार के होते जाते है। और अब तो वे उरोज कमाल के हो गये है—जैसे श्रीफल हो। उनमे जोर का उभार आ गया है और वह बाला दुबली-दुबली-सी ऐसी प्रतीत होती है मानो वह श्रीफल की बेल हो। (यहाँ 'श्रीफल' शब्द मे जहाँ एक ओर फल की अभिव्यक्ति है वहाँ बाला के सलोने शरीर को व्यजित करने के लिये उसे 'बेल' से भी परिकल्पित करना बडा सरस एव आकर्षक बनता है, अत यह स्पष्टीकरण ध्यान रखने योग्य है।) माधव या रसिक या श्रीकृष्ण ने उस अनोखे उरोजो वाली सुन्दरी बाला को खोजते हुए देखा कि वह सरिता के तीर पर स्नान कर रही है। उस अवस्था मे उसका जलभीगा वस्त्र उसकी प्यारी उरोजो वाली छाती से चिपटा हुआ था। जिस पुरुष ने भी उसको इस प्रकार से स्नान-मज्जित अवस्था मे देखा, कविवर विद्यापति कहते है कि वह पुरुष बडा बडभागी है, क्योकि ऐसी उत्तुग उरोजो वाली बाला का स्नान के समय दर्शन पा लेना सहज सुलभ किसे, कब, कहाँ होता है ? उस बाला का वक्षस्थल जल-विहार के उस वातावरण मे पुल-कायमान और उल्लसित था और उसकी बिखरी-बिखरी कुतल-राशि उसके वक्षस्थल के

उभरे उरोजो पर झीनी-झीनी बिखरी हुई ऐसी भली प्रतीत हो रही थी मानो स्वर्ण-पिड महादेव की आकृति को झीने-झीने केश-चमर ने ढाँप लिया हो। कविवर विद्यापति कहते है कि हे कृष्ण ! जरा सुनो, कि कोई नरश्रेष्ठ ही उस नववय विलासिनी बाला से विलास का सुख लूटने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है—सभवत तुम ही उसके उपयुक्त हो, मै प्रेरित करता हूँ तुम्हे !

विशेष—प्रस्तुत पद मे यद्यपि सस्कृत के रसिक कवियो की वर्णन परम्परा का निर्वाह बहुत-कुछ हुआ है जिसके लिये श्री बेनीपुरी जी का उद्धृत एक छद प्रस्तुत है—

"उद्भेद प्रतिपद्यपक्वबदरीभाव समेता क्रमात्,
पुन्नागाकृतिमाप्य पूगपदवीमारुह्य बिल्वव श्रियम् ।
लब्ध्वा तालफलोपमा च ललितामासाद्य भूयोऽधुना,
चचत् काचनकुम्भजम्भनमिमावस्या स्तनौ बिभ्रत ॥"

कविवर विद्यापति ने कुछ मौलिक उद्भावनाएँ इस पद मे बडे कलात्मक ढग से की हैं। शीतल जल का उद्वेलन नववय-सधि-प्राप्त बाला के उरोजो के ताप को घटाता है और वह तब चाहती है कि उसे कोई आलिगन-बद्ध करे—जल-क्रीडा करे—इस काम-भावना की अभिव्यक्ति कितनी काव्य-निपुणता से विद्यापति ने की है—"उर हिल्लोलित" कहकर। झीने-झीने वस्त्र के भीतर से—वह भी गीलेपन मे—उरोजो का उठान, उनका स्वर्ण-कलश जैसा आकार आकर्षण कितना मधुप प्रिय होता होगा और फिर उस पर श्याम झीने-झीने कुतलो की चिलमन पड जाये, इस अपूर्व-भूत दृश्य को विद्यापति के कवि-कलाकार की आखे कितनी सूक्ष्मता से देख पाईं और फिर उनकी कल्पना की हसिनी ने मानो मन-मानसरोवर की लहरो का एक मोहक चित्र आँक ही तो दिया कि—"उर हिल्लोलित (फिर) चाँचर केस (और) चामर झाँपल कनक महेस।" हृदय का पुलकायमान होना स्वाभाविक ही कहा जायगा, बालो का बिखर जाना भी कुछ वैसा ही, किन्तु 'कनक महेस' के पिड पर मानो चँवर डुलाया जा रहा हो—ऐसी अनिद्य शोभा उस बाला के उरोजो की !—यह अभिव्यजना तो कल्पना एव यथार्थ का युगल-अभिसार ही हमारे समक्ष उपस्थित कर देती है। 'मुरारि' शब्द 'रसिक' के लिये ही प्रयुक्त समझना चाहिए। यहाँ विद्यापति का लक्ष्य शृगार राज का यौवन-घट उडेलना है, भक्ति की सुरसरि बहाना नही। सम्पूर्ण पद मे चित्रात्मकता सजीव है। कविवर विद्यापति को इस चित्र की आकर्षणमयता पर पूर्ण विश्वास है—"जे पुरुख देखब तेकर भागि" ! शृगारी विभाव, अनुभाव एव सचारी भावो की प्रत्येक पक्ति मे सुयोजना है, और अन्तत शृगार रस का भरपूर आस्वादन निहित है क्योकि—"सुपुरुख बिलसए से बरनारि" पर ऐसी बाला के भोग के लिए शक्ति, सुरुचि एव पुसत्व की अनिवार्यता है। यह व्यजना अपनी समर्थता मे बडी

बेजोड बन पडी है ।

शब्दार्थ—पहिल=पहिले । बदरि=बेरी का फल । कुच=स्तन । पुन=फिर । नवरग=नारगी । बाढए=बढते रहे । पिडिए=पीडा देता है । मे=वे । भए गेल= हो गये । बीज कपोर=बिजौरा नीबू या टाभ, या जैसे बीज धीरे-धीरे प्रस्फुटित होकर 'पोर' अर्थात् पेड की कठोरता मे बदल जाता है, इसी भाति छोटे उरोज का बीज रूप प्रस्फुटित होकर बढा और बढकर पूर्णत कठोर हो चला । सिरिफल= श्रीफल, बेल । जोर=दृढता पकडना । माधव= रसिक या श्रीकृष्ण । रमनि=रमणी सधान=खोजकर । पेखल=देखा । घाटहि=तट पर । सिनान=स्नान । करत=करते हुए । तनसुक=झीने प्रकार का एक वस्त्र । सुबसन=सुन्दर वस्त्र । हिरदय=छाती । लागि=चिपटा हुआ, वस्त्र जल से भीगकर तन से चिपट जाता है, उसी से यहाँ आशय है । जे=जिस । पुरुख=पुरुष । देखब=देखा । तेकर=उसका । भाग=सौभाग्य से आशय है । उर=हृदय । हिल्लोलित=पुलकायमान, झूलता-झूमता हुआ । चाँचर=वचल, बिखरे हुए से आशय है । केश=कुतल राशि । चामर=चँवर । झाँपल=ढका हुआ । कनक महेश=स्वर्ण के महादेव का पिंड । भनइ=कहते है । सुनह=सुनो । मुरारि=रसिक जन से तात्पर्य है, कृष्ण । सुपुरुख= शक्ति सुरुचि वाला श्रेष्ठ नर । बिलमये=सम्भोग करेगा । से=उस । बर नारि= सुन्दर रमणी ।

(६)

खने खन नयन कोन अनुसरई ।
खने खन बसन धूलि तनु भरई ।
खने खन दसन-छटा छुट हास ।
खने खन अधर आगे गहु बास ।
चउँकि चलए खने खन चलु मन्द ।
मनमथ-पाठ पहिल अनुबध ।
हिरदय मुकुल हेरि-हेरि थोर ।
खने आंचर दए खने होए भोर ।
बाला सैसव-तारुन भेंट ।
लखए न पारिअ जेठ-कनेठ ।
बिद्यापति कह सुन बर कान ।
तरुनिम सैसव चिन्हइ न जान ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति वय -सधि विलासिनी बाला के काम-जनित भावो-मनोभावो, काम-कटाक्षो, रोमाच उद्वेलित आवेगो और आकर्षणो का

वर्णन करते हुए लिखते हैं—

वह चचल बाला क्षण-क्षण मे अपनी नयनो की कोर- टारी से तीक्ष्ण कटाक्ष करने लगी है। क्षण-क्षण मे उसका वस्त्र या आँचल अस्त-व्यस्त-सा हुआ खिसककर नीचे हो जाता है जिसके कारण उसमे लिपटी धूल से उस बाला का शरीर धूल से लिपट जाता है। क्षण-क्षण मे उसकी दतावली की विद्युत् छटा झलकती है और बर-बस उसका हास्य-लास्य झलमलाने लगता है। क्षण-क्षण मे वह शरमाकर उस हास्य-लास्य को छिपाने के लिए अपना अचल-पट अधरो के आगे कर लेती है। क्षण-क्षण मे चौकती हिरनी की भाति वह चलती है और क्षण-क्षण मे ठिठक-ठिठक जाती है। मानो यह चाचल्य उसे कामदेव का पहला पाठ है—केवल प्राक्कथन मात्र है। छाती पर खिले फूलो—उरोजो को वह दबी-दबी नजर से थोडा-थोडा देख लेती है। क्षण भर मे वह लजाकर आँचल सटाती है फिर क्षण भर मे भोली-भाली आत्मविस्मृत-सी भूली-भूली मुद्रा बना लेती है। कविवर विद्यापति कहते है कि उस वय-सधि-प्राप्त बाला के शरीर मे बचपन एव यौवन का मधुर मिलन हो रहा है। देखकर अन्दाज़ लगाना मुश्किल हो रहा है कि इन दोनो मे कौन बडा और कौन छोटा भाई है ?—बचपन या यौवन ! कविवर विद्यापति कहते है कि हे रसिक सुजान, सुन, इस अवस्था मे यह पहचान भी नही पडता कि बचपन कौनसा है और यौवन कौनसा ? आशय यह है कि नववय विलासिनी बाला की चरित्र क्रीडाएँ-चचलताएँ कुछ बचपन-मिश्रित होती है और कुछ यौवन-मिश्रित जिससे उसके रूप-सौन्दर्य का एक कल्पनातीत और वर्णनातीत दृश्य बनकर रह जाता है।

विशेष—नववय-विलासिनी बाला के नादान हृदय मे काम-आवेशो का क्षण-क्षण मे उतार-चढाव ज्वार-भाटे की भाति बना रहता है। उसका हर विक्षेप, उसकी हर अदा चचलता के साथ मासूम एव 'हाँ' के स्थान पर 'ना' और 'ना' के स्थान पर 'हाँ' की सहज और मनोमुग्धकारी अभिव्यक्ति रहती है। काम-शास्त्र मे वय-सधि के चरित्रो एव आचरणो की लम्बी मनोवैज्ञानिक व्याख्या उपलब्ध होती है—वय-सधि बाला के आगिक विकास—उरोज, नयन, जघाओ आदि के प्रति विस्तार से वर्णन वहाँ मिलता है। सस्कृत काव्य मे कवियो ने इसका समुचित प्रयोग किया है। हिन्दी मे सर्वप्रथम विद्यापति ने इस काम-शास्त्र की पद्धति पर अपने सरस पदो को मुखरित किया—यही उनकी अमर कीर्त्ति का मानदण्ड है। नायिका-भेद मे नई अक्षत नायिका का रूप-वर्णन व्यापक माना गया है जिसे 'मुग्धा' या अज्ञात-यौवना कहा गया है। प्रस्तुत पद मे मुग्धा या अज्ञात अक्षत यौवना बाला की सूक्ष्म रागारुणता का बडा कलात्मक अभिव्यक्तिकरण किया गया है। क्षण-क्षण मे उसकी चचलता सकोच के कारण लजाती है, नयन झुकते-उठते है, खुलते-मुंदते है, आचल खिसक-खिसक पडता है, हँसी फूटती है कि ओठो पर उगली रखे लज्जा अपना वस्त्र ढाँप देती है और यह

सब कुछ ही उसके दिल मे लिखे कामदेव के महाकाव्य की लिखी भूमिका है जो उसके चचल चरित्र से प्रकट होती है। इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक पहलू को विद्यापति ने बडी काव्य सरसता के माध्यम से प्रस्तुत कर रसिको को भाव-विभोर करने के लिए कुछ छोडा नही है। इस प्रकार के पदो की रचना हिदी के रीतिकालीन कवियो ने की तो, पर उसमे वर्णन की ही पराकाष्ठा है, वक्षस्थल की धडकन का साज कम बोलता है। विद्यापति इसी दृष्टि से अकेले ऐसे कवि है जिन्होने मन के रस मे लपेटकर काव्य वर्णन प्रस्तुत किया है। "खने खन" शब्द की जितनी बार इस पद मे आवृत्ति हुई है वह युग-युग की आन्तरिक प्यास को छूने वाली, झकझोरने वाली और मधुरस से बुझाने वाली भी है। "मनमथ पाठ पहिल अनुबध" की जब यह दशा है तो आगे क्या फुलवारी फूलेगी? यह जिज्ञासा हृततन्त्रियो को झनकार देती है। शब्दो के द्वारा कवि ने हर पक्ति मे एक भावमय चित्र ही मानो चित्रित किया है—शरमाती रसियाती बाला सामने खडी है और कभी वह "खने खन नयन कोन अनुसरई" तो कभी "खने आँचर दए खने होए भोर।" आँखो का कटाक्ष करते-करते सहसा वह मुँह पर आँचल डालकर नादान बन जाय तो कौन ऐसा होगा जो उसकी इस कला को न सराहे ·· उसका चित्र मानस-फलक पर अकित न करे? सम्पूर्ण पद मे ऐसी चित्रात्मकता का सश्लिष्ट अकन उन्मीलन है। 'कान' शब्द मुख्यत सुन्दर रसिक के लिए ही आया है, कृष्ण के लिए नही।

शब्दार्थ—खने खन=क्षण-क्षण मे। कोन=कोर—कटाक्ष या कटारी। अनुसरई-=करती है, चलती है। बसन= वस्त्र या अचल। तनु=शरीर। भरई=भरता है। दसन=दाँत। छटा=विद्युत् जैसी शोभा। छुट= आना। हास=हँसी। गहु=ले जाना। बास=वस्त्र। अनुबध=प्राक्कथन। हिरदय-मुकुल=वक्षस्थल का फूल—उरोजो से तात्पर्य है। भोर=भूली-भूली—नादान-सी या आत्मविस्मृति की दशा। हेरि= देखकर। थोर=थोडा-थोडा, दबी नजर से देखने से तात्पर्य है। सैसव=बचपन। तारुन=यौवन। भेट=मेल। लखए=दिखलाई। पारिअ=पडते। जेठ=बडा। कनेठ=छोटा। बर कान=सुन्दर सुजान रसिक या कृष्ण। तरुनिम=तरुणाई। चिन्हइ=पहचानी। न जान=नही जाती।

नख-शिख

(१०)

पीन पयोधर दूबरि गता।
मेरु उपजल कनक-लता।
ए कान्हु ए कान्हु तोरि दोहाई।

अति अपूरुब देखलि साई।
मुख मनोहर अधर रगे।
फुललि मधुरी कमल सगे।
लोचन जुगल भृग अकारे।
मधु क मातल उडए न पारे।
भउँह क कथा पूछहु जनू।
मदन जोडल काजर-धनू।
भन बिद्यापति दूति बचने।
एत सुनि कान्हु कएल गमने।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति 'स्वर्ण-लता,' जैसी अपूर्व तन्वी नायिका के नख-शिख शृगार का कामोद्वेलित वर्णन दूती द्वारा प्रस्तुत कराते हुए लिखते हैं—

उस सुन्दर तरुणी का तन तो दुर्बल या तन्वगी है पर उसके कुच बडे ही स्वस्थ और उभरे हुए है। उन्हे निरखकर लगता है कि मानो 'र्स्वण-लता' पर सुमेरु पर्वत की उत्तुग चोटियाँ लगी हो। नायिका की दूती कहती है कि हे रसिक सुजान कृष्ण, अरे वह तो ऐसी कौतुकमयी है कि बस तुम्हारी दुहाई देती है। उसे रमणियो मे प्रथम बार ही इतनी अपार सुन्दरी मैने पाया है। वह सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है! उसकी पहले तो अत्यत मादक मनोहर मुख-छवि, फिर उस पर उसने अपने अधरो पर लाली लगा रक्खी है—गजब का रूपाकर्षण है!—ऐसा प्रतीत होता है कि उस सुन्दर मुख पर वे लाल-लाल अधर—मानो कमल-पुष्प पर मधुरी खिल रही हो। फिर उसके वे दोनो कजरारे मस्त हुए मतवाले बडे-बडे नेत्र, मानो काले भौरे है जो उसके कमल-मुख-माधुर्य का रस पीकर उडने मे असमर्थ हो रहे हो—उड नही पा रहे हो। बस, उसकी भौहो के बारे मे जो कटाक्ष-कहानी है उसकी तो कहानी ही न पूछो—सुनो, कामदेव ने उसके काजल का धनुष बनाया हुआ है—वह काजल रूपी कामदेव का धनुष लिए है जिसके द्वारा रसिको का शिकार किया करती है। कविवर विद्यापति कहते है कि उस शृगारिणी नायिका का दूती के मुख से नख-शिख शृगार-वर्णन सुनकर रस-सुजान कृष्ण ने तुरत उससे मिलने के लिए गमन किया।

विशेष—"नख-शिख" शृगार-वर्णन की परम्परा सस्कृत के कवियो मे बडी प्रधानता से चली है। "आर्या सप्तशती" एव "शृगार शतक" आदि ग्रथो मे नायिका के शारीरिक शृगार का वर्णन अनेकानेक उपमानो-उपमाओ-उत्प्रेक्षाओ के माध्यम से किया गया है। यहाँ विद्यापति भी उस परम्परा की लकीर पर चल रहे है—पर जरा नए लहजे से भी। उक्ति-चमत्कार विद्यापति का अपना और मौलिक है—"मेरु उपजल कनक-लता" तन्वगी के शरीर पर उभरे कुचो की शोभा का दृश्य ऐसा ही यथार्थ-

दर्शी मन को लगा करता है जैसे 'स्वर्ण-लता' पर सुमेरु पर्वत की उत्तुग चोटियाँ दृश्यमान होती है। फिर मनोहर कमल सदृश मुख पर लालीयुक्त अधर की शोभा कैसी रोमाचमयी है मानो कमल पुष्प पर माधुरी की कोमल दो पखुरियाँ विकसित है। यह उत्प्रेक्षा और उपमा का सयोग सर्वथा मौलिक शृगार चित्र प्रस्तुत करता है। 'काजल' कामदेव का धनुष है और वह बाला उसे साधकर, उसके आधार से सहज ही रसिको के दिलो को घायल कर देती है—यह व्यजना बडी ही मार्मिक बन पडी है। यो दूती के शब्दो मे यह उक्ति बडी सत्य लगती है—"ए कान्हु ए कान्हु तोरि दुहाई। अति अपूरुब देखलि साई।" सुकुमारता, आकर्षण और काम वशीकरण के भावो का एक साथ चित्रण होने के कारण पद मे शृगार की पूर्णत अभिव्यक्ति हो सकी है। यह भाव-एकता (Unity of Sentiments) रीतिकालीन अन्य कवियो मे विद्यापति की अपेक्षा ऊची नजर नही आती। अत हिन्दी गीतिकाव्य के विद्यापति ही एकमात्र समर्थ एव हृदयस्पर्शी कवि ठहरते है। "कान्हु" सम्बोधन कृष्ण के लिये न होकर कृष्ण जैसे महान् नायक के लिये ही प्रयुक्त समझना चाहिये।

शब्दार्थ—पीन=मासल। पयोधर=कुच। दूबरि=तन्वी, दुबली। गता=गात वाली, तन वाली। मेरु=सुमेरु पर्वत। उपजल=उगे हुए। कनक-लता=स्वर्णलता। ए कान्हु=हे कृष्ण, रसिक-सुजान। तोरि=तेरी। दोहाई=दुहाई करना' किसी को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये यह 'दुहाई' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। अति=अत्यन्त। अपूरुब=अपूर्व। देखलि=देखा। साई=उसे। रगे=रगे हुए लाली-युक्त। फूललि=विकसित हुई। मधुरी=एक गहरे लाल रग की खिली पुष्पकली से आशय है। सजे=साथ मे। लोचन=नेत्र। जुगल=दोनो। भृग=भँवरा। मधु=रस। क=के। मातल=मस्त। उडए=उडना। न पारे=नही पा रहे है असमर्थ है। भउँह=भौए। क=की। कथा=यहाँ विचित्रता से तात्पर्य है, यानी विचित्रता की कहानी। पूछह=पूछो। जनू=मत। मदन=कामदेव। जोडल=जोडा हुआ, निर्मित। काजर-धनू=काजल रूपी धनुष। भन=कहते है। दूतिबचने=दूती का वचन या उसका किया गया नायिका के प्रति रूप-वर्णन। एत=ये। सुनि=सुनकर। कान्हु=कृष्ण, सुजान रसिक जन। कएल=किया। गमने=प्रस्थान।

(११)

कि आरे ! नब जौबन अभिरामा।
जत देखल तत कहए न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा।
हरिन इन्दु अरबिन्दु करिनि हेम
पिक बूझल अनुमानी।

नयन बदन परिमल गति तन रुचि
अओ अति सुललित बानी।
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हारा।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल
चांद बिहिनु सब तारा।
लोल कपोल ललित मनि-कुण्डल
अधर बिम्ब अध जाई।
भौंह-भ्रमर, नासापुट सुन्दर
से देखि कीर लजाई।
भनइ बिद्यापति से बर नागरि
आन न पाबए कोई।
कसदलन नारायन सुन्दर
तसु रगिनि पए होई।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति नायिका के अनोखे रूप-रस-राग का शृगारिक वर्णन बडे काव्य-कौशल से करते हुए लिखते है—

अहा ! उस विकसित विलासिनी का यौवन कितने अल्हड सौन्दर्य से युक्त दीख पडता है। उसे जितना सुन्दर देखा जाता है उसका उसी भाति विशुद्ध वर्णन नही किया जाता। मानो कवि कल्पित छ अनुपम उपमाए और उनके उपमान उस तरुणी के अग-रग मे एकाकार हो गए है। उन छहो का एक ही निवास-स्थान बन गया है—उस तरुणी का अल्हड यौवन ! ये छ अनुपम उपमान है, क्रमश उपमेयो के साथ—हरिण के जैसे उसके चचल नेत्र, चद्र-सा मुख-मण्डल, कमल-गध-सी अग-वास, हथिनी की जैसी मस्त चाल, स्वर्ण जैसी शरीर की काति और कोयल की जैसी मीठी वाणी ! उसके दोनो कुचो का स्पर्श करने की लालसा मे उसके केश खुलकर बिखरे-बिखरे दीखते है और इस लालस-अलसाहट मे उन केशो से उस रमणी की ग्रीवा का मुक्ता-हार उलझ-पुलझ गया है जिससे उसके श्वेत मोती उन केशो के घने अन्धकार जैसे श्यामल व्यूह मे इस प्रकार झिलमिलाते है मानो उसके उभरे उरोज-वक्षस्थल रूपी सुमेरु पर्वत पर उसके मुख रूपी चद्रमा को पीछे छोडकर उदित तारे मिलकर झिलमिलाते हो। यहाँ बिल्कुल स्पष्ट आशय यह है कि रमणी की अलमस्ती की दशा मे उसका मोती-जटित हार उसके वक्षस्थल पर उलझा हुआ लहरा रहा है जिसके मोती उन केश-व्यूहो की सघन श्यामलता के बीच ऐसे झिलमिलाते है जैसे सुमेरु पर्वत से ऊचे रात के घोर अन्धकार मे तारे झिलमिलाते है और उसका मुख-मण्डल उस चाँद की तरह प्रतीत होता है जो केशराशि के पीछे से झाँक रहा हो। शोभा का

आगार-सा ! उस रमणी के सुन्दर कपोलो या गालो पर सुन्दर मणि-कुण्डल बडे शोभायमान प्रतीत हो रहे है और ओष्ठो की लाली को देखकर बिम्बाफल भी लजाकर मानो पृथ्वी मे गडा जाता प्रतीत होता है। उसकी काली भौहे भँवरो जैसी है, सुन्दर नासिका की शोभा को देखकर सुग्गा भी शर्म से सिर झुकाता है। इस प्रकार उस रमणी की शोभा-सुषमा को देखकर कविवर विद्यापति कहते है कि ऐसी श्रेष्ठतम सुन्दरी को सिवाय सौभाग्यशाली रसिक व्यक्ति या कृष्ण को छोडकर दूसरा और कौन अपना सकता है ? दूसरा आशय यह भी हो सकता है--और फिर ऐसी रमणी राधा जैसी हो तो कस को मारने वाले श्यामसुन्दर की ही कामिनी हो सकती है। आशय यह है कि राधा-कृष्ण के पारस्परिक प्रणय-शृगार एक-दूसरे के परिपूरक है या उपयुक्त है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शृगार-वर्णन की नख-शिख पद्धति को ही विद्यापति ने अपनाया है। प्राय उपमा उपमान प्रचलित ही है जैसे, आँख के चाचल्य के लिये हिरन, मुख के लिये इन्दु आदि ! किन्तु विद्यापति की मौलिकता यहाँ उनकी कल्पना की समाहार-शक्ति एव शब्द-योजना की सागिकता पर अवलम्बित है। "छओ अनुपम एक ठामा" उक्ति से "हरिन इन्दु अरबिन्द करनि हेय, पिक बूझह अनुमानी। नयन बदन परिमल गति तन रुचि, अओ अति सुललित बानी।" उक्तियो तक शृगारिक उपमेय उपमानो की पुष्टि कर कमाल का उदाहरण कहा जायगा। "जनि सुमेरु ऊपर मिलि, ऊगल चाँद बिहिनु सब तारा" पक्तियो मे काल्पनिक उडान और उसका सहज चित्राकन बडा बारीक किया गया है। इससे केशराशि का अपूर्व आकर्षण, प्रतिध्वनित हो उठा है। अन्तत कवि ने इस शृगारी भावना का पर्यवसान "दैवी रति" मे किया है जो यद्यपि भक्ति रस का प्रबोध तो नही करता किन्तु कवि विद्यापति भक्त थे, इस कथन की पूर्ण आस्था प्रकट करता है।

शब्दार्थ--कि आरे=अरे, अहा ! जौवन=यौवन। अभिरामा=सुन्दर। जत=जैसा। देखल=देखा। तत=वैसा। कहए=कहा। न पारिअ=नही जाता। छओ=छहो। अनुपम=अनोखे उपमानो वाला। एक ठामा=एक स्थल पर। हरिन=हिरन। इन्दु=चद्रमा। अरबिन्दु=कमल। करिनि=हथिनी। हेम=स्वर्ण। पिक=कोयल। बूझल अनुमानी=अनुमान किया जाता है। बूझल=कहा जाना, बोल। नयन=नेत्र। बदन=मुख। परिमल=वास। गति=चाल। तन रुचि=सुन्दर शरीर की काति। अति=अत्यधिक। सुललित=मीठी, रसमय। बानी=वाणी, बोली। कुच=उरोज। जुग=दोनो। परसि=स्पर्श। चिकुर=केश। फुजि=खुलकर। पसरल=फैल जाना। ता=उससे। उरुझायल=उलझकर। हारा=हार। जनि=मानो। ऊगल=उदित हुए। बिहिनु=बिना, पीछे ढँके हुए से। लोल=चचल। कपोल=गाल। ललित=सुन्दर, आकर्षक। मनि-कुण्डल=मणिमय कुण्डल। अधर=

श्रोष्ठ । बिम्ब=बिम्बाफल । श्रधजाई=लज्जा से नीचे गढा जाता है । नासापुट=नासिका । से=उसे । देखि=देखकर । कीर=तोता, सुग्गा । लजाई=लज्जित होता है । भनइ=कहते है । बर नागरि=सुन्दर रमणी । श्रान=श्रन्य । पाबए=पाए । कसदलन=कस को मारने वाले श्रीकृष्ण । तसु=उसकी । रगिनि=रमणी । पए=पाना । होई=होना ।

(१२)

माधव की कहब सुन्दरि रूपे ।
कतेक जतन बिहि श्रानि समारल
देखल नयन सरूपे ।
पल्लव-राज चरण-युग सोभित
गति गजराज क भाने ।
कनक-कदलि पर सिह समारल
तापर मेरु समाने ।
मेरु ऊपर दुइ कमल फुलायल
नाल बिना रुचि पाई ।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि
तश्रो नहि कमल सुखाई ।
श्रधर बिम्ब सन, दसन दाडिम-बिजु
रवि-ससि उगथिक पासे ।
राहु दूर बसि नयरो न श्राबथि
तँ नहि करथि गरासे ।
सारङ्ग नयन बयन पुनि सारङ्ग
सारङ्ग तसु समधाने ।
सारङ्ग ऊपर उगल दस सारङ्ग
केलि करथि मधुपाने ।
भनइ विद्यापति सुन बर जौबति
एहन जगत नहि श्राने ।
राजा सिर्बासघ रूप नरायन
लखिमा देइ पति भाने ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति नायिका के श्रग-प्रत्यग का वर्णन शृगार की ऊहात्मक पद्धति के ढग पर करते हुए लिखते है—

हे रस-सुजान नायक श्रीकृष्ण, मैं उस रमणी के रूप की प्रशसा मे क्या कहूँ ?

ब्रह्मा ने न जाने कितने कलात्मक यत्न से उसके अग-प्रत्यग की रचना की है—यह उसकी रूप-माधुरी को देखकर स्पष्ट होता है। उसके दोनो चरण कमल जैसे सुन्दर-सुकुमार है और उसकी मस्त-मद चाल हाथी की चाल के समान प्रतीत होती है। और उसकी स्निग्ध मासल जघाएँ ऐसी प्रतीत होती है जैसे स्वर्ण-केले के स्तभ हो जिस पर उसकी कमर सिह की कमर की भाति पतली और लचक लोचदार प्रदर्शित होती है। और उस पतली कटि के ऊपर उसकी उभरी छातियो वाला वक्षस्थल सुमेरु पर्वत जैसा उत्तुग प्रतीत होता है। उस पर्वताकार शिखर के ऊपर दोनो कुच-कमल ऐसे लगते है जैसे दो कमल विकसित हो। और विचित्रता यह कि वह कुच-कमल बिना कमल-नाल के आधार के ही सधे-खिले हुए है, सुशोभित होते है। उसके सुमेरु-जैसे वक्षस्थल पर मणिमाल रूपी गगा की धारा झलमला रही है। अत सम्भवत नालविहीन वे कुच रूपी कमल सदा विकसित रहते है, सूख नही पाते। और विचित्रता का समाधान इस प्रकार हो जाता है, अन्यथा बिना नाल के कुच कमल कैसे खिले रहते ? उसके ओष्ठ बिम्बफल के सदृश स्वाभाविक रूप मे लालिमायुक्त लगते है, और दाँत अनारदाने के जैसे चमकीले है। उसके मुख-मण्डल और उसकी मधुर लाली को निहारकर लगता है कि मानो चद्र-सूर्य पास-पास ही उदय हुए है, क्योकि मुख चद जैसा मधुर, शीतल एव बाल-रवि के सदृश उस पर लाली रजित है। उसके केशो का जूडा बँधा है, इससे लगता है कि मानो उसके चद्र-सूर्य जैसे समुज्ज्वल मुख के पास राहु तो फटकने भी नही पाता, अत वह उन्हे ग्रस नही पाता। आशय यह है कि उस नायिका की मुख-काति कभी मद नही पड पाती, क्योकि ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार सूर्य-चद्र के पास-पास होने पर ग्रहण नही लगा करता और फिर यहाँ कवि की सूझ बडी विचित्र यह है कि राहु-रूपी उसके केशो का जूडा बजाय नायिका के रूप को हानि पहुँचाने के उसकी शोभा को बढाने का काम कर रहा है। उसकी चचल सुन्दर आँखे हिरन के जैसी, मीठी वाणी कोयल की जैसी है और उसकी भौहे धनुष जैसी मानो कामदेव के काम-बाण का जैसा कटाक्ष करती है। उसके कमल-माल पर मानो मत्त बिखरे केशो रूपी मत्त भँवरो का समूह मँडराता रहता है जो कामकेलि करता और मदपान को आतुर हुआ लगता है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे रसिकराज, सुनो—ऐसी अच्छी सुन्दरी इस ससार मे कोई दूसरी नही है और वह अनिद्य सुदरी हे राजा शिवसिह की रानी लखिमादेवी, यो लखिमादेवी के लिये रूपावतार शिवसिह उसके पति सर्वथा उसके रूप-मधुपान के लिये उपयुक्त है—दोनो ही की युगल जोडी सारस की जोडी के समान श्रेष्ठ है।

विशेष—हिंदी नख-शिख शृगार-वर्णन की परम्परा सस्कृत-शृगार की दुहिता है। हिंदी मे सर्वप्रथम इसकी अनन्य स्थापना रस शृगार राजकवि, अभिनय जयदेव विद्यापति ने की, यह निर्विवाद बात है। प्रस्तुत पद की अपनी सर्वोच्च महत्ता इस बात

मे है कि इसके आगे हिंदी के अनेक शिरोमणि कवियो ने अपने रीतिश्रृंगार-वर्णन मे इस पद के उपमेय उपमानो का प्राय सर्वथा मिलता-जुलता-सा वर्णन अपने श्रेष्ठ कथित पदो मे किया है। जायसी ने पद्मावती के रूप-चित्रण मे पद्मावत महाकाव्य के अन्तर्गत इस प्रकार का पद रचा है और सूर ने "अद्भुत एक अनूपम बाग" पद मे ज्यो-के-त्यो प्रयोग किये है। फुटकल रूप मे बिहारी और अन्य रीतिकालीन कवियो ने भी इस पद के उपमेय उपमान प्रयोगो को ग्रहण किया है। यही इस पद की अपनी व्यापक विशेषता है। यद्यपि इस पद मे भावपक्ष का स्पर्श नही के बराबर है, परन्तु काव्य-कला की उत्कृष्टता तो पूर्ण है—मानो अनावृत्त शरीर-यष्टि का एक शब्द-चित्र आँका गया हो—"अधर बिम्ब सन, दसन दाडिम-बिजु" उक्ति मे आज की भी किसी श्रेष्ठ सुन्दरी मे हम सहज सार्थकता देख सकते है, पर जो स्वाभाविकता विद्यापति की नायिका मे स्वयसिद्ध है वह शायद आज की लिपिस्टिक-लिप्त अधरो वाली, दशनो वाली सुन्दरी मे न लगे—यह दूसरी बात है। "सारग" शब्द के पर्याय का कितना अर्थसगत यथास्थल प्रयोग है यह कवि के 'प्रयोगवाद' की एक दिशा है जो आज की प्रयोगवादी रचनाओ को दिशा दे सकती है। "रवि ससि उगथिक पास" मे जहाँ कवि के ज्योतिष-ज्ञान का काव्य मे सुन्दर समाहार हुआ है वहाँ "राहु दूर बसि नियरो न आबथि" उक्ति मे एक नया कमाल का चमत्कार बडी बारीकी से व्यजित किया गया है कि "राहु रूपी नायिका का बँधा केश-जूडा रवि-शशि की कातियुक्त जैसे चेहरे को ग्रसता नही, उसकी शोभा को और बढाता है।" कवि-कल्पना की इतनी बारीक सूझ कम देखने मे आती है। विद्यापति राजाश्रित कवि थे अत उनके सरक्षक राजा की प्रशस्ति "सिवसिंघ और उनकी रानी लखिमादेवी" भी वर्णित है। यह "नर काव्य" का उदाहरण है जिसको भक्तिकाल मे प्राय नही अपनाया गया। पद मे रूपक, उपमा, यमक एव उक्ति-वैचित्र्य की प्रधानता है। यह पद 'माधव' सम्बोधन से यह न समझना चाहिए कि श्रीकृष्ण-राधा विषयक है, यह विशुद्ध नर श्रृगारी काव्य हे—राजा शिवसिह की श्रृगारी भावना की प्रशस्ति के अनुकूल।

शब्दार्थ—माधव=रसिक सुजान या श्रीकृष्ण। की=क्या, कैसे। सुन्दरि=रमणी। रूपे=रूप। कतेक=कितने ही। जतन=यत्न। बिहि=ब्रह्मा। आनि=द्वारा। समारल=सवारना। देखल=देखने से। सरूपे=सत्य सौन्दर्य या प्रत्यक्ष। पल्लवराज=कमल, यहाँ आशय नायिका के कमल-पल्लव जैसे चौडे स्निग्ध नायिका के पाँवो से है। युग=दोनो। सोभित=शोभायमान। गति=चाल। गजराज=हाथी। क=की, का। माने=प्रतीत होती है। सिंह=शेर, यहाँ शेर की पतली कटि से आशय है। समारल=आधारित, शोभित लगने वाली। तापर=उसके उपर। मेरु=सुमेरु पर्वत जैसा उत्तुग वक्षस्थल। समाने कनक कदलि=सोने के केले का स्तम्भ, उपमा से तात्पर्य स्निग्ध जघाओ से है। दुइ=दो। कमल=कुचो से तात्पर्य है। फुलाइल=

विकसित है। नाल बिना=बिना कमल की डडी के ही। रुचि पाई=शोभायमान है। मनिमय-हार=मोतियो का हार। धार बहु सुरसरि=गगा की धाराएँ। तओ= सम्भवत। नहि=नही। सुखाई=सूखते या मुर्झाते है। अधर=ओष्ठ। बिम्ब=लाल बिम्बाफल। सन=तुल्य। दसन=दाँत। दाडिम बिजु=अनारदाने की झलक जैसे। उगथिक=उदय हुए। पासे=पास मे। बस=बसता है। राहु=यहाँ सूक्ष्म व्यजन नायिका के बँधे केश जूडे से है। नियरो=पास। आबथि=आता है। तँ=इसी से। करथि=करता है। गरासे=निगलना। सारँग=हरिण, कोयल, कामदेव, कमल, ललाट, भौरा आदि, भावार्थ मे इन सब उपमानो के उपमेय स्पष्ट किये गये है। बचन=वाणी। पुनि=फिर। तसु=मानो, ऐसे। समधाने=काम कटाक्ष सधान। दस=यह बहुसख्या सुचर शब्द, केश लटो के लिए प्रयुक्त हुआ है, "दल" भी इसका पाठान्तर हो सकता है जिसका अर्थ होगा केश-जाल, यह उपयुक्त बैठता है। केलि= काम-क्रीडा। करथि=करता है। मधुपाने=मधुपान करना। भनइ=कहते है। बर जौबति=श्रेष्ठ सुन्दरी। एहिन=इस। जगत=ससार। नहिआने=दूसरी कोई नई। सिवसिघ=राजा शिवसिह, जिनके राजाश्रित विद्यापति कवि थे। रूपनारायण=रूप के राजा। लखिमा=लखिमादेवी, राजा शिवसिह की सुन्दरी रानी।

(१३)

जुगल सैल-सिम हिमकर देखल
एक कमल दुइ जोति रे।
फुललि मधुरि फुल सिदुर लुटाएल
पाँति बइसलि गज मोति रे।
आज देखल जति के पतिआएत
अपुरुब बिहि निरमान रे।
बिपरित कनक-कदलि-तर सोहत।
थल-पकज के रूप रे।
तथहु मनोहर बाजन बाजए
जनि लागे मनसिज भूप रे।
भनइ विद्यापति पूरब पुन तह
ऐसनि भजए रसमत रे।
बुझल सकल रस नृप सिबसिघ
लखिमा देइ कर कन्त रे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति सुन्दरी नायिका के नख-शिख शृगार-वर्णन की बडी बारीक अभिव्यजना करते हुए लिखते है—

मैने उस रमणी के रूप मे बडी आश्चर्यजनक सुन्दरता देखी कि दो पवतो की सीमा मे चन्द्रमा चमकता हुआ देखा। आशय है कि बाला के दोनो उरोज दो पर्वत के समान है जिनकी उच्च परिधि पर उसका चद्रमुख कातिमान दृश्यमान होता है। फिर और दूसरा आश्चर्य यह कि एक कमल पर दो दीपशिखा-सी ज्योतिर्मयी आँखे भी देखी। आशय यह है कि वही नायिका का चद्रमुख कमल-सा भी लगा जिसमे दो चमकती-चमकती ज्योतिर्मान उसकी आँखे दिखलाई पड रही थी। और जैसे मधुरी का फूल सिन्दूर मे लोट-लिपट रहा था यह उसके मधुरी के पुष्प जैसे काति-रजित भाल पर सिदूर-सी लज्जा-लालिमा लिपटी या लगी हुई थी। और उसकी दतावली के क्या कहने, लगती थी मानो वहाँ गज-मुक्ताओ की पक्ति बैठी हो। आशय यह है कि उसके दाँतो की शोभा अद्वितीय लग रही थी। कविवर विद्यापति कहते हे कि मैने जितनी रूप-राशि आज उस नायिका मे देखी है उसे कहूँ तो कौन विश्वास करेगा,—वह सीमातीत सौन्दर्य-राशि की प्रतिमा थी। अरे, वह बाला तो जैसे ब्रह्मा की निर्मित अपूर्व कलाकृति है। स्वर्ण-केले के स्तभ के सदृश, पर नीचे की ओर मोटी से पतली होती हुई, उसकी स्वर्ण-केले के स्तभ से भी अधिक सुन्दर जघाओ के नीचे कमल-जैसे सुन्दर चरणतल थे। आशय यह है कि केले का स्तभ तो नीचे से मोटा और ऊपर को बारीक होता चला जाता है जिससे उसकी सुडौलता मे व्याघात प्रतीत होता है—किंतु उस नायका की जघाएँ तो सर्वथा सुडौल एव कलात्मक है और फिर नीचे उसके पाँवो का महावर-लिप्त पाव-पजा तो कमल की तरह शोभायमान होता है। उसके चरणो पर बँधे मनहरण ध्वनि से नूपुर बज रहे थे मानो नृपति कामदेव को जगाने के लिये यह सब कुछ सगीतायोजन चल रहा था। आशय यह है कि उस बाले के रूप-सौन्दर्य के साथ उसके हाव-भावो एव चलत-फिरत की झकार भी कामाकुलता जाग्रत् करने वाली थी। कविवर विद्यापति कहते है कि उस रसिक के यह पूर्व जन्म के पुण्य भाग है जो ऐसी श्रेष्ठ रमणी का काम-स्मरण करता है। ऐसी सुन्दरी लखिमादेवी के पति राजा शिवसिंह ही इस प्रकार की रमणी के शृगार-रसो की बातो को जानने-बूझने वाले निपुण, रस-राजाधिराज है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे बाला के रूप-सौन्दर्य को चमत्कृत करने मे मानो कवि ने कोई कमी छोड नही रखी। कल्पना की बारीकी एव शृगार-भावना की कमनीयता को कवि ने अत्यत निपुणता से वाणी प्रदान की है—"फुललि मधुरि फुल सिदुर लुटाएल" इस उक्ति मे मुख का प्रथम कमल से रूपक बाँधकर पुन उसकी उपमा मधुरी के पुष्प से देकर उसके सौन्दर्य को शत-प्रतिशत आकर्षित बनाया गया है और फिर रमणी के मुख पर लाज का होना भी तो स्वाभाविक होता है। इसके लिये "सिंदूर लुटाइल" प्रयोग बडी सूक्ष्म व्यजना प्रगट करता है कि वह रमणी केवल सुन्दरी ही नही—लाजवती भी है। भावना की गरमाहट एव कल्पना की शीतलता यो इस पद

मे अद्वितीय बन पडी है। कल्पना की यथार्थ दृष्टि कवि ने बाला की स्निग्ध जघाम्रो के प्रति ही की है—"बिपरति कनक कदलि-तर सोहत" पक्ति लिखकर। केला नीचे से मोटा और ऊपर से पतला होता है जिससे उसके सौन्दर्य की सुडौलता नही रहती पर उस बाला की जघाएँ तो केले से कही अधिक सुडौल और सुन्दर तो है पर विशेषता यह भी कि उनके नीचे पॉव रूपी कमल पुष्प भी शोभायमान होता है। इस प्रकार न जाने कितने सुललित शब्द-चित्रो की सृष्टि कविवर विद्यापति करने मे समर्थ हो सके है। नूपुर के स्वर शब्दो मे सुप्त उन्माद को जगाने की क्षमता सर्वज्ञात है फिर ऐसी सुन्दर मुख, जघाम्रो और पॉवोवाली रमणी के पदो मे जब नूपुर की ध्वनि सुनाई दे तो भला कामदेव क्यो न जागे?—इस नैसर्गिक भावना को किस ढग से कवि ने छेडा है—"तथहु मनोहर बाजन बाजए, जनि जागे मनसिज भूप रे।" इस प्रकार के विद्यापति के पदो की अपनी सर्वोच्च महत्ता यह है कि उनमे कल्पना, भावना एव यथार्थ का अत्यत काव्योचित समन्वय बडी कलात्मकता से हुआ है जो दूसरी नख-शिख शृगारी कविताम्रो मे अपेक्षाकृत हम कम पाते है।

शब्दार्थ—जुगल=दो। सैल=पर्वत, यहॉ कुचो से तात्पर्य है। सिम=सीमा, यहॉ पर अर्थ है कि उत्तुग उरोजो के ऊपर किंतु निकट ही दिखलाई पडती सीमा के रूप मे चद्रमुख की छटा। हिमकर=चद्रमा। देखल=दिखलाई पडना। कमल=मुख के लिये आया है। दुर=दो। जोति=चमकीली आँखो के लिये। फुललि=पुष्प। मधुरि फुल=मधुरी का पुष्प। लोटाएल=बिखेरना। सिदुर=यहाँ मुख की रजित काति से ही तात्पर्य सगत है। पॉति=पक्ति, दतावली के लिये प्रयुक्त हुआ है। गज मोति=गज मुक्ताम्रो से तात्पर्य है। जति=जितना, यहॉ आशय है कि जितना अधिक सौन्दर्य देखा है। के=कौन। पतिआएत=विश्वास करेगा। अपुरुब=अपूर्व। निरमान=निर्माण, उस रमणी की अपूर्व उत्पत्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है। बिहि=ब्रह्मा। बिपरित=उलटा, जघाम्रो का नीचे की ओर सुडौल होते आने के लिये प्रयुक्त है। कनक=स्वर्ण। कदलि-तर=केले जैसी जघाम्रो के नीचे। सोहत=शोभायमान होना। पकज=कमल, यहॉ पॉवो के लिये उपमा है। तथहु=वहाँ पर भी, पॉवो पर नूपुर के बँधे होने के लिये प्रयुक्त हुआ है। मनोहर=मनहरण। बाजन बाजए=नूपुर ध्वनि होती सुन पडती है। [जनि=मानो। मनसिज=कामदेव। जागे=जागता है, आशय है कि उन नूपुरो की ध्वनि को सुनकर रसिक के मन मे उन्माद जाग्रत होता है। भूप=राजा, कामदेव। भनइ=कहते है। पूरब पुन=पूर्व जन्म के पुण्य, आशय है कि सौभाग्य से ही कोई उस बाला की याद कर सकता है, उसे पा सकता है। तह=उस बाला को। ऐसनि=ऐसी, अपूर्व सुन्दरी रमणी को। भजए=स्मरण करना। रसमत=रसवती। बुझल=जानते है, आशय है कि राजा शिवसिंह ही रसिक सुजान ऐसी रमणी के उपयुक्त है। लखिमादेइ=राजा शिवसिंह की सुन्दर रानी का नाम।

कर=के । कत=स्वामी, पति राजा शिवसिंह ।

(१४)

चाँद-सार लए मुख घटना कर
लोचन चकित चकोरे ।
अमिय धोय आँचर धनि पोछलि
वह दिसि भेल उँजोरे ।
जुग-जुग के बिहि बूढ निरस उर
कामिनि कोने गढली ।
रूप सरूप मोयँ कहइत असभव
लोचन लागि रहली ।
गुरु नितम्ब भरे चलए न पारए
माझ-खानि खीनि निमाई ।
भागि जाइत मनसिज धरि राखलि
त्रिबलि लता अरुझाई ।
भनइ बिद्यापति अद्‌भुत कौतुक
ई सब बचन सरूपे ।
रूप नारायन ई रस जानथि
सिवसिंघ मिथिला भूपे ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति विशिष्ट रमणी के सौन्दर्य की अद्‌भुत एव सूक्ष्म कलात्मक अभिव्यक्ति करते हुए लिखते है—

ब्रह्मा या विधाता ने उस श्रेष्ठतम रमणी या राधा के मुख-मण्डल को निर्मित करने के लिए चन्द्रमा का सार तत्त्व लिया और तब चकोर के नयन उस मुख-मण्डल को निहार कर आश्चर्य-चकित रह गये । दूसरा आशय यह भी हो सकता है कि उसी दिन से रसिक चकोर उस पर अनुरक्त हो गए । तीसरा आशय कुछ यह भी निकल सकता है कि विधाता ने उस रमणी के नेत्र चकित चकोर के लेकर लगाए । और फिर उस चन्द्रमुखी बाला ने अपने उस कातिमान मुख को अमृत से धोकर जब आँचल से पोछा तो चाँदनी के रूप मे दसो दिशाओ मे उजियारी फैल गई । आशय है कि उसके मुख की धोवन ही चाँदनी के रूप मे दिशि-दिशि मे फैली । अरे ! विधाता या ब्रह्मा तो युग-युग से अर्थात् सदा से अरसिक वृद्ध है, फिर भला किसने ऐसी महान् रमणी की रचना की होगी । कविवर विद्यापति कहते है कि उस रमणी के रूप-स्वरूप के विषय मे कुछ भी कहना मुझे असम्भव एव अपनी सामर्थ्य के बाहर लगता है । उस पर नेत्र लगते हैं तो उसी के हो रहते है । अपने भारी नितम्बो के कारण वह रमणी भली-भाँति चल भी नही

सकती। फिर एक बाधा यह भी कि उसकी कटि मध्य मे पतली बनाई गई है इससे और भी उसे चलने मे कठिनाई पडती है। इतना होने पर भी कही कामदेव उसे लेकर या उसे छोडकर भाग न जाए अत उस चतुर सुदरी के पेट मे पडी तीन लताएँ या रेखाएँ है जिनमे कामदेव उलझा ही रहता है। कविवर विद्यापति कहते है कि मै यह सब भले ही उसके रूप-सौन्दर्य के वर्णन मे शब्द कौतुक या जाल बिछा रहा हूँ पर यह तो उसके सौन्दर्य-स्वरूप की सच्ची करामात है जो सभी अनुभव करते है, देखते है। मिथिला के राजा शिवसिह रसिक सुजान है, वह इस शृगार-रस के मर्मज्ञ है, सब कुछ जानते है।

विशेष—प्रस्तुत पद काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है। विद्यापति ने यहाँ अपनी सूक्ष्म सौन्दर्य पयवेक्षण शक्ति का परिचय दिया है। "बाला चाँदनी सी सुदर है"—यह प्राय बहुत से कवियो ने कहा है पर वह चाँदनी से भी श्रेष्ठ है यहाँ यह कवि-वर विद्यापति ने कहा है पर कथ्य की पुष्टि मे—"चाँद-सार लए मुख घटना करु" चाँद के सार से अर्थ व्यजित है रमणी के मुख से वासना की झलक की काति और वह काति जग मे व्यापक रूप मे झिलमिला रही है—"दह दिसि भेल उँजोरे।" किन्तु वह काति तो उस बाला के आँचल की धोवन ही है—"अमिय धोय आँचर धनि पोछलि" इस प्रकार सकारण सौन्दर्य की प्रतिष्ठा मे वृद्धि बडी चमत्कारिता से व्यक्त हुई है। पेट की "त्रिबलि लता" का प्रयोग नख-शृगार की कवि-परम्परा का है किन्तु उसमे कामदेव की उलझन एक मौलिक उद्भावना कही जायगी। रमणी के पेट की लता तुल्य रेखाओ मे रसिक को कामोत्तेजित करने की शक्ति भरपूर रहती है इस अन्तर्भावना का प्रकाशन बडी निपुणता से यहाँ विद्यापति ने किया है। "खानि खीन" शब्दो मे अनुप्रास की छटा है। "जुग-जुग के बिहि बूढ निरस उर" उक्ति मे वैचित्र्य बडा अनूठा है। वृद्ध ब्रह्मा ने कैसे उस रमणी की सुललित रचना की होगी, तो फिर निश्चय ही वह काम की पुत्री 'श्रद्धा' हो सकती है जो मनु या मन को चिर आकर्षित करने की शक्ति से पूर्ण है। इस प्रकार इस पद मे अनूठी अभिव्यजनाओ का चमत्कार बडा हृदयोत्तेजक बन पडा है, कोरा शृगार का रीतिवादी इतिवृत्त चित्रण मात्र ही नही।

शब्दार्थ—चाँद-सार=चन्द्रमा का तत्त्व, उसका सौन्दर्य रस। लए=लेकर। घटना=निर्माण। करु=किया। लोचन चकित=चचल नेत्र। चकोर=यह उपमान नेत्रो के लिए उपयुक्त माना गया है। अमिय=अमृत, यहाँ रूपामृत से तात्पर्य है। धोय=धोकर। आँचर=अचल। धनि=रमणी। पोछलि=पोछा। दह=दसो। दिसि=दिशा। दह दिशि=तात्पर्य है कि सर्वत्र। भेल=हुआ। उँजोर=प्रकाश, यहाँ चाँदनी से आशय है कि उस बाला के मुख की काति रूपी चाँदनी। जुग-जुग=युग-युग, सदा से। बिहि=विधाता या ब्रह्मा। बूढ=बूढे। निरस=अरसिक। उर=हृदय। कामिनि=रमणी। कोने=किसने। गढली=निर्मित की। रूप सरूप=रूप सुदरता। मोयँ=मुझे, विद्यापति कवि स्वय के लिए कह रहे है। कहइत=कहते हुए। असभव=

असमर्थ। लागि रहली=लगकर रह जाते है। गुरु=बडे। भरे=भारी। चलए=चलना। न पारए=नही सकते। माझ=बीच मे। खानि=भाग मे। खीन=पतले। निमाई=निर्मित की। भागि जाइत=भाग जाना। मनसिज=कामदेव। धरि राखलि=पकड रखना। त्रिबलि लता=तीन लताएँ, यहाँ आशय रमणी के पेट पर दिखती आर्कषित तीन रेखाएं। अरुझाई=उलझा रखना। भनइ=कहते है। अद्भुत=अनोखा। कौतुक=खेल, जाल। ई=ये। बचन=बोल, काव्य-वाणी से तात्पर्य है। सरूपे=प्रत्यक्ष मे। रूपनारायण=रूप के नारायण अर्थात् राजा शिवसिह। ई रस=ये शृगार-रस। जानथि=जानते है। सिवसिघ=राजा शिवसिह। मिथिला=मिथिला स्थान। भूपे=राजा।

(१५)

सुधामुखि के बिहि निरमिल बाला।
अपरुब रूप मनोभवमगल
त्रिभुवन विजयी माला।
सुन्दर बदन चारु अरु लोचन
काजर-रजित भेला।
कनक-कमल माझ काल-भुजगिनि
स्रीयुत खजन खेला।
नाभि-बिवर सयँ लोम-लतावलि
भुजगि निसास-पियासा।
नासा खगपति-चचु भरम-मय
कुच-गिरि-सधि निवासा।
तिन बान मदन तेजल तिन भुवने
अवधि रहल दओ बाने।
बिधि बड दारुन बधए रसिकजन
सोपल तोहर नयाने।
भनइ बिद्यापति सुनु बर जौबति
इह रस केओ पए जाने।
राजा सिवसिघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति नायिका के नख-शिख शृगार की ।द्धति पर रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखते है—

अरे आश्चर्य है कि तुम जैसी चद्रमुखी, रसमयी रमणी की रचना किस विधाता

ने की होगी ? तुम्हारा रूप तो अपूर्व है जो ससार के मन को—मनोलोक को—मगल मुदित करने वाला अथवा कामदेव के शुभ स्वरूप का साकार उपमान जैसा है अर्थात् 'मनोभवमगल' का अर्थ कामदेव का शुभ स्वरूप तो है ही यहाँ श्लेष से ससार के मन को मगल मुदित करने वाला भी माना जाना चाहिये। तुम्हारी माला तीनो लोको की विजयिनी है। आशय यह है कि तुम्हारी प्रोज्ज्वल छवि की माला ससार को मोहवश मे करने वाली है। (यहाँ "विजयी" शब्द मे सम्भवत पाठान्तर है जो वैजयन्ती माला के अर्थ से भी सगत बन जाता है कि उस कामिनी की सुन्दर वैजयन्ती माला उसके रूप की वृद्धि करती हुई तीनो लोको के मनोलोक को मुदित करने वाली है। पर यह अर्थ दुरूह ही समझा जाना चाहिये। उसका मुख-मण्डल अति सुन्दर है जिस पर काजल लगे हुए चचल नेत्र है जो ऐसे भले प्रतीत होते है जैसे स्वर्ण-मुख कमल के मध्य मे काजल-कोर एव पुतली रूपी सर्पिणी सुन्दर खजन की भाँति क्रीडा कर रही हो। आशय यह है कि नायिका के स्वर्ण कमल जैसे सुन्दर मुख पर नागिन जैसी काजल-कोरो से युक्त उसकी खजन जैसी चचल आँखे क्रीडा कर रही हो। उसकी गहरी नाभि या टूँडी से, जो बिल के समान प्रतीत होती है, निकलती हुई उसकी सुन्दर रोमराजि रूपी लताएँ ऐसी प्रतीत होती है मानो नागिन उस नायिका की सुरभित साँसो की प्यास के आकर्षण से ऊपर की ओर बढती जा रही है, किन्तु सहसा भ्रमवश उसकी नुकीली नासिका को गरुड या खगपति की चचु जानकर उसके कुच रूपी दो पर्वतो की घाटी या सधि मे आकर भय से छिप और बस गई है। यहाँ भ्रातिमान, रूपक, उत्प्रेक्षा एव उपमा अलकारो का सम्मिश्रित आयोग बडा विचित्र बन पडा है, साथ ही नख-शृगार की काव्य-परम्परा का भी निर्वाह हो सका है। 'पचशर' या कामदेव ने अपने तीन बाण तो तीनो लोको पर चलाए और शेष जो दो बाण अबेधे रह गए वह निठुर ब्रह्मा ने, हे बाला, तेरे नयनो को सौप दिये जिनसे रसिक जनो को घायल किया जा सके। कविवर विद्यापति कहते है कि हे सुन्दर रमणी सुन ! तेरे इस अद्भुत शृगार का रसपान करना तो कोई बिरला ही जानता है पर रानी लखिमादेवी के रसिक राजा शिवसिंह इस रसपान मे निष्णात है, वे जानते है कि इसमे कौनसा अपार आनद छिपा है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे रीति-काव्य की ऊहात्मक पद्धति का अनुकरण प्रधानता से विद्यापति कवि ने किया है। आगे जायसी, बिहारी, देव, केशव आदि के काव्य-वर्णन भी इस प्रकार के मिलते है। नाभि से उपजती नागिन-सी रोमराजि, गरुड की चोच की भ्राति नासिका से होना आदि बाते भावपरक नही केवल चमत्कार-प्रदर्शन की एक ऊहात्मक वृत्ति है। कामिनी की आँखो को पचशर या कामदेव के दो बाणो —मोहन एव उन्मादन—का ब्रह्मा द्वारा प्रदान किया जाना, फिर उनसे रसिक जनो का बिधा जाना, यह उक्ति बडी कल्पना-प्रवण बन सकी है। भावना की कमी को

विद्यापति ने कामिनी की आँखो के चमत्कार-कटाक्ष की अभिव्यक्ति द्वारा पूरा किया है—यह उनकी गम्भीर सूझ कही जायगी। उत्प्रेक्षा का बडा मौलिक रूप इस पक्ति मे निखरकर आया है—"कनक-कमल माझ काल-भजगिनि। स्त्रीयुत खजन खेला।" नायिका का मुख स्वर्ण कमल के समान है, चचल आँखो मे सुतीक्ष्ण काजल की कोर है—यह यथार्थ है, पर इन सबसे मिलकर जो चित्र दृष्यमान है वह बडा विचित्र है कि स्वर्ण कमल के मध्य नागिन खजन पक्षी की भाँति क्रीडा कर रही हो। यह परिकल्पना बडी सूक्ष्म है। पद की प्रथम तीन पक्तियो मे बडी महाप्राण अभिव्यक्ति इस बात की पुष्टि करती है कि कला आनद कोष की वस्तु है, अलौकिक, आनद-प्रदायिनी फिर लौकिक—"अपरुब रूप मनोभवमगल। त्रिभुवन विजयी माला।" यह उक्ति कला की इसी व्यजना से पूर्ण है। "भरम-मय" से भ्रातिमान अलकार की छटा स्वाभाविक बन पडी है। "कुच-गिरि" मे रूपक सुन्दर बन पडा है।

शब्दार्थ—सुधामुखि=वह रमणी जिसके मुख से सुधा तुल्य काति झरे, चन्द्रमुखी। के=किस। बिहि=विधाता, ब्रह्मा। निरमिल=रचा। मनोभव=मन-लोक। मगल=मुदकारी, आनददायक। मनोभवमगल=कामदेव का कल्याणकारी रूप। बाला=रमणी। त्रिभुवन=तीनो लोक। विजयी=विजय करने वाली, रूप से आर्कषित करने वाली। बदन=मुख। अरु=और। चारु=सुन्दर, चचल से तात्पर्य है। लोचन=नेत्र। काजर-रजित=काजल लगी हुई। भेला=हुई। कनक-कमल=स्वर्ण कमल, यहाँ मुख का उपमान है। माझ=मध्य मे। स्त्रीयुत=शोभायुक्त। खजन=एक सुन्दर आँखो वाला पक्षी। खेला=क्रीडा करता हुआ। नाभि-बिवर=नाभि रूपी बिल। सयँ=से। लोम-लतावलि=रोम या बाल रूपी लताएँ। भुजगि=नागिन। निसास=साँस। खगपति=गरुड, यहा नुकीली नाक का उपमान है। चचु=चोच। पियासा=पिपासु। नासा=नासिका। भरम=भ्राति। मय=सहित। कुच-गिरि=स्तन रूपी पर्वत। सधि=मध्य का भाग। निवासा=निवास करना। तिन बान=कामदेव के पाँच बाणो मे से तीन बाण—प्रवण, शोषण एव तापन। तेजल=चलाना। मदन=कामदेव। तिन=तीन। भुवन=लोक। अबधि=शेष। रहल=रहे। दओ बाने=कामदेव के पचबाणो मे से दो बाण—मोहन तथा उन्मादन। बिधि=विधाता, ब्रह्मा। बड दारुन=निठुर, दुखदाई। बधए=बेधे। रसिकजन=भावुक जन। सोपल=दिये, सौपे। तोहर=तेरे, तुम्हारे। इह=यह। नयाने=नेत्र। भनइ=कहते है। बर जौबति=श्रेष्ठ सुन्दरी। केओ=कोई। पए जाने=जान पाता है। देइ=देवी। रमाने=रमण करने वाला प्रियतम।

(१६)

जाइत देखलि पथ नागरि सजनि गे
आगरि सुबुधि सेयानि।

कनक-लता सनि सुन्दर सजनि गे
बिहि, निरमाग्रोल ग्रानि।
हस्ति-गमन जकाँ चलइत सजनि गे
देखइत राअ-कुमारि।
जिनकर एहनि सोहागिनि सजनि गे
पाग्रोल पदारथ चारि।
नील बसन तन घेरल सजनि गे
सिर लेल चिकुर सँभारि।
तापर भमरा पिबए रस सजनि गे
बइसल पाँखि पसारि।
केहरि मम कटि-गुन ग्रछि सजनि गे
लोचन ग्रम्बुज धारि।
बिद्यापति कबि गाग्रोल सजनि गे
गुन पाग्रोल ग्रवधारि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति सुन्दर नायिका के नख-शिख शृगार का वर्णन करते हुए लिखते है—

ग्राज राह मे उस चतुर सुन्दरी रमणी को गुजरते हुए देखा जो बुद्धिमती, सयानी एव ग्रपने सखि-समाज मे ग्रग्रगण्य रूपवती है। ब्रह्मा या विधाता ने लाकर उस सुन्दरी स्त्री को स्वर्ण-बेलि जैसी श्री सुषमामयी निर्मित किया है। ग्राशय यह है कि इस ससार के लिये ईश्वर ने लाकर उस महान् रूपवती की रचना की है। हाथी की मस्त चाल जैसी चाल वह चलती है ग्रौर देखने मे राजकुमारी के तुल्य दिखलाई पडती है। कविवर विद्यापति कहते है कि जिन को इस प्रकार की शोभा ग्रौर सौभाग्य-मयी स्त्री मिली है उन्होने मानो ससार मे चारो मूल्यवान पदार्थ—धर्म, ग्रर्थ, काम ग्रौर मोक्ष—पा लिये है। उसका सलौना तन नीले वस्त्र या साडी से ढँका था ग्रौर वह सिर के केश सँवारे हुए थी, सुन्दर जूडा या वेणी बाँधे थी। वहाँ उन सँवरे हुए केशो पर रस-विमुग्ध भौरा पख पसारे बैठा हुग्रा उसके सौरभ-रस का पान करता था। उस रमणी की सिह की जैसी पतली कटि का गुण है ग्रौर उसकी ग्राँखे क्या ?—मानो उसने कमलो को ही धारण किया हुग्रा है। कविवर विद्यापति उस रमणी के रूप-गुणो का स्वाभाविक कवि-गान करते है क्योकि निश्चय ही उसने रूप-सौन्दर्य के इस प्रकार के चारु-गुण धारण कर रखे है जो सर्वथा गेय है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शोभामयी रमणी के शृगार-वर्णन मे कही-कही ग्रलौकिक पुट रख दिया है—"कनक-लता" जैसी वह सुन्दरी इस ससार मे "बिहि, निरमाग्रोल ग्रानि" की सज्ञा से युक्त है। किंतु यहाँ रहस्य का भीना ग्रावरण या

अस्पष्ट क्लिष्ट भाव-कल्पना का आग्रह नही है वरन् ससार की सौन्दर्य-रस-विमुग्ध आँखो की वस्तु है वह—"देखइत राज-कुमारि"—से यह स्पष्ट है । चारो पदार्थों की सिद्धि इस प्रकार की रमणी को पाकर प्राप्त होती है—निश्चय ही बात यथार्थ है क्योकि ऐसी राजकुमारी का वरण तो कोई राजकुमार ही कर सकता है, साधारण आदमी नही । इस प्रकार विद्यापति ने काव्याभिव्यक्ति को कारण-सापेक्ष बना दिया है, जो उनके काव्य को वायवी होने से सदा बचाता रहा है और वह नख-शिख शृगार-वर्णन के रसिक कवि होते हुए भी बिहारी, मतिराम और देव आदि शृगारी कवियो से कही अधिक स्वाभाविक है, भोगी कलाकार है । गोरी रमणी के शरीर मे नीला वस्त्र छजता है—"नील बसन तन घेरल सजनि गे" उक्ति मे यह शोभा-छवि साकार दीख पडती है । सुन्दरी के सँवरे केश-जूडे पर बैठा भँवरा पख फैलाए रस का पान करता है—"तापर भमरा " उक्ति मे उद्धत नायक की रसपान विमुग्धता का अलसाया रूप निखर आया है । "केहरि सम कटि", "लोचन अम्बुज" उक्तियो मे क्रमश उपमा एव रूपक अलकार है किंतु यह अलकार नए नही, घिसे-पिटे ही है । आलकारिक प्रयोगो मे यद्यपि न केवल विद्यापति ने ही वरन् सभी शृगारी कवियो ने घिसी-पिटी आलकारिक योजना को ही अपनाया है किंतु विद्यापति ने उन्ही के माध्यम से प्राय बडी मौलिक उद्भावनाओ को मुखरित किया है । यथा, नारी के सुर्मीले केश-जूडे पर रसिको के चचल भ्रमर-नयन स्वभावत अटकते-टिकते है, कवि ने इसी बात की व्यजना बडे मौलिक ढग से इस पक्ति मे की है—"सिर लेल चिकुर सँभारि । तापर भमरा पिबए रस सजनि गे, बइसल पाँखि पसारि ।" "पाँखि पसारि" शब्दो मे स्वय रस-पान का कितना भाव-अटकाव बिखरा पडता है, और यही सूक्ष्म भाव-व्यजना तथा शब्द-योजना विद्यापति मे नई है जो उन्हे अलकार की परम्परामयी अभिव्यक्ति का प्रयोग करने के बावजूद भी दूसरो से अधिक आकर्षक बनाती है ।

शब्दार्थ—जाइत=जाते हुए । देखलि=देखा । पथ=मार्ग । नागरि=नगर की रहने वाली किंतु चतुर । सजनि=रमणी बाला । आगरि=अग्रगण्य, जो अपने सखी-समाज के रूप-सौन्दर्य की दृष्टि से है । सुबुधि=बुद्धिमती । सेयानी=सयाना । कनक-लता=स्वर्ण बेलि, यहाँ रमणी की उपमा के अर्थ मे है । सनि=समान । बिहि=ब्रह्मा या विधाता । निरमाओल=रचा है । आनि=लाकर, अर्थात् स्वर्ग से लाकर इस भू पर उस रमणी की विधाता ने अपूर्व रचना की है । हस्ति-गमन =हाथी की जैमी मस्त चाल, उस बाला की चाल की तुलना मे प्रयुक्त हुआ पद है । जकाँ=ऐसी, चाल का सकेतात्मक अर्थ है । चलइत=चलती है । देखइत=देखने मे । जिनकर=जिनकी । एहनि=ऐसी, रमणी बाला से तात्पर्य है । सोहागिनि= सौभाग्यवती, सुन्दरी । पाओल=पाये या मिले । पदारथ चारि=चार पदार्थ—धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष । नील बसन=नीला वस्त्र या नीली साडी । तन घेरल=शरीर

से लिपटी है। सिर लेल=सिर के। चिकुर=केश। संभारि=सँवारे हुए, जूडा बंधा हुआ। तापर =उस पर, केश-जूडे पर। भमरा=भौरा, यहाँ रसिक की भी व्यजना है। पिबए=पीता है। बइसल=बैठा है। पाँखि पसारि=पख पसारे हुए, आनद से। केहरि=सिह। सम=जैसे। कटि=कमर। गुन=गुण, यहाँ कमर के पतली होने के विशेषण रूप मे यह शब्द प्रयुक्त है। अछि=है। लोचन=नेत्र। अम्बुज=कमल, यहाँ नेत्रो का रूपक उपमान है। धारि=धारण किये हुए। गाओल=वर्णन, गान करता है। गुन=गुण, रूप-सौन्दर्य के गुण से तात्पर्य है। पाओल=होना। अवधारि=अवश्यमेव, निश्चयत।

(१७)

चिकुर-निकर तम-सम
पुनु आनन पुनिम ससी।
नयन पकज के पतिआओत
एक ठाम रहु बसी।
आज मोयँ देखलि बारा
लुबुध मानस, चालक मयन
कर की परकारा।
सहज सुन्दर गोर कलेबर
पीन पयोधर सिरी।
कनक-लता अति बिपरित
फरल जुगल गिरी।
भन बिद्यापति बिहि क घटन
के न अद्भुत जान।
राय सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमान।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति सुन्दरी नायिका की अद्भुत शृगारी वेश-भूषा का चमत्कारी वर्णन करते हुए लिखते है—

बडा आश्चर्य है कि उस सुन्दरी बाला का केश-समूह अधकार के समान श्याम है फिर उसमे उसका मुख पूर्णिमा के चद्र जैसा चमचमाता प्रतीत होता है, और भी आश्चर्य यह कि उसके नेत्र कमल के समान विकसित लगते है। इन सब रूप-छवि की असगतियो को एक स्थल पर, उस बाला के रूप-सौंदर्य के रूप मे देखकर जो मैं कह रहा हूँ उस पर भला कौन विश्वास करेगा? आशय यह है कि उस सुन्दरी का केश-जाल इतना घना है और श्यामल है कि अधकार के समान प्रतीत होता है और उसका मुख-

मण्डल इतना सुन्दर सुखकर है कि चन्द्रमा के समान चमचमाता है और फिर उसके रतनारे नयन वहा युगल-कमल की भाँति विकसित है—यह सब-कुछ उस बाला मे द्रष्टव्य है, पर आश्चर्य इस बात का है कि अन्धकार मे चाँद का उदय होना फिर कमल का विकसित होना ? कितना अद्भुत रूप-चमत्कार है उस सुन्दरी बाला मे ! आगे कविवर विद्यापति कहते है कि आज मैने उस अद्भुत रूपवती बाला को देखा और मेरा मन उस पर परिलुब्ध हो गया, कामदेव ने उसे चलाना या विचलित करना शुरू कर दिया है, अब मै भला किस प्रकार से धैर्य-सयम धारण करूँ ? उस रमणी का गोरा शरीर स्वाभाविक रूप मे सुन्दर है। और उसके उभरे-उभरे उरोजो की श्री-शोभा का आकर्षण अनोखा ही है। पर आश्चर्य यह है कि उस दुबली-पतली तन्वगी, कोमलागी, कनक-लता-सी बाला के वक्षस्थल पर दो पर्वत फले है। आशय यह है कि बडा आश्चय तो इस बात का है कि उस दुबली-पतली बाला के पर्वताकार उरोज रूपी फल वक्षस्थल पर किस भाँति फले-फूले है—यह तो बडी विपरीत-सी बात है। कविवर विद्यापति कहते है—पर आश्चर्य की इसमे क्या बात ?—अरे, इस ब्रह्मा की रची रूप-सौन्दर्य की सृष्टि-रचना मे जो कुछ है उसे कुछ भी अद्भुत अनोखा नही समझना चाहिये क्योकि उसे कोई जान ही नही सकता, नही जानता। पर हाँ, रानी लखिमादेवी के रसिक सुजान पति राजा शिवसिह है, जो इस प्रकार के शृगार-रस और रमणी का रहस्य जानने है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे उक्ति-वैचित्र्य एव ऊहात्मक कल्पना का प्राधान्य विशेष है। केश-समूह के लिए अधकार, मुखमण्डल के लिये चन्द्र एव आँखो के लिए कमल की उपमाएँ तो यद्यपि नवीन नही किन्तु उचित अवश्य है। किन्तु इन सबो ने परस्पर एक नायिका मे उपस्थित होकर जिस विरोधी या अनहोनी-सी बात की अभिव्यजना की है वह केवल चमत्कार-प्रदर्शन की वस्तु बनकर रह गई है। आगे सुवर्ण वल्लरी मे दो पहाड जैसे कुचो का होना भी उपहासास्पद प्रतीत होता है। इतना होने पर भी कवि ने अत मे "विहि क घटनके न अद्भुत जान" पक्ति द्वारा अस्वाभाविकता एव कौतुहल का कुछ शमन अवश्य कर दिया है। "लुबुध मानस, चालक मयन, कर की परकारा" पक्ति मे काम-भाव की नैसर्गिक चचल भावना का प्रकाशन अत्यन्त स्वाभाविक बन पडा है। "कनक-लता" का प्रयोग विद्यापति ने पूर्व कई बार किया है जिससे उसके चमत्कार मे हीनता आ गई है। समस्त पद का शृगारी वर्णन रीति-परम्परा के अनुकूल हुआ है। 'चिकुर-निकर तम-सम' पक्ति मे जहाँ केशो की श्यामलता मे अधकार की तुल्यता बडी सुन्दर बन पडी है वहाँ "तम-सम" शब्दो मे अनुप्रास की छटा लयात्मकता से पूर्ण है।

शब्दार्थ—चिकुर=केश। निकर=समूह। सम=तुल्य। पुनु=फिर। आनन=मुख। पुनिम=पूर्णिमा। ससी=चन्द्रमा। पकज=कमल, नयन का उपमान है। के=

कौन । पतिआओत=विश्वास करेगा । ठाम=जगह, रमणी के शरीर से तात्पर्य है । रहु बसी=रहते-बसते है । मोयँ=मुझे, कविवर विद्यापति का स्वय से आशय है । देखलि=देखी । बारा=रमणी, बाला । लुबुध=आसक्त । मानस=हृदय, मन । चालक=चलाने वाला । मयन=कामदेव । की परकारा=किस भाँति । सहज=स्वाभाविकत । गोर=गोरा । कलेबर=शरीर । पीन=भारी । पयोधर=उरोज, स्तन । सिरी=श्री-शोभामय । कनक-लता=स्वर्ण बेल, यहाँ आशय सुन्दरी बाला के शरीर से है । अति=अत्यधिक । बिपरित=विरोधी, आशय है कि स्वर्ण बेल जैसी तन्वगी बाला के पर्वत तुल्य स्तन होना कितनी विरोधी बात लगती है । फरल=फले है । जुगल=दो, दो स्तनो से तात्पर्य है । गिरि=पर्वत, उरोजो का उपमान है । भन=कहते है । बिहि=ब्रह्मा या विधाता । क=की । घटन=रचना, सृष्टि । के=कोई । अद्‌भुत=विचित्र । जान=जानता है । राय=राजा । सिवसिघ=शिवसिंह । लखिमा देइ=लखिमादेवी । रमान=पति स्वामी ।

(१८)

सजनी, अपरुप पेखल रामा ।
कनक-लता अवलम्बन ऊअल
हरिन-हीन हिमधामा ।
नयन-नलिनि दओ अजन रजइ
भौंह बिभग-बिलासा ।
चकित चकोर-जोर बिधि बाँधल
केवल काजर पासा ।
गिरिबर-गरुअ पयोधर-परसित
गिम गज-मोति क हारा ।
काम कम्बु भरि कनक-सम्भु परि
ढारत सुरसरि-धारा ।
पएसि पयाग जाग सत जागइ
सोइ पावए बहुभागी ।
बिद्यापति कह गोकुल-नायक
गोपी जन अनुरागी ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधिका जी के नख-शिख शृगार का उन्मुक्त वर्णन करते हुए लिखते है—

एक गोपी दूसरी सखी से कहती है कि हे सखी ! मैने आज एक अपूर्व रमणी देखी है । लगा कि जैसे उस कनकलता जैसी सुन्दरी के शरीर का अवलम्ब पाकर मानो

कलकरहित चन्द्र उदित हो गया हो। आशय यह है कि वह सुन्दरी कनक-लता-सी तन्वगी थी और विशेषता यह कि उसका मुख निष्कलक चन्द्रमा के समान सुन्दर था। उसकी कमलिनी-सी दोनो आँखे अजन या सुरमा लगी हुई थी और उसकी कुटिल भौहो की भावभगी विलासयुक्त थी। उन चचल भ्रू-भगिमायुक्त आँखो को देखकर ऐसा लगता था मानो चचल चकोरो की जोडी को विधाता ने काजल की रस्सी से बाँध दिया हो। आशय यह है कि उस रमणी की काजल-कोरो से युक्त चचल आँखो की शोभा अति आकर्षणमयी थी। पर्वत जैसे उत्तुग एव पीन उरोजो को स्पर्श करती हुई उसके गले मे गजमुक्ताओ की माला सुशोभित थी। और उसको देखकर ऐसा दृष्य प्रतीत हो रहा था जैसे कामदेव उसके कम्बु या शख रूपी कण्ठ मे गगा जी को भरकर सोने के महादेव रूपी उसके सुनहरे कुचो पर उसकी धारा या गजमुक्ताओ की माला की अर्चना कर रहा हो, ढार रहा हो। आशय यह है कि उस रमणी की शख के सदृश कण्ठ मे पडी गजमुक्ताओ की माला गगा की धार के समान प्रोज्ज्वल है जो उसके सुनहरे महादेव की भाँति शोभायुक्त उभरे हुए कुचो का स्पर्श करती बडी भली मालूम होती है। ऐसी पावन, सुन्दर रमणी को वही अति बडभागी पुरुष प्राप्त कर सकता है जो प्रयाग मे उसके निमित्त जाकर सौ-सौ यज्ञ सम्पन्न करे। विद्यापति कवि कहते है कि इसी प्रकार की सुन्दरी राधा को प्राप्त करने के लिये ही तो गोकुल नायक श्री कृष्ण गोपिकाओ पर अनुरक्त है। आशय यह है कि श्री कृष्ण ऊपरकथित श्रेष्ठतम नारी को प्राप्त करने के लिये ही गोपिकाओ के साथ रास आदि क्रीडा या अनुष्ठान करने मे रत रहते है। अत सच्चे रसिक को भी यही वाछित है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शृगारिणी के अपूर्व रूप का बडा सश्लिष्ट चित्रण किया गया है जिसमे "दिव्य रति" का सम्मिश्रण बडा मोहक बन पडा है। "कनक-लता" रूपी सुन्दरी तो अवश्य पुरानी पड गई है किन्तु उसका मुख कलकरहित चद्र एक अभूतपूर्व मुख-शोभा की काति रसिको के मानसलोक मे आज भी विकीर्ण करता है। इधर आँखो की चचलता और भावभगी को काजल की डोर से जिस सुन्दरता से बाँधा गया है उसका आकर्षण, स्पदन चकोर की जोडी के समान दीखना स्वाभाविक ही कहा जायगा। यह अनूठी कल्पना बडी मौलिक एव हृदयग्राही बन पडी है। इसी भाँति कवि-वर बिहारी ने भी आँखो की शोभा के लिये बडी अनूठी कल्पना की है—

"चमचमात चचल नयन, बिच घूँघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता बिमल, जल उछरत जुग मीन।"

सबसे विशेष कल्पना की छटा विद्यापति ने इन पक्तियो मे दर्शायी है—

"गिरिबर-गरुअ पयोधर-परसित
गिम गज-मोति क हारा।

काम कम्बु भरि कनक-सम्भु परि
ढारत सुरसरि-धारा।"

इन पक्तियो मे उपमेय और उपमान की वर्ण-साम्यता मे कमाल किया गया है। उत्तुग उरोजो की पर्वत तुल्यता सामान्य कह लीजिए किन्तु सुन्दर गोरे कठ को शख की उपमा देकर फिर स्वय कामदेव उस कठ रूपी शख मे गगा की धारा जैसी निर्मल नग की माला मानो स्वर्ण शकर के पिड पर ढार रहा हो, चढा रहा हो, यह परिकल्पना शृगार की उच्चतम सीमा पर पहुँची हुई कही जायगी। विश्व-साहित्य मे इस प्रकार की शृगारिक अभिव्यजना के लिये विशुद्ध धार्मिक उपमा का उपलब्ध होना कम ही पाया जायगा। सम्पूर्ण पद मे गेयात्मकता प्रधान है और 'नयन-नलिनि', 'चकित चकोर', 'गिम गज' एव 'हरिन-हीन हिमधामा' मे अनुप्रास की छटा अतुलनीय बन पडी है।

शब्दार्थ—सजनी=सखी। अपरुप=अपूर्व। पेखल=देखा, निहारा। रामा=रमणी। कनक-लता=स्वर्ण बेलि, रमणी की सुन्दर काया का उपमान है। अवलम्बन=सहारा लेकर। ऊअल=उगा हुआ। हरिन-हीन हिमधामा=बिना हरिण की छाप का निष्कलक चद्र, यहाँ पौराणिक कथा का आधार लिया गया है कि एक बार ऋषि गौतम ने अपनी पत्नी अहल्या के साथ चद्रमा को सभोग-दुष्टता करते पकड लिया और तब क्रोध मे आकर ऋषिवर ने अपनी स्नान की गीली धोती उसके मारी थी, जिससे आज भी चद्रमा कलकयुक्त दीखता है—यहाँ निष्कलक चद्र रमणी के सुन्दर मुख का उपमान है। नयन-नलिनि=कमलिनी-सी आँखे, कमलिनी आँखो की उपमान है। अजन=काजल। रजइ=शोभायमान। दओ=दोनो, आँखो के लिये। भौह बिभग बिलासा=वासना-विलास की भगिमा से भरी कुटिल भौहे। चकित=चचल। चकोर=एक पक्षी, यहाँ काजल अँजी हुई चचल आँखो का उपमान है। जोर=जोडा, चकोर का जोडा या आँखो के जोडे से तात्पर्य है। बिधि=विधाता। बाँधल=बाँधा है, रमणी की दोनो आँखो मे काजल-कोर सुशोभित है जिससे प्रतीत होता है कि मानो विधाता ने उससे उसकी चकोर की जोडी को उन आँखो के रूप मे बाँध रक्खा हो। पासा=पाश मे, बधन मे। गिरिबर=पर्वत, यहाँ कुचो के लिये उपमान है। गरुअ=भारी, पर्वत अर्थात् कुचो का विशेषण हे। पयोधर=कुच। परसित=छूती हुई। गिम=ग्रीवा, कण्ठ। गज-मोति=गजमुक्ता। क=का। हारा=हार या माला। कम्बु=शख, कण्ठ का उपमान है। कनक-सम्भु=स्वर्ण के महादेव, आशय रमणी के सुन्दर उरोजो से है। भरि=भरकर। काम= ामदेव। परि=पर, ऊपर। ढारत=ढारते है या चढाते है। सुरसरि=गगा। धारा=अर्चना के रूप मे गगा जी के जल की धारा एव "गगा जी की धारा" से अर्थ है रमणी के गले की उसके स्वर्ण उरोजो को स्पर्श करती हुई गजमुक्ता की माला या हार। पएसि=

जाकर। पयाग=प्रयाग। जाग=यज्ञ। सत=सौ। सोइ=वह, यहाँ उस सौभाग्य-शाली रसिक से तात्पर्य है जो सौ-सौ पुरुषो के प्रताप से ऐसी अनूठी रमणी को प्राप्त करे जैसी पद मे वर्णित है। पाबए=पाएगा। बहुभागी=सौभाग्यशाली। गोकुल नायक=गोपियो का प्रिय श्री कृष्ण, यहाँ आशय सच्चे रसिक से भी है। गोपी जन =गोपिकाएँ, नायिकाएँ। अनुरागी=प्रेमानुरक्ति मे पडा हुआ।

(१६)

कनक-लता अरबिन्दा।
दमना माँझ उगल जनि चन्दा।
केहु कहै सैबल छपला।
केहु बोले नहि नहि मेघ झपला।
केहु कहे भमए भमरा।
केहु बोले नहि नहि चरए चकोरा।
ससय परल सब देखी।
केहु बोलए ताहि जुगुति बिसेखी।
भनइ बिद्यापति गावे।
बड पुन गुनमति पुनमत पावे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति बडे काव्य-चातुर्य से रमणी के शरीर सौन्दर्य की ओर रूप-वर्णन द्वारा ध्यान आकर्षित करते हुए लिखते है—

उस बाला की देह रूपी स्वर्ण-लतिका पर उसका मुख रूपी कमल विकसित हा रहा है। अथवा, द्रोणलता रूपी उसके शरीर मे उसका मुख रूपी चन्द्रमा उदित हो गया है। आशय यह है कि बाला का शरीर तो स्वर्ण-लता के समान हे और फिर उसके काले कजरारे केशो के मध्य से उसका मुख चन्द्रमा की भाँति सुन्दर आभासित होता है। ऐसा अद्भत रूप-लावण्य देखकर कोई कहता है कि चाँद सेवार मे छिप रहा है। आशय यह है कि रमणी का मुख चन्द्रमा के समान कातिमान है और बिखरे-बिखरे केशो के मध्य उसकी शोभा विचित्र प्रदर्शित होती है, मानो सेवार मे चन्द्रमा छिप गया है। यह परिकल्पना इसलिये की गई है क्योकि सेवार पानी मे उगती है और कोमल केशो की उपमा उससे वाछनीय है, इधर चन्द्रमा के सदृश मुख भी काति-युक्त है, तो इन दोनो का मेल पानी मे झलकता है का आशय यह है कि सुन्दरी के मुख एव केशो की सुन्दरता 'पानी' के समान तरल एव निर्मल प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त कोई कहता है कि नही, चन्द्रमा बादलो की ओट मे ढँपा हुआ है। यहाँ भी आशय यह है कि उस रमणी का मुख-चन्द्र उसके केश-मेघो से आच्छन्न है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न लोग अपने वाणी-विलास से उस रमणी की मुख-सुन्दरता के विषय मे

नई नई उपमाएँ खोजते है किन्तु उसकी काति अद्भुत है, अवर्णनीय। फिर उसकी आँखो की अद्भुत सुन्दरता का बखान भी नई-नई रीति-पद्धति पर किया जाता है। कोई कहता है कि उसकी चचल आँखे ऐसी है मानो भौंरे भरमा रहे हो तो कोई कहता है, नही नही उसकी आँखे तो ऐसी मनोमुग्धकारी लगती है मानो चकोर चर-विचरण कर रहा हो। आशय यह है कि उस बाला की चचल आँखे इतनी कजरारी एव मुग्ध है कि जिनकी तुलना भरमाते भौरो एव मस्त विचरण करते चकोरो से दी जाती है। इस प्रकार सभी को उसके सुन्दर नेत्र-मुख के सौन्दर्य मे सशययुक्त देखा गया है—कोई ठीक से उनके विषय मे नही कह पाता कि वह कितने सुन्दर है। किंतु जो भी उनके विषय मे कुछ कहता है एक अभिनव बात ही कहता प्रतीत होता है। नई-नई उपमाओ की अभिव्यक्ति-युक्ति प्रस्तुत करता है। इसी भाँति विद्यापति कवि भी उस रमणी की सुन्दरता का वर्णन करते हुए अपने पदो का गाता है। आशय यह है कि यह सब कुछ जो विद्यापति कवि गाते है केवलमात्र उस रमणी के रूप-सौन्दर्य का ही प्रतिफल है। सच तो यह है कि कोई बडे पुण्यो से ही ऐसी अनिद्य सुन्दरी को पुण्यवान बनकर पाता है। ध्वनि-व्यजना राजा शिवसिह की ओर घटित होती है कि एकमात्र वही ऐसे पुण्यवान एव रसिक सुजान है कि इस प्रकार की अनूठी रमणी को अपने पुण्य-प्रताप से समुप्लब्ध कर सकते है, अन्य कोई ऐसा करने मे असमर्थ है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे रमणी के मुख-नेत्रा के सम्बन्ध मे जिन रूपक एव उपमाओ की योजना प्रस्तुत की गई है वह यद्यपि रीति-परम्परा की ही है तथापि उनकी असमानता असमर्थता की अभिव्यजना करते हुए जो रमणी के सौन्दर्य का अवर्णनीयता प्रदान की गई है वह बडी प्रभावशाली, नवीन एव मौलिक लगती है, जैसे "केहु कहे भमए भमरा। केहु बोले नहि नहि चरए चकोरा।" कोई कुछ कहता है और कोई कुछ पर चमत्कारयुक्त सत्य यह कि "ससय परल सब देखी" किन्तु "केहु बोलए ताहि जुगुति बिसेखी।" इन उक्तियो मे स्वच्छद अभिव्यक्ति की व्यजना बडी कलात्मक एव यथार्थ सम्मत है। रमणी के मुख-नेत्र-सौन्दर्य के वर्णन का आज तक कौन पार पा सका है? "दमना माँझ उगल जनि चन्दा" पक्ति मे तरल चित्रमय कल्पना है। इधर "केहु कहै सैबल छपला" सेवार पानी मे उगने वाली घास होती है उनके लिए कोमल केशो की उपमा बडी अनूठी है फिर चाँद का उसमे छिप-छिप प्रतिबिम्बित होना बडी तरल काति का द्योतक है और रमणी के भीगे-भीगे केशो के बिखराव से प्रतिबिम्बित होता हुआ मुखचन्द्र भी क्या कम आकर्षक होता है? यो सम्पूर्ण पद मे चित्रमय कल्पना का बडा विशद् रूप दृष्टिगत होता है। पद मे उक्ति-चमत्कार अपनी पराकाष्ठा पर है। प्रथम दो पक्तियो मे उत्प्रेक्षा अलकार बडा स्वाभाविक बन पडा है—"दमन माँझ उगल जनि चन्दा।"

शब्दार्थ—कनक-लता=स्वर्ण की बेल, उपमा सुन्दरी के शरीर से सम्बन्धित

है। अरबिन्दा=कमल। दमना=द्रोणी लता। माँझ=मे। उगल=उगा हुआ। जनि=मानो। केहु=कोई। कहै=कहता है। सैबल=सेवार। छपला=छिप गया है। झपला=ओट मे। मेघ=बादल। नहि=नही। भमए=भरमाता है। भमरा=भौरा। चरए=चरता है या विचरता है। चकोरा=चकोर। ससय=सशय, भ्रम। परल=हो गया, पड गया। ताहि=उसकी। जुगुति=युक्ति, यहाँ आशय है किसी चमत्कारपूर्ण बात से। बिसेखी=विशेष। भनइ=कहता है। गावे=गीत गाते हुए। बड=बडे। पुन=पुण्य। पुनमत=पुण्यात्मा। पावे=पाता है, उक्त अनिद्य सुन्दरी की महती प्राप्ति के लिए आशय है।

(२०)

कबरी-भय चामरि गिरि-कन्दर
मुख-भय चाँद अकासे।
हरिन नयन-भय, सर-भय कोकिल
गति-भय गज बनबासे।
सुन्दरि, किए मोहि सँभासि न जासि
तुअ डर इह सब दूरहि पलायल
तुहुँ पुन काहि डरासि।
कुच-भय कमल-कोरक जल मुदि रहु
घट परबेस हुतासे।
दाडिम सिरिफल गगन बास करु
सम्भु गरल करु ग्रासे।
भुज भय पक मृनाल नुकाएल
कर-भय किसलय काँपे।
कवि-सेखर भन कर कत ऐसन
कहब मदन परतापे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति सुन्दरी के अतुलनीय शरीर-शृगार का अनूठा आलकारिक वर्णन करते हुए लिखते है—

हे सुन्दरी! तुम्हारी केश-राशि की शोभा के समकक्ष न ठहर कर चँवरवाली गौ सकुचाकर पर्वत-कन्दरा मे जाकर छिप रही। तुम्हारे मुख-सौन्दर्य के भय से, अपने सौन्दर्य को हीन समझकर, चन्द्रमा आकाश मे दूर जा बसा। तुम्हारी सुन्दर आँखो के भय से हिरन, मधुर स्वर-वाणी के भय से कोकिल एव मस्त चाल के भय से हाथी ने अपनी हीनता के वशीभूत होकर वनवास ग्रहण किया। हे सुन्दरी! जब कोई तुम्हारे रूप-सौन्दर्य के आगे शत्रु या अवरोध बनकर नही ठहरा हुआ है तब तुम क्यो मुझसे मधुर

प्रणय सभाषण नही कर जाती ? जब ये सब, सौन्दर्य के उपमान—हरिण, कोकिल एव गज—तुम्हारे भय से, तुम्हारे सौन्दर्य की अपेक्षा अपने को हीन समझकर दूर पलायन कर गए, भाग गए, फिर तुम किसलिये मुझसे मिलने के लिये आने मे भय खाती हो ? अरे, तुम्हारे उरोजो के समतुल्य सुन्दर न होने के कारण ही कमल की कली हीनता से लजाकर जल मे मुँदी छिपी रही और घडे ने अपने को हीन समझकर अलाव की अग्नि मे अपने को जला देना उचित समझा। और तुम्हारे उज्ज्वल दाँतो की समता न करने के कारण अनार ने एव उरोजो की समता न करने के कारण बेल-फल ने वृक्ष की शाखाओ के रूप मे लगकर जैसे आकाश मे निवास करना उचित समझा। और तुम्हारे शरीर और शोभा को देखकर अपने वर्ण को उससे हीन समझते हुए शकर जी ने विष पीकर नीलकण्ठ बन जाना श्रेयस्कर समझा, अत उन्होने विषपान किया। तुम्हारे कोमल भुजाओ के सौन्दर्य-भय से, हीनता के कारण, कमलनाल कीचड मे छिप गया और तुम्हारे रजित करतलो या हथेलियो के कारण भय और हीनता को अनुभव करते हुए नव-पल्लव काँपने लगे। कवि-शिरोमणि विद्यापति कहते है कि उस सुन्दरी के अपरिमित सौन्दर्य के विषय मे कौन इतना वर्णन कर सकता है ?—यह तो बस कामदेव का ही प्रताप या श्रेय है कि जो उसने ऐसी अनुपमेय रमणी की अपने हाथो रचना की है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कवि ने बडी चतुराई से प्रसिद्ध शृगारी उपमानो—हरिण, कोकिल एव गजादि का उपमेयो—आँखो, बोली एव चालादि की सौन्दर्य-तुलना मे हीनता प्रकट की है। केशो की सौन्दर्य-प्रतिष्ठा मे "चामरि गिरि-कन्दर" उक्ति का प्रयोग बडा नवीन ढग का प्रयुक्त किया गया है। "घट परबेस हुतासे" पक्ति मे मौलिक कल्पना यह है कि रमणी के ठोस एव स्वर्ण-वर्ण उरोजो की समता करने न करने के कारण ही घडा अपने को अग्नि मे जलाता-तपाता है। शकर जी के विषपान का कारण भी अनूठा है कि वे उस रमणी के गौर-वर्ण के प्रभाव के वशीभूत जले और तप पूत बने। विद्यापति क पदो की हर पक्ति मे अलकार एव भाव-व्यजना का गूढातिगूढ अर्थ छिपा रहता है जो केवल अभिधा-लक्षणा से कही परे, बडा गम्भीर होता है। एक महान् कलाकार की बडी विशेषता कही गई है कि वह कम-से-कम शब्द-पदो के माध्यम से एक सश्लिष्ट सजीव चित्र की भावाभिव्यजना प्रस्तुत करे और इसकी पुष्टि मे विद्यापति की केवल यह पक्ति स्मरणीय है—"दाडिम सिरिफल गगन बास करु" दाँतो की शोभा के लिये दाडिम एव उरोजो की शोभा के लिये श्रीफल का सकेत करते हुए कवि ने उनकी हीनता सकेत से ही केवल "गगन बास करु" शब्दो मे कह दी है जिसका अभिधा से नही केवल व्यजना से यह अर्थ उपयुक्त बनता है कि अनार एव बेल-फल दूर ऊपर वृक्षो की शाखो मे जा बसे है। इतनी बडी बात एक छोटी-सी पक्ति मे व्यक्त कर देना कविवर विद्यापति की उत्कृष्ट कला का प्रमाण कहा जायगा।

शब्दार्थ—कबरी=केश-राशि। चामरि=चॅवर वाली गौ। गिरि-कन्दर= पर्वत-कन्दरा। भय=डर, यह शब्द यहाँ उपमानो की हीनता का अर्थ व्यजित करता है। अकासे=आकाश मे। सर=स्वर, वाणी। गति=चाल। गज=हाथी। बनबासे= वन मे बास करने लगे। सुन्दरि=रमणी को सम्बोधन है। किए=क्यो। मोहि= मुझसे। सँभासि=सम्भाषण, बातचीत। न जासि=नही कर जाती। तुअ=तुम्हारे। इह=ये। दूरहि=दूर। पलायल=पलायन कर गए है। तुहुँ=तुम। पुन=फिर। काहि=किसलिए। डरासि=डरती हो। कुच=उरोज, स्तन। कोरक=कली। मुदि=बन्द, बिना खिली। रहु=रहती है। घट=घडा। परबेस=प्रवेश। हुतासे= आग। दाडिम=अनार, यहाँ दाँत का उपमान है। सिरिफल=श्रीफल, बेल-फल, यहाँ उरोजो का उपमान है। गगन बास करु=आकाश पर वास करना, यहाँ अर्थ है कि पेड की शाखा पर लगे है। सम्भु=शकर। गरल=जहर। करु=किया। ग्रासे= पीने से तात्पर्य है। पक=कीचड। भुज=बाहे। मृनाल=कमल की डडी। नुकाएल= छिप गया। किसलय=नव-पल्लव। कवि-सेखर=कविवर विद्यापति का खिताबी नाम था। भन=कहते है। कर=हाथ। कत ऐसन=कहाँ ऐसा है। कहब=कहना। मदन=कामदेव। परतापे=प्रताप।

(२१)

रामा, अधिक चगिम भेल।
कतने जतन कत अदबुद, बिहि बिहि तोहि देल।
सुन्दर बदन सिदुर-बिन्दु सामर चिकुर भार।
जनि रबि-ससि सगहि ऊगल पाछ कय अधकार।
चचल लोचन बाँक निहारए अजन शोभा पाय।
जनि इन्दीबर पवन-पेलल अलि भरे उलटाय।
उनत उरोज चिर झपाबए पुनु पुनु दरसाए।
जइयो जतने गोअए चाहए हिमगिरि न नुकाय।
एहनि सुन्दरि गुनक आगरि पुनें पुनमत पाव।
ई रस बिन्दक रूपनरायन कवि विद्यापति गाव।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति रमणी के नख-शिख शृगार का सश्लिष्ट वर्णन करते हुए लिखते है—

हे सुन्दर रमणी! यौवनावस्था को प्राप्त करके तुम अत्यधिक शोभा को प्राप्त करके शोभामयी प्रतीत होती हो। कितने कलात्मक यत्नो से कितने अद्भुत उपकरणो को चुन-चुनकर विविध प्रकार से ब्रह्मा या विधाता ने रचा है एव तुम्हे सुन्दरता के तत्त्व या अग अवयव प्रदान किये है। सुन्दर मुख है, भाल पर सिंदूर का शोभित टीका

है, एव काले-कजरारे केशो का जाल है, यह सब कुछ कितना अद्भुत है ! इससे ऐसा प्रतीत होता है मानो सूर्य एव चन्द्रमा अधकार को पीछे करके सग-ही-सग उदय हो गये हैं। आशय यह है कि सुन्दरी का शशि-मुख है, उस पर उसके यौवन का आरुण्य-सूर्य देदीप्यमान होता है और इस सबके पीछे उसका चिकुर भार अधकार के समान फैला है—एक अद्भुत छटा है इस सबकी ! हे सुन्दरी, तुम्हारी सुरमई, अजित शोभित आँखे अपने दृष्टि-कटाक्ष के समय अतुलनीय शोभा का आगार प्रतीत होती है और तब तुम्हारी आँखो मे अजा अजन भी बढभागी-सा अनोखी छटा लिए दीख पडता है। तब ऐसा प्रतीत होता है मानो पवन द्वारा उछाला गया कमल भौर-भार के कारण उलट गया हो। सूक्ष्म आशय यह है कि रमणी का दृष्टि-कटाक्ष पवन-सा चचल है जिससे आन्दोलित हुए उसके कमल-नयन जो अजन से कारे-कजरारे भौरो के तुल्य लगते है, काम-भार से मानो नशीले होकर उलटते-से प्रतीत होते है। हे सुन्दरी, तुम अपने उन्नत स्तनो को यद्यपि बारम्बार अपने भीने पट या साडी से ढकने का प्रयत्न करती तो हो, किन्तु वे इतने अल्हड और जोर पर है कि फिर दीख ही पडते है। यद्यपि तुम उन्हे यत्नपूर्वक छिपाना चाहती हो किन्तु वे, और गुप्त रहे—असम्भव ! वे तो हिमालय पर्वत-से है, छिपते ही नही। ऐसी रमणी गुणशालिनी को कोई पुण्य-शाली अपने पुण्य से ही पाकर भोग सकता है। कविवर विद्यापति गाते है कि इस शृगार-रस के मर्मज्ञ राजा रूपनारायन श्री शिवसिह ही है, वे ही ऐसी अपूर्व सुन्दरी के शृगार-रस-भोग के सर्वथा योग्य है।

विशेष—प्रस्तुत पद शृगार-रस और उसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से बडा श्रेष्ठ कहा जायगा। सूर्य एव चन्द्रमा की सगति का निर्वाह कवि ने बडे चमत्कार से यो व्यक्त किया है कि रमणी के मुख पर स्वभावत चन्द्र की-सी शीतल जुन्हाई एव सूर्य की अरुणिमा-सी काति विद्यमान होती है। यह काम मनोवैज्ञानिक प्रभाव का रसमयी लक्षणा का काव्यात्मक निरूपण है। कल्पना की दृष्टि से कवि ने अजन-अजित रमणी के नेत्रो की एक अनोखी सुन्दरता इस पक्ति मे ध्वनित की है—

"चचल लोचन बाँक निहारए अजन शोभा पाय।
जनि इन्दीबर पवन-पेलल अलि भरे उलटाय।"

"जनि इन्दीबर" मे उत्प्रेक्षा का जहाँ सुन्दर प्रयोग है वहाँ "अलि भरे उलटाय" उक्ति मे काम-रस-मादकता का विचित्र भाव व्यजित है। उन्नत स्तन लाख साडी पट मे छिपाने की चेष्टा की जाय, वह व्यर्थ है, कुच दीखते ही है पर विशेष बात यह है कि उन्हे हिमालय-सा उत्तुग बताया गया है जिसका उठाव तो किसी भी तरह गोपन रहना सम्भव नही और उस रमणी के उरोज भी उस जैसे ही उत्तुग है—"जइयो जतने गोअए चाहए हिमगिरि न नुकाय" यह विशद कल्पना बडी मौलिक एव रोमाचकारी है। इसीलिए तो विद्यापति की यह उक्ति पुष्ट है कि—"रामा, अधिक चगिम भेल।"

विधाता की इस यत्नपूर्ण रचना-कृति का कोई विरला ही, पुण्य-सचित पुण्यवान रस-भोग प्राप्त कर सकता है—यह कथन गहरे यथार्थ अनुभव एव रसज्ञता की व्यजना करता है। समस्त पद मे 'गेयता' प्रधान है। "बिहि-बिहि" मे यमक एव श्लेष का चमत्कार है।

शब्दार्थ—रामा=रमणी, सुन्दरी। चगिम=शोभाशालिनी। भेल=हुई। कतने=कितने। जतन=यत्न। कत=कितना। अदबुद=अद्भुत। बिहि=विधाता, ब्रह्मा। बिहि=अनेक ढग से। तोहि=तुम्हे। देल=प्रदान की है। बदन=मुख। बिन्दु=टीका। सामर=श्याम। चिकुर भार=केश-जाल का बोझा। जनि=मानो। रबि-ससि=चद्र एव सूर्य, रमणी के मुख मे प्राय चद्र की जुन्हाई एव सूर्य की अरुणाई अति रसिको को अनुभव होती है। सगहि=सग मे। ऊगल=उदय हुए है। पाछ कय=पीछे की ओर। अधकार=रमणी के केशो की श्यामलता का उपमान 'अँधेरा'। लोचन=नेत्र। बाँक=तिरछा, कटाक्षपूर्ण। निहारए=देखना। इन्दीबर=कमल, नेत्रो का उपमान है। पवन-पेलल=हवा से सचालित या आन्दोलित, रमणी के चचल काम-कटाक्षो की ओर लक्ष्य है। अलि=भँवरे। उलटाय=उलटना, रमणी की मदभरी आँखो की डाँवाडोल स्थिति के प्रति सकेत है। उनत=उठे हुए, ऊँचे। उरोज=कुच। चिर=पट, साडी का अचल। झपाबए=ढँकना, छिपाना। पुनु=फिर। दरसाए=दीख जाते है। जइयो=यद्यपि। जतने=यत्नपूर्वक। गोअए=गोप रखना, छिपाना। चाहए=चाहती है। हिमगिरि=हिमालय पर्वत, उरोजो के उठाव का उपमान है। न नुकाय=नही छिपते। एहनि=ऐसी। बिन्दक=मर्मज्ञ। गुनक=शृगार-गुणमयी। आगरि='नागरि' से आशय है जो रूप-गुणो की खान हो। पुने=पुण्यो से। पुनमत=पुण्यवान। पाव=उपलब्ध करना। ई=इस। रस=शृगार-रस से आशय है। रूपनरायन=रूपवान राजा शिवसिह। गाव=गाता है।

(२२)

सहज प्रसन मुख दरस हृदय सुख
लोचक तरल तरङ्ग।
अकास पताल बस सेओ कइसे भेल अस
चाँद सरोरुह सँग।
बिहि निरमलि रामा दोसर लछि समा
भल तुलाएन निरमान।
कुच-मडल सिरि हेरि कनक-गिरि
लाजे दिगन्तर गेल।
केओ अइसन कह सेओ न जुगुति सह
अचल सचल कइसे भेल।

माझ-खीनि तनु भरे भाँगि जाय अनु
विधि अनुसए भल साजि।
नील पटोर आनि अति से सुदृढ जानि
जतन सिरिजु रोमराजि।
भन कबि बिद्यापति काम-रमनि रति
कौतुक बुझ रसमन्त।
सिर सिवसिंघ राउ पुरुख सुकृत पाउ
लखिमा देइ रानि कन्त।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति अनेक सौन्दर्य-उपमानो के माध्यम से रमणी के अनुपमेय रूप-भावो की अवतारणा करते हुए लिखते हैं—

उस रूपसी के स्वाभाविक प्रसन्न मुस्कराते हुए मुख का दर्शन हृदय को पुलकायमान करने वाला है। उसके दर्शन से, नेत्र आह्लाद से तरल-तरगायित हो जाते हैं, या उनमे सुख-मदिरा की तरल-तरग उठने लगती है। आकाश और पाताल की दूरी पर निवास करने पर भी यह कैसा आश्चर्य है कि चन्द्र एव कमल दोनो एक सग हो गए है, मिल गए है। आशय यह है कि उस सुन्दरी का मुख चन्द्रमा के समान है एव उसके नेत्र कमल के समान है, चन्द्रमा जो आकाश पर रहता है और कमल नीर मे। फिर यह कैसा आश्चर्य है कि उस सुन्दरी मे इन दोनो का सयोग हो गया है जिससे उसका सौन्दर्य आश्चर्य का कारण, सचमुच, बन गया है। उस रमणी को विधाता ने लक्ष्मी जी के तुल्य सुन्दर बनाया है अत लक्ष्मी के साथ उसकी तुलना करने के लिये यह रचना बडी उपयुक्त हुई है। उसके उरोजो की गुलाई और श्री-शोभा को देखकर स्वर्ण-पर्वत सुमेरु लज्जावश दिशाओ से परे कही अन्यत्र जा छिपा है—ऐसा किसी का विचार है किंतु कविवर विद्यापति कहते हैं कि मुझे तो यह कथन अपने विचार से ठीक प्रतीत नही होता क्योकि पर्वत तो स्थिर या जड होता है, भला फिर वह चेतन या चलायमान कैसे हो सकता है? इस आशका से कि कही उस रमणी के उरोजो से भारावह शरीर के कारण उसकी पतली कमर टूट न जाय—अत विधाता ने नीले कोमल किंतु अति सुदृढ रेशम को परखकर बडे रचना-कौशल से लाकर उसकी रोमराजि के रूप मे उसे उसके अग से लिपटा दिया ताकि उसकी पतली कमर उरोजो के भार को संभाल सके, टूट न जाए। आशय यह कि रमणी की रोमराजि नीले रेशम के समान प्रतीत होती है जो उसके उभरे उरोजो एव पतली कमर के मध्य अत्यन्त शोभामयी लगती है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि इस प्रकार की रमणी के साथ काम-सम्भोग-कौतुक आदि का रस किस भाँति उपलब्ध किया जाता है, इस रहस्य को कोई चतुर रसिक सुजान ही समझता है। हा, राजा शिवसिंह जैसे शृगारी पुरुष ही अपने पूर्व-पुण्य-प्रताप से अपनी रानी लखिमादेवी से इस काम-शृगार के रस का

भली-भाँति आनद उठाने मे समर्थ है, वही ऐसी सुन्दरी रानी के सच्चे स्वामी बनने के अधिकारी है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शृगार-रस के भावानुभावो, सचारी भावो एव स्थायी भावो की अभिव्यजना करते हुए कविवर विद्यापति ने 'रस' की निष्पत्ति की है। पद की प्रथम तीन-चार पक्तियो मे ही इसकी पुष्टि देखी जा सकती है। कौतुक-कौतुहल का भाव "अकास पताल बस सेओ कइसे भेल अस, चाँद सरोरुह सँग।" पक्तियो मे द्रष्टव्य है। तरुणी के कुच-मण्डल की गरिमा जो लोग "कनक-गिरि" से देते है विद्यापति ने उसे उचित न जानते हुए उसका निषेध बडी निपुणता से किया है, "अचल सचल" अनुप्रासिक शब्दो द्वारा। वस्तुत रमणी के उरोजो मे तो कामदेव का स्पदन हर समय जाग्रत रहता है, फिर भला वह कनक-गिरि की भाँति जड कैसे हो सकते है? कवि की सूक्ष्म दृष्टि एव कल्पना की बारीक रेखा मानो बिजली की तरह चमककर सुप्त सम्भोगी सचारी भावो को जगा देती है। "नील पटोर" उक्ति अत्यत प्रभावशालिनी है। सुन्दरी के मासल अगो पर रेशम-से नीले रोम बडे लुभावने दीख पडते है। फिर उनकी उपयोगिता भी कम नही क्योकि वे तन्वगी सुन्दरी की क्षीण कटि को टूटने से बडी कोमलतापूर्वक बचाते जो रहते है। लक्ष्मी के साथ रमणी की तुलना करके कवि ने उसकी नीरीयोचित महत्ता को और चार चाँद लगा दिये है। पद की पक्ति-पक्ति मे शृगार का उद्दीपन विभाव झलकता है और गेयात्मकता नर्त्तित है। रसराज शृगार-रस के प्रतीक राजा शिवसिंह और उन जैसे रसिक जन ही इस शृगार-रस के रस-रहस्य को जान सकते है—मानो इस कथन की साक्षी मे सम्पूर्ण पद की रचना गौरवान्वित है। "लोचक तरल तरङ्ग" उक्ति मे कामोद्दीपन की मदिर अभिव्यक्ति है एव "त त" की आवृत्ति से उसमे अनुप्रासिक लयात्मकता समर्थ बन सकी है।

शब्दार्थ—सहज=स्वाभाविक। प्रसन=प्रसन्न, मुस्कान भरा हुआ। दरस=दर्शन। तरल तरङ्ग=आँखो की कामोद्दीपन करने वाली मदिरा तुल्य लहर। अकास=आकाश। पताल=पाताल, कमल के जल मे होने से तात्पर्य है। बस=रहना। सेओ=सयोग। कइसे=कैसे। भेल=हुआ। अस=ऐसा। सरोरुह=कमल। सग=साथ। बिहि=विधाता। निरमलि=स्वच्छ, निर्मल या सुन्दर। रामा=सुन्दरी, रमणी। दोसर=दूसरी। लछि=लक्ष्मी। समा=समान। भल=उचित। तुलाएन=तुल्य। निरमान=निर्माण, रचना। सिरि=शोभा। हेरि=देखकर। कनक-गिरि=स्वर्ण-पर्वत सुमेरु, कुचो का उपमान है। लाजे=लज्जावश। दिगन्तर=दिशाओ से परे। गेल=गया। केओ=किसी ने। अइसन=ऐसा। सेओ=यह भी। जुगुति=युक्ति या उपमा। सह='ठीक' से आशय है। अचल=जड, स्थिर। सचल=चलायमान, चेतन, स्पदनमय। कइसे=कैसे। भेल=हुआ। माझ-खीनि=बीच मे पतली—'कमर' क्योकि नितम्बो एव उरोजो के मध्य कमर पतली ही लगती है।

तनु=शरीर। भरे=भार से। भाँगि जाय=टूट जाय। जनु=कही। बिधि=विधाता। अनसुए=आशका, सदेह। भेल=है। साजि=सजाई। नील पटोर=नीले रग का रेशम, यहा रोम-समूह से तात्पर्य है। आनि=लाकर। अति से सुदृढ जानि=अत्यत मज़बूत जानकर। जतन=कला-कौशल से। सिरिजु=रोमराजि को उगाया है। भन=कहते है। काम-रमनि रति=रमणी के साथ काम-क्रीडा करना। कौतुक=काम-रहस्य। बुझ=जानना। रसमन्त=रस-सुजान। राउ=राजा। पुरुख=पुरुष। सुकृत=पुण्य। पाउ=पाकर। कन्त=पति।

सद्यः-स्नाता

(२३)

कामिनि करए सनाने ।
हेरितहि हृदय हनए पँचबाने ।
चिकुर गरए जलधारा ।
जनि मुख-ससि डर रोग्रए ग्रँधारा ।
कुच-जुग चारु चकेवा ।
निग्र कुल मिलिग्र ग्रानि कोन देवा ।
ते सका भुज-पासे—
बाँधि धएल उडि जाएत ग्रकासे ।
तितल बसन तनु लागू ।
मुनिहु क मानस मनमथ जागू ।
भनइ बिद्यापति गावे ।
गुनमति धनि पुनमत जन पावे ।

भावार्थ—स्नान करते समय कामिनी के नग्न शरीर-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कविवर विद्यापति कहते है—

वह रमणी स्नान करती है । इस समय उसके नग्न ग्रगो की शोभा हताहत कर देने वाली है । वह तो देखते ही कामदेव के पचबाणो से हृदय को छेद देती है । ग्राशय यह है कि नग्न स्नान करती हुई उस सुन्दरी बाला के ग्रगो का सौन्दर्य देखने से काम-देव के पचबाणो द्वारा हृदय को घायल कर देने वाला है—कामवासना उद्दीप्त कर देने वाला है । उसके भीगे केश-समूह से जल की धारा बह रही है, ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसके मुख रूपी चन्द्र के भय से ग्रधकार रुदन करके ग्राँसुग्रो की धारा बहा रहा है । यहाँ 'केश-समूह' को ग्रधकार बतलाया गया है एव उससे गिरते पानी को 'जल-धारा' कहा गया है, मुख को चन्द्र तो स्पष्ट कहा ही गया है । रूपक उत्प्रेक्षा ग्रलकारो की स्वाभाविक छटा है । उस सुन्दरी के दोनो स्तन दो सुन्दर चकेवा पक्षी की भाँति प्रतीत होते हैं जो ग्रपने स्वजातियो मे मिलकर उड जाएगे, ऐसा लगता है—ग्रत इस चतुर सुन्दरी ने यह शका मानकर कि यदि ये मेरे चकेवा रूपी कुच सचमुच ही ग्राकाश मे ग्रपने स्वजातियो के साथ मिलकर जा उडे, तो फिर कौन उन्हे पकडकर

लाएगा—वह आकाश मे न उड जाएँ इसी शका से उस रमणी ने उन कुच रूपी चकवो को अपनी बाहुओ के बीच भुजपाश मे कसकर बाँध रक्खा है। (नग्न नायिका के भीगे उरोज अधिक कठोर एव दुष्ट प्रतीत होते है, यहाँ इसी बात की अभिव्यजना करना विद्यापति का लक्ष्य है।) भीगे वस्त्र उस कामिनी के अग से चिमट गए हैं और देखने मे उसका मासल शरीर अनावृत्त-सा बडा कामोद्दीपनकारी लगता है। इस नग्नावस्था मे उस बाला के सौन्दर्य को देखकर ऋषि-मुनियो के मन मे भी कामदेव जाग उठेगा—रसिक मनुष्यो की तो बात ही कहना क्या? कवि विद्यापति अपने पदो मे गाकर कहते हैं कि ऐसी रति-गुणमती शृगार अनावृत्त सुन्दरी का भोग कोई पुण्यशाली रसिक ही पा सकता है—साधारण व्यक्ति नही। आशय है कि राजा शिवसिंह ही ऐसी कामिनी का सुख-भोग प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

विशेष—इस पद का काम-सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक भावना के प्रकाशन की दृष्टि से बडा महत्त्व है। नग्न नहाती हुई स्त्री का अग-सौन्दर्य कितना कामोद्दीपन-कारी हो सकता है कविवर विद्यापति ने इसे एक पक्ति मे कह दिया है—'मुनिहु क मानस मनमथ जागू' जो कम से कम मनुष्यो के लिए तो बडा यथार्थ है। उसे नग्ना-वस्था मे स्नान करते देखकर काम का विद्युत जैसा प्रादुर्भाव होना अत्यन्त स्वाभाविक है जिसके लिए कवि की यह पक्ति बडी मार्के की है—'हेरितहि हृदय हनए पँचबाने।' 'ह 'ह ह' की आवृत्ति मे अनुप्रास की दौडती हुई वैसे भी बिजली-सी आभासित होती है—शब्दो की सत्ता का ऐसा प्रभावशाला प्रयोग विद्यापति के पदो मे खूब हुआ देखने को मिलता है। 'मुख-मसि' का रूपक तो बडा घिसा-पिटा कहा जा सकता है किन्तु 'चिकुर गरए जलधारा' उक्ति की उत्प्रेक्षामय अभिव्यक्ति के साथ 'रोअए अँधारा' उक्ति का चमत्कार बडा मौलिक एवं कल्पना बडी विशद बन पडी है। रमणी के स्नान के समय बिखरे हुए श्यामल केश-समूहो से जब पानी छहरता है तब वस्तुत ऐसा प्रतीत हो सकता होगा मानो अधकार मे उज्ज्वल ओस की बूँदें टपक रही हो ' पर वह सहज ही दीखने वाली नही, उनके लिए कवि की सर्चलाइट को रसिक के मन-मस्तिष्क मे समाना होगा तभी यह सब कुछ देखना सम्भव है। 'चकेवा' के साथ 'कुच-जुग' की उपमा बडी सुन्दर है , किन्तु चोली मे बँधे, स्नान के समय रमणी के कुच कुछ ठण्ड से, कुछ काम-भावना से स्पन्दित एव उभरे हुए प्रतीत होते है, पर वह चोली?—वे उससे इसी भाँति बंधने लगते हैं मानो स्वच्छन्द गगन की उडान भरने वाले चकेवा को बाँध रक्खा हो—यहाँ कामिनी की काम-विवशता का भाव भी ध्वनित होता है। 'मुनिहु···मानस मनमथ' मे अनुप्रासिक छटा बडी सुन्दर बन पडी है। सम्पूर्ण पद मे काम-भावना, शृ गारिक कल्पना एव आलकारिक योजना का समन्वय बडी निपुणता से हो सका है, पद क्या है एक सजीव चित्र है स्नान करती कामिनी का!

शब्दार्थ—कामिनी=सुन्दरी। करए=करती है। सनाने=स्नान। हेरितहि=देखते ही। हनए पँचबाने=कामबाणो से छिद जाता है, कामोद्दीपन हो जाता है। चिकुर=केशो का समूह। गरए=गिरती है। जलधारा=बालो से नहाते समय गिरते पानी की धार को कहा गया है। जनि=मानो, उत्प्रेक्षा है। मुख-ससि=चन्द्रमा के समान कामिनी का मुख, रूपक है। डर=भय से। रोअए=रोता है। अँधारा=अन्धकार, केश-समूह की श्यामलता का उपमान है। कुच-जुग=दोनो उरोज, स्तन। चारु=सुन्दर। चकेवा=एक पक्षी विशेष। निअ कुल=स्वजातियो, पक्षीकुल से आशय है। मिलिअ=मिलने के लिए। आनि कोन देवा=कौन लाकर देगा, जबकि वह उरोज चकेवा की भाँति उडकर कामिनी के पास से चले जाएँगे। ते=इस। सका=डर, सन्देह। भुज-पासे=बहुपाशो मे। बाँधि=बाँध रक्खे,चोली के भीतर उरोजो के बँधे होने का तात्पर्य है। जाएत=जाते। अकासे=आकाश मे। तितल=भीगे हुए। बसन=वस्त्र। तनु=शरीर। लागू=चिमटे हो। मुनि हुक=मुनि तपस्वी भी। मानस=मन, हृदय। मनमथ=कामदेव। जागू=जाग जाता है। भनइ=कहते है। गावे=पदो मे गाकर। गुनमति=गुणवती। धनि=नारी, बाला। पुनमत=पुण्यशाली। जन=व्यक्ति, रसिक। पावे=पा सकता है।

(२४)

आजु मझु सुभ दिन भेला।
कामिनि पेखल सनान क बेला।
चिकुर गरए जलधारा।
मेह बरिस जनु मोतिम हारा।
बदन पोछल परचूरे।
माजि धएल जनि कनक-मुकूरे।
तेंइ उदसल कुच-जोरा।
पलटि बैसा श्रोल कनक-कटोरा।
निबि-बध करल उदेस।
बिद्यापति कह मनोरथ सेस।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति स्नान करती हुई नग्न विलासिनी के रूप एव उसके अग-रग का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

आज ही मेरा दिवस शुभ एव सुखमय हुआ है कि मैंने उस अनूप कामिनी को स्नान की वेला मे देखा है। उसके भीगे-भीगे केशो से जल की धारा इस प्रकार से गिर रही थी मानो बादलो से मोतियो के हार की वर्षा हो रही हो। उस कामिनी ने अपना गीला मुख खूब अच्छी तरह से पोछा और तब उसका वह स्वच्छ धुला-खिला मुख ऐसा समुज्ज्वल प्रतीत हुआ मानो सोने के दर्पण को माँजकर रख छोडा हो। मुख को

पोछने के लिए उठाए हाथो के कारण—उसमे उसके कुचो की जोडी इस भाँति उभर गई मानो किसी ने सोने के कटोरो को उलटकर रख दिया हो। आशय यह है कि कामिनी के ऊपर बाहु उठाने के कारण उसके कुचो की स्थिति स्वण-कटोरो की भाँति ही दृष्टिगत होती है। जब उसने अपने भीगे वस्त्र बदलने के लिए अपनी धोती की गाँठ या फुफनी को खोल दिया, तो कविवर विद्यापति कहते है कि जैसे मन की रसिकता के समस्त मनोरथ की इतिश्री हो गई—कुछ भी पाने-बताने को शेष नही रहा। आशय यह है कि जब उस सुन्दरी ने अपने नीबी बध को खोला कि वह पूर्णत नग्न दीख गई और मानो शृ गार-कामभोग आदि सब उपकरणो का आस्वाद एकदम हो गया फिर कहने को शेष कुछ भी नही रहा।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कवि की कला-स्वच्छन्दता की अभिव्यजना बडी स्पष्ट है। उत्प्रेक्षा के माध्यम से कवि ने सुन्दरी के जलवर्षित केशो की उपमा मेघ से होती वर्षा के साथ एव उसके धुले-खिले पुछे हुए मुख की उपमा मँजे हुए स्वर्ण-दर्पण के साथ दी है जो बडी मौलिक, यथार्थ एव भावसगत है। बाहुओ के उठाने पर नारी के दोनो कुचो की अवस्था उलटे बँधे हुए स्वर्ण-कटोरो की भाँति लगती है। इस चित्र को कवि ने कितनी निपुणता से शब्दो द्वारा चित्रित किया है—'पलटि बैसा ओल कनक-कटोरा।' कला की नि सृति आनन्दकोष की वस्तु कही गई है। कवि की सफल अभिव्यक्ति इस बात मे है कि वह सब कुछ कहकर भी कुछ अनकहा छोड दे—एक झीना-सा आवरण डाल दे, इस कथन की सफलता 'निबि-बध करल उदेस' उक्ति मे सार्थक है। शृ गार की चरम सीमा इस पक्ति की अभिव्यजना की व्यजना मे समाई हुई है। शायद इसी कारण महाप्रभु चैतन्य कहते हैं कि विद्यापति के पदो को गाते-गाते मूर्च्छित हो जाते थे। 'मनोरथ सेस' उक्ति मे एक गम्भीर मनोविज्ञान झाँकता है और वह यह कि काम-सम्भोग के अनन्तर शेष क्या रह जाता है?—केवल मनोरथ शेष या समाप्त हो जाने की अकथित अनुभूति ही तो न? इस प्रकार की सारगर्भित अभिव्यजनाओ के कारण विद्यापति के पदो मे रीति-परम्परा का अलकार चमत्कार-प्रदर्शन ही प्रधान न होकर उनकी तह मे मनोवैज्ञानिक सौन्दर्य काव्यानुकूल प्रकट हो सका है, यही कवि विद्यापति की महत्ता है।

शब्दार्थ—आजु=आज। मझु=मेरा। भेला=हुआ। सुभ दिन=शुभ एव सुखमय दिवस। कामिनि=सुन्दरी। पेखल=देखा। सनान=स्नान, नहाना। क=के। बेला=वेला, समय। चिकुर=केश, कुन्तल। गरए=गिरती थी। मेह=बादल, मेघ। बरिस=बरसाते है। जनु=मानो। मोतिम=मोतियो के। बदन=मुख। पोछल=पोछा। परचूरे=खूब अच्छी तरह। माजि=माँजकर। धएल=रख दिया। कनक-मुकूरे=सोने का दर्पण, मुख का उपमान है। तेंइ=उससे, मुँह पोछने के लिए हाथ ऊपर करने के कारण। उदसल=उकस जाना। कुच-जोरा=दोनो उरोज। पलटि=

उलटा करके। कनक=स्वर्ण। कनक-कटोरा=सोने के कटोरे, कुचो का उपमान है। निबि-बध=फुफनी की गाँठ, कमर पर जो धोती की गाँठ होती है। करल=किया। उदेस=शिथिल। कह=कहते है। मनोरथ=मनोकामना, सम्भोग-श्रृंगार की भावना से आशय है। सेस=शेष होना, समाप्त होना।

(२५)

जाइत पेखल नहाएलि गोरी।
कति सयँ रूप धनि आनलि चोरी।
केस निगारइत बह जल धारा।
चमर गरए जनि मोतिम-हारा।
अलकहि तीतल तै अति शोभा।
अलिकुल कमल बेढ़ल मधुलोभा।
नीर निरजन लोचन राता।
सिदुर मँडित जनि पकज-पाता।
सजल चीर रह पयोधर-सीमा।
कनक-बेल जनि पडि गेल हीमा।
ओ नुकि करतहि चाहि किए देहा।
अबहि छोडब मोहि तेजब नेहा।
ऐसन रस नहि पाओब आरा।
इथे लागि रोइ गरए जलधारा।
बिद्यापति कह सुनह मुरारि।
बसन लागल भाव रूप निहारि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे सद्य-स्नाता रमणी के स्वरूप का चित्र चित्रित करते हुए कविवर विद्यापति लिखते है—

मैंने स्नान करके जाती हुई गोरी या सुन्दरी को निहारा। ऐसा अपार रूप, न जाने वह बाला कहाँ से चुरा लाई है, आश्चर्य है! उसके केशो को निचोडते समय जो जल की धारा बहती है तो ऐसा ज्ञात होता है मानो चॅवर से मोतियो का हार टूटकर गिरता है। आशय यह है कि उसके घने काले-कजरारे केश कैसे लगते हैं जैसे मोती-मडित चँवर हो और उनसे निचुडती जल की धारा ऐसी शोभायमान होती है जैसे चँवर मे लगे मोतियो का हार गिर रहा हो। उसकी भीगी काकुलो की शोभा अत्यन्त है। उन्हे देखकर ऐसा भान होता है जैसे मधुलोलुप भँवरो के दल ने कमल को मधुपान के लिये घेर लिया हो। आशय यह है कि उस रमणी के भीगे केश-गुच्छ मधुलोलुप भँवरो के समान शोभायमान होते हैं और उसका मुख कमल जैसा मधुमय प्रतीत होता है। इस दृश्य से उस रमणी के प्रति अगाध आकर्षण हो जाता है। जल लगने के कारण उसकी आँखो का अजन भीतर

फैल गया है जिसके प्रभाव के कारण उसके नेत्र लाल हो गए हैं, इससे ऐसा लगता है मानो कमल-पँखुरिश्रो पर सिंदूर लिपट गया हो। यहाँ श्राशय यह है कि सुन्दरी की श्राँखो का भीतरी भाग श्वेत कमल की भाँति कोमल है जो श्रंजन के प्रभाव को सहन न करने के कारण श्ररुण हो गया है श्रौर इससे भी उसके नेत्रो का सौन्दर्य श्रौर बढ गया है कि वे नेत्र लगते हैं मानो श्वेत कमल की पँखुरियो पर सिंदूर मडित हो गया हो। कुचो के ऊपर भीगा वस्त्र चिमट गया है जो ऐसा शोभनीय लगता है जैसे स्वर्ण बेल-फल पर बर्फ लिपट गया हो। श्राशय यह है कि रमणी के कचन वर्ण जैसे उरोजो से लिपटा उसका भीगा वस्त्र बर्फ के समान प्रोज्ज्वल प्रतीत होता है जिससे उसकी शोभा मे चार चाँद लग जाते हैं। श्रौर उस हिम-सदृश भीगे वस्त्र को उस रमणी के कुचो से चिमटा हुश्रा देखकर यो प्रतीत होता है कि जैसे वह इस श्राशका से श्रपने को उसके शरीर से छिपा लेने को व्यग्र है कि वह बाला श्रभी उसके साथ स्नेह-नाता तोडकर उसे उतारकर फेक देगी। फिर ऐसी सुन्दरी के श्रालिगन-श्रभिसार का श्रानन्द श्रन्यत्र मैं नही पाऊँगा। श्राशय यह है कि जड गीले कपडे तक को उस बाला के कुच-माधुर्य को पाते रहने का लोभ है, वह उसके कुचो से विलग होना नही चाहता, श्रत बुरी तरह चिमट गया है। शायद इसीलिये वह रो रहा है श्रौर उससे पानी की धारा गिर रही है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे रसिक सुजान श्री कृष्ण सुनो! उस सुन्दरी के श्रपार रूप को देखकर वह जड गीला वस्त्र तक उसके शरीर से चिमट गया है, उसके सम्भोग-भोगानन्द को छोडने के लिये तत्पर नही होता।

विशेष—पद मे सद्य-स्नाता रमणी के रूप का चित्र बडा सजीव श्राँका गया है। पक्ति-पक्ति मे इसकी पुष्टि मिलती है। यथा, "नीर निरजन लोचन राता।" इस पक्ति के श्रागे की ३ पक्तियो मे उत्प्रेक्षा का बडा सुन्दर प्रयोग है। 'गीला वस्त्र' सभी के श्रग से चिमट जाता है, यह हम सभी देखते है किन्तु कविवर विद्यापति की कामिनी के श्रग से वह एक विशेष उद्देश्य से लिपटा है, इसलिये क्योकि उसमे भी चेतन की भाँति श्रृगार-सम्भोग-रस भोगने की श्रनुभूति है। विद्यापति की यह पक्तियाँ कवि कालिदास के मेघदूत की "चेतना चेतनेषु" उक्ति की याद दिलाती है।

सद्य-स्नाता रमणी के केशो से झरते जल-बिन्दु की शोभा बडी मनमोहक होती है—किन्तु इस श्रभिधार्थ की पुष्टि मे कवि ने एक श्रनूठी कल्पना का चित्र प्रस्तुत किया है—"चमर गरए जनि मोतिम-हारा।" केशो के साथ चँवर एव जलधारा के साथ मोतियो के हार की उपमा-तुलना बडी बारीक बन पडी है श्रौर रमणी की श्रीशोभा की इस भाँति उत्कृष्टता सिद्ध होती है। रीतिकालीन श्रृगारी परम्परा मे श्रागिक इतिवृत्त चित्रण प्राय सभी कवियो ने किया है किन्तु कविवर विद्यापति ने हर श्रृगारी पद मे भावना के ताप का भी श्रत्यन्त श्रानन्दमय सयोग स्थापित किया है। यथा भीगी श्रलके श्रत्यधिक शोभायुक्त दीखती हैं पर वह रमणी के कमल मुख पर क्यो लटकती

है; यो कि उसके मुख-लास्य का पान करना चाहती हैं जैसे मधुलोभी भँवर-दल कमल-रस का पान करता है। रूप-रस का इतना सजीव एव सागिक वर्णन केवल जयदेव के पदो के अतिरिक्त अन्य शृगारी रीतिकालीन परम्परा मे लिखे हुए पदो मे कम पढने को मिलता है। इस दृष्टि से कविवर विद्यापति छायावादी कवियो के भावना-जगत् के स्वच्छन्द गीतिकार सिद्ध होते है।

शब्दार्थ—जाइत=जाती हुई। पेखल=देखी। नहाएलि=स्नान करके। गोरी=रमणी या सुन्दरी। कति=कहाँ। सयँ=से। धनि=बाला। आनलि=लाई। चोरी=चुराकर। केस=केश या कुन्तल। निगारइत=निचोडते समय, केशो के पानी झाडने से तात्पर्य है। चमर=चँवर। बह=बहती है। गरए=गिरती है। जनि=मानो। मोतिम=मोतियो का। अलकहि=काकुलें, लटे। तीतल=भीगी हुई। तैं=इस कारण। अति शोभा=अत्यधिक सुन्दरतामय। अलिकुल=भँवर-दल। बेढल=घेर लिया। मधुलोभा=मधु के पिपासु भँवरे। नीर=पानी। निरजन=बिना अजन के होना, आशय है कि पानी से अजन धुलकर आँखो के भीतर पहुँच गया है। राता=लाल, अजन के पानी से धुल जाने के कारण वह आँखो के भीतर समा गया है अत नेत्र लाल हो गए हैं। सिदुर=सिन्दूर। मँडित=मले हुए। पकज-पाता=कमल-पँखुरियाँ, लाल हुई आँखो का उपमान है। सजल=पानी से भीगा हुआ। चीर=वस्त्र। रह=लिपटा हुआ। पयोधर-सीमा=स्तनो के ऊपर। कनक-बेल=सोने का बिम्बफल, बाला के सुन्दर कुचो का उपमान है। पडि गेल=पड गया है। हीमा=बर्फ, तात्पर्य है कि सुन्दरी के स्वर्ण बेल-फल जैसे उरोजो पर गीला श्वेत वस्त्र ऐसा प्रतीत होता है मानो बर्फ लिपट गया हो। ओ=वह, उरोजो पर पडा गीला वस्त्र। नुकि करतहि चाहि=वह गीला वस्त्र अपने को उस बाला के अग मे छिपाना चाहता है। देहा=शरीर। किए=क्योकि। अबहि=अभी। छोडब=त्यागना, वह रमणी मुझ वस्त्र को त्याग देगी। मोहि=मुझे। नेहा=प्रेम। ऐसन रस=ऐसा, उस रमणी के जैसा आनन्द-रस। पाओब=पाऊँगा, वस्त्र सोचता है कि मैं रमणी के आलिगन-अभिसार का जैसा रस कही नही पाऊँगा। आरा=अन्यत्र। इथे लागि=इसलिये लगकर, उस रमणी के अग से इसलिये चिमटकर कि वह मुझे छोड न दे, वह वस्त्र पानी नही अपने अश्रु गिराता है। गरए=गिराता है। कह=कहता है। सुनह=सुनो। मुरारि=रसिक, कृष्ण। बसन=वस्त्र। लागल=लिपटता है। भाव=भावमय होकर। रूप निहारि=बाला का रूप निहारकर, भीगा वस्त्र उससे लिपट रहा है।

(२६)

नहाइ उठल तीर राइ कमलमुखि

समख हेरल बर कान।

गुरुजन सग लाज धनि नत-मुखि
कइसन हेरब बयान ।
सखि हे, अपरुब चातुरि गोरि
सब जन तेजि कए अगुसरि सचरि
आड वदन तँह फेरि ।
तँहि पुन मोति-हार तोरि फेंकल
कहइत हार टुटि गेल ।
सब जन एक-एक चुनि संचरु
स्याम-दरस धनि लेल ।
नयन-चकोर कान्हु-मुख ससि-बर
कएल अमिय-रस-पान ।
दुहु दुहु दरसन रसहु पसारब
कबि बिद्यापति भान ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे राधा के प्रेम-चातुर्य का वर्णन करते हुए कविवर विद्यापति लिखते है—

स्नान करने के उपरान्त कमलमुखी सुन्दरी राधा यमुना के तीर पर आई और सहसा सम्मुख खडे सुन्दर श्रीकृष्ण को देखा। उस बाला के सग मे उसके वृद्ध जन भी थे अत' लज्जा के कारण वह नीचे को मुख किये थी, भला वह किसी का या कृष्ण का मुख किस भाँति निहारती ? एक सखी दूसरी से कहती है कि हे सखी ! किन्तु वह अपूर्व सुन्दरी राधा बडी चतुर रही कि सभी जनो को त्यागकर या पीछे छोडकर उसने आगे होकर ओट मे गर्दन फिरा ली। फिर यहाँ उसने अपना मोतियो का हार तोडकर फेक दिया और कहने लगी—"हार टूट गया।" सब लोग एक-एक करके मोतियो को चुनने मे लग गए और इस मध्य मे, इस चतुराई से उस बाला ने श्रीकृष्ण का दर्शन पा लिया। यो उसके नयन रूपी चकोरो ने कृष्ण के सुन्दर मुख रूपी चन्द्रमा का अमृत-रस-पान किया। इतना ही नही दोनो ने एक-दूसरे के परस्पर दर्शन-रस को यत्र-तत्र विकीर्ण भी कर दिया, ताकि दूसरे भी उसके आनन्द मे भीगे। कवि विद्यापति उसी रस से भीगे शृ गार-रस का आभास और आस्वाद व्यक्त करते है।

विशेष—मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत पद नायिका के प्रेम-रहस्य को स्पष्ट करता है। आचार्यों ने नायिकाओ की चेष्टाओ और उनके काम-चातुर्य का अपने ग्रन्थो मे विशद वर्णन किया है। स्वभावत. काम-रहस्य को गुप्त रखने मे नारी का चातुर्य पुरुष से अधिक पैना होता है। इसी की पुष्टि इस पक्ति मे बडे चमत्कारपूर्ण ढग पर हुई है—"तँहि पुन मोति-हार तोरि फेकल, कहइत हार टूटि गेल।" "नयन-चकोर कान्हु-मुख ससि-बर" मे रूपक की छटा द्रष्टव्य है। काम-चेष्टाओ का

उद्दीपन रस बडा सक्रमणशील होता है, इसी को विद्यापति ने इस उक्ति से स्पष्ट किया है—"दुहु दुहु दरसन रसहु पसारब।" यहाँ "दु" की पुन आवृत्ति होने से अनुप्रास की छटा भी द्रष्टव्य है। नतमुखि एव कमलमुखि शब्दो-पदो मे नारी के मुख-सौन्दर्य एव नैसर्गिक लज्जा का प्रकाशन प्रभावशाली बन पडा है। भारतीय लोक-मर्यादा का भाव "कइसन हेरब बयान" उक्ति से प्रकट होता है। प्रगल्भ से प्रगल्भ भारतीय नायिका मे लज्जा का भाव झलक ही आता है क्योकि यहाँ 'काम' भी जीवन के सुष्ठ रूप का प्रतीक है, विदेशी मेमो की भाँति सडक एव क्लबो के नग्न रूप का प्रतीक नही। विद्यापति ने यहाँ भारतीयता का यथासम्भव निर्वाह किया है। राधा एव कृष्ण को भक्ति-भावना के प्रतीक रूप न मानकर शृगार-रस के प्रतीक ही मानना चाहिए —नायक एव नायिका।

शब्दार्थ—नहाइ=स्नान करके। उठल=उठकर। तीर=तट या किनारा। राइ=राधा, नायिका। कमलमुखि=कमल के जैसे मुखवाली सुन्दरी, राधा। समुख-सम्मुख। हेरल=देखा। बर=सुन्दर। कान=श्रीकृष्ण, नायक। गुरुजन=वृद्धजन। धनि=बाला। नत-मुखि=लज्जा के कारण नीचे मुख किए हुए। कइसन=किस भाँति। हेरब=देखती। बयान=मुख। सखि हे=एक सखी का दूसरी को सम्बोधन है। अपरुब=अपूर्व। चातुरि=चतुर। गोरि=सुन्दरी। कए=कर। अगुसरि=आगे होकर। सचरि=चली। आड=ओट मे, छिपकर। वदन=मुख। तँह=वहाँ, उस आड मे। फेरि=घुमाकर। पुन=फिर। मोति=मोती। तोरि फेकल=तोडकर फेंक दिया। कहइत=कहने लगी। टुटि गेल=टूट गया। चुनि=चुनकर, हार के मोतियो को चुनने लगे। सचरु=इकट्ठा, सचय। दरस=दर्शन। स्याम=श्रीकृष्ण, नायक। धनि=बाला। लेल=लिया, श्याम का दर्शन पा लिया। चकोर=एक पक्षी, यहाँ सुन्दरी के नेत्रो का उपमान है। ससि=चन्द्रमा, यहाँ श्रीकृष्ण के मुख का उपमान है। कएल=किया। अमिय=अमृत। पान=पीना। रसहु पसारब=रस बिखेर दिया। दुहु दुहु=दोनो के परस्पर। दरसन=दर्शन। भान=आभास, अनुभव करते हैं।

प्रेम-प्रसंग

श्री कृष्ण प्रणय विषयक पद

(२७)

पथ-गति नयन मिलल राधा कान
दुहु मन मनसिज पूरल सधान।
दुहु मुख हेरइत दुहु भेल भोर।
समय न बूझय अचतुर चोर।
बिदगधि सगिनी सब रस जान।
कुटिल नयन कएलन्हि समधान।
चलल राज-पथ दुहु उरझाई।
कह कबि-सेखर दुहु चतुराई।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा और रसिक सुजान श्रीकृष्ण के काम-सकोच-सचालन का चातुर्यजनक वर्णन करते हुए लिखते है—

यौवन की डगर चलते हुए श्रीकृष्ण एव राधा के नेत्र सहसा लड गए। नेत्रो का लडना हुआ कि दोनो के मन मे कामदेव ने अपने पचबाण का भरपूर निशाना लगा दिया। दोनो ने परस्पर एक-दूसरे के मुख-सौन्दर्य को देखा तो आनन्द से विमुग्ध हो गये। दोनो ही यह भूल गये कि हम डगर पर जा रहे है, कोई इस प्रकार से देख लेगा तो क्या कहेगा, कलक लग जायगा। ठीक ही तो है जो नया और चोरी के कार्य मे अनिपुण चोर होता है वह उचित-अनुचित समय की बात नही जानता। आशय यह है कि राधा और कृष्ण दोनो ही काम-भाव-प्रदर्शन के गोपन एव रहस्यमय ढग को नही समझते, अतः डगर पर ही एक दूसरे को रस-विमुग्ध दशा मे निहारने लगे। भला कोई देख लेता तो क्या कहता! किन्तु नही, साथ की सखी काम-रस-क्रीडा की भली जानकारी रखने वाली थी—वह सभी रसो मे मर्मज्ञ थी अत उसने राधा-कृष्ण को तिरछी चितवन से सतर्क-सावधान कर दिया कि वे नेत्र-मिलन मे इतने विसुध न हो जाय ताकि लोकापवाद लग जाये। अतः राधा और कृष्ण दोनो राज-पथ को ध्यान मे रखकर चलने लगे या राज-पथ से अपने नेत्र उलझाकर रास्ता तै करने लगे। कवि-शेखर विद्यापति कहते हैं कि वे दोनो भी बडे चतुर हैं जो उस रस-मर्मज्ञा चतुर सखी की सीख को केवल उसके इशारे से ही समझ गये और तदनुरूप चलने लगे—चतुर उसे ही तो कहते हैं जो इशारे मे बात समझ

जाय जैसे कि राधा और कृष्ण समझ गए थे।

विशेष—प्रस्तुत पद मे काम-सम्बन्धी नैसर्गिक आकर्षण को बडी चतुराई से राजपथ के वातावरण मे प्रदर्शित किया गया है। फिर 'अचतुर चोर' द्वारा दो भोले प्रेमियो की दशा का बडा स्वाभाविक चित्रण किया गया है। पथ पर चलते हुए चतुर प्रेमी-प्रेमिकाएँ तो अपनी चेष्टाएँ किसी को भी नही जानने देते किन्तु राधा-कृष्ण जैसे भोले-भाले प्राय लोकापवाद के चक्कर मे आ जाते है क्योकि वे पारस्परिक आकर्षण मे इतने विमुग्ध हो जाते है कि उन्हे किसी भी बात का होश नही रहता। "दुहु मुख हेरइत दुहु भेल भोर" उक्ति मे यही भाव बडी ही सरलता एव स्वाभाविकता से व्यजित किया गया है। इधर "बिदगधि सगिनी·· " उक्ति मे रीतिकालीन सुचतुरा विदग्ध नायिका का चरित्र-चित्रण बडा यथार्थ प्रकट हुआ है। बिहारी, देव आदि रीतिकालीन कवियो की दुष्ट नायिकाओ की चेष्टाएँ बडी आकर्षक एव चतुराई मिश्रित होती थी, यहा विद्यापति ने ऐसी ही नायिका लाकर खडी की है जो एक ही सकेत से भोले-भाले प्रेमी-प्रेमिका—राधा और कृष्ण—को सजग कर देती है कि वे अपने आकर्षण को राह पर न बनाए, कोई देख लेगा तो कलक एव अपवाद बन जायगा। अन्त की "दुहु चतुराई" उक्ति मे और भी मजा यह है कि प्राय प्रेमी-प्रेमिकाओ के आकर्षण को जरा-सी बात के घात से ताश के महल की तरह तोडा जा सकता है और यही बात राधा और श्रीकृष्ण के आकर्षण की हुई कि उस नायिका के जरा से सकेत पर राह ठिकाने से चलने लगे। इस प्रकार पद मे एक ओर शृ गार-रस का प्रकाशन सुन्दर हो सका है तो वाक्-चमत्कार भी अन्त की पक्तियो मे खब है। आकर्षण-वर्णन राधा-कृष्ण का नही नायक-नायिका का प्रधान समझना चाहिये।

शब्दार्थ—पथ-गति=राह जाते हुए। नयन मिलल=आखे मिलना या लडना। राधा कान—राधा और कृष्ण या नायक-नायिका। दुहु=दोनो। मनसिज=कामदेव। पूरल=पूरी तरह, भरपूर। सधान=तीर का निशाना। मुख हेरइत=मुख को देखना, राधा-कृष्ण परस्पर मुख-सौन्दर्य को देखने मे लीन थे। भेल भोर=रस निमग्न हो गए, बेसुध हो गये। बूझय=जानना, समझना। अचतुर चोर=वह चोर जो चोरी के काम मे कच्चा हो, यहा जैसे प्रेमाकर्षण के विषय मे राधा और कृष्ण अनिपुण दिखलाए गये है। समय न बूझय=समय-असमय को न देखना-जानना। बिदगधि=विदग्ध नायिका, रसाकर्षण के मामले मे चतुर नायिका। जान=जानती थी। सगिनी=सखी। कएलह्नि—किया। समधान=सतर्क या सावधान। चलल=चलते है। राज-पथ=आम रास्ता। उरझाई=दृष्टि बाधकर या आम रास्ते पर नजर झुकाकर राधा-कृष्ण चलने लगे, एक दूसरे के मुख को देखना बद कर दिया। कबि-सेखर=कविवर विद्यापति का एक सम्मानित नाम यह भी था। चतुराई=चतुर हैं।

(२८)

सजनी, भल कए पेखल न भेल।
मेघ-माल सयँ तडित-लता जनि
हिरदय सेल दई गेल।
आध आँचर खसि, आध बदन हसि
आधहि नयन - तरंग।
आध उरज हेरि, आध आँचर भरि
तब धरि दगधे अनग।
एके तनु गोरा कनक कटोरा
अतनु कोचला उपाम।
हार हारल मन जनि बूझि ऐसन
फाँस पसारल काम।
दसन मुकुता पाति अधर मिलायल
मृदु-मृदु कहतहि भासा।
बिद्यापति कह अतए से दुख रह
हेरि-हेरि न पुरल आसा।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति अति सुन्दरी के नख-शिख स्थूल शृगार का अत्यत चमत्कारिक वर्णन करते हुए लिखते हैं—

अरी सुन्दरी, तेरी सखी का भली प्रकार से मुझे दर्शन भी न हो सका कि वह भाग गई। वह तो इस प्रकार से मुझे दिखी और फिर भागकर लुप्त हो गई कि जैसे बादलो की माल मे चचला की रेखा चमककर छिप जाती है और मानो इस प्रकार से वह मेरे हृदय मे भाले की चोट कर गई। आह, कैसी निराली बात घटी कि उसका आचल भी आधा खिसक पाया, हासयुक्त उसका मुख भी आधा ही दीख पाया और उसके नेत्रो का कटाक्ष भी आधा ही हो सका। मैंने उसके कुच को भी आधा ही देखा कि हाय उसने तभी अपने आधे कुच को आचल से ढक लिया और तब इस उपेक्षा-स्थिति मे कामदेव ने मुझे जला डाला। आशय यह है कि उस सुन्दरी के अपूर्ण रूप-दर्शन ने मेरे अदर काम की ज्वाला जला दी, मैं काम-प्रताडित हो गया। मनोवैज्ञानिक बात यह है कि अपूर्ण काम-भोग की भावना से कुण्ठा पैदा होती है और उससे तन-मन जलने लगता है, यही विद्यापति के कहने का आशय है।

आगे कविवर विद्यापति कहते है कि एक तो उस सुन्दरी का शरीर गोरा फिर उसपर जडे स्वर्ण कटोरो के जैसे आकार के उसके गोल कुच ! अरे यह तो उसे काम-देव का दिया गया बडा उपहार ही है। उसके हार मे मेरा मन इस प्रकार से उलझ या हार गया कि प्रतीत हुआ मानो कामदेव ने स्वय ही रसिको को फसाने के लिए

उसकी छाती पर वह हार रूपी जाल या फंदा बिछा रक्खा है। वह अपनी मोतियो तुल्य दतावली को अधर से मिलाकर मीठे-मीठे बोलो से बातचीत करती है। आशय यह है कि मुस्कराते हुए बात करके मन को मोहती है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि इतना-सा दु ख ही उसे क्षणभर देखकर शेष रह गया कि मैं उसकी ओर पुन -पुन देखकर भी उसे देखने की तृप्ति की आशा पूरी न कर सका—मैं उसके रूप-सौन्दर्यपान से अतृप्त ही रह गया, यही दु ख बना रहा।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शृगार-रस की उत्कृष्ट अभिव्यजना हुई है। काम-भोग की अपूर्ण अतृप्त भावना की कुण्ठा चैन नही लेने देती, यह काम-शास्त्रियो का मत है। यहाँ उसी की काव्यात्मक अभिव्यजना बडी सफलतापूर्वक कविवर विद्यापति ने की है। "विद्यापति कह अतए से दुख रह, हेरि-हेरि न पुरल आसा।" उक्ति प्रणय रूप वासना की अमर अभिव्यजना है। कलापक्ष की दृष्टि से प्रस्तुत पद मे अत्यन्त सौन्दर्य अभिव्यजित है। सुन्दरी के दर्शन की उपमा मेघमाल मे चमकती चचला की रेखा से की गई है जो पूर्णत सगत है। इसके आगे कुच, मुख आदि के अर्ध-सौन्दर्य-दर्शन की छटा बडे सुन्दर एव प्रभावशाली ढग से प्रकट की गई है। कामिनी के अर्धनग्न कामोत्तेजक अगो को देखकर काम-भावना का अतिरेक होने लगता है और तभी वह अपने निठुर अगो को आचल से ढक लेती है तो तन-मन पर क्या बीतती है, वह अकथनीय है। बस ऐसा प्रतीत होता है मानो तन मे आग लगा दी हो—"तब धरि दगधे अनग" उक्ति मे इस भाव की सार्थकता है। सुन्दरी के गोरे शरीर पर सोने के कटोरे के सदृश उरोज कितने सुन्दर प्रतीत होते है, इसे कोई सहृदय रसिक ही जानता है—"एक तनु गोरा कनक कटोरा" उक्ति मे 'गोरा' के बाद 'कटोरा' शब्द की टेक एक स्वाभाविक लय मे रसिक को झुला देती है। सुन्दरी की छाती पर झलमलाते हार की उपमा कामदेव के फदे से सर्वथा ठीक दी गई है। सुन्दरी की वार्त्ता के मीठा होने का कारण है उसकी मुक्तामाल जैसी दतावली का अरुण अधरो से स्पर्श होता हुआ दीख पडना—"दसन मुकुता पाति अधर मिलायल, मृदु मृदु कहतहि भासा।" इस प्रकार कला एव भाव पक्ष की दृष्टि से इस पद मे शृगार का पूर्ण रस निचोड दिया गया है। कला की उन्मुक्त चित्रवत् अभिव्यजना का यह पद एक आदर्श पद कहा जा सकता है।

शब्दार्थ=सजनी—सखी। भल कए=भली प्रकार से। पेखल न भेल=दर्शन भी न हो सका। सयँ=सग मे। तडित—बिजली। जनि=मानो। हिरदय=हृदय। सेल=माला। आध=आधा। आचल=अचल। खसि=खिसका। बदन=मुख। नयन-तरग=नेत्र की कटाक्ष। उरज=कुच। हेरि=देखना। झरि=ढक लेना। धरि दगधे=धरकर जलाया। अनग=कामदेव। एके=एक तो। तनु=शरीर। कनक कटोरा=सोने का कटोरा, कुच का उपमान है। अतनु=बिना शरीर वाला, कामदेव। कोचला=बडा बलपूर्वक। उपाम=उपहार। हारल=उलझकर हार

गया। फाँस=फंदा। काम=कामदेव। दसन=दाँत। मुकुता=मोती। पसारल=फैलाना। पाति=पंक्ति। मिलायल=मिलाकर। कहतहि=कहती है। भासा=बात, भाषा। अतए से=इतना ही। हेरि-हेरि=देख-देखकर। पुरल=पूरी, तृप्त।

(२६)

ससन-परस खसु अम्बर रे
देखल धनि देह।
नव जलधर-तर सचर रे
जनि बिजुरी-रेह।
आज देखल धनि जाइत रे
मोहि उपजल रग।
कनक-लता जनि सचर रे
महि निर अवलब।
ता पुन अपरुब देखल रे
कुच-जुग अरबिंद।
विगसित नहि किछु कारन रे
सोभा मुख चद।
बिद्यापति कवि गाओल रे
रस बूझ रस मन्त।
देवसिंह नृप नागर रे
हासिनि देइ कन्त।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति एक सुन्दरी के अपूर्व रूप, वर्ण और अग की सालकारिक व्यजना करते हुए लिखते है—

चचल समीर के स्पर्श से उस सुन्दरी बाला का अचलपट खिसका और मैंने उसके अग-उरोजो की सुन्दरता को देखा। उस दशा मे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो नव बादलो के बीच से विद्युत-रेखा चल-चमक रही हो। आशय यह है कि उस बाला के शरीर का वस्त्रवर्ण नए असाढ़ के बादलो के समान नीला झीना था और उसके भीतर से उसके गौर शरीर की छटा विद्युत रेखा-सी आभासित हो रही थी। ऐसी सुन्दर बाला को आज जब मैंने जाते हुए देखा तो उसे देखकर, तभी से, मेरे उर मे प्रेम का रग पैदा हो गया और मैं उसकी सुन्दरता पर आकर्षित हो गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो स्वर्णलता निराधार ही पृथ्वी पर चली जा रही हो। आशय यह है कि वह बाला चलती-फिरती पथ पर एक सजीव स्वर्णलता थी। तिसपर भी फिर एक और वैचित्र्य यह देखा कि उसके दोनो उरोज अनखिले कमल जैसे थे जो किसी कारण से विकसित नही हुए थे और वह कारण यह था कि उनके सामने या ऊपर उस बाला का सुन्दर मुखरूपी चन्द्रमा

जो उदय था] तो फिर भला मुख-चन्द्र की उपस्थिति मे कुच-कमल कैसे विकसित हो सकते थे। (कहा जाता है कि कमल चन्द्रमा के आगे नही खिलता, सूर्य के आगमन पर ही खिलता है।) अत कवि विद्यापति गाते हैं कि ऐसी सुन्दर बाला के रूप-सौन्दर्य के रस-रहस्य को कोई रसिक सुजान रसवेत्ता ही जान सकता है। इसके लिये हासिनी देवी के स्वामी राजा देवसिंह ही रस मर्मज्ञ हैं, वही इस रस-रहस्य को भली भाँति जान सकते हैं।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सम्भोग शृगार का वर्णन प्रधान है। हवा मे लहराते अचल-पट के खिसक जाने से सुन्दरी की तनु-शोभा बडी लुभावनी प्रदर्शित होती है। "ससन परस खसु अम्बर रे" उक्ति इस प्रदर्शन का एक सजीव चित्र आखो मे चित्रित कर देती है। अचल-पट को 'नव जलधर' एव तरुणी के शरीर की छटा को 'बिजुरी-रह' की उपमा उत्प्रेक्षा बडी सगत बन पडी है। 'मोहि उपजल रग' उक्ति की सार्थकता के लिये विभाव पक्ष का चित्रण हृदयग्राही किया गया है।

एक बारीक कल्पना और की गई है—"कुच-जुग अरबिद, बिगसित नहि किछु कारन रे। सोझा मुख चद।" बाला के कुच कमल जैसे आभासित होते है किन्तु वह नीले झीने परिधान बीच मे हैं अत अविकसित-से प्रतीत होते है और उसके कारण की कल्पना है—"सोझा मुख चद"—भला कमल चद्रमा को देखकर कैसे विकसित हो? इस प्रकार रूप सौन्दर्य के चित्रण मे कविवर विद्यापति ने यद्यपि उपमानो की नवीनता कम ही प्रयोग की है किन्तु उनके आधार पर नवीन सजीव कल्पना की अभिव्यजना बडी यथासगत की है। यही उनके शृ गारी काव्य की विशेषता कही जायगी।

शब्दार्थ—ससन=समीर। परस=स्पर्श, छूना। खसु=खिसकना। अम्बर=अचल-पट। धनि=बाला। नव जलधर=नए बादल, असाढ के पहले बादल। तर=भीतर। जनि—मानो। सचर=सचारित, चलना। रेह=रेखा। देखल=देखी। जाइत=जाती हुई। मोहि=मुझमे। उपजल=पैदा हुआ। रग=प्रेम का भाव। कनक-लता=स्वर्ण वल्लरी। महि=पृथ्वी। निर=बिना। अवलब=आधार। ता पुन=फिर उसपर। अपुरुब=अपूर्व। जुग=दो। अरबिद=कमल। बिगसित=खिले हुए। किछु=कुछ। कारन=कारण। सोझा=समक्ष। गाओल=गाता है। बूझ=मर्मज्ञ। रस मन्त=रसिक जन। नृप=राजा। नागर=चतुर। कन्त=स्वामी, पति।

(३०)

अलखित हम हेरि बिहुसलि थोर।
जनि रयनि भेल चाँद इँजोर।
कुटलि कटाख लाट पडि गेल।
मधुकर डम्बर अम्बर लेल।

काहिक सुन्दरि के ताहि जान।
आकुल कए गेल हमर परान।
लीला कमल भमर धरु बारि।
चमकि चललि गोरि चकित निहारि।
तें भेल बेकत पयोधर सोभ।
कनक कमल हेरि काहि न लोभ।
आध नुकाएल आध उदास।
कुच कुंभे कहि गेल अप्पन आस।
से अब अमिल निधि दए गेल सँदेस।
किछु नहि रखलन्हि रस-परिसेस।
भनइ विद्यापति दुहु मन जागु।
बिसम कुसुम-सर काहु जनु लागु।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे नायिका के रूपाकर्षण की अत्यत कलापरक अभिव्यजना करते हुए कविवर विद्यापति लिखते हैं—

हमने उस सुन्दरी बाला को छिपकर देखा कि वह थोडा-सा मुस्करा उठी। उसकी मुख-मुस्कान उसके कुन्तलो की छाया मे ऐसी प्रतीत हुई मानो रात मे चन्द्रिका का उजाला फैल गया हो। उसकी तिरछी भौहे उसके ललाट पर तन गईं तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो भौरो ने आकाश पर छत्र का रूप धारण करके उसे आच्छादित कर लिया हो। आशय यह है, उस बाला की कटाक्षमयी भाव-भगिमा ललाट रूपी आकाश पर बिखरकर अति शोभायमान लगने लगी। वह ऐसी सुन्दरी बाला किसकी है और कौन उसे जानता है ? अरे, वह तो हमारे प्राणो को अपने रूपाकर्षण से विकल बना गई है। वह अपने हाथ के क्रीडा कमल के द्वारा अपने कौतुक से भवरो को दूर हटाती प्रतीत हुई। आशय यह है कि वह बाला तो बडी चतुर प्रतीत हुई कि जिस कमल पर भँवर आकर्षित होता है उसी के द्वारा वह उसे हटाने मे सफल हुई। स्पष्ट बात यह कही जायगी कि वह बाला अपने कमल जैसे करतल से भँवर जैसे रसिको को, सकेत या किसी अन्य प्रकार से, दूर करने मे सफल हुई, यह बडे अचम्भे की बात ही तो हुई ! आगे कविवर विद्यापति कहते हैं कि वह बाला हमे चकित दृष्टि से निहारती चौक चमककर चलती बनी। इस चेष्टा से उसके शोभामय कुच प्रकट हो रहे थे क्योकि उसके चमक-चटक कर चलने से उसका आचल खिसक-खिसक जाता था और सुहावने कुच दिखलाई पड़ने लगते थे। इस प्रकार, स्वर्ण कलश सदृश सुन्दरी के कुचो को देखकर किसे काम-लोभ का अनुभव भला न होगा ? आशय यह है कि सभी उसपर आकर्षित होगे। उस बाला के वे अधखुले और अधढके कुच रूपी घडे अपनी वासना की भावना कह गए। आशय यह है कि उस कामिनी के उरोजो की रोमाचित दशा को देखकर यह साफ प्रकट

होता था कि वह भी मिलन-सभोग की पूर्णत इच्छुक थी, तत्पर थी। हाय वह रूप-निधि जो अब मुझे कभी न मिलेगी, अपने मिलन का सदेश चुपचाप दे गई है, पर उससे क्या लाभ ? आशय यह है कि यद्यपि उस बाला की भाव-भगिमा से यह प्रकट तो हुआ कि वह भी मिलन-आलिगन की इच्छुक है अत मिलना चाहती है पर यह कैसे सम्भव होगा कि वह किसी विशेष स्थान पर मिले ही—

"तुमने बहारो की सदाओ से इशारा तो किया,
अहदे वफा का कोई गुल मगर खिल न सका।"

—(लेखक की रुबाई से)

आगे कविवर विद्यापति कहते है कि उससे क्षणिक मिलने के पश्चात् यो बिछड जाने से मुझमे तनिक भी रस अवशेष नही रहा। यद्यपि मेरा और उस बाला का अर्थात् हम दोनो का मन काम-शृ गारिक भावना के उन्माद से जगा हुआ है पर उससे क्या लाभ है ? जब तक कि एक दूसरे से भरपूर मिलनालिगन न हो जाय ! ऐसी दशा बडी असह्य होती है। हे राम, कामदेव के विषैले तीर किसी के उर को भी न लगे। यहा आशय यह है कि यद्यपि नायक नायिका दोनो के ही उर मे काम भावना का सचार हो गया है, पचवाणो से दिल घायल हो चुका है, वासना की ज्वाला भडक उठी है किन्तु दोनो का मिलनालिंगन सभव न हो सका। अत बडी पीडाजनक दशा आ पडी है। भगवान ऐसी दशा किसीको भी न लाए !

विशेष—प्रस्तुत पद मे शृ गार के शब्द-चित्र बडे मोहक उतारे गए है। उसकी रूप छटा ऐसी है मानो रात मे चादनी छिटकी हो —

"जनि रयनि भेल चाँद इँजोर।"

इसके साथ ही उसकी चाल चचल है और रह-रहकर उसका आचल खिसक जाने से उसके कुचो का सौन्दर्य व्यक्त होकर मिलनालिगन का निमन्त्रण देता है—

"चमकि चलति गोरि चकित निहारि।
तें भेल बेकत पयोधर सोभ।"

"कनक कमल हेरि काहि न लोभ" उक्ति मे नारी के रूपाकर्षण और सभोगयान की स्वाभाविक वृत्ति का प्रकाशन किया गया है। सुन्दर कुचो को देखकर भला किसमे वासना की प्यास नही जागेगी ? यो प्रत्येक पक्ति मे कलापक्ष का सौन्दर्य निखरकर आया है। दूसरी पक्ति मे उत्प्रेक्षा एव "कुच कुँभ" मे उपमा अलकारो की छटा दर्शनीय है। विदग्धा नायिका के रूप एव चेष्टाओ का चित्रण इस पद मे प्रधानतः हुआ है। "आकुल कए गेल हमर परान" उक्ति मे जीवन की उद्दाप पिपासा का स्वर मुखरित है। वस्तुत भाव एव कलापक्ष का ऐसा सयोग सस्कृत के शृ गारी कवियो तक मे कम देखने को मिलता है।

शब्दार्थ—अलखित=छिपकर। हेरि=देखना। बिहुसलि=हसना। थोर=कुछ, थोडा। जनि=मानो। रयनि=रात। भेल=हुआ। इँजोर=उजाला। कुटिल

कटाख=तिरछा कटाक्ष। लाट=ललाट। गेल=गई। मधुकर=भौरा। डम्बर=छत्र। अम्बर=आकाश। काहिक=किसकी। ताहि जान=उसे जानता है। कए=कर हमर=हमारे। परान=प्राण। लीला=क्रीडा। धरु बारि=हटाना, दूर करना। चललि=चलती है। गोरि=सुन्दरी बाला। चकित निहारि=चौकती निहारती। ते=इससे। बेकत=प्रकट। नुकाएल=गोपन, छिपा हुआ। उदास=प्रकट। कुम्भ घडा। पयोधर=कुच। सोभ=शोभा। कनक कमल=सोने का कमल, कुच का उपमान है। काहि=किसे। आध=आधा। कहि गेल=कह गया। अप्पन=अपनी। आस=अभिलाषा, कामवासना की भावना या बात। अमिल=न मिलने वाली, दुर्लभ। निधि=सम्पत्ति, यहा सुन्दरी के लिये प्रयुक्त है। रखलन्हि=रक्खा। परिसेस=अवशेष। भनइ=कहते हैं। बिसम=कठोर। कुसुम सर=कामदेव के बाण।

(३१)

अम्बर बिघटु अकामिक कामिनि
कर कुच झांपु सुछन्दा।
कनक-सम्भु सम अनुपम सुन्दर
दुइ पकज दस चन्दा।
कत रूप कहब बुझाई।
मन मोर चचल लोचन बिकल भेल
ओ नहि अनइत जाई।
आड बदन कए मधुर हास दए
सुन्दरि रहु सिर नाई।
अओधा कमल कान्ति नहि पूरए
हेरइत जुग बहि जाई।
भनइ बिद्यापति सुनु बर जौबति
पुहवी नव पँच बाने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति नायिका के रूप-शृगार का उन्मुक्त वर्णन प्रस्तुत करते हुए लिखते है—

अकस्मात् उस सुन्दरी बाला का अचल-पट उघर गया और उसने लाजवश झट से अपने सुन्दर कुचो को दोनो हाथो से ढक लिया। उस समय उसकी रूप शोभा दर्शनीय थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे सोने के कुच रूपी शिव शकर पर सुन्दर-से दो कर रूपी कमल एव दश नख रूपी चन्द्रमा शोभायमान हो। आशय यह है कि उस बाला के उभरे उरोज स्वर्ण शिव शकर है, लाज के कारण नगे उरोजो पर धरे उसके हाथ कमल

जैसे सुन्दर हैं और दश अगुलियो के समुज्ज्वल नख प्रतीत हुए मानो दस चन्द्रमा आभासित हो। यहा उपमा ऐसेउत्प्रेक्षा का प्रयोग बडा सगत है जिससे शृगार का भाव-सौन्दर्य भी चमक उठा है। कविवर विद्यापति कहते है कि उस बाला मे कितनी अपार रूपराशि थी, कैसे कहकर बताऊ ? उसे देखकर मेरा चित्त चलायमान हो गया और मेरे नेत्र विकल हो गए। अब तो मेरा कथित मन कही अन्यत्र नही जाता, केवल उसी बाला के रूप-सौन्दर्य पर लुट गया है। अचल-पट की आड मे मुख छिपाकर वह सुन्दरी मुस्कराती रही और सिर भुकाए रही है। आशय यह है कि वह इस प्रकार सिर भुकाए-भुकाए आचल मे हस-हसकर मुझे जलाती रही किन्तु सिर न उठाया कि मैं उसे देखकर कुछ तृप्ति पा सकता। उसकी भुकी-झुकी, मुस्कराती लाज-रक्तिम मुखकाति की समता उलटे हुए कमल की काति शोभा भी नही कर सकती। उस बाला का रूप तो इतना व्यापक एव अपार है कि उसे निहारते-निहारते ही युग व्यतीत हो जाय किन्तु फिर भी उसकी रूपसुधा के पान से मन परितृप्त न हो। (यहाँ उल्टे कमल की काति को भी उस बाला की मुखकाति के समान नही बताया गया है—यह कल्पना-तुलना इसलिए की गई है कि उल्टे कमल को देखने पर सम्भवत उसमे अधिक स्निग्धता एव कोमलता-काति का आभास होता है, किन्तु वह भी उस बाला की मुख काति के आगे कुछ नही है, यही भाव प्रधान है।) इस प्रकार कविवर विद्यापति कहते हैं कि अनिद्य सुन्दरी ! सुनो—तुम्हीं इस नवल धरा पर पचबाण चलाने वाली रूपवती हो। इस प्रकार की रूपवती रानी लखिमादेवी से रूप सम्राट् राजाशिवगिह रमण करते हैं।

विशेष—प्रस्तुत पद की प्रथम दो पक्तियो—"अम्बर बिघटु अकामिक कामिनि, कर कुच झाँपु सुछन्दा।" —मे सुन्दरी की स्वाभामिक चेष्टा को व्यक्त किया गया है कि सहसा अचल-पट के खिसक जाने पर वह अपने सुन्दर हाथो से ही कुचो को ढकती है पर वे ज़िद्दी कुच रसिको को दीख ही पडते है और फिर उनके आकार का शब्द चित्र खीचने मे विद्यापति ने कला कल्पना की बारीकी की चोटी छू ली है। "कनक-सम्भु सम अनुपम सुन्दर, दुइ पकज दस चन्दा" इस उक्ति मे बाला के उभरे उरोजो की स्वर्ण शकर से, उरोजो को ढकते हाथो की दो कमलो से एव चमकते हुए उनके नखो की दस चन्द्रमाओ से उपमा दी गई है जो इतनी सगत, सुडौल एव सहजात है कि शृगारी भाव से पूरित रसिकमन भाव विभोर हो उठता है। "आड बदन कए मधुर हास दए" उक्ति मे हावो की बडी सुन्दर अभिव्यजना है। इस प्रकार की किसी महान सुन्दरी के रूपाकर्षण मे लीन होकर उसे निहारते-निहारते युग बीत जाय तो भी पता न चले, यह बात बडी स्वाभाविकता से कह दी गई है कि "हेरइत जुग बहि जाई।" अन्त मे उस सुन्दरी को इस नवीन धरा की कामबाण चलानेवाली कहकर विद्यापति ने उसे जो उच्च पद प्रदान किया है उसे अनुभव करके रसिको के हृदय मे शृगार-रस के सागर मे ज्वार आये बिना शायद न रहे।

शब्दार्थ—अम्बर=अचल-पट। बिघटु=खिसक जाना, हट जाना। अकामिक =अकस्मात्। सुछन्दा=सुन्दर। झाँपु—ढक लिया। कनक-सम्भु=सोने के शकरजी, यहा कुचो से अभिप्राय है। समु=समान। दुइ—दो। पकज=कमल, यहा करो के उपमान रूप मे है। दस चन्दा=दस नख रूपी चन्द्रमा। कत=कितना। कहब= कह। भेल=हुए। अनइत=अन्यत्र। आड=ओट, परदे मे। अओधा=उलटा हुआ। सिर नाई=सिर झुकाकर। रहु=रही। बदन=मुख। कान्ति=शोभा। पूरए=पूर्ण होना, समान होने से मतलब है। हेरइत=देखकर। जुग=युग। बहि जाई=व्यतीत हो जाते है। बर जौबति =महान सुन्दरी। पुहबी—पृथ्वी। पचबाने=कामदेव के तीर। रमाने=रमण करते हैं।

(३२)

गेलि कामिनि गजहु गामिनि
बिहँसि पलटि निहारि।
इन्द्रजालक कुसुम-सायक
कुहुकि भेल बर नारि।
जोरि भुज जुग मोरि बेढ़ल
ततहि बदन सुछन्द।
दाम चम्पक काम पूजल
जइसे सारदा चद।
उरहि अचल झापि चचल
आध पयोधर हेरु।
पौन पराभव सरद घन जनि
बेकत कएल सुमेरु।
पुनहि दरसन जीब जुडाएब
टुटत बिरह क ओर।
चरण जाबक हृदय पावक
दहइ सब अँग मोर।
भन बिद्यापति सुनह जदुपति
चित्त थिर नहि होय।
से जे रमनि परम गुनमनि
पुनु कए मिलब तोय।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति सुन्दरी की चाल-ढाल, भाव-भगियो एव आगिक चेष्टाओ का शृ गार वर्णन करते हुए लिखते है—

अरे, वह गजगामिनी जैसी मस्त चाल से चलने वाली सुन्दरी चली गई।

उसने एक बार पीछे मुडकर मुझे देखा था और बस हसकर चल दी। वह सुन्दर स्त्री तो वशीकरण चलाने वाली कामदेव की छलना सिद्ध हुई। उसने एक बार अपनी दोनो भुजाओ को जोडकर फिर वही तत्पश्चात् अपने सुन्दर मुख को मोडकर मुझसे छिपा लिया और वह दृश्य तब ऐसा लगा मानो कामदेव ने चम्पे की माला से शरद-चन्द्र की पूजा की है। आशय यह है कि जिस समय उस सुन्दरी ने अपनी दो-दो भुजाओ रूपी माला को अपने शरद-चन्द्र रूपी मुख पर रक्खा तो लगा कि कामदेव ने चम्पा की माला से शरद-चन्द्र की पूजा की है। फिर वह चचला जैसी चचल बाला अपने वक्षस्थल पर अचल ढकते हुए अपने आधे ढँके उरोजो को देखती है। उस समय उसका वह देखना ऐसा प्रतीत होता है मानो पवन से युद्धरत होकर शरत् काल के मेघो ने पराजय मान ली है और सुमेरु पर्वत दर्शायमान होने लगा है। यहा आशय यह है कि जिस प्रकार पवन के झोके से मेघ हट जाते है और सुमेरु पर्वत दीखने लगता है इसी प्रकार उस बाला का शरतकालीन स्वच्छ बादल रूपी आचल तो उडा जाता है और उसका कुचोसे युक्त उत्तुग वक्ष सुमेरु पवत-सा दीख पडता है। जब पुन मुझे उसके दर्शन होगे तभी मेरे जलते प्राण शीतल होगे और विरह की सीमा टूटेगी। उसके चरणो का महावर मेरे उर मे आग सुलगा रहा है और उससे मेरे सब अग जले जा रहे है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे श्रीकृष्ण ! तुम सुनो कि तब तक आपका चचल चित्त शात नही होगा जब तक कि वह सुन्दरी, गुणवती और सौभाग्यशालिनी रमणी तुम्हे नही मिल जाती।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सुन्दर रमणी का स्थूल शृगार बडे कलात्मक ढग से व्यजित है। विद्यापति कवि की सबसे अन्यतम विशेषता यह रही है कि उन्होने कम शब्दो पदो के द्वारा नए भावो एव नवीन कल्पनाओ के सश्लिष्ट शब्द-चित्र उतार दिये हैं। इस दृष्टि से सम्भवत बिहारी को छोडकर और किसी कवि को विद्यापति की तुलना मे नही रक्खा जा सकता। किन्तु बिहारी मे अतिशयोक्ति का आग्रह अधिक है जबकि विद्यापति मे हावो की स्वाभाविक व्यजना का सजीव सौन्दर्य साकार हुआ है। "बिहँसि पलटि निहारि" एव "उरहि अचल झापि चचल, आध पयोधर हेरु" उक्तियो मे हावो एव अनुभावो की स्वाभाविक अभिव्यजना है, ऐसा हम यथार्थ रूपाकर्षण के क्षेत्र मे अनुभव करते हैं, रस लेते है। इस दृष्टि से विद्यापति को यथेष्ट कलात्मक सफलता मिली है। तदनतर बिहारी की काल्पनिक उडान भी ऊँची थी किन्तु उसका आधार एव लौट पृथ्वी की ओर ही रही। इसलिये उनकी कल्पना मे मौलिकता पूर्ण है, भले ही उनके उपमान परम्परित हो। इस पद मे "उरहि अचल झापि चचल" से लेकर "बेकत कएल सुमेरु" तक की कल्पना कितनी ऊँची है यह भावार्थ से स्पष्ट है ही किन्तु फिर उसकी लौट मानवीय मन-प्राण एव नेत्र की सीमा मे ही है— 'पुनहि दरसन जीब जुडायब" लिखकर विद्यापति ने ऊँची कल्पना का पर्यवसान जीवन-यौवन के रूप के हेतु किया है। यही गुण उनके काव्य को हृदयग्राही बनाए हुए है। रीतिकालीन काव्य मे जैसी

ऊहात्मकता लक्षित होती है वसी ही कही-कही विद्यापति मे भी आ गई है—"चरण जावक हृदय पावक" आदि उक्तियो मे, पर यह आवश्यकता से अधिक नही वरन् कही-कही और वह भी स्वाभाविक वियोग की अत्यन्त दारुण स्थिति को प्रकट करने के प्रयोजन से ही।

शब्दार्थ—गेलि=चली गई। कामिनि=सुन्दरी। गजहु गामिनि=गजगामिनी। बिहँसि=हसकर। पलटि=पलटकर, पीछे मुडकर। निहारि=देखकर। इन्द्रजालक=वशीकरण वाला। कुसुम-सायक=कामदेव। कुहुकि=छलना। भेल=हुई। बर नारी—सुन्दर स्त्री। जोरि भुज=हाथ जोडकर। जुग=दोनो। मोरि बेढल=मोडकर घेर लिया, छिपा लिया। ततहि—वही। बदन—मुख। मुछन्द—सुन्दर। दाम चम्पक=चम्पा की माला। काम=कामदेव। पूजल=पूजता है। सारदा चद=शरत निशा का चन्द्रमा, शरत् चन्द्र। झापि—ढककर। पयोधर—कुच। हेरु—देखकर। पौन=वायु। पराभव=पराजित होकर। सरद घन=शारदिया बादल। जनि=मानो। बेकत=व्यक्त, प्रकट। कएल=किये। मुमेरु=सुमेरु पर्वत, यहा कुचो से तात्पर्य है। जीब जुडाएब=प्राण शीतल होगे। टुटत=टूटेगी। ओर=सीमा। जाबक=महावर। पावक=ज्वाला। दहइ=जलना। मोर=मेरे। भन=कहते है। जदुपति=श्रीकृष्ण। थिर=स्थिर। से=वह। जे=जब तक। रमनि=रमणी। परम गुनमनि पुनु=आशय है कि वह सुन्दरी गुणवती और सौभाग्यशालिनी है। मिलब=मिलन। ताय=तुम्हे।

(३३)

सहजहि आनन सुदर रे, भौह सुरेखलि आँखि।
पकज मधु पिबि मधुकर रे, उडए पसारल पाँखि।
ततहि धाओल दुहु लोचन रे, जतहि गेल बर नारि।
आशा-लुबुधल न तजए रे, कृपन क पाछु भिखारि।
इगित नयन तरगित रे, बाम भौह भेल भग।
तखन न जानल तेसर रे, गुपुत मनोभव रग।
चन्दन चरचु पयोधर रे, ग्रिम गज मुकुताहार।
भसम भरल जनि सकर रे, सिर सुरसरि जलधार।
बाम चरन अगुसारल रे, दाहिन तेजइत लाज।
तखन मदन सर पूरल रे, गति गजए गजराज।
आज जाइत पथ देखलि रे, रूप रहल मन लागि।
तेहि खन सयँ गुन-गौरव रे, धैरज गेल भागि।
रूप लागि मन धाओल रे, कुच कचन गिरि साँधि।
ते अपराधे मनोभव रे, ततहि धएल जनि बाँधि।
बिद्यापति कबि गाओल रे, रस बुझ रसमत।
रूपनरायन नागर रे, लखिमा देइ कत।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे रतिमूर्त्ति विमुग्धा की चेष्टाओ एव उसके स्थूल सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कविवर विद्यापति लिखते हैं—

पहले तो उस सुन्दरी का मुख नैसर्गिक रूप मे सुन्दर था फिर उसकी आँखो को भौंहो ने रेखायुक्त होकर और भी सुन्दर ढग से चित्रित कर दिया था जिससे उसकी आँखो का सौन्दर्य बडा प्रभावशाली बन गया था। उन भौह रेखायुक्त आँखो को देखकर उसकी आँखो का रूप ऐसा भला प्रतीत होता था मानो भौरे कमल के रस का पान करने के लिए पख पसारे हुए हो। इसीलिये जिस ओर वह सुन्दरी गई मेरे नेत्र भी उसी के सग उसी ओर को इस भाति दौडे जैसे लोभ की पूर्त्ति की आशा मे कोई भिखारी उसी ओर पीछे-पीछे चलकर साथ नही छोडता जिस ओर कि कोई कजूस व्यक्ति जा रहा हो। आशय यह है कि वह बाला तो अपने मे रूप-निधि लेकर भी कजूस है और मेरे नेत्र उसके रूप के याचक बने व्यर्थ मे उसके पीछे-पीछे हो लिये। इशारे के लिये उसके नयन चचल हुए और बाई भौहे टेढी तिरछी हुई, किन्तु उस समय मुझे और उसे छोडकर कोई तीसरा व्यक्ति कामदेव के उस गुप्त भाव-रग का रहस्य न जान-पहचान सका। उसके कुचो पर चदन चर्चित था और ग्रीवा मे गजमुक्ताओ की माला पडी थी। इससे ऐसा लग रहा था मानो शकरजी भस्म मडित हो और उनके सिर से गगा की धारा फूटकर प्रवाहित हो रही हो। यहा सूक्ष्म कल्पना से यह आशय प्रकट होता है कि सुन्दरी के चदन चर्चित कुच ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो भस्म मडित महादेवजी का पिंड हो और उसपर झूलती हुई मुक्तामाल मानो शकरजी के सिर से फूटती गगा की जलधार हो। उस बाला ने बाया पाव तो प्रेमी मे मिलने के लिये प्रेम-पथ पर बढा दिया किन्तु दाये पाव को अपने स्थान से तजते या उठाते हुए उसे लज्जा हुई और वह ठिठक गई कि कोई उसे इस काम-कौतुक की ओर अग्रसर होते हुए भाँप न जाये। किन्तु उसी क्षण कामदेव ने अपना तीर चलाया कि वह गजगति को भी पराजित करने वाली मस्त चाल से आगे बढ़ गई। इस रूप-अदा से मैंने आज उसे राह पर जाते हुए देखा कि उसके रूप का आकर्षण एव प्रभाव मेरे मन मे बस गया या उसका रूप मेरे मन मे गढ गया। और उसी क्षण से मेरा सारा गुण, गौरव और धैर्य जाता रहा है। मेरा मन उसके रूप को पाने के लिये उसके दोनो कुच रूपी कचन-पर्वत की सधि की ओर दौडा कि इसी अपराध मे कामदेव ने उसे वही उसकी उरोज सीमतरेख मे बाँध दिया। कविवर विद्यापति गाते हैं कि इस शृगार-रस-रहस्य को रसज्ञ लोग ही जान और समझ सकते हैं। रूप के अवतार, लखिमादेवी के स्वामी इस रस के स्वाद को भली-भाति जानते है, वही मेरी रचना मे निहित शृगार का आस्वादन करने के योग्य हैं, और कोई नही।

विशेष—प्रस्तुत पद मे रूप शृ गार रस का प्राधान्य है जिसकी अभिव्यजना जहा एक ओर सूक्ष्म कल्पनायुक्त है वहा उसमे स्वाभाविक भावो—मनोभावो की व्यजना भी बडी हृदयग्राही बन सकी है। कवियो मे सुन्दरी के नेत्रो की शोभा कमल जैसी

प्रचलित है किन्तु उनके ऊपर चढ़ी हुई काली-काली भौहो की स्थिति ने उन्हे नई शोभा कल्पना से युक्त कर दिया कि मानो भौरे कमलो का मकरन्द पीकर उडने के लिये पख पसार रहे हो।—"पकज मधु पिबि मधुकर रे, उडए पसारल पाखि ' उक्ति से इसी कल्पना का सुन्दर बोध होता है। सुन्दरी के रूप पर आकर्षित होकर प्रेमी रसिक के नेत्रो का इस प्रकार उसके साथ दौडना जैसे कृपण के साथ लोभी याचक दौडता है—बडी नई उपमायुक्त नई बात है। यथार्थ जगत् की बात से काल्पनिक रूप-सौन्दर्य की आकर्षक बात का समर्थन बडी ही कलात्मकता से किया गया है। नारी की स्वाभाविक लज्जा का भाव "बाम चरन अगुसारल रे, दाहिन तेजइत लाज" कथन मे निपुणता से ध्वनित है। चदन चर्चित स्तनो एव गले पर पडी सुन्दर गजमुक्ताओ की माला से सुन्दरी का रूप उत्प्रेक्षा के माध्यम से बडा ही सजीव एव चित्रवत् चित्रित है—"भसम भरल जनि सकर रे, सिर सुरसरि जलधार।" कल्पना की समाहार शक्ति का यहा बडा अद्भुत प्रयोग देखने को मिलता है। न केवल शृगार के क्षेत्र मे वरन् शैव भक्तो के लिये भी यहा गदगद् हो जाने को शिव का सजीव रूप अकित किया गया है। यह विद्यापति की कला का उत्कृष्ट कौशल है। नारी के कुचो की सीमन्तरेख को निहारकर मन स्वभावत उसके काम-पाश मे बध जाने को आतुर हो उठता है, इसी तथ्य की अभिव्यजना विद्यापति ने बडी कुशलता से इन पक्तियो मे की है—"रूप लागि ' ततहि धएल जनि बाँधि।" सक्षेप मे विद्यापति ने अपने छोटे-छोटे पदो मे शृ गार के विभावो, हावो अनुभावो एव सचारो भावो को कम से कम शब्दो मे माला के पुष्पो की भाति गूथ कर रसिको को शृगार-रस के सागर मे निमिज्जित होने के लिये प्रेरित किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा एव उक्ति वैचित्र्य पद मे प्रधान है।

शब्दार्थ—सहजहि=स्वभावत, नैसर्गिक रूप मे। आनन=मुख। सुरेखलि=रेखायुक्त, सज्जित हुई। पकज=कमल, मुख का उपमान है। पिबि=पीकर। उडए=उडने को। पसारल पाँखि=पख फैलाकर। मधुकर=भौरा, नयन का उपमान है। ततहि=वहा। धाओल=भागा। जतहि=जहा। बर नारि=सुन्दर स्त्री। लुबुधल=लुब्ध होकर। न तजए=नही छोडता है। कृपन=कजूस। क=का। पाछु=पीछा। इगित=सकेत, इशारा। तरगित=चचल। बाम भौह=बाई भौह। भग=टेढी या तिरछी। तखन=उस क्षण। जानल=जानता है। तेसर=तीसरा व्यक्ति। गुपुत=काम का गुप्त भाव। मनोभव=कामदेव। रग=भाव या रहस्य। चरचु=लिया हुआ, चर्चित। पयोधर=कुच। ग्रिम=गरदन। गज मुकुताहार=गज मुक्तामाल। भसम करल=भस्म-मडित। सकर=शकरजी। जनि=मानो। सुरसरि=गगा। बाम=बाए। अगुसारल=आगे बढाया। दाहिन=दाया। तेजइत=छोड़ते या धरते हुए। लाज=लज्जा। मदन=कामदेव। सर पूरल=बाण छोडा। गति गजए=चाल को पराजित किया। जाइत=जाते हुए। पथ देखलि=रास्ते मे देखा। रहल=बसना।

लागि=लिये। सयं=से। खन=क्षण। गुन=गुण। धैरज=धैर्य। गेल भागि=भाग गया। ते अपराधे=उस अपराध मे। ततहि=वही, उरोजो की रेखा पर। घएल जनि बाँधि=वही बांधकर रख लिया। कचन-गिरि साँधि=उरोज रूपी पर्वतो की सधि-रेखा। रसमत=रसज्ञ। कत=स्वामी, पति।

(३४)

पथ गति पेखल मो राधा।
तखनुक भाव परान पए पीडलि
रहल कुमुद-निधि साधा।
ननुआ नयन नलिनि जनि अनुपम
बक निहारइ थोरा।
जनि सृखल मे खगवर बाँधल
दीठि नुकायल मोरा।
आध बदन ससि बिहसि देखाओलि
आध पीहलि निअ बाहू।
किछु एक भाग बलाहक झाँपल
किछुक गरासल राहू।
कर जुग पिहित पयोधर अचल
चचल देखि चित भेला।
हेम कमल जनि अरुनित चचल
मिहिर तरे निन्द गेला।
भनइ विद्यापति सुनह मधुरपति
इह रस केह पए बाधा।
हास दरस रस सबहु बुझाएल
नाल कमल दुइ आधा।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा जी का वासना-प्रधान रूप-चित्रण करते हुए लिखते है—

हे रसिक सुजान श्रीकृष्ण, आज मैंने डगर पर जाती हुई सुन्दरी राधा को देखा था। उस समय के उसके सौन्दर्य-शृ गारी भावो ने मेरे प्राणो को काम-व्यथा से व्यथित कर दिया एव उसके चन्द्रमुख को देखने की उत्कट इच्छा बनी ही रह गई। कमलिनी के जैसे सुन्दर एव मोहक उसके नेत्र है। वह तिरही चितवन से जब दबी-दबी दृष्टि डालती है तो ऐसा जान पडता है कि जैसे किसी शृखला मे दो खजन पक्षिराज बँधे हो। आशय यह है कि राधा की बकिम भौह-चितवन की शृ खला मे उसके चचल नेत्र खजन पक्षी-से प्रतीत होते हैं। मेरी दृष्टि तो उसकी उस नेत्र-चितवन मे छिपकर

या खोकर ही रह गई। तब उसने अपना आधा मुख-चन्द्र तो सहास दिखाया और आधा मुख-चन्द्र भाग लाज के मारे अपनी भुजाओ की आड से ढक लिया। उसमे से भी कुछ भाग तो उसके मुख-चन्द्र का बादलो ने ढक लिया और कुछ भाग राहु ने ग्रस लिया। आशय यह है कि कुछ भाग तो उसके केश रूपी राहु ने ग्रस लिया और कुछ भाग उसके अचल रूपी बादल से ढक गया। उसने अपने दोनो हाथो से अचल थामकर अपने कुचो को ढक लिया और यो उसे देखकर मेरा मन चलायमान हो गया। उस समय उसके झीने-झीने अचल एव लाल हथेलियो के भीतर स्वर्णिल कुच ऐसी शोभा दे रहे थे मानो अरुणाई से युक्त स्वर्णिल चचल कमल सूर्य के तले नीद लेकर सो गये हो। कविवर विद्यापति कहते हैं कि सुन्दर श्याम, भला इस शृगार-रस को जानने मे कौनसी परेशानी की बात है ? सुन्दरी का हसीयुक्त दर्शन तो सब रसो का सहज बोध करा देता है। आशय है कि सुन्दरी की हसी तो प्रणय, केलि की स्वाभाविक स्वीकारोक्ति होती है। और नाल या भुजा तथा कमल या कुच ये दोनों तो अपने मे आधे या अपूर्ण है जब तक कि पारस्परिक प्रेम-मिलन की पूर्णता प्राप्त न हो।

विशेष—प्रस्तुत पद मे राधा के माध्यम से कविवर विद्यापति ने नायिका के आगिक सौन्दर्य की स्वाभाविक छटा को अकित किया है जिससे सभोग शृगार का स्वत स्रोत झरता-सा प्रतीत होता है। मुख-चन्द्र, नयन-खजन एव भुज-नाल आदि से रूपक की छटा बडी अतुलनीय बन पडी है। कुचो को लाल हथेलियो एव झीने अचल से ढक लेने के प्रति यह बडी उत्कृष्ट कल्पना की गई है कि मानो लाली भरा स्वर्ण का चचल कमल सूर्य के नीचे नीद मे सो रहा है।—

"हेम कमल जनि अरुनित चचल
मिहिर तरे निन्द गेला।"

इसी प्रकार की कल्पना सुन्दरी के नयनो के प्रति दी गई है—"जनि सृखल मे खगबर बाँधल" इन स्थलो पर उत्प्रेक्षा का प्रयोग भी कल्पना की रगीनी से झिलमिला उठा है। भावपक्ष की दृष्टि से पद मे शृगार-रस का सचार पूर्णत हुआ है—"आध बदन ससि बिहसि देखाओल, आध पीहलि निअ बाहू।" उक्ति मे जिस प्रबल रूपाकर्षण की अभिव्यक्ति है उसका प्रभाव पहले ही प्रतिध्वनित हो गया है—'भाव परान पए पीडलि।" इस प्रकार सम्पूर्ण पद मे कल्पना एव भावो का सौन्दर्य मिलकर शृगार के वातावरण मे चार चाद लगा देता है। 'ननुआ नयन नलिनि" मे अनुप्रास है जिससे शब्दो की ध्वनि प्राणो के तारो को झकृत कर देती है। काव्य-कला की दृष्टि से कविवर विद्यापति के ऐसे पद हिंदी साहित्य मे बेजोड कहे जायगे क्योकि रीतिकालीन काव्य की भाति इन पदो मे केवल कला-प्रदर्शन एव चमत्कार-आयोजन ही नही भावोद्रेक एव भाव-प्रवणता है।

शब्दार्थ—गति=चाल। पेखल=देखा। मो=मैने। तखनुक=उस समय

का। भाव=रूप:-सौन्दर्य के भावो ने। परान=प्राण। पए=तक को भी। पीडलि=व्यथित बना दिया। रहल=रह गई। कुमुद निधि=कुमुद का सर्वस्व चन्द्रमा। साधा=उत्कट इच्छा। ननुआ=शोभनीय। नलिनि=कमलिनी। जनि=मानो। अनुपम=अनोखी। बक=चितवन। निहारइ=देखती है। थोरा=कम, दबी-दबी दृष्टि से तात्पर्य है। सृ खल=जजीर, शृ खला। खगबर=पक्षिराज खजन। बाँधल=बदी करना। दीठि=दृष्टि। नुकायल=छिप गई। मोरा=मेरी। बदन ससि=मुख रूपी चन्द्र। आध=आधा। बिहसि=हसकर। देखाओलि=दिखलाया। पीहलि=ढक दिया। निअ=अपनी। बाहू=भुजा। किछु=कुछ। बलाहक=मेघ, यहा अचल से तात्पर्य है। झाँपल=ढक दिया। गरासल=ग्रस लिया। राहू=यहा केश का उपमान है। कर जुग=दोनो हाथ। पिहित=ढँका हुआ, आवृत। पयोधर अचल=कुच को अचल द्वारा ढका। देखि=देखकर। चित भेला=मन हुआ। हेम कमल=स्वर्ण-कमल, यहा कुचो का उपमान है। अरुनित=लाल। मिहिर तरे=सूर्य के नीचे। निन्द गेला=नीद मे सो गया। भनइ=कहते हैं। मधुरपति=रसिक सुजान श्रीकृष्ण। दरस=दर्शन। हास=हसी। बुझाएल=जानना। सबहु=सब। नाल=यहा सुन्दरी की भुजाओ का उपमान है। कमल=सुन्दरी के कुचो का उपमान है। आधा=अपूर्ण।

(३५)

जहाँ-जहाँ पग-जुग धरई,
तहिं-तहिं सरोरुह झरई।
जहाँ-जहाँ झलकत अग,
तहिं-तहिं बिजुरि-तरग।
कि हेरल अपरुब गोरी,
पइठल हिय मधि मोरी।
जहाँ-जहाँ नयन बिकास,
तहिं-तहिं कमल प्रकास।
जहाँ लहु हास सँचार,
तहिं-तहिं अमिय बिकार।
जहाँ-जहाँ कुटिल कटाख,
ततहिं मदन-सर लाख।
हेरइत से धनि थोर,
अब तिन भुवन अगोर।
पुनु किए दरसन पाब,
अब मोहे इत दुख जाब।

बिद्यापति कह जानि,
तुग्र गुन देहब ग्रानि ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे ग्रत्यन्त सूक्ष्मता से कविवर विद्यापति सुन्दरी के स्थूल श्रृ गार का व्यापक सौन्दर्य ग्रकन करते हुए लिखते है—

ग्ररे, जहा-जहा पर वह सुन्दरी ग्रपने दोनो पाँव रखती है वही-वही कमल झरने लगते है। ग्राशय यह कि उस सुन्दरी के पाँव कमल जैसे है जिनके चिह्न पथ पर दिखालाई पडते है। जहा-जहा पर उस सुन्दरी के ग्रग झलकते हैं वही ऐसा प्रतीत होता है मानो बिजली की रेखा ग्राभासित हो रही हो। मैंने उस ग्रपूर्व गोरी सुन्दरी को क्या देखा कि वह मेरे उर मे ही समा गई है। जहा-जहा वह दृगो से देखती है वही-वही मानो कमलो की काति झलक उठती है। जहा जहा वह थोडा-सा हँस देती है वही वही ग्रमृत बिखर जाता है। जहा-जहा वह ग्रपनी तिरछी चितवन डाल देती है वही-वही कामदेव के मानो लाख पचबाण बिध जाते है। जिस सुन्दरी को देखने के लिये तीनो लोक प्रतीक्षाकुल रहते हैं भला वह ग्रपूर्व सुन्दरी मुझे थोडे ही देखेगी ! ग्रब पुन मैं उसका दर्शन थोडे ही पाऊँगा ग्रौर मुझे तो इस कलक मे मर मिटना होगा। ग्रत मे विद्यापति कहते है कि ग्ररे तू इतना व्यथित क्यो होता है ?—तेरे गुण उसे ग्रपनी शक्ति से फिर दर्शनार्थ खीच लाएँगे। ग्राशय यह है कि विद्यापति का पद लालित्य उस सुन्दरी को खीच ही लेगा "जज्बए शौक ग्रगर सच है तो माशा ग्रल्लाह, कच्चे धागे से बधी ग्राएँगी सरकार मेरी।"

विशेष—प्रस्तुत पद मे सुन्दरी के चरण-चिह्नो, उसकी ग्रग-छबियो, नयन-विक्षेपो, हास-सचारो एव कुटिल-कटाक्षो के सौन्दर्य को बडी कला-कल्पनामय उक्तियो से ग्रभिव्यजित किया गया है। कैसी महान सुन्दरी होगी जिसके पाँवो के चिह्न पथ पर ऐसे लगते है जैसे कमल झरे हो, ग्रगो की झलक ऐसी लगती है जैसे बिजली की रेखा ग्राभासित हो रहा हो, नयनो का ग्राकार ऐसा लगता है मानो कमल खिले हो, लघु हास ऐसा प्रतीत होता है जैसे ग्रमृत बिखर रहा हो, बकिम कटाक्ष ऐसे लगते है जैसे कामदेव के लाख पचबाण बिधे हो ग्रादि। निश्चय ही ऐसी सुन्दरी की प्रतीक्षा तीनो लोक भला कैसे न करे—"ग्रब तिन भुवन ग्रगोर" उक्ति यहा पूर्णत सार्थक है। कल्पना एव भावना का समन्वित रूप-चित्रण इस पद मे पराकाष्ठा पर व्यजित है। सौन्दर्य ही इस पद का प्राण है ग्रौर सौन्दर्य ही स्थूल। प्रत्येक पक्ति बेजोड चमत्कार से परिपूर्ण है। इतने सागिक सजीव एव कल्पना-भावना-समन्वित पद कम ही रचे जाते है। इसी कारण विद्यापति केवल रीतिकला प्रधान कवि न होकर श्रृगार की भावना की मदिरा मे डूबे हुए रससिद्ध कवि हैं। कविवर जायसी ने भी कही-कही पद्मावत मे इसी प्रकार से पद्मावती सुन्दरी का रूप चित्रण किया है—किन्तु ऐसा कही-कही पर ही हुग्रा है किन्तु विद्यापति मे प्राय सर्वत्र विद्यमान है।

शब्दार्थ—पग-जुग=दोनो पाँवो के पजे। धरई=धरती है। तहिं-तहिं=वही-

नख झिलमिला रहे थे उस पर तरुण तमाल का पेड उगा हुआ था। आशय है कि उन चरण-कमलो चन्द्र-नखो के ऊपर श्री कृष्ण का यौवनमय स्थूल शरीर शोभायमान था। उस तरुण तमालवृक्ष पर बिजली की लता फैली हुई थी और वह अनोखा वृक्ष यमुना के तीरपर मन्थर गति से चला जा रहा था। आशय यह है कि श्रीकृष्ण अपने श्याम, तमाल वृक्ष जैसे सुन्दर शरीर पर बिजली की लता जैसे झीने और चमकदार पीताम्बर वस्त्र को ओढे हुए यमुना के तीर पर चले जा रहे थे। उस तमालवृक्ष की शाखो की फुनगियो पर सुधाकर चन्द्रों की पक्ति सुशोभित थी। आशय है कि श्री कृष्ण के भुजो की उगलियो के किनारो पर चन्द्रमाओ जैसे नखो की शोभा आभासित हो रही थी। वहा नवपल्वो की अरुण काति दीप्त रही थी—श्री कृष्ण की अँगुलिया-हथेलिया नवपल्लव की भाति लाल थी। दो निर्मल बिम्बाफलो की काति पर एक तोता स्थिर होकर निवास करता था। आशय यह है कि लाल-लाल बिम्बाफल जैसे ओष्ठो के ऊपर श्री कृष्ण की कीर जैसी नासिका स्थिर एव शोभायमान थी। उसपर दो खजनो या नेत्रो का जोडा था फिर उसपर नागिन जैसी कुन्तलराशि ने मोर-ग्रीवा अथवा मोर-मुकुट को ढँक रक्खा था। हे सखी, मैंने तुझे उसके रूप-सौन्दर्य की सब कुछ निशानी तो कहदी है किन्तु उसे देखते ही मेरी सारी सुधि बुधि हर गई। आशय यह है कि यद्यपि श्री कृष्ण के रूप की चर्चा कर तो दी पर तभी से उसकी रूप सुधि के कारण तबीयत पगला-जैसी गई है। कवि-वर विद्यापति कहते है कि तब सखी ने कहा कि यही तो शृगार-रस का वास्तविक अनुभव कहलाता है कि तुमने सत्पुरुष के मन के मर्म को अच्छी तरह जान लिया। आशय यह है कि श्री कृष्ण के रस-शृ गार का यह अनोखा वर्णन कर दिया। यह भी कम नही है।

विशेष—स्वप्न-मिलन-दर्शन की कल्पना काव्य मे होती रही है। कॉलरेज की 'Kubla Khan' कविता की कल्पना मे भी सौन्दर्य के यही स्वप्निल उपकरण व्यक्त हैं। विद्यापति ने इस पद मे भी श्री कृष्ण के स्वप्न की सुन्दरता को राधा के मुख से कहलवाया है। किन्तु श्री कृष्ण के जिस रूप-सौन्दर्य को कृष्ण-प्रेमी भक्तो ने सराहा-गाया है उसकी बडी सजीव चित्रवत् एव यथार्थ व्यजना इस पद मे हो सकी है, अत. इस स्वप्न-वर्णित पद मे भी कॉलरेज के विचित्र महल और उसकी प्रेमिका और फव्वारो का जैसा अतिकाल्पनिक वर्णन न होकर वरन् भावना प्रधान तथा सत्य प्रतीत होता है। इस पद मे रीतिकालीन शृगार परम्परा की ऊहात्मक पद्धति का वर्णन प्रधान है। उपमेय उपमान का सादृश्य कोई नवीन नही तथापि "तापर बेढलि बीजुरि-लता" एव "साखा-सिखर सुधाकर पाति" मे सौन्दर्य एव कल्पना का बडा मोहक अभिव्यक्ति-कौशल है।

शब्दार्थ—पेखल=देखा है। अपरूप=अपूर्व रूप। सुनइत=सुनकर। मानबि=मानोगी। सपन सरूप=सपने जैसा मिथ्या। कमल जुगल=दो कमल, दोनो पैरो का उप-मान है। चाँद क माला—चन्द्रमा की माला, नख-पंक्ति से आशय है। तापर—उसपर।

उपजल—उगी हुई। तरुन तमाला=तरुण तमाल का वृक्ष, श्री कृष्ण के श्यामल शरीर से तात्पर्य है। बेढलि=फैली हुई। बिजुरि-लता=बिजली की लता, पीताम्बर पट से तात्पर्य है। कालिन्दी तट=जमुना का तीर। चलि जाता=चला जाता है। साखा-सिखर—शाखाओं की फुनगी, आशय है अंगुलियों की कोरों से। सुधाकर पाति—चन्द्रमा की पंक्ति, नखमाला। ताहि=उस शिखर पर। अरुनक=अरुण। बिम्बफल—ओठो के लिये उपमान है। जुगल=युगल। कीर=तोता। थीर=स्थिर। करु बास—निवास करता है। जोर=जोडा। खजन-जोर=आशय है दोनो नेत्रों से। झापल—छिपा रखना। मोर=ग्रीवा, मोरमुकुट।

(३७)

की लागि कौतुक देखलौं सखि
निमिख लोचन आध।
मोर मन-मृग मरम बेधल
विषम बान बेआध।
गोरस बिरस बासी बिसेखल
छिकहु छाडल गेह।
मुरली धुनि सुनि मो मन मोहल
बिकहु भेल सन्देह।
तीर तरगिनि कदम्ब-कानन
निकट जमुना घाट।
उलटि हेरइत उलटि परलओ
चरन चीरल काँट।
सुकृती सुफल सुनह सुन्दरि
बिद्यापति भन सार।
कस दलन गुपाल सुन्दर
मिलल नन्द कुमार।

भावाथ—पूर्व पद के प्रसगानुसार ही राधाजी श्री कृष्ण के रूपाकर्षण का प्रभाव सखी से व्यजित करती हैं। कविवर विद्यापति लिखते है—

हे आली, मैंने श्री कृष्ण के उस कौतुकमय तन को केवल कनखियो से निमिष-आध-निमिष क्यो निहारा कि मेरे प्रेमपूरित मन रूपी मृग को कामदेव रूपी व्याध ने अपने बाणो से घायल कर दिया। मेरा सारा गोरस नीरस एव विशेषत बासी हो गया और जब मैं घर से चली थी तभी अपशकुन हुआ था कि छीक हुई थी। आशय यह है कि घर से चलते समय ही छीकवाला अशकुन हो गया था जिसके कारण मैं काम-बाणो से घायल हुई और मेरा गोरस अथवा इन्द्रियो का रस बिगड़ गया, मैं काम-

कुण्ठातुर हो गई। मेरा मन श्री कृष्ण की मधुर मुरली की तान को सुनकर मोहित हो गया है अत इस नीरस गोरस अथवा इन्द्रियो के रस का बिक जाना भी सन्देहप्रद है। इन्द्रियो के रस का बिकना इसलिए सदेहप्रद व्यजित है क्योकि विरह के घाव ने इन्द्रियो के सुख-रस को सुखा लिया है। यमुना नदी के किनारे के घाट पर कदम्ब-वन मे मैं उलटकर श्री कृष्ण को देखने को ज्योही हुई कि स्वय उलट या गिर गई और मेरे पैरो को कॉटो ने फाड डाला। हे सुन्दरी, विद्यापति जो तत्त्व की बात कहते हैं सुनो, कि तुम्हे कस को मारने वाले रसिक सुजान श्याम सुन्दर मिल गए हैं अत' तुम्हारे सत्कर्म सफल हो गए हैं।

विशेष—प्रस्तुत पद की अन्तिम पक्तियो मे रतिभाव का पर्यवसान भक्ति-भाव मे बडी सुन्दरता से किया गया है, साथ ही "सुकृती सुफल सुनह सुन्दरि" पक्ति मे स्वाभाविक अनुप्रास की छटा है। "उलटि हेरइत " उक्ति मे भाव-चमत्कार है। राधा की नारी जन्य स्वाभाविकता का प्रकाशन मुख्य रूप मे सफल हो सका है। 'मन-मृग' मे रूपक सुन्दर प्रदर्शित है।

शब्दार्थ—की लागि=क्योकर। कौतुक=सौन्दर्ययुक्त विचित्र। देखलों=देखा। निमिख=पल। आध=आधा। मोर=मेरा। मन-मृग=मनरूपी मृग। मरम=रहस्य। विषम बान बेआध=कामदेव रूपी शिकारी का विषैला बाण। गोरस=दूध दही आदि, यहाँ इन्द्रियो के उन्माद के रस से भी तात्पर्य है। बिरस=रसहीन। बासी बिसेखल=विशेष रूप से बासी हो गया। छिकहु=छीकने पर भी। छाडल गेह=घर से चली आई। धुनि=धुन, मुरली की तान। मो मन=मेरा मन। मोहल=मोहित हो गया। बिकहु=बिकने मे भी। तरगिनि=नदी। तीर=किनारा। कानन=वन। उलटि हेरइत=फिरकर देखना। उलटि परलओं=गिर पडी। चरन=चरण। चीरल कॉट=कॉटो ने फाड दिया। सुकृती सुफल=सत्कर्म सफल हुए। भन=कहते हैं। सार=तत्त्व। दलन=मारने वाले। मिलल=मिल गए।

(३८)

अवनत आनन कए हय रहिलहुँ
बारल लोचन चोर ।
पिया मुख-रुचि पिबए धाओल
जनि से चाँद चकोर ।
ततहुँ सयँ हठ हटि मो आनल
धएल चरनन राखि ।
मधुप मातल उड़ए न पारए
तइअओ पसारए पाँखि ।

माधव बोलल मधुर बानी
से सुनि मुंदु मोयँ कान।
ताहि अवसर ठाम बाम भेल
धरि धनू पँचबान ।
तनु पसेब पसाहनि भासलि
पुलक तइसन जागु।
चूनि-चूनि भए काँचुअ फाटलि
बाहु बलआ भाँगु।
भन बिद्यापति कम्पित कर हो
बोलल बोल न जाय।
राजा सिबसिंघ रूप न रायन
साम सुन्दर काय।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा के मुख से श्री कृष्ण के प्रति प्रेमाकर्षण भाव की अभिव्यञ्जना किसी सखी को सुनवाते हैं—

हे आली, मैं तो श्री कृष्ण के सम्मुख अपना मुख लाजवश नीचे ही किये रही और चचल नयनो को चोरी-चोरी देखने से भी बरजती रही किन्तु मेरे हठीले नेत्र तो प्रियतम श्री कृष्ण के मुख लावण्य रस को पीने के लिये इसी भाँति दौड गए जैसे चाँद को देखकर उसकी ओर चकोर दौड पडते हैं। किन्तु मैंने वहा से भी हठात् उन्हे हटाकर चरणो की ओर झुका दिया। किन्तु वहाँ भी उनकी दशा उन मस्त बने भौंरो जैसी थी जो उड नही सकते तदपि अपनी पाँखे उडने की कामना मे फैलाते-फडकाते है। माधव या श्री कृष्ण अपनी मृदु भाषा मे वार्त्ता करने लगा तो मैंने उसे न सुनने के लिए बरबस अपने कान बन्द कर लिये। पर हाय, उस समय उस स्थान पर कामदेव अपना धनुष लेकर मेरा शत्रु बन गया और मुझ पर अपने पचबाण छोड-कर मुझे घायल करने लगा। आशय यह है कि सबकुछ सयम रखने के उपरात भी मेरे अन्दर श्री कृष्ण के प्रति कामवासना जाग्रत हो ही गई। और फिर मेरे शरीर मे रोमाच के कारण स्वेद बह निकला अत ललाट पर का अगराग बह या धुल गया और उस रोमाच के ज़ोर से मेरी चोली तार-तार हो गई, वलय या चूडिया झनझना कर मौल गईं। कविवर विद्यापति कहते है, उस रोमाच के कारण हाथ भी कम्पायमान हैं, मुख से बोल भी नही निकल पाते। श्री कृष्ण की भाँति ही राजा शिवसिंह की काया भी इतनी ही सुन्दर है कि हे बाले लखिमा देवी, तुम उनके रूप-श्रृगार से राधा की भाँति ही रोमाचित एव कामातुर होती हो।

विशेष—प्रस्तुत पद मे काम जन्य रोमाचित भाव को अत्यन्त सुन्दर एव प्रभाव-

शाली ढग से व्यक्त किया गया है। कामातुर दशा मे भी नारी की लज्जा बनी रहती है—

"अवनत आनन कए हम रहिलहुँ
बारल लोचन चोर।"

इन पक्तियो मे नारी की सहज सुलभ लज्जा का भाव बडी उत्कृष्टता से प्रकाशित है किन्तु वासना पर सयम रखने मे तो सुर मुनि तक असफल हो गए हैं, अत —

"पिया मुख-रुचि पिबए धाओल
जनि से चाँद चकोर।"

इन पक्तियो मे चाँद और चकोर का आकर्षण व्यक्त करके सुन्दरी के नयनो की विवशता सम्मत चचलता प्रकट की गई है। मधुमस्त भौंरे की दशा का शब्द-चित्र इस पक्ति मे कितनी सफलता से उतारा गया है—

"मधुप मातल उडए न पारए
तइअओ पासरल पाँखि।"

इधर रोमाचित दशा की अभिव्यञ्जना "तनु पसेब बाहु बलआ भाँगु" पक्तियो मे बडी प्रभावशाली हुई है। यो भावो-अनुभावो का सफल चित्रण कर कविवर विद्यापति ने इस पद मे सभोग शृगार का मानो निर्झर बहा दिया है।

शब्दार्थ—अवनत=नीचे को। कए=किये। रहिलहुँ=रही आई। बारल=थामे रखना। लोचन चोर=चोरी-चोरी देखने वाले चोर जैसे नेत्र। मुख-रुचि=मुख का रूप लावण्य। पिबए—पान करने के लिये। धाओल=दौड पडे। जनि से चाँद चकोर=जैसे चकोर चाँद का रूप लावण्य पान करने को दौडते हैं। ततहुँ=वहा। सयँ=से। हठ=हठात्। हटि मो आनल=हटाकर ले आई। मो=मैं। आनल=लाई। धएल राखि=धर कर रक्खा। चरनन=चरणो मे। मधुप=भौंरा। मातल=मस्त। उडए न पारए=उड सकने मे असमर्थ या विवश। तइअओ=तब भी। पसारए=फैलाना-फडकाना। पाँखि=पख। माधव=कामदेव या श्री कृष्ण। बोलल=बोले। मधुर बानी=मृदु बोल। से=वह। मुदु=बन्द करना। मोयँ=अपने। ताहि अवसर=उसी समय। ठाम=स्थल, जगह। बाम भेल=शत्रु हुआ। धरि=धारण किये। धनू=धनुष। पँचबान=कामदेव या उसका पचबाण। तनु पसेब=शरीर मे पसीना आ गया। पसाहनि=अगराग। भासलि=बह गया। पसाहनि भासलि=ललाट का अगराग रोमाच से पसीना आने के कारण धुल गया। पुलक=रोमाच। तइसन=वैसे ही। चूनि-चूनि=तार-तार होना। काँचुअ=चोली, अगिया। फाटल=फट गई। बाहु—हाथ। बलआ—वलय, चूडी। भाँगु—मौल गई या फूट गई। भन—कहते हैं। कम्पित कर—कम्पायमान हाथ। बोलल—बोलने से। बोल न जाय—बोला नही जाता। साम सुन्दर—श्याम सुन्दर, श्री कृष्ण। सुन्दर—शोभा

वाली, यहाँ सुन्दर शब्द मे श्लेष समझना चाहिये 'श्याम सुन्दर' एव श्याम के नसी सुन्दर। काय—काया, शरीर।

(३६)

सामर सुन्दर ए बाट ग्राएत
तें मोरि लागलि ग्राँखि।
ग्रारति ग्राँचर साजि न भेले
सब सखीजन साखि।
कहहि मो सखि कहहि मो
कत तकर ग्रधिबास।
दूरहु दूगुन एडि मै ग्राबग्रो
पुनू दरसन ग्रास।
कि मोरा जीबन कि मोरा जौबन
कि मोरा चतुरपने।
मदन-बान मुरुछलि ग्रछग्रो
सहग्रो जीब ग्रपने।
ग्राध पद धरइत मोए देखल
नागर जन समाज।
कठिन हिरदय भेदि न भेले
जाग्रो रसातल लाज।
सुरपति-पाए लोचन मागग्रों
गरुड मागग्रों पाँखि।
नन्द क नन्दन हौं देखि ग्राबग्रो
मन मनोरथ राखि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा के मुख से एक सखी को उसकी विरह मनोव्यथा का प्रकाशन कराते हुए लिखते है—

राधाजी कह रही हैं कि हे सखी, श्याम सुन्दर इसी डगर से ग्रा रहे थे। इसी कारण मेरी ग्रांखे उनसे मिल गई, इसमे मेरा कोई दोष नही है। मैं सटपटाकर तथा प्रेमावेशमिश्रित लाज से कुचो को ढँकने के निमित्त ग्रपना ग्रांचल भी न सँभाल या ढंक सकी। मैं यह झूठ नही कह रही हू, सभी सखियाँ इस बात की साक्षी या गवाह हैं। हे ग्राली, मुझसे कहो, मुझे बताग्रो कि सलोने श्याम सुन्दर के रहने का स्थान या घर कहाँ है ? मैं दुगनी दूरी के होने पर भी उसे पार करके यहा उनके पुनः दर्शनो की ग्राशा लेकर ग्राया करती हू। उनके दर्शन-मिलन के ग्रभाव मे क्या तो मेरी जवानी, क्या मेरा जीवन ग्रौर क्या ही मेरी चतुराई है ?—सब कुछ व्यर्थ है, यदि उनका दर्शन-

मिलन मुझे प्राप्त नहीं होता। मैं कामदेव के पचबाणो से घायल हुई मूर्च्छितावस्था मे हू। और अपने प्राणो मे मैं असह्य आघातो को सह रही हू। श्री कृष्ण के प्रेम-पथ मे मैंने आधा पाव ही रक्खा था कि मुझे समाज के रसिकजनो ने देख लिया परन्तु मेरा कठोर हृदय फिर भी न फटा और मैं लज्जावश पाताल मे भी न धंस सकी। आशय यह है कि प्रेम के पहले ही दांव मे मुझे लोकापवाद ने डस लिया किंतु मैं फिर भी जीवित हू, वर्ना मुझे तो मर जाना चाहिये था। अब मैं इन्द्रराज के पैरो पडकर गरुड के पख पाने की याचना करती हू और वह नेत्र मागती हू ताकि तीव्रता से उडकर मैं नन्द के पुत्र श्री कृष्ण को अपने मन के संजोये हुए मनोरथ को पूर्ण कर, उन नेत्रो से पुन देख आ सकू।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सच्चे प्रेमाकर्षण के प्रति जगी मर्म-वेदना को बडी उत्कृष्टता से प्रकट किया गया है। प्रस्तुत पक्ति मे यह भावना पराकाष्ठा पर है —

"दूरहु दूगुन एडि मै आबओ
पुनू दरसन आस।"

प्रेम की विरह जन्य अवस्था मे जीवन, यौवन एव सारी चतुराई व्यर्थ लगने लगती है, इस भावार्थ को कितनी सरलता एव स्वाभाविकता से ध्वनित किया गया है—

"कि मोरा जीबन कि मोरा जौबन
कि मोरा चतुरपने।"

प्रेम के प्रति लोकापवाद का भय कितने मर्मभेदी शब्दो द्वारा प्रकट किया गया है—

"कठिन हिरदय भेदि न भेले
जाओ रसातल लाज।"

किन्तु अन्ततः श्री कृष्ण के प्रति अगाध भक्ति रति का आवेश—प्रेमलक्षणा—व्यजित करना ही कविवर विद्यापति का अलम् रहा है —

"नन्द क नन्दन हों देखि आबओ
मन मनोरथ राखि।"

सम्पूर्ण पद मे भाव एकता का स्वर प्रधान रहा है। गीत काव्य की निश्छल आत्माभिव्यक्ति का सौष्ठव इस पद मे सफलतापूर्वक प्रकट हो सका है। इन्द्र से गरुड पखो एव अद्भुत नेत्रो के पाने की याचना बडी ही रोमाटिक बन पडी है।

शब्दार्थ—सामर सुन्दर—श्री कृष्ण, श्याम सुन्दर। ए बाट—इस रास्ते से। आएत—आते हुए। तें—इससे। लागलि आँखि—आंखे मिल गईं, प्रेम हो गया। आरति—सटपटाकर, प्रेमावेश मे। साजि न भेले—सँभाल भी न सकी। आंचर—अचल-पट। साखि—साक्षी, गवाह। कत—कहाँ। तकर—उसका, श्री कृष्ण का। अधिबास—घर, रहने का स्थान। दूरहु दूगुन—दुगने फासले से। एडि—पार करके।

आबग्रो—ग्राती हू। पुनू—फिर। ग्रास—ग्राशा। चतुरपने—चतुराई। मदन—कामदेव। बान—बाण। मुरुछलि—मूर्च्छित। ग्रछग्रों—हू। पद—पग। धरइत—धरते ही। मोए—मुझे। देखल—देख लिया। नागर जन—रसिक जन। हिरदय—हृदय। भेदि न भेले—फटा नही। रसातल—पाताल। लाज—लज्जा से। सुरपति-पाए—इन्द्र के चरणो पर। भागग्रो—भागती हू। पाँखि—पख। नन्द क नन्दन—नन्द के नन्दन, श्री कृष्ण। हो—मैं। देखि ग्राबग्रो—देख ग्राऊँ। मनोरथ—मन का सकल्प। राखि—रखकर।

(४०)

कानु हेरब छल मन बड साध।
कानु हेरइत भेल ग्रत परमाद।
तब धरि ग्रबुधि मुगुधि हम नारि।
कि कहि कि सुनि किछु बुझिए न पारि।
साग्रोन घन सम झर दु नयान।
ग्रबिरत धस-धस करए परान।
की लागि सजनी दरसन भेल।
रभसे ग्रपन जिउ परहथ देल।
ना जानू किए करु मोहन-चोर।
हेरइत प्रान हरि लेइ गेल मोर।
ग्रत सब ग्रादर गेल दरसाइ।
जत बिसरिए तत बिसर न जाइ।
बिद्यापति कह सुन बर नारि।
धैरज धरु चित मिलब मुरारि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति श्री कृष्ण के प्रेम मे विकल राधा जी की मनोवेदना उन्ही के मुख से एक सखी को प्रकट कराते हुए लिखते है—

राधा जी कहती हैं कि हे सखी, श्री कृष्ण के दर्शन करने की मन मे बडी कामना थी ग्रौर उन्हे देखने से इतना बडा पाप-प्रमाद हो गया कि जब से उन्हे देखा है तब से मैं ग्रजानी, ग्रबोध मुग्धा नारी-सी बन गई हूँ। ग्रब किसी से क्या कहू, क्या सुनू—कुछ जान नही पाती। मेरे दोनो नयन श्रावण के बादलो की भाति झम-झमकर बरसते हैं। प्राण हर समय धक-धक किया करते हैं। हे ग्राली, किसलिए मुझे श्री कृष्ण का दर्शन हुग्रा—न होता तभी ग्रच्छा था। मैंने तो हँसते-खेलते ही ग्रपना प्राण ग्रन्य था उनके हाथो मे सौप दिया, ग्रब नही जानती कि वह प्राणो के चोर श्री कृष्ण मेरे प्राणो का क्या करेगे? ग्ररे, श्री कृष्ण तो देखते-देखते ही मेरे प्राणो को हर ले गए। वे इतना ग्रादर या प्रेम प्रकट कर गए कि उसे जितना भूलना चाहती हू उतना ही नहीं भूल

पाती। कवि विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दर बाले राधा, मैं जो कहता हू, वह सुनो। तुम चित्त मे धीरज धारण करो, तुम्हे तुम्हारे चित्तचोर श्री कृष्ण फिर मिलेंगे।

विशेष—यहाँ प्रणय जन्य पश्चात्ताप, मूर्च्छा एव विकल्पादि भावो का प्रभावशाली चित्रण है। प्रथम मिलन मे ही यदि विरह का पर्वत टूट पडे तो नारी की दशा बडी दयनीय हो जाती है—

"कि कहि कि सुनि किछु बुझिए न पारि।
साओन घन सम झर दु नयान।
अबिरत धस धस करए परान।"

इन पक्तियो मे ऐसी ही मनोव्यथा के स्वर झकृत किए गए हैं।

'धस धस' एव 'घन सम झर दु नयान' उक्तियो से यह स्पष्ट है। सबसे बडी विशेषता तो यह है कि विद्यापति ने प्राय विरह की दशा का चित्रण स्वाभाविक किया है, रीतिकालीन कवियो की भाँति अतिशयोक्ति अथवा ऊहात्मक पद्धति पर नही। दूर की कौडी लाने की चेष्टा विद्यापति के पदो मे प्रथम तो मिलती ही नही यदि किंचित् कही प्रतीत भी होती है तो वहाँ उसका पर्यवसान यथार्थ के धरातल पर ही हुआ है। अत उनके पदो मे रस सम्बन्धी आघात नही आने पाया। "अत सब आदर गेल दरसाइ। जत बिसरए तत बिसर न जाइ।" पक्तियो मे मिलन की मधुर स्मृति एव विरह की दु खमय अवस्था का बडा व्यापक समन्वय किया गया है। यो भावो के प्रकाशन मे कम शब्दो के द्वारा कविवर विद्यापति ने अपने पदो मे काव्य कला की सूक्ष्मता का बडा सश्लिष्ट परिचय दिया है। मुग्धा के विषय मे यहाँ वर्णन बडा यथार्थ एव शृ गार-रस-सम्मत बन पडा है।

शब्दार्थ—कानु=कृष्ण। हेरब=देखने की। छल=थी। बड साध=बडी कामना। भेल=हुआ। अत परमाद=इतना प्रभाव या पाप या पागलपन। तब धरि=तभी से। अबुधि=अबोध। मुगुधि=मुग्धा। कि=क्या। किछु बुझिए न पारि=कुछ समझ मे नही आता। साओन घन=श्रावण के बादल। झर=झरते या बरसते हैं। दु नयान=दोनो नेत्र। अबिरत=निरतर। धस धस=प्राणो के धक-धक का स्वर। करए=करते है। परान=प्राण। की लागि=किसलिए। दरसन भेल=दर्शन हुआ था। रभसे=हँसी खुशी मे। अपन=अपने। जिउ=प्राण। परहथ देल—पराये हाथो दे देना। किए—क्या। करु—करेगे। गेल—गए। मोर—मेरे। अत—इतना। जत—जितना। बिसरिए—भुलाना। तत—उतना। बिसर न जाइ—भुलाया नही जाता। आदर—यहाँ प्रेम से आशय है। बर नारि—सुन्दर नारी, राधा। धैरज—धैर्य। धरु—रक्खो। चित—हृदय। मिलब—मिलेंगे। मुरारि—श्री कृष्ण।

(४१)

कि कहब हे सखि इह दुख ओर।
बाँसि - निसास - गरल तनु भोर।
हठ सयँ पइसए स्रवनक माझ।
ताहि खन बिगलित तन मन लाज।
बिपुल पुलक परिपूरए देह।
नयन न हेरि हेरए जनु केह।
गुरु - जन समुखहि भाव तरग।
जतनहि बसन झाँपि सब अग।
लहु - लहु चरन चलिए गृह माझ।
आजु दइब बिहि राखल लाज।
तनु मन बिबस खसए निबि-बध।
कि कहब बिद्यापति रहु धद।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति श्री कृष्ण-प्रेम मुग्धा राधा जी के हृदयावेशो को उन्ही के मुख से एक सखी को प्रकट कराते हुए लिखते है—

राधा जी कहती हैं कि हे आली, मैं इस दु ख की सीमा के प्रति क्या कहू, यह तो असीम है। श्री कृष्ण की बाँसुरी के विषैले स्वर की मादकता के कारण शरीर की चेतना जाती रहती और बेखुदी छा जाती है। वह वशी-स्वर हठात् कानो मे घुस जाता है और बस उसी क्षण तन-मन की लज्जा पिघलकर बह जाती है—मैं निर्लज्ज-सी हो जाती हू। शरीर मे अत्यधिक रोमाच भर जाता है पर तब भी मैं उन्हे आखो से इसलिए नही देख पाती कि कोई ऐसा करते हुए मुझे देख न ले। घर के बडे-बूढ़ो के सामने काम-भावना की तरग न प्रकट हो इसका मैंने प्रयत्न किया और झट से वस्त्र से अपने अगो को—कुचादि को—छिपा लिया। इस प्रकार धीरे-धीरे या शिथिल-शिथिल पाँव रखती हुई मैं घर आई हू। आज ईश्वर या ब्रह्मा ने ही मेरी लाज रख ली जो इस प्रकार सयम धर कर निकल आई और किसी ने देखा नही। अन्यथा, काम-भाव से मेरा तन-मन विवश हो गया था और नीबीबध (धोती का बाँध) भी ढीला हो चला था। इस प्रकार कविवर विद्यापति कहते हैं कि मैं स्वय उलझन मे पड गया कि यदि इतना सयम न रखा जाता तो क्या होता ?

विशेष—श्री कृष्ण की मुरली-माधुरी का गुण कृष्ण-भक्त कवियो के लिए बडा व्यापक रहा है। सूर ने इस ओर खूब लिखा है। प्रस्तुत पद मे मुरली-महिमा का गान विद्यापति ने बडी विशिष्टता से गाया है—

"बाँसि - निसास - गरल तनु भोर
हठ सयँ पइसए स्रवन क माझ।"

—पद के समस्त वर्णन की जड हैं ये पक्तियाँ। फिर मुरली का प्रभाव भी कितना अति-इन्द्रीय था—

"बिपुल पुलक परिपूरए देह
नयन न हेरि हेरए जनु केह।"

—पद मे सभोग-शृ गार की भावना का प्राधान्य है। काम-भाव मे रोमाच की दशा का चित्रण अनिवार्य-सा हो जाता है अन्यथा शृ गार के रस परिपाक का मजा नही आता और वह इस पद मे यो कथित है—

"तनु मन बिबस खसए निबि-बध"

इस प्रकार समस्त पद मे काम-शृ गार की भावना का प्रकरण बडी स्वच्छन्दता से किया गया है जिसके ऊपर कला का झीना-झीना आवरण डाला गया है जिसकी अभिव्यक्ति बरबस विद्यापति ने यो कहकर मानो की है—

"कि कहब विद्यापति रहु धद"

शब्दार्थ—कि कहब—क्या कहू। इह—यह। ओर—सीमा। बाँसि—वशी। निसास गरल—विषैले स्वर। तनु भोर—शरीर मे बेखुदी छा जाना। हठ सयँ—बल से, हठात्। पइसए—घुसता है। स्रवनक—कानो। माझ—मे। ताहि खन—उसी क्षण। बिगलित—पिघल जाना। बिपुल—बहुत अधिक। पुलक—रोमाच। परिपूरए—पूर्णत भर जाना। हेरि—देखना। हेरए—देख ले। जनु केह—कही कोई। गुरु-जन—बडे-बूढे। समुखहि—सामने। भाव तरग—काम-भावना। जतनहि—प्रयत्न से। बसन—वस्त्र। सब अग—आशय काम-भाव उद्वेलक कुचादि अगो से है। लहु-लहु—धीरे-धीरे। गृह—घर। दइब—ईश्वर। बिहि—ब्रह्मा। राखल लाज—लज्जा रख ली। बिबस—विवश। निबि—धोती का बध या कोचा। धद—उलझन या द्वद्व।

(४२)

अत न बेदन मोहि देसि मदना।
हर नहि बला मोहि जुबति जना।
बिभुति-भूषन नहि चानन क रेनू।
बघछाल नहि मोरा नेतक बसनू।
नहि मोरा जटाभार चिकुर क बेनी।
सुरसरि नहि मोरा कुसुम क स्रेनी।
चाँद क बिन्दु मोरा नहि इन्दु छोटा।
ललाट पावक नहि सिन्दुर क फोटा।
नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु।
फनपति नहि मोरा मुकुता-हारु।
भनइ बिद्यापति सुन देब कामा।
एक पए दूखन नाम मोरा बामा।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति बडी विचित्रता से, रमणी का शृंगार-वर्णन करते हैं। रमणी कामदेव को अपने सुन्दरी होने का परिचय बडी चतुराई से यह कहकर दे रही है कि हे कामदेव, तुम मुझे अपना शत्रु शकर जी न समझो जिनपर तुमने अपने पचबाण चलाए थे—

बाला कहती है कि हे कामदेव, तुम मुझे इतनी पीडा न दो, मैं महादेव जी नही वरन् एक तरुणी नारी हू। व्यर्थ ही तुम यह न समझो कि मेरे शरीर पर लगे महादेव जी के विभूति भूषण नही वरन् चन्दन की धूलि है। मेरे शरीर पर महादेव जी की बाघछाला नही है वरन् यह तो मेरी चुनरी है। मेरे सिर पर शकर जी का जटाजूट नही वरन् कुन्तलो की गुथी हुई वेणी है। फिर शकर जी के जटाजूट से निकलती गगाजी नही यह तो मेरी चोटी मे जडी समुज्ज्वल फूलो की लडी है। मेरे कपाल पर चमकता यह महादेव जी का दूज का चन्द्रमा नही वरन् वह तो मेरी चन्दन की बिन्दी है। और यह भी कि मेरे ललाट पर शकरजी का तीसरा ज्वालामय नेत्र नही वरन् सिदूर का टीका लगा है। और मेरे चिबुक पर यह महादेव जी का कालकूट विष लगा हुआ मत जानो वरन् यह तो सुन्दर मृगमद या कस्तूरी का चिह्न है। मेरे गले मे भी शकर जी का सर्प नही पडा है वरन् मुक्ताहार है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे कामदेव,—रमणी ने कहा—सुनो, यदि कोई ऐसे मेरा दोष है कि जो तुम मुझे 'वामदेव' (महादेव को कहते है) समझ सकते हो तो वह दोष है केवल मेरा नाम कि मुझे भी 'बामा' कहा जाता है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शृगार के साथ ही गौण रूप मे अद्भुत रस का भी आस्वादन होता जाता है। महादेव एव सुन्दरी के रूप मे साम्य का उक्त पद वर्णित रूपक बडा अनोखा है। जो सौन्दर्य उपकरण महादेव जी के हैं वही सुन्दरी के भी वर्णित हैं। पर विचित्रता यह है कि उपमान एव उपमेय—शकर एव सुन्दरी का महत्त्व अपने-अपने ढग से अनोखा होकर भी एक है। अन्त मे 'बामा' शब्द से श्लेष-चातुर्य बडी निपुणता से व्यजित है। साथ ही काम सम्बन्धी शृ गार भाव की सूक्ष्म व्यजना भी हृदयग्राही बनी रही है— **"अत न बेदन मोहि देसि मदना"**
—यो कला एव भाव पक्ष का समान अस्तित्व पद के लालित्य को अनूठा सिद्ध कर देता है।

शब्दार्थ—अत—इतनी। बेदन—वेदना, पीडा। देसि—दो। मोहि—मुझे। मदना—कामदेव। हर—महादेव। नहि—नही। बला—वरन्। मोहि—मैं। जुबति जना—तरुण स्त्री। बिभूति-भूषन—भभूत निर्मित आभूषण से लगनेवाले चिह्न। चानन क रेनु—चन्दन के धूलि कण। बघ छाल—शेर की खाल जिसे शकर जी पहनते हैं। नेत क बसनू—नेत के सुन्दर वस्त्र की बनी चुनरी से तात्पर्य है। जटाभार—शकर जी का जटाजूट। चिकुर क बेनी—केशो की गुथी हुई वेणी। सुरसरि—गगाजी। कुसुम क स्रेनी—फूलो की कतार, माला या लडी। चाँद क बिन्दु—चन्दन की बिन्दी

था माँगरी। इन्दु छोटा=शकर जी के भाल पर लगा द्वितीया का चन्द्रमा। ललाट पावक=शकर जी के माथे का ज्वालामय तीसरा नेत्र। सिंदुर क फोटा। सिन्दूर का टीका। कालकूट=वह विष जो महादेव ने पिया था। मृगमद=कस्तूरी। चारु=सुन्दर। फनपति=सर्प। मुकुताहार=मोतियो का हार। भनइ=कहते हैं। देब कामा=कामदेव। पए—पाया है। दूखन=दोष। बामा=स्त्री, वामदेव महादेव जी को भी कहते हैं।

(४३)

मनमथ तोहे की कहब ग्रनेक।
विठि ग्रपराध परान पए पीडसि
ते तुग्र कौन बिवेक।
दाहिनि नयन पिसुन गन बारल
परिजन बामहि ग्राध।
ग्राध नयन - कोने जब हरि पेखल
तैं भेल ग्रत परमाद।
पुर - बाहिर पथ करत गतागत
के नहि हेरत कान।
तोहर कुसुम - सर कतहु न सचर
हमर हृदय पँचबान।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा जी के मुख से निष्ठुर कामदेव के प्रति ग्रनुनय विनय कराते हुए लिखते हैं—

ग्ररे निठुर कामदेव, मैं तुमसे ग्रौर ग्रधिक क्या कहू ? तुमने केवल मुझे इस ज़रा से ग्रपराध के लिए कि मैंने श्री कृष्ण को देखा भर ही था, इतनी बडी प्राणो की पीडा दे डाली है। भला यह तुम्हारा कौनसा ज्ञान एव न्याय है ? ग्रपनी दाहिनी ग्राँख को तो मैंने दुष्टो के डर से श्री कृष्ण को देखने के लिए मना कर रक्खा था ग्रौर बाईं ग्राधी ग्राँख को मैंने घर के लोगो के कारण उन्हे देखने के लिए मना कर रक्खा था, बस केवल ग्राधी ग्राँख की कनखी मात्र से ही जब मैंने श्री कृष्ण को देखा तभी ऐसा प्रमाद हुग्रा कि तुमने मुझे पागल बना दिया। गाँव के बाहर ग्राते-जाते भला कौन ऐसा है जो श्री कृष्ण को नही निहारता ? पर तुम्हारे पुष्पबाण ग्रन्य किसी पर भी नही चलते केवल एक मेरा ही हृदय ऐसा है जिसपर तुम्हारे पचबाण चलते है—भला ऐसा ग्रन्याय किसलिए, मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा है ?

विशेष—प्रस्तुत पद मे ग्राधी ग्राँख के कार्यकलाप एव निक्षेप ग्रपराध का वर्णन बडा चमत्कारयुक्त किया गया है। ग्राधी ग्राँख से देखने भर के ग्रपराध मे कामदेव की सज़ा कितनी ग्रधिक झेलनी पडी। राधाजी का यह सन्देश भी बडे प्रभाव-

शाली ढग से पद मे व्यजित है—"दीठि अपराध परान पए पीडसि" पक्ति इस कथन की पुष्टि है। श्री कृष्ण के सौन्दर्य के प्रति सर्वाकर्षण का भाव बडे सुन्दर ढग से अभिव्यजित हुआ है—

"पुर बाहिर पथ करत गतागत
के नहि हेरत कान।"

—काम-पीडिता राधा की दशा का बडा मर्मभेदी भाव इस पद मे व्यक्त किया गया है जिसमे सर्वस्वाभाविकता एव सत्यता का निर्वाह सफलता से हुआ है—

"तोहर कुसुम-सर कतहु न सचर
हमर हृदय पंच बान।"

—इन पक्तियो मे दु खी नायिका की आत्मा कराह उठी है। भावपक्ष की दृष्टि से यह पद बडा प्रभावशाली कहा जायगा।

शब्दार्थ—मनमथ=कामदेव। तोहे तुझसे। की कहब=क्या कहूँ। अनेक=और अधिक। दिठि=दृष्टि। अपराध = दोष। परान=प्राण। पए पीडसि=पीडा दे डाली है। ते=यह। तुअ=तेरा। बिबेक=ज्ञान, यहाँ न्याय से तात्पर्य है। दाहिनि नयन=दाईं आँख। पिसुन=दुष्ट। बारल=निवारण करना, मना करने से तात्पर्य है। गन=लोग। परिजन=घर के लोग। बामहि=बाई। आध=आधी। कोने=कोर से। हरि=श्री कृष्ण। पेखल=देखा। तै=उसी से। भेल=हुआ। अत =ऐसा। परमाद=प्रमाद, पागलपन। पुर=गाँव। बाहिर=बाहर। गतागत=आना-जाना। के=कौन। नहि=नही। हेरत=देखता है। कान=श्री कृष्ण। तोहर=तेरे। कुसुम-सर=कामदेव के पुष्पबाण। कतहु=किसी पर भी। न सचर=नही चलते। हमर=हमारे, राधा के। पचबान=कामदेव के पचबाण।

(४४)

एक दिन हेरि-हेरि हँसि-हँसि जाय।
अरु दिन नाम धए मुरलि बजाय।
आजु अति नियरे करल परिहास।
न जानिए गोकुल ककर बिलास।
साजनि, ओ नागर - सामराज।
मूल बिनु परधन माँग बेआज।
परिचय नहि देखि आनक काज।
न करए सभ्रम न करए लाज।
अपन निहारि-निहारि तनु मोर।
देइ आलिगन भए बिभोर।

खन खन बेदगधि कला अनुपाम ।
अधिक उदार देखिअ परिनाम ।
बिद्यापति कह आरति ओर ।
बुझिओ न बूझए इए रस भोर ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति एक सखी के द्वारा कृष्ण के प्रति शृ गारिक उपालम्भ का सुन्दर भाव व्यजित कराते हुए लिखते हैं—

अरी सखी ! देख, वह कृष्ण भी कैसा है कि पहले दिन तो मुझे देख-देखकर और हँस-हँसकर चला गया, फिर दूसरे दिन मेरा नाम पकडकर उसी के स्वर को फूक-फूककर मुरली बजाने लगा और आज बहुत ही निकट आकर मुझसे मज़ाक कर गया है। कुछ पता नही उस ऐसे रसिक कृष्ण के साथ आज किस बाला का सभोग-विलास चलेगा। आशय यह है कि न जाने कौन बाला उससे फसकर सभोग करेगी ? हे सखी, वह बडा चालाक सम्राट्-रसिक है कि बिना मूलधन लगाए ही ब्याज माँगता है। अर्थात् श्री कृष्ण तो चतुरो का सम्राट् है कि अपना मूलधन तो लगाता ही नही, दूसरो के धन पर भी ब्याज माँगता है—यह कैसी चालाकी है उसकी ? आशय यह है कि श्री कृष्ण अपना हृदय-धन तो देना नही चाहते और दूसरे के हृदय-धन के आधार पर ब्याजरूप मे रति का आनन्द उठाना चाहते हैं—इसीलिये वह रसिको-चतुरो के भी सम्राट् हैं। वह दूसरों का काम-भाव देख-समझकर भी वास्तविक परिचय नही करना चाहता। आशय है कि वह इतना चालाक है कि किसी नारी के काम-भाव को तो महत्त्व देना नही चाहता अत उससे घनिष्ठ परिचय भी करना नही चाहता—केवल लुका-छिपी करने मे मजा लेता है। अत न उसे किसी का सन्देह है और न किसी बात की शर्म। वह अपने को देखता है, फिर मेरे शरीर को देखता है और फिर अपने-आप आलिगन कर मुझे सकेत देकर स्वय मतवाला हो जाता है। इस प्रकार हर क्षण वह अनोखी काम-भोग सम्बन्धी कला का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार देखने मे तो वह काम-कला के प्रति अत्यन्त उदार अथवा उसका ज्ञाता प्रतीत होता है पर कौन जाने कि परिणामत या वास्तव मे वह इस विषय मे कैसा है—समर्थ या असमर्थ ! कविवर विद्यापति कहते है कि यह तो व्यथा की सीमा कही जायगी कि श्री कृष्ण शृ गार-रस का सम्पूर्ण मर्मज्ञ होते हुए ये इस रस के विषय मे अजाना ही-सा लगता है—इस रस के विषय मे वह सब-कुछ जानते हुए भी जानने पर कुछ नही समझाता या समझता है। आशय यह है कि इसी बात की बडी व्यथा वेदना है कि श्री कृष्ण शृ गार के रस-मर्मज्ञ होते हुए भी स्वय ऐसे बने रहते है मानो कुछ भी नही जानते।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शृ गार के उपालम्भ-भाव की ही प्रधानता वर्णित है। उपालम्भ की चर्चा मे बात का चुटीलापन होना ही उसकी सफलता एव प्रभावदेयता का परिचायक है। तो इस पद मे भी यह चुटीलापन खूब प्रभावशाली ढग पर व्यक्त है—

"खन खन बैदगधि कला अनुपाम
अधिक उदार देखिअ परिनाम ।"

कृष्ण काम-कला मे माना कि विदग्धतापूर्ण है पर किसे पता कि सभोग-क्रिया के 'परिणाम' मे भी वह सफल सिद्ध होगे—यह बडी करारी चोट है उपालम्भ की ! इसी प्रकार वाक्-चातुर्य का चमत्कार भी बडा पैना है—

"मूल बिनु परधन माँग बेआज ।"

महाजन की व्यापार-कुशलता को बडी काव्य-निपुणता के साथ यहाँ घटाया गया है। शृ गारिक भावना का चुहलपन प्रारम्भिक पक्तियो मे बडा उद्दीपन लिये हुए है। "हेरि हेरि हँसि हँसि जाय" उक्ति मे अनुप्रास एव उन्माद के भाव सिमटकर जुड गए हैं जो वासना को आकर्षित-आमन्त्रित करने लगते है। वस्तुत काम-चेष्टाओ के सजीव चित्र उतारने मे अत्यन्त सफल हुए है और उसी साफल्य का प्रतीक है यह पद !

शब्दार्थ—एक दिन=पहले दिन से तात्पर्य है। हेरि हेरि=देख-देखकर । जाय=चला गया। अरु दिन=दूसरे दिन। नाम=उस सखी का नाम जो श्री कृष्ण के आकर्षण का शिकार बनी है। धए=पकडकर। अति=बहुत। नियरे=पास। करल परिहास=मजाक किया । ककर=किसका या किसके साथ। विलास=सभोग। साजनि=सखी। नागर-सामराज=रसिको-चतुरो का सम्राट् । मूल=मूलधन । परधन=पराया धन, परकीया। माँग बेआज=सूद मागता है। आनक काज=दूसरे का काम-भाव। सभ्रम=डर। न करए=नही करता। लाज=लज्जा। अपन=अपने को। मोर=मेरा। बिभोर=मस्त, मतवाला। खन खन=क्षण-क्षण। बैदगधि=विदग्धतापूर्ण। कला अनुपाम=अनुपम काम-कला। उदार=अच्छा या न्यायपूर्ण। परिनाम=अत मे, फलत काम-सभोग के फलस्वरूप कैसा सिद्ध होगा—सफल या असफल। आरति=व्यथा। ओर=सीमा। इए=इस। भोर=मस्त, लीन।

दूती

श्री कृष्ण की दूती

(४५)

धनि धनि रमनि जनम धनि तोर
सब जन कान्हु कान्हु करि झूरए
से तुम्र भाव बिभोर।
चातक चाहि तिम्रासल म्रम्बुव
चकोर चाहि रहु चन्दा।
तरु लतिका म्रवलम्बन करिए
मभु मन लागल धन्दा।
केस पसारि कबे तहुँ राखलि
उर पर म्रम्बर म्राधा।
से सब सुमिरि कान्हु भेल म्राकुल
कहु धनि इथे कि समाधा।
हँसइत कब तुहु दसन देखाएलि
करे कर जोरहि मोर।
म्रलखित दिठि कब हृदय पसारलि
पुनु हेरि सखि कर कोर।
एतहु निदेस कहल तोहे सुन्दरि
जानि तोहे करह बिधान।
हृदय - पुतलि तुहु से सून कलेबर
कवि बिद्यापति भान।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे शृ गारी साहित्य की वर्णन-पद्धति के म्रनुसार कवि-वर विद्यापति श्री कृष्ण की म्रोर से भेजी गई दूती के द्वारा विरहातुर राधा को श्री कृष्ण के प्रणय-प्रतीति का सदेश दिलवाते हुए लिखते हैं—

दूती कहती है कि हे सुन्दरी राधा ! तुम्हारा जीवन जन्म म्रौर तुम स्वय भी धन्य हो क्योकि सब गोप-गोपी जन तो श्री कृष्ण की याद मे "हा कन्हैया, हा कन्हैया" चीख-चीखकर जलते एवं विकल होते हैं म्रौर एक तुम सौभाग्यशालिनी हो कि तुम्हारे वियोग-भाव के चिन्तन मे श्री कृष्ण विभोर म्रथवा मतवाले बने रहते हैं। दूती

कहती है कि आज यह कैसा विरोधाभास हो रहा है कि पिपासित मेघ चातक की ओर चाह भरी दृष्टि से निहार रहा है, चन्द्रमा चकोर के रूप-सौन्दर्य को निहारने मे विसुध है एव वृक्ष लता का आधार पा रहा है। यह सब विपरीत दशाएँ देखकर दूती कहती है कि हे राधा, मेरे मन मे द्वद्व या सन्देह पैदा हो रहा है कि ऐसा भला क्यो हो रहा है? आशय यह है, ऐसी विरह-मिलन की व्याकुलता तुम जैसी नारी मे होनी चाहिये थी, किन्तु पुरुष होकर श्री कृष्ण मे क्यो उत्पन्न हो गई जिसका सकेत उपरोक्त जड उपकरण भी दे रहे है—यहाँ मेघ, चन्द्रमा एव वृक्ष कृष्ण का प्रतीक है एव जिन पर वे आकर्षित-आभासित होते है वे सब प्राकृतिक उपकरण राधा का प्रतीक है। दूती आगे कहती है कि हे सुन्दरी राधे, तुम कभी बाल बिखराकर जब अपने वक्षस्थल पर कुचो के ऊपर, अपना आधा अचल धरे हुए थी बस उसी रूप-शोभा को श्री कृष्ण ने देखा और आज उसका स्मरण करके वह व्याकुल हो रहे हैं। हे सुन्दरी, कहो कि उनकी इस स्मृति-विकलता का तुम्हारे पास अब क्या उपचार है, क्या कर सकती हो? और यह भी, कि कब तुमने हँसते हुए उन्हे अपने सुन्दर दाँत दिखलाए और फिर हाथ से हाथ जोडकर मुडती-सी, अगडाई लेते हुए अपनी अलक्षित या छिपी-छिपी दृष्टि से, अपने हृदय का समर्पण करते हुए भाव का प्रदर्शन कर उनकी ओर एक बार देखकर सखी का आलिगन किया था? आशय यह है कि हे राधा, तुमने ही तो हँसकर, अगडाई लेकर, तिरछी चितवन से हृदय सर्मपित करने का भाव प्रदर्शित करते हुए सखी का आलिगन लेकर उनकी काम-भावना जगाकर उन्हे अपनी ओर आकर्षित किया था और जब अब वह तुम्हारे इश्क के मरीज़ बन गए हैं तो तुम्हारे पास उनके मर्ज की क्या दवा है? हे सुन्दरी, मैंने तुमसे श्री कृष्ण की दशा का इस प्रकार से इतना इशारा कर दिया है, अब तुम्ही उनके स्वस्थ होने का उपचार जानो कि क्या होगा। तुम ही श्री कृष्ण के हृदय की पुतली या मूर्त्ति हो, उनका शरीर तुम्हारी छवि-मूर्त्ति के बिना खण्डर के समान सूना-सूना है। कविवर विद्यापति का अनुमान भी ऐसा ही है जैसा कि उन्होने दूती के माध्यम से प्रकट किया है।

विशेष—शृ गारी काव्य मे दूती का दर्जा नायक-नायिकाओ के प्रेम-सम्बन्ध को स्थापित या खडित करने मे प्रमुख रहा है। दूती के वर्णन मे वाक्-चातुर्य का होना नितान्त अनिवार्य समझना चाहिये। उसका कथन निश्चित ही प्रभावशाली होता है। जायसी के पद्मावत मे पद्मावती को फुसलानेवाली दूती का चरित्र पठनीय है। बिहारी की दूती भी इसी भाँति के चरित्र को धारण किये आती है। प्रस्तुत पद मे राधा जी से दूती का यह कथन कितना पुष्ट एव प्रभावशाली है—

"चातक चाहि तिआसल अम्बुद
चकोर चाहि रहु चन्दा।
तरु लतिका अबलम्बन करिए
मझु मन लागल धन्दा।"

राधा के प्रति श्री कृष्ण के दृढ प्रणयाकर्षण को इन विरोधी तथ्यो द्वारा पुष्ट करना निश्चित ही बडा विचित्र एव प्रभावशाली सिद्ध होता है। फिर रति-मुग्धा राधा की आगिक चेष्टाओ का सजीव चित्रवत् वर्णन पद-सौष्ठव को अत्यधिक बढ़ा देता है—

"केस पसारि कबे तहुँ राखलि
उर पर अम्बर आधा।"

इन पक्तियो मे नायिका की काम-शृ गारी आगिक चेष्टाओ का बडा कलात्मक किंतु यथार्थ चित्रण मन लुभा लेता है।

"हृदय-पुतलि तुहु से सून कलेबर
कवि विद्यापति भान।"

इन पक्तियो मे राधा-कृष्ण के अगाध प्रेम की अभिव्यजना कर कवि ने विशुद्ध काव्य-शृ गार की प्रतिष्ठा की है।

शब्दार्थ—धनि=धन्य है। रमनि=रमणी, राधा के लिये। जनम=जन्म। धनि=सुन्दरी। तोर=तेरा। झूरए=व्याकुल होते है। जन=लोग, गोप-गोपिकाएँ। से=वह। तुअ=तेरे। भाव बिभोर=भाव मे लीन। चाहि=चाहता है। तिआसल=पिपासित। अम्बुद=बादल। तरु=वृक्ष। अबलम्बन=आधार। करिए=करता है। मझु=मेरे। लागल धन्दा=सन्देह होता है। केस=बाल। पसारि=खोलकर, फैलाकर। कबे=कभी। तहुँ=तूने। राखलि=रक्खा होगा। उर=हृदय। अम्बर=अचल-पट। से=उसी। सुमिरि=स्मरण करके। भेल आकुल=व्याकुल होते हैं। इथे=इसका। समाधा=समाधान, उपचार। दसन=दाँत। देखाएलि=दिखलाये। करे कर=हाथ से हाथ। जोरहि=जोडकर। मोर=मुडना, अँगडाई लेना। अलखित=अलक्षित, छिपी-छिपी। दिठि=दृष्टि। पसारलि=फैलाकर, यहाँ समर्पित करने से आशय है। पुनु=फिर। हेरि=देखकर। सखि कर कोर=सखी का हृदय से आलिगन करना। कोर=चिपटाना, गोद मे लेना। एतहु=इतना। निदेस=इशारा। कहल=कहना। तोहे=तुझे। जानि=जाने या जानती है। बिधान=उपचार, इलाज। करह=करो। हृदय-पुतलि=हृदय की पुतली या मूर्त्ति। सून=सूना। कलेबर=शरीर। भान=कहता है।

(४६)

सुन सुन ए सखि कहए न होए।
राहि राहि कए तन मन खोए।
कहइत नाम पेम भए भोर।
पुलक कम्प तनु घरमहि नोर।
गद-गद भाखि कहए बर-कान।

जब नहि हेरब तकर से मुख।
तब जिउ-भार धरब कोन सुख।
तुहु बिनु श्रान इथे नहि कोइ।
बिसरए चाह बिसरि नहि होइ।
भनइ विद्यापति नाहि बिबाद।
पूरब तोहर सब मन साध।

भावार्थ—प्रस्तुत पद को कविवर विद्यापति दूती के मुख से श्री राधा जी को श्री कृष्ण के प्रेम-विरह एव स्मृति की चर्चा कराते हुए लिखते है—

दूती कह रही है कि हे सखी राधे सुनो, सुनो ! मुझसे श्री कृष्ण का, तुम्हारे विरह-वियोग का दु ख नही देखा जाता। वे तुम्हारा नाम 'हा राधा हा राधा' कहकर अपने तन-मन की सुधि भूले जा रहे है। आशय है कि श्री कृष्ण राधा की याद मे उसका नाम ले-लेकर अचेत हुए जाते है। हे राधे, वे तुम्हारा नाम रटते-रटते प्रेम मे लीन हुए जाते है, उनके शरीर मे यह और रोमाचित हो उठता है उनकी आँखो से अश्रु झरने लगते हैं। रुद्ध गले से श्री कृष्ण यो कहते है—"राधा के बिना देखे मेरे प्राण जाते रहेगे। जब मैं उस राधा का मुख नही निहार सकूँगा तो किस सुख की उपलब्धि के लिये जीवन के भार को ढोऊँगा ?" हे राधे, तुम्हारे अलावा यहाँ कोई भी दूसरी ऐसी उनकी प्रेमिका नही है जिससे वे प्यार करे। वह तुम्हे भूलना भी चाहे तो भूल नही सकते। कविवर विद्यापति कहते है कि इस बात मे कोई विवाद या सदेह नही कि तुम्हारे मन की मिलन-इच्छा पूर्ण होगी—राधा और कृष्ण का मिलन होकर रहेगा।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शृगार के वियोग पक्ष को श्री कृष्ण के रोमाच, मूर्च्छादि सचारी भावो के द्वारा प्रबल बनाया गया है, उसके प्रति स्थायी भाव की सहज प्रतिष्ठा होती है और शृ गार-रस का आस्वादन फल पाठक को उपलब्ध होता है। "बिसरए चाह बिसरि नहि होइ" पक्ति प्रणय की स्वाभाविक अटल समृति को जाग्रत करती है। इसी भाव-साम्य को रखती हुई लेखक की यह पक्ति पठनीय है—"लाख भुलाने पर भी आती याद किसी की पीर जगाती।" दूती की कुटिल चतुराई प्रभावशाली ढंग से इस पक्ति मे व्यक्त है—"तुहु बिनु आन इथे नहि कोइ।" सम्पूण पद मे भावो की तीव्रता और उन्हे व्यक्त करने की सरलता का गुण सराहनीय कहा जायगा। इससे प्रतीत होता है कि विद्यापति ने कला-पक्ष-प्रदर्शन के लिये नही प्रेम के स्वाभाविक तीव्र भावो को प्रकट करने के लिये ही सम्भवत अपने पद रचे पर वह सच्चे अर्थो मे कलाकार थे अत कला-पक्ष ने उनके पदो को स्वत सजा दिया है। रीतिकालीन काव्यो की तरह उनके पदो मे कला-प्रदर्शन आग्रह का दास नही बना।

शब्दार्थ—सुन=सुनो। ए=हे। सखि=राधा को सम्बोधन है। कहए न

होए=कहा नही जाता। राहि=राधा। कए=कहके या करके। खोए=खो दिया, लीन कर दिया। कहइत=कहते हुए। पेम=प्रेम। भए भोर=विभोर हो जाते है, विमुग्ध हो जाते हैं। पुलक=रोमाच। कम्प=कम्पन। तनु=शरीर। धरमहि नोर= अश्रु झरने लगते है। गद-गद=रुद्ध। भाखि=कहने है। बर=सुन्दर। कान=श्री कृष्ण। दरस बिनु=बिना देखे हुए। निकस=निकलना, जाना। परान=प्राण। तकर= उसका, राधा का। से=वह। जिउ-भार=जीवन का भार। धरब=धरूँ, रक्खूं। कोन सुख=किस सुख के लिए। तुहु=तरे। आन=और, दूसरी। इथे=यहाँ। कोइ=कोई। बिसरए=भुलाने की। चाह=इच्छा। पूरब=पूर्ण। तोहर=तुम्हारी। मन साध=मनोकामना।

(४७)

कटक माझ कुसुम परगास।
भमर बिकल नहि पावए पास।
भमरा भेल घुरए सबे ठाम।
तोहे बिनु मालति नहि बिसराम।
रसमति मालति पुन पुन देखि।
पिबए चाह मधु जीब उपेखि।
उ मधुजीबी तोञे मधुरासि।
साँचि धरसि मधु मने न जलासि।
अपनेहु मने गुनि बुझ अबगाहि।
तसु दूषन बध लागत काहि।
भनहि बिद्यापति तौं पय जीब।
अधर सुधारस जौं पय पीब।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति दूती के मुख से राधा को श्री कृष्ण का प्रणय-विरह-वर्णन करती हुई एक नया रूपक रचती है कि श्री कृष्ण तो भौंरे है और श्री राधा जी इसे लुभाने और विरह कटको मे फसाने वाली मालती है। इस प्रकार के रूपक के माध्यम से दूती कहती है—

हे राधे, मैं कॉटो मे विकसित एक सुमन देख रही हूँ। उसके लिये एक भँवरा पीडित है किंतु उस सुमन का नैकट्य प्राप्त नही कर पाता। आशय यह है कि राधे, तुम कृष्ण के लिये कॉटो मे खिली एक पुष्पकली हो, किंतु वह भँवरे के समान तुम्हे चाहते हुए भी, तुम्हारे निकट नही आ पाता, तुमसे सभोग-सुख को प्राप्त नही कर पाता। यद्यपि भौरा सर्वत्र—फूल फूल पर—भटकता फिरता है किंतु हे मालती रूपी राधे, उस कृष्ण रूपी भँवरे को तुम्हारे अतिरिक्त अन्यत्र कही विश्राम या सुख उपलब्ध नही हो पाता। अरे, भँवरा तो फिर-फिर अपनी रस प्रिया मालती को ही खोजता

है। वह तो जीवन की उपेक्षा करके—मर करके भी—उसी का प्रणय-मधु पीने का इच्छुक रहता है। हे राधे, वह प्रेमी कृष्ण भी भँवरे की भाँति रस पीकर जीने वाला मधुजीवी है और तुम हो मधु की राशि—मालती की रसीली बेल की भाँति। ठीक है, यदि तुम यह चाहती हो कि तुम्हारे मधु को वह न पीए, तुम उसे सचित ही किये रहो तो खुशी से ऐसा करो पर उसके हृदय को तो न जलाओ। आशय यह हो सकता है कि राधा श्री कृष्ण को अपने रूप-यौवन का समर्पण न दे तो न दे किंतु उसके प्रणय-सम्बन्ध का बहाना तो न करे, उसे झटके से तोड दे या फिर उसकी मधु से प्यास बुझा दे, उसे तरसाए-जलाए और यो न तडपाए। आगे दूती कह रही है कि हे राधे, तुम अपने मन मे भी तो विचार करो यदि श्री कृष्ण तुम्हारे विरह मे अपने प्राण-त्याग कर दे तो उसकी हत्या का पाप सिवाय तुम्हारे और भला किसको लगेगा ? कविवर विद्यापति कहते है कि दूती ने राधा जी से साग्रह कहा कि श्री कृष्ण तभी जीवित रह सकते है जब तुम्हारी अधर-सुधा का पान कर लेगे, प्य स बुझा सकेगे अन्यथा निश्चय प्राण-त्याग कर देगे।

विशेष—कृष्ण काव्य मे भ्रमरगीत परम्परा का बडा महत्त्व है। सूरदास, नन्ददास एव अन्यान्य कृष्ण-भक्त कवियो ने अपने-अपने ढग से श्री कृष्ण को भ्रमर के रूपक से अपने काव्य मे वर्णित किया है। इस पद मे कविवर विद्यापति ने भी श्री कृष्ण को भँवर मानकर दूती के मुख से उनकी प्रेम-भावना का प्रकाशन किया है कितु एक बात नई यह कि राधा को मालती के रूपक से प्रकट किया गया है जिससे एक नया रस, नई अभिव्यक्ति एव नई कल्पना का रस आ गया है। जायसी ने भी सुन्दरी पद्मावती के लिए मालती की परिकल्पना की है। अस्तु—यद्यपि यहाँ वर्णन मे ऊहात्मकता आ गई है कितु पद के अत तक शनै -शनै कवि ने भावो की स्पष्टता पैदा कर दी है। इस पक्ति से यह बात परिपुष्ट होती है—

"उ मधुजीवी तोजे मधुरासि।
साँचि धरसि मधु मने न जलासि।
अपनेहु मने गुनि बुझ अबगाहि।
तसु दूषन बध लागत काहि।"

दूती का वाक्-चातुर्य एव शृगार-रस की भावना अपने पूर्ण प्रभाव मे प्रध्वनित है।

शब्दार्थ—कटक माझ=काँटो मे। कुसुम=पुष्प। परगास=उजाला। भमर=भ्रमर। बिकल=परेशान। नहि पाबए पास=नैकट्य नही पाता। भेल घुरए=भटकता फिरता है। सबे ठाम=सभी स्थानो पर। मालति=मालती की लता, यहा सुन्दरी राधा जी से तात्पर्य है। बिसराम=आराम, चैन। रसमति=रसमयी, राधा रूपी मालती को। पुन=फिर। पिबए=पीना। चाह=इच्छा। जीब उपेखि=

प्राणो की उपेक्षा करके, मर कर भी। उ=वह, भँवरा या श्री कृष्ण। मधुजीबी= मधु के आसरे जीवन बिताने वाला, यहा रसिक कृष्ण से तात्पर्य है। तोञें=तू, राधा से तात्पर्य है। मधुरासि=मधु की खान, राधा को कहा गया है। साँचि धरसि=सचित करके रक्खो। मने=मन को। न जलासि=न जलाओ, दग्ध न करो। अपनेहु=अपने। गुनि बुझ=विचार करके। अबगाहि=अवगाहन करके, जाँचो। तसु=तैसा। बध= हत्या। दूषन=पाप। लागत काहि=किसे लगेगा। भनहि=कहते है। तौ पय जीब= उसी दशा मे जीवित रह सकता है। जौ पय पीब=जबकि पी सकेगा। अधर सुधारस= अधरामृत।

(४८)

आजु हम पेखल कालिन्दी कूले।
तुअ बिनु माधव बिलुठए धूले।
कत सत रमनि मनहि नहि आने।
किए विष दाह समय जल दाने।
मदन-भुजगम दसल कान।
बिनहि अमिय-रस कि करब आन।
कुलबति धरम काँच समतूल।
मदन दलाल भेल अनुकूल।
आनल बेचि नीलमनि हार।
से तुहु पहिरबि करि अभिसार।
नील निचोल झाँपबि निज देह।
जनि धन भीतर दामिनि-रेह।
चौदिक चतुर सखी चलु सग।
आजु निकुज करह रस-रग।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति सुचतुर दूती के द्वारा राधा को श्री कृष्ण के पास शृ गार-सज्जित होकर चलने की फुसलाहट प्रकट कराते हुए लिखते हैं—

दूती कहती है कि हे राधे, आज हमने जमुना के किनारे पर श्री कृष्ण को देखा जो तुम्हारे विरह-वियोग के कारण धूल मे लोट रहे थ। आशय यह है कि श्री कृष्ण की दशा पागलो जैसी लगती थी। कितने सौ की सख्या मे सुन्दरियाँ उनके पास उपस्थित है किंतु कोई भी उनके मन को नही लुभा पाती या किसी भी सुन्दरी को वह मन मे नही अपनाते। जब विरह-विष की ज्वाला हृदय मे जल रही हो उस समय उसे बुझाने के लिये जलद.न या जल डालने से क्या लाभ ? कृष्ण को तो कामदेव रूपी नाग ने काट लिया है। ऐसी दशा मे, हे राधे, केवल तुम्हारे प्रेमामृत-रस के उनका विरह-विष उतारने

के लिए अन्य कोई उपाय क्या हो सकता है, या कोई अन्य उपाय क्या कर सकता है ? राधा को अपनी कूट बातो से दूती फुसलाती हुई कहती है कि हे राधे, यदि तुम कुलवती हो तो सुनो, कि उसका धर्म भी कॉच के समतुल्य होता है जो कभी न कभी सहज ही टूट जाने वाला होता है। आशय यह है कि कुलवती का धर्म ब्रह्मचर्य भी तो एक न एक दिन पुरुष के साथ सभोग करने मे खडित हो ही जाता है। जब यह एक न एक दिन होना ही है तो आज तो अवसर भी अनुकूल है कि कामदेव स्वय तुम्हारा दलाल बना हुआ है। आशय यह है कि राधा-कृष्ण के सभोग का अवसर भी अनुकूल है अत राधा को श्री कृष्ण के पास अभिसारार्थ चल देना चाहिए। मैं नीलमणियो का हार चुरा-छिपा कर तुम्हारे लिये लाई हूँ उसे तुम पहनो और प्रियतम श्री कृष्ण के पास चलकर अभिसार अथवा गुप्त रूप से परिरम्भण करो। ये लो, नीली चोली पहनकर अपने कुचो को झीने-झीने ढग से ऐसे छिपा लो जो प्रतीत हो मानो बादलो के भीतर बिजली की रेखा चमक-झमक रही हो। तुम्हारे साथ चारो ओर से तुम्हारी चतुर सखिया भी तो चलेगी और यो तुम निस्सकोच एव निस्सदेह चलकर श्री कृष्ण के साथ निकुज मे काम-क्रीडा-रास-रग मनाना।

विशेष—प्रस्तुत पद मे भी पूर्व पदो की भाँति दूती की कूट बातो का प्रभावशाली वर्णन प्रधान है। पद मे इन पक्तियो मे रोमाण्टिक तत्त्व बडे झिलमिलाते हुए बिखरे हैं—

"कुलबति धरम काँच समतूल।"

एव

"नील निचोल झाँपबि निज देह।
जनि धन भीतर दामिनि-रेह।"

नीली झीनी चोली के भीतर रमणी के गोरे कुच के प्रति उत्प्रेक्षा जोडी गई है जैसे बिजली की रेखा झलके। वस्तुत यह कल्पना जितनी रगीन है वही यथार्थ मे उतनी ही मादक भी है। इस प्रकार कला के झीने आवरण मे कविवर विद्यापति ने अपने शृ गार-वर्णन को बडा मनमोहक एव पारदर्शी फानूस-सा सुन्दर बना दिया है। इस दृष्टि से विद्यापति की समानता कही-कही अँगरेजी के प्रसिद्ध कवि कीट्स एव सस्कृत के कवि कालिदास से की जा सकती है।

शब्दार्थ—कालिन्दी कूले=यमुनातट पर। पेखल=देखा। बिलुठए=लोट रहे थे। कत सत रमनि=कई सौ सुन्दरियाँ। मनहि नहि आने=मन को नही भा रही थी। जल दाने=जलदान। दाह=जलन। दसल=काटा। अमिय=अमृत। आन=अन्य। समतूल=समतुल्य। बेचि=चुरा-छिपाकर। निचोल=चोली। झाँपबि=छिपाना। रेह=रेखा। चौदिक=चारो ओर। रस-रग=रति-क्रीडा आदि। करह=करो।

(४६)

आज पेखल नन्द - किसोर।
केलि - बिलास सबहु अब तेजल
अह निसि रहत बिभोर।
जब धरि चकित बिलोकि बिपिन-तट
पलटि आओलि मुख मोरि।
तबधरि मदनमोहन तरु कानन
लुटइ धीरज पुनि छोरि।
पुनु फिरि सोइ नयन जदि हेरबि
पाओब चेतन नाह।
भुजगिनि दसि पुनहि जदि दसए
तबहि समय बिष जाह।
अब सुभ खन धनि मनिमय भूषन
भूषित तनु अनुपाम।
अभिसरु बल्लभ हृदय बिराजहु
जनि मनि काचन - दाम।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रमानुसार कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद मे श्री कृष्ण की दूती द्वारा राधा जी को श्री कृष्ण की विरह-दशा का वर्णन कराते हुए लिखते हैं—

दूती कह रही है कि हे राधे, आज मैंने श्री कृष्ण को देखा कि उन्होने केलि-क्रीडा सब कुछ ही तुम्हारे वियोग मे त्याग रक्खा है। वह रात-दिन तुम्हारे ध्यान और आह्वान मे ही लीन रहते है। जबसे तुमने उन्हे वन मे यमुनातट पर प्रेम-कटाक्षमयी दृष्टि से देखा है और फिर मुख मोडकर चली आई हो तभी से श्री कृष्ण वन-वृक्ष के तले धैर्य छोडकर मूर्च्छित हुए लेटे है। अब यदि उन्ही प्रेम-कटाक्षमयी आँखो से तुम उन्हे फिर देखोगी तभी वह नाथ सचेत होगे। सुनते है कि नागिन डसकर यदि फिर एकबार और काट ले तभी उसका जहर दूर होता है। आशय यह है कि राधा जी चलकर पुन श्री कृष्ण को कटाक्षमयी दृष्टि से निहारे तब उनका विरह-विष दूर होगा। (कहावत है, विष को विष मारता है) हे सुन्दरी राधे, यह शुभ घडी है। इसमे अपने शरीर को मणिजटित गहनो से सजा-सँवार लो और चलकर श्री कृष्ण से अभिसार करो। हे राधे, यही समय है कि तुम अपने प्रिय श्री कृष्ण के उर मे इस प्रकार लिपट या विरज जाओ जैसे सोने के धागे मे पिरोई मणियो की माला गले से लिपट जाती है।

विशेष—यहाँ श्री कृष्ण के विरह-वियोग का चित्रण तो प्रधान है ही, किंतु "नयन

जदि हेरबि" उक्ति के द्वारा काम-कटाक्ष की महत्ता का प्रेमी के लिये अपरम्पार महत्त्व प्रदर्शन बडा विशेष बना है—"पाओब चेतन नाह", उक्ति इसकी पुष्टि है। विष से विष मरता है—इस लोकमान्यता को काव्य के साँचे मे बडे प्रसगानुकूल ढाला गया है—

"भुजगिनि दसि पुनहि जदि दसए
तबहि समय बिष जाह।"

अत की दो पक्तियो मे उत्प्रेक्षा-उपमा का चमत्कार बडा मधुर भाववर्द्धक है—

"अभिसरु बल्लभ हृदय बिराजहु
जनि मनि काचन - दाम।"

कविवर विद्यापति के पदो मे सबसे बडी विशेषता है शब्द-लाघव के द्वारा भाव-विस्तार की मजिल छूने की। इसकी पुष्टि मे अकेली यह पक्ति अपने भाव-विस्तार मे एक प्रेमी की विरहावस्था का पूरा अफसाना पेट मे छिपाये है—"लुटइ धीरज पुनि छोरि।" श्रीकृष्ण एकान्त, शान्त, क्लात जगल मे यमुनातट पर लेटे है— क्यो ?—बस यही प्रेम का अफसाना है जिसमे श्री कृष्ण और राधा का सम्पूर्ण अतीत का प्रणय-व्यापार, लुका-छिपी, रास-क्रीडा, मान-विनोद, मुरली-वादन और चुम्बन-आलिगन का समाहार है। यह कविवर विद्यापति को छोडकर अन्य हिन्दी के गीतकारो मे यह विशेषता प्राय बहुत कम देखने को मिलती है।

शब्दार्थ—केलि-बिलास=आनन्द-विनोद। तेजल=त्याग दिया है। अह निसि=दिन-रात। बिभोर=लीन। जब धरि=जबसे। चकित=चचल-सी, कटाक्ष-मयी। बिलोकि=देखा था। बिपिन-तट=जगल मे, यमुनातट पर। पलटि आओलि=फिरकर लौटकर आई हो। मुख मोरि=मुड मोडकर। तबधरि=तबसे। लुटइ=लोटते है। छोरि=त्यागकर। सोइ नयन=उन्ही प्रेम-कटाक्ष नयनो से। जदि=यदि। हेरबि=देखोगी। पाओब चेतन=स्वस्थ पाएगे, चेतनावस्था मे होगे। नाह=नाथ, श्री कृष्ण। भुजगिनि=नागिन। दसि=काटकर, डसकर। जाह=जाता है। सुभ खन=शुभ घडी, अनुकूल समय। धनि=बाला, राधा। मनिमय भूषन=मणिजटित ज़ेवर। भूषित=शोभित करना। अनुपाम=अनुपम। अभिसरु=अभिसार करो। बल्लभ=प्रिय, श्री कृष्ण। बिराजहु=बैठो। जनि=मानो। मनि=मणि। काचन-दाम=स्वर्ण धागे मे।

(५०)

प्रथम सिरिफल गरब गमओलह
जौं गुन-गाहक आबे।
गेल जौबन पुनु पलटि न आबए
केबल रह पछताबे।

सुन्दरि, अबसर फेरि न आएत
बचन करहु समधाने।
तोहि सनि नारि दिबस दस अछलिहुँ
ऐसन उपजु मोहि भाने।
जौबन रूप ताबेधरि छाजत
जाबे मदन अधिकारी।
दिन दस गेले सखि सेहुओ पराएत
सकल जगत परिचारी।
बिद्यापति कह जुबति लाख लह
पडल पयोधर तूले।
दिन दिन आगे सखि ऐसनि होएबह
घोसिनि घोर क मूले।

भावार्थ—पूर्व पदो के प्रसगक्रमानुसार कविवर विद्यापति दूती के द्वारा श्री राधा जी को कृष्ण के साथ प्रेम-सभोग की ओर प्रेरत कराते हुए लिखते है—

दूती कहती है कि हे सुन्दरी राधे, जब पहले तुमने श्रीफल अथवा बेल का घमड अपने गोल-पुष्ट कुचो के द्वारा चूर किया, इसी महत्त्व के कारण तो तुम्हारे पास रूप-गुण के ग्राहक आते है। आशय यह है कि राधा जी के गोल-पुष्ट कुचो की ओर आकर्षित होकर ही रसिक जन उससे सभोगादि की कामना करते हैं, यह आकर्षण तो पहले राधा जी के द्वारा ही पैदा किया गया है जो कि उन्होने अपने गोल-पुष्ट उरोजो से श्रीफल की महत्ता को भी कम कर दिया। दूती आगे कहती है कि हे राधे, पर एक बात और है और वह यह कि यौवन के उभार की सम्पत्ति स्थायी नही होती। जब यौवन गया तो बस गया, फिर लौटकर नही आता परन्तु उसको न भोगने का पछतावा ही फिर शेष रह जाता है। हे सुन्दरी, ऐसा बढिया मौका पुन न आएगा, मेरी इस बात पर तुम विचार-विश्वास करलो। तुम्हारी जैसी मैं भी दस दिन तक रमणी बनी थी--ऐसा मैं अनुमान करती हूँ, किंतु अब देखो यौवन के बीत जाने पर मैं कितनी भद्दी लगती हूँ। अत हे राधे, यह सत्य जानो कि रूप और यौवन तभी तक सुन्दर लगता है जब तक कि कामदेव का साम्राज्य रहता है। अरी, दस दिन बीत जाने पर वह निठुर कामदेव भी तो ससार मे यह ढिढौरा पीटता हुआ किनारा कर जायगा—"मैं जा रहा हूँ, देखो, मैं जा रहा हूँ।" विद्यापति कवि कहते है कि दूती ने अत मे राधा जी को फुसलाते हुए कहा कि हे सुन्दरी, तुम लाख प्रयत्न करो पर तुम्हारे कुच समय की तराजू पर पडे हैं। ज्यो-ज्यो दिन व्यतीत होते जाएंगे त्यो-त्यो तुम और तुम्हारे ये सुन्दर कुच ऐसे मूल्यहीन होते जाएगे कि जैसे घोसिन या ग्वालिन के मट्ठे का कोई मूल्य नही होता। आशय यह है कि समय के साथ-साथ राधा का रूप-सौन्दर्य-रस छाछ या मट्ठे के समान

व्यर्थ होता जायगा।

विशेष—प्रस्तुत पद मे दूती का वाक् चातुर्य विशिष्ट एव परम्परागत है। यौवन की क्षणभगुरता एव उसकी रस-चर्चा के माध्यम से दूतिया नायिकाओ को काम-क्रिया के लिए प्रेरित करती थी। उसी को यहा दूती यो प्रकट करती है—

'गेल जौबन पुनु पलटि न आबए
केबल रह पछतावे।"

इन पक्तियो का साम्य कविवर जायसी के पद्मावत की दूती की इन पक्तियो से कितना घनिष्ठ है—

"जोबन हेरत मिले न हेरा। तेहि बन जाइहि करहि न फेरा।"

उक्ति-चमत्कार की दृष्टि से यह पक्तिया कितनी प्रबल है—

"बिद्यापति कह जुबति लाख लह
पडल पयोधर तूले।
दिन दिन आगे सखि ऐसनि होएबह
घोसिनि घोर क मूले।"

समय की तराजू पर रमणी के कुचो का सौन्दर्य मूल्य घटता जायगा और एक दिन ग्वालिन के मट्ठे जैसा मूल्यहीन हो जायगा। नारी का स्थूल सौन्दर्य क्षणिक है, उसकी विनष्टि की सम्भावित कल्पना के प्रति "घोसिनि घोर क मूले।" उक्ति तीर-सी लगी हुई है। यहा कवि की सूक्ष्म काव्य-दृष्टि का स्पष्ट रूप देखने को मिलता है। इस प्रकार की उक्तियो से कविवर विद्यापति की महाकवित्व शक्ति का सहज परिचय मिलता है।

शब्दार्थ—प्रथम=पहले तो। सिरिफल=श्रीफल, बेल। गरब=घमड। गमओलह=नष्ट कर दिया। जौ गुन-गाहक आबे=जिससे गुण का ग्राहक आता है। गेल जौबन=बीता या गया यौवन। पुनु=फिर। पलटि=लौटकर। आबए=आता है। पछतावे=पश्चाताप। आएत=आएगा या आता है। समधाने=समाधान, विचार। बचन=सीख या बात। करह=करो। तोहि सनि=तेरे समान। दिबस दस=दस दिन के लिए, कुछ दिनो के लिए। अछलिहुँ=मैं भी ऐसी ही थी। ऐसन=ऐसा। उपजु=पैदा होता है। भाने=अनुमान। तावेधरि=तब तक ही। छाजत=सुन्दर लगता है। जावे=जब तक। मदन अधिकारी=कामदेव का शासन है। गेले=बीतने पर। सेहओ=वह भी। पराएत=किनारा कर जाता है, भाग जाता है। परिचारी=प्रचार करता हुआ, ढिढौरा पीटता हुआ। सकल जगत=सारे ससार मे। तूले=तराजू। होएबह=हो जाओगी। घोसिनि=ग्वालिन। घोर=छाछ, मट्ठा। क=के। मूले=मूल्य वाली।

(५१)

ए धनि कमलिनि सुन हितबानि।
प्रेम करबि जब सुपुरुष जानि।
सुजन क प्रेम हेम समतूल।
दहइत कनक दिगुन होय मूल।
टुटइत नहिं टुट प्रेम अद्‌भूत।
जइसन बढ़ए मृनाल क सूत।
सबहु मतगज मोति नहिं मानि।
सकल कठ नहिं कोइल-बानि।
सकल समय नहिं रीतु बसन्त।
सकल पुरुष-नारि नहिं गुनबन्त।
भनइ बिद्यापति सुन बर नारि।
प्रेम क रीत अब बुझह बिचारि।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रमानुसार दूती के मुख से कविवर विद्यापति राधा को श्री कृष्ण के प्रति काम-भावना से प्रेरित कराते हुए लिखते है—

दूती कहती है कि हे सुन्दरी राधा, हे पद्‌मिनी, अपनी भलाई की बात मेरे मुख से सुनो। जब सत्पुरुष को पहचान लो तभी प्रेम करो। सज्जन प्रेमी का प्रेम सोने के समतुल्य खरा एव निष्कपट होता है। उसका स्वर्ण जैसा प्रेम, जब तपता या सकट मे पडता है तब दुगने मूल्य का हो जाता है। आशय यह है कि सज्जन का प्रेम सकट मे और अधिक दृढ एव मूल्यवान सिद्ध होता है। सज्जन का प्रेम ऐमा दृढ अद्‌भुत होता है कि तोडने से भी नही टूटता। वरन् इस भाँति वह और बढता है जिस प्रकार खीचने से मृणाल का सूत्र बढता है। सभी हाथियो मे मोती माणिक नही होते, सभी कठो में कोकिल की पचम तान नही होती, सभी समय बसत ऋतु नही होती, सभी स्त्री-पुरुष गुणवान नही होते। आशय यह है कि इसी प्रकार से सभी प्रेम करना और निभाना नही जानते। कविवर विद्यापति कहते है कि दूती ने राधिका जी से कहा—हे सुन्दरी ! सुनो, अब तुम सच्चे प्रेम की निराली रीति को सोच-समझ लो। आशय यह है कि राधा जी यह सोच-समझ लें कि श्री कृष्ण के साथ उनकी प्रीति, अन्य की अपेक्षा कितनी अटूट, अनोखी, असमान एव असामान्य है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सच्चे प्रेम की परख, प्रतिष्ठा एव महत्ता के प्रति इस उक्ति से बडा उत्तम प्रकाश डाला गया है—

"सुजन क प्रेम हेम समतूल।
दहइत कनक दिगुन होय मूल।

टुटइत नहि टुट प्रेम अद्‌भूत।
जइसन बढए मृनाल क सूत।"

इसके साथ ही कबीर के शब्दो मे—"प्रेम न बाढी ऊपजे प्रेम न हाट बिकाय" वाली उक्ति का कुछ भाव-साम्य "सबहु मतगज" से लेकर "नहि गुनबन्त" पक्तियो तक बडी हृदयग्राही व्यवस्था से व्यजित किया गया है। प्रस्तुत पद मे प्रेम करने-कराने का एक सैद्धान्तिक भाव ही प्रधान है जिसे प्रभावशाली ढग से काव्य-कथन मे ढाल दिया गया है।

शब्दार्थ—धनि=सुन्दरी। कमलिनि=पद्‌मनी। हितबानि=हित-सम्पादन करने वाली बात। हेम=स्वर्ण। समतूल=समतुल्य। दहइत=तपने से। कनक=सोना। दिगुन=दुगना। मूल=मूल्य। टुटइत=टूटता। अद्‌भूत=अनोखा, सच्चा। जइसन=जैसे। मृनाल क सूत=कमलनाल के भीतर का सूत्र। मतगज=हाथी। मोति=मोती। मानि=मणि। कोइल-बानि=कोयल के पचम प्रकार।

राधा की दूती

(५२)

सुनु मनमोहन कि कहब तोय।
मुगुधिनि रमनी तुअ लागि रोय।
निसि-दिन जागि जपय तुअ नाम।
थर-थर काँपि पडए सोइ ठाम।
जामिनि आध अधिक जब होइ।
बिगलित लाज उठए तब रोइ।
सखिगन जत परबोधय जाय।
तापिनि ताप ततहि त ताय।
कह कविसेखर ताक उपाय।
रचइत तबहि रयनि बहि जाय।

भावार्थ—पूर्व पदो मे जिस भाँति श्री कृष्ण की ओर से उनका विरह-सदेश ले जाकर दूती राधिका को अपने वाक्-चातुर्य से फुसलाती-बनाती है उसी प्रकार प्रस्तुत पदो के प्रसग मे राधिका जी की ओर से भेजी गई उनकी दूती श्री कृष्ण से जाकर उनका विरह-सदेश देती है। यह शृ गारी काव्य की परम्परानुगत प्रसग समझना चाहिए।

राधिका की दूती श्री कृष्ण से कह रही है—हे मनमोहन, श्रीकृष्ण! मेरी बात सुनो, पर मैं नही समझ पा रही कि तुमसे क्या कहू ? केवल इतना ही कहना तुम्हारे लिए काफी होगा कि तुम्हारी प्राण-प्रिया रमणी राधा तुम्हारे लिए दिन-रात, रोती

कलपती है। दिन रात जाग-जागकर बस वह तुम्हारा नाम ही भजती है। वह तुम्हारे विरह-वियोग के कारण थर-थर कर काँपती है और उसी स्थान पर शिथिल तन होकर गिर पडती है जहा पर खडी होती है। जब आधी रात से अधिक हो जाती है, तब वह लोक-लाज खोकर रो उठती है, पिघल पडती है। जितना सखिया उसे धीरज बधाती और समझाती हैं उतना-उतना ही वह तपस्विनी विरह-ज्वाला से तपित-तरलित हो जाती है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि दूती ने श्री कृष्ण से कहा कि जब तक उसकी विरह-ज्वाला को बुझाने का कोई उपचार किया जाता है कि रात व्यतीत हो जाती है। आशय यह है कि हर रात वह जलते-जलते ही बिता देती है।

विशेष—किसी दिलजले शायर के उद्गार है—

"उलफत का तब मजा है दोनो हो बेक़रार।
दोनो तरफ हो आग बराबर लगी हुई।"

इस पद के द्वारा दोनो ओर के—राधा और कृष्ण के—महान् प्रेम के विरह का परिचय हमे सहज मिलता है। इससे पूर्व के पढे पदो मे श्री कृष्ण की जो स्थिति दूती द्वारा राधा से कही गई है उसका पूर्ण रसास्वादन इस पद-प्रसग से जुडकर पूर्णत प्राप्त होता है। यहा राधा-कृष्ण के अटल प्रेम के प्रति कही गई बिहारी की यह पक्ति जादू का-सा प्रभाव डालती है—"चिर जीवौ जोरी जुरे क्यो न सनेह गम्भीर।" अस्तु। पद मे शृ गार के भाव-पक्ष की प्रधानता तो है ही साथ ही मूर्च्छा, रोमाच एव मुग्धावस्था के सचारी भावो का भी सहज एव मर्म-बेधक प्रकाशन हुआ है—

"थर-थर काँपि पडए सोइ ठाम।
जामिनि आध अधिक जब होइ।
बिगलित लाज उठए तब रोइ।"

प्रस्तुत उद्धरण की तीसरी पक्ति "बिगलित लाज उठए तब रोइ।" मे कितने उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करके विद्यापति ने लाजवन्ती राधा की लाज को विगलित किया है, यह उनकी सूझ की मर्यादित पराकाष्ठा कही जायगी। 'रयनि बहि जाय' उक्ति मे भाव-प्रभाव बडा उत्कृष्ट है।

शब्दार्थ—कि कहब=क्या कहूँ। तोय=तुम्हे। मुगुधिनि=प्रेम-लीना रमणी। तुअ लागि=तुम्हारे लिए। निसि-दिन जाग=रात-दिन जाग करके। जपय=भजती है। पडए=गिर पडती है। सोइ ठाम=उसी स्थान पर। बिगलित लाज=लज्जा बह जाती है। जामिनि आध=अर्धरात्रि। अधिक जब होइ=जब अधिक हो जाती है। सखिगन=सखिया। जत=जितना। परबोधय=समझाती या धैर्य बधाती है। जाय=जाकर। तापिनि=तपस्वनी, यहा राधा की ओर सकेत है। ततहि तत=उतना-उतना ही। ताय=दहती व पिघलती है। ताक=उसका। उपाय=उपचार। रचइत=बनाया जाना, किया जाना। तबहि=तभी। रयनि=रात। बहि जाय=व्यतीत हो जाती है।

(५३)

माधब ! कि कहब से बिपरीत ।
तनु भेन जरजर भामिनि अन्तर
चित बाढल तसु प्रीत ।
निरस कमल-मुख कर अबलम्बइ
सखि माझ बइसइ गोइ ।
नयन क नीर थीर नहि बांधइ
पक कयल महि रोइ ।
मरम क बोल, बयन नहीं बोलय
तनु भेल-कुहु-ससि खीना ।
अबनि उपर धनि उठए न पारइ
धएलि भुजा धरि दीना ।
तपत कनक जानि काजर भेल तनु
अति भेल बिरह-हुतासे ।
कबि बिद्यापति मन अभिलासत
कान्ह चलह तसु पासे ।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति दूती द्वारा कृष्ण को राधा जी की विरहावस्था का वर्णन कराते हुए लिख रहे है—

दूती कह रही है कि हे माधव, राधा के विषय मे क्या कहूँ ? वहा तो सब कुछ विपरीत या अनहोना नजर आता है । उस बिचारी स्त्री का जिस भाँति ऊपर से शरीर अत्यत कृश हो कमजोर हो गया है, उसी भाँति, इसके विपरीत उसके भीतर चित्त मे प्रेम की मात्रा बढ गई है । वह अपने निराश-नीरस मुख-कमल को हाथो पर टिकाए दु ख-मुद्रा मे बैठी रहती है—सखियो के बीच बैठी मानो वह यो अपने मुख-दु.ख को छिपाया चाहती है । पर, उसका नेत्र-जल या अश्रु-प्रवाह स्थिर नही रहता, वह सदैव झरता, बरसता एव बहता ही रहता है । रो-रोकर उसने सारी धरा को पकिल या कीचडमय कर दिया है । वह किसी से अपने मन का प्रेम-रहस्य बोलकर वाणी द्वारा नही कहती । कृष्णपक्ष के चन्द्र की भाँति विरह मे उसका शरीर क्षीण हो गया है । वह बाला शरीर की निर्बलता के कारण उठ भी नही सकती । अत सखिया ही उसकी बाह पकडकर पृथ्वी पर से उठाकर उसे खडा करती है । हाय, हाय, उसकी तपे कुदन कचन जैसी काया अत्यत विरह-ज्वाला मे जलकर मानो काजल-सी काली हो गई है । कविवर विद्यापति अभिलाषा करते है कि श्री कृष्ण उस विरह-ज्वाल-दहिता श्री राधा के पास चले ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे विरह की मर्मबेधी दशा का चित्रण अत्यत प्रभावशाली

किया गया है। 'प्रेम-विरह' नारी जीवन पर पुरुष की अपेक्षा अधिक आतक जमाता है—ऐसा कहा गया है—इसी तथ्य की अभिव्यजना प्रस्तुत पद मे प्रमुख हुई है। उदाहरण के लिए पक्तिया प्रस्तुत हैं—

"निरस कमल-मुख कर अबलम्बइ
सखि माझ बइसइ गोइ।"

इन पक्तियो मे कलहान्तरिता नायिका के विरह-सोच मे ग्रस्त उसकी मुख-मुद्रा का बडा सजीव, चित्रवत् अकन हुआ है। "तनु भेल-कुहु-ससि खीना" पक्ति मे राधा के क्षीण तन की उपमा कृष्णपक्ष के चद्र से बडी उपयुक्त एव विरह-भाव-प्रभाव सम्मत है। सबसे विशेष बात पद मे यह है कि वियोग-शृगार की स्थिति को रीतिकालीन कवियो की भाँति यहा कविवर विद्यापति ने अत्यत ऊहात्मक नही दिखलाया, उसे बहुत-कुछ सहज स्वाभाविक रहने दिया है। बीमार और निर्बल आदमी को हाथ पकडकर उसके अपने उठाते ही हैं, इसी का प्रकाशन यो किया गया—

"अबनि उपर धनि उठए न पारइ
धएलि भुजा धरि दीना।"

हा 'पक कयल महि रोइ" उक्ति मे अतिशयोक्ति है किन्तु वह सहज आलकारिक प्रयोग के अतरगत ही प्रयुक्त हो गई है—जानबूझ कर विद्यापति ने विरह-दशा का बढा-चढा प्रदर्शन करना नही चाहा, ऐसा स्वत प्रतीत होता है। मर्म को छूनेवाली विरह-दशा का चित्रण इन पक्तियो मे निखर आया है—

"तपत कनक जानि काजर भेल तनु
अति भेल बिरह - हुतासे।"

विरह की ज्वाला मे नारी का तपे हुए कुदन-सा तन जलकर काला पड जाना स्वाभाविक ही है। किन्तु इस परिवर्तन की तह मे विरह के भाव की व्यजना मन को मसोस जाती है। यो भाव-पक्ष एव कला-पक्ष का सन्तुलित रूप इस पद मे निहित हुआ है।

शब्दार्थ—माधब=श्री कृष्ण। कि=क्या। कहब=कहूँ। से बिपरीत=वह उल्टी है। जरजर=कमजोर। भामिनि=स्त्री। अन्तर=हृदय, भीतर। चित=चित्त, हृदय। बाढल=बढ गई। तसु=उसी भाँति। निरस=नीरस, म्लान। कर अबलम्बइ=हाथो पर टिकाकर। सखि माझ=सखियो के बीच मे। बइसइ=बैठती है। गोइ=छिपाकर। क=का। नीर=पानी, अश्रु। थीर=स्थिर। पक=कीचड। कयल=कर दी है। महि=पृथ्वी। मरम=मन का रहस्य। बयन=वचन। बोलय=बोलती है। कुहु-ससि=कृष्णपक्षी चद्र। खीना=क्षीण, कमजोर। अबनि=पृथ्वी। धनि=बाला। उठए न पारइ=उठ नही पाती। धएलि भुजा=बांह पकडकर। दीना=दु ख-ग्रस्ता। तपत कनक=तपा स्वर्ण, कुदन। बिरह-हुतासे=विरह की आग।

तसु=उसके। पासे=पास।

(५४)

लोटइ धरनि, धरनि धरि सोई।
खने खन साँस खने खन रोई।
खने खन मुरछइ कठ परान।
इथि पर की गति दैव से जान।
हे हरि पेखलों से बर नारि।
न जीबइ बिनु कर-परस तोहारि।
केग्रो-केग्रो जपय बेद विठि जानि।
केग्रो नव ग्रह पुज जोतिग्र ग्रानि।
केग्रो केग्रो कर धरि धातु बिचारि।
बिरह-बिखिन कोइ लखए न पारि।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रमानुसार कविवर विद्यापति राधा की दूती द्वारा श्री कृष्ण को राधा जी का विरह-वियोग सुनवाते हुए लिखते हैं—

दूती कह रही है कि हे माधव, राधा धरती पर लोटती है और धरती से ही चिपटकर सोती है। आशय यह है कि श्री कृष्ण के काम-विरह मे वह धरती पर ही अचेत पड़ी सोती रहती है। उसकी अवस्था बडी विचित्र एव दयनीय है कि क्षण-क्षण मे वह उसासे लेती है और क्षण-क्षण मे रो उठती है। क्षण-क्षण मे वह मूर्च्छित होती है और उसके प्राण कठ मे आकर अटक गए हैं। इसके पश्चात् उसकी क्या दशा होगी इसे परमेश्वर ही जाने। व्यजना यह है कि—हे कृष्ण, वह अब मरणासन्न हो रही है—यदि तुम न चले तो मर जाएगी। हे माधव, मैं उस स्त्री (राधा) को देखकर ही आई हूँ। उसकी दशा इतनी नाजुक है कि तुम्हारे हाथ का प्रेम-मधुर स्पर्श पाए बिना वह किसी भी प्रकार से जीवित नहीं रह सकती। यह जानकर कि उसे किसी की कुदृष्टि या नजर लग गई है कोई-कोई उसके निवारणार्थ जप एव वेदपाठ करते है, कोई ज्योतिषी बुलवा-कर उससे मत्रपाठ या नवग्रहो का पूजापाठ कराया जाता है और कोई-कोई उसकी कलाई पकडकर नब्ज़ का विचार करते हैं कि वह जीवित भी रहेगी या नही। किन्तु हाय, कोई भी यह नही देख पाता कि वह तो तुम्हारे विरह मे विक्षिपा हो गई है। तुम्ही उसके सच्चे वैद्य हो।

विशेष—प्रेम के वियोग-पक्ष की दशा बडी नाजुक होती है। शृगारी कवियो ने उसपर नई पुरानी सभी प्रकार की अपने-अपने ढग से उद्भावनाए की है। इस पक्ष को काव्य मे सफलतापूर्वक व्यक्त करने के लिए अनुभावो एव सचारी भावो की प्रयुक्ति यथासगत स्वाभाविक एव स्पष्ट होनी चाहिए। तभी शृ गार-रस के आस्वादन का पूरा भावन हो सकता है। प्रस्तुत पद मे यही सफलता की कसौटी है।

प्रारम्भ से ही—

"लोटइ धरनि, धरनि धरि सोई ।
खने खन साँस खने खन रोई ।
खने खन मुरछइ कठ परान ।"—

अनुभावो आदि का प्रकाशन स्वाभाविक एव स्पष्ट है। विरह-व्यथा की दशा का सही भेद कोई नही जानता "बिरह-बिखिन कोइ लखए न पारि"—पर इसी पक्ति से सूक्ष्म व्यजना की ध्वनि यह भी निकलती है कि विरह-व्यथा की दशा को जानना ही क्या, इलाज करना भी किसी को आता है और वह है एक प्रेमी—राधा का प्रेमी—माधव ! व्यजना उत्तम काव्य का लक्षण है। विद्यापति मे यह व्यजना-वृत्ति खूब प्रकटी है। व्यग्रप्राणा रमणी की विरह-दशा का प्रकृत चित्रण बडा मासल एव भावनामय है—भला इन पक्तियो को पढकर किसका हृदय न पसीज उठेगा—

"हे हरि पेखलौं से बर नारि।
न जीबइ बिनु कर-परस तोहारि ।"

मीरा की आत्मा भी एक बार श्री कृष्ण के विरह मे ऐसे ही चीख उठी थी—

"मीरा की प्रभु पीर मिटेगी
जब वैद्य सँवरिया होय ।"

शब्दार्थ—लोटइ=लोटती है। धरनि=धरती। धरि=पडकर, लिपटकर। सोई=सोती है। खने खन=क्षण-क्षण मे। रोई=रोती है। मुरछइ=मूर्च्छित होती है। कठ परान=प्राण कठ या गले मे अटकते हैं। इथि पर की=उसके पश्चात् की। गति=दशा। दैव=परमेश्वर। से जान=उसे जानता है। हरि=श्री कृष्ण। पेखलौं=देखा है। से=उस। बर नारि=सुन्दर स्त्री। न जीबइ=नही जीवित रहेगी। बिनु=बिना। कर-परस ताहारि=तुम्हारे हाथो के स्पर्श बिना। केओ=कोई। जपय=जपता है। बेद=वेद। दिठि जान=नज़र लगी समझकर। पुज=पूजना। जोतिअ=ज्योतिषी। आनि=बुलाकर या आकर। धातु बिचारि=नब्ज का विचार करना। बिरह-बिखिन=विरह-विक्षिप्तता। न पारि=नही पाता। लखए=देख।

(५५)

अबिरल नयन गरए जल - धार।
नव-जल बिंदु सहए के पार।
कि कहब सजनी तकर कहिनी।
कहए न पारिअ देखलि जहिनी।
कुच-जुग ऊपर आनन हेरु।
चाँद राहु डर चढ़ल सुमेरु।

अनिल अनल बम मलयज बीख ।
जेहु छल सीतल सेहु भेल तीख ।
चाँद सताबए सबिता हु जीनि ।
नहि जीबन एकमत भेल तीनि ।
किछु उपचार मान नहि आन ।
ताहि बेआधि भेषज पँचबान ।
तुअ दरसन बिनु तिलओ न जीब ।
जइओ कलामति पीउख पीब ।

भावार्थ—पूर्व पदो के प्रसगक्रमानुसार कविवर विद्यापति दूती द्वारा श्री कृष्ण को राधा की विरहावस्था का दु खपूर्ण सदेश दिलवाते हुए लिखते है—

दूती कहती है कि हे माधव, राधा के नेत्रो से निरतर अश्रुधारा बहती रहती है। उसके उन गरम अश्रु-बिन्दुओ को कौन ऐसा पत्थर दिल होगा जो सहन कर सकेगा ? कौन ऐसी सखी होगी जो उसकी व्यथा-कथा को सहज ही कह सके। मैंने उसकी दशा जैसी यथार्थ मे देखी है उसे कह नही सकती। वह अपने दोनो कुचो के ऊपर अपना मुख लटकाए उन्हे देखती रहती है और यो ऐसा प्रतीत होता है जैसे राहु रूपी विरह के भय से चन्द्रमा रूपी मुख कुच रूपी सुमेरु पर्वत पर चढा बैठा हो। विरह मे उसके लिए ठडी हवा आग की लपट जैसी हो गई है एव चन्दन तीखा विष तुल्य बन गया है। उसकी इस विषम विरहावस्था मे जो पदार्थ शीतल थे वह भी तीक्ष्ण बन गये है। चन्द्रमा उसे सूर्य के ताप से बढकर कष्टदायक हो गया है। वह अब जीवित कदाचित् ही रह सके क्योकि ये तीनो—वायु, चन्दन एव चन्द्रमा—उसे कष्ट देने के लिये मिलकर एक हो गये है। (जैसा कि ऊपर वर्णन आ चुका है) उसके लिये अब दूसरा कोई उपचार उपयुक्त नही, केवल उसके कि उसके विरह-रोग की दवा कामदेव के पास मिल सकती है। आशय यह है कि वह श्री कृष्ण रूपी कामदेव के साथ प्रणय-सभोग की दवा पाए तो स्वस्थ्य हो वर्ना नही। हे कृष्ण, तुम्हारे मिलन बिना वह तिल या पल भर भी जीवित नही रह सकती भले ही वह सुन्दरी या कलामती अमृत का पान ही क्यो न कर ले, पर उसका जीना असम्भव ही होगा। हे कृष्ण, तुम उससे जाकर मिलो।

विशेष—शृ गार-वर्णन के दो पक्ष होते है—सयोग एव विप्रलभ। सयोग के उद्दीपन कारण विप्रलभ मे नायक नायिकाओ की मन स्थितियो पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। प्रस्तुत पद मे विप्रलभ शृगार की अवस्था का प्रतिपादन बडा समीचीन हुआ है—इन पक्तियो मे देखिए—

"अनिल अनल बम मलयज बीख ।
जेहु छल सीतल सेहु भेल तीख ।

चांद सताबए सबिता हु जीनि ।
नहि जीबन एकमत भेल तीनि ।"

किन्तु यहा विशेषता यह है कि वर्णन मे असहनीय अतिशयोक्ति अथवा अस्वाभाविकता नही आ पाई क्योकि अनिल, मलयज एव चन्द्र का विरहणी की विरहावस्था के प्रति षडयत्रकारी प्रभाव दिखलाया गया है। अतत वियोगवर्णन की चरम सीमा और उसका एक मात्र उपचार बडी निपुणता से इगित किया गया है—

"तुअ दरसन बिनु तिलओ न जीब ।
जइओ कलामति पीउख पीब ।"

यहाँ कविवर जयदेव रचित गीतगोविन्द के चतुर्थ सर्ग की यह पक्तिया याद आ जाती है—

"निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनु विन्दति खेदयधीरम् ।
व्यालनिलय मिलनेन गरलमिव कलपति मलयसमीरम् ।
माधव, मनमिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ।
सा विरहे तव दीना ।"

शब्दार्थ—अविरल=निरतर। गरए=गिरती या बहती है। जल-धार=अश्रु-धारा। नब=नए या गरम-गरम अश्रु। सहए के पार=सह सकता है। तकर=उसकी। कहिनी=कहानी, व्यथा-कथा। पारिअ=सकना। जहिनी=जैसी। कुच-जुग=दोनो उरोज। आनन=मुख। हेरु=देखना। चढल=चढा। अनिल=हवा। अनल=आग। मलयज=चन्दन। बीख=विष। छल=था। सीतल=ठडा। सेहु=वह भी। भेल=हुआ। तीख=तीक्ष्ण, त्यक्त। सताबए=सताना। सबिता=सूर्य। हु जीनि=को भी जीतकर, उससे भी बढकर। एकमत=एक राय होना, षडयत्रकारी हो जाना। तीनि=तीन—वायु, चन्दन एव चन्द्रमा। किछु=कुछ। उपचार=इलाज। मान नहि आन=उपयुक्त लगना। ताहि=उसकी। बेआधि=बीमारी, व्याधि। भेषज=दवा। पंचबान=कामदेव। तुअ=तुम्हारे, श्री कृष्ण के। तिलओ=तिलमात्र, पल भर को भी। न जीब=नही जियेगी। जइओ=भले ही से आशय है। पोउख=पीयूष, अमृत। पीब=पीना।

(५६)

लाखे तरुअर कोटिहि लता
जुबति कत न लेख ।
सब फूल मधु मधुर नहीं
फूलहु फूल बिसेख ।
जे फुल भमर निन्दहु सुमर
बासि न बिसरए पार ।

जाहि मधुकर उड़ि उड़ि पड़
सेहे संसार क सार ।
तेजहु रचइत नयन नोर तुहु
सुन्दरि, अबहु बचन सुन ।
सबे परिहरि तोहि इछ हरि
आपु सराहहि पुन ।
तोहरे चिन्ता तोहरे कथा
सेजहु तोहरे चाब ।
सपनहु हरि पुनु पुनु कए
लए उठए तोर नाब ।
आलिंगन दए पाछु निहारए
तोहि बिनु सुन कोर ।
अकथ कथा आपु अबथा
नयन तेजए नोर ।
राहि राही जाहि मुंह सुनि
ततहि अप्पए कान ।
सिरि सिबसिंघ रस जानए
कबि बिद्यापति भान ।

भावार्थ—पूर्व पदो के प्रसगक्रम मे दूती श्री कृष्ण के पास से लौटकर राधा के पास आ गई है। यहा कविवर विद्यापति दूती के मुख से ही श्री कृष्ण का राधा के प्रति अगाध प्रेम प्रदर्शित कराते हुए लिखते है—

दूती कहती है कि हे राधे, इस ससार मे लाखो वृक्ष (रसिक) हैं और करोडों लतिकाए (सुन्दरिया) भी हैं। तरुणियो का कोई हिसाब नही अर्थात् वह अनगिनत हैं। किन्तु सभी पुष्पो मे मधुर पराग नही होता वरन् फूलो मे भी वह फूल विशेष होते हैं या अल्प होते हैं जिनमे मधु निहित रहता है। आशय यह है कि कृष्ण भी ऐसे ही पुष्प हैं, रस-रजित सच्चे राधा के प्रेमी हैं। आगे दूती कहती है कि हे राधे, वे ही विशेष पुष्प होते हैं जिन्हे सुप्तावस्था मे भी भौरे स्मरण करते हैं और जिनकी खुशबू को वे भूल नही पाते। जिस सुमन पर भौरे उड-उडकर गिर पडते हैं वही पुष्प ससार मे अत्युत्तम होते हैं। आशय यह है कि श्री कृष्ण ही एक ऐसे अनूठे पुष्प के सामन हैं जिस पर भँवरे रूपी रसिक जान देते है, उनको हर समय स्मरण रखते है, भूल नही पाते। दूती कहती है कि हे सुन्दरी राधे, मेरी बात सुनो, रोना-धोना या आसू गिराना तजो क्योकि वे श्री कृष्ण भी तो सब कुछ त्यागे हुए केवल तुम्हारी ही कामना किये हुए हैं। अत तुम सौभाग्यशालिनी पुण्य-कृति हो, अपने पुण्यो की सराहना करो कि तुम्हे कृष्ण जैसे महान्

प्रेमी का प्यार प्राप्त है। उन्हे हर समय तुम्हारे मिलन की ही चिन्ता है, तुम्हारे प्रणय की कथा ही कहते हैं और शय्या पर तुम्हारी ही चाहना करते हैं। अरे, वे तो स्वप्न मे भी फिर-फिरकर तुम्हारा नाम ही ले उठते है। स्वय शून्य आलिगन करके पीछे देखते हैं कि क्या तुम आलिंगन मे बधी हो और कोई पीछे देख तो नही रहा है। किन्तु तुम्हारे बिना उनकी गोद सूनी रहती है। उनकी प्रणय-विरह-कथा बस अकथनीय है—ऐसी ही समझ लो जैसी अवस्था, हे राधा, तुम्हारी हो रही है। हे राधे, आखो से अश्रु बहाना छोडो। राह पर वे जिस पथी के मुख से तुम्हारा नाम सुन लेते हैं वही अपने कान लगा देते हैं। कविवर विद्यापति कहते है कि केवल राजा शिवसिह ही इस प्रकार के शृगार-विरहादि के रस से परिचिन हैं, अत वही इसका महत्त्व भली-भाँति जान सकते है।

विशेष—विरहावस्था मे मूर्च्छा, स्वप्न, पीडा, उछाह आदि भावो-अनुभावो का अत्यन्त महत्त्व गिना जाता है। प्रस्तुत पद मे पूर्णत स्वप्न एव मूर्च्छा का वर्णन ही प्रधान है। इन पक्तियो मे इस कथन की सार्थकता स्पष्ट परिलक्षित है, देखिए—

"सपनहु हरि पुनु पुनु कए
लए उठए तोर नाब।
आलिगन दए पाछु निहारए
तोहि बिनु सुन कोर।"

कला का चरम उत्कर्ष इसी मे है कि वह पार्थिव से अपार्थिव रूप की व्यजना करे। कविवर विद्यापति के इस पद मे काव्य कला का यही उत्कृष्ट रूप व्यजित है। इन पक्तियो मे यही भाव-व्यजना है—

"तोहरे चिन्ता तोहरे कथा
सेजहु तोहरे चाब।"

यहा चिता-कथा एव शय्या का चाव केवल राधा-कृष्ण के बीच का ही विषय नही वरन् भक्त और भगवान का, साई और साधक के बीच का है—भाव-साम्य के लिए अपनी ही पक्तिया रख रहा हूँ—

"तुम्हारे ख्याल मे काबा निहा है।
बुते दिल याद का हर रोज हज है।
तुम्हारा ध्यान ही तीरथ मुझे है।
तुम्हारा प्यार ही मेरा मजहब है।"

वस्तुत ऐसी अभिव्यजना ही प्रेम लक्षणा भक्ति की चरम स्थिति का भाव बोध कराती है। इन्ही अभिव्यजनाओ को हम कबीर, मीरा एव जायसी आदि भक्त-कवियो की रचनाओ मे पाते है, इसी दृष्टि से विद्यापति भी भक्त-कवियो की श्रेणी मे आते हैं, कोरे शृगारी कवि ही उन्हे हम नही मान सकते। पद मे श्री कृष्ण की अवस्था बतलाकर दूती ने राधा को सवेदना की सीख बडी सफलता से दी है। दुखी को देखकर

दु खी को धीरज मिलता है, यह भाव प्रधानता से व्यक्त है । इस पक्ति को देखिये—
"अकथकथा आपु अबथा, नयन तेजए नोर ।"

शब्दार्थ—तरुअर=वृक्ष । कोटिहि=करोडो । लाखे=लाखो । जुबति=तरुणी। कत न लेख=कोई हिसाब नही । बिसेख=विशेष। निन्दहु=नीद मे भी । सुमर=स्मरण करता है । बास=सुगध । न बिसरए पार=भूल नही पाते । भमर=भौरे । मधुकर=भौरा । सेहे=वही । ससार क सार=ससार मे अत्युत्तम । तेजहु=तजो, छोड दो । परिहरि=छोडकर । इछ=कामना । हरि=श्री कृष्ण । सराहहि पुन=पुण्य की सराहना करो । तोहरे=तुम्हारी । चाब=इच्छा । सेजहु=शय्या पर भी । पुनु=फिर । लए उठए=ले पडते है । नाब=नाम । तार=तुम्हारा । पाछु=पीछे । निहारए=देखते है । सुन=सूनी । कोर=गोद । अकथ कथा—अकथनीय कहानी। आपु अबथा=अपनी स्वय की अवस्था । राहि=राह । राही=पथिक । जाहि मुँह सुनि=जिसके मुख से सुनते है (राधा का नाम) । ततहि=वही । अप्पए=अर्पण करना, लगाना । भान=कहते है ।

(५७)

आसाये मन्दिर निसि गमाबए
सुख न सूत सँयान ।
जखन जतए जाहि निहारए
ताहि ताहि तोहि भान ।
मालति ! सफल जीबन तोर ।
तोर ब्रिरहे भुअन भम्मए
भेल मधुकर भोर ।
जातकि केतकि कत न आछए
सबहि रस समान ।
सपनहू नहि ताहि निहारए
मधू कि करत पान ।
बन उपबन कुछ कुटीरहि
सबहि तोहि निरूप ।
तोहि बिनु पुनु पुनु मुरछए
अइसन प्रेम सरूप ।
साहर नबह सउरभ न सह
गुजरि गीत न गाब ।
चेतन पापु चिन्ताए आकुल
हरख सबे सोहाब ।

जकर हिरदय जतहि रतल
से धसि ततही जाए।
जइओ जतने बाँधि निरोधिअ
निमन नीर थिराए।
ई रस राय सिबसिघ जानए
कबि बिद्यापति भान।
रानि लखिमा देइ बल्लभ
सकल गुन निधान।

भावार्थ—पूर्व पद के क्रमानुसार ही दूती राधा से श्री कृष्ण की विरहावस्था का वर्णन कर रही है—

हे राध, तुम्हारी मिलनाशा के मन्दिर मे ही श्री कृष्ण अपनी रात व्यतीत करते है और कभी सेज पर सुखपूर्वक सो भी नही पाते। वह जब जहा जिसे भी देखते है उसी मे तुम्हारे रूप की प्रतिच्छाया देखते है। आशय यह है कि अब वह तुम्हारे प्रेम मे इतने लीन हो गए है कि सर्वत्र तुम्हे ही देखते है, तुम उनके लिए सर्वव्यापक बन गई हो। हे मालती रूपणी राधे, तुम धन्य हो, तुम्हारा जीवन कृतार्थ है कि ऐसे दिव्य पुरुष के प्रेम की प्रतिमा हो तुम! तुम्हारे विरह मे विभोर मधुकर रूप श्री कृष्ण विश्व भर मे भरमाए फिरते है। चपा और केतकी के न जाने कितने पुष्प है और उनमे रस भी समान रूप मे परिव्याप्त होता है किन्तु भँवरा सपने मे निहारता तक भी नही, मधुपान की तो बात कौन करे? आशय यह है कि यद्यपि श्री कृष्ण के लिये अनेक सुन्दरिया है किन्तु वे तो राधा को ही सर्वथा चाहते है, किसी और को नही। दूती ने आगे कहा कि हे राधे, श्री कृष्ण ने वन, कानन, कुञ्ज और कुटीर—रास-रग के सारे स्थलो को तुम्हारे ऊपर ही बलिहार कर रक्खा है। तुम्हारे बिना वे रह-रहकर मूर्च्छित या अचेत हो जाते है, ऐसे सत्य प्रेम स्वरूप है वे! नई आम्र मजरियो का सौरभ भी उसे तुम्हारे अभाव मे सहन नही और वह मधुर गुजारमय गीत गाता है। उसके प्राण तो पापी विरह दुख से व्यथित है अत उसे ये सब-कुछ हर्ष के उपकरण क्योकर सुहायेगे। ये सब तो खुशी के अवसर पर ही भले प्रतीत होते है। हे राधा, जिसका हृदय जिसपर मुग्ध होता है वह सौ बाधाओ मे घुसकर भी उसी के पास पहुँचता है जहा उसका प्रेम पात्र है। पानी को लाख कोशिश करके चाहे जितना बाध बाधकर रोकिये या स्थिर करिये किन्तु वह तो निम्नस्थल पर ही स्थिर हो सकेगा। आशय यह है कि जिसका जहा टिकाव-लगाव होता है वह वही पहुँचता है—कैसे भी, कभी भी। अत राधा से श्री कृष्ण अवश्य मिलेगे—कैसे भी, कभी भी। कविवर विद्यापति कहते है कि इस रस-शृगार के रहस्य को राजा शिवसिह खूब जानते है। वह सर्वगुण सम्पन्न एव रानी लखिमादेवी के प्राणप्रिय पति हैं। आशय यह है कि कवि विद्यापति उनको यह जो राधा-कृष्ण

विषयक शृंगार के पद रच-रचकर सुना रहे हैं इनका रस-महत्त्व वे भली प्रकार आस्वादन करने मे समर्थ एव योग्य हैं।

विशेष—प्रेम-विरह की अभिव्यजना प्रत्येक देश-काल मे व्यापक हुई है किन्तु सभी देश-कालगत् साहित्य की प्रेम-विरह-भावना का प्रकाशन एक ही मूल तत्त्व पर आधारित रहा है और वह है प्रेमी का प्रेमी के लिए आत्म-बलिदान ! यह अभिव्यजना जब जिस किसी कवि ने विशिष्ट की है तभी वह काव्य ससीम से असीम का बोध कराने लगता है। प्रेम-बलिदान ही सर्वस्व है। गालिब के शब्दो मे—

"जान तुम पर निसार करता हूँ
मैं नहीं जानता, दुआ क्या है।"

और प्रस्तुत पद मे भी इसी महान् प्रेम-विरह की अभिव्यजना कविवर विद्यापति ने की है। देखिये—

"बन उपबन कुछ कुटीरहि
सबहि तोहि निरूप।
तोहि बिनु पुनु पुनु मुरुछए।
अइसन प्रेम सरूप।"

यहाँ अत की पक्ति मे "अइसन प्रेम सरूप" उक्ति मे एक प्रेमी नही, दिव्य पुरुष श्री कृष्ण मानो अपना आपा विसर्जित करके राधा के रूप मे लीन हो जाना चाहते हैं। राधा के बिना जैसे उन्हे ससार का सुख, केलि-विनोद, प्रकृति, सुन्दरता आदि पदार्थ नीरस बन चुके हैं। प्रेम-विरह की यह व्यापक अभिव्यक्ति इस पद की अपनी विशेषता है। हृदय का टिकाव प्रेम की गहराई मे ही होता है, उसके लिये विद्यापति ने बडे वैज्ञानिक प्रमाण का उदाहरण काव्य के साचे मे ढाल दिया है—

"जकर हिरदय जतहि रतल
से धसि ततही जाए।"

और फिर—

"जइओ जतने बाँधि निरोधिअ
निमन नीर थिराए।"

कितनी मौलिक बात कही गई है ! इस प्रकार विद्यापति के पदो मे भाव-कल्पना एव बुद्धि-पक्ष का बडा सरस एव कलामय समन्वय हुआ है। प्रस्तुत पद मे राधा-कृष्ण के प्रेम सम्बन्ध मे भक्ति-रति की भावना का प्रकाशन ही मुख्य बन पडा है। स्थूल शृगार का पक्ष तो यहा गौण ही समझना चाहिए।

शब्दार्थ—आसाये=आशा मे। निसि गमाबए=रात व्यतीत करते हैं। सूत=सोते हैं। सँयान=सेज पर। जखन=जब। जतए=जहाँ। जाहि=जिसे। निहारए=देखते हैं। ताहि=उसको। तोहि भान=तेरा रूप समझता है। मालति=

राधा के लिए प्रयुक्त हुआ है। तोर=तेरा। बिरहे=विरह मे। भुअन=विश्व। भम्मए=भरमाता-घूमता है। मधुकर=भौंरा, श्री कृष्ण के लिए सम्बोधन है। भोर=विमुग्ध। जातकि=चम्पा, पारिजात। केतकि=केतकी। कत न आछए=कितने नही हैं, बहुत हैं। सबहि=सभी मे। समान=बराबर। सपनहू=स्वप्न मे भी। ताहि=उन्हे। कि=कौन। पान=पीना। मधू=सौरभ-रस। निरूप=बलिहार। सबहि=सर्वत्र, सभी स्थलो पर, सर्वस्व। पुनु पुनु=फिर-फिरकर। मुरुछए=अचेत होते हैं। अइसन=इस प्रकार का। साहर=आम। नबह=नया, मजर। सउरभ=सौरभ-मद। न सह=सहन नही होता है। गुजरि=गुजार के साथ। न गाब=नही गाता। चेतन=जीव, प्राण। पापु चिन्ताए आकुल=पापी दु ख-कष्ट से आकुल। हरख=हर्ष। सबे=सभी को। सोहाब=भला लगता है। जकर=जिसका। हिरदय=हृदय। जतहि=जहाँ। रतल=मुग्ध। से=वह। धसि=घुसकर। ततही=वही। जाए=जाता है। निरोधिअ=रोकिए। निमन=निम्नस्थल। नीर=पानी। थिराए=ठहरता है। ई=इस। रस=शृगार-रस। बलभ=प्रिय। सकल=सारे। गुन=गुण। निधान=घर, सम्पन्न से आशय है।

नोक-झोंक

(५८)

कर धरु करु मोहे, पारे ।
देब मे अपरुब हारे, कन्हैया ।।
सखि सब तेजि चलि गेली ।
न जानू कौन पथ भेली, कन्हैया ।।
हम न जाएब तुअ पासे ।
जाएब औघट घाटे, कन्हैया ।।
बिद्यापति एहो भाने ।
गूजरि भजु भगवाने, कन्हैया ।।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा-कृष्ण के प्रणय-सम्भोग-व्यापार के मध्य "हा-ना", मान-अपमान, रूठने-मनाने एव छेडछाड आदि का अनूठा काम-मनोवैज्ञानिक भाव-चित्रण प्रस्तुत करते हुए लिखते है—

राधा यमुनातट पर है और कृष्ण नाविक रूप मे निकट खडे है । यो ही राधा दूसरी पार के एकान्त मे जाना चाहती है, अथ बडे मान-मिन्नत के भाव से वह कृष्ण से कह रही है—

हे कृष्ण, ले मेरा हाथ पकडकर मुझे उस पार ले चल और देख—हे कान्हा, मैं तुझे इस उतराई के लिए अपना मूल्यवान हार भेट करूगी। मेरी सारी सखियाँ यहाँ अकेला छोडकर चली गई है । नही जानती कि वे किस पथ से छिपकर चली गई । किन्तु हे कन्हैया, मैं तुम्हारे पास नही आऊँगी, मैं तो दूर—उस औघट घाट या श्मशान घाट पर जाऊँगी । कविवर विद्यापति कहते है कि हा राधे, गूजरिया—श्री कृष्ण को प्राणो से भजो, उनके हृदय ही मे रमण करो ।

विशेष—सम्भोग-शृ गार का सुख, चाहे कुछ क्षणो के लिए ही हो, दो शरीरो और आत्माओ के लिए अतिन्द्रिय होता है । उस समय 'हा-ना', मान-अपमान, एव रूठने-मनाने के मिस न जाने किन-किन ऐसी चेष्टाओ एव उलझी-सुलझी बातो का प्रकाशन हो जाता है जिनमे सौ-सौ समुद्रो के दिल मे ज्वार उठने लगता है। तब हर क्षण मदिर होता है, हर बात मधुर होती है, हर घात सहलाती है—और इसी का नाम है नोक-झोक ! इस प्रसग मे इसी प्रकार के पद है जिनमे ये सब बातें प्रकट हुई

है प्रस्तुत पद मे राधा के सभोग-भाव की अभिव्यजना बडी निपुणता एव पूर्णत सरसता के साथ की गई है। पहली पक्ति मे कितना सरल समर्पण है—

"कर धरु करु मोहे, पारे।"

भला कोई राधा जैसी बाला यो ही अपना हाथ किसी को क्यो थमा देगी—पर वह तो अपने दिव्य प्रेमी कृष्ण को थमा रही हैं, भला ऐसे प्रेमी को कौन बाला सहर्ष अपना हाथ नही थमाएगी ? पर यह समर्पण भीतरी है—आत्मा का है। बाहर तो उसे किसी भी व्यवहार के बहाने छिपाना होगा, तो राधा ने कहा—"देब मे अपरुब हारे, कन्हैया।" राधा श्री कृष्ण से एकान्त मिलन की इच्छुक है। इशारो से ही वह यह बात कहना चाहती है कि इस एकान्त मे हम एक दूसरे मे लीन हो जायें—

"सखि सब तेजि चलि गेली।
न जानू कौन पथ भेली, कन्हैया॥"

एकान्त का आभास देने के लिए कितनी चतुराईपूर्ण उक्ति राधा ने कही है। और फिर तो कामिनी राधा के मान-सागर मे ज्वार आ जाता है—"हम न जाएब तुअ पासे।" प्रश्न उठता है कि पहले तो हाथ देकर अपने को श्री कृष्ण को समर्पित कर रही थी राधा और अब इतनी निठुराई कि पास नही फटकने को कहती—यह है एक बाला का स्वाभाविक मान ! पर उसमे भी एक पहलू और ऐसा है जो कृष्ण को प्रेरित करता है कि राधा को अपनी बाहो मे खीचकर पूछे—"ज एब औघट घाटे " पर किसलिए राधे ? और बस यही मन का मन से एव तन का तन से पूर्ण समर्पण है—निशेष निष्काम शन्य महासुख। कल्पना कीजिए कि इस छोटे से पद की तह मे कितनी बडी भाव-व्यजना समाई हुई है। वस्तुत विद्यापति के पदो मे कम से कम शब्दो मे अधिक से अधिक उत्कृष्ट भाव-व्यजना एव कला-प्रदर्शनी सगुफित रहती है। प्रस्तुत पद मे "कन्हैया" की हर एक पक्ति के पश्चात् टेक राग लालित्य पैदा करती है।

शब्दार्थ—कर=हाथ। धरु=धरो, पकडो या लो। करु=करो। मोहे=मुझे। पारे=उस पार। देब=दूंगी। अपरुब हारे=अनोखा हार। तेजि=तजकर। चलि गेली=चली गई है। कौन पथ=किस रास्ते से। तुअ पासे=तुम्हारे पास। जाएब=जाऊँगी , इस छटी पक्ति मे 'आएब' भी पाठान्तर हो सकता है जिसका अर्थ होगा कि 'आऊँगी'। औघट घाटे=एकान्त स्थान, शमशान घाट से भी तात्पर्य हो सकता है। ऐहो=ये। भाने=कहते है। गूजरि= गुजरिया, गोपी बाला।

(५९)

कुंज-भवन सयँ निकसलि रे
रोकल गिरिधारी।

एकहि नगर बस माधव हे
जनि कर बटमारी ।
छाडु कन्हैया मोर आँचर रे
फाटत नब - सारी ।
अपजस होएत जगत भरि हे
जनि करिअ उघारी ।
सग क सखि अगुआइलि रे
हम एकसरि नारी ।
दामिनि आए तुलाएल हे
एक राति अँधारी ।
भनहि विद्यापति गाओल रे
सुनु गुनमति नारी ।
हरि क सग किछु डर नहि हे
तोहे परम गमारी ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे राधा-कृष्ण की पथ मे हुई छेडछाड का भावप्रसूत चित्रण करते हुए कविवर विद्यापति लिखते है—

राधा कुज-पुज रूपी भवन से बाहर निकली कि कृष्ण ने छेडखानी के लिए उन्हे रोका। ऐसी अनाहूत स्थिति मे राधा ने कृष्ण की चुटकी ली—अरे माधव, मैं और तुम एक ही गाव मे रहते है। अत खुली राह पर तो इतनी डकैती या दुष्टता पर न उतरो, मुझे न छेडो, लोग देख लेंगे तो क्या कहेगे ? हे कान्ह, मेरा अचल छोड दो, देखो मेरी नई साडी फटी जा रही है। सारी दुनिया मे यह कलक या बदनामी फैल जायगी, मुझे बीच राह पर नग्न न करो। देखो न, साथ की सहेलिया आगे जा चुकी हैं। मैं अकेली बाला हूँ, ये अँधियारी रात, फिर बिजली की चमक—सब-कुछ बडा भयानक वातावरण है। अत मेरे साथ बरजोरी न करो, मुझे छोड दो। कवि विद्यापति गाकर कहते हैं कि हे गुणवती बाले--सुनो, कि तुम्हे श्री कृष्ण के साथ रहते हुए कोई भी भय नही मानना चाहिए, न मानो। यो डर कर तो तुम महागँवारिन बनी जा रही हो !

विशेष—प्रस्तुत पद मे राधा का नारी जन्य व्रीडा भाव बडी मिठास उडेलता हुआ व्यक्त है—

"छाडु कन्हैया मोर आँचर रे
फाटत नब - सारी।
अपजस होएत जगत भरि हे
जनि करिअ उघारी।"

वस्तुत· राधा का यहाँ अपनत्व एव आत्मसमर्पण का भाव ही लज्जा की लहर के साथ

झूलता मुखरित होता प्रतीत होता है। यह कला की स्वच्छदता का एक अनूठा भाव-चित्र कहा जायगा। शृ गारिक भाव-रस के पूर्ण उदय के लिए वातावरण का सापेक्ष चित्रण कितना सजीव हुआ है, यह इन पक्तियो मे दृष्टव्य है—

"दामिनि आए तुलाएल हे
एक राति अँधारी।"

प्रतीत होता है कि मानो हम स्वत राधा-कृष्ण की शृ गारिक नाट्य-लीला के दर्शक है—उसी के अग है। ब्रीडा एव क्रीडा की इस राह पर चलते हुए राधा-कृष्ण के प्रणय का यह रूपक विश्व जनीन प्रणय-भावना का द्योतक है। आनदकोष से जुडी हुई कला के रूप मे न कुछ अश्लील है और न कुछ श्लील—वह तो दो प्राण, दो मन और दो तन का अलौकिक क्रीडा-व्यापार है—निष्कपट, निरावृत्त, निश्चल और निष्ठामय। सम्भवत. ऐसी पद-व्यजना की मदिरा मे डूबकर चैतन्य महाप्रभु आत्मलीन हो जाते थे। कला की महान् पराकाष्ठा का रूप कविवर विद्यापति के ऐसे पदो मे वाणी पा गया है। नग्नतना और नग्नमना हो जाना ही आत्मा-परमात्मा का एकत्व या कैवल्य है। मानवीय जगत् मे भी यह भाव अत्यन्त भाव एव सुख सापेक्ष है। कविवर बच्चन के शब्दो मे—

"मानव चाहे दुनिया भर से अपना रूप छिपाए
कही चाहता नग्नतना और नग्नमना रह पाए।"

प्रस्तुत पद मे राधा और कृष्ण के पारस्परिक सम्बन्ध की भावना मे भी यही बात प्रधान है।

शब्दार्थ—कुज-भवन=कुज-पुज रूपी भवन। सयँ=से। निकसलि=बाहर आई। रोकल=रोका। गिरिधारी=श्री कृष्ण। एकहि=एक ही। नगर =व्रज के गाँव से तात्पर्य है। बस=रहते है। जनि कर=मत करो। बटमारी=डकैती या खुले पथ पर लूटमार करना। छाडु=छोडो। मोर=मेरा। फाटत=फटी जाती है। नब-सारी=नई साडी। अपजस=कलक, बदनामी। जगत भरि=ससार भर मे। जनि करिअ उघारी=नग्न मत करो। सग क=साथ की। अगुआइलि=आगे चली गई है। एकसरि=अकेली। दामिनि=बिजली। तुलाएल=चमकने लगी है से तात्पर्य है। राति अँधारी=अँधेरी रात। भनहि=कहते है। गाओल=गाते है। सुनु=सुनो। गुनमति=गुणवाली। हरि क=श्री कृष्ण के। किछु=कुछ। तोहे=तुम। परम गमारी=पूरी गँवारिन हो।

(६०)

तुअ गुन गौरब सील-सोभाब।
सुनि कए चढलिहुँ तोहरि नाब।
हठ न करिअ कान्हु कर मोहि पार।
सब तहँ बड थिक पर-उपकार।

आइलि सखि सब साथ हमार।
से सब भेलि निकहि बिधि पार।
हमरा भेल कान्हु तोहरोअ आस।
जे अगिरिअ ता न होइअ उदास।
भल मन्द जानि करिअ परिनाम।
जस अपजस दुइ रहत ए ठाम।
हम अबला कत कहब अनेक।
आइति पडले बुझिअ बिबेक।
तोहँ पर नागर हम पर नारि।
काँप हृदय तुअ प्रकृति बिचारि।
भनइ विद्यापति गाबे।
राजा सिबसिंघ रूपनरायन,
ई रस सकल से पाबे।

भावार्थ--पद ५८ के प्रसगक्रम के अनुसार प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा के मुख से श्री कृष्ण के प्रति अनुनय कराते हैं कि वे उन्हे (राधा को) उस पार पहुचा दें।

राधा कहती है कि हे कृष्ण, तुम्हारे गौरव-गुण एव शील-स्वभाव के विषय मे सुनकर ही मैं पार उतरने के लिए तुम्हारी नाव पर चढी हूँ। देखो, अब ज़िद न करो कृष्ण, मुझे शीघ्र उस पार पहुँचा दो। इस ससार मे देखो, सब सुकृत्यो से महान् परोपकार करना है। मेरे साथ जो सखिया यहा आई थी वह सभी भली प्रकार से उस पार पहुँच गई हैं। एक मैं ही ऐसी रह गई हूँ जिसे केवल तुम ही पार उतारोगे—यह आशा लगी है। जो काम करना तुमने अगीकार या स्वीकार किया है उसे करने मे आनाकानी न करो, मना न करो। आशय यह है कि जब तुमने पार उतारने का काम ले ही रक्खा है तब मेरे लिए उसे करने मे क्यो इकार करते हो, ऐसा न करो। अच्छाई-बुराई का विचार कर ही कोई निष्कर्ष बनाओ। आशय यह है कि यदि तुम मुझे पार न करोगे तो वह निष्कर्ष तुम्हारे कर्तव्य के अनुसार बुरा होगा, अत इस परिणाम को न भूलो। यश और अपयश ये दोनो एक ही स्थान पर साथ-साथ बने रहते हैं। आशय यह है कि मनुष्य को यश कमानेके साथ कोई ऐसा काम नही करना चाहिए कि उसे उसी स्थान पर अपयश या कलक मिल जाए। राधा जी यह कहना चाहती है कि जहा सबको पार उतारने का यश श्री कृष्ण लेते रहे हैं वहा राधा को पार न उतारने का अपयश न ले। हे कृष्ण, मैं अबला नारी तुमसे अधिक क्या कह सकती हूँ, क्या सीख दे सकती हूँ? सज्जन के विवेक की परीक्षा वही होती है जब वह कठिनाई के पडने पर किसी की सहायता करता है। हे कृष्ण, तुम परात्पुरुष हो और मैं पर-नारी हूँ, अत यह सोच

कर और तुम्हारी प्रकृति का विचार कर हृदय काप रहा है। आशय यह है कि राधा को यह भय है कि राधा और उनके बीच बडा अतर है, वह है पर-नारी या ससार की आत्मा रूपिणी और कृष्ण है दिव्य पुरुष—परात्पुरुष ब्रह्म। अत न जाने इस सबका अत क्या हो, इस अज्ञात अत का भय लगता है। (यहा पुष्टिमार्ग की दार्शनिक व्यजना लक्षित होती है—समस्त पद मे यही व्यजना मुख्य लगती है।) कविवर विद्यापति कहते हैं कि इस प्रकार के पद-वर्णित प्रेम-रस का सम्पूर्ण स्वाद रूप के स्वामी राजा शिवसिह ही प्राप्त करेगे।

विशेष—प्रस्तुत पद की विशेषता है लौकिक शृगार मे अलौकिक रति-भाव की व्यजना। राधा श्री कृष्ण के रूप-गुण एव शील-स्वभाव पर पूर्णत आत्मसमर्पण कर चुकी है किंतु नारीयोचित लज्जा की मात्रा भी उनमे बडी है अत वह "सब तहँ बड थिक पर-उपकार" का बहाना बनाकर श्री कृष्ण के साथ एकान्त अभिसार करना चाहती है—और बस उन्ही के साथ ही—"हमरा भेल कान्हु तोहरोअ आस" उक्ति से यही भाव प्रकाशित होता है। स्वामी वल्लभाचार्य ने प्रेम लक्षणा भक्ति पद्धति मे 'पुष्टिमार्ग' का दार्शनिक पक्ष सिद्ध किया है जिसके अनुसार ससार की समस्त आत्माए गोपिया हैं, कृष्ण पर-पुरुष या ब्रह्म रूप है और राधा विशिष्ट आत्मा है और इन सब के ऊपर है भगवान श्री कृष्ण के अनुग्रह का भाव। यह रूपक इन पक्तियो से स्पष्ट है—

'आइलि सखि सब साथ हमार।
से सब भेलि निकहि बिधि पार।
हमरा भेल कान्हु तोहरोअ आस।
जे अगिरिअ ता न होइअ उदास।"

राधा पर कृष्ण का अनुग्रह है अत उन्हे वही पार उतार सकते है। कल्पना कीजिये विद्यापति की सूझ महत्ता की, काव्य गाम्भीर्य की और शृगार-सौष्ठव की। लोक-व्यवहार के प्रति कविवर विद्यापति की सूक्ष्म दृष्टि इन पक्तियो मे प्रकट है—

"भल मन्द जानि करिअ परिनाम।
जस अपजस दुइ रहत ए ठाम।"

या—

"सब तहँ बड थिक पर-उपकार।"

इन पक्तियो का प्रयोग जग-सैद्धान्तिक रूप मे सभी कर सकते है। तात्पर्य यह है कि कविवर विद्यापति की अतश्चेतना की परिधि विराट् कल्पना, भक्ति, शृगार एव लोक-पक्ष को भी घेरे हुए थी—वह केवल शृगारी कवि नही थे, शृगार तो उनके काव्य का साथी था, ध्येय तो था कला का दिव्य रूप प्रकाशित करना।

शब्दार्थ—तुअ गुन = तुम्हारे गुण, आशय है श्री कृष्ण के गुण। सील-सोभाव =

शील स्वभाव। सुनि कए=सुनकर। चढलिहुँ=चढी हूँ। तोहरि=तुम्हारी, श्री कृष्ण की। हठ=ज़िद। न करिअ=न करो। कर=करो। मोहि=मुझे। थिक=है। सब तहँ=सबसे। बड=बडा,महान्। उपकार=भला। आइलि=आई। हमार=हमारे। निकहि बिधि=अच्छी तरह से। तोहरोअ=तुम्हारी ही। जे=जो काम। अंगिरिअ=अंगीकार किया, स्वीकार किया है। उदास=विमुख। भल मन्द=अच्छा-बुरा। परिनाम=परिणाम। दुइ=दोनो। रहत=रहते है। ए ठाम=एक जगह पर। कत=कितना, क्या। कहब अनेक=बहुत कह सकती हूँ। आइति पडले=सकट आने पर। बुझिअ बिबेक=समझदारी की परीक्षा होती है। तोहँ=तुम। पर नागर=पर पुरुष, ब्रह्म रूप। पर नारि=परकीया, सासारिक आत्मा से आशय है। प्रकृति=स्वभाव। तुअ=तुम्हारी। सकल=सम्पूर्ण। पाबे=प्राप्त करेंगे।

(६१)

नाव डोलाब अहीरे,
जिबइत न पाओब तीरे,
खर नीरे लो।
खेबा न लेअए मोले,
हँसि हँसि की दहु बोले,
जिब डोले लो।
किए बिके ऐलिहु आपे,
बेढलिहु मोहि बड सापे,
मोरे पापे लो।
करितहुँ पर-उपहासे,
परिलिहुँ तन्हि बिधि-फाँसे,
नहि आसे लो।
न बूझसि अबुझ गोआरी,
भजि रहु देब मुरारी,
नहि गारी लो।
कबि बिद्यापति भाने,
नृप सिबसिंघ रस जाने,
नब कान्हे लो।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रमानुसार कविवर विद्यापति खेवनहार श्री कृष्ण की नाव मे बैठी राधा की मन स्थिति का प्रकाशन करते हुए लिखते हैं—

राधा श्री कृष्ण से अनुनय कर रही है कि हे कृष्ण, नाव को खेओ, बहने दो, रोको न ! अरे पानी का प्रवाह बडा तेज़ है, यदि तुम नाव को शीघ्र न खेओगे तो मुझे

किनारे पर पहुँचकर जीवित न पा सकोगे। तुम अपने खेने के ऐवज मे मुझसे मूल्य भी नही लोगे और न जाने हस-हसकर मुझसे क्या बतिया या कह रहे हो? इससे मेरे जी मे कम्पन हो रहा है। आशय यह है कि राधा को बीच धार मे शका हो रही है इस बात की कि श्री कृष्ण नाव को खेना बद करके उससे क्यो हस-हसकर बातें कर रहे हैं, क्यो खेवा लेने को तत्पर नही दीखते—क्या काड होने वाला है। हाय, मैं स्वय ही तुम्हारे पास बिकने क्यो आ गई,सम्भवत मेरे बडे पापो ने ही मुझे इस भाँति दु ख रूप मे आ घेरा है। आशय यह है कि मैं स्वय ही या अपने मनसा पापो के फलस्वरूप ही कृष्ण के फदे मे आ फसी हूँ। मैं दूसरी सखियो का मजाक बनाया करती थी—पर-उपहास करने की आदी थी—उसी के फलस्वरूप बिधना के इस फदे मे फस गई हूँ। अब बचने की कोई आशा बाकी नही है। वह भोली ग्वालिन कुछ भी नही समझ पा रही है। अरे, कृष्ण मुरारी का भजन कर, उन्हे गाली या बुरा-भला न कह। आशय यह है कि केवल कृष्ण ही रक्षक है अत राधा के लिये उन्ही का आश्रय पाना उचित है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि राजा शिवसिह ही इस शृगार सम्बन्धी नोक-झोक के रहस्य को जानते है और यह भी कि नवयुवक श्री कृष्ण राधा जी से उस दशा मे क्या चाहते थे।

विशेष—प्रस्तुत पद की विशेषता है सजीव वातावरण का चित्रण एव नारीयोचित काम जनित लज्जा, उद्वेग, सदेह, भय एव कातरता मिश्रित उद्वेगो का सहज प्रकाशन। राधा स्वेच्छा से श्री कृष्ण के साथ उनकी एकान्त नाव पर चढी हैं—कृष्ण को वह अपना खिवैया मानकर आत्म-समर्पण भी कर चुकी हैं—ऐसी बात पूर्व जानकर जो भी उनकी चेष्टा अथवा मन स्थिति पाठक के आगे प्रकट होती है उसका सहज मधुर एक ही आशय निकलता है—"कामातुरता"। पद की इन पक्तियो के भीतर किस सफाई से यह रस छनकर चू रहा है—

> "नाव डोलाब अहीरे,
> जिबइत न पाओब तीरे,
> खर नीरे लो।
> × × ×
> खेबा न लेअए मोले,
> हँसि हँसि की दहु बोले,
> जिब डोले लो।"

मन्द बहती नाव के हिचकोले—यौवन के सागर का ज्वार—कितना कामातुर वातावरण! राधा मे भी नशे का ज्वार है, उसमे जीना और मरना समान है—"जिबइत न पाओब तीरे।" कल्पना कीजिये कि सभोग के समय के लक्षणो मे इन उद्वेगो का कितना साम्य है। इस प्रकार कला के झीने आवरण के भीतर कविवर विद्यापति ने मानसिक मधुर उद्वेगो की पिपासा और उसकी पुकार को मार्मिक वाणी दी है—यही

उनके पदो की, कला की महानता है। इधर राधा-कृष्ण के प्रणय का रूपक रचकर कवि-वर विद्यापति ने इन पदो मे प्रेम लक्षणा भक्ति का भी रस बरसाया है। राधा आत्म-रूपिणी है, कृष्ण परमात्मा रूप है। दोनो एकान्त गाढ मिलन की अवस्था मे है। ब्रह्म सजग है, कौतुकमय है, जीवात्मा शकित है, समर्पित है। यह व्यजना भी यहा प्रकट है। शुद्ध शृ गार एव विशुद्ध भक्ति-रति के रस से स्नात विद्यापति के पद आत्मा की आवाज बनकर गूजते है।

शब्दार्थ—लो=है, दो। डोलाब=खेओ। अहीरे= श्री कृष्ण के लिये, क्योकि वह अहीर जाति से सम्बन्धित थे। जिबइत= जीते जी। तीरे=किनारे। खर नीरे= तीक्ष्ण जल-प्रवाह, या तीव्र धार। खेबा=पार उतराई। लेअए=लोगे। मोले=मूल्य। की दहु=न जाने क्या। जिब डोले= प्राण कम्पित होते है। किए बिके=बिकने के लिये। ऐलिहु=आई। आपे= अपने आप, स्वय ही। बेढलिहु=आकर घेर लिया। मोहि=मुझे। बड सापे=श्राप या दु ख। करितहुँ=करती थी। पर-उपहासे=दूसरो का मज़ाक, सखियो का प्रेम-मज़ाक करती थी। परिलिहुँ=पड गई या फस गई। तन्हि=उसी के कारण। बिधि फॉसे=बिधना का फदा। आसे=आशा। अबुझ= भोली या नादान। बूझसि=जानती, समझती है। गोआरी=ग्वालिन। गारी=गाली, भला-बुरा कहना। भाने=कहते है। नृप=राजा। नब=नवयुवक। कान्हे=श्री कृष्ण।

सखी-शिक्षा

राधा को शिक्षा

(६२)

प्रथमहि अलक तिलक लेब साजि ।
चचल लोचन काजर आँजि ।
जाएब बसन आँग लेब गोए ।
दूरहि रहब तें अरथित होए ।
मोरि बोलब सखि रहब लजाए ।
कुटिल नयन देब मदन जगाए ।
झाँपब कुच दरसाओब आध ।
खन खन सुदृढ़ करब निबि-बांध ।
मान करए किछु दरसब भाव ।
रस राखब तें पुनु पुनु आब ।
हम कि सिखाओबि अओरस-रग ।
अपनहि गुरु भए कहत अनग ।
भनइ विद्यापति ई रस गाब ।
नागरि कामिनि भाब बुझाब ।

भावार्थ—नख-शिख श्रृगारी परम्परा के अनुकूल कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद मे अभिसार के लिए जाती राधिका को सखियो के द्वारा मान, श्रृगार एव कटाक्ष आदि की शिक्षा का मनोरजक पाठ पढाते हुए लिखते है—

सखियो की शिक्षा है कि हे राध, पहले तो अपने कुन्तल एव बिन्दी को सजा-सँवार लो। चचल नेत्रो मे काजल आँज या लगा लो। फिर जाते समय वस्त्र या अचल-पट से अपने अग या कुचो को छिपा लेना, नग्न दिखाई न पड जाओ नही तो अनाडिन समझी जाओगी। प्रियतम कृष्ण के पास जाकर उनसे कुछ दूर ही बनी रहना जिससे वह तुम्हारे चाहक एव उत्कठित बने, तुम पर अर्पित हो। हे आली, मुख को सामने नही, मोडकर बाते करना और साथ ही लजाती भी जाना। अपने बकिम

नयन-कटाक्षो से उनमे कामदेव को जाग्रत कर देना। कुचो को ढकती-ढकती-सी उन्हे आधा दिखला देना और बार-बार साडी के बँध या कोचे (नीबी) को मजबूती से बाँधने का प्रदर्शन करना। कुछ मान करने अथवा रूठ जाने का भाव भी प्रदर्शित करना और देखो, उन्हे रति-रस से पूर्णत परितृप्त न कर देना, कुछ रस बचाए रखना ताकि वह फिर-फिर तुम्हारे पास रसपान के लिए आएँ। इससे अधिक और क्या उस रस-रग-रहस्य की बाते हम तुम्हे सिखाएँ—वहाँ स्वय कामदेव ही तुम्हारा गुरु होकर सब कुछ सिखा-समझा देगा। कविवर विद्यापति इस रसमय पदो को गाकर कहते हैं कि सुचतुरा, काम-कला को जानने वाली नारिया इस विषय-भाव को भली-भाँति जानती है।

विशेष—प्रस्तुत पद का रस-शृगार सिखावन के रूप मे इतना नही जितना कि इस बात मे कि उसमे रमणी के रति-भावो का सकेत-प्रकाशन बिल्कुल · ।'‥ ि · सहज, अनुभवगम्य एव आकर्षक है। इन पक्तियो के रूप से मानो शृगारिणी सुचतुर अभिसारिका का सजीव सकेतमय एक रतिरेखा चित्र ही खडा कर दिया गया है—

"मोरि बोलब सखि रहब न लजाए।
कुटिल नयन देब मदन जगाए।"

और फिर—

"झाँपब कुच दरसाओब आध।
खन खन सुदृढ करब निबि-बाँध।"

उपरोक्त पक्तियो मे मुग्धा नायिका के हावो-अनुभावो का यथार्थ प्रकाशन कितनी सजीवता से हुआ है, इसे निपुण रसिक जन खूब जान सकते है। काम-केलि के भाव-प्रदर्शन मे जितनी निपुण नायिका होती है उतना पुरुष नही—वही उसमे कामदेव जाग्रत करती है। इस काम-मनोवैज्ञानिक-सम्बन्धी तथ्य को यह पक्ति मानो कुरेद देती है—"कुटिल नयन देब मदन जगाए", "दूर रहने मे है वस्ल का मजा" और कविवर विद्यापति ने कहा—

"दूरहि रहब ते अरथित होए।"

सकारण बात कही गई है दूर रहने मे इसीलिए वस्ल का मजा है क्योकि मिलनाकाक्षा सदा जीवित बनी रहती है। सक्षेप मे कविवर विद्यापति ने शृगार का कोना-कोना झाक लिया था। अत उनके पदो मे स्थूल शृगार की इतिवृत्त जड अभिव्यजना नही हुई वरन् उसके प्रति उठने वाले नारी और पुरुष के शाश्वत उद्वेगो का चिर रसमय राग गंजा है। इसीलिए अन्य शृगारी कवियो के वे आदर्श रूप कहे जा सकते है।

शब्दार्थ—प्रथमहि=पहले तो। अलक=कुतल, केश। लेब साजि=सजा लो। आँजि=काजल का लगाना। बसन=वस्त्र, अचल-पट। जाएब=जाते हुए। लेब गोए=छिपा लेना। आँग=अग, कुचो से तात्पर्य हो सकता है। मोरि बोलब=मुख

मोड़कर बोलना। रहब लजाए=लजाती रहना। कुटिल नयन=बंकिम नयन के कटाक्ष। देब=देना। मदन=कामदेव। झाँपब=ढक रखना। कुच=उरोज। दरसाओब=दिखलाना। आध=आधे। खन खन=क्षण-क्षण, बारम्बार। सुदृढ=मजबूत। करब=करना। निबि-बाँध=नीबी-बंध, कोचा। मान करब=रूठ जाना। किछु=कुछ। दरसब=दिखलाना। राखब=बचा रखना। ते=वह, प्रेमी कृष्ण। आब=आए। हम कि=हम क्या। सिखाओबि=सिखाएँ। अओ=और अधिक। रस-रंग=रति-रहस्य की बातें। अपनहि=स्वयं अपने आप। अनंग=कामदेव। ई रस=यह शृंगार-रस। नागरि कामिनि=सुचतुरा नायिका। बुझाब=समझती हैं।

(६३)

प्रथमहि सुन्दरि कुटिल कटाख।
जिब जोख नागर दे दस लाख।
केओ दे हास सुधा सम नीक।
जइसन परहोक तइसन बीक।
सुनु सुन्दरि नव मदन-पसार।
जनि गोपह आओब बनिजार।
रोस दरस रस राखब गोए।
धएले रतन अधिक मूल होए।
भलहि न हृदय बुझाओब नाह।
आरति गाहक महँग बेसाह।
भनइ बिद्यापति सुनहु सयानि।
सुहित बचन राखब हिय आनि।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसंग के अनुसार यहाँ कविवर विद्यापति चतुर सखियों द्वारा राधा को व्यापारिक ढंग का पाठ पढ़वाते हुए लिखते हैं—

सखियाँ कहती है कि हे सुन्दरी राधे, जाते-जाते पहले ही अपनी बंकिम भ्रू-भंगिमा का शिकार श्रीकृष्ण को बना लेना। उससे घायल होकर काम-घाव के उपचार के लिए वह एक प्राण क्या तुम्हे लाख प्राण भी तोलकर मूल्य रूप मे न्योछावर कर देंगे। आशय यह है कि राधा पहले ही उन्हे अपने कुटिल कटाक्षों से काम-भाव मे अभिभूत करदे ताकि वह अपना सर्वस्व राधा के लिए न्योछावर कर दे। और हाँ, कोई सुन्दरी अमृत तुल्य श्रेष्ठ मृदु हास भी प्रियतम को ऐसे अवसर पर प्रदान करती है पर बात यह है कि जैसी बोहनी पहले-पहले होती है वैसी ही माल की खपत होती है। आशय यह है कि राधा श्री कृष्ण को अपने काम-कटाक्ष से भी प्रणय-प्रेरित कर सकती है और मृदु हास द्वारा भी—यह तो अवसर की बात है और उसी के अनुसार

प्रणय-व्यापार चलेगा—वह जैसा चाहे कर सकती है। पर हे नवेली सुन्दरी सुनो, कि कामदेव की दुकान खोलकर तुम रसिक व्यापारी से कोई भी वस्तु छिपाकर न रखना। आशय यह है कि काम-भाव के प्रदर्शन मे रसिक को अपने अग-अग की छटा-चेष्टा दिखा देना, इसी मे मजा आएगा। इतना करने पर फिर भी यह याद रखना कि कुछ मान (अनख) दिखलाकर रति-रस अपने पास अवश्य ही छिपा रखना क्योकि छिपाकर रक्खे गये रत्न का मूल्य अधिक हो जाता है। अन उस प्रेमी रसिक कृष्ण का हृदय एकबारगी ही पूर्णत. रस-परितृप्त न कर देना। देखो, जरूरतमन्द व्यापारी महँगा माल भी खरीद लेता है। आशय यह है कि जिस रसिक को रति-रस की उत्कट प्यास होती है वह समय पडे पर रमणी को प्रणय का बडा मूल्य चुका देता है—सर्वस्व अर्पित कर देता है। कविवर विद्यापति कहते है कि अन्त मे सखियो ने कहा हे सुचतुरा राधे सुनो, कि मन मे प्रेमी या रसिक के प्रति सद्भावना अवश्य बनाए रहना। आशय यह है कि केवल प्रणय-सभोग को ही सब कुछ न समझ लेना वरन् हार्दिक प्रेम को भी प्रेमी के प्रति बनाए रखना, इसी मे सच्चा हित है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शृगारी वाग्वैदग्ध प्रधान है। चतुर नायिका को रसिक के फँसाने के लिए जो सबसे बडी कला का प्रदर्शन करना होता है वह है उसकी आगिक भाव-चेष्टा—नयनो की, कुचो की, मान की और हँसी आदि की। यहाँ इन्ही बातो की बडी समुचित सीख प्रकट की गई है। इन पक्तियो से यह स्पष्ट है—

"प्रथमहि सुन्दरि कुटिल कटाख।
जिब जोख नागर दे दस लाख।"

और—

"रोस दरस रस राखब गोए।"

इस पद की एक और चमत्कारमयी विशेषता और अभिव्यजित है कि बडी निपुणता से रूपक के माध्यम को अपनाकर काम को व्यापार—कामी जन को व्यापारी एव सुन्दरी को माल-विक्रेता बनाया गया है और तब सिखलाई गई है प्रणय-व्यापार की अधिक लाभदायक युक्ति, उक्ति है—

"धएले रतन अधिक मूल होए।"

कितनी वास्तविक बात है कि छिपे रत्न की कीमत ज्यादा तो होती ही है। माल-विक्रेता को चाहिए कि वह ग्राहक को पूर्णत सन्तुष्ट न करे क्योकि फिर सौदा हानि मे पटता है। चतुराई इसमे है कि उसे बनाया जाय, उससे उसकी आवश्यकता की वस्तु कुछ छिपाई जाय तब वह उसे खरीदने के लिये स्वभावत आतुर होगा, और उस माल का महँगा मूल्य सहज वसूल हो जायगा। इतने बडे तथ्यपूर्ण और महत्त्वपूर्ण कथन को कमाल यह है कि इन दो पक्तियो मे विद्यापति ने कह दिया है—

"भलहि न हृदय बुझाओब नाह ।
आरति गाहक महँग बेसाह ।"

पर यह सूत, चावल और गुड का व्यापार नही, हृदय के मधु का व्यापार है—इस बात को ध्यान मे रखकर विद्यापति ने किस ढँग से बात कही—

" हृदय बुझाओब नाह ।"

सचमुच यह व्यापार भी कितना मधुर है—हानि लाभ दोनो मे सुन्दर सरस ! वास्तव मे विद्यापति की सूझ-गति जीवन-पुष्प की प्रत्येक पखुरी का रस पीती और उडेलती थी इसीलिए उनके पदो मे रस है, गन्ध है, सौन्दर्य है और है फूल के सौरभ का सूक्ष्म पावित्र्य भी !

शब्दार्थ—जोख=तोलकर। केओ=कोई रमणी। सम नीक=समान, सुन्दर। परहोक=बोहनी। बीक=बिक्री। मदन-पसार=कामदेव की दुकान। मूल=मूल्य आरति गाहक=जरूरतमन्द ग्राहक। बेसाह=खरीद करता है। महँग=महँगी। सुहित=सुहृद। हिय=हृदय। राखब=रक्खो।

(६४)

सुनु सुनु ए सखि बचन बिसेस ।
आजु हम देब तोहे उपदेस ।
पहिलहि बैठबि सयनक-सीम ।
हेरइत पिया मुख मोडबि गीम ।
परसइत दुहु कर बारबि पानि ।
मौन रहबि पहु करइत बानि ।
जब हम सोपब करे कर आपि ।
साधस धरिब उलटि मोहे काँपि ।
बिद्यापति कह इह रस ठाठ ।
भए गुरु काम सिखाओब पाठ ।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम की भाँति कविवर विद्यापति सखियो के द्वारा राधा को श्री कृष्ण के साथ मिलन-सीख का पाठ पढवाते हुए लिखते है—

सखियाँ कहती है कि राधा ! सुनो, हमारे इन काम-शृगार-सम्बन्धी विशेष कथनो को ध्यान देकर सुनो। आज हम तुम्हे महत्त्वपूर्ण सीख देगी। जब श्री कृष्ण के पास पहुँच जाओ तो पहले उनकी सेज की एक तरफ चुपचाप जाकर बैठ जाना। जब प्रियतम श्री कृष्ण तुम्हारा मुख पिपासामयी दृष्टि से देखने लगे तो तुम अपनी ग्रीवा लजाकर मोड लेना। जब श्री कृष्ण तुम्हे कर-स्पर्श करने लगे तो दोनो हाथो की चेष्टाओ से उनके हाथो को रोकना, "ना ना" करना। प्रियतम की मधुर बात-चीत के बीच तुम मौन ही रही आना—अपनी बाते न कहने लगना। जब मैं तुम्हारे

हाथो को उनके हाथो मे दे दूं तो तुम भयातुर एव सकोच मे आना और उलटकर कम्पित गात हुई फिर मुझसे ही लिपट जाना,—कही ऐसा न करना कि उन्माद के वश उनसे ही लिपट जाओ। कविवर विद्यापति कहते हैं कि इस शृगार-रस-राज की यही निराली रीति है—अन्यथा मिलन-सम्भोग के समय स्वय कामदेव ही गुरु बनकर इस रस-रति-क्रिया का पूरा पाठ पढा देता है।

विशेष—प्रस्तुत पद की सबसे बडी महत्ता उसके विषय के सरल प्रतिपादन मे है। जो सीख दी गई है वह ऐसी है, प्राय अभिसारिका की सखियाँ प्रिय-मिलन के प्रथम अवसर पर उसे देती हैं किंतु इन सब मे मान, सकोच, लज्जा एव रोमाच आदि भावो की व्यजना बडी मधुर बन पडी है। यह पक्तियाँ कितनी रसीली हैं—

"हेरइत पिया मुख मोडबि गीम।
परसइत दुहु कर बारबि पानि।
साधस धरबि उलटि मोहे काँपि।"

अत की पक्ति मे काम-प्रभाव एव उसकी स्वाभाविक सिखावन की कितनी यथार्थसगत अभिव्यजना है—

"भए गुरु काम सिखाओब पाठ।"

विद्यापति शृगार-रस के कवि सम्राट् है। उन्होने कम-से-कम शब्दो मे रति-भाव-सम्बन्धी चित्रो की सश्लिष्ट सर्जना एव कलात्मक विवेचना की है—उपरोक्त जैसे पदो को पढकर लगता है मानो शृगार शास्त्र के अध्याय उनके एक-एक पद-रस मे लीन होकर रागात्मक हो उठे हो।

शब्दार्थ—बिसेस=विशेष। देब=देगी। तोहे=तुझे। उपदेस=सीख, काम-क्रीडा विषयक शिक्षा। पहिलहि=पहले। बैठबि=बैठना। सयनक-सीम=सेज की एक तरफ। हेरइत=देखने पर। मोडबि गीम=गर्दन मोड लेना। परसइत=स्पर्श करते समय। बारबि=मना या 'ना ना' करना। पानि=हाथ। मौन रहिब=चुप रहना। पहु=प्रियतम। बानि=बातचीत। आपि='उन्हे अर्पण' करने से तात्पर्य है। साधस=भयातुर हुई। काँपि=काँपकर। इह=यही। रस ठाठ=शृगार-रस की रीति। सिखाओब=सिखायेगा।

(६५)

परिहर, ए सखि, तोहे परनाम।
हम नहि जाएब से पिआ-ठाम।
बचन-चातुरि हम किछु नहि जान।
इगित न बूझिए न जानिए मान।
सहचरि मिली बनाबए भेस।
बाँधए न जानिए अप्पन केस।

कभु नहि सुनिए सुरत क बात।
कइसे मिलब हम माधब साथ।
से बर नागर रसिक सुजान।
हम अबला अति अलप मेआन।
बिद्यापति कह कि बोलब तोए।
आजुक मीलल समुचित होए।

भावार्थ—पूर्व पदो मे वर्णित सखियो से काम-सम्बन्धी सिखावन को सुनकर राधा बडे असमजस मे पड जाती है। भोलीभाली राधा उस स्थिति की कल्पना करके उसके प्रति सिहर जाती है। प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा की भावना का सखियो के आगे प्रकाशन करते हुए लिखते है—

राधा कहती है कि हे सखी, मुझे छोड दो, मै तुम्हारी बाते कुछ नही समझती, तुम्हे प्रणाम करती हूँ कि बस मुझे छोड दो। प्रियतम के पास मै वहाँ उसके स्थान पर अभिसारार्थ नही जाऊँगा। कैसे प्रियतम से कुछ कहा जाता है—यह वचन-चमत्कार मै नही जानती। न मै कोई इशारेबाजी जानती हूँ और न मान करना ही जानती हूँ। मै कुछ भी तो नही समझती। मेरा शृगार तक, मेरी सखियाँ मिलकर करती है। मै तो अपने बाल संवारना तक नही जानती। मैने कभी रति-केलि-क्रीडा की चर्चा तक नही सुनी, फिर तुम्ही कहो कि मैं श्री कृष्ण के सग जाकर कैसे मिलूं? वह श्री कृष्ण तो पूर्ण रस ज्ञात, चातुर पुरुष है। मै अबला हूँ, मेरा तत्सम्बन्ध मे ज्ञान भी अल्प है, है ही नही। विद्यापति कवि कहते है कि राधा की यह भोलीभाली बाते सुनकर सखियो ने कहा कि नही राधा, क्या तुम्हे ऐसी निराशाजनक बात अभी से कहनी चाहिये?—नही, तुम्हारा आज श्री कृष्ण से मिलना बडा ही उचित होगा—उनसे अवश्य मिलो।

विशेष—अक्षत बाला का भोलापन बडा रसमय होता है। वह सभोग-सुख को चाहती हुई भी अपने क्षत हो जाने के परिणाम से भय खाती है—अपने को उस क्रिया से अनिभज्ञ मानती है। यही रसमय मनोविज्ञान इस पद की पक्ति-पक्ति मे भरा बिखरा पडा है।

"हम नहि जाएब से पिया-ठाम।"

इस पक्ति के अनुसार राधा को ज्ञात है कि वहाँ जाने से क्या बीतेगी, फिर—

"बचन-चातुरि हम किछु नहि जान।
इगित न बूझिए न जानिए मान।"

और—

"बांधए न जानिए अप्पन केस।"

जब बाल सँवारना तक उसने नही सीखा तो काम-क्रिया के अवसर पर वह क्या करेगी—यही सोच-समस्या उससे कहलाती है—

"कइसे मिलब हम माधब साथ।"

मिलना तो चाहती है पर "कइसे मिलब"—यही प्रश्न है, आशका है, पिपासा है। भावना के प्रकाश मे मानो कामोद्वेग नाच-नाच उठे है। मनोभावो का ऐसा द्वद्व विद्यापति के पदो मे एक अकथनीय रस-स्वाद का मजा देता है। उनका शृगार वर्णन लक्षणा एव व्यजना की सीमाओ को त्यागकर सार्वभौमिक, सार्वदेशिक सुख-प्रदेशो का कोना-कोना छू आता है।

शब्दार्थ—परिहर=छोड दो। तोहे=तुम्हे। परनाम=प्रणाम। हम=मैं। जाएब=जाऊँगी। से=वह। पिया-ठाम=प्रियतम श्री कृष्ण के पास उस स्थान पर जहाँ वह राधा के साथ सभोग-प्रतीक्षातुर है। किछु=कुछ भी। नहि जान=नही जानती। इगित=इशारेबाजी। मान=नायिका के रूठने का बहाना। सहचरि=सखियाँ। बनाबए भेस=मेरा शृगार करती है। बाँधए=बाँधना, यहाँ बालो के सँवारने से आशय है। अप्पन=अपने। केस=बाल। कभु=कभी। सुरत क बात=सभोग-क्रिया-क्रीडा की बात। कइसे=कैसे। मिलब=मिलूँगी। माधब=श्री कृष्ण। से=वह। बर=सुन्दर। नागर=चतुर। रसिक सुजान=रस का ज्ञाता, श्री कृष्ण। अति=बहुत। अलप=अल्प, थोडा। गेआन=ज्ञान—काम-सम्बन्धी। कि बोलव तोए=क्या तुम्हे यह सब कुछ करना चाहिये? आजुक=विशेष रूप से आज ही का। मीलल=मिलना। समुचित होए=ठीक होगा।

(६६)

काहे डरसि सखि चलु हम सग।
माधब नहि परसब तुअ अग।
इह रजनी फुल-कानन माझ।
के एक फिरत साजि बहु साज।
कुसुम क घोर धनुष धरि पानि।
मारत सर बाला जन-जानि।
अतए चलह सखि भीतर कुज।
जहाँ रह हरी महाबल पुज।
एत कहि आनल धनि हरि पास।
पूरल बल्लभ सुख-अभिलास।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम के अनुसार जब राधा श्री कृष्ण के पास क्षत हो जाने के भय से अभिसार हेतु जाने के लिये भय-उत्सुकता मिश्रित असमर्थता प्रकट

करती है तो कविवर विद्यापति पुन सखियो के द्वारा राधा को साहस दिलाते हुए कृष्ण के पास चलने को प्रेरित करते हुए लिखते है-—

सखियाँ कहती है कि हे भीरू राधे, क्यो डरती हो, चलो हम तुम्हारे सग चलती हैं। श्री कृष्ण तो तुम्हारे अग का स्पर्श तक नही करेगे। इस मधुर एकान्त रजनी मे, पुष्प-वन मे विविध शृगार करके भला कौन रमणी अकेली घूम सकती है ?—अरी, यहाँ फूलो का धनुष हाथ मे लिये कामदेव बालाओ के तीर मारता है। अत , रक्षार्थ हे सखी राधे चलो, कुज के भीतर चलो—जहाँ महान् बलवान श्री कृष्ण रहते है। आशय है कि वह तुम्हे यहाँ के इस कामदेव के सकटमय बाणो से बचा लेगे। इतना कहकर सुन्दरी राधा को, सखियाँ श्री कृष्ण के पास घसीट लाई। और यो राधा को सहज ही पाकर प्रिय श्री कृष्ण की इच्छा-उत्सुकता पूर्ण हुई।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सखियो की चतुराई का प्रकाशन बडा मधुर एव चमत्कारयुक्त हुआ है , ये पक्तियाँ देखिये—

> **"इह रजनी फुल-कानन माझ।**
> **के एक फिरत साजि बहु साज।**
> **कुसुम क घोर धनुष धरि पानि।**
> **मारत सर बाला जन-जानि।"**

उद्धरण की पक्तियो मे रजनी का उन्मुक्त पुष्पमय वातावरण का चित्रण बडा शृगार-भाववर्द्धक है और फिर उसमे कामदेव का पुष्पधनुष लेकर घूमना—यो लगता है मानो हम एक नवीन सुख की रजनी मे विचर रहे हो। वातावरण का चित्रण यहाँ बडा शृगार-रस के उद्दीपन के लिये सर्वथा अनुकूल है। इस वातावरण से घिर कर राधा भला श्री कृष्ण के पास न जाती तो कहाँ जाती ? और फिर वह महापुसत्वशाली है—अक्षत बाला की वासना-पिपासा को सन्तुष्ट करने मे सर्वथा योग्य। अत बडी उत्कृष्टता से विद्यापति ने "महाबल पुज" शब्द का उनके लिये विशेषण प्रयुक्त किया है। भक्तो के लिये वह महाबल पुज इसलिये है कि उन्होने कस जैसे अनेक राक्षसो का निर्दलन किया। इस प्रकार भक्ति एव शृगार दोनो ही भावो की महत्ता इस एक शब्द मे विद्यापति ने गढ दी है। कहा जायगा कि विद्यापति ने छोटे-छोटे गीतो की प्रत्येक पक्ति मे व्यजना का ध्वन्यर्थ सँजोया है—कल्पना की सूझ का विशिष्ट रूपक रचा है।

शब्दार्थ—काहे डरसि=राधे, तू क्यो डरती है। चलु=चल। माधब=श्री कृष्ण। नहिं परसब=नही छूएँगे। तुअ अग=तेरा शरीर। इह=इस। रजनी=रात। फुल-कानन=पुष्प-वन। माझ=मे। के=कोई। एक=अकेली। फिरत=फिरती है। साजि बहु साज=खूब शृगार करके। कुसुम क घोर धनुष=फूलो का बडा धनुष—कामदेव का धनुष। धरि पानि=हाथ से रखकर। मारत सर=तीर मारता है।

बाला जन-जानि=रमणी जन जानकर। अतए=अत। हरी=श्री कृष्ण। रह=रहते है। महाबल पुज=महान् बलशाली। एत कहि=यह कहकर। आनल=ले आई। धनि=सुन्दरी, राधा। हरि पास=श्री कृष्ण के पास। पूरल=पूर्ण होना। बल्लभ=प्रिय, श्री कृष्ण या कवि विद्यापति के लिये प्रयुक्त हुआ है। सुख-अभिलास=सुख-सभोग की इच्छा-उत्सुकता।

(६७)

परिहर मन किछु न कर तरास।
साधस नहि कर चल पिय पास।
बुर कर दुरमति कहलम तोए।
बिनु दुख सूख कबहु नहि होए।
तिल आध दूख जनम भरि सूख।
इथे लागि धनि किए होइ बिमूख।
तिला एक मूनि रहु दु नयान।
रोगि करए जइसे औषध पान।
चल चल सुन्दरि करह सिगार।
बिद्यापति कह एहि से बिचार।

भावार्थ—प्रस्तुत पद के प्रसगक्रम के अनुसार ही सखियाँ राधा को श्री कृष्ण के पास चलने के लिये उत्साहित करती हुई कहती है—

हे राधे, मन मे किसी प्रकार की चिन्ता-आशका न करो और अपने प्रियतम श्री कृष्ण के पास चलो। मै कहती हूँ कि अपनी मूर्ख बुद्धि को त्यागो। अरे बावली, कही बिना दु ख को सहे सुख भी मिलता है ? बिना दु ख पाये सुख कभी नही मिलता। यह ठीक है कि सभोग-क्षति के अवसर पर आधे क्षण के लिये अवश्य दु ख होता है किन्तु फिर जन्म भर के लिये रति-सुख मिलता है। इसलिये हे सुन्दरी, इतने से दु ख के कारण जीवन भर के सुख से क्यो विमुख हो रही हो ? एक आधे पल के लिये सभोग-क्षति के दु.ख के समय दोनो आँखे मूद लेना ऐसे जैसे रोगी कडवी दवा की घूट आँख बन्द करके पी जाता है। हे सुन्दरी चलो चलो, शृगार करो। कविवर विद्यापति कहते है कि यही विचार इस अवसर पर सुन्दर है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सभोग के समय बाला को अनुभव होने वाली क्षणिक पीडा का भाव प्रकट करके जीवन भर के सभोग-सुख का आभास इस आश्वासन पर बडी सुन्दरता एव तथ्यधारित ढग से दिया गया है—

"तिला एक मूनि रहु दु नयान।
रोगि करए जइसे औषध पान।"

उदाहरण का कितना प्रबल प्रकटीकरण है "रोगि करए" पक्ति मे। लोक सम्मत दृष्टि से यह पक्ति मानो सर्वग्राहक बनकर उतरी है—

"बिनु दुख सूख कबहु नहि होए।"

सभोग-शृगार की इतनी यथार्थ एव काव्यगत अभिव्यक्ति कम ही हो पाई है जैसी की इस पद मे हुई है। इस प्रकार के अभिव्यक्ति-कौशल को देखते हुए कविवर विद्यापति को शृगार का श्रेष्ठतम कवि कहने मे कोई अतिशयोक्ति न होगी। उनका शृगार-वर्णन कल्पना, भाव एव अनुभव अध्ययन पक्ष के दृष्टिकोण से बडा ठोस हुआ है। समूचे हिन्दी के शृगारी काव्य मे घनानन्द आदि कवियो के कुछ शृगारी पदो को छोडकर कविवर विद्यापति के सारे पद तुलनारहित है। दूसरी ओर आध्यात्मक पक्ष मे भी आत्मा रूपी बाला का ब्रह्म रूपी प्रियतम से प्रथम सभोग—ब्रह्माण्ड विस्फोट ही 'ब्रह्मानद' है। कला की चरम सीमा पर राग और विराग—वासना और भक्ति एकाकार हो जाते है—यही है तल्लीनावस्था, मधुमति भूमिका—निर्वाण, कैवल्य, मुक्ति। इस ढग से भी भक्त लोग इस पद का रस ले सकते है।

शब्दार्थ—परिहर=त्यागो। किछु=कुछ। तरास=आशका, कष्ट। साधस=भय। दुर कर=दूर करो। दुरमति=मूर्ख बुद्धि। कहलम=कहती हूँ। तोए=तुझे। तिल आध=एक आधे पल को। दूख=दुःख। सूख=सुख, आनद। इथे लागि=इसके लिये। धनि=सुन्दरी, बाला। किए होइ=क्यो होती हो। बिमूख=विमुख। तिला एक=एक क्षण के लिये। मूनि=मूदकर, बद करके। दु नयान=दोनो नेत्र। करए=करता है। रोगि=रोगी, मरीज। जइसे=जैसे। पान=पीता है। करह=करो। एहि से=यह ही।

श्री कृष्ण को शिक्षा

(६८)

हमे दरसइत कतहुँ बेस करु
हमे हेरइत तनु झाँप।
सुरते सिंगारि आज धनि आओलि
परसइत थर थर काँप।
सुनु हे कान्हु कहिये अबधारि
सकल काज हम बुझल बुझाएल
न बुझल अन्तर नारि।
अभिनब काम नाम पुनु सुनइत
रोखत गुन दरसाइ।

बाला जन-जानि=रमणी जन जानकर। अतए=अत। हरी=श्री कृष्ण। रहु=रहते है। महाबल पुज=महान् बलशाली। एत कहि=यह कहकर। आनल=ले आई। धनि=सुन्दरी, राधा। हरि पास=श्री कृष्ण के पास। पूरल=पूर्ण होना। बल्लभ=प्रिय, श्री कृष्ण या कवि विद्यापति के लिये प्रयुक्त हुआ है। सुख-अभिलास=सुख-सभोग की इच्छा-उत्सुकता।

(६७)

परिहर मन किछु न कर तरास।
साधस नहि कर चल पिय पास।
दुर कर दुरमति कहलम तोए।
बिनु दुख सूख कबहु नहि होए।
तिल आध दूख जनम भरि सूख।
इथे लागि धनि किए होइ बिमूख।
तिला एक मूनि रहु दु नयान।
रोगि करए जइसे औषध पान।
चल चल सुन्दरि करहु सिगार।
बिद्यापति कह एहि से बिचार।

भावार्थ—प्रस्तुत पद के प्रसगक्रम के अनुसार ही सखियाँ राधा को श्री कृष्ण के पास चलने के लिये उत्साहित करती हुई कहती है—

हे राधे, मन मे किसी प्रकार की चिन्ता-आशका न करो और अपने प्रियतम श्री कृष्ण के पास चलो। मै कहती हूँ कि अपनी मूर्ख बुद्धि को त्यागो। अरे बावली, कही बिना दु ख को सहे सुख भी मिलता है ? बिना दु ख पाये सुख कभी नही मिलता। यह ठीक है कि सभोग-क्षति के अवसर पर आधे क्षण के लिये अवश्य दु ख होता है किन्तु फिर जन्म भर के लिये रति-सुख मिलता है। इसलिये हे सुन्दरी, इतने से दु ख के कारण जीवन भर के सुख से क्यो विमुख हो रही हो ? एक आधे पल के लिये सभोग-क्षति के दु.ख के समय दोनो आँखे मूद लेना ऐसे जैसे रोगी कडवी दवा की घूट आँख बन्द करके पी जाता है। हे सुन्दरी चलो चलो, शृगार करो। कविवर विद्यापति कहते है कि यही विचार इस अवसर पर सुन्दर है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सभोग के समय बाला को अनुभव होने वाली क्षणिक पीडा का भाव प्रकट करके जीवन भर के सभोग-सुख का आभास इस आश्वासन पर बडी सुन्दरता एव तथ्यधारित ढग से दिया गया है—

"तिला एक मूनि रहु दु नयान।
रोगि करए जइसे औषध पान।"

उदाहरण का कितना प्रबल प्रकटीकरण है "रोगि करए" पक्ति मे। लोक सम्मत दृष्टि से यह पक्ति मानो सर्वग्राहक बनकर उतरी है—

"बिनु दुख सूख कबहु नहि होए।"

सभोग-शृगार की इतनी यथार्थ एव काव्यगत अभिव्यक्ति कम ही हो पाई है जैसी की इस पद मे हुई है। इस प्रकार के अभिव्यक्ति-कौशल को देखते हुए कविवर विद्यापति को शृगार का श्रेष्ठतम कवि कहने मे कोई अतिशयोक्ति न होगी। उनका शृगार-वर्णन कल्पना, भाव एव अनुभव अध्ययन पक्ष के दृष्टिकोण से बडा ठोस हुआ हैं। समूचे हिन्दी के शृगारी काव्य मे घनानन्द आदि कवियो के कुछ शृगारी पदो को छोडकर कविवर विद्यापति के सारे पद तुलनारहित है। दूसरी ओर आध्यात्मक पक्ष मे भी आत्मा रूपी बाला का ब्रह्मा रूपी प्रियतम से प्रथम सभोग—ब्रह्माण्ड विस्फोट ही 'ब्रह्मानद' है। कला की चरम सीमा पर राग और विराग—वासना और भक्ति एकाकार हो जाते है—यही है तल्लीनावस्था, मधुमति भूमिका—निर्वाण, कैवल्य, मुक्ति। इस ढग से भी भक्त लोग इस पद का रस ले सकते है।

शब्दार्थ—परिहर=त्यागो। किछु=कुछ। तरास=आशका, कष्ट। साधस=भय। दुर कर=दूर करो। दुरमति=मूर्ख बुद्धि। कहलम=कहती हूँ। तोए=तुझे। तिल आध=एक आधे पल को। दूख=दुख। सूख=सुख, आनद। इथे लागि=इसके लिये। धनि=सुन्दरी, बाला। किए होइ=क्यो होती हो। विमूख=विमुख। तिला एक=एक क्षण के लिये। मूनि=मूदकर, बद करके। दु नयान=दोनो नेत्र। करए=करता है। रोगि=रोगी, मरीज। जइसे= जैसे। पान=पीता है। करह= करो। एहि से=यह ही।

श्री कृष्ण को शिक्षा

(६८)

हमे दरसइत कतहुँ बेस करु
हमे हेरइत तनु झाँप।
सुरते सिंगारि आज धनि आओलि
परसइत थर थर काँप।
सुनु हे कान्हु कहिये अबधारि
सकल काज हम बुझल बुझाएल
न बुझल अन्तर नारि।
अभिनब काम नाम पुनु सुनइत
रोखत गुन दरसाइ।

अरि सम गजए मन पुनु रजए
अपन मनोरथ साइ।
अन्तर जीउ अधिक करि मानए
बाहर न गन तरासे।
कह कबि-सेखर सहज बिषय-रत
बिदगधि केलि बिलासे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा की एक सखी के द्वारा श्री कृष्ण से राधा के भोले एव विचित्र-से स्वाभाव-व्यवहार के प्रति सहानुभूति एव अपनत्व रखने की बात कहलवाते हुए लिखते हैं—

सखी कह रही है कि हे माधव, वह राधा बडी नादान है। हम सबको देखने-दिखाने के लिये वह चाहे जितना शृगार क्यो न करले किन्तु उसे जब हम देखती हैं या हमारे देखते ही वह अपने शृगार-सज्जित तन को छिपाने लगती है। और आज सभोग-क्रीडा के लिये वह जो तुम्हारे पास शृगार-सज्जित होकर हमारे साथ आई है सो भी कॉपती हुई और हमसे लिपटती भय खाती हुई आई है। गो कि काम-क्रीडा सम्बन्धी सारे कार्य-कलाप हमने उसे समझा-बुझा दिये हैं किन्तु फिर भी नारी हृदय होने के नाते वह नही समझ सकी—हे माधव ! सुनो, कि हम यह सब कुछ तुमसे विश्वासपूर्वक कह रही है। एक तो काम-कर्म-सम्बन्धी उसकी नवीनतम जानकारी, तिस पर भी उसने फिर तुम्हारा नटखट नाम सुना है, अत यद्यपि उसमे गुण दर्शित है ही किन्तु वह रोष या भान व्यक्त करती है। वह शत्रु के समान असगति-सी प्रदर्शित करती है किन्तु फिर मन को भी प्रसन्न करती है—सम्भोग के मनोरथ को सिद्ध या पूर्ण करती है। वह भीतर प्राणो से तुम्हे अधिक चाहती है किन्तु बाहर भय के कारण उसे प्रकट करने मे असमर्थ है। कविवर विद्यापति कहते है कि राधा की सखी ने श्री कृष्ण को सावधान करते हुए कहा कि हे माधव, देखो ऐसी भोली अजान राधा के साथ सम्भोग-क्रीडा मे सहज व्यवहार रखना, जबरदस्ती न करना तभी वह भोग-विलास मे विदग्धा धर्म का पालन कर सकती है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे अक्षत बाला के सग-समागम का तौर-तरीका खूब यथार्थपरक कहा जायगा। अक्षत बाला को विदग्धा धर्म मे पारगत बनाने का दायित्व श्री कृष्ण जैसे रसिक जन का ही होता है तभी तो श्री कृष्ण को सखियो ने क्या चतुराई से सावधान किया है—

"बिदगधि केलि बिलासे।"

अक्षता बाला का अभिसारार्थ सखियो के साथ जाते हुए झिझकायमान और कम्पायमान रूप का सजीव शब्द-चित्र इस पक्ति मे कितनी सफलता से विद्यापति ने

चित्रित किया है—देखिए,

"सुरते सिंगारि आज धनि आओलि
परसइत थर थर काँप।"

नव शृंगारिणी की स्वाभाविक व्रीडा या लज्जा का यह चित्र भी अपनी कलात्मकता मे अपूर्व कहा जायगा—

"हमे दरसइत कतहुँ बेस करु।
हमे हेरइत तनु झाँप।"

और "रोखत गुन दरसाइ" उक्ति मे बडी मिठास से गुणवती नारी के मान-प्रदर्शन का भाव जड दिया गया है। इस प्रकार बिहारी की कलात्मकता मे जीवन का रग है, रस है, आह्वान है। उनकी एक भी पक्ति कला एव भाव-पक्ष से शून्य नही बन सकी, और एक शृगारी कहे जाने वाले कवि की इससे बडी सफलता और क्या होगी ?

शब्दार्थ—दरसइत=देखने मे। हेरइत=देखकर। तनु झाँप=शरीर ढक लेती है। सुरते सिगारि=सभोग-शृगार। धनि=बाला, राधा। आओलि=आई है। परसइत=लिपटती। काँप=काँपती हुई। कहिये अबधारि=निश्चय या विश्वास-पूर्वक कहती है। सकल=सारे। काज=काम। बुझल बुझाएल=समझ-बूझ लेना, कह-सुन लेना। न बुझल=नही समझ सका। अन्तर नारि=नारी का नादान हृदय। अभिनव=नवीनतम। पुनु=फिर। सुनइत=सुनती है। रोखत=रुष्ट होती है, मान करती है। गुन दरसाइ=गुण प्रकट करके। अरि सम=शत्रु के समान। गजए=गजना करना यहाँ आशय असगति पैदा करने से भी है। रजए=प्रसन्न करती है। मनोरथ साइ=मनोरथ सिद्ध करके। जीउ=प्राण। अधिक करि मानए=अधिक समझती है। न गन=गिनती नही, महत्त्व मे नही लाती। तरासे=भय। कबि-सेखर=कवि विद्यापति का सम्मानित नाम। सहज= आसानी से, जबरदस्ती नही। बिषय-रत=सभोग-क्रिया। बिदगधि=विदग्धा, सचतुर रमणी। केलि बिलासे= काम-क्रीडाएँ।

(६६)

सुन सुन सुन्दर कन्हाई।
तोहे सोपल धनि राई।
कमलिनि कोमल कलेबर।
तुहु से भूखल मधुकर।
सहज करब मधु पान।
भूलह जन पँचबान।

परबोधि पयोधर परसिह ।
कुंजर जनि सरोरुह ।
गनइत मोतिम हारा ।
छले परसब कुच भारा ।
न बुझए रति-रस-रग ।
खन अनुमति खन भग ।
सिरिस कुसुम जिनि तनु ।
थोरि सहब फुल-धनु ।
बिद्यापति कवि गाब ।
दूति क मिनति तुए पाब ।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम के अनुसार ही कविवर विद्यापति लिखते है—

राधा की सखी कहती है कि हे सुन्दर कान्ह सुनो, कि मैने सुन्दरी राधा को तुम्हारे हाथो सौप दिया है। देखो, राधा का तन कमलिनी जैसा कोमल है और तुम भूख से प्रताडित भौरे के समान हो रहे हो। आशय यह है कि राधा अत्यधिक कोमलागी है और कृष्ण बडे बलशाली है, कामातुर है। ध्यान रहे कि अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे ही मधुपान अथवा सभोग-रस का पान करना, कही कामदेव के वशीभूत होकर आपे से बाहर हो जाओ और मेरी सीख को भूल जाओ। आशय यह है कि सहज सभोग-त्रिया की सीख ध्यान मे रखना नही तो अनर्थ हो जायगा। उसे बहला-सहला और समझाकर ही उसके उरोजो का स्पर्श करना, हाथी और कमल का जैसा उद्दण्ड व्यवहार न करने लगना। आशय यह है कि जिस प्रकार हाथी कमलो को उखाड-पछाड देता है उस प्रकार श्री कृष्ण राधा के उरोजो का मर्दन खण्डन न करे, जरा सावधानी से। देखो कान्ह, उसके हार के मोतियो की गणना के बहाने बडे छल से हमारी राधा के कुचो को स्पर्श करना, सहलाना, समझे ! वह काम-विलास के रगढग को अभी नही जानती। वह क्षण मे राजी हो सकती है और क्षण मे रूठ सकती है।' 'हॉ ना' दोनो ही उसके लिए समान है। उसका शरीर शिरीष के फूलो जैसा कोमल एव सुन्दर है अत वह कामदेव के धनुष का आघात थोडा-सा ही सहन कर सकती है। कविवर विद्यापति गाते है कि उस सखी ने कहा कि हे कान्ह, इस प्रकार इस दूती की विनयमय सीख तुम्हारे चरणो मे समर्पित है—इसी के अनुसार हमारी राधा नवेली से काम-विलास का सुख लेना।

विशेष—प्रस्तुत पद मे राधा के तन की कोमलता का बडा आलकारिक वर्णन किया गया है—

"कमलिनि कोमल कलेबर।"

इस उक्ति मे उपमा-अनुप्रास का एकसाथ प्रयोग रागात्मक बन पडा है। शृगारिक रति-भाव-पक्ष का नारीयोचित स्वाभाविक वर्णन भी बडा सरस हुआ जिसमे काम-मनोविज्ञान का पक्ष भी उत्कृष्टता से निहित है—इसके लिए यह पक्ति बेजोड उदाहरण है—

"न बुझए रति-रस-रग।
खन अनुमति खन भग।"

उद्धरण की दूसरी पक्ति "खन अनुमति खन भग" मे नव बाला का रति-भाव-चाचल्य एव लज्जावेश अत्यन्त स्वाभाविकता से व्यजित है। प्रथम सभोग के अवसर पर प्राय नवयुवक कामोत्तेजन सीमा से बाहर हो जाता है, इससे बाला को कष्ट होता है, इसी तथ्य का कितना कलात्मक सकेत है—

"सहज करबि मधु पान।
भूलह जनि पँचबान।"

इसके लिए पुरुष को बडा चतुर एव कुछ सयमी भी होना आवश्यक है—

"गनइत मोतिम हारा।
छले परसब कुच भारा।"

इन पक्तियो द्वारा मानो कामशास्त्र का समस्त सक्षिप्ततम काव्य सस्करण प्रस्तुत किया गया है। कला का इतना सूक्ष्म भाव-चित्रण साहित्य मे कम देखने को मिलता है। निश्छल आत्माभिव्यजन एव शृगार-रस-वर्षण—जीवन की पिपासा का घोरतम आकर्षण-चित्रण कविवर विद्यापति के ऐसे पदो मे पावस के बादलो की भाँति बरस पडा है। सहृदय काव्य रसिको के लिये यही कारण है कि विद्यापति के यह पद अमर रस के स्रोत है।

शब्दार्थ—सुन=सुनो। कन्हाई=कान्ह। तोहे=तुम्हे। सोपल=सुपुर्द कर दिया। धनि राई=सुन्दरी राधा। कलेबर=शरीर। तुहु=तुम। से=हो। भूखल=भूख से प्रताडित या व्यग्र। मधुकर=भँवरा, रसिक। सहज=स्वाभाविकता से। करबि=करना। जनि=मत। पँचबान=कामदेव। परबोधि=प्रबोध, यहाँ बहला-समझाकर से तात्पर्य है। पयोधर=कुच। परसिह=स्पर्श करना। कुजर=हाथी। सरोरुह=कमल। गनइत=गिनते हुए। मोतिम=मोतियो को। हारा=हार। छले=छल से। परसब=छूना। कुच=स्तन। न बुझए रति-रस-रग=वह राधा काम-क्रीडा-विलास को अभी नही जानती। खन=क्षण मे। अनुमति=राजी होना। भग=रूठ जाना। सिरिस=शिरीष। थोरि=थोडा। सहब=सह सकना। फुल-धनु=कामदेव का पुष्पबाण। गाब=गाते है। दूति=वही सखी। क=का। मिनति=मिन्नत, विनय। तुए पाब=तेरे चरणो पर समर्पित है।

(७०)

प्रथम समागम भुखल अनङ्ग ।
धनि बल जानि करब रतिरग ।
हठ न करब अति आरति पाए ।
बडहु भुखल नहि दुहु कर खाए ।
चेतन कान्हु तोहहि अति आथि ।
के नहि जान महत नब हाथि ।
तुअ गुन गन कहि कत अनुबोधि ।
पहिलहि सबहि हललि परबोधि ।
हठ नहि करब रती परिपाटि ।
कोमल कामिनि बिघटति साटि ।
जाबे रभस सह ताबे बिलास ।
बिमति बुझिअ जयँ न जाएब पास ।
धसि परिहरि नहि धरबिए बाहु ।
उगिलल चाँद गिलए जनि राहु ।
भनइ बिद्यापति कोमल काँति ।
कौसल सिरिस-सुमन अलि भाँति ।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रमानुसार सखी श्री कृष्ण से कह रही है—

हे कृष्ण, यह राधा के साथ प्रथम सभोग का अवसर है और इधर तुम्हे कामदेव की भूख विकल कर रही है, इसलिये मै चेतावनी दे रही हूँ कि उस बाला की सामर्थ्य को ध्यान मे रखते हुए ही सभोग-विलास करना, अन्यथा अनर्थ हो जायगा । देखो, यदि वह अत्याधिक कामातुर भी हो जाय तब भी उसके साथ सभोग का हठ-ज़ोर मत लगाना । ध्यान रहे कि बहुत भूखा होने पर भी कोई दोनो हाथो से नही खाता । आशय यह है कि राधा के साथ सभोग-क्रिया मे धीगामुश्ती से काम मत लेना—आहिस्ता—आहिस्ता ! हे कन्हैया, तुम तो रस शृगार के विषय मे बडे सुजान हो—समझदार हो । भला बोलो, कौन नही जानता कि चतुर फीलवान मस्त हाथी को भी अपनी चतुराई से वश मे करता है, झुका लेता है । तुम्हारे गुण-यश का पूर्व कितना ही वर्णन करके और समझा-बुझा करके मै राधा को यहाँ लाने मे सफल हुई हूँ । हे कृष्ण, मै तुम्हारी हा-हा खाती हूँ कि उसके साथ, रति-सभोग के नियमो एव ढगो को तोडकर, उदण्डता से काम-क्रिया न करना, अन्यथा वह कोमलागी सुन्दरी क्षीण अथवा अस्तव्यस्त हो जायगी, किसी काम की नही रहेगी । आशय यह है कि यदि राधा के साथ पूर्ण सहानुभूति के साथ सभोग न किया गया और धुन बाँधकर उससे सभोग का आनद लूटने का

उपक्रम जारी रक्खा तो उसके कोमल तन एव रूप-यौवन का नाश हो जायगा। आगे सखी कहती है कि हे कृष्ण, जब तक वह सभोग-विलास की क्रीडा को सहन कर पाए तब तक ही उसके साथ वैसा करना और यदि उसे रुष्ट अथवा खीजी हुई-सी देखो-समझो, फिर उसके पास न जाना, सभोग न करना। उसे ऐसी दशा मे एक बार छोड-कर फिर घुसकर-बढकर उसकी बाह को सभोगार्थ न लपक लेना—धर-पकड की नीति न अपनाना। देखो, राहू भी चन्द्रमा को पहले ग्रस और फिर उगलकर फिर तत्काल ही उसे नही निगलता। आशय यह है कि एक बार सभोग करने के पश्चात् तत्काल फिर जुट जाना ठीक नही होता—राहू के, चाँद को उगलकर तत्काल न निगल लेने वाली बात का उदाहरण प्रस्तुत है। श्री कृष्ण भी राधा के साथ सभोग के बाद पुन सभोग न करे। कविवर विद्यापति कहते है कि उस सखी ने श्री कृष्ण से कहा कि हे कृष्ण, राधा अत्यन्त कोमल कातिमयी है और तुम इस प्रकार के सहृदय रसिक हो जैसे सिरिस के पुष्प का रसपान करनेवाला भवरा हो। आशय यह है कि राधा का रूप-सौन्दर्य-रस इस भाँति है ज्यो सिरिस का पुष्प एव श्री कृष्ण इस प्रकार से है जैसे सिरिस पुष्प का धीरे-धीरे रस चूसने वाला भौरा हो। अत राधा-कृष्ण की इसी प्रकार की रति-गति होनी चाहिए।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सभोग के समय की अति रोमाचित स्थिति एव उससे पैदा होनेवाले अनर्थ की ओर एक साथ इगित किया गया है—

"हठ न करब अति आरति पाए।"

× ×

"जाबे रभस सह ताबे बिलास।"

उक्त पक्ति मे केवल इतिवृत्तात्मकता नही, प्रत्येक शब्द मे काम-मनोविज्ञान का प्रकटीकरण बडे सयत एव स्वाभाविक रूप मे हुआ है। ज्यो-ज्यो नारी की रति-इच्छा प्रबल होती है पुरुष का सयम टूटता जाता है और वह प्राय प्रथम सभोग के अवसर पर तो हठपूर्वक वह कर गुजरता है जो रमणी के लिए जीवनपर्यन्त दुखदायी हो जाता है। तभी "जाबे बिलास" पक्ति मे विद्यापति ने बडी प्रभावशाली चेतावनी दे दी है। उस समय कुछ धैर्य और सयम अनिवार्य होता है, वह रक्खा भी जा सकता है—इसके लिये कविवर विद्यापति ने कितनी अच्छी एव पुष्ट पक्तियाँ लिखी है—

"के नहि जान महत नब हाथि।'

× ×

"बडहु भुखल नहि दुहु कर खाए।"

उक्त दोनो पक्तियो मे यथार्थ एव प्रभाव का समन्वय काव्य के धरातल पर हुआ है—इससे कविवर विद्यापति की सूक्ष्म जीवन-दृष्टि का पक्ष खुलता है, जोकि यह भी उनके शृगार-वर्णन की पुष्टि का ही एक अग है। सच्चाई तो यह है कि सभोग-

शृगार के वर्णन मे कविवर विद्यापति ने कविता-कला के साँचे मे यथाप्रयास वह सब कुछ कहने की चेष्टा की है जो कामशास्त्र विषयक है, शृगार-साहित्य विषयक है। ऐसा करने मे वह विशुद्ध काव्य के लक्ष— ग्रानद' को नही भुला सके और इसी की सफलता कम-अधिक रूप मे उनके पदो मे अभिव्यजित हुई है। वाक्वैदग्ध्य भी विद्यापति ने अत्यत अभिनव ढग से अभिव्यजित किया है, देखिये—

"उगिलिल चाँद गिलए जनि राहु।"

सभोग के पश्चात् ग्रात्मधिक्कार का भाव इसी प्रकार अनुभव होना और फिर सभोग से अल्प समय के लिये अरुचि होना स्वाभाविक ही नही अनिवार्य है ऐसे जैसे चाँद को एक बार उगलकर पुन राहू तत्काल उसे नही निगलता। यह है उक्ति-वैदग्धता का अभिनव अभिव्यजन ! "उगिलल" शब्द पूर्ण प्रभावशाली है।

शब्दार्थ—प्रथम समागम=प्रथम सभोग। भुखल=भूखमय। अनङ्ग=कामदेव। धनि=सुन्दरी बाला, राधा। बल जानि=सामर्थ्य समझकर। करब=करना। रतिरङ्ग=काम-विलास। हठ न करब=जिद-जोर न करना। अति=बहुत। आरति पाए=आतुर हुई पाकर। बडहु=बहुत। दुहु कर खाए=दोनो हाथो से नही खाते। चेतन=चतुर। तोहहि=तुम। अति=अत्यधिक। आथि=हो। महत=फीलवान या महावत। नब=झुकाना, वश मे करना, नया। तुअ=तुम्हारे। कत=कितना। अनुबोधि=समझाकर। हलि=लाई। परबोधि=प्रबोध। रती परिपाटि=रति-विलास की परिपाटी या रीति। बिघटति साटि=पीडित होकर अस्तव्यस्त या क्षीण होगी। जावे=जब तक। रभस=काम-क्रीडा। सह=सह सके। ताबे=तब तक। बिलास=काम-सभोग। बिमति बुझिअ=रुष्ठ या खीजी हुई-सी। जयँ=यदि। धसि=घुसकर या लपककर। परिहरि=छोडकर। धरबिए=पकडना। उगिलल=उगलकर। गिलए=निगलना। जनि=नही। भनइ=कहते है। कोमल काँति=कोमलागी कातिमयी राधा। कौसल=चतुराई से। सुमन=पुष्प। अलि=भौरा। भाँति=तरह, प्रकार से।

(७१)

बुझब छयलपन आज।
राहि मनि रतने आनलि अति जतने
बचि सब रमनि-समाज।
सिरिस कुसुम जनि अति सुकुमार धनि
आलिगब दृढ़ अनुरागे।
निर्भय करब केलि केहु नहि बूझे गेलि
भौर भरे मांजरि न भाँगे।
पिरीतिक बोलि नियरे बइसाओब
नख हनि आतब कोल।

नहि नहि कर धनि कपट भुलब जनु
यदि कह कातर बोल।

भावार्थ—पूर्व पदो के प्रसगक्रम के अनुसार राधा की सखी श्री कृष्ण से कह रही है—

हे माधव, आज मै तुम्हारे छैल-छबीलेपन या चतुर रसिक जानूगी-मानूगी। क्योकि रत्नो मे मणि जैसी सुन्दरी राधा को समस्त जन समाज से छलपूर्वक छिपाती बडे यत्न से मै तुम्हारे पास लाई हूँ। यद्यपि वह बाला शिरीष के फूलो जैसी है, अत्यधिक कोमलागी सुकुमारी है किन्तु तदपि बडे लाड-दुलार मे उसका आलिगन करना। निडर होकर उसके साथ भोग-विलास की क्रीडा करना। यह कौन नही जानता कि भौरे के भार से कभी कोमल मजरी नही टूटा करती। प्रेम से बोलकर उसे पहले अपने निकट बिठलाना फिर अपने नखो से उसके कुचो को नोच-कचोट कर अपनी गोदी मे ले लेना—सभोग-क्रिया आरम्भ कर देना। वह बाला 'नही नही' करेगी, अपने दीन वचनो से छलपूर्वक बचने का प्रयास करेगी किन्तु देखो, कही उसके छल मे न आ जाना, कि उसे यो ही छोड दो।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सभोग की वृत्ति को बडी तीव्रता से उकसाया गया है। सभोग के समय प्राय नव रसिक जन रमणी की "ना ना" एव अनमनी भावमुद्रा से प्रभावित होकर सभोग-क्रिया के रस मे वचित हो जाते है—यह नपुसकता है। उद्दण्डता से नही, बडे प्यार से पुरुष को उस समय रमणी को आलिगन पाश मे लेकर जी खोलकर कुच-मर्दन करना चाहिये—यही उसे पूर्ण आनद मे लाने की कुजी है, और कविवर विद्यापति ने उसे किस कमाल से यो घुमाया-फिराया है कि श्रगार-रस का कोष-ताला आसानी से खुलता प्रतीत होता है—

"सिरिस कुसुम जनि अति सुकुमार धनि
आलिगब दृढ अनुरागे।
निर्भय करब केलि केह नहि बूझे गेलि
भौर भरे माँजरि न भाँगे।"

अतिम पक्ति मे वालिसिनी बाला की 'ना ना' वाली अस्वीकृति की बात को बडी सफाई से छलनामय बताकर यह व्यजना कर दी गई है कि वह भी सभोग के लिये पूर्णत इच्छुक है। डा० रामकुमार वर्मा ने भी एक गीत मे यही भाव बडी सुन्दरता से प्रकट किया है—

"छू लो तो मै हार मानलू।
'ना' कहकर तुम हंस देती हो कैसे मै इन्कार मानलू।"

सभोग-क्रिया के समय पुरुष के भार से कभी कोमल रमणी हताहत नही हुआ करती—कैसे? —सो देखिये, कितनी काव्य विशिष्टता से कविवर विद्यापति ने इसे सिद्ध किया है—

"भौर भरे मांजरि न भांगे।"

पुरुष का उपमान भौरा एव रमणी का उपमान मजरी ? कितना सुन्दर एव सफल सादृश्य है। वाणी की ऐसी निपुण सूझ जिसमे रस, अलकार, यथार्थ एव कल्पना का सतरगी वातावरण काम-रसिको के तन-मन प्राणो को पुलकित कर देता है, विद्यापति की रचनाओ मे पूर्ण रूप मे विद्यमान मिलता है। मानो कला और शृगार का युगल रूप विद्यापति ने अपने शृगारी पदो मे चित्रित कर दिखाया है। प्रस्तुत पद की पक्ति मे गेयत्व एव लयात्मकता प्रधान है। देखिये—

"राहि मनि रतने आनलि अति जतने"

या

"सिरिस कुसुम जनि अति सुकुमार धनि"

ऐसी पक्तियो को पढकर अनायास सस्कृत गीतिकाव्य के प्राण जयदेव की ललित पदावली का स्मरण हो आता है। देखिये—

"समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिता धरे।
मृगमदतिलक लिखित सपुलक मृगमिव रजनीकरे॥"

(गीतिगोविन्दम सप्तमसर्ग)

भाव-पक्ष की दृष्टि से सर्वथा नही किन्तु पद-लालित्य की दृष्टि से अवश्य विद्यापति के पदो मे जयदेव का प्रभाव परिलक्षित होता है।

शब्दार्थ—बुझब=समझूगी या जानूगी-मानूगी। छयलपन=छैल-छबीलापन, रसिकपन। राहि=राधा। मनि रतने=रत्नो मे सुदर मणि के समान, राधा। आनलि=लाई। अति जतने=बडे प्रयत्न से। बचि=धोखे से छलपूर्वक। रमनि=रमणी। सिरिस=एक कोमलतम पुष्प का नाम। धनि=सुन्दरी बाला। आलिगब=आलिंगन करना। दृढ=मजबूत, खूब। अनुरागे=प्यारपूर्वक। करब=करना। केलि=विलास। केह=कोई। बूझे=जानता। गेलि=गा। भरे=भार से। माँजरि=मजरी। न भाँगे=नही टूटती। पिरीतिक=प्रेम के। नियरे=पास। बइसाओब=बैठाना। नख हनि=नाखूनो से क्षत करना। कोर=गोद। भुलब जनु=भुलावे मे मत आना। कातर=दयनीय।

मिलन

(७२)

सुन्दरि चललिहु पहु-घर ना।
चहुदिस सखि सब कर धर ना।
जाइतहु लागु परम डर ना।
जइसे ससि काँप राहु डर ना।
जाइतहि हार टुटिए गेल ना।
भूखन बसन मलिन भेल ना।
रोए रोए काजर वहाए देल ना।
अदकँहि सिंदुर मेटाए देल ना।
भनइ बिद्यापति गाश्रोल ना।
दुख सहि सहि सुख पाश्रोल ना।

भावार्थ—प्रस्तुत प्रसग के अन्तर्गत कविवर विद्यापति अभिसारिका रमणी राधा के उस समय के मनोद्वेगो का सात्विक एव शृगारिक वर्णन प्रस्तुत करते हैं जबकि वह श्री कृष्ण के पास प्रथम मिलन-समागम के लिए तत्पर होती है—

सखियाँ कह रही है कि हे सुन्दरी राधे, चलो, अपने प्रियतम श्री कृष्ण के घर चलो। चारो ओर से सारी सखियाँ राधा के हाथ को पकड-पकडकर वहाँ चलने के लिए खीचती है। इस अवस्था मे भी, राधा को जाते-जाते अत्यन्त हिचकिचाहटयुक्त भय प्रतीत हो रहा है। वह इस प्रकार से काँप रही है, रोमाचित हो रही है जैसे चन्द्रमा राहु के भय से काँपता है। उसका हार जाते-जाते बीच मार्ग मे ही टूट गया और वस्त्राभूषण भी मलीन हो गये। रोमाच की अवस्था मे, रो-रोकर उसने अपने नेत्रो का काजल भी धो डाला। आशय यह है कि राधा इस बात से दु खी है कि आज वह परायी हो रही है, या कृष्ण के हाथो अपने को सुपुर्द कर रही है, या उसे इस बात की कल्पनाजनित पीडा है कि वह प्रथम समागम के समय बडा कष्ट का अनुभव करेगी ("रोए रोए काजर" की व्यजना कई भावो-अर्थो का सकेत देती है। क्योकि सभोग के लिए रमणी का दु.ख कोई स्थायी अथवा स्वाभाविक महत्त्व नही रखता। अत हमने तीनो अर्थ दे दिये हैं जिसमे तीसरा भावार्थ कि वह प्रथम समागम की पीडा

से विकल है, अधिक सम्रत लगता है ।) सभोग की कष्ट-कल्पना के कारण उसने माथे का सिंदूर भी मिटा दिया है। कविवर विद्यापति गाकर कहते है कि यो दुख सह-सह कर ही सुख पाना होता है । आशय यह है कि सभोग का कष्ट ही आगत मे सम्भोग का महासुख बन जाता है ।

विशेष—प्रिय के प्रथम मिलन-समागम के अवसर पर अक्षत बाला की मानसिक रोमाचमय एव कष्ट की अनुभूति का भाव प्रबल बन जाता है। इन पक्तियो मे इसी भाव की यथार्थ किन्तु काव्यसगत अभिव्यजना बडी उत्कृष्ट हुई है—

"जाइतहु लागु परम डर ना ।
जइसे ससि काँप राहु डर ना ।
जाइतहि हार टुटिए गेल ना ।"

पद मे भावाभिव्यजना बडी गम्भीर हुई है । इधर तो राधा यह जानती है कि वह मिलन-विलास के लिये चल रही है और फिर उसका शृगार मलीन हो रहा है, वह रो रही है—क्यो ? इसके लिए बडी निपुणता से कविवर विद्यापति ने व्यजना प्रकट की है कि वह योनि-क्षत की आशका से आकुल है, जैसी आकुलता कि साधारणत स्वाभाविक रूप मे प्रथम समागम के अवसर पर अक्षत बाला मे जाग्रत हुआ करती है—

"रोए रोए काजर दहाए देल ना ।
अदकँहि सिंदुर मेटाए देल ना ।"

इसका अर्थ यह नही कि वह मूलत किसी अपार कष्ट से पीडित हो रही है वरन् यह भी कि वह किसी अनजान के हाथो अपने को पूर्णत सर्मपित करने जा रही है और यह भी कि अपना घर छोड रही है। यह सब बात अभिधा से नही, व्यजना से ही ॱ वक्ष य है । इस सबकी पुष्टि अन्तिम पक्ति मे है—

"दुख सहि सहि सुख पाओल ना ।"

प्रथम सभोग का दुख सहना भविष्य का उसके द्वारा ही महासुख पाना है। इस प्रकार रोमाच, स्वेद, भय, लज्जा, व्रीडा आदि सात्विक मनोद्रेको का कम से कम शब्दो मे प्रकाशन कर सम्भोग-शृगार-रस का पूर्णत प्रवाहन किया गया है । कविवर विद्यापति की सूक्ष्म काम-काव्य-कला का यह अनूठा रूप-पक्ष है ।

शब्दार्थ—पहु-घर=प्रियतम के घर, श्री कृष्ण के यहाँ समागम हेतु । कर धर ना=हाथ पकडे हुए । जाइतहु=जाते हुए भी । परम=बडा । जइसे=जैसे । टुटिए गेल ना=टूट गया । भूखन बसन=वस्त्राभूषण । मलिन=मलीन । दहाए देल ना=बहा दिया अदकँहि=भय से या रोमाच से ।

(७३)

कौतुक चललि, भवन कए सखनि गे
[illegible]

बिच बिच सोभित सुन्दरि सजनि गे
जेहि घर मिलत मुरारि।
लए अभरन कए षोडस सजनि गे
पहिर उतिम रँग चीर।
देखि सकल मन उपजल सजनि गे
मुनिहुक चित नहि थीर।
नील बसन तन घेरलि सजनि गे
सिर लेल घोघट सारि।
लग लग पहु के चलइत सजनि गे
सकुचल अँकम नारि।
सखि सब देल भवन कए सजनि गे
घुरि आइलि सभ नारि।
कर धए लेल पहु लग कए सजनि गे
हेरए बसन उघारि ।
भए बर सनमुख बोलइ सजनि गे
करे लागल सबिलास।
नब रस रीति पिरीति भेल सजनि गे
दुहु मन परम हुलास।
बिद्यापति कबि गाओल सजनि गे
ई थिक नब रस रीति ।
बयस जुगल समुचित थिक सजनि गे
दुहु मन परम पिरीति।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

चारो ओर से राधा को घेरकर कई सखियाँ कौतुक चुहल करती हुई उस घर के लिये प्रस्थान कर चली कि जहाँ माधव उपस्थित थे। उनके बीच मे चलती-चलती राधा शोभायमान होती थी। आभूषणो को लेकर उस सजनी राधा ने उन्हे धारण किया, और सोलह शृगार किये थे और उत्तम रगमय वस्त्र (या साडी) पहने हुए थी। उसे यो शृगार-सज्जित देखकर मन मे काम-भाव पैदा हो रहा था और साधारण लोगो मे ही नही, मुनियो तक का हृदय उसके रूप-शृगार को देखकर धैर्य-हीन हो गया, विचलित होने लगा। नीली साडी से उसका शरीर लिपटा हुआ था और उसने सिर पर घूँघट को भली-भाँति सँभारा हुआ था। ज्यो-ज्यो वह सकुचाती-सकुचाती हुई प्रियतम के निकट पहुँचने के लिये चल रही थी, त्यो-त्यो सकोचवश वह बाला अपने ही अक से सिमटी-लिपटी जा रही थी। सब सखियो ने उसे श्री कृष्ण के

केलि-भवन मे जा छोडा और स्वय सभी लौट आईं। तब, श्री कृष्ण ने हाथ पकडकर सजनी राधा को अपने निकट खीच लिया और उसके अचल-पट को उघारकर उसकी अग-छवि को देखने लगा। सम्मुख होकर वह राधा से मधुर-मधुर बतियाने लगा और फिर सभोग-विलास करने लगा। सजनी राधा के मन मे इस नवीन-प्रीति-रीति का आनद भाव जागा और इस प्रकार दोनो के मन मे एकसाथ महानद का हर्ष व्याप्त हो गया। कविवर विद्यापति गाते है कि हे सजनी, यह सभोग-शृगार की नवीन रस-रीति है। राधा और कृष्ण—इन दोनो प्रेमी-प्रेमिकाओ की आयु भी इस रस सभोग शृगार के अनुकूल एव समान है अत दोनो के मन मे ही परस्पर परम प्रीति-सुख की भावना का सचार है।

विशेष—सभोग-शृगार के वातावरण का चित्रण, सखियो के साथ अक्षत बाला का प्रिय-मिलन के समागम हेतु प्रस्थान एव उद्दीपन भावो का प्रकाशन इस पद मे बडी स्वाभाविकता से प्रकट हुआ है। भारतीय नव वधू का रूप बडा ही लुभावना होता है, उसका सजीव चित्रण इन पक्तियो मे दर्शनीय है—

"नील बसन तन घेरलि सजनि गे
सिर लेल घोघट सारि।"

प्रथम समागम के समय चतुर प्रियतम का आकर्षण प्रबल एव बोलभाव अत्यत तरल होता है, उसी की सुन्दर अभिव्यजना इन पक्तियो मे उतरकर आई है—

"कर धए लेल पहु लग कए सजनि गे
हेरए बसन उघारि।
भए बर सनमुख बोलइ सजनि गे
करे लागल सबिलास।"

भाव-चापल्य की चित्रात्मकता इस पक्ति मे बडी उत्कृष्ट है—

"बिच बिच सोभित सुन्दरि सजनि गे।"

इस पक्ति को पढकर महाकवि तुलसी की सीता की वह छवि आँखो मे घूम जाती है जब वे स्वयवर हेतु सखियो के साथ सभा मे आ रही होती है।

शब्दार्थ—चौदिस=सब ओर से। अभरन=आभूषण। षोडस=सोलह। उतिम=उत्तम। चीर=वस्त्र या साडी। कए=करके। मुनिहुक=मुनीयो के भी। नहि थीर=स्थिर नही, चलायमान हुए। बसन=वस्त्र। नील=नीला। तन घेरल=शरीर पर पहने या लपेटे हुए। घोघट=घूँगट। सारि=सभारा हुआ। पहु=प्रियतम। सकुचल=सकुचाना। अँकम=हृदय, अक मे। नारि=राधा, स्त्री। घुरि आइलि=वापिस आ गईं। कर धए=हाथ खीचकर या पकडकर। पहु लग कए लेल=प्रियतम ने निकट खीच लिया। उघारि=खोलकर। हेरए=देखता है। भए=होकर। सनमुख=सम्मुख। करे लागल=करने लगा। सबिलास=सभोग-विलास।

नब=नई। पिरीति=प्रीत। दुहु=दोनो। हुलास=हर्ष। ई=यह। थिक=है। बयस=आयु। जुगल=दोनो। समुचित=बिल्कुल ठीक, अनुकल या उचित।

(७४)

अहे सखि अहे सखि लए जनि जाह।
हम अति बालिक आकुल नाह।
गोट गोट सखि सब गेलि बहराय।
बजर किबाड पहु देलन्हि लगाय।
तेहि अबसर पहु जागल कन्त।
चीर सँभारलि जिउ भेल अन्त।
नहि नहि करए नयन ढर नोर।
कांच कमल भमरा झिकझोर।
जइसे डगमग नलिनि क नीर।
तइसे डगडग धनि क सरीर।
भन बिद्यापति सुनु कबिराज।
आगि जारि पुनि आगि क काज।

भावार्थ—पूर्व पदो के प्रसगक्रम म परस्पर सखियाँ राधा के श्री कृष्ण से मिलन-प्रस्थान के विषय मे चर्चा करती हुई कह रही है कि जब राधा श्री कृष्ण के साथ मिलन-समागम के हेतु जा रही थी तब वह कितनी विकल, विवश एव दयनीय प्रलाप-सा कर रही थी। वह कहती थी—

हे सखी, हे सखी! मुझे वहाँ श्री कृष्ण के पास न ले जाओ। (हम) मैं तो अभी निपट अनजान बाला हू, काम-विलास के व्यापार को जरा भी नही जानती। और उधर मेरे प्रियतम या स्वामी श्री कृष्ण काम-क्रीडा के लिये अत्यत आकुल-उत्सुक है। अत ऐसी कशमकश मे मुझ पर क्या बीते, कौन जाने? आशय यह है कि इस प्रकार के भय-असमजस मे राधा परेशान थी किन्तु सखियो के साथ, मना करने पर भी, उन्हे श्री कृष्ण के पास समागम के लिये जाना ही पडा। और फिर—एक-एक करके सारी सखियाँ बाहर चली गईं—राधा को श्री कृष्ण के पास अकेली छोडकर। तब निठुर कृष्ण के मन मे, उस उपयुक्त अवसर को जानकर, उससे काम-विलास का पूरा लाभ उठाने के लिये, कामदेव जाग्रत हो गया और उन्होने साडी-चोली उठाने-खोलने का उपक्रम करना शुरू कर दिया। लज्जावश सुन्दरी राधा अपने साडी-कचुकी आदि वस्त्रो को सभालने का प्रयत्न करने लगी और इस कशमकश मे मानो उसके प्राण ही निकलने लगे। राधा कृष्ण से वैसी काम-दुष्टता करने के लिये 'नही नही' कर रही थी और भावोद्रेको के कारण उनकी आँखो से अश्रु ढलकने लगे थे। फिर भी श्री कृष्ण उन्हें इस

प्रकार निष्ठुरता से काम-मर्दित कर रहे थे, 'मसल एव झकझोर रहे थे जैसे अर्धविकसित कमल-कली को भौंरा झकझोर डालता है। सखियाँ कह रही है कि श्री कृष्ण के दुष्ट बाहुपाशो मे राधा का कोमल शरीर इस भाँति हिल-डुल रहा था जैसे कमलिनि पर आच्छादित तरल जल। आशय यह है कि राधा का सुकुमार शरीर श्री कृष्ण के गाढ बाहु-आलिंगन मे कम्पायमान हो रहा था किन्तु इतनी सुन्दरता के साथ जैसे कमल के पात पर तरल जल का कम्पन! कविवर विद्यापति कहते है कि हे वैद्यराज! सुनो—अरे, आग से जलने पर फिर आग का ही उपचार उचित होता है। आशय यह है कि भले ही राधा को कृष्ण के मिलन-समागम मे कुछ शारीरिक कष्ट का अनुभव हो रहा है किन्तु उसी मे वास्तविक काम-विलास का सुख अंतर्निहित है—ठीक उसी प्रकार जैसे कि यद्यपि आग का स्पर्श जलाता है किन्तु उस जलन को भी आग का सेक ही ठीक करता है, इसी प्रकार है काम की आग, वह भोग की आग से ही शात होती है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कलात्मक सूक्ष्म भावो की विराट् व्यजना का उत्कृष्ट बडा व्यापक बन पडा है। काम-विलास मे सर्वथा अनभिज्ञ बालिका का भय-रोमा यह जानकर कि उसका नाह या प्रियतम कितना कामातुर है, बडी स्वाभाविकता एव सहज भाव से व्यजित हुआ है—

"हम अति बालिक आकुल नाह।'

"अति बालिक" एव "आकुल नाह" इन दोनो विशेषणात्मक भाव-प्रकाशनो मे काव्य-सौष्ठव एव रस छलक-छलक उठा है। एक-एक कर चतुर सखियाँ शृगारिणी को प्रियतम के पास छोडकर चली जायँ एव उस बाला को अकेला पाकर 'आकुल नाह' झट से किवाड मूद ले तब उस बाला को वह काठ के किवाड नही वज्र के किवाड प्रतीत होगे—कोमल स्वाभाविनी बाला की मानसिक प्रतिक्रिया के लिये वज्र-किवाड की शब्द-पद योजना नितात उपयुक्त एव मनोवेगोत्पादक है। मानो "बजर किबाड" लिखकर विद्यापति ने तीव्र भावना के सत्य को स्वयमेव वाणी प्रदान कर दी है। इधर 'जागल" शब्द के माध्यम से ही कामदेव के जाग्रत होने की व्यजना करके विद्यापति ने रस रोमाच को साकार कर दिया है। बाला की 'नही-नही' फिर साथ ही नेत्रो से अश्रु की धार ढलना—इन दोनो स्थितियो की व्यजना मे सम्पूर्ण नारीयोचित काम-भावना की इतिश्री व्यजित है। रसिक प्रियतम का काम-पौरुष और व्यापार लालाओ को नही रास-विलासमय है, उसके लिए विद्यापति ने कितनी कलात्मकता एव श्रगार-श्रेष्ठता से कहा है—

"कांच कमल भमरा झिकझोर।"

कमल की अधखिली कली पर ही भौरा रस-मग्न होकर बैठता है और उसे झकझोर देता है। यहाँ 'झकझोर देने' का अर्थ यह नही कि उसे मिटियामेट कर देता है। नही, उसे विकसित कर देता है, रसलीन कर देता है। इतनी व्यापक अभिव्यजना

मे यह पक्ति काव्य-सौष्ठव समेटे हुए है—कम शब्दो मे बडी सुन्दर बात कह देने का नाम भी काव्य कला कहा जा सकता है जो विद्यापति के काव्य मे ऐसी पक्तियो को देखते हुए खूब है। सहमी, झिझकी और असमजस मे पडी अक्षत बाला को जब प्रथम अभिसार के लिए प्रियतम अक मे सटा लेता है तब वह सिहरती है, कम्पित होती है, काम-क्रीडा की यह स्वाभाविक मधुर क्रिया-प्रतिक्रिया कही जायगी पर उसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति विद्यापति ने यो की—

"जइसे डगमग नलिनि क नीर।
तइसे डगमग धनि क सरीर।"

यहाँ जल की नलिनी एव बाहुपाश की बाला की स्थिति एक जैसी है—डगमगातीहुई। मानो एक परिपूर्ण चित्र है जड और चेतन की सजीव अवस्था का। कल्पना की यह बारीकी, सूझ की यह यथार्थता एव कलम की यह कारीगरी विद्यापति के पदो की अपनी अन्यतम विशेषता है। सम्पूर्ण पद मे इस प्रकार सौन्दर्य के उपकरणो को जुटाकर शृगार-रस की पूर्णतः निष्पत्ति कर दिखाई गई है। सचमुच शृगारिक अभिव्यजना के अनूठेपन मे विद्यापति की वाणी और उससे सम्बन्धित उनके पद न केवल भारतीय साहित्य मे वरन् विश्व साहित्य मे बेजोड कहे जायँगे। भले ही उनमे लौकिक दृष्टि से अश्लीलता हो किन्तु काव्य के अनिन्दिय पक्ष की दृष्टि से उनमे विराट् रस-सुख भरा पडा है। हावो-भावो के चित्रण की दृष्टि से भी प्रस्तुत पद मे अत्यन्त निपुणता आ सकी है।

शब्दार्थ—अहे सखि = हे सखी। लए जनि जाह = मत ले जाओ। अति = बहुत, निपट। आकुल नाह = स्वामी कामातुर है। गोटगोट = एक-एक कर। गेलि बहराय = बाहर चली गई। बजर = वज्र, पत्थर के। बजर किबाड = पत्थर के किवाडो से आशय है कि राधा की भयातुर मन.स्थिति के कारण वह किवाड वज्र सदृश्य उसे प्रतीत होने लगे। पहु = स्वामी प्रियतम। देलन्हि लगाय = लगा दिये। जागल = जाग्रत, कामदेव जाग गया। कन्त = प्रियतम, कृष्ण। चीर = वस्त्र. साडी, कचुकी आदि। सँभारलि = सँभाले। जिउ = प्राण। अन्त = निकल जाना। नोर = आँसू। काँच कमल = कच्चा कमल, अधखिला कमल, कमल की अधखिली कली, राधा से तात्पर्य है। भमरा = भौरा। क = का। नीर = जल। धनि = बाला, अभिसारिका राधा। कबिराज = वैद्यराज। काज = उपचार से तात्पर्य है।

(७५)

कत अनुनय अनुगत अनुबोधि।
पति-गृह सखिन्हि सुताओलि बोधि।
बिमुखि सुतलि धनि समुखि न होए।
भागल दल बहुलाबए कोए।

बालमु बेसनि बिलासिनि छोटि।
मेल न मिलए देलहु हिम कोटि।
बसन झपाए बदन धर गोए।
बादर तर ससि बेकत न होए।
भुज-जुग चाँप जीब जौं साँच।
कुच कञ्चन कोरी फल काँच।
लग नहि सरए, करए कसि कोर।
करे कर बारि करहि कर जोर।
एत दिन सैसब लाग्रोल साठ।
अब भए मदन पढ़ाग्रोब पाठ।
गुरुजन परिजन दुअग्रो नेबार।
मोहर मुदल अछि मदन-भंडार।
भइन बिद्यापति इहो रस भान।
राए सिबसिंघ लखिमा बिरमान।

भावार्थ—पूर्व पद-प्रसगक्रमानुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

सुन्दरी राधा को कितना कह-सुनकर मान, सम्मान, प्रेम, प्रीति और विनय प्रशसापूर्वक सखियो ने समझाने-बुझाने के उपरान्त स्वामी श्री कृष्ण के शयन-कक्ष मे जाकर सुलाया किन्तु फिर भी वह सुन्दरी मुँह फेरकर ही पडी रही, श्री कृष्ण की ओर अभिसारार्थ उसने मुख न किया या वह काम-विलास के लिए रजामन्द ही नही होती थी। युद्ध से डरे-भागे हुए दल को भला कौन लौटा सकता है ? आशय यह है कि काम-क्रीडा रूपी युद्ध से जो रमणी कतराए उसे भला कौन मनाए, प्रेरित करे, और राधा भी कुछ इसी प्रकार की स्थिति मे प्रतीत हो रही थी। वालम अथवा प्रियतम श्री कृष्ण तो काम-कीडा के व्यसनी थे, पूर्णत कामातुर हो रहे थे—और वह विलासिनी राधा तो अभी लघु बाला ही थी, काम-क्रिया से सर्वथा अनजान—फिर मामला कैसे पटे ? ऐसी दशा मे, करोडो मन स्वर्ण देने पर भी मेल या समागम होना असम्भव था। आशय हे कोई भी बडा-से-बडा प्रलोभन देना व्यर्थ था। राधा जी कामातुर कृष्ण से काम-प्रेरित नही हो पा रही थी। एक विषम समस्या सामने अडी थी। अपने वस्त्र से ढाँपकर राधा अपने मुख को छिपाए ले रही थी—मुख को अचल से खूब ढँकने का प्रयत्न कर रही थी। यो बादलो से आच्छादित चन्द्रमा प्रकट नही हो पा रहा था। आशय यह है कि मानो अचल रूपी बादल से राधा का मुख रूपी चन्द्रमा दीख ही नही पड रहा था। सुन्दरी राधा अपनी दोनो भुजाओ को भीचकर अपने कच्चे फल जैसे स्वर्ण वर्ण उरोजो को इस भाँति छिपा रही थी जैसे प्राणो को छिपा रही हो। आशय यह है कि राधा के उरोज कच्चे फल जैसे छोटे-छोटे या

अपरिपक्व थे और उनका गोरा स्वर्णमय वर्ण था, जिन्हे वह मसले जाने के भय से हाथो से भरसक छिपाने का प्रयत्न कर रही थी। वह श्री कृष्ण के आलिगन पाश मे बँधने के लिए पास नही आती थी, अपने अक मे ही कुचो को भरकर कसमसाती थी। वह श्री कृष्ण के स्पर्श हेतु बढते हुए हाथो को अपने हाथो से हटाती थी और हाथ जोड-कर प्रार्थना करती थी कि वैसा न करे। वह सोचती थी कि इतने दिनो तक तो बचपन ने मेरा सग निभाया और अब कामदेव मुझे अपना पाठ पढाना चाहता है। आशय यह है कि राधा की मन स्थिति मद्य जनित काम-भाव की कल्पना से प्रताडित हो रही थी। वह सोचती थी कि गुरुजनो एव परिजनो द्वारा अब तक मेरी कामदेव के प्रहार से रक्षा होती रही अत मेरी जवानी अब तक मुहरबन्द (Sealed) रही। आशय यह है कि मै अभी तक अक्षत बाला ही बनी रह सकी हूँ, किसी ने मेरा कौमार्यत्व भग नही किया तो फिर अब उस पर काम का अप्रत्याशित एव अनाहूत प्रहार क्यो हो ? कविवर विद्यापति कहते है, यह काम-क्रीडा-सम्बन्धी रस-रहस्य राजा शिवसिंह एव उनकी प्रिय रानी लखिमादेवी को भली-भाँति ज्ञात है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे नव बाला की लज्जा एव आशकाजन्य काम-वासना की भावना का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढग पर किया गया है। प्रथम समागम के अवसर पर अक्षत बाला की मन स्थिति बडी डावाडोल होती है। निसर्गत उसकी चेष्टाओ एव हाव-भावो मे मधुर अस्वीकृति, मान, लज्जा एव छद्म उपेक्षा का आभास होता है जो कामातुर प्रियतम को और भी विह्वल, उद्दीप्त एव समुत्सुक बना देता है—आग मे घृत पड गया हो, यह दशा हो जाती है नायक की। इसीका एक भावनामय चित्र इन पक्तियो मे चित्रित है—

"बिमुखि सुतलि धनि समुखि न होए।
बसन झपाए बदन धर गोए।
बादर तर ससि बेकत न होए।
भुज-जुग चाँप जीब जौं साँच।
कुच कञ्चन कोरी फल काँच।"

उपरोक्त पक्तियो मे न केवल अक्षत बाला की आगिक रूप-शोभा का, लज्जा, आशका का सजीव चित्र चित्रित है वरन् प्रत्येक शब्द मे रसपूर्ण व्यापक अर्थ-व्यजना निहित है। उदाहरण के लिये "फल काँच" एव "जीव जौ साँच" शब्दो-पदो को लीजिए। "कच्चा फल" उरोजो की उस स्थिति का सश्लिष्ट भाव एव रूप-प्रकाशन करता है जब वे केवल अँबियो के समान गोल-कठोर पर साथ ही मन मे सहज ही गुद-गुदी एव आँखो मे प्रबल आकर्षण भरने वाले होते है। कला की इतनी व्यापक यथार्थ अर्थपूर्ण परिकल्पना सर्वत्र नही मिला करती किन्तु कविवर विद्यापति के पदो मे यह सुगम ही बनी रहती है। नव बाला की भावना मे उसके लघु कुच ही मानो उसका

वय-सचित समस्त गुप्त कोष होता है। वह हर दशा मे उसकी गुप्तता बनाए रखने मे सजग रहती है, जैसे प्राण हो। "जीब जौ साँच" उक्ति से यही अनूठी व्यजना हुई है। भला किस सहृदय को इसमे रस की पराकाष्ठा प्रतीत न होगी ? इस प्रकार नव-यौवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म मधुर भावना का चित्रात्मक वर्णन विद्यापति के पदो का विषय रहा है। विद्यापति के पदो मे भावावेश की ही प्रधानता है पर उनके प्रयुक्त अलकार भी बडी स्वाभाविकता के साथ अर्थ-चमत्कार के सहायक होकर आए है—अचल-पट मे छिपाए हुए बाला के उरोज दर्शित नही होते—कैसे क्यो ?—उत्तर है—

"बादर तर ससि बेकत न होए।"

यहाँ अचल बादल है और उरोज चन्द्रमा। यह रूपक, यह उपमा, यह उत्प्रेक्षा—क्या है, कौनसा अलकार नही है, कुछ कहा नही जा सकता बस यही कहा जायगा कि वह सब कुछ है यहाँ जो श्रेष्ठतम अलकार का नमूना कहा जा सकता है। पद मे भक्ति भावना का प्राधान्य नही, रति-श्रगार-भाव ही प्रधान है। राधा कृष्ण केवल नाम के पात्र है, वर्णन नायक-नायिका सम्मत ही समझना चाहिए। नर काव्य के लक्षण ही पद मे प्रधान है।

शब्दार्थ—कत=कितनी। अनुबोधि=समझा-बुझाकर। अनुनय=प्रार्थना। अनुगत=चापलूसी से। पति-गृह=स्वामी का घर, आशय है श्री कृष्ण के शयन-कक्ष से। सुताओलि=सुलाई। बिमुखि=मुँह मोडकर। सुतलि=सोई। धनि=सुन्दरी। धनि=बाला, सुदरी राधा। समुखि=सामने मुख किये हुए। न होए=नही होती। भागल दल=सेना भागती हुई। बहुलावए कोए=कौन बुलाए या लौटाए। बालमु=प्रियतम। बेसनि=व्यसनी, काम-विलास करने मे नित्य निपुण। बिलासिनी छोटि=रमणी राधा उम्र मे छोटी है। देलहु=दो। हिम कोटि=करोडो मन सोना। वसन=वस्त्र, अचल। झपाए=ढंकने से। बदन=मुख। धर गोए=छिपाने से। बादर तर=बादल के नीचे, अचल का उपमान है बादल। ससि=चन्द्र, मुख का उपमान है। बेकत=व्यक्त, प्रकट। जुग=दोनो। चॉप=दबाकर। जीब=प्राण। जौ=ज्यो। कोरी=अछूते। कॉच=कच्चा। लग नहि सरए=निकट नही आती। कोर=गोद या अक। करे कर बारि=हाथो से हाथ रोकना। कर जोर=हाथ जोडती है। एत दिन=इतने दिन। सैसब=बचपन। लाओल साठ=सग निभाया है। मदन=कामदेव। पाठ=सबक, काम-सम्बन्धी ज्ञान। नेबार=दूर रखना। मोहर मुदल=मुहरबन्द, अक्षत योनि (Sealed)। अछि=है। मदन भडार=जवानी का कोष। भनइ=कहते है। इहो=यह। राए=राजा।

(७६)

सखि परबोधि सयन-तल आनि।
पिय हिय हरषि धएल निज पानि।

छुबइत बालि मलिन भइ गेलि।
बिधु-कर मलि कमलनी भेलि।
नहि नहि कहइ नयन झर नोर।
सूति रहलि राहि सयनक ओर।
आलिगए नीबि-बँध बिनु-खोरि।
कर कुच परस सेह भेल थोरि।
आचर लेइ बदन पर झाँप।
थिर नहि होइअ थर थर काँप।
भनइ बिद्यापति धीरज सार।
दिन दिन मदन क होय अधिकार।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रमानुसार ही प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

राधा को सखियो ने श्री कृष्ण के मिलन समागम-हेतु प्रेरित-प्रोत्साहित किया। सखी ने राधा को आश्वासन दिया और श्री कृष्ण के शयन-कक्ष तक ले आई। प्रियतम श्री कृष्ण ने प्रसन्न होकर अपने हाथो से हृदय को थाम लिया। आशय यह है कि श्री कृष्ण ने अपने स्पन्दित हृदय से राधा को अपनी ओर खीचकर अपने भुज पाशों मे आबद्ध कर लिया। किंतु ऐसा करने से, श्री कृष्ण के स्पर्श होते ही वह सुन्दरी राधा इस प्रकार से मुर्झी-सी हो गई जैसे चन्द्र-किरणो से कमलिनी मलीन हो जाती है। राधा श्री कृष्ण से नही-नही करती है और उसकी आँखो से रोमाचित अश्रु झर रहे है। इसी विषम दशा मे राधा सेज की एक ओर सो रहती है। प्रियतम श्री कृष्ण बिना नीबी-बन्द खोले ही राधा से आलिगन-अभिसार करते है। श्री कृष्ण के हाथ राधा के उरोज—स्पर्श करने मे सफल हुए, बस यही थोडा समझिये। आशय यह है कि यही थोडा हुआ अथवा राधा के हित मे हुआ कि श्री कृष्ण एकतरफा ही सम्भोग-बद्ध न हुए, उन्होने अपना कुछ बल राधा के उरोज-मर्दन मे व्यय किया। इस प्रक्रिया मे राधा अपना आचल लेकर उससे अपने लाजयुक्त बदन अथवा मुख को ढाँपती है। वह स्थिर नही होती, रोमाच और भय से थर-थर काँप रही है। कविवर विद्यापति कहते है कि ऐसी दशा मे मात्र धैर्य ही सहायक-तत्त्व होता है—यो दिन-प्रतिदिन कामदेव का अधिकार होता ही जाता है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे नवोढा बाला की रति-मर्दित छिन्नावस्था का बडा मोहक चित्र चित्रित किया गया है। चन्द्रमा से विमर्दित कमलिनी-जैसी हो गई है राधा श्री कृष्ण के आलिगन मे—

"छुबइत बालि मलिन भइ गेलि।
बिधु-कर मलिन कमलनी भेलि॥"

नायिका के हावो-अनुभावो का आचार्यों ने अपने लक्षण ग्रथो मे व्यापक पक्ष उद्घाटित किया है और विद्यापति ने उस पक्ष को काव्यात्मक अभिव्यजना प्रदान की है। नवोढा बाला प्रथम रति मे प्रियतम के लालायित होने पर भी रजामन्द नही होती। उसकी 'ना ना' मे 'हाँ हाँ' वाली अभिव्यजना बडी सरस होती है। वह कभी रूठती है, कभी हँसती है, कभी सेज पर मुँह फेरकर लेट जाती है। बिहारी ने प्रस्तुत दोहे मे इन्ही हावो-अनुभावो की बडी सफल अभिव्यजना की है—

"कहत-नटत रीझत-खिझत, मिलत-खिलत लजियात।
भरे भौन मे करत है, नयनन ही सो बात॥"

और हमारे विद्यापति भी इसी प्रकार गेय तत्त्व की प्रधानता के साथ गा उठते है—

"नहि-नहि कहइ नयन झर नोर।
सूति रहलि राहि सयनक ओर॥"

"सेह भेल थोरि" उक्ति मे व्यापक अर्थ की इस प्रकार व्यजना की गई है, जैसे गागर मे सागर भर दिया गया हो। कृपया भावार्थ से इस कथन की पुष्टि करे। सम्पूर्ण पद मे सम्भोग-शृगार की अभिव्यजना प्रधान है और विभाव-अनुभाव सचारी भावो की सगति सफल है। रति-छिन्न राधा को चन्द्र-किरण विमर्दित कमलिनी की तुलना-उपमा मे बडी सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है।

शब्दार्थ—परबोधि=समझा-बुझाकर। सयन-तल=शयन-कक्ष मे, सेज तक। आनि=ले आई। हिय=हृदय। हरपि=हर्षित होकर। धएल निज पानि=अपने हाथो मे पकड लिया। छुवइत=छूते ही। बालि=सुन्दरी, राधा। मलिन=मुर्झा जाना। भइ गेलि=हो गई। बिधु-कर=चन्द्रमा की किरण। भेलि=हुई। नोर=नीर, आँसू। सूति रहलि=सो गई। राहि=राधा। सयनक ओर=शय्या की एक ओर। आलिगए=आलिगन करने लगा। नीबि-बँध=कँवचा, धोती और साडी की गाँठ अथवा नारे से भी तात्पर्य हो सकता है। बिनु खोरि=बिना खोले हुए। कर=हाथ। कुच=उरोज। परस=छूना। सेह=वही। भेल थोरि=थोडा हुआ। झाँप=ढकना। थिर=स्थिर। भनइ=कहते है। मदन क=कामदेव का।

(७७)

प्रथमहि गेलि धनि प्रीतम पास।
हृदय अधिक भेल लाज तरास॥
ठाढि भेलन्हि धनि अगो न डोले।
हेम-मूरति सयँ मुखहु न बोले॥
कर दुहु धए पहु पास बइसाए।
रसल छलि धनि बदन सुखाए॥

मुख हेरि ताकए भमर झाँपि लेल ।
अकिम भरि कें कमलमुखि लेल ।।
भनइ बिद्यापति दह इ सुमति मति ।
रस बूझ हिन्दूपति हिन्दूपति ।।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति नवेली राधा का श्री कृष्ण के साथ प्रथम मिलन-समागम व्यक्त करते हुए लिखते है—

आज पहली बार वह सुन्दरी प्रियतम श्री कृष्ण के पास गई है और इस कारण से उसके हृदय मे अत्यधिक लज्जा-जनित दुःख हुआ है। वह सुन्दरी श्री कृष्ण के पास जाकर खडी तो हो गई, पर उसका कोई अग हिल-डोल नही रहा था। स्वर्ण-मूर्ति की भाँति वह मुँह से कुछ बोल नही रही थी। आशय यह है कि वह स्वर्ण-मूर्ति की भाँति सुन्दर तो लग रही थी, पर लज्जावश वह मौन थी, जड थी। प्रेमी श्री कृष्ण ने उसके दोनो हाथ पकडकर अपने निकट बैठाया। पर वह सुन्दरी रूठी हुई थी और उसका मुख मलीन था। श्री कृष्ण रूपी भ्रमर उसका मुख क्रूरतापूर्वक ताक रहा है, यह समझकर राधा ने अपना मुख ढँक लिया। मुख ढँकते ही, प्रियतम श्री कृष्ण ने उचित अवसर जानकर उस कमल-मुखी को अक मे भर लिया। कविवर विद्यापति कहते है कि हे राधे ! इस अवसर को समझो और तदनानुकूल अपने प्रियतम को विलास की अनुमति दो। हिन्दुओ के प्रतापी राजा शिवसिंह इस शृगार-रस के रहस्य को खूब समझते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे नवोढा बाला की काम विषयक मनोवत्तियो का बडा सुन्दर प्रकाशन हुआ है। प्रथम समागम के अवसर पर भोलीभाली बाला का भय-त्रस-मजसमय चित्र कितना सुन्दर खीचा गया है—

"ठाढि भेलन्हि धनि अगो न डोले ।
हेम-मूरति सयँ मुखहु न बोले ।।"

"हेम-मूरति" कथन मे एक साथ ही नव-विवाहित हलदी-मडित बाला का सजीव चित्र अकित हो जाता है और फिर वह अगो को नही डोलाती, मुख से भी नही बोलती, रूठी हुई, मलीन मुख को प्रियतम की क्रूर-दृष्टि से बचाने के लिए ढक लेती है—इस व्यापार मे अनुभावो का मार्मिक पक्ष प्रतीत होता है। श्री कृष्ण को ताकते हुए भ्रमर के क्रूर विश्लेषण से सम्बोधित कर तत्पश्चात्—"अकम भरि कें कमलमुखि लेल।" पक्ति द्वारा एक सुन्दर पटाक्षेप दिखाया गया है कि भौरा कमलनी के ऊपर झुक गया और इधर श्री कृष्ण ने कमल रूपी राधा को अपने अक मे भर लिया। इस प्रकार शब्द-चित्र, भाव-चित्र और रस-चित्र चित्रित करने मे विद्यापति ने कमाल किया है।

शब्दार्थ—प्रथमहि=पहली बार ही। गेलि=गई। धनि=बाला, राधा। लाज तरास=लज्जा से दुखित। हेम=सोना। सय=सी, जैसी। दुहु=दोनो। धए=

थामकर। पहु=प्रियतम। बइसाए=बैठाया। रुसल छलि=रूठी हुई थी। बदन सुखाए=मुख मलीन था। ताकए=क्रूरतापूर्वक देखता था। भमर=भ्रमर, श्री कृष्ण का उपमान है। झाँपि लेल=ढँक लिया। अकम=गोद मे। दह=देह। इ=ये। सुमति=अनुमति।

(७८)

जतने आएलि धनि सयन क सीम।
पाँगुर लिखि खिति नत रहु गीम॥
सखि हे, पिया पास बैठिल राहि।
कुटिल भौंह करि हेरइछि काहि॥
नबि बर नारि पहिल पिया मेलि।
अनुनय करइत रात आध गेलि॥
कर धरि बालमु बइसाओल कोर।
एक पए कह धनि नहि नहि बोल॥
कोर करइत मोडइ सब अग।
प्रबोध न मानु, जनि बाल भुजग॥
भनइ बिद्यापति नागरि रामा।
अन्तर दाहिन बाहर बामा॥

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति नबेली राधा की तन-मन-स्थिति को उस दशा मे व्यक्त करते है जबकि वह श्री कृष्ण के मिलन-कक्ष मे प्रथम बार लेजाकर खडी की गई—वह सुन्दरी राधा श्री कृष्ण रूपी प्रियतम की शय्या के निकट बडे प्रयत्नो से आई। वह ग्रीवा झुकाये हुए पदागुलि से पृथ्वी पर रेखाएँ खीचती रही। आशय यह है कि वह लज्जा के कारण पृथ्वी मे गडी जा रही थी। हे सखि, जब राधा प्रियतम के पास बैठी तो अपनी बकिम भौहो से किसको देखती रही। आशय यह है कि वह अपनी शून्य दृष्टि किये थी। वह सुन्दर नबेली है और प्रियतम से प्रथम बार मिलन हुआ है। इस कारण मनौती करते-करते ही आधी रात व्यतीत हो गई। जब श्री कृष्ण ने उसका हाथ पकडकर उसे अपने अक मे बैठा लिया तो वह सुन्दरी केवल 'नही-नही' का वचन ही कहती जाती थी। अक मे समेटते ही वह अपने अगो को मच-मचाने लगी, तोडने-मरोडने लगी। वह प्रियतम की कोई बात नही मान रही और इस प्रकार से हठ ठान रही है, जैसे बच्चा साँप लेने के लिये हठ ठानता है। कविवर विद्यापति कहते है कि वह रमणी राधा बडी सुचतुरा है, वह ऊपर से विमुख दीखती है, पर भीतर रज़ामन्द है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे नबेली सुन्दरी की स्वाभाविक रति-चेष्टाओ का प्रकाशन किया गया है। एक शब्द-चित्र इस पक्ति मे सजीव है—

'पागुर लिखि खिति नत रहु गीम।"

रति-क्रीडा मे नायक का लालायित होना और नायिका का "नही-नही" करना एक विशेष कौतूहल की सृष्टि करता है, जिससे रसोद्रेक मे सफलता मिलती है। इसी प्रक्रिया को इन दो पक्तियो मे विद्यापति ने प्रगट किया है—

"कर धरि बालमु अइसाओल कोर।
एक पए कह धनि नहि नहि बोल॥"

प्रथम मिलन की रात कितनी मधुर, कितनी औत्सुक्यमय और कितनी अनुहार-मनुहारमय होती है। विद्यापति ने इस रात के वातावरण की मधुर व्यजना इन पक्तियो मे की है—

"नबि बर नारि पहिल पिया मेलि।
अनुनय करइत रात आध गेलि॥"

नबेली बाला प्रियतम से प्रारम्भिक मिलन पर बडी हठ दिखाती हैं, जिसमे सरलता, स्वाभाविकता और सरसता का भावाकषरण निहित रहता है, इसी तथ्य को इस पक्ति मे उत्प्रेक्षा के माध्यम से प्रगट किया गया है—

"प्रबोध न मानु, जनि बाल भुजग।"

यहाँ बाल भुजग कथन मे नवोढा सुन्दरी की प्रेम-हठ-भावना का बडा सफल प्रकाशन हुआ है। अन्त की दो पक्तियो मे उक्ति-चमत्कार द्वारा रमणी के सम्भोग- भाव का समर्थन बडी सफाई से किया गया है। यहाँ मनोवैज्ञानिक सत्य यह है कि प्रथम मिलन के अवसर पर बाला मुख से इनकार करती है, मन से इकरार करती है—

"अन्तर दाहिन बाहर बामा।"

इस पक्ति मे विद्यापति ने कला की बडी सफल अभिव्यजना की है क्योकि कला का महत्त्व नग्नता मे नही नग्नता के आवरण मे है और यही झीना आवरण—विद्यापति के इस पद मे आभासित होता है।

शब्दार्थ—जतने=प्रयत्नपूर्वक। आएलि=आई। सयनक सीम=पति की सेज के निकट। पाँगुर=पदागुलि। खिति=पृथ्वी। नत=झुकी हुई। गीम=ग्रीवा। राहि=राधा। हेरइछि=देखती है। काहि=किसे, यह शब्द राधा की दृष्टि की शून्यता का बोधक है, क्योकि वह श्री कृष्ण को उस दशा मे बैठी देखने-न-देखने के असमजस मे है, अत दृष्टि की शून्यता सापेक्ष है। नबि=नबोढा। बर=श्रेष्ठ। अनुनय=आग्रह। गेलि=गई। कर धरि=हाथ पकडकर। बइसाओल=बैठाया। कोर=अक। एक पए=बस एक। कोर करइत=गोद मे लेते ही। प्रबोध न मानु=कहा नही मानती, हठ करती है। जनि=मानो, उत्प्रेक्षा है। भुजग=सर्प। नागरि=सुचतुरा। रामा=रमणी। अन्तर=हृदय से। दाहिन=रजामन्द, अनुकूल। बामा=विमुख, रुष्ट, प्रतिकूल।

(७६)

अधर मँगइते अओध कर माथ।
सहए न पीर पयोधर हाथ।
विघटल नीबी कर धर जाँति।
अँकुरल मदन, धरए कत भाँति।
कोमल कामिनि नागर नाह।
कओन परि होइत केलि निरबाह।
कुच-कोरक तब कर गहि लेल।
काँच बदरि अरुनिम रुचि भेल।
लाबए चाहिअ नखर बिसेख।
भौंहनि आएब चाँद क रेख।
तसु मुख सौं लोभे रहु हेरि।
चाँद झपाब बसन कत बेरि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधिका की रति-क्रीडा-सम्बन्धी दशा का रोमाचकारी भाव प्रकाशित करते हुए लिखते है—

जब प्रियतम श्री कृष्ण अधरो का चुम्बन माँगते है, तो सुन्दरी राधा लज्जावश सिर झुका लेती है। कुचो पर रक्खे श्री कृष्ण के हाथो की मर्दन-जनित पीडा को भी वह सहन करने मे असमर्थ है। उसकी नीबी (या कोचा) खुलती जा रही है और वह उसको हाथ से सुरक्षा मे दबाकर रखती जाती है। पर वह अपने उगे-उभडे हुए कुचो को किस भाँति दबाकर रक्खे, क्योकि उनमे तो कामदेव का उन्मेष उमड रहा है। आशय यह है कि सुन्दरी राधा इस रति-क्रिया से बडी परेशान है, कभी कृष्ण उसकी नीबी खोलते है और कभी चतुराई से उरोज मसल देते है। एक की सुरक्षा दूसरे के लिये घातक हो जाती है। बेचारी राधा उरोज बचाये अथवा नीबी और फिर मदन भी तो जोर पर है। वह कामिनी राधा अत्यत कोमलागी है और उसके प्रियतम श्री कृष्ण रति-नागर है, चतुर है। अत किस प्रकार उन दोनो की काम-क्रीडा का निर्वाह हो। अन्तत राधा की कुच-कली को कृष्ण ने हाथो मे ले लिया। उनको मसला, तो कच्चे बेर की भाँति वे छोटे-छोटे कुच लाल पड गये। प्रियतम श्री कृष्ण की इच्छा है कि उन अपरिपक्व कुचो पर नख-चिह्न लग जाये। किंतु राधा वैसा करने से बरजती है। जिसके फलस्वरूप उसके चन्द्र-भाल पर तिरछी भौहे इस प्रकार से आभासित होती है जैसे भौह के ऊपर चन्द्र-रेख झलक गई हो। आशय यह है कि कामिनी के चन्द्र-भाल पर एक विशेष भाव से पूर्ण उसकी तिरछी भौह बहुत आकर्षणीय बन जाती है। राधा भी इसी आकर्षण से युक्त दीख रही है। प्रियतम श्री कृष्ण उसके उस सुन्दर मुख से परिलुब्ध होकर उसे निहारते रह जाते हैं। ऐसी स्थिति मे

भला वह सुन्दरी राधा कितनी बार वस्त्र से अपने चन्द्र मुख को ढँकती ? आशय य है कि भला चन्द्रमा को वस्त्र मे छिपाकर कैसे रक्खा जाये और राधा का मुख भ तो चन्द्रमा ही था ?

विशेष—कलात्मक दृष्टि से प्रस्तुत पद का कला-पक्ष बडा उत्कृष्ट बन पड है। शृगार की सरस स्वाभाविक अभिव्यजना पक्ति-पक्ति मे अवतरित हुई है, यथा—

"अधर मँगइते अओध कर माथ।"

अथवा—

"बिघटल नीबी कर धर जाँति।
अँकुरल मदन, धरए कत भाँति।"

"अँकुरल मदन," कथन मे कामदेव का अँकुरन एव उरोजो का अँकुरन सम- कक्ष भाव की प्रतिष्ठा करते है, इस प्रकार से कम शब्दो मे पद-सौष्ठव अनूठा बन पड है। लघु-कुचो के मर्दन से कितना मधुर भाव-प्रभाव-दृश्य प्रस्तुत हुआ है, उसक रसमय व्यजना—"काँच बदरि अरुनिम रुचि भेल।' पक्ति मे दर्शनीय है। काम विलास का जोर भी क्या बरसाती नाले से कम होता है—

"लाबए चाहिअ नखर बिसेख।'

उक्ति से यह साफ प्रकट होता है। कच्चे बेर मे अपिरिपक्व कुचो की एव सुन्दर मुख चन्द्रमा की तुलना-उपमा बडी सार्थक बन पडी। सम्पूर्ण पद मे शृगार सम्बन्ध उपकरणो की सृष्टि रसोद्रेक मे पूर्णत सहायक बन पडी है। **चुम्बन,** नखच्छे आदि का वर्णन सस्कृत काव्य की भाँति किया गया है। प्रस्तुत सस्कृत का उदाहरण पठनीय है—

"मौलो कुन्तलकर्षण नयनयोश चुम्बन गण्डयो—
देन्तेनाधरपीडन हृदि हतिर्मुष्टया च नाभौ शनै.।
कक्षा-कठ-कपोल-मण्डल-कुच-श्रोणीषु देया नखा।
सीमन्ने लिखन नखैरु रसिजौ गृहणीत गाढतत।"

शब्दार्थ—अओध= झुका लेना। सहए न= सहन नही कर पाती। पयोधर= कुच। बिघटल=खुलना। कर=हाथ। नीबी=कोचा। अकुरल मदन=कामदे का अकुरन अथवा उरोजो का अकुरन। नागर नाह=चतुर प्रियतम। कओन=कि प्रकार। केलि निरबाह=काम-क्रीडा का साफल्य। कुच-कोरक=बदली-से कोम कुच। काँच बदरि=कच्चा बेर, अपरिपक्व उरोजो का उपमान है। अरुनिम=लाल लाबए=लगाना चाहता है। नखर बिसेख=सुन्दर नखचिह्न। क=की। तसु= उसका, राधा का। लोभे=परिलब्ध होकर। हेरि=ताकना। चाँद=सुन्दरी के मु का उपमान है। झपाब=ढँकना। बसन=वस्त्र। कत बेरि=कितनी बार।

(८०)

जखन लेल हरि कँचुअ अछोडि ।
कत परजुगति कएल अँग मोडि ।
तखनुक कहिनी कहल न जाय ।
लाजे सुमुखि धनि रहलि लजाय ।
कर न मिझाए दूर जर दीप ।
लाजे न मरए नारि कठजीब ।
अकम कठिन सहए के पार ।
कोमल हृदय उखडि गेल हार ।
भनइ बिद्यापति तखनुक भान ।
कओन कहल सखि होएत बिहान ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कवि विद्यापति राधा सम्बन्धित मिलन-शृगार का वर्णन करते हुए लिखते है कि श्री कृष्ण ने जिस समय राधा की चोली को उतार डाला तो उस समय राधा ने कितनी ही युक्तियाँ की और अग ऐंठे कि कृष्ण चोली न उतार सके, परन्तु सब किया-धरा व्यर्थ गया, परन्तु कृष्ण ने चोली उतार ही ली। उस समय की बात तो कहने से भी नही कही जाती। लाजमयी सुन्दरी राधा उस समय लजाकर रह गई। सेज से दूर दीपक जल रहा था। रति-क्रिया से लजाकर नारियोचित स्वभावानुकूल राधा उसे बुझा देना चाहती थी ताकि उसे कोई उस अवस्था मे देख न ले, पर बुझा न पाती थी क्योकि वह दूर जो थी, उठकर कैसे जाये, प्रियतम जो बाँधे है? कविवर विद्यापति कहते है कि रति-विलास की उस दशा मे और उस समय नारी कितनी ही लाजमयी हो परन्तु लज्जा से मर नही पाती, उसके प्राण अपार सुख मे जडवत् किवा काष्टवत् हो जाते है। वह प्रियतम के अकालिंगन के दबाव को किस भाँति सह पाती है, आश्चर्य है! राधा के कोमल हृदय पर श्री कृष्ण के आलिंगन के दबाब के कारण हार का चिह्न झलक आया। कविवर विद्यापति तब की स्थिति को समझकर कहते है कि राधा विचार रही है—कौन कहे कि सबेरा होता आ रहा है? आशय यह है कि उस अपार विलास के वातावरण मे कौन कहेगा कि प्रात निकट है—वह तो रात ही कुछ ऐसी मधुर होती है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सम्भोग-शृगार का व्यापक भाव व्यजित हुआ है। प्रथम समागम के अवसर पर रमणी की स्वाभाविक लज्जा किस रूप मे प्रस्तुत होती है और उसी मे, मनोवैज्ञानिक रूप मे कितना अपरिसीम उन्माद, उल्लास छाया रहता है कि लज्जा से मरकर भी न मरे, दीपक के प्रकाश मे निरावरण न रहने के प्रयत्न मे भी निरावरण रहे और दूर दीपक का प्रकाश मुस्कराये, अरमानो के विलास-प्रकोष्ठ मे यह सब कुछ घटे; कल्पना कीजिये कि इस सारे वातावरण की भावनामय सृष्टि

विद्यापति ने इन पक्तियो मे कर दी है—

"लाजे सुमुखि धनि रहलि लजाय।
कर न मिझाये दूर जर दीप।
लाजे न मरए नारि कठ-जीव।"

पुरुष की उन्मादावस्था की इस पक्ति मे बडी प्रभावपूर्ण व्यजना है—"अकम कठिन सहए के पार।" रमणी की हृदय-कोमलता का प्रस्तुत पक्ति मे अतिशयोक्ति पूर्ण नही, स्वाभाविक वर्णन है—"कोमल हृदय उखडि गेल हार।" विद्यापति ने रीति-कालीन कवियो की भाँति ऊहा और अतिशयोक्ति को जहाँ अपनाया भी है वही उसकी पृष्ठ-भूमि मे कोई स्वाभाविक अथवा मनोवैज्ञानिक कार्य-कारण प्रस्तुत किया है। "कोमल हृदय" पक्ति मे जहाँ इस बात की अतिशयोक्तिपूर्ण व्यजना है कि रमणी के हृदय पर हार का चिह्न झलक आया वहाँ उससे पूर्व वाली—"अकम कठिन—" पक्ति मे यह व्यजना सकारण है कि प्रियतम ने उसे कठोरता से अपने अक लगाया है, दबाया है। अत हार का चिह्न झलक आना स्वाभाविक है। काम-विलास की चेष्टाओ का सम्पूर्ण पद मे रसात्मक चित्रण है।

शब्दार्थ—जखन=जिस समय। लेल=लिया। अछोडि=उतारा। कँचुअ=चोली। कत=कितना। परजुगति=युक्ति, प्रमाण। कएल=किए। अँग मोडि=अग को ऐंठ कर। तखनुक=उस समय का। कहिनी=बात, हाल। लाजे=लज्जामयी। मिझाए=बुझाया। जर=जलता है। कठजीब=काष्ठवत् प्राण। अकम=गोद। सहए के पार=किस प्रकार सहन करे। उखडि गेल=निशान पड गया। भनइ=कहते हैं। बिहान=प्रात काल।

(८१)

ए हरि बले जदि परसबि मोय।
तिरि-बध-पातक लागत तोय।
तुहु रस आगर नागर ढीठ।
हम न बुझिए रस तीत कि मीठ।
रस परसग उठओ मझु कांप।
बान हरिनि जनि कएलन्हि झांप।
असमय आस न पुरए काम।
भल जन न कर बिरस परिनाम।
बिद्यापति कर बुझलहुं सांच।
फलहु न मीठ होअए कांच।

प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति गाढ-सम्भोग का चित्रण परस्तुत करते हुए

लिखते है कि राधा श्री कृष्ण से अति दयनीय होकर विनय करती है—हे कृष्ण ! तुम यदि हठात् मेरा स्पर्श करोगे अथवा मुझसे सम्भोग-स्पर्श करोगे तो निश्चय ही तुम्हे एक अबला स्त्री की हत्या कर देने का पाप लगेगा। आशय यह है कि यदि राधा से बलपूर्वक कृष्ण ने सम्भोग किया तो वह कोमलागी उसके कष्ट को सहन न कर पायेगी, उसका प्राणान्त हो जायेगा, जिसका पाप कृष्ण के सिर मढेगा। राधा कहती है कि हे कृष्ण ! तुम रसिको के नायक हो, उद्दण्ड और चतुर हो, किन्तु मैं अति भोली हूँ, नही जानती कि तुम्हारा यह रस मीठा होता है या तीता (तीखा)। इस रस की चर्चा मात्र को सुनकर ही मै भयकम्पित हो जाती हूँ, ठीक उसी प्रकार जैसे हरिणी बाण से बिद्धा होकर उछल-उछल उठती है, विकल हो उठती है। हे कृष्ण ! असमय किसी काम के करने से कोई वाञ्छा पूर्ण नही होती। अथवा वह आशा जो समयानुकूल न हो, यदि की जायगी तो उसके निमित्त किया गया कार्य सफल न होगा अत आशा निराशा मे ही परिणत हो जायगी। समझदार और सज्जन पुरुष कभी कोई असमय मे ऐसा काम नही करते जिसका परिणाम निरस हो। आशय यह है कि राधा अभी सम्भोगावस्था मे प्रवेश नही कर सकी है और कृष्ण हठपूर्वक उससे सम्भोग करना चाहते है, जिसे वह अनुचित समझती है। कविवर विद्यापति कहते है कि मैंने सत्यत. यह समझ लिया कि फल भी अपरिपक्वावस्था मे मीठा नही होता, अत राधा ठीक ही कहती है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे भोली नवेली बाला की काम-विषयक मनोभावना, तद्जनित दयनीयता का अत्यन्त मार्मिक प्रकाशन किया गया है। इसके लिए राधा का यह कथन कितना सत्य और कितना रसमय है—

"ए हरि बले जदि परसबि मोय।
तिरि-बध-पातक लागत तोय।"

नवेली रमणी की उत्सुकता, उदासीनता और खीझ की भोली अभिव्यक्ति इस पक्ति मे कितनी सजग हुई है—

"तुहु रस आगर नागर ढीठ।
हम न बुझिए रस तीत की मीठ।"

"तीत की मीठ" उक्ति मे काम-उत्सुकता की ग्रन्थि बडी कोमलता से बँधी है और यह भी कि जिसका खोल देना ही पुरुषत्व है, रस है। कला की सूक्ष्मता यहाँ उत्कृष्ट है। रस प्रसग से व्यग्र हुई कपित राधा की अवस्था—'बान हरिनि—" उक्ति मे बडी मार्मिकता से प्रकट हुई है जिसमे उपमा-उत्प्रेक्षा का चमत्कार अनूठा बन पडा है।

"भल जन न कर बिरस परिनाम।" पक्ति मे लोक-सीख भी प्रकट है, जिसे मुहावरे के रूप मे भी ग्रहण किया जा सकता है।

शब्दार्थ—बले=बलपूर्वक । जदि=यदि । परसबि मोय=मुझे छूओगे । तिरि-बध-पातक=स्त्री हत्या का पाप । तोय=तुम्हे । रस आगर=रस नायक । नागर ढीठ=चतुर, उद्दण्ड । न बुझिए=नही जानती । तीत=तीखा । मीठ=मीठा । परसग=चर्चा, प्रसग । मझु=मै । कएलन्हि झाँप=उछलना-कूदना, यहाँ विकल हो जाने से आशय है । न पूरए काम=काम पूरा नही हो सकता । भल जन=सज्जन या समझदार लोग । बिरस=निरस । परिनाम=परिणाम । बुझलहुँ=समझ गया हूँ । काँच=कच्चा ।

(८२)

रति-सुबिसारद तुहु राख मान ।
बाढ़िले जौबन तोहे देब दान ।
आबे से अलप रस न पूरब आस ।
थोर सलिल तुअ न जाब पियास ।
अलप अलप रति यहि चाहि नीति ।
प्रतिपद चाँद-कला सम रीति ।
थोरि पयोधर न पूरब पानि ।
न दिह नख-रेख हरि रस जानि ।
भनइ बिद्यापति कइसन रीति ।
काँच दाडिम प्रति ऐसन प्रीति ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति ने पूर्व प्रसगानुकूल राधा के मुख से श्री कृष्ण को कहलवाया है कि वे काम-क्रीडा मे इतने अधिक उद्दड न हो । राधा कहती है कि हे कृष्ण ! तुम रति-क्रीडा मे पारगत हो तो जरा मान-मर्यादा को भी रक्खो, इतने उद्दड न बनो । यौवन के विकसित हो जाने पर उसे मै तुम्ही को दान कर दूँगी, पर अभी तो वह बढ ही रहा है । अत अभी मुझमे यौवन का बहुत थोडा रस-सचार हुआ है । उससे तुम्हारी अभिलाषा तृप्ति न होगी । जल थोडा है तुम बहुत प्यासे हो, अत तुम्हारी पिपासा दूर न होगी । नीति के अनुसार भी थोडी-थोडी रति ही अपेक्षित है । रति-रीति इसी प्रकार बढती है जैसे प्रतिपदा अथवा दूज से चन्द्र-कला बढती है । देखो, अभी तो मेरे उरोज छोटे-छोटे है उनसे तुम्हारे हाथ भी न भरेंगे । हे कृष्ण ! उन्हे नख-क्षत न करो, तुम तो स्वय रस-सुजान हो । विद्यापति कहते है कि यह प्रणय-सम्भोग की कैसी विचित्र रीति है ? भला कही कच्चे अनार से ऐसी असगत प्रीति-रीति उचित है ? आशय यह है कि राधा के कुच अभी अपरिपक्व अनार जैसे है और श्री कृष्ण अभी मचलना चाहते है, परन्तु इस क्रिया से उन्हे रस न मिलेगा । अत उचित यही है कि उन कुचो को विकसित होने दिया जाये , राधा रति-क्रीडा के योग्य हो जाये ।

विशेष—परस्तुत पद मे काम-शास्त्र के अनुकूल रमणी के साथ रति-क्रिया का विधान व्यजित है। उल्लेख है कि रजस्वला होने के पन्द्रह दिन तक रमणी के साथ सम्भोग-व्यापार सुखदायी और उचित होता है। प्रतिपदा अथवा दूज से जिस प्रकार चन्द्रकला की परिवृद्धि होती है उसी प्रकार रमणी मे भी रति-क्रीडा की परिवृद्धि होती है—"प्रतिपद चाँद-कला सम रीति।" पक्ति मे यही व्यापार व्यजित है, किन्तु विशेषता यह है कि विद्यापति ने अपनी प्रतिभा से उसे निरस-शास्त्रमय न रखकर सरस काव्यमय कर दिया है। नारी के समर्पण की मधुर व्यजना—"बाढिले जोबन तोहे देब दान।" पक्ति मे मुखरित हुई है। कामायनी मे प्रसाद की श्रद्धा भी मनु से कुछ ऐसा ही कहती है—

"... . ..
इतना ही सरल झलकता है।"

"थोरि पयोधर न पूरब पानि।" पक्ति मे शृगार-रस की निश्छल आत्माभिव्यजना प्रकट है, ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे हाथ ही रस-कलश जैसे कुचो को स्पर्श करने मे असफल हो रहे हो। भावना का यह उद्वेग अपने मे अपार शौष्ठव लिये है। राजा जयसिंह को बिहारी ने यह दोहा पढकर वासना मुक्त किया था—

"नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकासु यही काल।
अलि कलि ही सो बँध्यो, आगे कौन हवाल।"

और लगता है, विद्यापति इसी प्रकार की भाव-व्यजना से हमे प्रणय-पाश मे आबद्ध करते है—

"काँच दाडिम प्रति ऐसन प्रीति।"

वास्तव मे बात ऐसी है कि वय-सधि का सम्भोग-सुख ही अधिक आकर्षणीय प्रतीत होता है, इस रहस्य की रसमय व्यजना करना कविवर विद्यापति का लक्ष्य है।

शब्दार्थ—रति-सुबिसारद=काम-क्रीडा मे भली-भाँति निपुण। तुहु=तुम, कृष्ण के लिये। राखमान=मान-मर्यादा रक्खो। बाढिले=विकसित हुए। देब=दूँगी। आबे से=अभी से वह। अलप=छोटा, लघु। न पूरब आस=आशा पूर्ण न होगी। थोर=थोडा। न जाब पियास=प्यास नही जायगी। प्रतिपद=प्रतिपदा, दूज। चाँद-कला=यह शब्द काम-शास्त्र के विधान मे है, इससे आशय है रमणी के रजस्वला होने के पन्द्रह दिवस तक विविध रति-क्रिया का योग बाँधना क्योकि इस बीच रमणी के अग मे काम-वृद्धि का चाचला होता है ऐसे जैसे चन्द्रकला नित्य बढती है। सम=समान। पयोधर=उरोज। न दिह=मत दो। नख-रेख=नख-रेखाएँ। काँच दाडिम=कच्चा अनार, यह उरोजो का उपमान है। ऐसन=ऐसी।

(८३)

निबि-बधन हरि किए कर दूर।
एहो पए तोहर मनोरथ पूर।
हेरने कम्रोन सुख न बुझ बिचारि।
बड तुहु ढीठ बुझल बनमारि।
हमर सपथ जों हेरह मुरारि।
लहु लहु तब हम पारब गारि।
बिहर से रहसि हेरने कौन काम।
से नहि सहबहि हमर परान।
कहाँ नहि सुनिए एहन परकार।
करए बिलास दीप लए जार।
परिजन सुनि सुनि तेजब निसास।
लहु लहु रमह सखीजन पास।
भनइ बिद्यापति एहो रस जान।
नृप सिबसिंघ लखिमाबिरमान।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति शृगार का पूर्णत नग्न चित्रण प्रस्तुत करते हुए राधा के मुख से ही कृष्ण को उसका प्रकाशन करवाते हे। राधा कह रही है—हे कृष्ण ! तुम मेरे नीबी के बधन को क्यो खोल रहे थे ? ऐसा करके भी तुम्हारी कामाभिलाषा यदि पूर्ण हो जाये फिर भी मैं यह नही समझ पाती कि मुझे सर्वथा नग्न देख लेने पर तुम्हे क्या सुख मिलेगा ? आशय यह है कि श्री कृष्ण राधा की साडी भी खोलने को उद्यत है। व्यजना से, राधा उनकी इस बात का विरोध प्रदर्शित नही करती फिर भी उसे यह समझने और जानने मे आपत्ति है कि श्री कृष्ण उसके गुप्त अग को क्यो देखना चाहते है। यह काम-मनोविज्ञान का एक रहस्य पक्ष है कि नारी को नग्न निहारने से वासना का उद्वेग क्षीण पड जाता है, जुगुप्सा एव विरक्ति का भाव पैदा हो जाता है। राधा कहती है—हे बनवारी ! मै भली-भाँति समझ गई कि तुम बडे उद्दड हो तुम्हे मेरी सौगन्ध है जो मुझे इस प्रकार से देखो, नग्न देखो ! यदि तुम ऐसा करोगे ही तो देखो, मै मन-ही-मन, धीरे-धीरे तुम्हे कोसूँगी। तुम केवल मुझसे सम्भोग-विलास करो, मुझे नग्न देखने से क्या लाभ ? तुम्हारी इस दुष्ट-कृति को मेरे प्राण नही सह सकेगे। मैंने कही भी इस प्रकार की रति-रीति नही सुनी कि विहार भी किया जाये और दीपक भी जला रहे। आशय यह है कि राधा अन्धकार मे समागम करने का श्री कृष्ण से आग्रह करती है। हे कृष्ण ! इस प्रकार से उद्दड विलास करना उचित नही, क्योकि पडोसी उसके कारण जगी हमारी तीव्र साँसो को न सुन ले और हमारी निन्दा करे। फिर सखियाँ भी पास ही हैं, कही वह भी हमारे

इस व्यवहार से अवगत न हो जाये और हमारे इस कार्य की निंदा करने लगे इसलिये धीरे-धीरे रमण करो। कविवर विद्यापति कहते हैं कि लखिमादेवी के पति राजा शिवसिंह इस रति-रस-रहस्य को भली-भाँति जानते हैं। आशय है कि विद्यापति उन्ही को सन्तुष्ट करने के लिये ये पद लिख रहा है।

विशेष—शृगारिक भावना के अतिशय उद्वेग मे कविवर विद्यापति यहाँ सलिलता-असलिलता को भूल गये है। काम की मुग्धावस्था का महा-सुख व्यक्त करना ही उनका लक्ष्य रहा है। राधा को नवोढा मुग्धा की स्थिति मे रखकर उसकी काम-भावना का प्रकाशन बडी स्वाभाविकता से कराया गया है। नवोढा मुग्धा मे अतिशय लज्जा होती है, अत वासना का पूर्णत प्रस्फुटन नही हो पाता। मधुर लज्जा ही उसका सर्वस्व है। इन पक्तियो मे यही अभिव्यजना है—

"कहाँ नहि सुनिए एहन परकार।
करए विलास दीप लए जार।"

साथ ही यह भी काम-मनोविज्ञान-सम्बन्धी तथ्य प्रकट है कि रति-रस के लिए रमणी को निरावरण देखना ठीक नही। केवल उसके साथ विहार ही उचित है। इन पक्तियो मे यही व्यजना है—

"हेरने कओन सुख न बुझ बिचारि।"
× × ×
"बिहर से रहसि हेरने कौन काम।"

सम्पूर्ण पद मे मुग्धा की स्वाभाविक लज्जा एव सम्भोग की अखण्ड उत्कण्ठा बडी सरसता से व्यक्त हुई है। कलात्मक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पद-सौष्ठव सराहनीय है, किन्तु सामाजिक दृष्टि से उपेक्षणीय भी—।

शब्दार्थ—निबि=कोचे का बन्धन, नारा, इज़ारबन्द। एहो पए=इससे भी। हेरने=देखने। कओन=कौन। बुझ न बिचारि=नही जानती। बड=बहुत। तुहु=तुम। ढीठ=उद्दण्ड। बनमारि=श्री कृष्ण। हमर=मेरी। लहु लहु=धीरे-धीरे। पारब गारि=गाली दूँगी, कोसूँगी। बिहर से रहसि=केवल विलास से रहस्य। सहबहि=सहेगे। से नहि=वह नही, आशय है नग्न देखने का दुष्ट व्यवहार। हमर=मेरा। परान=प्राण। एहन परकार=रमण करने की ऐसी रीति। लए जार=जला लिया जाए। परिजन=पडोसी। तेजब निसास=सम्भोग के समय तीव्र चलती हुई साँसे, आशय है कि पडोसी और सखियाँ सभी लोग इस प्रकार की उदण्ड सम्भोग-क्रिया को जानकर निन्दा करेगे। रमह=रमण करो। भनइ=कहते है। एहो रस जान=इस काम-रस-रहस्य को समझते हैं। नृप सिबसिंघ=राजा शिवसिंह जिनके यहाँ कविवर विद्यापति राजाश्रित थे।

(८४)

सुनु सनु नागर निबि-बध छोर।
गाँठिते नाहि सुरत-धन भोर।
सुरत क नाम सुनल हम आज।
न जानिअ सुरत करए कौन काज।
सुरत क खोज करब जहाँ पाब।
घर कि अछए नाहि सखिरे सुधाब।
बेरि एक माधब सुन मझु बानि।
सखि सयँ खोजि माँगि देब आनि।
बिनति करए धनि माँगे परिहार।
नागरि-चातुरि भन कबि कठहार।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति काम-शास्त्रीय विधान के अनुकूल मैथुन-व्यापार का वर्णन करते हुए लिखते है कि राधा भोलेपन की सीमा पर खडी होकर कहती है—हे कृष्ण ! रस मुजान, तुम जो काम-क्रीडा का आग्रह कर रहे हो किन्तु मेरी भी कुछ सुनो और मेरा नीबी बन्धन छोड दो। मेरी साडी की गाँठ मे मेरा सुरत-धन जो तुम माँग रहे हो, नही बँधा है। मैने तो पहले-पहल ही तुम्हारे मुख से आज सुरत अथवा मैथुन का नाम सुना है। मुझे नही पता है कि यह सुरत क्या है ? इससे कौनसा काम सरता है ? किन्तु फिर भी तुम्हारे लिए मैं इस सुरत-धन को पाने के निमित्त खोज करूँगी और जहाँ पाऊँगी तुम्हे उसे समर्पित कर दूंगी। अपनी सखियो से पूछूँगी कि क्या वह मेरे घर मे भी है या नही ? हे माधव ! एक बार के लिए मेरी यह बात मुन लो और मान लो। सखियो से उसे खोज-माँगकर तुम्हे लाकर दूंगी। इस प्रकार सुन्दरी राधा कृष्ण से विनती करके मुक्ति माँगती है। कवियो के कठहार श्रेष्ठ कवि विद्यापति कहते है कि यो पद-रचना के माध्यम से वे सुचतुरा रमणी की चतुराई व्यक्त करते है। आशय है कि राधा के चरित्र माध्यम से विद्यापति ने चतुर रमणी की चतुराई प्रकट की है, यही उनकी पद-रचना का लक्ष्य है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सुचतुरा रमणी का काम-चातुर्य चमत्कारिक ढग से प्रकट किया गया है। मैथुन की खान होकर के भी कोई रमणी कहे कि वह उसकी तलाश करेगी और उत्कण्ठित नायक से छुट्टी पा जाये, इस भाव की बडी चमत्कार-युक्त व्यजना इन पक्तियो मे हुई है—

"सुरत क खोज करब जहाँ पाब।
घर कि अछए नाहि सखिरे सुधाब।"

इन पक्तियो मे जो रस-रहस्य पूरित है उसका अनुभव रसिक-जन ही जानते हैं। पद मे शृगार की प्रतिष्ठा शास्त्रीय ढग पर की गई है। किन्तु उसमे रोमाच, उत्सुकता और चातुर्य की व्यजना सरस बन पडी है।

शब्दार्थ—नागर=चतुर, नायक, कृष्ण। छोर=छोडो। सुरत=मैथुन। पाब=पाऊँगी। अछए=है। सुधाब=खोज करूँगी। बेरि एक=एक बार। मझु बानि=मेरी बात। देब आनि=लाकर दूँगी। परिहार=मुक्ति। नागरि-चातुरि= नायिका राधा की चतुराई। भनइ=कहते है। कबि-कठहार=कवियो के कठहार, श्रेष्ठ कवि विद्यापति।

(८५)

हरि-कर हरिनि-नयनि तन सौंपलि
सखिगन गेलि आन ठाम।
अबसर पाइ धनि कर धरि नागर
बिनति करए अनुपाम।
हरिनि-नयनि धनि रामा।
कानुक सरस परस सभाषन
मेटल लाजक धामा।
सुखद सेजोपरि नागरि नागर
बइसल नबरति-साधे।
प्रति अग चुम्बन रस अनुमोदन
थर-थर काँपए राधे।
मदन-सिहासन करल अरोहन
मोहन रसिक सुजान।
भय-गढ़ तोडल अलप समाधल
राखल सकल समान।
कह कबि-सेखर गरु ा भूख पर
करु जल थोर अहार।
अइसन दुहु मन तलफइ पुन-पुन
उपजल अधिक बिकार।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा-कृष्ण के सम्भोग का वर्णन करते हुए लिखते है—श्री कृष्ण के हाथो मे मृग-नयनी राधा का शरीर सौपकर साथ की सखियाँ किसी और स्थान को चली गईं, दूर हो गईं। एकात का यह उचित अवसर पाकर चतुर श्री कृष्ण ने सुन्दरी का हाथ पकड लिया और प्रणय की अनुपम

याचना करने लगे। सुन्दरी राधा मृग-नयनी थी। श्री कृष्ण के सरस स्पर्श और सम्भाषण ने सुन्दरी राधा की लज्जा को मिटा दिया। सुख देनेवाली सुकोमल शय्या पर राधा और कृष्ण प्रथम बार नई-नई रति-क्रिया के लिये उद्यत हुए। रसास्वादन के लिये अर्थात् रस-पुष्टि या रस-अनुमोदन के लिये नायक कृष्ण ने अग-प्रत्यग को चूमा—जिसके कारण नबेली राधा थर-थर काँपने लगी। तत्पश्चात् सुचतुर श्री कृष्ण राधा के ऊपर चढकर कामामन सन्नद्ध हुए अथवा—रसिक-सुजान श्री कृष्ण ने बडी चतुराई से राधा के साथ सम्भोग के लिये उसके ऊपर चढकर काम-पीठिका पर आसन जमा लिये। यहाँ आशय काम-शास्त्र मे वर्णित सम्भोग के चौरासी आसनो मे ही किसी एक के लिये हो सकता है, चाहे जो भी विशेष हो। श्री कृष्ण ने राधा के काम-भय रूपी गढ को तोड दिया और बस थोडे मे ही उसे सतुष्ट कर दिया। आशय यह है कि प्रथम समागम मे ही राधा को सम्भोग का मजा आ गया—और वह निरन्तर समागम-क्रिया के अनुकूल हो गई, निडर हो गई। इस प्रकार राधा के सम्मान को अल्प-सम्भोग द्वारा ही श्री कृष्ण ने रख लिया। आशय यह है कि माननी राधा को श्री कृष्ण ने सतुष्ट किया और उसे सम्भोग-सकट का अनुभव न होने दिया। कवि-शेखर विद्यापति कहते है कि जब बहुत भूख लगी हो और थोडा जल और आहार मिले, उस स्थिति मे जिस प्रकार मन और तडपने लगता है उसी प्रकार राधा और कृष्ण, इन दोनो के मन, फिर-फिर रति-क्रीडा के लिये तडपते है और उनमे काम का विकारी-भाव बढता है।

विशेष—रति-रहस्य के अनुसार चुम्बन-आलिगन का जो विधान है उसका दिग्दर्शन प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति ने किया है—

"प्रति अग चुम्बन रस अनुमोदन
थर-थर काँपए राधे।"

उक्त पक्तियो मे—"प्रति अँग चुम्बन—" उक्ति सस्कृत की इस उक्ति की काव्यात्मक रूपाभा प्रदर्शित होती है—

"ललाटालक कपोल नयन वक्ष स्तनोष्ठान्तर्मुखेषु चुम्बनम।"

सम्पूर्ण पद मे लय-माधुर्य सुन्दर बन पडा है। अतिम पक्ति—

"अइसन दुहु मन तलफइ पुन पुन
उपजल अधिक बिकार।"

मे रति की चरमाशक्ति अभिव्यजित है।

शब्दार्थ—हरि-कर=श्री कृष्ण के हाथो मे। हरिनि-नयनि=मृग-नयनी, राधा। सौपलि=सौप दिया। गेलि=चली गई। आन ठाम=कही दूसरी जगह। अनुपाम=अनुपम। कानुक=श्री कृष्ण का। सरस-परस=रसमय स्पर्श। सभाषन=मधुर बोल। मेटल=मिटा दिया। लाजक धामा=लज्जा का स्थान। सेजोपरि=सेज के

ऊपर। बइसल=बैठे। नब=नई, प्रथम रति-क्रिया से आशय है। मदन-सिंहासन=कामासन। अरोहन=ऊपर चढ जाना। भय-गढ=डर का किला। अइसन=इस प्रकार। दुहु मन=दोनो का मन। तलफइ=तड़पता है। पुन-पुन=फिर-फिर। गरुअ=अधिक। अहार=खाना। थोर=थोडा। उपजल=पैदा हुए। बिकार=विकार, काम-कुण्ठा से आशय है।

(८६)

सुरत समापि सुतल बर नागर
पानि पयोधर आपी।
कनक सभु जनि पूजि पुजारी
धरए सरोरुह झाँपी।
सखि हे माधब, केलि बिलासे
मालति रमि अलि ताहि अगोरसि
पुनु रति-रग क आसे।
बदन मेराए धएल मुख-मडल
कमल मिलल जनि चन्दा।
भमर चकोर दूअओ अरसाएल
पीबि अमिय-मकरन्दा।
भनइ अमीकर सुनह मधुरपति
राधा-चरित अपारे।
राजा सिबसिंघ रूपनरायन
सुकबि भनथि कठहारे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा-कृष्ण सम्बन्धी मिलन-समागम प्रसग का वर्णन करते हुए लिखते है—मैथुन करने के उपरात सुचतुर, सुन्दर कन्हैया श्री राधा के कुचो पर हाथ रक्खे ही सो गये। उस समय उस दशा को देखकर ऐसा प्रतीत होता था—जैसे सोने के महादेव की पूजा करके पूजारी ने उसे कमलो से ढँक दिया हो। हे सखी! श्री कृष्ण की काम-क्रीडा विचित्र है। मालती के साथ रमण करके भौरा फिर उसीको इसलिए रक्षित रखता है कि उससे फिर रति-सुख प्राप्त करे, सम्भोग करे। आशय यह है कि श्री कृष्ण भी भौरे के समान रसिक है जो मालती तुल्य राधा से रति के पश्चात् पुन रति-क्रिया के रस को प्राप्त करना चाहते हैं, अत उसे छेडते है। राधा के मुख से श्री कृष्ण का मिला हुआ मुख-मण्डल यो आभासित होता है, जैसे कमल से चन्द्रमा मिल गया हो। दोनो के नेत्र मिलकर प्रेम-रस मे इतने डूबे हुए लगते है जैसे भौरा और चकोर पुष्प-रस या मक़रद एव अमृत

पीकर आलस्य मे लीन हो। आशय यह है कि राधा का मुख कमल के समान और श्री कृष्ण का मुख-मण्डल चन्द्रमा के समान है। दूसरी ओर उन दोनो के परस्पर एक-दूसरे को ताकते हुए नेत्र रति-रस-तृप्त होकर ऐसे आभासित होते है, जैसे पुष्प-रस या मकरद पीकर भ्रमर और चन्द्रामृत पीकर मानो चकोर लीन हो गया हो। दोनो की यो रति उपरात दशा अत्यत आकर्षणीय है। शिवसिंह के मत्री अमीकर कहते हैं कि मथुरापति श्री कृष्ण और उनकी प्रियसि राधा के प्रणय-चरित्र को सुनो। हे नृप शिवसिह ! यह चरित्र-पद कविश्रेष्ठ विद्यापति द्वारा रचित है, जो मै सुनाता हूँ।

विशेष—मैथुन उपरात प्रेमी और प्रेमिका की जो लीनावस्था स्वभावत हो सकती है उसका शब्द-चित्र विद्यापति ने इन पक्तियो मे खीच दिया है—

"सुरत समापि सुतल बर नागर
पानि पयोघर आपी।
कनक सभु जनि पूजि पुजारी
धरए सरोरुह झाँपी।"

मुख के लिए कमल और और चन्द्रमा की उपमा एव नेत्रो के लिये भ्रमर और चकोर की उपमा जो कविवर विद्यापति ने प्रयुक्त की है वह नवीन नही, किन्तु उनके माध्यम से जिस आकर्षण की अभिव्यजना है वह बडी उत्कृष्ट कही जायगी। कमल और चन्द्रमा परस्पर मिले हुए है और उन दोनो का मिलन रस-सृष्टि का नवीन दृश्य है। इसके साथ ही चकोर और भ्रमर चाँद को नही एक दूसरे को देखकर आलस्य से भरे हुए है। अत इस दरस मे अपरिमित रस और असीम आकर्षण का भाव समाहित है। "मालति रमि अलि ताहि अगोरसि पुनु रति-रग क आसे।" उक्ति मे चरम चिरतन प्रणयाशक्ति अगडाई लेती है। बिहारी ने भी कुछ ऐसा ही कहा है—

"इहि आस अटक्यो रहे, अलि गुलाब के मूल।
अइहो फेरि बसन्त ऋतु, इन डालिन मे फूल।"

शब्दार्थ—सुरत=मैथुन। समापि=सम्पन्न करना। सुतल=सुप्त हो गये। बर=सुन्दर। नागर=चतुर, नायक श्री कृष्ण। पानि=हाथ। पयोधर=कुच। आपी=समर्पित, यहाँ आशय रक्खे हुए से है। कनक=स्वर्ण। जनि=मानो। पूजि=पूजा करके। धरए=रक्खे। सरोरुह=कमल। झाँपी=ढँककर। मालति=मालती की बेल, यहाँ राधा का उपमान है। रमि=रमन अथवा सम्भोग करके। अलि=भौंरा, यहाँ श्री कृष्ण का उपमान है। ताहि=उसे। अगोरसि=रक्षित रखना। पुनु=फिर। क=की। आसे=आशा से। बदन=मुख। मेराए=जुडाये हुए। दुअओ=दोनो। अरसाएल=अलसाये हुए। भमर चकोर=आशय राधा-कृष्ण की सुन्दर आँखो से है। पीबि=पीते है। अमिय=अमृत। मकरन्दा=पुष्प-रस। भनइ=कहते है। अमीकर=राजा शिवसिंह के मत्री, जो विद्यापति के इस पद को कह रहे हैं। सुनह=सुनो।

मधुरपति=श्री कृष्ण । अपारे=अपरपार ।

(८७)

हे हरि हे हरि सुनिए स्रवन भरि
अब न बिलास क बेरा ।
गगन नखत छल से अबेकत भेल
कोकिल करइछ फेरा ।
चकवा मोर सोर कए चुप भेल
उठिए मलिन भेल चदा ।
नगर क धेनु डगर कए सचर
कुमुदनि बस मकरदा ।
मुख केर पान सेहो रे मलिन भेल
अबसर भल नहि मदा ।
विद्यापति भन एहो न निक थिक
जग भरि करइछ निदा ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा-कृष्ण के सम्भोग-शृगार का वर्णन करते हुए लिखते है—राधा कह रही है कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! मेरी विनती कान भर सुनो कि अब विलास-क्रीडा का समय शेष नही रहा, मुझे आलिंगनमुक्त करो। आकाश मे उदित हुए जो तारे थे अब अदृश्य हो गये है और देखो प्रात काल की बेला मे, उसके स्वागत मे कोकिल उड रही है, गा रही है। मोर और चकवा शोर करने के उपरात चुप हो गये है और राकापति या चन्द्रमा भी आकाश के ऊपर थमा हुआ शिथिलतम दिखाई देता है। आशय यह है कि चन्द्रमा भी रजनी से रात भर रति-क्रिया करने के उपरात थककर थम गया है। यशस्वी कवि बच्चन के शब्दो मे यही भाव व्यजित हुआ है—

"प्राण राका उड गई प्रातः पवन मे,
ढल रहा है क्षितिज के नीचे शिथिल-तन चाँद
मेरा प्यार अन्तिम बार लो तुम।"

(मिलन-यामिनी)

ग्रामीण गाये भी चरने के हेतु राह पर जा रही है और कुमुदिनियो ने भी मुंदकर मकरद को बन्द कर लिया है। मुख का बीडा भी कुम्हला गया है, निरस हो गया है अत रति-क्रिया के लिए अब वातावरण अच्छा नही, बुरा है। कविवर विद्यापति कहते है कि राधा कृष्ण से विनय कर रही है कि अब प्रात काल सभोग करना उचित नही। इस समय के सम्भोग की निन्दा सारा ससार करता है।

विशेष—पद मे प्रकृति के रूप का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविकता एव भावमयता से किया गया है। प्रात काल का प्राकृतिक सुन्दर वातावरण प्रत्येक पंक्ति मे चित्रित होकर रह गया है जैसे—

"गगन नखत छलसे अबेकत भेल
कोकिल करइछ फेरा।"

काम-शास्त्र के अनुकूल ब्रह्म मुहूर्त मे रति-क्रिया वर्जित है क्योकि इस समय कर्म-काण्ड, पूजा-पाठ का मुहूर्त लग जाता है और इसी की व्यजना—"अब न बिलास का बेरा" उक्ति मे व्यजित है। प्राय एक विशेष प्रकार के आदर्शवादी व्यक्ति विद्यापति के उन्मुक्त शृगार-वर्णन से नाक-भँव सिकोड सकते है, किन्तु विद्यापति ने जहाँ कला का अतिरेक दिखाया है वहाँ जीवन की दुर्निवार पिपासा मचल उठी है। कुछ भी हो उन्होने कला का सफल प्रकाशन किया है। जग-निन्दा को भी उन्होने यथा सम्भव ध्यान मे रक्खा है, इन दो पक्तियो मे उसकी पुष्टि मिलती है—

"विद्यापति भन एहो न निक थिक
जग भरि करइछ निदा।"

उनके पदो मे शब्द-चित्रो एव भाव-चित्रो का चित्रण भी सजीव-स्वाभाविक बन सका है। इसके लिये प्रस्तुत पक्तियाँ पठनीय है—

"चकवा मोर सोर कए चुप भेल
उठिए मलिन भेल चन्दा।
नगर क धेनु डगर कए सचर
कुमुदनि बस मकरन्दा।"

इन पक्तियो मे प्रात कालीन मलीन चन्द्र, चरागाहो को जाती हुई पथ की ग्रामीण गाये और सिकुडती हुई कुमुदिनी का चित्र साकार हो उठा है।

शब्दार्थ—स्रवन भरि=कान भरकर, ध्यान देकर। बिलास क बेरा=काम-क्रीडा की बेला। नखत=तारे। छल=थे। से=वह। अबेकत भेल=अव्यक्त हो गये हैं, छिप गये है। करइछ=करती है। नगर क=ग्राम की, ग्रामीण। धेनु=गाय। सचर=चरने के लिये जा रही है। मकरन्दा=पुष्प-रस। केर=का। सेहो=वह भी। मलिन=मूख गया, नीरस हो गया। भल=अच्छा, उचित। मन्दा=बुरा, अनुचित। एहो=यह। न निक=अच्छा नही। थिक=है। जग भरि=सारा ससार।

(८८)

रयनि समापलि फुलल सरोज।
भमि भमि भमरी भमरा खोज।

दीप मद रुचि अम्बर रात।
जुगुतहि जानलि भए गेल परात।
अबहु तेजहु पहु मोहि न सोहाए।
पुनु दरसन होत मदन दोहाए।
नागर राख नारि मान-रग।
हठ कएले पहु हो रस-भग।
तत करिअए जत फाएब चोरि।
पर जन रस लए न रह अगोरि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा-कृष्ण के सम्भोग का वर्णन करते हुए लिखते है कि राधा कृष्ण से अनुनय कर रही है कि हे प्रियतम ! रात बीत गई है, कमल विकसित हो उठे है, भ्रमरि घूम-घूमकर अपने भौरो की खोज कर रही है, क्योकि रात भर भौरा कमलिनी के अक मे बन्द रहा और अब प्रात काल हो जाने से मुक्त हो गया है। दीपक मधम हो गया है। अम्बर पर उषा की लाली बिखर गई है। हे कृष्ण ! मैं कल्पना करती हूँ कि बिहान हो चला है, अब भी खुलकर प्रात होने से पहले मुझे बन्धनमुक्त कर दो। अब मुझे तुम्हारा यह सम्भोग का व्यापार अच्छा नही लग रहा है। मै काम की दोहाई देकर कहती हूँ, फिर मिलूँगी। हे कृष्ण ! चतुर प्रियतम नारी के मन की इच्छा को सर्वप्रकारेण पूर्ण करता है, उसे ठुकराता नही। इसलिए तुम मेरी बात मानो और मेरी इच्छा के अनुकूल मुझे इस समय बन्धन-मुक्त कर दो। हे प्रियतम ! ज़िद्द करने से सारा मज़ा किडकिडा हो जाता है। चोरी भी उतनी ही करनी चाहिए जितनी छिप सके, खप सके। परपुरुष होकर भी तुमने मुझसे रस लिया है, किन्तु, मुझे अगोरकर अथवा हथियाकर रक्खो, यह उचित नही ? आशय यह है कि मैं परनारी हूँ और तुम परपुरुष हो, इतना अन्तर होते हुए भी हमने-तुमने अनाधिकृत्य और अनुचित रूप मे परिरम्भन किया है। नीति और आदर्श को अन्धा बनाकर रति-रस भोगा है, किन्तु अब यह उचित नही कि मुझे तुम हथियाये ही रक्खो, मुक्त न करो, इससे लोकापवाद उठेगा।

विशेष—रति-रहस्य मे परकीया-सम्भोग का प्रकरण बहुत विस्तृत है। राधा परकीया थी। विद्यापति ने बडी सूक्ष्मता से प्रस्तुत पद मे परकीया-भाव का प्रकाशन किया है। राधा-कृष्ण की रात रसमय कटी, किन्तु, प्रात लोकापवाद का प्रतीक बन कर खडा हो गया। मनोवैज्ञानिक रूप मे इसका प्रभाव राधा पर जो पडा, उसकी स्वाभाविक व्यजना दो पक्तिनो मे मुखरित हुई है—

"तत करिअए जत फाएब चोरि।

विद्यापति की कवित्व-सृष्टि उनकी सूक्ष्म दृष्टि की अनुकृति है। प्रात काल मे दीप भिक्षुक की भाँति क्षीण हो जाता है और आकाश मद से रजित—यही भाव-चित्र इस पक्ति मे साकार है—

"दीप मद रुचि, अम्बर रात।"

परनारी-गमन मे नायिका की चतुराई बडा महत्त्व रखती है। सिद्धान्त रूप मे लिखी गई यह पक्ति इसी भाव की व्यजना करती है—

"तत करिअए जत फाबए चोरि।"

परनारी गमन मे इस भाँति की चोरी वस्तुत निपुनाई और चतुराई की नितान्त अपेक्षा रखती है, इसे कोई भुक्तभोगी बता सकता है।

"भमि भमि भमरी भमरा खोज।"

पक्ति मे अनुप्रासिक योजना बडी सुन्दर बन पडी है।

शब्दार्थ—रयनि=रैन, रात। समापलि=व्यतीत हो गई। फुलल=विकसित। भमि भमि=फेरा लगाकर। भमरि=भ्रमरी। मद=क्षीण। रात=लाल। जुगुतहि=युक्ति से, आशय है कल्पना से। जानलि=जानती हूँ। भए गेल=हो गया है। परात=बिहान, प्रात काल। अबहु=अब भी। तेजहु=मुक्त करो। पहु=प्रियतम, श्री कृष्ण से आशय है। मोहि=मुझे। न सोहाए= अच्छा या उचित नही लगता। पुनु=फिर। मदन दोहाए=कामदेव की दोहाई या सौगन्ध। नागर=चतुर नायक, आशय श्री कृष्ण से है। राखु=रखो, आशय पूर्ण करने से है। नारि-मान-रग=स्त्री के मन की इच्छा। हठ कएले=ज़िद्द करने से। रस-भग=मज़ा किडकिडा होना। तत करिअए=उतनी करिये। जत=जितनी। फाबए=खप सके, उचित हो। परजन=परपुरुष, नायक। लए=लेकर। अगोरि=हथियाकर, न छोडने से आशय है।

सखी-सम्भाषण

(८९)

आजु बिपरित धनि देखिअ तोय।
बुझए न पारिअ ससए मोय।
तुअ मुख-मडल पुनिम क चाँद।
का लागि भय भेल ऐसन छाँद।
नयन, जुगल भेल काजर बिथार।
अधर निरस करु कओन गमार।
पीनपयोधर नखरेख देल।
कनक-कुभ जनि भगनहु भेल।
अग बिलेपन कुकुम भार।
पीताम्बर धरु इथे कि बिचार।
सुजन रमनि तुहु कुलबति बाद।
का सयँ भुंजलि मरम क साध।
कामिनि कहिनी कह सम्बाद।
कह कबि-सेखर नह परमाद।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति राधा-कृष्ण की सम्भोग उपरात की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते है—

सखी राधा से पूछ रही है, हे सुन्दरी राधा ! आज मैं तुम्हे परिर्वतित देख रही हूँ। मै कुछ समझ नही सक रही हूँ कि तुम बदली-सी क्यो हो ? मुझे इस विषय मे सशय हो रहा है। तुम्हारा मुखमण्डल तो पूनम का चाँद सरीखा प्रोज्ज्वल था, अब किस लिए वह इस भाँति मलीन हो गया है अथवा तुम्हारी आकृति मलीन क्योकर हो गई है ? तुम्हारे दोनो नेत्रो मे काजल फैल रहा है। किस गँवार ने तुम्हारे अधरो को नीरस कर दिया है। आशय यह है कि किस उजड्ड रसिक ने तुम्हारी आँखो का चुम्बन इस प्रकार लिया है कि सारा काजल धुलकर फैल गया है और इसी प्रकार चूस-कर अधरो की ऐसी दुर्गति की है कि वे महानिरस दिखलाई पडते हैं। किसने तुम्हारे कोमल उठे हुए कुचो पर इस प्रकार मर्दन करके नाखून गोद दिये हैं और उन पर चिह्न

डाल दिये है जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो सोने के घट छत कर दिये गये हो। आशय यह है कि किस अनाडी ने तुम्हारे स्वर्ण-घट जैसे सुन्दर उरोजो को मर्दित करके घायल बना दिया है। केशर से भरा अग प्रलेपन भी अजब दशा मे है। आशय यह है कि राधा का चन्दन-चर्चित शरीर मसलने से केशर जैसा लाल वर्ण का हो गया है, विवर्ण हो गया है। इसका क्या अर्थ लगाया जाये जोकि तुमने पिताम्बर वस्त्र धारण किया हुआ है। आशय यह है कि राधा ने कृष्ण के साथ समागम किया है और कृष्ण पिताम्बरधारी है इस प्रकार राधा के शरीर से पिताम्बर की झलक मिल रही है अत सखियाँ इसी भाव को व्यजित करना चाहती है कि राधा ने पिताम्बरधारी कृष्ण के साथ समागम किया है। हे राधे, तुम तो रमणियो मे उच्चकुलीन कही जाती हो, फिर तुमने अपने हृदय की लालसा—काम-क्रीडा—किसके साथ भोगी, या चुकाई ? कविवर विद्यापति कहते हैं कि सखियो के इस प्रकार के विचित्र सम्वाद मे सुन्दरी राधा अपनी बात क्या कहती ? अर्थात् राधा ने जो कुछ काम-क्रीडा की, उसे सखियो को क्या बताती ? कवि-चतुर विद्यापति कहते है कि उसने कृष्ण के साथ सचमुच सम्भोग किया, कोई किसी प्रकार की भूल नही की थी। व्यजना यह है कि राधा-कृष्ण की रति कोई प्रमाद-क्रिया नही, वह तो दिव्य-रति है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे भोग उपरात की स्थिति का वर्णन उद्दीपन कार्य है। पीन पयोधर की उपमा-उत्प्रेक्षा कनक-कु भ से बडी उचित बन पडी है। पद की अन्तिम चार पक्तियो मे दिव्य-रति की भावना व्यजित हुई है। जिनमे बल्लभ के शुद्धाद्वैतवादी एव पुष्टिमार्गी विचार का समर्थन है। राधा का कवि-शुद्ध जीव परमब्रह्म कृष्ण के लीला सुख मे समर्पित हो गया है। राधा भौतिकता से ऊपर उठकर निर्विकल्प भाव से श्री कृष्ण के साथ दिव्य-रति-क्रिया मे डूबी है। अत विद्यापति ने उस रति के लिये "नह परमाद" की व्यजना की है जो अपने मे बडी गम्भीर और पूर्ण है।

"अग बिलेपन कुकुम भार।
पीताम्बर धरु इथे कि बिचार।"

इन पक्तियो मे रति-मर्दित रमणी का चित्र आँखो मे घूम जाता है। विद्याप
के काव्य की विशेषता उनके भाव-चित्रो और शब्द-चित्रो मे प्रकट हुई है।
कवि थे। अत उन्होने काव्य-चमत्कार को अधिक महत्त्व न देकर
दिया है।

शब्दार्थ—बिपरित=परिवर्तित, बदली हुई। धनि=सुन्दरी
समझ सकने मे असमर्थ। मोय=मुझे। का लागि=किस लि
बिथार=फैला हुआ। निरस=रसहीन। कओन=किस। गम
कनक-कुभ=सोने का घट, राधा के उरोजो से उपमान है।
गया, टूट गया। बिलेपन=लगा हुआ। कु कुम=केशर। पीत

वस्त्र को ओढते थे। धरु=धारण करना। इथे=इसका। कि=क्या। रमनि=रमणी। कुलबति=उच्चकुलीन। का सयँ=किसके साथ। मरम क साध=मन की इच्छा। नह परमाद=कोई भूल नही। सम्बाद=सखियो का कथन जो राधा से पूछ रही थी।

(६०)

आजु देखलिसि कालि देखलिसि
आज कालि कत भेद।
सैसब बापुर सीमा छाडल
जऊबन बाँधल फेद।
सुन्दर कनककेआ मुति गोरी।
दिन दिन चाँद-कला सयँ बाढ़लि
जऊबन सोभा तोरी।
बाल पयोधर गिरि क सहोदर
अनुपामिए अनुरागे।
कओन पुरुष कर परसए पाओल
जे तनु जितल परागे।
मन्द हास बकिम कए दरसए
चगिम भौंह बिभगे।
लाज बेआकुलि सामु न हेरए
आओल नयन-तरगे।
बिद्यापति कबिबर यह गाबए
नब जौबन नब कन्त।
सिबसिंघ राजा एह रस जानए
मधुमति देबि सुकन्ता।

भावार्थ—पूर्व पद के क्रम मे ही कविवर विद्यापति लिखते है—सखी राधा से है, हे राधे! मैंने कल तुम्हे देखा था और आज भी देख रही हूँ, किंतु देख र और कल मे तुम मे कितना अन्तर पड गया है? कल के बेचारे मा (अधिकार) छोड दी और आज के यौवन ने अपना फेटा बाँध- तुम पर अधिकार कर लिया। आशय यह है, कल की अबोध णी बन चुकी है। हे बाले! तुम स्वर्ण-मूर्त्ति की भाँति नव- हो। चन्द्रकला की भाँति दिन-प्रतिदिन तुम्हारी जवानी की ही है। तुम्हारे कल के छोटे कुच जो आज इतने बढ गये हैं र (भाई) होने की उपमा बडे प्यार से दी जा सकती है।

आशय यह है कि राधा के छोटे कुच बडे हो चुके है। अरे बताओ भी भला किस पुरुष-रसिक के हाथ तुम्हारे इन उरोजो को स्पर्श कर सके हैं और जिन्होने तुम्हारे पुष्प सरीखे शरीर का पराग या रस जीत लिया है, पा लिया है। यह सुनकर नारियोचित लज्जामय स्वभावानुकूल राधा—भला क्या उत्तर देती ? बस, वह मद-मद मुस्कराई, तिरछी चितवन से निहारा और सुन्दर भौह की भगिमा बनाई। लज्जा से व्याकुल होकर राधा सामने नही देखती, बस उसकी आँखो मे तरग झलक आई। आशय यह है कि उसके नेत्रो मे रति-क्रीडा की अभिव्यक्ति स्पष्ट हो गई। कविवर विद्यापति यह गाकर बताते है कि भला यह सब-कुछ राधा से पूछने की क्या बात ? अरे, स्पष्ट है कि यौवन में भरपूर रमणी है और उसका प्रियतम कृष्ण भी नव-रसिक हैं। राजा शिवसिंह जो मधुमति रानी के पति है, वे इस रति-रहस्य को भलि-भाँति जानते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे भावो-अनुभावो का प्रकाशन बडे प्रभावपूर्ण ढग से हुआ है। प्रस्तुत पक्ति देखिये—

"मन्द हास बकिम कए दरसए
चगिम भौंह बिभगें।
लाज बेआकुलि सामु न हेरए
आओल नयन-तरगे।"

कल की आबोध बाला आज की मधुर-मुग्धा कैसी और क्योकर दर्शित हो रही है, इसका मधुर भाव-चित्र इन पक्तियो मे द्रष्टव्य है—

"संसब बापुर सीमा छाडल
जऊबन बाँधल फेव।"

राधा की सुन्दर आकृति की उपमा इन पक्तियो मे कितनी आकर्षक एव उपयुक्त बन पडी है—

"सुन्दर कनककेआ मुति गोरी।
दिन दिन चाँद-कला सयं बाढलि
जऊबन सोभा तोरी।"

बाला के लघु उरोज समय के साथ कितने और कैसे बढ गये हैं, इसका चमत्कारमय चित्र और तत्सम्बन्धी उपमा का विधान विद्यापति की मौलिक उद्भावना का प्रमाण है—

"बाल पयोधर गिरि क सहोदर
अनुपामिए अनुरागे।"

नव-रति-मुग्धा की लज्जा एव तदपि काममयी तरग का उद्घाटन अत्यन्त सश्लिष्ट बन पडा है इन पक्तियो मे—

"लाज बेम्राकुलि सामु न हेरए
म्राम्रोल नयन-तरंगे।"

यहाँ—"सामु न हेरए—" ग्रौर "नयन तरगे" के मध्य रति-रसिकता निर्वस मराली-सी झूल रही है। सम्पूर्ण पद मे सगीतात्मकता का प्राधान्य है।

शब्दार्थ—देखलिसि=देखी। कालि=कल। कत=कितना। भेद=ग्रन्तर बापुर=बेचारा। सीमा छाडल=ग्रपना ग्रधिकार छोड दिया। फेद=फेट, कमर कनककेम्रा=स्वर्ण निर्मित। मुति=मूर्ति। सयँ=सी। गिरि क सहोदर=पर्वत क सगा भाई, उरोजो का उपमान। ग्रनुपामिए=उपमा देने मे। परसए=स्पर्श करने मे। जितल=जीत लिया। बकिम=तिरछी। चगिम=सुन्दर। भौह बिभगे=भ्रू भगी। बेम्राकुलि=व्याकुल। सामु=सामने। न हेरए=नही देखते। म्राम्रोलि=म्राई। कन्ता=पति।

(६१)

सामरि हे झामरि तोर देह।
की कह का सयँ लाएलि नेह।
नींद भरल ग्रछ लोचन तोर।
कोमल बदन कमल-रुचि चोर।
निरस धुसर करु ग्रधर पँवार।
कोन कुबुधि लुटु मदन-भडार।
कोन कुमति कुच नख-खत देल।
हाय-हाय सम्भु भगन भए गेल।
दमन-लता सम तनु सुकुमार।
फूटल बलय टुटल गृम हार।
केस कुसुम तोर सिर क सिदूर।
ग्रलक तिलक हो सेउ गेल दूर।
भनइ बिद्यापति रति ग्रबसान।
राजा सिबसिंघ ई रस जान।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति सम्भोग उपरात राधा की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते है—सखी पूछ रही है, हे सुन्दरी राधे! तुम्हारी देह मलीन क्योकर हो गई है? क्या मै यह कहूँ कि तुमने किसी से प्रेम किया है। तुम्हारी ग्राँखो मे ग्रब तक नीद का खुमार है, लगता है तुम सारी रात किसी के साथ प्रेम-क्रीडा मे जमी रही हो। तुम्हारे सुन्दर ग्रौर कोमल मुख की कमल तुल्य छबि भी तो चोरी चली गई है, ऐसा लगता है। तुम्हें किसी ने सारी रात चुम्बनो

की बौछार से विवर्ण-मुखी बना दिया है। मूँगा-जैसे लाल अधरो को रसहीन और भूरा कर दिया है। किस उद्दण्ड नायक ने तुम्हारे काम-यौवन के खजाने पर डकैती डाली है और किस दुर्बुद्धि ने अपने नखो से तुम्हारे कुचो को विदीर्ण कर दिया है ? हाय, तुम्हारे कुचो को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि महादेव का पिंड भग्न हो गया हो। द्रोणलता तुल्य तुम्हारी सुकुमार काया झकझोर दी गई है, मर्दित की गई है। हाथ की चूडियाँ फूट गई है और गले का हार टूट गया है। केशो मे लगे फूल, माँग मे भरा सिदूर और अलक्तक अथवा महावर एव तिलक—वह भी नष्ट-भ्रष्ट प्रतीत होता है अर्थात् तुम्हारे सभी शृगार के प्रसाधन अस्त-व्यस्त है। कविवर विद्यापति कहते है कि रति-क्रिया का अन्त ही इस रूप मे होता है। राजा शिवसिंह शृगार के इस रति-रहस्य को भली-भाँति जानते है।

विशेष—काम-शास्त्र के आचार्यों ने मुग्धा नायिका की रति उपरात दशा का चित्रण अत्यन्त विषद किया है। नायक के उद्दीप्त काम-व्योहार से नायिका का शरीर विक्षत हो जाना स्वाभाविक है। तत्पश्चात् उस क्रिया के झलकते हुए चिह्न रति-मुग्धा नायिका को लज्जित करते है और सखी-सहेलियाँ तत्सम्बन्ध मे चुटकियाँ लेती हैं। कविवर विद्यापति ने इसी प्रकार की नायिका का यथार्थ चित्रण इन पक्तियो मे किया है—

"दमन-लता सम तनु सुकुमार।
फूटल बलय टूटल गृम हार।
केस कुसुम तोर, सिर क सिदूर।
अलक तिलक हे सेउ गेल दूर।"

कविवर विद्यापति ने रति-मर्दिता नायिका का चित्रण बडा भावमय किया है—

"सामरि हे झामरि तोर देह।
की कह का सयँ लाएलि नेह।
नींद भरल अछ लोचन तोर।
कोमल बदन कमल रुचि चोर।"

आधुनिक कविवर 'निराला' ने भी इसी प्रकार की एक मुग्धा बाला का चित्र खीचा है, तुलना कीजिये—

'कि झोंको की झडियो से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल,
चौंक पडी युवती—
चकित चितवन निज चारों ओर फेर।"

नायिका की सुकुमार काया के लिए द्रोणलता की उपमा अत्यन्त भाववर्द्धक और सगत है। कविवर विद्यापति भावना और रस के कवि थे। अत उनके अलकारो और कल्पनाओ मे अस्पष्टता अथवा दूर की कौडी लाने की दृष्टि न होकर रसमय निश्छल-आत्माभिव्यक्ति है जो दूसरे रीतिकालीन कवियो से उन्हे अलग करके विशिष्टता प्रदान करती है, इसीलिए वे शृगार के प्रतिनिधि कवि हैं—"कोन कुबुधि लुटु मदन-भडार।" उक्ति मे विद्यापति की सच्ची शृगार प्रियता अभिव्यजित है।

शब्दार्थ—सामरि=श्याम सुन्दरी राधा के लिये है। झामरि=झकझोरी हुई, मलीन। की कह=क्या कहे। का सयँ=किसके साथ। लाएलि नेह=प्रेम, सम्भोग किया। अछ=है। बदन=मुख। कमल, रुचि=कमल की छवि, मुख-छवि का उपमान है। चोर=चुराई गई। निरस=नीरस। धुसर=भूरा-धूसर। पँवार=मंगा अथवा प्रवाल। कुबुधि=दुर्बुद्धि। लुटु=लूटा है। भगनि=भग्ग। दमन-लता=द्रोणलता राधा की काया का उपमान है। बलय=चूडियाँ। गृम हार=गले का हार। केस कुसुम=बालो मे गुथा हुआ फूल। अलक=महावर। सेउ=वह भी। गेल दूर=दूर हो गया, नष्ट-भ्रष्ट हो गया। भनइ=कहते है। रति अवसान=रति-क्रिया के समाप्त होने के उपरात। ई रस जान=शृगार के इस रति-रहस्य को जानते है।

(६२)

ए धनि ऐसन कहबि मोय।
आजु जे कैसन देखिय तोय।
नयन बयन आनहि भाँति।
कहइत कहिनि भूलसि पाँति।
सुरँग अधर बिरँग भेलि।
का सयँ कामिनि कएल केलि।
बेकत गए गेल गुपुत काज।
अतए ककर करह लाज।
सघन जघन काँपए तोर।
मदन मथन कएल जोर।
गोर पयोधर रातुल गात।
नखर आँचर झापसि हात।
अमिअ सागर तुहु से राहि।
मुकुंद मातंग बिहर ताहि।
कह कबि-सेखर कि कर लाज।
कह न कहिनि सखिन समाज।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति पूर्व पद-विषयक्रम के अनुसार रति-मर्दिता मुग्धा-राधा का छवि-चित्रण करते हुए लिखते है—

सखी कह रही है कि हे सुन्दरी ! आज मुझे यह अन-कहना कहना ही पड रहा है कि मैं तुम्हे किस विचित्र दशा मे देख रही हूँ। तुम्हारे नयन और वचन कुछ दूसरी ही तरह के हो रहे है, जो तुम कहती हो वह तुम स्वय नही जानती, भूल से कहती हो। तुम्हारे रक्तिम-अधर रगहीन हो गये है। किसी ने उन्हे चूस-चूसकर रस-रगरहित कर दिया है। हे कामिनी ! बताओ तो कि तुमने किसके साथ काम-क्रीडा की है ? तुम्हारा अव्यक्त काम-व्यापार तो प्रगट हो ही गया है, हम जान ही गई है अत. अब कहने मे क्यो लज्जा कर रही हो, भला इसमे लज्जा की क्या बात ? तुम्हारी मासल जघाएँ काप रही है, प्रतीत होता है कि दुष्ट कामदेव ने उनका मर्दन-मन्थन किया है—उद्दण्डता पूर्वक। तुम्हारे गोरे उरोज नायक कृष्ण के द्वारा इस प्रकार मसले गये है कि लाल पड गये है, तुम्हारे शरीर पर जो (उरोजो पर) नख-चिह्न गुदे है, तुम उन्हे अपने हाथ के आँचल से छिपाने का बार-बार मिथ्या प्रयत्न कर रही हो। अरी राधे, तुम तो अमृत का सागर या सरोवर हो, तो यह निश्चय है कि इसमे कृष्ण-रूपी मद-मस्त हाथी ने विहार किया है। कवि-सिरोमणि विद्यापति कहते है कि सखी आग्रह कर रही है—कि हे राधे ! लजा क्यो रही हो ? अरे, अपनी रति-क्रीडा की कहानी हम सखियो से भी कह दो न ! हम तुम से क्या छुडा लेगी।

विशेष—इस पद मे रति-मुग्धा नायिका की काम-जनित चेष्टाओ एव आगिक स्थितियो का अत्यन्त रस-वर्णन और वर्षण है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मुग्धा के रति-गोपनीय लज्जा-युक्त भावो का प्रकाशन मर्मस्पर्शी है। नायिका की विचित्र दशा का चित्रण कितने लाघव से किया गया है, इसकी पुष्टि "कहबि मोय" और "कैसन देखिय" शब्दो मे अभिव्यजित है। काम की भाषा भी प्रताडित व्यक्ति द्वारा कितनी विचित्र हो जाती है कि कुछ समझ मे नही आता। "नयन बयन आनहि भाँति। कहइत कहिनि भूलसि पाँति।" पक्ति मे औत्सुक्य एव वचन का सरस भाव-प्रकाशन रस के कोष उडेल देता है। स्पष्टता के लिये स्वय लेखक अपनी इन पक्तियो को रखने की धृष्टता कर रहा है—

"नयन वचनमय वचन नयममय
पगलाया प्रत्येक निमिष है।
चाल चमकती, शायद तुमसे
बिजली वहाँ लजाई होगी।"

"सघन जघन काँपए तोर।" पक्ति मे रति-मर्दिता नायिका का अनुभाव परिलक्षित है, किंतु सकारण है—

"मदन मथन कएल जोर।"

वास्तव मे बात ऐसी है कि कविवर विद्यापति कला की स्वच्छन्दता के रस सिद्ध पोषक रहे है। यह प्रभाव रुद्र सम्प्रदाय एव शुद्धाद्वैतवाद के प्रेम लक्षणा सिद्धात का फल है। कृष्ण और राधा का यह परकीया-गमन कला और दर्शन का सतुलित अभिव्यजन है और विद्यापति ने उसको स्वच्छन्दता से व्यक्त किया है।

शब्दार्थ—आनहि=अन्य ही, दूसरो से अभिप्राय है। सुरँग=सुन्दर रग, लाल। बिरँग=मलिन अर्थात् उतरा हुआ। बेकत=व्यक्त, समझ मे आने से मतलब है। अतए=यहाँ। ककर=किसकी। सघन=पुष्ट, मास भरा हुआ। जघन=जाघा। रातुल=रक्त के समान लाल। नखर=नख से खीचा चिह्न। अमिय=अमृत। राहि=राधा। मुकु द मातग=कृष्ण रूपी मद-मस्त गज, हाथी।

(६३)

आजु देखिए सखि बड अनमनि सनि
बदन मलिन सन तोरा।
मन्द बचन तोहि कोन कहल अछि
से न कहिए किछु मोर।
आजुक रयनि सखि कठिन बितल अछि
कानहु रभस कर मदा।
गुन-अबगुन पहु एकओ न बुझलनि
राहु गरासल चदा।
अधर सुखाएल केस अरुझाएल
घामे तिलक बहि गेला।
बारि बिलासिनि केलि न जानथि
भाल अरुन उडि गेला।
भनइ बिद्यापति सुन बर जौबति
ताहि करब किए बाधे।
जे किछु पहु देल आँचर बाँधि लेल
सखि सभ कर उपहासे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति पूर्व पद के विषयक्रमानुसार कहते है—

राधा की अस्त-व्यस्त दशा को देखकर सखियाँ पूछती है—हे सखी राधे! आज तुम्हरी ये हालत कैसे हो गई? बहुत उदास लग रही हो। तुम्हारा मुंह मलिन लग रहा है। तुम्हे किसी ने दुवर्चन कहकर तो तुम्हारी ये हालत नही कर दी है? मुझे क्यो नही बताती? आशय यह है कि मुझे बताने मे तुम्हारा नुकसान ही क्या है? (सखियो का अभिप्राय यह है कि वे उसका बिगाडेंगी तो कुछ नही, जहाँ तक हो

सकेगा भला करेगो और राधा की बातो मे रस लेगी ।) सखी के इस प्रकार अपनत्व के वचन सुनकर राधा ने उत्तर दिया कि हे सखी ! आज की पिछली रात मुझे बडी कठिन बीती । श्री कृष्ण ने अनुचित ढग से मेरे सग गमन किया है । प्रियतम ने गमन करते समय उचित-अनुचित का सर्वथा ध्यान नही रक्खा, यह समझ लो कि मुझे उन्होने इस प्रकार से आलिगनबद्ध किया जैसे चाँद को राहु ने ग्रस लिया हो । मेरे होठ शुष्क हो गये, कुन्तल उलझ गये और पसीने के कारण तिलक भी बह गया । मै तो विलास की दृष्टि से भोली बालिका हूँ जो काम-क्रीडा को नही जानती । अत भाल का सिन्दूर मिट गया । कविवर विद्यापति कहते है कि हे सुन्दरी सुनो—श्री कृष्ण को स्वच्छन्दता से काम-क्रीडा करने मे बाधा क्यो डाल रही हो ? जो कुछ भी प्रियतम प्रदान करे उसे आँचल मे बाधकर सुख से ग्रहण करो । भले ही तत्सम्बन्ध मे सारी सखियाँ ठिठोली करे । आशय यह है कि श्री कृष्ण का राधा के साथ मैथुन उचित है चाहे कैसे भी हो सखियो का उपहास महत्त्वपूर्ण नही ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे रति-मर्दिता नायिका की दशा का चित्रण यथा-तथ्य रूप मे हुआ है । "राहु गरासल चदा ।" उक्ति मे प्रभाव झलकता है ।

"अधर सुखाएल केस अरुझाएल
घामे तिलक बही गेला ।"

पक्ति मे नायिका की अस्त-व्यस्त स्थिति सजीव प्रतीत होती है ।

शब्दार्थ—अनमनि सनि--अनमनी-सी । सन=जैसा । बदन=मुख । मन्द=बुरा । अछि=है । से=वह । रयनि--रात । बितल=व्यतीत हुई । रभस=रमण किया । गुन-अबगुन=उचित, अनुचित । पहु=-प्रियतम, कृष्ण । गरासल=ग्रस लिया । अरुझाएल=उलझे हुए । घामे=पसीने से । बारि=बाला । न जानथि=नही जानती । भाल=सिर । अरुन=सिंदूर । किए बाधे=स्वच्छन्दता मे बाधा डालना । उप-हासे=हँसी ।

(९४)

न करु न कर सखि मोहि अनुरोध ।
की कहब हमहु तकर परबोध ।
अलप बयस हम कानु से तरुना ।
अतिहु लाज डर अतिहू करुना ।
लोभे निठुर हरि कएलन्हि केलि ।
की कहब जामिनि जत दुख देलि ।
हठ भेल रस मोर हरल गेआन ।
निबि-बँध तोडल कखन के जान ।
देल आलिगन भुज-जुग चाँपि ।
तखन हृदय मझ ऊठल काँपि ।

नयन बारि बरसाओलि रोइ।
तबहु कान्हु उपसम नहि होइ।
अधर सुरस मझु कएलन्हि मन्द।
राहु गरसि निसि तेजल चन्द।
कुच-जुग देलन्हि नख-परहार।
केहरि जनि गज-कुम्भ बिदार।
भनइ बिद्यापति रसबति नरि।
तुहु से चेतन लुबुध मुरारि।

भावार्थ—पूर्व पद के क्रम मे कवि विद्यापति लिखते है—राधा कहती है कि हे सखी ! मुझे रात की काम-विलास-सम्बन्धी चर्चा सुनाने के लिए आग्रह न कर, विवश न कर, न कर। मैं उसके विषय मे तुम्हे सन्तुष्ट करने के लिए क्या कह सकती हूँ ? मैं थोडी उम्र की बाला और कृष्ण थे पूर्ण युवक।—इस असगति से मै अत्यधिक लाजमय और अधिरमय हो गई। माधव ने काम-लोलुप होकर निठुराई बरती और मुझसे क्रीडा की। क्या कहूँ कि गत रात मुझे जितनी काम-क्रीडा से तकलीफ हुई है, यामिनी ने जितना मुझे दुख दिया, उसके लिए कहूँ ? उनके लिए वह सब कुछ हठ हुआ और काम-रस ने मेरे ज्ञान का अथवा मेरे अपनेपन का हरन कर लिया। कौन जान पाया कि जब उन्होने मेरी साडी की गाँठ खोल दी, जिस समय उन्होने मुझे आलिंगन अपने दोनो हाथो दिया तो उस समय मेरे हृदय मे कँपकँपी उठ गई। मैंने आँखो मे आँसू भरकर उन्हे रोवाई भी दिखलाई तब भी निठुर कन्हैया शान्त नही हुआ। मेरे अधरो मे से रस चूसकर उन्हे मलीन कर दिया, रात भर मानो चन्द्रमा को राहु ने ग्रसे रखकर अब छोडा है।—ऐसी है सब मेरी दशा। मेरे दोनो कुचो पर कन्हैया ने अपने नखो का प्रहार किया, इस भाँति कि जैसे सिह अपने तेज़ नखो से हाथी का मस्तक विदीर्ण कर देता है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे रसवन्ति, सुन्दरी, राधे ! तुमसे श्री कृष्ण इसलिए अनुरक्त है क्योकि तुम सुचतुरा हो। आशय यह है कि श्री तुम्हे अपने प्रणय के योग्य समझते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे विद्यापति ने काम-मर्दिता नायिका का रोमाचकारी चित्रण किया है। काम-क्रिया के समय पति द्वारा हुई नख-क्षत नायिका का भाव विचित्र होता है, कुछ पीडा और कुछ पुलक।—इसी तथ्य का सरस प्रकाशन "कुच-जुग देलन्हि।" पक्ति मे व्यजना से हुआ है। "राहु गरसि निसि तेजल चन्द" पक्ति मे उससे पूर्व की पक्ति "अधर सुरस मझु कएलन्हि मन्द" की भाव-पुष्टि बडी चमत्कार-युक्त हुई है। सम्पूर्ण पद मे शृगार का उद्दीपन पक्ष प्रधान है। दुष्ट नायक के चगुल मे पडी नायिका बार-बार अश्रु भरकर उससे तग न करने की प्रार्थना करती है किन्तु वह

कब मानता है, इसी तथ्य का रसमय प्रकाशन हुआ है इन पंक्तियो मे—"नयन बारि दरसाओलि रोइ। तबहु कान्हु उपसम नहि होइ।"

शब्दार्थ—अनुरोध=आग्रह। तकर=उसका। अलप बयस=थोडी आयु। कान्हु=कृष्ण। जमिनि=रात। हरल गेआन=ज्ञान हर लिया। तोडल=तोडा। कखन=कब। जुग=दोनो। मझु=मैं। नयन बारि=आँखो मे अश्रु। दरसाओल=दिखाया। उपसम=शांत। गरसि=ग्रस लिया। तेजल=छोड दिया। परहार=प्रहार। जनि=जैसे। गज-कुम्भ=हाथी का मस्तक। बिदार=फाडना, विदीर्ण करना। लुबुध=मोहित।

(६५)

कि कहब हे सखि आजु क बिचार।
से सुपुरुष मोहे कएल सिंगार।
हँसि हँसि पहु आलिंगन देल।
मनमथ अंकुर कुसुमित भेल।
आँचर परसि पयोधर हेरु।
जनम पंगु जनि भेटल सुमेरु।
जब निबि-बंध खसाओल कान।
तोहर सपथ हम किछु जदि जान।
रति-चिन्हे जानल कठिन मुरारि।
तोहर पुने जीअलि हम नारि।
कह कबि-रंजन सहज मधुराई।
न कह सुधामुखि गेल चतुराई।

भावार्थ—पूर्व पद के विषयक्रम मे ही कविवर विद्यापति राधा की रति-मर्दिता स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते है—राधा कह रह रही है कि हे सखी! आज के विचार को जो श्री कृष्ण के सम्भोग के कारण मुझ मे जागृत हुआ है, उसे क्या कहूँ, पूर्णत कहा नही जाता। उस सुन्दर पुरुष कृष्ण ने पहले मेरा श्रृगार किया। फिर इस प्रकार हँस-हँस कर मुझे आलिंगन दिया कि जो कामदेव का अंकुर मुझ मे अंकुरित था वह विकसित हो गया। आशय यह है कि मुझ अक्षत-बाला मे जो काम पिपासा थी वह कृष्ण ने मुझे क्षत करके तृप्ति कर दी। उन्होने पहले मेरा आँचल छूआ और फिर उसे उघारकर मेरे स्तनो को पिपासाकुल दृष्टि से निहारा। ऐसा लगा कि वह मेरे स्तनो पर इस प्रकार लालायित हो गये मानो जन्म के लगडे को सोने का पर्वत प्राप्त हो गया हो। जब श्री कृष्ण ने मेरा निबि-बंध खोलकर खिसकाया तो हे सखी! तेरी शपथ खाकर कहती हूँ कि यदि मैंने कुछ भी जाना हो कि तत्पश्चात उन्होने क्या किया? परन्तु रति-चिह्नो से तत्पश्चात

मुझे यह मालूम हुआ कि कन्हैया कितने कठोर है। आशय यह है कि सम्भोग-क्रीडा के समय राधा सुख और लज्जा की मदिरा मे ऐसी डूबी कि उसे होश भी न रहा—कि उस पर क्या बीती है ? किंतु बाद मे जब नशा उड गया तब आलिंगन, चुम्बन और कुच-मर्दन के चिह्न पीडा देने लगे। राधा कहती है कि इतना ही बहुत है कि हे सखी ! मै अबला नारी तुम्हारे ही पुण्य से तुम्हारे पास जीवित आ सकी। शृंगारी कवि विद्यापति कहते है कि राधा तो स्वय ही मधु-रूपिनि है फिर यह कहना ठीक नही कि उस चन्द्रमुखि की चतुराई विशुद्ध हो गई। आशय यह है कि राधा तो स्वय एक मदिरा है—रूप की मदिरा, जिसमे होश ढूंढना वृथा है।

विशेष—रति-शृंगार की दृष्टि से प्रस्तुत पद अपने भाव-प्रकाशन मे बडा अनूठा बन पडा है। कालिदास ने मैथुन आहत प्राणी को चेतन-अचेतन अवस्था से परे माना है और विद्यापति राधा की भोली वाणी मे कितनी मधुरता से गा उठे है—

"जब निबि-बध खसाओल कान।
तोहर सपथ हम किछु जदि जान।"

गीति-काव्य की अनिवार्य विशेषता के अनुरूप प्रस्तुत पद मे भावोन्मेष उत्तरोत्तर बढता गया है उसकी (unity) शृंगार-रस-सौष्ठव का ज्वार लाती गई है। प्रणय की अवस्था मे, जिसका सुख ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है, कोई विचार कामयाब नही होता वरन् लोप रहता है, डूबा हुआ जैसे मदिरा के नशे मे प्याला—या प्याले के आलिगन मे मदिरा।

"कि कहब हे सखि आजु क बिचार।"

आरम्भिक पक्ति से लेकर—

"न कह सुधामुखि गेल चतुराई।"

अन्तिम पक्ति तक प्रणय की मदिर बदली छाती गई, जिसके तले यशस्वी कवि बच्चन की यह पक्ति अनायास गूंजती-सी प्रतीत होती है—

"सखी अखिल प्रकृति की प्यास
की हम तुम भींगे।"

आँचल खिसकाकर गोल-लोल उरोजो को भला कौन न देखेगा, देखकर रस-याचक न बनेगा और याचना की उस विवशता मे क्या वह जन्म-पगु अर्थात जन्म का लगडा-सा न दीख पडेगा ? किंतु फिर भी उसे उसे लगेगा कि वह वे स्तन नही देख रहा सुमेरु अर्थात् स्वर्ण-पर्वत का अधिपति बना जा रहा है। इन दो पक्तियो मे इतने कलात्मक भाव का बँधान बाँधा गया है।

"आँचर परसि पयोधर हेरु।
जन्म पगु जनि भेटल सुमेरु।"

मनोवैज्ञानिक-भावोन्मेष की दृष्टि से पद की प्रत्येक पंक्ति रसीली है, कम शब्दो-पदो मे ऊँची रसमय-अभिव्यजना करना विद्यापति का लक्ष्य रहा है ; यह पद इसी बात का प्रतीक है।

शब्दार्थ—क=का। से=वह। सुपुरुष=सुन्दर पुरुष, श्री कृष्ण। मोहे=मेरा। कएल=किया। पहु=प्रियतम, कृष्ण। मनमथ=कामदेव। परसि=छूकर। पयोधर=कुच, स्तन। हेरु=देखे। जन्म पगु=जन्म का लगडा। जनि=मानो। भेटल=मिला। सुमेरु=स्वर्ण पर्वत। निबि-वध=कोचा। खसाग्राल=खोला। कान=कृष्ण। तोहर=तेरी। किछु=कुछ। जदि=यदि। जानल=जाना। कठिन=कठोर। तोहर=तेरे। पुने=पुण्य मे। हम नारि=आशय है हम अबला नारि। सहज मधुराई=आशय है राधा तो स्वभावत मधु जैसी है। सुधामुखि=चन्द्रमुखि।

(६६)

दृढ परिरम्भन पीडलि मदने।
उबरि अएलहुँ सखि पूरब पुने।
टुटि छिडिआएल मोतिम हार।
सिंदुर लोटाएल मुरग पंवार।
सुन्दर कुच जुग नख-खत भरी।
जनि गज-कुभ बिदारल हरी।
अधर दसन देखि जिउ मोरा काँपे।
चाँद-मडल जनि राहु क झाँपे।
समुद ऐसन निसि न पारिए ऊर।
कखन उगत मोर हित भए सूर।
मोयँ न जाएब सखि तन्हि पिया-ठाम।
बरु जिब मारि नडाबथि काम।
भनई बिद्यापति तेज भय लाज।
आग जारिये पुनु आगि क काज।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—राधा कह रही है कि हे सखी ! श्री कृष्ण के साथ उनके दृढ सम्भोगालिंगन से मैं तो परिपीडित हो गई हूँ। लगता है कि पूर्व जन्म के पुण्य से ही मै उनसे मुक्त होकर आई हूँ। मोतियो का हार टूटकर बिखड गया। लाल मूंगे जैसा मेरा सिन्दूर भी पुंछ गया, मेरे सुन्दर दोनो कुच नाखूनो के घाव से भर गये। ऐसे जैसे सिंह ने हाथी का मण्डस्थल चीर-फाड दिया हो। उनके दाँतो ने जब मेरे अधरो को काटा तो भय से मेरा प्राण उसी तरह क गया जैसे राहु के आक्रमण से चन्द्रमण्डल कम्पित हो उठता है। काम-

सकट की वह रात अपार सागर की भाँति अन्तहीन हो उठी। आशय यह है कि संकट की परिधि इतनी बढ गई थी जैसे विराट् सागर मे सोच रही थी कि हाय मेरे लिए कब सूर्य मेरा हितैषी बनकर उदित होगा ? हे सखी ! अब मैं उस निठुर प्रियतम के स्थान पर नही जाऊँगी चाहे कामदेव मुझे प्राणहीन ही करके क्यो न छोड दे ! कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे कामिनी राधे ! तुम्हे इस प्रकार का काम-क्रीडा सम्बन्धी भय और लज्जा का भाव त्याग देना चाहिये, क्योकि आग से जल जाने पर भी शरीर को उसके उपचार के लिए आग की तपन ही दरकार होती है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कई पक्तियो मे कविवर विद्यापति ने पूर्व की कई उक्तियाँ दोहराई है, जैसे—

"सुन्दर कुच जुग नख-खत भरी।
जनि गज-कुभ बिदारल हरी।"

अथवा—

"आग जारिये पुनु आगि क काज।"

ऐसी मिलती-जुलती पक्तियाँ पहले पदो मे प्रयुक्त हो चुकी है। परन्तु प्रस्तुत पद मे ये दो पक्तियाँ भावना की गहनता और कल्पना की विराटता मे सर्वथा मौलिक कही जायेगी—

"समुद ऐसन निसि न पारिए ऊर।
कखन उगत मोर हित भए सूर।"

नवेली नायिका के लिए उद्दण्ड पति के साथ सम्भोग की रात जितनी कटु अनुभव हो सकती है उसकी अभिव्यजना असीम अपार सागर की उपमा देकर व्यक्त की गई है और फिर ऐसे समय मे प्रात कालीन सूर्योदय की उत्कण्ठा नायिका के लिए बलवती हो जाती है तभी वह "हित भय सूर।" कहती है। वास्तव मे उसके लिए ही सूर्य मित्र या हितैषी सच्चे अर्थो मे हो सकता है। सात्विक और कायिक रति-चेष्टानुभावो का चित्र इस पक्ति मे बडा मोहक है—

"अधर दसन देखि जिउ मोरा काँपे।"

"जनि" शब्द के प्रयोग से उत्प्रेक्षा अलकार का अत्यत भाववर्द्धक प्रयोग किया गया है। जैसे—

"जनि गज-कुभ बिदारल हरी।"

अथवा—

"चाँद-मडल जनि राहु क झाँपे।"

"भय" सचारी भाव की व्यजना मे यह पक्ति बडी उत्कृष्ट बन पडी है

"मोयँ न जाएब सखि तन्हि पिया-ठाम।"

शब्दार्थ—दृढ परिरम्भन=गाढि आलिगन । पीडलि मदने=कामदेव से पीडित । उबरि=मुक्त होकर । अएलहुँ=आई हूँ । पुरब पुने=पूर्व जन्म के पुण्य से । छिडिआएल=बिखर गया । मोतिम=मोतियो का । सुरग=लाल । पँवार=प्रवाल, मूँगा । कुच जुग=दोनो कुच । गज-कुभ=हाथी का मस्तक । बिदारल=चीर-फाड देना । हरी=सिह । दसन=दाँत । जिउ=प्राण । जनि=मानो । राहु क झाँपे=राहु ने हमला किया । समुद ऐसन=समुद्र के समान । निसि=रात । न पारए ऊर=अन्त नही हो रहा है । ऊर=अन्त । कखन=कब । मोर हित=मेरा हितैषी । सूर=सूर्य । पिया-ठाम=प्रियतम का सम्भोग स्थान । बरु=भले ही । जिब मारि=प्राणो को मिटा दे । नडाबथि=छोड दे । तेजु=त्याग दे । आगि क काज=आग की आवश्यकता या आग का उपचार ।

(९७)

कि कहब हे सखि रातु क बात ।
मानिक पडल कुबानिक हात ।
काँच कचन न जानए मूल ।
गुंजा रतन करए समतूल ।
जो किछु कभु नहि कला रस जान ।
नीर खीर दुहू करए समान ।
तन्हि सौं कहाँ पिरित रसाल ।
बानर-कंठ कि मोतिम माल ।
भनइ बिद्यापति इह रस जान ।
बानर-मुँह की सोभए पान ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति पूर्व पद के प्रसगक्रम मे लिखते है—

राधा कह रही है कि हे सखी ! मै कल रात की बात तुझे क्या कहूँ ? अरी, मूर्ख व्यापारी के हाथ मे ज्यो माणिक-रत्न पड जाता है, इसी प्रकार मैं भी ढीठ श्री कृष्ण के चगुल मे पड गई थी । आशय यह है कि श्री कृष्ण ने कल रात मेरे साथ अत्यन्त बरजोरी से काम-व्यापार चलाया । वह तो इतना अयोग्य था कि स्वर्ण और काँच का मूल्य भी समझने मे असमर्थ था । रत्न और गुंजा या घुँघची को समान कर रहा था । आशय यह है कि श्री कृष्ण उचित काम-क्रिया से अनभिज्ञ मुझसे कठोरतापूर्वक रमण कर रहा था । राधा कहती है कि हे सखी ! जिसने कभी काम-कला-रस नही जाना वह भला कैसे उचित काम-विहार करता ? उसने तो जैसे दूध और पानी को समतुल्य ही समझ लिया अथवा दूध और पानी का मोल समान कर

दिया। ऐसी स्थिति मे उससे रसमय प्रीति कैसे होती। कही बन्दर के गले मे मोतियो की माल शोभित रह सकती है? कविवर विद्यापति कहते हैं कि शृगार के इस रस को तो सभी जानते है और यह भी कि बन्दर के मुख मे पान शोभा नही देता। आशय यह है कि रति-रहस्य को प्राय सभी जानते है, किंतु जो नही जानता उसकी दशा वैसी ही है जैसी बन्दर के मुख पर पान की—महत्त्वहीन। दूसरा अभिधार्थ यह भी हो सकता है कि कविवर विद्यापति इस शृगार-रस को जानकर कहते है कि क्या बन्दर के मुँह मे पान शोभा देता है?

विशेष—अनाडी नायक की कामोद्दण्डता का विद्यापति ने अनेक सुन्दर उदाहरण द्वारा प्रकाशन किया है, जिससे काव्य-चमत्कार मे वृद्धि हुई है, जैसे—

"मानिक पडल कुबानिक हाथ।"

अथवा—

"बानर-कठ कि मोतिम माल।"

पद मे रस-सचार न्यून होते हुए भी उक्ति-चमत्कार प्रधान रहा है। व्यगोक्ति बडी सफल बन पडी है। मदनाक्राता रमणी की चातुर्य-भरी बाते यथेष्ट मनोरजक लगती हैं। सम्पूर्ण पद मे सम्भोग-शृगार का चित्रण प्रधान है।

शब्दार्थ—कि कहब=क्या कहूँ। रातु क=रात की। मानिक=माणिक्य। कुबानिक=मूर्ख व्यापारी। हात=हाथ। काँच=शीशा। कचन=स्वर्ण। मूल=मुल्य। गुँजा=एक प्रकार का लाल बीज या दाना। समतूल=समतुल्य। कभु=कभी। कला=काम-कला। खीर=दूध। दुहू=दोनो। तन्हि सौ=उससे। पिरित=प्रीति। रसाल=रसमय। मोतिम माल=मोतियो की माला। इह=यह।

(६८)

पहिलकु परिचय पेम क सचय
रजनी आध समाजे।
सफल कला-रस सँभरि न भेले
बैरिन भेलि मोरि लाजे।
साए साए अनुसय रहलि बहुते।
तन्हिहि सुबन्धु के कहिए पठाइअ
जौं भमरा होअ दूते।
खनहि चीर धर खनहि चिकुर गह
करए चाह कुच भगे।
एकलि नारि हम कत अनुरंजब
एकहि बेरि सब संगे।

तखन बिनय जत से सब कहब कत
कहए चाहल कर जोली।
नब रस-रग भग भए गेल सखि
ओर धरि भेल न बोली।
भनइ बिद्यापति सुनु बरजौबति
पहु अभिमत अभिमाने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ बिरमाने।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविबर विद्यापति लिखते है—

राधा सखी से अंतत फिर कह रही है कि हे सखी ! मेरी और श्री कृष्ण की यह पहली-पहली जान-पहचान थी और इसी मे प्रेम-रस का एकत्रीकरण करते-करते अर्ध-रात्रि बीत गई। रति-विलास का सम्पूर्ण रस प्राप्त हुआ और मेरी ही स्वय मेरी बैरिन बनकर उसमे अवरोध डालती रही। हे सखी ! इसी बात का अनुताप बहुत रह गया। यदि कृष्ण का सुबन्धु भँवरा मेरी विरह-वेदना का दूत बनकर जा सके तो उसे बुला भेजो। कृष्ण तो बडे रस-लोलुप हो रहे थे। अत क्षण मे साडी खीचते थे, क्षण मे अलका को पकडकर खीचते थे और फिर अपने नखो से मेरे स्तनो को क्षत किया चाहते थे। भला मै अकेली अबला नारी एक ही बार एक ही साथ किस भाँति इस विलास-क्रिया को, प्रेम-व्यापार को सम्पन्न करती—मै असमर्थ थी। उस क्षण हाथ जोरकर उन्होने जो कुछ भी प्रार्थनाएँ की उन सबको मै कैसे कह सुनाऊँ ? हे सखी ! इसी क्रम मे विलास का नव-रस-रग ही भग हो गया और अन्त तक कोई वाणी मुखरित न हो सकी। आशय यह है कि व्यर्थ मे देखते, छूते और स्पर्श करते ही निशा व्यतीत हो गई, किंतु मन की पिपासा शात न हो सकी। कविवर विद्यापति कहते है कि हे सुन्दर रमणी राधे सुनो ! प्रियतम श्री कृष्ण के साथ जैसा तुमने प्रणयमान किया वह युक्ति-युक्त ही है। लखिमादेवी के पति राजा शिवसिह इस रस-रहस्य को जानते हैं और यो अपनी प्रिय रानी पर प्रणय मे आसक्त रहते है।

विशेष—सम्भोग की रात कामी जनो के लिए अत्यन्त पिपासामय होती है, अनेकानेक रसमय अरमान नायक-नायिका के हृदयो मे दीपक की लौ की भाँति झिलमिलाते है। नायिका लज्जावश प्रणय-व्यापार मे आनाकानी करती है। नायक उसे अनेक चेष्टाओ से तदर्थ प्रेरित करता है। सम्पूर्ण पद मे कविवर विद्यापति ने इसी प्रकार के प्रणय-व्यापार को बडी सरलता, स्वाभाविकता किन्तु यथार्थता से पदबद्ध किया है—

"खनहि चीर धर खनहि चिकुर गह
करए चाह कुच भंगे।

एकलि नारि हम कत अनुरजब
एकहि बेरि सब संगे।"

इन पक्तियो मे पौरुष और नारी की लज्जा का चिरन्तन मधुर विलास अभिव्यजित है। श्री मद्‌भागवत् के भ्रमर-गीत प्रसग को यद्यपि सूरदास ने सर्वप्रथम काव्य मे प्रौढता से व्यक्त किया है किन्तु यहाँ कविवर विद्यापति ने उसका मधुर आभास करा दिया है—

"तन्हिहि सुबन्धु के कहिए पठाइअ
जौं भमरा होअ दूते।"

प्रथम समागम के अवसर पर मदनाक्रान्त व्यक्तियो की दशा जिस भाँति की होती है, प्रस्तुत पद की पक्ति मे उसी की व्यजना प्रधान है। आचार्य वात्सायन की प्रस्तुत पक्तियो मे इस तथ्य की ओर बडा मनोवैज्ञानिक प्रकाश डाला गया है, देखिये—

"प्रथमरते चण्डवेगता शीघ्रकालता च पुरुषस्य तद्विपरीतमुत्तरेषु, योषितः पुनरेत देव विपरीत माथातुक्षयात् प्रायोवाव.।"

बीतती हुई प्रणय-निशा को देखकर नायक के हृदय मे जो उद्विग्नता होती है और नायिका के हृदय मे जो पश्चाताप घर करता है उसका सफल अभिव्यजन सम्पूर्ण पद मे अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढग से हो सका है। इसके लिए लेखक की इस कविता में कुछ साम्यता देखना-समझना उपयुक्त होगा—

"यो न देखती रहो कि रात बीत जायगी।
रुक रही है घास जोकि
ओस के दबाव मे,
झुक रही है जो पलक
कि रेशमी नक़ाब मे,
चाँदनी निखर निखर
कह रही बिखर-बिखर
बावली नजर उठा,
काकुलें जरा हटा,
ये हसीन चाँद की बरात बीत जायगी।
जल रहा है पास में
प्रदीप जो कि झिलमिला,
और लौ मचल रही है
शीश जो हिला हिला,

आरजू मचल मचल
कह रही सँभल सँभल,
प्यार बेक़रार है
ज्वार फिर उतार है
मुंह न देखती रहो कि बात बीत जायगी।
बयार चल रही विमुग्ध
अक भर पलाश को,
नींद भी मचल रही है
स्वप्न बाहु पाश को,
मदभरी नज़र नज़र
कह रही सिहर सिहर,
मानिनि नज़र मिला
हाथ से ज़रा पिला,
एक घूंट प्यास की बिसात बीत जायगी।

(आग और आकर्षण कृति से)

शब्दार्थ—पहिलुक=पहली-पहली बार का। सचय=एकत्रिकरण। साए साए=सखी। अनुसए=अनुताप। रहलि=रह गया। बहुते=बहुत। तन्हिहि=उन्हे, कृष्ण को। पठाइअ=भेजो। जौ=जिस प्रकार। खनहि चीर=साडी। एकलि=अकेली। अनुरजब=प्रीत निर्वाह। बेरि=बार। कर जोरि=हाथ जोड कर। भग=टूटना। गेल=गया। पहु=प्रियतम। अभिमत=युक्ति-युक्त। अभिमाने=प्रणयमान। बिरमाने=प्रणय-व्यापार मे लीन रहते है।

कौतुक

(६६)

उठ उठ माधब कि सुतसि मद ।
गहन लाग देखु पुनिम क चद ।
हार रोमाबलि जमुना-गगा ।
त्रिबलि त्रिबेनि बिप्र-अनग ।
सिदुर तिलक तरनि सम भास ।
धूसर मुख-ससि नही परगास ।
एहन समय पूजह पँचबान ।
होअ उगरास देह रति दान ।
पिक मधुकर पुर कहइत बोल ।
अलपओ अबसर दान अतोल ।
बिद्यापति कबि एहो रस भान ।
राए सिबसिंध सब रस क निधान ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद-प्रसगक्रम मे चतुर सखियाँ राधा-कृष्ण से रति-विलास की बडी चचल चतुर चर्चाएँ करती है, जिमसे श्रगार-रस की परिवृद्धि होती है, रसिक-गण उसमे निमग्न होते है। कविवर विद्यापति इस पद मे लिखते है—

सखि कह रही है कि हे माधव! अरे उठो भी, इस समय क्या सोये पडे हो? यह समय सोने का नही, वह देखो, पूर्णिमा के चन्द्रमा को ग्रहण लग गया है। नायिका अर्थात् राधिका के ग्रीवा की माला गगा के समान आभासित हो रही है, रोमावलि यमुना-सी और उसके पेट पर पडी तीन रेखाओ की त्रिबलि त्रिवेणी-सी और इन सब से विशिष्ट कामदेव जैसे ब्राह्मण प्रतीत हो रहा है। राधा के सिन्दूर का तिलक सूर्य सदृश भासमान है एव उसका चन्द्र-मुख धूसरित-सा है, जिसमे कोई प्रकाश नही है। इस समय कामदेव की पूजा करो और ग्रहण का अन्त हो जाने पर रति का दान दो। कोयल और भ्रमर सारे नगर मे यह कहते फिर रहे है कि इस अवसर पर थोडा दान-प्रदान करने से भी उसका अपार महात्म्य होगा। कविवर विद्यापति कहते हैं कि इस रस के विषय मे रस के आगर राजा शिवसिंह भली-भाँति जानते हैं।

विशेष—नायिका की काम-युक्त आकृति का इन पक्तियो मे सजीव चित्र अकित है—

"उठ-उठ· · · · · से · · ·· ···बिप्र-अनंग ।"

नायिका की काम मूर्च्छिता स्थिति का साम्य चन्द्र-ग्रहण से बडा उपयुक्त बिठलाया गया है। भ्रमर और कोयल को उस ग्रहण के वातावरण मे याचक-गण कहा गया है, जो विद्यापति की मौलिक उद्भावना कही जायेगी। सामान्य ग्रहण के लिए चाहे अन्न-दान भारतीय लोगो मे ही मान्य हो किन्तु मुग्धा नायिका के लिए रति का दान तो सार्वदेशिक एव सार्वकालिक रसिक पुरुषो के लिए अनवार्य कहा जायगा। अत यह 'रति-दान' की कल्पना बडी व्यापक सूझ का रस-वर्षण करती है। 'बिप्र-अनग' एव 'मुख-ससि' के द्वारा पद मे रूपक अलकार की छटा भी अपूर्व दर्शित होती है।

शब्दार्थ—सुतसि=सोये हो। मद=जो ठीक न हो। त्रिबलि=रमणी के पेट पर पडी तीन रेखाएं। त्रिबेनी=त्रिवेणी। बिप्र-अनग=कामदेव रूपी ब्राह्मण। तरनि=सूर्य। भास=प्रकाशवान। धूसर=धूल मे सना। परगास=प्रकाश। एहन समय=इस समय। पूजह=पूजा करो। पँचबान=कामदेव। रति-दान=रति-क्रीडा का दान। पिक=कोयल। मधुकर=भौरा। पुर=नगर। अलपओ=थोडा ही। अवसर=मौका। अतोल=अपार। निधान=आगर। एहो=इस।

(१००)

त्रिबलि तरगिनि पुर दुग्गम जानि
मनमथ पत्र पठाऊ।
जोबन-दलपति तोहि समर लागि
ऋतुपति दूत बढाऊ।
माधब, अब देखु साजिए बाला।
तसु सैसब तोहे जे सतापल
से सब आओत पाला।
कुंडल चक्क तिलक अकुस कए
चदन कबच अभिरामा।
नयन कमान कठाख बान दए
साजि रहल अछि बामा।
सुन्दरि साजि खेत चलि आइलि
बिद्यापति कबि भाने।
राजा सिबसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ परमाने।

भावार्थ—पूर्व पद के विषयक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

पेट की त्रिबलि रूपी सरिता के किनारे पर अवस्थित नगर को जीतने मे कठिन समझकर कामदेव रूपि राजा ने युद्ध-पत्र भेजा है। यौवन रूपी सेनापति को युद्ध के लिए रवाना किया है और ऋतुपति रूपी दूत को अग्रसर किया है। सखी कहती है कि हे माधव ! देखो, अब रमणी सजी हुई है। आशय यह है कि अब राधा नादान बाला नही रही, सुन्दर त्रिबलिधारी सम्भोग-युद्ध करने मे निपुण रमणी हो चुकी है और उसी के साथ श्री कृष्ण को काम-युद्ध करना है। सखी कहती है कि हे कृष्ण ! उसके शैशव-काल मे तुमने उसको जो पीडा दी है वही पीडा आज तुम्हारे विरुद्ध युद्धार्थ खडी होगी। व्यजना यह है कि राधा के साथ शैशव-काल से जो कृष्ण ने जो सहज प्रणय-व्यापार किये, वही राधा के तरुणी बन जाने पर अब काम-क्रीडा का सघर्ष जगा रहे हैं, जिनके साथ, जिनसे जूझकर कृष्ण को राधा से रति-क्रिया करनी होगी तभी उसे शाति मिलेगी। सखी कहती है कि हे माधव ! इस काम-युद्ध मे राधा के कुण्डल, चक्र होगे, उसके माथे का तिलक अकुश होगा और शरीर पर लगा हुआ सुन्दर चन्दन का लेप कवच होगा। इसी प्रकार उसके आयत नयन कमान होगे, उस पर चढे हुए कटाक्ष बाण होगे। इस प्रकार युद्ध के उपकरणो से भली-भाँति सज्जित होकर सुन्दरी राधा समर करने के लिए युद्धस्थल मे आ गई है। आशय यह है कि पूर्णत श्रगार-सज्जित होकर राधा श्री कृष्ण के साथ सभोगस्थल पर आकर डट रही है। कविवर विद्यापति कहते है कि इस काम-युद्ध के पूर्णत साक्षी राजा शिवसिह और लखिमादेवी है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति ने काम-मुग्धा नायिका का चित्रण किया है जो रीति-परम्परा का द्योतक है। इस प्रकार का वर्णन रीति-परम्परा मे लिखने वाले कवियो ने खूब किया है। कविवर जायसी ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'पद्मावत' मे इस प्रकार का चित्रण किया है। नायिका के कुछ उपकरणो का कौतूहलमय चित्रण इन पक्तियो मे दर्शनीय है—

> **कु डल चक्क तिलक अकुस कए**
> **चन्दन कबच अभिरामा।**
> **नयन कमान कठाख बान दए**
> **साजि रहल अछि बामा।"**

काम-युद्ध की रूपरेखा खीचने मे विद्यापति ने "त्रिबलि तरगिनि पुर दुग्गम जानि, मनमथ पत्र पठाऊ।" पक्ति बडी प्रभावशाली लिखी है। साथ ही 'जोबन-दलपति' एव 'ऋतुपति दूत' मे रूपक अलकार बडा सार्थक एव सामर्थ्यवान बन पडा है। यद्यपि रस की अवतारणा गौण रही है। 'समर' शब्द मे कामदेव एव युद्ध का अर्थ श्लेष समुचित बन पडा है। कुल मिलाकर पद मे ऊहात्मकता एव कलाप्रियता का ही आग्रह है, विद्यापति की काव्य सरसता यहाँ गौण रह गई है।

शब्दार्थ—तरगिनि=सरिता । मनमथ पत्र=कामदेव का पत्र । पठाऊ= भेजा । जोबन-दलपति=यौवन रूपी सेनापति । तोहि=तुमसे । समर लागि=युद्ध के लिए, आशय है रति-क्रिया के लिए । ऋतुपति दूत=वसन्त रूपी दूत । सतापल= सताप दिया । से सब=वह माग । आओत पाला=पाले पडेगा, विरुद्ध लडेगा । चक्क=युद्ध का चक्र । चन्दन कवच=शरीर पर प्रलेपित चन्दन रूपी कवच । अभि- रामा=सुन्दर । कटाख बान=कटाक्ष रूपी बाण । खेत चलि आइलि=काम-युद्ध- स्थल मे आ गई । परमाने=प्रमाण, साक्षी ।

(१०१)

अम्बर बदन झपाबह गोरी ।
राज सुनइ छिअ चाँद क चोरी ।
घर घर पहरि गेल अछि जोहि ।
अबहि दूखन लागत तोहि ।
कतए नुकाएत चाँद क चोर ।
जतहि नुकाएत ततहि उजोर ।
हास-सुधारस न कर उजोर ।
बनिक-धनिक धन बोलब मोर ।
अधर क सीम सदन कर जोति ।
सिदूर क सीम बैसाओलि मोति ।
भनइ बिद्यापति होह निरसक ।
चाँदहु काँ थिक भेद कलक ।

भावार्थ—पूर्व पद-प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

एक सखी राधा से कह रही है कि हे गोरी राधे, अपना मुखडा आँचल से छिपा लो, ढँक लो । यह सुन रही हूँ कि इस राज्य मे चाँद की भी चोरी हो गई है । घर-घर मे पहरेदार घूम रहा है और अभी तुम्हारे ऊपर इसका अपराध कि तुमने चाँद चुराया है, लगा दिया जायगा । आशय यह है कि सखी यह कहना चाहती है कि राधा का मुखमडल चन्द्रमा-सा सुन्दर आभासित हो रहा है । सखी कह रही है कि हे राधे, भला चन्द्रमा की चोरी कहाँ छिप सकेगी । जहाँ भी उसे छिपाओगी वही पर प्रकाश प्रकट होगा । अर्थात् हे राधे, तुम अपने चन्द्रमा-से मुख का सौन्दर्य कहाँ तक छिपाकर रखोगी, वह तो निश्चित ही लोगो को व्यक्त होगा । अपने चन्द्रमुख से हँसकर सुशीतल अमृत-रस न छलकाओ, विभा न बिखेरो । क्योकि रूप-सौन्दर्य-रस-पिपासु रसिक किंवा धनी व्यापारी तुम्हारे हँसने के कारण, ओष्ठो के समीप तुम्हारी चमचमाती हुई दन्तावली की झलक को हीरे के कण एव सिदूर-चिह्न को मोती समझकर झूठ-मूठ ही कहेगे कि यह तो हमारी ही सम्पदा है । कविवर विद्यापति कहते है कि हे

महान् सुन्दरी राधे, इस लोकापवाद एव मिथ्यात्व से नि शक एव मुक्त हो जाओ क्योकि तुम्हारे हक मे यह उचित नही, कारण यह है कि तुम्हारे मुख एव चन्द्रमा मे बडा अन्तर यह है कि चन्द्रमा तो सकलक है एव तुम्हारा मुख निष्कलक ।

विशेष—मुख का उपमान चन्द्रमा सर्वज्ञात है किन्तु राज्य मे उसके चोरी चले जाने की परिकल्पना उतनी ही अविज्ञात कही जायगी, और इस अविज्ञात तत्त्व का प्रकाशन कविवर विद्यापति ने कितने मनमोहक एव चमत्कारमय रूप मे किया है—

"अम्बर बदन झपावह गोरी ।
राज सुनइ छिअ चाँद का चोरी ।"

कितनी नवीन कल्पना है ! समस्त पद मे चन्द्रमा के माध्यम से नायिका के व्यापक मुख-सौन्दर्य का उत्तरोत्तर विकास व्यक्त किया गया है और अन्त मे नायिका के मुख को ही चन्द्रमा की तुलना मे अधिक सुन्दर बडे चातुर्य से दर्साया गया है—

"चाँदहु काँ थिक भेद कलक ।"

"निरसक" शब्द का प्रयोग बडा अर्थपूर्ण बन सका है, मानो नायिका के सम्पूर्ण भय एव रसिको के सन्देह को इस शब्द द्वारा विद्यापति ने निवारण कर दिया है । पद मे गीति-अभिव्यजना तो प्रबल है किन्तु विशुद्ध रस का परिपाक प्रधान न होकर वर्णन-कौशल (Style of Expression) की आड मे आ गया है । कलात्मक दृष्टि से पद रोचक है ।

शब्दार्थ—अम्बर=अचल, आकाश । बदन=मुखमडल । गोरी=सुन्दरी । राज=राज्य । छिअ=है । क=की । पहरि=पहरेदार । जोहि=खोजते है । दूखन=दोष, अपराध । लागत=लगेगा । तोहि=तुझे । कतए=कहाँ । नुकाएत=छिपेगी । जतहि=जहाँ भी । ततहि=वही । उजोर=प्रकाश, चन्द्रमा की विभा । हास-सुधारस=हास का अमृत । वनि[illegible]-धनिक=धनी व्यापारी । बोलब=कहेगे । मोर=मेरा । अधर क सीम=अधर की सीमा मे, उनके निकट एव भीतर । सदन (दसन)=दाँत । जोति=हारकरण का प्रकाश से आशय है । बैसाओलि=बिठलाया है । निँरसक=नि शक, अभय । काँ=मे । थिक है । भेद=अन्तर ।

(१०२)

लोलुअ बदन-सिरी अछि धनि तोरि ।
जनु लागिह तोहि चाँद क चोरि ।
दरसि हलह, जनु हेरह काहु ।
चाँद भरम मुख गरसत राहु ।
धवल नयन तोर जनि तरुआर ।
तीख तरल तेहि कटाख क धार ।

निरखि निहारि फास गुन ओलि।
बाँधि हलब तोहि खंजन बोलि।
सागर-सार चोराओल चद।
ता लागि राहु करए बड दद।
भनइ बिद्यापति होउ निरसक।
चाँदहु को किछ लागु कलक।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

हे सुन्दरी राधे, तुम्हारी मुख-छबि चाचल्यमयी एव उत्तम है अत तुम्हे चन्द्रमा की चोरी का दोष (जैसा कि पूर्व पद मे व्यजित है) नही लगेगा। किंतु तदपि किसी की ओर गूढ भाव से न देखो। बस, चन्द्रग्रहण को देखकर झट से हट जाओ अन्यथा चन्द्रमा के धोखे मे तुम्हारे चन्द्रमुख को ही राहु ग्रस लेगा। तुम्हारी आँखो की चितवन तलवार की भाँति चमचमाती हुई है और उसकी कटाक्ष रूपी धार भी अत्यत पैनी है, अत जो भी तुम्हे अकेलेपन मे ऐसी आँखो और उनकी चितवनो से भली प्रकार निहारता देख लेगा वही तुम्हारी आँखो को (आशय है तुम्हे ही) खजन पक्षी समझ कर अपने गुण अथवा चातुर्य रूपी फदे (फास) मे फँसा, बाँधकर ले जायगा। देखो, चन्द्रमा ने भी सागर-तत्त्व अर्थात् अमृत चुराया, इसी कारण राहु का सघर्ष चन्द्रमा से बराबर चल रहा है। आशय यह है कि तुम्हारा भी मुखडा चन्द्रमा की भाँति ही नही, उससे सुन्दर ही है जो दूसरो के सागर से गहरे दिल का प्रणयामृत चुरा लेता है अत राहु की भाँति इस ससार की क्रूर दृष्टि तुम पर लगी हुई है, उससे बचो। आशय यह हे कि तुम्हारे पास प्रणय मद अपार है, उसके लोभी तुम्हारे पीछे लग गए है। कविवर विद्यापति कहते हे कि फिर भी तुम सशयरहित रहो क्योकि क्या चन्द्रमा का कलक तुम्हे लग सकता है? कभी नही। व्यजना यह है कि राधा से प्रणयाकर्षण परब्रह्म रूप कृष्ण का है अत वह चिरपावन रहेगी।

विशेष—पूर्व पद की भाँति यहाँ भी विद्यापति ने चन्द्रमा का आधार लेकर राधा के सुन्दर मुखमण्डल की शोभा का उत्कर्ष व्यक्त किया है—

"दरसि हलह, जनि हेरह काहु।
चाँद भरम मुख गरसत राहु।"

चन्द्रमा के अमृत चुराने वाला प्रसग विद्यापति ने पौराणिक ढग पर प्रस्तुत किया है किंतु उसके भीतर से उनकी व्यजना काम-शास्त्र के अनुकूल वडी सरसता से व्यक्त हुई है। चन्द्रमा मे काम-मद का रस-स्रोत फूटता है और वह रसिको के सागर तुल्य हृदय मे ज्वार ला देता है—सम्भवत इसीलिये विद्यापति को सदेह है कि अन्य रसिक लोग राधा पर काम-दृष्टि गढाये है उनसे उसे बचना चाहिये।

"सागर-सार चोराओल चंद।
ता लागि राहु करए बड दद।"

उक्त पंक्तियो मे प्रणयाकर्षण का दमक बडे कलात्मक ढग पर व्यक्त किया गया है। अतत राधा को लोक काम-दृष्टि से मुक्त नि सशय किया गया है—

"भनइ विद्यापति होउ निरसक।
चाँदहु की किछ लागु कलक।"

भला जिस चन्द्रमुखी को परब्रह्म कृष्ण का प्रणयाकर्षण प्राप्त है उस पर लोक कलक क्यो लगेगा। 'धवल नयन' उक्ति मे सुन्दरी की सुन्दरतम आँखो की आकृति, उसका अटल आकर्षण सिद्ध होता है और फिर उत्प्रेक्षा है "जनि तलवार" की जो स्वर्ण में सुहागे का काम करती है। सम्पूर्ण पद मे भाव-सौन्दर्य भी कला-सौन्दर्य के साथ समान रूप मे चला है।

शब्दार्थ—लोलुअ=चचल, श्रेष्ठ। बदन-सिरी=मुख-छवि। जनु=नही। लागिह=लगेगी। दरसि हलह=देखकर झट से हट जाओ। हेरह काहु=किसी को मत देखो। भरम=धोखा। धवल नयन=उजली आँखे। तोर=तेरे, राधा के। जनि=जैसे। तरुआर=तलवार। तीख=पैने। तरल=चमचमाते हुए। तेहि=तेरे। कटाख=कटाक्ष। क=का। निरबि=अकेली। फास=फदा। जोलि=जोड कर, फँसा कर। सागर-सार=सागर-तत्त्व, अमृत। ता लागि=उसके लिये। बड=बडा। दद=सघर्ष। निरसक=नि सशय। की=क्या।

(१०३)

साँझ क बेरि उगल नब ससधर
भरम बिदित सबिताहु।
कुंडल चक्र तरास नुकाएल
दूर भेल हेरथि राहु।
जनु बइससि रे बदन हाथ लाई।
तुअ मुख चगिम अधिक चपल भेल
कति खन धरब नुकाई।
रक्तोपल जनि कमल बइसाओल
नील नलिनि दल तहु।
तिलक कुसुम तहु माझु देखि कहु
भमर आबथि लहु लहु।
पानि-पलब-गत अधर बिम्ब-रत
दसन दाड़िम बिज तोरे।

कीर दूर भेल पास न आएब
भौंह धनुहि के भोरे ।

भावार्थ—पूर्व पद-विषयक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

साँझ के वातावरण मे नया चाँद उगा, वह इतना प्रोज्ज्वल उदित हुआ कि अस्ताचल सूर्य भी भ्रमित हो गया कि यह कैसा चन्द्रमा उगा है ! आशय है कि साध्यकाल मे जब नायिका सजधज कर निकली तो अस्ताचल सूर्य तक को यह धोखा हो गया कि यह नवीन चन्द्रमा आज कहाँ से उदित हो गया है ! नायिका के कर्ण-कुडल की प्रोज्ज्वल झलक से सत्रस्त एव भयाकुल राहु भी छिपकर दूर से उसके चन्द्रमुख मण्डल को ताकता है । आशय यह है कि नायिका के कुडल चक्र के समान चमकीले है जिसके कारण राहु दूर ही बैठा भयाकुल देख रहा है, उसके मुख-चद्र को ग्रसने का दु साहस नही कर पाता । हे सुन्दरी, हथेली पर मुख धरकर न बैठो क्योकि ऐसा करके चाहे लाख तुम अपने मुख की शरारत को हथेली की आड से छिपाना चाहो किंतु तुम्हारा सुन्दर मुख अब अधिक चपल हो गया है और यो उसकी शरारत तुम छिपा नही पाओगी । भला कब तक उसे छिपाकर रक्खोगी ? तुम्हारी लाल हथेलियो पर रक्खा तुम्हारा मुख ऐसा सुन्दर आभासित होता है मानो लाल कमल पर श्वेत कमल को आसीन कराया गया हो । फिर तुम्हारे नील झील-से नयन और उनमे फूल-जैसी आकर्षक पुतलियाँ—यह सब कुछ दृश्य ऐसा प्रतीत होता है मानो नील कमल रूपी नेत्रो के बीच मे तिल के फूल रूपी पुतलियाँ हो जिनसे खिचकर भ्रमर रूपी रसिक धीरे-धीरे मधुपान करने के लिये आते हो । हे रमणी, तुम्हारे कर किसलय के समान कोमल है, अधर बिम्बफल के समान लाल एव दाँत अनारदानो की तरह प्रोज्ज्वल है । और इस सब पर तुम्हारी आँखे और उन पर चढी भौहो की शोभा भी तो ऐसी सुन्दर आभासित होती है कि जैसे तुम्हारी नासिका रूपी तोता तो तुम्हारे दाँत रूपी अनारदानो पर झपटना चाहता है किंतु तुम्हारी सुन्दर धनुषाकार भौहो के भय से पास नही आता—अर्थात् तुम्हारी नाक स्थिर है, बडी शोभाशाली प्रतीत होती है ।

विशेष—नख-शिख शृंगार-वर्णन की परम्परा के अनुकूल प्रस्तुत पद मे नायिका का रूप-वर्णन किया गया । उपमान प्राय पुराने ही प्रयुक्त किये गये है जैसे दाँतो के लिये अनारदानो एव अधरो के लिये बिम्बफलो के उपमान । किंतु पद मे मौलिक कल्पना एव उद्भावना भी बडी भली बन पडी है जिसमे अभिव्यक्ति की नवीनता एव चित्रमयता है—

"साँझ क बेरि उगव नव ससधर
भरम बिदित सबिताहु ।
कुंडल चक्र तरास नुकाएल
दर भेल हेरथि राहु ।"

नायिका के मुख की महत्ता चन्द्रमामय होने पे नही वरन् इस बात मे विराट् हो गई कि उसे देखकर अस्ताचल सूर्य भी चकमे मे पड जाता है कि यह नया चन्द्रमा कैसा है ! नारी की मुद्रा सम्बन्धी एव सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि का चित्र विद्यापति ने कितने यथार्थ एव कमाल का चित्रित किया है—

"जनु बइससि रे बदन हाथ लाई ।
तुअ मुख चगिम अधिक चपल भेल ।"

यह देखा जाता है कि रमणी का सूक्ष्म आकर्षण जब कही किसी पर केन्द्रित हुआ चाहता है तो वह उसे अव्यक्त ही रखने के लिये अपने मुख पर हथेली की आड कर कोहनी टेककर एक विशेष भावमुद्रा मे बैठती है जिससे उसकी मुखमुद्रा मे एक विशेष प्रकार का लावण्य, हास एव क्रीडा का सचार होता है जो उसके आकर्षण को और बढा देता है—"जनु बइससि रे बदन हाथ लाई ।" पक्ति विद्यापति के रसिक मन की एक मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया है जो पूर्णत रसमय है ।

"रक्तोपल जनि " से लेकर अन्त की पक्ति "भौह धनुहि के भोरे ।" तक यद्यपि नख-शिख शृगार-वर्णन की परम्परा प्रतीत होती है—तदपि उसमे अभिव्यक्ति की सफाई निकाई और चटक बडी प्रभावशाली है । कलात्मक दृष्टि से प्रस्तुत पद उत्कृष्ट बन पडा है । सम्पूर्ण पद मे एक श्रेष्ठतम नायिका की भावमुद्रा एव अग-सुन्दरता साकार रूप मे ढल सकी है । सर्वत्र उत्प्रेक्षा एव रूपक अलकार की छटा स्वाभाविक एव परम्परित ढग से दर्शित होती है ।

शब्दार्थ—साँझ क बेरि=सध्या के समय या वातावरण मे । उगल=उगा । नब ससधर=नया चन्द्रमा, नायिका के मुख का सुन्दर उपमान है । भरम=धोका सविताहु=सूर्य भी । बिदित=जाना । कडल चक्र=कुण्डल रूपी चक्र । तरास= त्रास, भय । नुकाएल=छिप गया । जनु=मत । बइससि=बैठो । बदन=मुख । हाथ लाई=हाथ लगाकर । दूर भेल=दूर छिपा हुआ । हेरथि=ताकता है । चगिम=सुन्दर । चपल भेल=चचल हुआ । कति खन=कब तक । नुकाई=छिपा-कर । रक्तोपल=लाल कमल, करतलो का उपमान । जनि=मानो, उत्प्रेक्षा । बइसा-ओल=बिठलाया गया है । नील नलिनि=नील कमलिनी, आँखो का उपमान । तिल क कुसुम=तिल का छोटा-सा फूल, पुतली का उपमान है । तहु माझु=उसके बीच मे । भमर=भ्रमर । आबथि=आता है । लहु लहु=धीरे-धीरे । पानि=करतल । पलब-गत=किसलय-से कमल । अधर=ओष्ठ । बिम्ब=बिम्बफल । रत=लाल । दसन=दाँत । दाडिम बिज=अनार के दाने, दाँतो के उपमान है । कीर=तोता, नाक का प्रचलित उपमान । दूर भेल=दूर गया हुआ । न आएब=नही आता । भौंह धनुहि के भोरे=भौंह रूपी धनुष के भय या धोके मे ।

(१०४)

बड़ कौसलि तुग्र राधे ।
किनल कन्हाई लोचन ग्राधे ।
ऋतुपति हटबए नहि परमादी ।
मनमथ मधथ उचित मूलबादी ।
द्विज पिक लेखक मसि मकरंदा ।
कांप भमर-पद साखी चदा ।
बहि रति रग लिखापन माने ।
श्री सिवसिंघ सरसक-बि भाने ।

भावार्थ—पूव पद के विषयक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

राधा से सखी कह रही है कि हे राधे ! तुम बडी चालाक हो कि तुमने ग्रपने एक ही कटाक्ष से कृष्ण को क्रय कर लिया। वसन्त, व्यापारी ग्रौर कामदेव ये प्रमादी नही होते, बडे बुद्धिमान होते है जो दलाल बनकर उचित मूल्य ही ग्राँकते हैं। ग्राशय यह है कि वसन्त, व्यापारी ग्रौर कामदेव की श्रेणी एक है, वे परिपक्व नायिका का नायक से बुद्धिमानी से मूल्य ग्रॉकते है, उसे नायिका की ग्रोर प्रभावित करते है। कोयल रूपी ब्राह्मण लेखक जैसा है ग्रौर मकरन्द रूपी स्याही है। भौरे का पॉव कलम है ग्रौर इन सबका साक्षी है चन्द्रमा, वही-खाता राम-विलास है जिसमे मान का वर्णन लिखा है। राजा शिवसिंह कविवर विद्यापति के इस शृगार-रस-वर्णन के रहस्य को भली-भाँति जानते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति ने ऊहात्मक पद्धति से शृगार-रस का वर्णन किया है। कामदेव ग्रौर वसन्त का सम्बन्ध सभी जानते है कि वह नायक-नायिका की काम-क्रिया के हेतु कितना उपयुक्त है किन्तु उसमे विद्यापति ने व्यापारी का रूपक भी ला ठूँसा है। सम्पूर्ण पद मे रूपक ग्रलकार प्रधान है—

"किनल कन्हाई लोचन ग्राधे।'

पक्ति मे उक्ति-चमत्कार सरस है।

शब्दार्थ—बड=बहुत, ग्रधिक। कौसलि=चालाक। तुग्र=तुम। किनल=खरीदा। लोचन ग्राध=कटाक्ष से तात्पर्य है। ऋतुपति=वसन्त। हटबए=व्यापारी नहि परमादी=जो प्रमाद न करता हो, ग्रर्थात् बुद्धिमान। मधथ=मध्यस्थ वा दलाल। मनमथ=कामदेव। मूलबादी=मूल्य ग्रॉकने वाला। द्विज=ब्राह्मण। मसि मकरदा=मकरन्द रूपी स्याही। कॉप=लेखनी। भॅमर-पद=भौरे का पैर। साखी=साक्षी। बहि=बही-खाता। लिखापन माने=मान लिखा गया है। सरस-कबि=शृगार-रस का वर्णन करने वाला कवि विद्यापति। भाने=कहता है।

(१०५)

कंचन गढ़ल हृदय-हथिसार ।
ते थिर थम्भ पयोधर भार ।।
लाज-सिकर धर वृढ़ कए गोए ।
आनक बचन हलह जनु कोए ।।
दूर कर अगे सखि चिन्ता आन ।
जऔबन-हाथि करिय अबधान ।
मनसिज मदजन्न जओं उमताए ।
धरिहसि, प्रिअतम-आँकुस लाए ।।
जाबे न सुमत ताबे अगोर ।
मुसइत मनिहसि मानस-चोर ।।
भन बिद्यापति सुनु मतिमान ।
हाथि महते नब के नहि जान ।।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

हृदय रूपी हाथीखाना सोने से गढा हुआ है, फिर वह स्तनो रूपी खम्भो पर दृढता से स्थित है , लाज रूपी शृखला से उसे कसकर छिपा रक्खो । हे सखी राधे ! नायक की अथवा अन्य की बातो मे आकर उसे न खोलो और किसी चिन्ता को मन मे मत आने दो । चिन्ता को दूर करके यौवन को ही हाथी समझ लो । कामदेव रूपी मद-जल से तुम्हारे यौवन का हाथी पगला जाये तो अपने प्रियतम रूपी अकुश के द्वारा उसे बस मे धर रखना । जब तक वह पागलपन से मुक्त होकर सुबुद्धि ग्रहण करे तब तक उसे अपनी सुरक्षा मे ही रखना, रखवाली करती रहना । यदि मन रूपी चोर उसे चुराना भी चाहे तो मना करना । कविवर विद्यापति कहते है कि हे बुद्धिमति राधे ! सुनो तो कि भला उस नवीन मद-मस्त हाथी को कौन नही जानता ? आशय यह है कि यौवन मदमत्त हाथी की भाँति है इसको सभी जानते है ।

विशेष—यह पद भी "पद सख्या १०४" की भाँति शृगार-वर्णन की ऊहात्मक पद्धति पर लिखा गया है । इसमे विषय-रस की कोई मौलिक उद्भावना न होकर केवल रूपक अलकर का सप्रयास प्रदर्शन मात्र है । यौवन के लिए मदमस्त हाथी का रूपक सर्वथा उपयुक्त कहा जायेगा । किन्तु पद मे सूक्ष्म व्यजना यह भी है कि नारी को अनिवार्य रूप मे लज्जा धारण करनी चाहिए और अपने प्रियतम की अनुचरी होना चाहिये ।

शब्दार्थ—कचन=स्वर्ण । हृदय-हथिसार=हृदय रूपी हाथीखाना, अथवा हस्तीशाला । ते=वह । थिर थम्भ=सुदृढ खम्भे । पयोधर=स्तन । लाज-सिकर=लज्जा रूपी शृंखला । गोए=छिपाकर । आनक=दूसरे के । हलह जनु कोए=कोई

भी न खोले। अगे सखि=हे सखी। आन=अन्य। करिय अवधान=समझ लो। मनसिज=कामदेव। मदजल=मस्ती का पानी। जआँ उमताए=यदि पगला जाये। प्रिअतम-आँकुस लाए=प्रियतम रूपी अंकुश लगाकर। जावे=जब तक। न सुमत=बुद्धि मे न आये, ठीक हो। तावे अगोर=तब तक रखवाली मे रहो। मुसइत=छुराते हुए। मनिहसि=मना करो। मानस-चोर=मन रूपी चोर। भन=कहते है। मतिमान=बुद्धिमति। महते=मस्त। के नहि जान =कौन नही जानता। नव=नये।

(१०६)

कउड़ि पठाओले पाव नहि घोर।
घीव उधार माँग मतिभोर॥
बास न पावए माँग उपाति।
लोभ क रासि पुरुष थिक जाति॥
कि कहब आज कि कौतुक भेल।
अपदहि कान्हक गौरव गेल॥
आएल बइसल पाव पोआर।
सेज क कहिनी पूछए बिचार॥
ओछाओन खँडतरि पलिया चाह।
आओर कहब कत अहिरिनि-नाह॥
भनइ बिद्यापति एहु गुनमत।
सिरि सिबसिंघ लखिमा देइ कत॥

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति अपनी ओर से कौतुक के प्रसग को समाप्त करते हुए राधा-कृष्ण के काम-क्रीडा सम्बन्ध के प्रति चुटकी लेते है। वह कहना चाहते है कि राधा गोपी के प्रियतम कृष्ण के पास सभोग के राजसी उपकरण कहाँ धरे है और चले है काम-कौतुक का मजा लूटने। भोली राधा को फिर भी कृष्ण ने फुसलाकर काम-क्रीडा का आनन्द भोग ही लिया। किन्तु लखिमादेवी के प्रियतम राजा शिवसिंह तो सर्वराजसी साधन सम्पन्न है, शृगार के गुण ज्ञाता है, सच्चे राजसी नायक है, अत उनको शृगार-क्रीडा के प्रति अनुप्रेरित करने के लिये विद्यापति कहते है—कृष्ण जो रस-नायक कहलाता है, उसके पास मूल्य देने के उपरात भी मट्ठा-जैसा तुच्छ पदार्थ उपलब्ध नही, फिर भी उस मूर्ख को देखो कि घी-जैसा मूल्यवान पदार्थ उधार माँगता है। आशय यह है कि स्वय कगाल होकर वह कृष्ण लक्ष्मी-जैसी सुन्दरी राधा को चाहता है। कितना विचित्र कौतुक है? भोजन के भिखमगे को कोई भी रहने का स्थान नही देता, कैसे दे? किंतु फिर भी पुरुष-जाति लोभ की राशि है। आशय यह है कि तुच्छ-से-तुच्छ पुरुष को भी रति-लोभ सताता है। कविवर विद्यापति

कहते हैं कि आज कृष्ण-सम्बन्धी जो कौतुक हुआ उसके विषय मे क्या कहूँ ? उसका अपदस्थ स्थान पर गौरव नष्ट हो गया। वह पुआल पर बैठकर शय्या की बाते पूछने लगा, कैसी विचित्र बात है कि टूटी-फूटी चटाई का बिछौना और इच्छा पलके की ! कवि विद्यापति कहते है—उस गोपी के प्रेमी की और क्या बात कहूँ, क्योकि लखिम-देवी के पति राजा शिवसिह स्वय इस विषय मे गुणवान है, समझ ही लेगे। आशय यह है कि राधा के साथ जो काम-कौतुक उसकृष्ण ने किया वह कितना असगत, अपरिहार्य और अजीब-सा था।

विशेष—प्रस्तुत पद मे वक्रोक्ति का चमत्कार खूब बना है। उपालम्भ और वक्रोक्ति के मिश्रण से सम्भोग-शृगार का चित्रण कितना अनूठा है, यह इन पक्तियो मे देखिये—

> **"ओछाओन खँडतरि पलिया चाह।**
> **आओर कहब कत अहिरिनि-नाह॥"**

शब्दार्थ—कउडि=कौडी। पठाओले=भेजने पर भी। घोर=मट्ठा। घीव=घी। मतिभोर=मूर्ख। उपाति=खाद्य-सामग्री। अपदहि=नीचा स्थान। पोआर=पोआल। ओछाओन=बिस्तरा। खँडतरि=टूटी-फूटी चटाई। पलिया=पलग। आओर=और। अहिरिनि-नाह=गोपी का प्रेमी, कृष्ण।

अभिसार

(१०७)

धनि धनि चलु अभिसार।
सुभ दिन आजु राजपन मनमथ
पम्रोब कि रीति बिथार।
गुरुजन नयन अध करि आम्रोल
बाधब तिमिर बिसेख।
तुअ उर फुरत बान कुच लोचन
बहुमगल करि लेख।
कुलबति धरम करम भय अब सब
गुरु - मदिर चलु राखि।
प्रियतम सग रग करु चिर दिन
फलत मनोरथ साखि।
नीरद बिजुरि बिजुरि सयँ नीरद
किंकिन गरजन जान
हरखए बरखए फुल सब साखी
सिखि-कुल दुहु गुन गान।

भावार्थ—आचार्यों ने अनेक प्रकार की नायिकाओ का वर्गीकरण किया है। अभिसारिका नायिका वह कहलाती है जो सज-धजकर गुप्त स्थान मे नायक के साथ समागम हेतु पहुँचती है। अभिसार एक विशेष प्रकार का सम्भोग होता है, जिसमे परकीया नायिका का सम्बन्ध ही प्रधान होता है। अभिसार कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष दोनो ही निशाओ मे होता है। दिवस का अभिसार भी प्राय चलता है। प्रस्तुत प्रसग मे कविवर विद्यापति ने विभिन्न प्रकार से राधा-कृष्ण अथवा नायक-नायिका का अभिसार व्यक्त किया है। इसके लिये सुन्दर विधान, व्यापक बँधान और आलकारिक काव्याधान प्रदर्शित किया गया है।

सखियाँ राधा से कह रही है कि हे सुन्दरी राधे ! चलो, कृष्ण के साथ अभिसार के लिये चलो। आज कामदेव का राज्य है, यह शुभ दिन है। आज के समान कामक्रिया के विस्तृत सुख को लूटने का अवसर फिर कहाँ पा सकोगी ! तुम बड़ी चतुर

हो, क्योकि तुमने अपने बडे-बूढो की आँखें अन्धेरे मे बाँध दी हैं, उन्हे अन्धा कर आई हो ताकि वे तुम्हारे काम-करतूत को न देख सकें। तुम्हारा बाँया स्तन और नेत्र फडकता है तो समझो कि यह बहुत शुभ और कल्याणकारी है। अब तुम कुल की, धर्म-कर्म की, भय-मर्यादा त्यागकर प्रियतम के सम्भोग-कक्ष को चल दो। वहा चिर दिनो तक उसके साथ काम-क्रीडा करो। तुम्हारा मैथुन और मनोरथ रूपी वृक्ष फलता-फूलता रहेगा। बादल बिजली के साथ और बिजली बादल के साथ रहती है, बादल की गर्जना किंकिणी या कमर की तगडी की ध्वनि ही जानो। बादल के प्रसन्नतापूर्वक बरसने से समस्त वृक्ष कुसुमित रहेगे एव मयूरो के दल उन दोनो का गुण गान करते रहेगे। आशय यह है कि बादल रूपी प्रियतम के साथ बिजली रूपी नायिका का अभिसार सतत् होता है, और बादलो की गर्जना मानो अभिसार करते समय अद्भुत होती हुई नायिका की कमर-किंकिणी की आवाज होती है। इसी प्रकार यदि राधा और कृष्ण परस्पर अभिसार-रत होगे तो सखियो को बडी प्रसन्नता होगी ।

विशेष—अभिसार की बेला मे नायिका को उसकी सखियाँ प्रियतम के साथ काम-क्रीडा के हेतु अत्यन्त प्रोत्साहित करती हैं, उसीका विधान कविकर विद्यापति ने बडी खूबी के साथ इन पक्तियो मे प्रगट किया है—

"गुरुजन नयन अध करि आओल
बाधब तिमिर बिसेख।
तुअ उर फुरत बान कुच लोचन
बहुमगल करि लेख।"

अभिसारिका के लिए लोक-लाज की ज़रूरत नही। यह स्वच्छन्द रति की व्यजना—

"प्रियतम सग रग करु चिर दिन
फलत मनोरथ साखि।"

पक्ति मे स्पष्ट है। बादल और बिजली के चिर-सम्भोग की कल्पना नायक नायिका की रति-सम्बन्धी भावना से बडी कलात्मकतापूर्वक जोडी गई है, जिसमे नवीन उद्भावना मोहक है—

"नीरद बिजुरि बिजुरि सयँ नीरद
किंकिन गरजन जान।"

समस्त पद मे स्वच्छन्द अभिसार की पृष्ठभूमि अच्छी प्रकार से निर्मित की गई हैं। गेय तत्त्व पद मे प्रधान है।

शब्दार्थ—अभिसार=गुप्त मिलन। धनि=सुन्दरी राधा, बाला। राजपन मनमथ=कामदेव का राज्य है। बिथार=फैलाव, विस्तार। गुरुजन=बडे-बूढे। तिमिर=अन्धेरा। तुअ=तुम्हारा। उर=हृदय। फुरत=फडकता है। बाम=बाँया

बहुमगल=बहुत शुभ। करि लेख=समझो। गुरु-मदिर=प्रियतम का सम्भोग=कक्ष। साखि=शाखा। नीरद=बादल। सयँ=साथ। किकिन=सुन्दरी के कमर मे बाधा हुआ एक आभूषण जिसे किंकिणी कहते है और जिससे अभिसार करते समय ध्वनि होती है। हरखए=हर्षित होना। सिखि-कुल=मयूर दल, आशय सखियो के दल से है। दुहु=दोनो, राधा-कृष्ण से आशय है।

(१०८)

कह कह सुन्दरि न कर बेग्राज।
देखिअ आज अपूरब साज।
मृगमद पक करसि अगराग।
कोन नागर परिनत होअ भाग।
पुनु-पुनु उठसि पछिम दिसि हेरि।
कखन जाएत दिन कत अछि बेरि।
नूपुर उपर करसि कसि थीर।
दृढ़ कए पहिरसि तम सम चीर।
उठसि बिहँसि हँसि तेजिए सार।
तोर मन भाव सघन अँधियार।
भनइ बिद्यापति सुनु बर नारि।
धैरज धर मन मिलत मुरारि।

भावार्थ—निर्धारित प्रसगक्रम के अनुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

सखियाँ पूछ रही है कि हे सुन्दरी राधे! हमे सच-सच बताने मे कोई बहाना मत करो। कहो, आज हम तुम्हारा यह अपूर्व शृगार किसलिए देख रही हैं? अग पर कस्तूरी का प्रलेपन कर रही हो तो बताओ आज किस ललित नायक का भाग्य चमका है? अरे, तुम बार-बार पश्चिम-दिशा की ओर देखती हो और सोचती हो कि दिन कब ढलेगा, रात कब आएगी और यह भी कि कितना समय सूर्यास्त होने मे शेष है? बारम्बार पैरो के नूपुरो के अर्द्ध-भाग को कसकर स्थिर करती हो ताकि चलने मे उनकी आवाज कोई न सुने और अन्धेरे के समान काली साडी को खूब कसकर पहन रही हो—क्यो? अकारण ही हँस हँस उठती हो, लगता है कि तुम्हारे मन को घोर अन्धकार अच्छा लगता है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरी! सुनो, और मन मे धीरज धरो कि तुम्हे तुम्हारा प्रियतम कन्हैया अवश्य मिलेगे।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति ने नायिका की रोमाटिक चेष्टाओ की अभिव्यक्ति बडी निपुण की है। अभिसारिका अभिसार के लिए चलते समय अपने वस्त्राभूषणो को एक विशेष अदा से धारण करती है और नैसर्गिक रूप मे उसका भाव-चापल्य छुपाने पर भी साफ दिग्दर्शित होता है। इन पतियो मे इसी भाव विशेष का

रूप देखिए—

"पुनु-पुनु उठसि पछिम दिसि हेरि।
कखन जाएत दिन कत अछि बेरि।
नूपुर उपर करसि कसि थीर।
दृढ कए पहिरसि तम सम चीर।"

श्याम साडी के लिए अधकार की उपमा बडी मौलिक है। अभिसारिका के प्रधान शृगारिक उपकरण कस्तूरी का लेप, नूपुर आदि बडे सुन्दर ढग से सजोये गए हैं। मधुर अनुभाव की सहज अभिव्यंजना इस पक्ति मे प्रकट हुई है—

"उठसि बिहँसि हँसि तेजिए सार।"

सम्पूर्ण पद मे कला और भाव-पक्ष का व्यापक अभिसार व्यक्त है, जिससे सचमुच नागर नायक प्रभावित होगा और सौभाग्यशाली भी—

"कोन नागर परिनत होअ भाग।"

शब्दार्थ—बेआज=बहाना। अपूरब साज=अपूर्व शृगार। मृगमद पक= कस्तूरी का लेप। अगराग=शरीर को सुरभित करनेवाला साधना। परिनत होअ भाग=बडा भाग्य उदय होगा। पुनु-पुनु=बारम्बार। पछिम=पश्चिम। हेरि= देखना। कखन=कब। कत अछि बेरि=कितना समय शेष है। नूपुर=पैरो का ध्वनि-मय आभूषण। थीर=स्थिर। पहिरसि=पहनती है। तम सम चीर=अन्धकार के समान श्याम साडी। तेजिए सार=अकारण। तोर=तुम्हारे। भाव=अच्छा लगना। सघन=घोर। बर नारि=सुन्दर स्त्री।

(१०६)

माधव, धनि आएलि कत भाँति।
प्रेम-हेम परखाओल कसौटी
भादब कुहु-तिथि राति।
गगन गरज घन ताहि न गन मन
कुलिस न कर मुख बका।
तिमिर-अजन जलधार धोए जनि
ते उपजाबति संका।
भाग भुजग सिर कर अभिनय कर-
झाँपल फनिमनि दीप।
जानि सजल घन से देई चुम्बन
तें तुअ मिलन समीप।
नारि-रतन धनि नागर ब्रजमनि
रस गुन पहिरल हार।

गोविंद चरन मन कह कबिरजन
सफल भेल अभिसार।

भावार्थ—निर्धारित प्रसगक्रम के अनुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

राधा के पास से अब सखियाँ कृष्ण के पास आ गई है और चुटकी ले रही है, कहती है कि हे माधव ! जरा देखो तो वह सुन्दरी राधा किस प्रकार तुम्हारी प्रणय-डोर खीचकर आ गई है ? उसका प्रेम रूपी स्वर्ण भादो की अमावस्या की रात रूपी कसौटी पर जैसे परखा गया है और खरा उतरा है। राधा ने आकाश पर गरजते हुए बादलो की भी मन मे शका न की और वज्र ढाती हुई कडकडाहट से भी उसने अपना मुख न मोडा कि कही प्रेम को दाग न लग जाए। मूसलाधार वर्षा से कही अन्धकार रूपी अजन न धुल जाए, इस बात का सदेह—। आशय यह है कि घोर वर्षा के कारण कही ऐसा न हो कि राधा भूल-भटक जाए और कृष्ण तक न आ सके। दौडते हुए भुजग के सिर पर मानो वह अभिनय कर रही है और फनि-मणि तुल्य दीपक को अपने अचल से ढँक रही है कि कही बुझ न जाए। आशय यह है कि काले सर्प की भाँति घुप अन्धकार मे वह चली जा रही है और अपने अरमानो का दीपक जैसे वह मिलना-चल मे ढँक रही है। इतना कष्ट और इतनी उत्सुकता है—राधा मे—कृष्ण के मिलन हेतु। मानो जलमय मेघ उस बाला से चुम्बन पाने के लिए ही सर्वत्र घिर आए है। इससे यह सिद्ध होता है कि अब वह निकटतर होती जा रही है और हे कृष्ण ! तुम्हारा उससे अभिसार निकट आ गया है। सुन्दरी राधा रमणियो मे उत्तम रत्न के समान है और चतुर श्री कृष्ण व्रज-भूषण है। ऐसा सयोग है कि मानो राधा-कृष्ण ने परस्पर एक-दूसरे को प्रेम-रस-सूत्र मे गूँथकर हार-सा धारण कर लिया है। श्री कृष्ण के चरणो मे मन की रति स्थापित करते हुए शृगारी कवि विद्यापति कहते है कि सचमुच राधा और कृष्ण का यह मधुर अभिसार सम्पन्न होकर रहेगा।

विशेष—महान् कवियो की कल्पना विराट् होती है, कविवर विद्यापति मे यह विराट् कल्पना देखने को मिलती है। प्रस्तुत पद की निम्नाकित पक्ति मे प्रेम को स्वर्ण रूप तो कहा ही गया है, परन्तु उसके लिए परख की कसौटी भादो की भयानक रात बताई गई है। सचमुच प्रेम की कसौटी कष्ट की अन्तिम सीमा है—

"प्रेम-हेम परखाओल कसौटी
भादब कुहु-तिथि राति।"

वातावरण की सापेक्षता और सम्भोग के चपल उद्वेग का कितना मर्म स्पर्शी भाव चित्र इन पक्तियो मे व्यक्त है—

"गगन गरज घन ताहि न गन मन
कुलिस न कर मुख बका।"

"भाग भुजग सिर कर अभिनय कर-
झाँपल फनिमनि दीप।"

ललित लय सौन्दर्य भी इन पक्तियो से उमड चला है। महाप्राण भाव-मिश्रित कल्पना के लिए विद्यापति की प्रस्तुत पक्ति ससार के साहित्य मे श्रेष्ठ कोटि की कही जा सकती है—

"भाग भुजग सिर कर अभिनय कर-
झाँपल फनिमनि दीप।
जानि सजल घन से देई चुम्बन
तें तुअ मिलन समीप।"

अभिसारिका के लिए बिजली और अन्धकार और मूसलाधार वर्षा से आग्रस्त पथ भागते हुए भुजग से कम भयानक नही होता और जरा कल्पना कीजिए, जो नायिका उस भयानक पथ रूपी सर्प के फन पर चली जा रही है उसका अन्त क्या होगा ? महामिलन या महामरण ! फिर भी वह प्रियमिलन के अरमानो का दीप अपने आचल मे छिपाये है, यह है इस लघु पक्ति की विराट् कल्पना !

परकीया विप्रलब्धा नायिका के साहस को इस पद मे कविवर विद्यापति ने बडी निपुणता से व्यक्त किया है। कविवर नन्ददास ने अपनी रसमजरी मे भी कुछ ऐसी ही एक नायिका का चित्र खीचा है। तुलना के लिये पढे—

"धीरज-अहि के सिर पग धरै। लज्जा तरल तरंगिनी तरै।
तिमिर-महागज हाथनि ठेलै। पति-डर-नाहर पाइन पेलै।।
इहि बिधि कुज-सदन चलि आवै। तहँ मनमोहन पियहि न पावै।
लता कर धरै चिंता करै। साँस भरै लोचन जल भरै।।

शब्दार्थ—प्रेम हेम=प्रेम रूपी स्वर्ण। कुहु-तिथि=अमावस्या। भादब=भादो। कुलिस=वज्र। ताहि=उसे। न गन मन=नही गिनती। मुख बका=फिरा हुआ मुख। तिमिर अजन=अन्धकार रूपी अजन। भाग=भागते हुए। भुजग=भुजग, काला सर्प। सिर कर अभिनय=फन पर अभिनय करते हुए। कर-झाँपल=हाथ के आचल से ढँकती हुई। सजल घन=जलमय बादल। ते=इसलिये। तुअ=तेरे। ब्रजमनि=ब्रज के आभूषण, श्री कृष्ण। भेल=होगा।

(११०)

चन्दा जनि उग आजुक राति।
पिआ के लिखिअ पठाओब पाँति।
साओन सयँ हम करब पिरीत।
जत अभिमत अभिसार क रीत।
अथवा राहु बुझाएब हँसी।
पिबि जनि उगिलह सीतल ससी।

कोटि रतन जलधर तोहें लेह।
आजुक रयनि घन तम कए देह।
भनइ विद्यापति सुभ अभिसार।
भल जन करथि पर क उपकार।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

राधा की भावना है—हे चन्द्र ! तुम आज की रात मत निकलो, प्रियतम श्री कृष्ण को मैं पत्र लिखती हूँ कि मैं सावन के महिने मे तुमसे भली-भाँति प्रीत अथवा रति करूँगी। यही सावन मास अभिसार करने के लिए उपयुक्त होता है। हे राहु ! शीतल चन्द्रमा को एकबार ग्रसकर फिर मत उगलो। इस प्रकार मैं लोक-चर्चा से बच जाऊँगी और मेरी हँसी न होगी। हे बादल ! मैं तुम्हे करोडो रत्न प्रदान करूँगी यदि तुम आज की रात को घोर अन्धकार से आवृत कर दो। कवि विद्यापति कहते हैं कि इस प्रकार का अभिसार निश्चित ही उत्तम होगा, क्योकि अच्छे व्यक्ति दूसरे का भला कर
आशय यह है कि राधा बादलो को रत्न-वैभव का दान देगी तो निश्चित ही
साथ उसका अभिसार शुभ होगा।

विशेष—इस पद मे अभिसारिका राधा के मनोभावो का सुन्दर प्र
है। स्वभावत लोकापवाद से बचने के लिए नायिका की युक्तिया और
वैज्ञानिक रूप मे बडी उत्कृष्ट होती है, यही भाव इन दो पक्तियो मे उत्
द्वारा व्यक्त है—

"कोटि रतन जलधर तोहे लेह।
आजुक रयनि घन तम कए देह।"

शब्दार्थ—जनि उग=मत निकलो। आजुक=आज की।
कर। पठाओब पाँति=चिट्ठी भेजती हूँ। साओन सयँ=श्रावण
करूँगी। पिरीत=प्रीत। जत=जो। अभिमत=उपयुक्त। व
बदनामी। पिबि=पीकर, अर्थात् ग्रसकर। उगिलह=उगलो।
कोटि=करोडो। जलधर=बादल। रयनि=रात। तोहे लेह=
अभिसार=उत्तम समागम। भल जन=अच्छे लोग। करथि=क
कार=परोपकार।

(१११)

आजु मोयँ जाएब हरि-समाग
कत मनोरथ भेल।
घर गुरुजन निंद नि
चन्द उदय वेल।
चन्दा भलि नहि तुअ
एहि मति तोहें कलंक
किछु न गुनह भीं

जगत नागरि मुख जितल जब
गगन गेला हारि ।
तहिश्रो राहु गरास पडला
देव तोहु कि गारि ।
एक मास बिहि तोहि सिरिजए
दए सकलश्रो बल ।
दोसर दिन पुनु पुर न रहसी
एही पाप क फल ।
भनइ बिद्यापति सुनु तोयँ जुबती
न कर चाँद क साति ।
दिना सोरह चाँद क श्राइत
ताहि पर भलि राति ।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

ंभिसारिका कहती है—कृष्ण-समागम के लिये श्राज मै जाऊँगी, यह सोचकर ा मनोरथ कितना प्रबल हो गया है ! जाने से पूर्व, घर के बडे-बूढो की निद्रा करते हुए कि वे सो रहे है या जाग रहे है, चन्द्रमा उदय हो गया है। रुष्ट श्रौर श्रनमनी होकर चन्द्रमा से कहती है—हे चन्द्र ! तुम्हारी यह ने की रीति श्रच्छी नही है, इसी कुरीति के कारण तुम्हे कलक लगा है, सा करने मे डरते नही, बाज नही श्राते । सृष्टि की सुन्दरियो ने जब र्य को श्रपनी मुख-शोभा से जीत लिया तब तुम हारकर श्राकाश मे ाँ भी तुम्हारे ऐबो को देखकर राहु ने ग्रह लिया, तुम उसके ग्रास कोई लज्जा नही, फिर तुम ऐसे निर्लज्ज को मै क्या बुरा-भला कहूँ, ो तुम्हे पूरे एक महीने मे निर्मित करते है, किंतु तुम्हारा यह कलक दिन पूर्ण नही रह पाते, क्षीण हो जाते हो। यह तुम्हारे पाप का विद्यापति कहते है कि हे श्रभिसारिके! मेरी बात सुनो कि चन्द्रमा ाई मत करो। श्ररे, सोलह ही दिन के लिए तो चन्द्रमा की श्रवधि ारे श्रभिसार के श्रनुकूल श्रँधियारी रात श्रा ही जायेगी ।

ा नायिका लोकापवाद की चिता से श्राग्रस्त रहती है, किंतु ी इच्छा भी उसमे प्रबल होती है । श्रपने मैथुन-मनोरथ को -से-एक बढकर युक्तियाँ श्रोर चतुराइयाँ निर्मित करती है। ी ही है ।

'घर गुरुजन निंद निरूपइत
चन्द्र उदय देल।"

ँधियारी रात का बड़ा महत्त्व है। सम्पूर्ण पद मे चाँद

की अवहेलना करके नायिका अँधियारी रात का स्वागत करना चाहती है। उक्ति-चमत्कार इन पक्तियो मे निखरकर आया है—"गगन गेला हारि" और "देब तोह कि गारि।"

शब्दार्थ—मोयँ=मैं। हरि=कृष्ण। मनोरथ=मैथुन की इच्छा। घर गुरुजन=घर के बडे-बूढे। निद निरूपइत—नीद का निरीक्षण करती है। तुम्र=तेरी। नागरि=सुन्दरी। गेला=चला गया। गारि=गाली। देब=दूँ। तोह कि=तुझको। बिहि=ब्रह्मा। सिरिजए=सृजन किया, बनाया। सकलओ=सम्पूर्ण। पुर=पूर्ण। रहसी=रहता है। एहि=इसी। साति=बुराई। भलि राति=आशय अँधियारी रात से है।

(११२)

गगन अब घन मेह दारुन, सघन दामिनि झलकई।
कुलिस पातन सबद झनझन, पबन खरतर बलगई।
सजनी, आजु दुरदिन भेल।
कत हमर नितात अगुसरि सकेत - कुञ्जहि गेल।
तरल जलधर बरिख झर झर, गरज घन घनघोर।
साम नागर एकले कइसन पथ हेरए मोर।
सुमिरि मझु तनु अबस भेल जनि अथिर थर थर काँप।
इ मझु गुरुजन नयन दारुन, घोर तिमिरहि झाँप।
तुरित चल अब किए बिचारत, जीवन मझु अगुसार।
कबीसेखर बचन अभिसर, किए से बिधिन-बिथार।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

वातावरण विक्षुब्ध है, आकाश पर घनघोर भीषण बादल तने है, उनमे बिजली कौध रही है। वज्र जैसे ओलो के गिरने से झनाझन का कठोर शब्द सुनाई देता है और अत्यधिक तीव्रता से वायु चल रही है। अभिसारिका अभिसारोन्मत्त होकर कहती है कि हे सखी! आज कैसा अशुभ दिन आया है? मेरे प्रियतम तो पहले ही मिलन-सकेतस्थल की ओर अग्रसर हो गये हैं और मैं अभागिन अभी यही उपस्थित हूँ। तरल बादल झर-झर करके बरस रहे है और अत्यन्त जोर से गरज रहे है। चतुर श्री कृष्ण वहाँ अकेले कैसी उत्सुकता से मेरी बाट जोह रहे होगे। उनकी इस दशा को स्मरण करके मेरा शरीर परबस हुआ मानो शिथिल थर-थर काँप रहा है। इसी बीच मे बडे-बूढो के कठोर नयनो को घनघोर अन्धकार ने ढँक लिया है। अत सखी कहती है कि हे सुन्दरी! अब तुरन्त चल, सोच क्या रही है? बस जीवन के प्रणय-मार्ग पर अग्रसर हो ले। कविशेखर विद्यापति भी इसी कथन का समर्थन करते हुए कहते है कि प्रणय-पथ के विघ्नो की चिंता त्याग और अग्रसर हो।

विशेष—प्रस्तुत पद मे अभिसार के वातावरण की स्थिति का रोमाचकारी वर्णन है—

"गगन अब घन मेह दारुन, सघन दामिनि झलकई।
कुलिस पातन सबद झनझन, पवन खरतर बलगई।"

इन पक्तियो मे ध्वनियात्मकता खूब बन पडी है। भावानुभावो एव सचारी भावो का प्रकाशन इस पक्ति मे सफल हुआ है—

"सुमिरि मझु तनु अबस भेल जनि अथिर थर थर काँप।"

प्रणय-पथ पर चलनेवाले के लिये विघ्न लोकापवाद का भय कैसा, इस तथ्य की सार्थक अभिव्यजना इन दो पक्तियो मे सफल बन पडी है—

"तुरित चल अब किए बिचारत, जीवन मझु अगुसार।
कबिसेखर बचन अभिसर, किए से बिधिन-बिथार।"

शब्दार्थ—घन=घनघोर। मेह=बादल। दारुन=कष्टदायक। कुलिस= वज्र, यहाँ ओलो से आशय है। पातन=गिरने से। सबद=शब्द, यहाँ रव से आशय है। खरतर=अत्यधिक तेज। बलगई=चलती है। दुरदिन=अशुभ दिन। भेल= हुआ। कत=प्रियतम। हमर=मेरा। नितात=बिलकुल। अगुसरि=अग्रसर हो गया है। सकेत-कुञ्जहि गेल=वह कुज जहाँ गुप्त रूप से मिलने का वायदा है। जलधर= बादल। साम=कृष्ण। एकले=अकेले। कइसन=कैसे। हेरए मोर=मेरा देखते होगे। सुमिरि=सुमिरन करके। अबस=परबस। जनि=मानो। इ मझु=इसी मध्य मे। दारुन=कठोर। झाँप=ढँक लेना। किए बिचारत=क्या बिचार कर रहे है। जीवन मझु=आशय यह है कि जीवन के प्रणय पथ मे। अगुसार=आगे बढ। बिधिन-बिथार=बाधा-विघ्नो के विस्तार मे।

(११३)

रयनि काजर बम भीम भुजगम
कुलिस परए दुरबार।
गरज तरज मन रोन बरिस घन
ससअ पड अभिसार।
सजनी, बचन छड़इत मोहि लाज।
होएत से होओ बरु सब हम अगिकरु
साहस मन देल आज।
अपन अहित लेख कहइत परतेख
हृदय न पारिअ ओर।
चाँद हरिन बह राहु कबल सह
प्रेम पराभब थोर।

चरन बेढ़लि फनि हित मानलि धनि
नेपुर न करए रोर।
सुमुखि पुछओ तोहि सरुप कहसि मोहि
सिनेह क कत दुर ओर।
ठामहि रहिअ घुमि परस चिन्हिअ भूमि
दिग मग उपजु सदेह।
हरि हरि सिव सिव तावे जाइअ जिउ
जावे न उपजु सिनेह।
भनइ बिद्यापति सुनह सुचेतनि
गमन न करह बिलम्ब।
राजा सिबसिंघ रूपनरायन
सकल कला अवलम्ब।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—भयकर रात है। लगता है कि भयकर सर्प ने काजल रूपी अधकार उसमे उगला है। यत्र-तत्र वज्रवत् ओले टूट-टूटकर गिर रहे है। बादल मानो कुपित-मना होकर गरज-तरज और बरस रहा है, जिससे प्रेम-मिलन मे सशय उत्पन्न हो रहा है। यह हालत देखकर नायिका कहती है कि हे सखी! मैं तो प्रियतम से मिलने का वायदा कर आई हूँ, ऐसे मे कैसे जाऊँ, किन्तु वचन तोडने मे मुझे लज्जा भी तो आती है। आशय है कि इस भयानक वातावरण मे मैं कैसे जाऊँ और कैसे न जाऊँ? आगे जो होना होगा सो होगा ही—आज मेरा मन मुझे साहस दे रहा है। आशय यह है कि वह अपने प्रियतम से मिलने जाएगी अवश्य, वायदा जो कर चुकी है, रास्ते की कठिनाइया उसे स्वीकार हैं। अपने ऊपर घटनेवाली दुश्चिता को हृदय प्रगट होकर कहने मे पार नही पाता है। राहु से ग्रसे जाने पर भी चन्द्रमा जैसे हरिण को धारण किये रहता है, इसी भाँति बाधाओ-विघ्नो के आने पर भी न प्रम का नाश होता है और न उसमे किसी प्रकार की कमी होती है। वैसी स्थिति मे जब नायिका नायक से मिलने के लिए चलती है तो उसके पैर मे सर्प लिपट जाता है, लेकिन वह उसे भी अपनी भलाई के लिए समझती है, क्योकि उसके लिपटे रहने से नूपुर से आवाज नही निकलती है। सखी से कहती है कि हे सुन्दर मुख वाली! मैं तुझसे पूछ रही हूँ कि सच-सच बता, प्रेम की आखिरी सीमा कहा और कितनी दूर है? मुझे तो इस रास्ते पर दिक्-भ्रम हो रहा है, क्योकि कितनी भी दूर जाने के बाद लगता है कि मैं वही हूँ जहा से चली थी, यह स्थल-ज्ञान तो मुझे पैरो के स्पर्श से ही होता है। सखी कहती है कि हरि-हरि, शिव-शिव! प्रेम पैदा होने के पहले जान ही निकल जाएगी मेरी। कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे सुचतुरे! अब अभिसार के लिए देर मत करो। राजा शिवसिंह सारी कलाओं के आश्रय है।

विशेष—उपर्युक्त पद मे कविवर विद्यापति ने उद्दीपनयुक्त वातावरण का बड़ा ही सजीव चित्र चित्रित किया है। घटा गरज रही है, बिजली चमक रही है और तमाम अन्धकार ही अन्धकार का साम्राज्य है। ऐसी भयावह बेला मे भी मिलनातुर नायिका अपने नायक से मिलने इस उत्कण्ठा से जा रही है कि उसके पॉव मे सर्प लिपट जाने पर भी उसे अतिशय सुख अनुभव हो रहा है। यह पक्ति पठनीय है—

"चरन बेढ़लि फनि हित मानलि धनि
नेपुर न करए रोर।"

फिर भी वह पथ का अन्त नही पा रही और अपनी सखी से पूछती है कि हे सखी! सच-सच बताना कि प्यार की सीमा कहा है? और वह कितनी दूर है यहा से—

"सुमुखि पुछओ तोहि सरुप कहसि मोहि
सिनेह क कत दुर ओर।"

किन्तु प्रेम के अनत पथ पर प्रियतम की मञ्ज़िल किसकी आखो ने देखी है, इसी अधदशा मे तो कभी महाकवि तुलसीदास रत्नावली के लिए भागे थे। पर ठीक ही तो है—

"हर प्रेमी कवि उस तुलसी का दिल लिये हुए।
जो कालरात्रि मे रत्ना के पीछे दौडा।"

वास्तव मे यहा कविवर विद्यापति ने नायिका के अध-प्रम की अभिव्यजना बडी मार्मिक की है, जब वे कहते है—

"चरन बेढ़लि फनि हित मानलि धनि
नेपुर न करए रोर।"

प्रेमभाव की इसी विचित्र स्थिति को विभिन्न महान् कवियो ने व्यक्त किया है किन्तु कोई सीमा नही पायी।"सिनेह क कत दुर ओर" उक्ति की इस महाप्राण व्यजना के पक्ष मे गालिब ने लिखा है—

"दिले नादा तुझे हुआ क्या है
आखिर इस मर्ज की दवा क्या है?"

और शेक्सपीयर ने तो इसके लिए यहा तक कहा—

"The lunatic, the lover and the poet
are of imagination all compact"

सपूर्ण पद मे प्रेम की इसी विशिष्ट दशा की प्रधान व्यजना है। अतः उसका आनन्द असीम है।

शब्दार्थ—रयनि=रजनी। भीम भुजगम=भयकर सर्प। कुलिस=वज्र। परए=गिरना, पतन होना। दुरबार=अनिवार्य। मन रोस=मन से कुपित। बरिस=बरसना। ससग्र=सदेह, आशका। सजनी, बचन छडइत=हे सखि, बचन या वायदा छोडने या तोडने मे। मोहि=मुझे। लाज=लज्जा। होएत सो होग्रो बरु=जो होना है, सो होगा। अगिकरु=स्वीकार। देल=दिया। अपन अहित=अपनी दुश्चिता। लेख=जानकर। परतेख=प्रगट, प्रत्यक्ष। न पारिग्र ओर=ओर या अन्त नही है। चॉद=चन्द्रमा। हरिन=हरिण। बह=धारण करना, पहनना। कबल=ग्रसना। पराभव=बाधा, विघ्न। थोर=थोडा। बेढलि=लिपटने से। फनि=सर्प। हित=भलाई। मानलि—मानती हूँ। नेपुर=नूपुर। न करए रोर=आवाज नही करती। सुमुखि=सुन्दर मुख वाली। पुछग्रो तोहि=तुझसे पूछती हूँ। सरुप=सच-सच। कहसि मोहि=मुझसे कहो। सिनेह=स्नेह। कत दुर ओर=कितनी दूर सीमा है। ठामहि रहिग्र घुमि=जहा से चली घूमकर वही आई। परस=स्पर्श। चिन्हिग्र=पहचानती हूँ। दिग मग=दिग्भ्रमित रास्ता। उपजु=पैदा होना। सुचेतनि=सुचतुरा। सिबसिघ=शिवसिंह। बिलम्ब=देर। अबलम्ब=सहारा, यहा कला-ममर्ज्ञ से भी आशय है।

(११४)

सखि हे, आज जायब मोहि।
घर गुरुजन डर न मानब
बचन चूकब नहि।
चानन आनि आनि अँग लेपब
भूषन कए गजमोति।
अजन बिहुन लोचन-जुगुल
धरत धबल जोति।
धबल बसन तनु झपाएब
गमन करब मन्दा।
जइयो सगर गगन ऊगत
सहस सहस चन्दा।
न हम काहुक डीठि निबारबि
न हम करब ओत।
अधिक चोरी पर सयँ करिग्र
एहे सिनेह क सोत।
भन बिद्यापति सुनह जुबती
साहस सफल काज।

बूझ सिबसिंघ इ रस रसमय
सोरम देबि समाज।

भावार्थ—पूर्व पद-क्रम के अनुसार कविवर विद्यापति लिखते हैं कि नायिका कहती है—

हे सखि ! आज मैं अपने प्रियतम से समागम हेतु मिलने जाऊँगी। घर के वृद्धा-बुजुर्गों का भय नही मानूंगी और प्रियतम से मिलने का किया हुआ प्रण नही तोडूंगी। चन्दन को ला-लाकर अपने बदन मे खूब लेपूंगी और गजमुक्ता के आभूषण धारण करूँगी। मेरी बिना अजन की दोनो आँखे उज्ज्वल ज्योति धारण करेगी। फिर श्वेत और स्वच्छ वस्त्र आशय है साडी से अपना तन ढँककर, निश्चित होकर धीरे-धीरे प्रस्थान करूँगी, यद्यपि समस्त नभ-मण्डल मे हज़ारो चन्द्रमा निकल आए तो भी क्या है ? न मैं किसीके देखने की परवाह करूँगी और न छिपकर ही जाऊँगी। अधिक चोरी से किया हुआ स्नेह ही स्नेह का मूल श्रोत है। आशय यह है कि नायिका कब तक छुप-छुप कर नायक से मिलती रहेगी ? चोरी का कार्य कभी फलिभूत नही होता, इसलिए आज वह सारे बन्धन तोड देगी। कविवर विद्यापति कहते है कि हे युवती सुनो ! साहस से किया हुआ कार्य निश्चित ही सफलिभूत होता है। अर्थात्, तुम प्रम-पथ पर हिम्मत से चलो, कायरता मत दिखलाओ, तो अवश्य सफल होओगी और राजा शिवसिह इस रस को भली प्रकार जानते हैं। वे रमणियो के समाज मे रमने या विहार करनेवाले हैं।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति ने चन्द्रमा की रात मे सम्भोगार्थ जाती अभिसारिका का वर्णन बडी प्रगल्भता से किया है। नायिका का यह कथन कितना स्पष्ट है—

"घर गुरुजन डर न मानब,
बचन चूकब नहि।"

यहा स्वच्छद प्रेम-शृ गार का चित्रण उत्कृष्ट रूप मे हुआ है। प्रेम मे चोरी कैसी, द्वैत कैसा, लोक चिता क्या—वह तो दो उरो से निर्झरित स्रोत है—

"अधिक चोरी पर सयँ करिअ।
एहे सिनेह क सोत।"

प्रेम एकान्तिक होता है। प्रेमी के लिए ससार के आकर्षण तुच्छ है। वह तो प्रत्येक रूपाकर्षण से आख बचाकर बस अपने प्रेमी से मिलने चला ही चला जाता है। इसी प्रबलाकर्षण की अभिव्यक्ति कितने सुन्दर रूप मे इस स्थल पर की गई है—

"जइयो सगर गगन ऊगत,
सहस सहस चन्दा।"

शब्दार्थ=जायब मोहि=मैं जाऊँगी। घर गुरुजन=घर के वृद्ध-बुजुर्गों।

बचन चूकब नहि=वायदा नही तोडूँगी। चानन=चन्दन। आनि आनि=ला-लाकर। अँग=शरीर। लेपब=लेप करूँगी। गजमोति=गजमुक्ता। अजन बिहुन=अजन के बिना, अजन विहीन। लोचन-जुगुल=दोनो नेत्र। धबल=उज्जवल, श्वेत। बसन=वस्त्र। तनु=तन, बदन। झपाएब=ढंकना। गमन=प्रस्थान। मन्दा=धीरे-धीरे। जइयो सगर=यद्यपि समस्त। डीठि निबारबि=देखने की परवाह। ओत=ओट, छिपने से अभिप्राय है। सयँ=से। सुनह=सुनो। जुबती=युवती। काज=कार्य। बूझ=बूझते हैं, जानते है। सोरम=रमते है, विहार करते हैं। देबि समाज=रमणियाँ, अर्थात रमणियो के समाज मे।

(११५)

प्रथम जउबन नब गरुअ मनोभव
छोटि मधुमास रजनि।
जागे गुरुजन गेह राखए चाह नेह
ससअ पडल सजनि।
नलिनी दल निर चित न रहए थिर
तत धर तत हो बहार।
बिहि मोर बड मदा उगि जनु जाए चदा
सुति उठि गगन निहार।
पथहु पथिक सका पय पय धय पका
कि करति ओ नब तरुनी।
चलए चाह धसि पुनु पर खसि खसि
जालक छेकलि हरिनी।
साए साए कओन बेदन तसु जाने।
निकुज बनहि हरि जाइति कओन परि
अनुखन हन पँचबाने।
बिद्यापति भन कि करत गुरुजन
नींद निरूपन लागी।
नयन नीर भरि धीर झपाबए
रयनि गमाबए जागी।

भावार्थ—पूर्व पद-क्रम के अनुसार कविवर विद्यापति लिखते है कि—

प्रथम तो चढता नव-यौवन और उसपर अनग का आकर्मण तथा मधुऋतु (चैत्र) की छोटी वासन्ती रजनी। ऐसे मे नायिका कहती है कि हे सखी, इस वक्त अगर घर के बड़े-बूढ़े जाग गए तो वह मुझे प्यार वश घर मे ही रखना चाहेगे। हे सखि, इसी वजह से मैं बड़ी कशमकश मे पड़ गई हूँ। कमलपत्र पर के पानी के समान मेरा चित्त भी

चचल हो रहा है अत कभी तो घर मे जाती हूँ और कभी बाहर । आशय यह है कि जैसे कमल के पत्ते पर पानी स्थिर नही रहता, उसी प्रकार मिलने के समय सामने किमी भी प्रकार की बाधाओ को देखकर मन शरीर मे स्थिर नही रहता। नायिका कहती है कि मुझसे विधि बाये या अशुभ हो रहे है। अर्थात् मेरा भाग्य खराब हो रहा है, इसलिए कही चन्द्रमा भी निकलकर उजाला न फैला दे, इसी कारण से बार-बार उठ-उठकर आसमान की ओर देखती हूँ। कविवर विद्यापति लिखते है कि यो प्रिय-मिलन की उत्कठा मे वह बाहर आती है, लेकिन मुसीबत पीछा नही छोडती। पथ के पथिको की दृष्टि से निज को बचाने के लिए—कि कही कोई उसपर सदेह न करने लगे वह यत्र-तत्र पग धरती है लेकिन पाव कीचड मे फस ही जाता है। लेकिन बेचारी नवयुवती आखिर कर ही क्या सकती है ? वह निकलकर जल्दी ही चलने का प्रयत्न करती है, लेकिन उसकी तो शिकारी के जाल मे फसी हिरणी की-सी हालत हो रही है, बार-बार उठ-उठकर गिर-गिर पडती है।

सखियाँ दुखित होकर आपस मे कहती है कि उसकी वेदना को भला कौन जाने? बन-निकुज मे श्री कृष्ण पहुँचकर न जाने कब से उसकी प्रतीक्षा कर रहे है, लेकिन वह बेचारी किस भाँति वहा पहुँच सकती है ? उसे क्षण-क्षण मे कामदेव बाण से मार रहा है। विद्यापति कवि लिखते है कि वे गुरुजन तुम्हारा क्या कर सकेंगे जो गहरी नींद मे सो रहे हैं। यो वह बेचारी नायिका विकल अस्थिर चित्त होकर आखो मे पानी भरे जागते-जागते रात बिता रही है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति द्वारा काम-पीडिता नायिका की निठुर रात और कामोद्दीपन की चेष्टाओ का बडा मार्मिक वर्णन किया गया है। वह प्रिय-मिलन के लिए चल पडती है। किंतु विवशता इतनी कि जैसे जाल मे फसी हिरणी की होती है—यहाँ विकल नायिका की स्थिति का साम्य जाल मे फसी हिरणी के साथ सर्वथा अनुकूल बैठा है—

> **"चलए चाह धसि पुनु पर खसि खसि**
> **जालक छेकलि हरिनी।"**

और "रयनि गमाबए जागी" उक्ति को पढ़कर किसी शायर की यह पक्ति याद हो आती हैं—

> **"जिस का दिल दिलबर मे हो उसको कब आती है नींद।**
> **करवटो की सलवटो मे साफ उड जाती है नींद।"**

शब्दार्थ—जउबन=यौवन। मनोभव=अनग, कामदेव। छोटि=छोटी। मधुमास=मधु ऋतु, वसन्त, चैत का मास। रजनि=रजनी, रात। गुरुजन=ज्येष्ट, श्रेष्ठ। गेह=गृह, घर। राखए=रखना। नेह=प्रेम। ससग्र=आशका। सजनि=सखी। नलिनी दल=कमलपत्र। निर=नीर, पानी। चित=चित्त, मन। थिर=स्थिर।

तत=कभी। बहार=बाहर। बिहि=विधि, ब्रह्मा, भाग्य से अभिप्राय है। मोर=मेरा। मदा=खोटा। उगि=निकलना। सुति उठि गगन निहार=सोकर, उठकर आसमान की ओर देखना। पथहु=पथ मे। पय=पैर। पका=कीचर। नब तरुनी=नवयुवती। खसि=गिरना। जालक छेकलि हरिनी=जाल मे फसी हुई हिरणी। साए कओन=सखी, कौन। बेदन=वेदना। अनुखन हन पँचबाने=कामदेव का बाण मारना। भन=कहना। भरि=भरकर। गमाबए=बिताऊँगी। जागी=जागकर।

(११६)

अबहु राजपथ पुरुजन जागि।
चाँद-किरन नभमडल लागि।
सहए न पारए नब नब नेह।
हरि हरि सुन्दरि पडलि सदेह।
कामिनि कएल कतहु परकार।
पुरुष क बेस कयल अभिसार।
धम्मिल लोल झोट कए बध।
पहिरल बसन आन करि छन्द।
अम्बर कुच नहि सम्बरु भेल।
बाजन-जन्त्र हृदय करि लेल।
अइसए मिललि धनि कुज क माझ।
हेरि न चीन्हइ नागर राज।
हेरइत माधब पडलन्हि धद।
परसइत भाँगल हृदय क दद।
भनइ बिद्यापति सुन बर नारि।
दूध-समुद्र जनि राज-मरालि।

भावार्थ—पूर्व प्रसग के अनुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

राजमार्ग मे अभी भी नगरवासी जन जगे हुए है। आशय है कि वे अभी पथ पर आ-जा रहे है। चद्रकिरण ठीक गगन पर छिटक गई है, पूर्ण चद्र उदित हो गया है। स्नेहालिगन का नवल प्रहार जो पूर्ण चद्रकिरण के द्वारा महसूस हो रहा था उसे कामिनी या नायिका सह नही पा रही है। वह आतुर हो रही है। हरे राम, वह सुन्दरी असमजस मे पड गई है कि क्या करे—कैसे प्रियतम से मिलन-समागम हो ? कामिनी ने प्रियतम के साथ सम्भोगार्थ कितने ही प्रकार से शृ गार किया है। उसने पुरुष का भेष धारण किया कि अभिसार की युक्ति सफल हो जाय। बिखरे हुए चचल केशो को जूट या जूडे के रूप मे बाँध लिया। कुछ दूसरे ही प्रकार से वस्त्र पहने। किंतु उसके उभरे-स्तन वस्त्र मे भी न छिप सके—उनका भार भला वस्त्र कैसे सभाल पाता ! इसके लिए उसने एक और

युक्ति की कि सितार को हृदय से लगाया। इस प्रकार पुरुष जैसा वेष बनाकर वह कामिनी कुज मे श्री कृष्ण किवा नायक से मिली। किन्तु चतुर नायक किंवा श्री कृष्ण ने उसे इस वेष मे देखा किन्तु पहचाना नही। उसे देखते ही कृष्ण सदेह मे पड गए किन्तु उसका स्पर्श करते ही उनके हृदय का सदेह मिट गया। कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरी सुनो—तुम तो क्षीर सागर की जैसे राजहसिनी हो। आशय है कि तुम तो स्नेहसिधु की हसिनी जैसी सुन्दरी हो, भला तुम्हे स्पर्श कर कौन निहाल न हो जाएगा?

विशेष—प्रस्तुत पद मे नायिका की कामोद्दीप्त भावना एव कोमल शरीर की उत्कृष्टता को सिद्ध करने के लिए कवि ने लिखा है—

"चाँद-किरन नभमडल लागि।
सहए न पारए नब नब नेह।"

नवप्रेम के अतिरेक मे भला सुन्दरी पूर्णचद्र की किरणो के प्रहार को कैसे सहे? यहा बिहारी की भाँति नायिका हास्यास्पद रूप मे नाजुक नही वरन् उसकी नाजुकता भावनातिरेक के अनुरूप व्यजित है क्योकि पूर्णमासी के चद्र की किरणे काम-भावना को उद्दीप्त भी करती हैं और वह नायिका है भी इतनी नाजुक और काम-भाव-विह्वला। कारण कार्य की सापेक्षता यहाँ जुडी है।

सम्भोग के लिए विपरीत रति-क्रीडा का विधान भी है। अतः नायिका ने पुरुष का वेश धारण किया है किंतु इससे भी प्रबल पक्ष यह सिद्ध होता है कि वह पुरुष वेश बनाकर भी अपने रमणीत्व को छिपाने मे असमर्थ हो रही है—

"पहिरल बसन आन करि छन्द।
अम्बर कुच नहि सम्बरु भेल।"

भला उभरे हुए रमणी के स्तन पुरुष जैसे वस्त्र धारण करने पर भी कैसे छिपें! यो रमणी के स्तनो के सौन्दर्य को उतकृष्टता प्रदान की गई है।

'दूध-समुद्र' एव 'राज-मराली' शब्दो मे अगाध प्रेमलीन महान् सुन्दरी की मधुर स्थिति का प्रबोध कराया गया है जो मार्मिक एव अत्यत भावना सम्मत है।

शब्दार्थ—राजपथ=नगर का प्रमुख मार्ग। जागि=जगे हुए। पुरुजन=नगरवासी। लागि=लगना यहाँ चद्रकिरण के अम्बर पर छिटक जाने से तात्पर्य है। सहए न पारए=सह नही पा रही है। नब नब=नया। नेह=प्रेम। हरि हरि=हरे राम। पडलि सदेह=असमजस मे पड गई है। कएल='शृगार किया' से तात्पर्य है। पुरुष क बेस=पुरुष के वेश मे। कतहु=कितने प्रकार से। धम्मिल=केशराशि कुतल। लोल=लहराते हुए, चचल। झोट=जूट या जूडा। कंए बध=बाध लिए। बसन=वस्त्र। आन करि छन्द=कुछ दूसरे ही प्रकार से। अम्बर कुच=वस्त्र मे ढँके हुए स्तन। सम्बरु भेल=नही सभलते। बाजन-जन्त्र=बजने वाला वाद्य—सितार आदि। हृदय करि लेल=हृदय से लगा लिया। धनि=सुन्दरी। कुज क माझ=कुज

के बीच मे। हेरि=देखा। न चीन्हइ=नही पहचाना। नागर राज=चतुर नायक श्री कृष्ण। धद=सदेह, असमजस। परसइत=छूने पर। भाँगल=भाग गया, दूर हो गया, मिट गया। दद=द्वंद्व, असमजस। बर नारि=सुन्दर नारी, नायिका। दूध-समुद्र=क्षीर सागर, प्रेम-सिधु से आशय है। राज-मरालि=राज-हंसिनी, यह नायिका का उपमान है।

(११७)

चरण नूपुर उपर सारी।
मुखर मेखल कर निबारी।
अम्बर सामर देह झपाई।
चलहु तिमिर पथ समाई।
समुद कुसुम रभस रसी।
अबहि उगत कुगत ससी।
आएल चाहिअ सुमुखि तोरा।
पिसुन-लोचन भम चकोरा।
अलक तिलक न कर राधे।
अंग बिलेपन करह बाधे।
कुसुमित कानन कालिन्दि-तीर।
तहाँ चलि आओल गोकुल बीर।
तयँ अनुरागिनी ओ अनुरागी।
दूषन लागत भूषन लागो।
भनइ बिद्यापति सरस कबि।
नृपति-कुल-सरोरुह रबि।

भावार्थ—पूर्व प्रसग के अनुसार कविवर विद्यापति लिखते हैं—

सखी अभिसारिका राधिका से कहती है कि पाँवो का नूपुर ऊपर खिसका लो ताकि वह आवाज न करे। ध्वनित होती हुई मेखला को हाथ से थाम लो ताकि उसकी मुखरितता प्रतीत न हो। श्यामल साडी या वस्त्र को धारण करके अपने शरीर को छिपा लो और अन्धकार पथ पर उससे एकरूप होकर चलो ताकि कोई पहचान न पाए। रसमय प्रफुल्ल श्वेतकमल पुष्परूप दुष्ट चन्द्रमा उगा चाहता है; अत. चलने में शीघ्रता करो ताकि कोई देख न ले। हे सुमुखी, तुम्हारे दोनों चंचल नयन चकोर सदृश सभ्रमित होकर इतस्तत: भटक रहे है, कुछ तलाश कर रहे है। हे राधे, मस्तक पर तिलक न लगाओ; शरीर में अंगराग करना भी बन्द कर दो, न करो। जहाँ यमुना के तट पर कुसुमित कानन हैं वहाँ चलो क्योकि श्री कृष्ण या गोकुल के वीर वही पहुँच चुके हैं, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। हे राधे, तुम कृष्ण की अनुरागिनी या प्रेमिका

हो और कृष्ण तुम्हारे अनुरागी या प्रेमी है। क्योकि तुम परकीया हो अतः तुम्हे पर-पुरुष श्री कृष्ण से अवैध रूप मे मिलने से नैतिक दूषण लगना चाहिए किन्तु नही उनका मिलन तो तुम्हारा भूषण बना है। सरसकवि विद्यापति कहते है, राजा शिवसिह राज-कुल कमल के सूर्यरूप है। आशय है कि वही इस प्रकार की शृगारी कविता सुनने के अधिकारी है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे परकीया नायिका का मिलन-विधान बाँधा गया है। राधा-कृष्ण का मिलन सच्चे अनुरागी का मिलन है इसी भाँति जैसे इस ससार की आत्मा ब्रह्म से मिलन करती है, प्रेम करती है। यही रहस्यवादी व्यजना इन पक्तियो मे प्रकट हुई है—

"तयँ अनुरागिनि ओ अनुरागी।
दूषन लागत भूषन लागी।"

'दूषन लागत भूषन लागी' पक्ति मे वाग्वैदग्ध भी प्रधान है। 'पिसुन-लोचन' की तुलना भ्रमित चकोर के साथ सुन्दर बन पडी है किन्तु नूपुर एव मेखला के रव को शात करने वाली युक्ति सच्ची नायिका के चातुर्य को बडे ढग से व्यक्त कर रही है—

"चरण नूपुर उपर सारी।
मुखर मेखल कर निबारी।"

परकीया अभिसारिका के लिए श्यामल साडी पहनना इसलिए उचित कहा गया है क्योकि वह उसे पहनकर अन्धकार मे और भी छिप जाएगी और बिना किसी खटके के, लोकापवाद के वह अपने उपपति से मिलने पहुँच जाएगी। इसीकी युक्ति सूझ इन पक्तियो मे प्रभावशाली ढग से प्रकट हुई है—

"अम्बर सामर देह झपाई।
चलहु तिमिर पथ समाई।"

शब्दार्थ—उपर सारी=ऊपर कर लो। मुखर=ध्वनित। मेखल=करधनी। कर निबारी=हाथ से थाम लो, या निवारण कर लो। अम्बर सामर=काला वस्त्र या साडी। झपाई=छिपा लो। तिमिर पथ=अन्धकार का मार्ग। समाई=लीन होकर। समुद=प्रफुल्ल। रभस रसी=आनन्द एव रसयुक्त। कुगत=दुष्ट। ससी=चन्द्रमा। आएल चाहिअ=इतस्ततः देखने से तात्पर्य है। सुमुखि=सुन्दर मुख-वाली। तोरा=तेरे। पिसुन-लोचन=चचल नयन। भम=भ्रमित। अलक=लट भालस्थल। अग बिलेपन=अगराग का लेप। करह बाधे=मत करो। कालिन्दि-तीर=यमुनातट। आओल=पहुँच गए है। गोकुल बीर=श्री कृष्ण। तयँ=तुम। अनुरागिनि=प्रेम करनेवाली, प्रेमिका। दूषन=दोष। भूषन=अलकार, गहना। नृपति-कुल-सरोरुह=राजाओ के कमल दल। रबि=सूर्य, यहाँ राजा शिवसिह का उपमान है।

(११८)

जागल घर पर नींद भेल भोर ।
सेजु तेजल उठि नंद-किसोर ।
सघन गगन हेरि नखतर पाँति ।
अवधि न पाओल छूटल राति ।
जलधरु रुचिहर सामर काँति ।
जुबति-मोहन बेस धरु कत भाँति ।
धनि अनुरागिन जानि सुजान ।
घोर अँधियारे कएल पयान ।
पिरित के ऐसन रीति ।
[illegible] पथ न मानय भीति ।
कुसुमित कानन कालिन्दि-तीर ।
तहँ चलि आएल गोकुल बीर ।
कबिसेखर पथ मीलल जाई ।
आएल नागर भेंटल राई ।

भवार्थ—पूर्व प्रसगक्रमानुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

घर मे जो जन जाग रहे थे अब नीद मे विभोर हो गए । श्री कृष्ण चुपके से शय्या से उठकर बाहर निकले और रात्रि के सघन नीरव आकाश पर उन्होने तारावलि देखी किंतु फिर भी वह यह न जान पाए कि रात कितनी अवधि पार कर चुकी है, कितनी व्यतीत हो चुकी है । श्याम के मेघ तुल्य शरीर तो वैसे ही सुन्दर एव मोहक था तिस पर भी उन्होने रमणियो को मोहित करनेवाले अनेक प्रकार से वेष धारण किए । सुन्दरी प्रेयसि राधा को अपनी महान् अनुरागिनी जानकर श्री कृष्ण रात्रि के उस घोर अन्धकार मे ही उससे मिलने एवं अभिसार करने के लिए सकेतस्थल की ओर प्रयाण कर चले । कविवर विद्यापति कहते है कि नायक के लिए परकीया नायिका की प्रीत की रीति ऐसी ही हुआ करती है कि वह सुनसान पथ पर निर्भय होकर खिचा ही चला जाता है, ऐसे जैसे श्री कृष्ण चल पडे । यमुनातट के प्रफुल्ल कानन मे गोकुल के वीर श्री कृष्ण आ पहुँचे । कविवर विद्यापति कहते है कि उस प्रेम-पथ पर चलकर आए श्री कृष्ण प्रिया राधा से मिल गए ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति ने सैद्धान्ति पक्ष का आधार लेकर परकीया नायिका के असीम आकर्षणमय रूप को यो प्रकट किया है—

"पर नारी पिरित क ऐसन रीति ।
चलल निभृत पथ न मानय भीति ।"

वास्तव में ऐसी प्रेम की रीति-नीति लोक-मर्यादा के बिरुद्ध होते हुए भी प्रेम-लक्षणा

भक्ति के अनुकूल मानी गई है। कुछ भी हो स्वच्छन्द कलावादी कृष्ण-भक्त कवियों ने इस प्रेम-पद्धति पर बडे मार्मिक एव चमत्कार-युक्त स्फुट काव्य की रचना की है। सम्भवत: विद्यापति के इसी प्रकार के काव्यादर्श की परम्परा मे अष्टछाप के कवियों—सूरदास, नददास एवं परमानन्ददास ने अपने शृगारी पदों की रचना की और आगे चलकर रीतिकाल में तो यही भक्ति प्रेम-लक्षणा अत्यन्त विकृत होकर बिहारी आदि कवियों की कविता मे सर्वथा लौकिक होकर व्यक्त हुई।

शब्दार्थ—जागल=जागे हुए। भोर=बेसुध हुए। भेल=हुए। सघन=शून्य, घना। हेरि=देखी। नखतर पाँति=तारावलि। अबधि न पाओल=समय की अवधि न जान सके। छूटल=बीतना। जलधर=मेघ, यहाँ [illegible] क शरीर का उपमान है। रुचिहर=शोभावान। सामर काँति=श्री [illegible] शरीर का श्याम वर्ण। जुबति-मोहन=रमणियो को मोहनेवाला। बेस=वेष, बनाव-शृगार। धरु=धारण किया। कत भाँति=कितनी ही प्रकार से। धनि=सुन्दरी, राधा। अनुरागिन=प्रेमिका, प्रेम करनेवाली। सुजान=श्री कृष्ण। कएल पयान=प्रयाण किया, चल दिए। पर नारी=परकीया। पिरित=प्रीति। ऐसन=ऐसी। निभृत पथ=सुनसान मार्ग। न मानय भीति=भय नही करते। तीर=तट। कालिन्दि=यमुना। गोकुल बीर=श्री कृष्ण। आएल=पहुँचे। नागर=चतुर नायक श्री कृष्ण। भेटल=मिले। राई=राधा।

(११६)

तपन क ताप तपत भेल महि तल।
तातल बालू दहन समान।
चढ़ल मनो-रथ भामिनि चलु पथ
ताप तपत नहि जान।
प्रेम क गति दुरबार।
नबिन जौबनि धनि चरन कमल जिनि
तइओ कएल अभिसार।
कुल - गुन - गौरब सति जस-अपजस
तून करि न मानए राधे।
मन मथि मदन महोदधि उछलल
बूड़ल कुल - मरजादे।
कत कत बिघिन जितल अनुरागिनि
साधल मनमथ तंत।
गुरुजन - नयन निबारइत सुबदनि
पाठ करए मन मंत॥

केलि कलावति कुसुम-सरिस-कुल
कौसल करल पयान ।
जत छल मनोरथ पूरल मनमथ
इह कविसेखर भान ।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसंगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

सूर्य की ज्वाला से पृथ्वी तप्त हो गई और बालू अग्नि की भाँति गर्म हो गई, लेकिन रति-मनोरथ रूपी रथ पर चढी हुई नायिका को वह गर्मी गर्मी-सी नही लगती है। प्रेम की गति तो कठोर है। नायिका की नई-नई जवानी है और उसके पग कमल के समान कोमल हैं, जिनके जलने की वह ज़रा भी चिन्ता नही करती और फिर भी समागम की कामना करती है अर्थात् वैसी दशा मे भी नगे पाँव अभिसार के लिए प्रियतम के पास जाती है। अपने कुल की मर्यादा और सती स्त्रियो का यश-अपयश अर्थात् पतिव्रता का पर-पुरुष सम्भाषण या मिलन से जो मान-हानि होती है उसको राधा तिनके के बराबर भी नही समझती है। उसके मन में काम रूपी महासागर इस गति से उमडा कि जिससे कुल की मर्यादा तिरोहित हो गई। आशय यह है कि नायिका के अतस्थल मे जब काम का प्रबल प्रचण्ड वेग उठता है तब वह सुध-बुध भूल जाती है और वैसी स्थिति में उसे कुछ ज्ञात नही रहता, काम-तुष्टि के लिए वह केवल प्रियतम को ढूँढती है। बड़ी-से-बड़ी बिघ्न-बाधाओं को प्रेम-रता नायिका ने जीत लिया है और काम-तन्त्र को सिद्ध किया है। अर्थात् घोर काम के वशीभूत होकर सर्वस्व त्याग दिया है। सुन्दरी नायिका ने गुरुजनो की आँखे बचाकर मन मे प्रेम की माला जपी है अर्थात् अपने प्रियतम की याद की है। काम-क्रीड़ा में निपुण नायिका कुसुमित सरोवर की ओर बडे छल से चल पडी है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे सुन्दरी नायिका, तुम्हारी जो भी मनोकामना थी, उसे कामदेव ने पूर्ण किया।

विशेष—अभिसारिका का चातुर्य एव उसकी अध काम-भावना का समन्वित दृष्टिकोण इस पद मे बड़े व्यग्यार्थ द्वारा पुष्ट किया गया है। वास्तव मे सच्चे प्रेम में लोक-लाज एव भय को तिलांजलि दी जाती है। प्रेम का मार्ग ही कुछ ऐसा है जो नीति, आदर्श एवं मर्यादा की स्वीकृति नही देता। यही भाव इस पद मे ध्वनित है। मीरा—दीवानी मीरा ने भी इसी प्रेम-मार्ग पर चलकर ही कहा था—

"संतन संग बैठ बैठ,
लोक लाज खोई ।"

"केलि कलावति कुसुम-सरिस-कुल।" पंक्ति मे अनुप्रास की छटा अनूठी है। "बूड़ल कुल-मरजादे" एवं "प्रेम क गति दुरबार" पक्तियों के द्वारा प्रेम-लक्षणा भावना का महत्त्व बड़ी उत्तमता से प्रकट किया गया है। सम्पूर्ण पद में रागात्मिकता प्रधान है और कलापक्षीय उपकरणों का सामंजस्य भी स्वाभाविक ढंग से हुआ है।

शब्दार्थ—तपन क ताप=सूर्य की ज्वाला। भेल=हुई। महि तल=धरती,पृथ्वी। तातल=गर्म। दहन=अग्नि। मनो-रथ=मन रूपी रथ। भामिनि=सुन्दरी, नायिका। चलु पथ=पथ पर चली। गति दुरबार=दुस्तर, कठिन गति। नबिन जौबनि=नया यौवन। धनि=सुन्दरी। चरन कमल=कमल के समान चरण। कुल-गुन-गौरब=कुल की मर्यादा। सति=सती। जस-अपजस=यश-अपयश। कत कत=कितनी-कितनी, बड़ी-से-बड़ी से मतलब है। बिघिन=विघ्न। तृन=तृण, तिनका। मदन=कामदेव। महोदधि=महासागर। बूडल=डूबना। साधल=साधना। गुरुजन-नयन=गुरुजनों की आँखे। निबारइत=बचाकर। तत=तंत्र। मत=मन्त्र। केलि कलावति=काम-क्रीड़ा मे निपुण। कौसल=छल, कपट। पयान=जाना। छल=थी। मनोरथ=मनोकामना। इह=यह। कबिसेखर=कविशेखर विद्यापति।

(१२०)

निअ मंदिर सयँ पग दुइ चारि।
घन घन बरिस मही भर बारि।
पथ पीछर बड़ गरुअ नितम्ब।
खसु कत बेरि नहीं अवलम्ब।
बिजुरि-छता दरसाबए मेघ।
उठए चाह जल धारक थेघ।
एक गुन तिमिर लाख गुन भेल।
उतरहु दखिन भान दुर गेल।
ए हरि जानि करिअ मोयँ रोस।
आजुक बिलम्ब दइब दिअ दोस।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है कि नायिका अपने महल से दो-चार पग ज्योही आगे बढी त्योही घने बादलो से घनघोर वृष्टि होने लगी और पृथ्वी पर सर्वत्र जल भर गया। एक तो पथ पर विच्छलन हो गई और फिर उसका नितम्ब बहुत ही भारी था, इसलिये वह अपने को सभाल न सकी और गिर पडी; और यह भी कि उसे बचाव का कोई सहारा नही मिला। बादल अपने भीतर से बिजली की छटा इस तरह दिखला रहा था, जिससे मूसलाधार वृष्टि की सम्भावना प्रतीत हो रही थी। एक गुना अन्धकार लाख गुना सघन बनकर छा गया, जिससे दिशा अज्ञात-सी हो गई, उत्तर-दक्षिण दिशा का ज्ञान भी जाता रहा। यह देखकर नायिका भयभीत-सी यह सोच-सोचकर चिंतित हो रही थी कि उसका प्रियतम कृष्ण—विलम्ब से जाने पर—उसके ऊपर क्रोधित होगा, लेकिन आज देर होने की जिम्मेबारी का अपराध तो दैव या भाग्य के ऊपर है, दोषी तो वही होगा जिसने मूसलाधार पानी बरसाकर पथ मे रुकावट पैदा की है।

विशेष—नायिका की कामोत्सुकता एवं उसकी रुकावट के लिये बादलों का घिर आना—इन दोनों बातो का बड़ा वैचित्र्यपूर्ण संयोग उपस्थित किया गया है। उक्ति-चमत्कार के लिये यह पक्ति बडी सुन्दर प्रयुक्त की गई है—

"एक गुन तिमिर लाख गुन भेल।"

कभी स्वभावोक्ति भी काव्य के लिये बड़ी भावोत्कर्षकारी सिद्ध होती है। इन पक्तियो मे स्वभावोक्ति की छटा दर्शनीय है—

"ए हरि जानि करिअ मोयँ रोस।
आजुक बिलम्ब दइब दिअ दोस।"

यहां नायिका की दयनीयता एवं विवशता का भाव भी बड़ा वैदग्धपूर्ण कहा जायगा। प्राकृतिक छटा का चित्रवत् वर्णन इस पक्ति मे बडा प्रभावशाली बन पड़ा है—

'बिजुरि-छता दरसाबए मेघ।"

इस पक्ति को पढ़कर सहसा महाकवि तुलसीदास जी की इस पक्ति का स्मरण हो आता है—

"दामिनी दमक रही घन माहीं।"

शब्दार्थ=निअ मदिर सयँ=अपने महल से। दुइ चारि=दो-चार। घन घन बरिस=घनघोर बादल बरसा। मही भर बारि=पृथ्वी पर जल भर गया। पीछर=विच्छलन। गरुअ=भारी। नितम्ब=चूतड। खसु कत बेरि=गिरते समय। अवलम्ब=सहारा। बिजुरि-छता=बिजली की छटा। दरसावए=दिखाना। मेघ=बादल। जल धारक थेघ=मूसलधार वृष्टि। तिमिर=अन्धकार। लाख गुन=लाख गुणा। भेल=हुआ। उतरहु=उत्तर। दखिन=दक्षिण। भान=ज्ञान। मोयँ रोस=मुझ पर क्रोध। आजुक=आज के। दइब=दैव, देवता। दोस=दोष।

(१२१)

माधब, करिअ सुमुखि समधाने।
तुअ अभिसार कएलि जत सुन्दरि
कामिनि करु के आने।
बरिस पयोधर धरनि बारि भरि
रयनि महा भय भीमा।
तइओ चललि धनि तुअ गुन मन गुनि
तसु साहस नहि सीमा।
देखि भवन-भित लिखित भुजँग-पति
तसु मन परम तरासे।
से सुबदनि कर झपइत फनिमनि
बिहुसि आएलि तुअ पासे।

निग्र पहु परिहरि ग्रइलि कमल-मुखि
परिहरि निग्र कुल गारी।
तुग्र ग्रनुराग मधुर मद मातलि
किछु न गुनलि बर नारी।
ई रस - रसिक बिनोद क बिन्दक
कबि बिद्यापति गावे।
काम प्रेम दुहु एक मत भए रहु
कखने की न कराबे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

सखियाँ कृष्ण से कह रही है कि हे माधव! तुम सुन्दरी की करतूतो का विचार ग्रथवा समाधान तो करके देखो कि जितना तुम्हारे समागम के लिये उसने साहस किया है ग्रर्थात् जिस परिश्रम से, जिस तूफानी ग्रौर कठोर वातावरण से गुजरकर यह तुम्हारे पास ग्रभिसार के लिये ग्राई है, उतना क्या कोई ग्रन्य कामिनी कर सकेगी ? इतनी घनघोर वर्षा हुई कि पृथ्वी पानी से भर गई थी ग्रौर फिर उतनी महाभयावनी काली रात! तो भी सुन्दरी है कि मन मे तुम्हारे गुण का ग्रनुमान करती हुई पास चली। सचमुच उसकी इस हिम्मत की कोई सीमा नही है। जो महल की दीवार पर रचित नागराज के चित्र को देखकर यदा-कदा मन मे भयभीत हो जाया करती थी, वही सुन्दरी सर्प की मणि को हाथ से ढँककर सोल्लास हँसती हुई तुम्हारे पास ग्रा गई है। ग्रपने पति को छोड़कर, ग्रौर ग्रपने परिवार के लोगो की गाली तथा ग्रपवाद का भय छोडकर तुम्हारे मधुर ग्रनुराग के मद मे उन्मत्त हुई मतवाली-सी यह श्रेष्ठ नारी निडरता से तुम्हारे पास ग्रा पहुँची है। इस रस के रसिक प्रेमी ग्रौर रस को स्थान देनेवाले कविवर विद्यापति गुण-गान करते है ग्रौर कहते है कि यदि काम ग्रौर प्रेम दोनो समरस हो जाए तो दोनो मिलकर पता नही कब क्या करा दे!

विशेष—प्रेम को ग्रधा कहा गया है। उसकी महत्ता इसी बात मे है कि वह ग्रपने प्रेम-पात्र के लिये ग्रसम्भव, भयकारी एव कठिन से कठिन कार्य को ग्रभयतापूर्वक करा डाले। कबीर के शब्दो मे "यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहि। सीस उतारे भुईं धरे तब बैठे घर माहि।" इस पद मे कविवर विद्यापति की नायिका भी प्रेम के इसी कठिन ग्रादर्श का परिपालन किया चाहती है। कितनी सचित्र भावाभिव्यक्ति है इन पक्तियो मे—

"देखि भवन-भित लिखित भुजँग-पति
तसु मन परम तरासे।

से सुबदनि कर झपइत फनिमनि
बिहुसि आएलि तुअ पासे ।"

महाकवि तुलसीदास जी की सीता भी तो इतना ही भय माननेवाली नारी थी, वह चित्र-लिखित बानरों को देखकर डरती थी—

"कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तय हेतु तजा सब भोगू।
सिय बन बसिहि तात केहि भाँति। चित्रलिखित कपि देख डेराती।"

(अयोध्याकांड पृष्ठ ३८२)

अंतत काम और प्रेम की समरसता का भाव व्यजित कर विद्यापति ने उसके बीच साहस, त्याग एव रस का महत्त्व बडे सुन्दर ढग से व्यक्त किया है। परकीया का प्रेम जहा एक ओर बडा सम्मोहनकारी होता है वहा वह अपने साथ नारी का लोकापवाद भी सिर उठाए चलता है किन्तु जिस प्रकार ब्रह्म पुरुष के लिये आत्मा को यह ससार छोड़कर जाना ही होता है इसी प्रकार विद्यापति भी नायिका को भेज रहे है—

"निअ पहु परिहरि अइलि कमल-मुखि
परिहरि निअ कुल गारी ।"

लोक-लाजहीन ऐसा प्रेम लौकिक होकर भी पारलौकिक कहा जायगा।

शब्दार्थ=करिअ=करना। सुमुखि=सुन्दर मुख वाली, सुन्दरी। समधाने=समाधान। तुअ अभिसार=तुम्हारे पास अभिसार। कएलि=किया। जत=जितना। आने=दूसरा कोई, अन्य। बरिस=बरसा। पयोधर=बादल। धरनि=पृथ्वी। बारि=पानी। भरि—भर गया। रयनि=रात्री। महा भय=बहुत भयावनी। भीमा=काली। तइओ=तो भी, तथापि। धनि=सुन्दरी। तुअ=तुम्हारे। तसु=तिसके। गुन मन गुनि=गुण का मन ही मन मे अनुमान करती हुई। भवन-भित=महल की दीवार। लिखित=रचित। भुजँग-पति=नागराज। तरासे=डरती थी। सुबदनि=सुन्दर बदन वाली सुन्दरी। फनिमनि=सर्प की मणि। बिहुसि=हँसती हुई। आएलि=आई। तुअ=तुम्हारे। निअ=निज, अपना। पहु=पति। परिहरि=त्यागना, छोड़ना। गारी=गाली। ई=यह। क=का। दुहु=दोनो। रहु=रहे। की=क्या। करावे=करा दे।

(१२२)

राहु मेघ भए गरसल सूर।
पथ परिचय दिबसहि भेल दूर।
नहि बरिसए अबसन नहि होए।
पुर परिजन संचर नहि कोय।
चल चल सुन्दरि कर गए साज।
दिवस समागम सपरत आज।

गुरुजन परिजन डर करु दूर।
बिनु साहस अभिमत नहि पूर।
एहि संसार सार बथु एक।
तिला एक संगम, जाब जिब नेह।
भनइ बिद्यापति कबिकंठहार।
कोटिहुँ न घट दिबस-अभिसार।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

राहु ने बादल का रूप धारण कर भगवान भास्कर को ग्रस लिया; अर्थात् उसकी ज्योति का अपहरण कर लिया, अन्धकार कर दिया। दिन मे ही पथ का परिचय अज्ञात हो गया अर्थात् घोर अन्धकार फैल जाने के कारण रास्ते का पता चलना दुष्कर हो गया। न तो मेघ बरसता ही है और न विलय ही होता है। गाव या नगर का कोई आदमी भी रास्ते पर चलता हुआ दिखलाई नही पडता। सखियाँ कहती हैं कि हे सुन्दरी! चलो-चलो, साज-शृ गार कर लो अर्थात् यह अभिसार का अच्छा मौका है। दिन मे ही तम्हारा मिलन-कार्य सम्पन्न हो जाएगा क्योकि सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ है। गुरुओ और परिवार के लोगों का भय छोड दो, साहस से काम लो, क्योकि बिना साहस के किसी भी मनोरथ की परिपूर्ति नही होती। इस ससार मे मूल-तत्त्व केवल एक ही है—बस क्षण-भर का मिलन समागम। जीवन के साथ-साथ केवल अमर स्नेह ही जाता है। कवियो के कठो के हार सुकवि विद्यापति कहते है कि कोटि-कोटि बार करने पर भी दिन का अभिसार कभी सफल या सतुष्टिकारक नही होता—जी चाहता है सदा किया ही जाता रहे।

विशेष—दिवाभिसार यद्यपि कम ही सम्पन्न होता है क्योकि उसके बीच लोक-कर्तव्य, लोक-मर्यादा आदि की अनेक सीमाएँ होती है तदपि वह बडा मधुर होता है, ऐसा अभिमत बताया है इस पद मे कविवर विद्यापति ने। इसके लिए उनकी यह पक्तिया बडी प्रभावपूर्ण है—

"भनइ बिद्यापति कबिकंठहार।
कोटिहुँ न घट दिबस-अभिसार।"

"कोटिहुँ न घट" उक्ति काफी मनोमुग्धकारी बन पड़ी है। फ्रायड के अनुसार तो यह ससार योनि सम्बन्ध का परिणाम ही है पर विद्यापति ने उसकी सत्ता को क्षणिक भी कहा है और जीवन मे अमर भी—इन दो विरोधी बातों को किस खूबी के साथ उन्होने एक ही तत्त्व के अंतर्गत रख छोडा है, जरा सूझ देखिए—

"एहि संसार सार बथु एक।
तिला एक संगम, जब जिब नेह।"

यहाँ "तिला एक संगम" क्षणिक सुख के प्रति विरक्ति देता है तो "जब जिब नेह" प्रेम समागम की अमरता के प्रति घोर आसक्ति देता है। बदराये-बदराये दिवस

के वातावरण का चित्र इन पक्तियों मे साफ उतर आया है—

"राहु मेघ भए गरसल सूर ।
पथ परिचय दिबसहि भेल दूर ।"

सम्पूर्ण पद मे कवि के हृदय की वासना एव भावना की ज्वाला प्रज्ज्वलित है जो रसिको को उन्माद-रस-सागर मे डूब जाने को प्रेरित करती है।

शब्दार्थ—सूर=सुर्य, भास्कर। गरसल=ग्रस लिया। दिबसहि=दिन में ही। भेल=हुआ। नहि बरिसए=नही बरसता है। पुर=गाव, नगर। परिजन=परिवार के लोग। समागम=मिलन। सपरत=सम्पन्न, पूर्ण। डर करु दूर=भय को त्याग दो, छोड़ दो। अभिमत=मनोकामना, मनोरथ। तिला एक संगम=पल भर का मिलन। जाब=जाता है। जिब=जीवन। नेह=स्नेह। भनइ=कहता है। कबिकंठ-हार=कवियों के कठ की माला, श्रेष्ठ कवियो से आशय है।

(१२३)

आज पुनिम तिथि जानि मोयँ अएलिहुँ
उचित तोहर अभिसार ।
देह-जोति ससि-किरन समाइति
के बिभिनाबए पार ।
सुन्दरि अपनहु हृदय बिचारि ।
आँखि पसारि जगत हम देखलि
के जग तुअ सम नारि ।
तोहें जनि तिमिर हीत कए मानह ।
आनन तोर तिमिरारि ।
सहज बिरोध दूर परिहरि धनि
चलु उठि जतए मुरारि ।
दूती बचन हीत कए मानल
चालक भेल पँचबान।
हरि-अभिसार चललि बर कामिनि।
बिद्यापति कबि भान।

भावार्थ—पूर्व प्रसगक्रम के अन्तर्गत कविवर विद्यापति लिखते हैं—

सखी राधा से कहती है कि हे सखी! आज पूर्णिमा का शुभ मूहूर्त जानकर मैं तुम्हारे पास आई हूँ, आज तुम्हारा अभिसार पूर्णत. उचित होगा। तुम्हारे शरीर की ज्योति चन्द्रकिरण मे प्रविष्ट हो जायेगी, जिसको फिर कौन अलग कर सकता है अर्थात् चन्द्रमा की ज्योति और तुम्हारी ज्योति दोनो मिलकर एक हो जाएँगी, तुम महान् सुन्दरी बन जाओगी। हे सुन्दरी! तुम अपने मन मे ही विचार कर लो। मैंने आँखें फैला-

फैलाकर जगत् मे ढूंढा, किन्तु तुम जैसी कोई अन्य सुन्दर स्त्री कही नही दिख पाई। तुम अपनी भलाई का स्वरूप अंधेरे को मत समझो, क्योंकि तुम्हारा मुख तिमिर-विरोधी चन्द्रमा के समान, ज्योतिर्मय और रूपवान है। आशय यह है कि तुम अपने को कुरूपिणी न समझो और अधकार के अन्दर, उसे कुरूपता को छिपा लेने वाला, अपना हितेषी जानकर न छिपो क्योकि वहाँ भी तो तुम्हारा चन्द्रतुल्य मुख उसकी छाती चीरकर—शत्रु रूप मे—प्रकाशित होता है। इस प्रकार तुम्हारी मुखाभा को बढानेवाला अधकार ही तो है। चन्द्रमा और अधकार का सयोग होना असम्भव है—ऐसी सहज प्रतिक्रिया एवं दुराशा त्याग दो और वहाँ चलो जहाँ तुम्हारा प्रियतम मुरलीधर है। यों नायिका को उस दूती की बातें उचित जॅची और साथ ही कामदेव भी उसे आगे बढानेवाला उत्प्रेरक लगा। कविवर विद्यापति कहते हैं कि वह सुन्दरी इस प्रकार कृष्णाभिसार के लिये चल पड़ी।

विशेष—प्रस्तुत पद मे नायिका के मुख-सौन्दर्य की उपमा चन्द्रमा से तो दी ही गई किंतु सौन्दर्य की अतिश्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये यह कल्पना बडी बारीक एव मौलिक की गई है—

"देह-जोति ससि-किरन समाइति
के बिभिनाबए पार।"

वास्तव मे सुन्दर नारी की कान्ति मे यदि शशि की किरणे समाहित हो जाएंगी तो वह स्वयमेव स्थायी बन जायगी वैसे तो वह मुरझा जाने वाली ही रहती। अधकार कुरूपिणी के लिये हितेषी सिद्ध हो सकता है क्योकि वह उसकी कुरूपता को छिपा सकता है किन्तु विद्यापति की नायिका भला कुरूपिणी कहाँ? अत वह अधकार को अपना मित्र क्यो माने, क्यो छिपे। उसका तो मुख ही चन्द्रमा है जो अधकार की छाती चीरकर भी चमकेगा। इस रूप-अरूप के सौन्दय-भाव का सघर्ष एव रूप की निश्चित विजय का रूपक इन पक्तियो मे बड़ा कलात्मक बन सका है—

"तोंहे जनि तिमिर हीत कए मानह
आनन तोर तिमिरारि।"

किन्तु फिर भी चद्र और अधकार के इस सहज विरोध को मिलन-मौके पर विद्यापति शुभ न समझकर केवल नायिका को सभोग के लिये ही प्रेरित करते हैं। कितनी समन्व्यात्मक प्रेरणा है यह—

"सहज बिरोध दूर परिहरि धनि
चलु उठि जतए मुरारि।"

रूप-राग और सम्भोग-रस का सगम लगता है यह पद। "आँखि पसारि" मे आँख फाडकर देखनेवाले मुहावरे का प्रयोग सम्पूर्ण जगत् मे सुन्दरता देखने के लिये बड़े विराट् रूप मे हुआ है।

शब्दार्थ—पुनिम तिथि=पूर्णिमा की तारीख। मोयँ=मै। अएलिहुँ=आई हूँ। तोहर=तुम्हारा। जोति=ज्योति, किरण। ससि=शशि, चन्द्रमा। समाइति=प्रविष्ट होना, समा जाना। बिभिनाबए पार=अलग नही कर सकता। अपनहु=अपने। पसारि=फैलाकर। आँखि=आँख। देखलि=देखी। तुअ=तुम्हारे। सम=समान। तोहे=तुम्हे। तिमिर=अन्धकार। हीत=भलाई करने वाला, मित्र। तोर=तुम्हारा। तिमिरारि=अंधेरे का शत्रु उजाला, चन्द्रमा। परिहरि=त्यागना। जतए=जहाँ। मुरारि=मुरली वाला, कृष्ण। दूती=सदेश देने वाली। मानल=मान ली। चालक=चलाने वाला, प्रेरक। पँचबान=अनग, कामदेव। चललि=चल पड़ी।

(१२४)

अरुन किरन किछु अम्बर देल।
दीप क सिखा मलिन भए गेल।
हठ तज माधब जएबा देह।
राखए चाहिअ गुपुत सनेह।
दुरजन जाएत परिजन कान।
सगर चतुरपन होएत मलान।
भमर कुसुम रमि न रह अगोरि।
केओ नहि बेकत करए निअ चोरि।
अपनयँ धन हे धनिक धर गोए।
परक रतन परगट कर कोए।
फाब चोरि जौं चेतन चोर।
जागि जाए पुर परिजन मोर।
भनइ बिद्यापति सखि कह सार।
से जीबन जे पर उपकार।

भावार्थ—पूर्व वर्ण्य विषयक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

बालरवि की लघु रश्मिया अब अम्बर तक फैलने लगी है और दीप की लौ भी मद पड़ चली है, क्योकि सवेरा हो चला है। नायिका राधा कहती है कि जिद न करो, हे कृष्ण! मुझे अब चली जाने दो—यदि इस अभिसार को तुम गुप्त रखना चाहते हो। नही तो कोई देख लेगा और बदनामी हो जायगी। दुष्ट लोग हमारे इस अभिसार की चर्चा को स्वजनों के कानो को सुना देगे और यों हमारे इस गुप्त अभिसार के सारे चातुर्य खुलकर विकृत रूप मे किवा लाछन मे परिणत हो जाएँगे। लोग हमे भला-बुरा कहे-सुनेंगे। देखो, भँवरा कुसुम के साथ रमण कर उसे अगोरे अथवा लिपटाए ही नही रहता। कोई भी तो अपनी प्रणयाभिसार की चोरी को प्रकट नही करता। धनी जब अपने धन को भी गुप्त या छुपाए रखता है तब फिर कोई दूसरे की रत्नराशि को क्यों प्रकट करे?

आशय यह है कि मैं—राधा—परकीया हूँ, ऐसी दशा में तुम्हारे—(श्री कृष्ण के लिए) साथ मेरा अवैध अभिसार तो प्रकट होना ही नहीं चाहिये, तुम्हें उसे गुप्त ही रखना चाहिये क्योंकि साधारणतः स्वकीया के साथ भी किया हुआ अभिसार समझदार पुरुष गुप्त ही रखते हैं। नायिका या राधा कहती है कि हे माधव, चतुर चोर की चोरी ही अच्छी रहती है। आशय है कि तुम मेरे साथ चोरी-चोरी अभिसार करो, यही अच्छी बात होगी। देखो, मुझे छोड दो नही तो सब अपने-पराये लोग जाग जाएंगे। कविवर विद्यापति कहते है;कि सखी कह रही है—'वही जीवन श्रेष्ठ है जो परोपकार करे।' आशय है कि परकीया के साथ अभिसार कर उसे सन्तुष्टि प्रदान करने वाला जीवन ही अच्छा है, जैसे राधा के साथ रमण करने वाले श्री कृष्ण है।

विशेष—परकीया के साथ सम्पन्न हुई अभिसार-क्रिया का महत्त्व चतुर चोरी की तुलना द्वारा बड़ी कुशलता से स्थापित किया गया है। यहां कवि की वक्रोक्ति बड़ी प्रभावशाली बन पड़ी है—

"अपनयँ धन हे धनिक घर गोए।
परक रतन परगट कर कोए॥"

अथवा—

"केओ नहि बेकत करए निअ चोरि।"

रति-अतृप्ता परकीया नायिका के साथ उसकी तृप्ति के लिए किया गया अभि-सार 'परोपकार' सूचक है! इस कथन मे विद्यापति का वाग-वैदग्घ बडा यथार्थ एव मनोविज्ञान समस्त है।

अभिसार मे लोक-मर्यादा का भय गम्भीर होता है। अतः चतुर नायिका अपनी लाज रखने के लिए बडे उक्ति-चातुर्य से कहती है—

"फाब चोरि जौं चेतन चोर।
जागि जाए पुर परिजन मोर॥"

प्रात कालीन बालरवि की किरणो का अम्बर पर उन्मुक्ता से प्रसरण-दृश्य इन पक्तियो मे मनमोहक रूप मे हुआ है। साक्षात् प्रातःकालीन किरणमय प्राकृतिक वातावरण का चित्र सश्लिष्टता से अकित है—

"अरुन किरन किछु अम्बर देल।"

और तब रात की झिलमिलाती दीप-शिखा की दशा कितनी दयनीय एव मर्मस्पर्शी ढंग से व्यक्त की गई है—

"दीप क सिखा मलिन भए गेल।"

यहां कवि की सूक्ष्म कल्पना का भावात्मक अकन दर्शित होता है।

शब्दार्थ—अरुन किरन=बालरवि की लाल किरण। क=की। सिखा=लौ। हठ तज=जिद छोड़ो। माधव=श्री कृष्ण। जएबा देह=जाने दा। गुपुत=गुप्त।

सनेह=प्रेम । दुरजन=दुर्जन, दुष्ट । परिजन=अपने लोग । सगर=सारा । मलान=क्षीण । रमि=रमण करके । अपनयँ=अपना । धनिक=धनी व्यक्ति । केओ=करता है । बेकत=प्रकट । निअ=निज । परक=दूसरे का । परगट=प्रगट । फाब=फबना, उचित या सुन्दर लगना । चेतन चोर=चतुर चोर । मोर=मेरे । से जीबन=वह जीवन । पर उपकार=दूसरो की भलाई करने वाला । जे=जो ।

(१२५)

दुहु रुप लावनि मनमथ मोहनि
निरख नयन भूलि जाय ।
रजनि-जनित रति बिशेष अलापन
अलप रहल दुहु गाय ।
चाँचर कुन्तल ताहे कुसुम-दल
लोलत आनहि भाँति ।
दुहु दुहु हेरि मुख हृदय बाढ़ए सुख
बोलत भूलत पाँति ।
निज निअ मन्दिर नागरि नागर
चलइत करु अनुबन्ध ।
बिरह-बिषानल दुहु तनु जारल
लोचन लागल धन्द ।
भीतक चीत पुतुलि सन दुहु जन
रहल बिदायक बेला ।
प्रेम-पयोनिधि उछलि उछलि पड़
चेतन अचेतन भेला ।
दुहु जन चीत-रीत हेरि सहचरि
छन छन गगनहि चाय ।
रजनि पोहाओल सब जन जागल
से उर अधिक डराय ।
सेखर बुझि तब करि कत अनुभब
दुहु सँग भंग कराब ।
निज निज मन्दिर गमन करल दुहु
गुरुजन भेव न पाब ।

भावार्थ—अभिसार के प्रणय-प्रसग को समाप्त करते हुए इस पद में कविवर विद्यापति लिखते हैं—

नायक-नायिका किंवा राधा-कृष्ण—इन दोनों के रूप-लावण्य का दर्शन तो कामदेव तक को मुग्ध कर देने वाला है। उसे देखकर नेत्र ठिठक कर रह जाते हैं—कौतुहल मे पड जाते हैं। रात्रि के समागम एव विशेष मधुर सभाषण के कारण दोनो अलसाए हुए हैं। चंचल कुन्तल राशि और उसपर पुष्प-पखुरियों के लगाने के कारण वह कुछ और ही भाँति से शोभायमान लगती है। परस्पर दोनों एक-दूसरे के मुख को देखकर अपने हृदय के सुख की अभिवृद्धि करते हैं—अपार सुख अनुभव करते है। सुख के इस अतिरेक मे बोलते-बोलते बात करना भूलते है। आशय यह है कि काम-भाव के अतिरेक मे वे भूली-भूली-सी बाते करते हैं। अपने-अपने घर के लिए प्रस्थान करते समय वे नायक-नायिका प्रेमालाप करते चलते हैं। वे कुछ समय मे एक-दूसरे से बिछड जाएँगे—यह सोच-सोचकर उन दोनों के शरीर विरहाग्नि मे जलने लगे है और नेत्रो मे चिंता छा गई है। विदा-वेला मे दोनों के चित्त भीत और कातर हो गए एव वे दोनो जड पुतली की नाई निष्क्रिय हो गए। आशय यह है कि एक दूसरे से विदा लेते समय नायिका-नायक निर्निमेष दृष्टि से परस्पर देखने लगे और उनमे ठहरी हुई पुतली की भाँति जडता आ गई। प्रेम-सिंधु मे ज्वार आ गया, वह उछल हो-हो उठा और वे दोनों चेतन-अचेतन की सज्ञा से शून्य हो गए—एक दूसरे के प्रेम-भाव मे लीन हो गए। उन दोनों की ऐसी हार्दिक विषम दशा को देखकर सखी रह-रहकर और चितातुर होकर आकाश की ओर देखने लगी। आशय यह है कि नायक-नायिका की ऐसी काम-जनित अवस्था को देखकर सखी को चिंता हुई कि कही कोई देख न ले क्योकि आकाश से रात जा रही थी और प्रात आ रही थी और सब जागने वाले थे। कविचन्द्र विद्यापति कहते है कि दोनो को अलग-अलग कराने के लिए कितने ही प्रकार के चतुर-अनुभवो का आधार लिया गया और उनके परिणामस्वरूप वे दोनो अपने-अपने घर चले गए। इस प्रकार बडे-बूढों ने नायिका और नायक के उस चोरी-चोरी रात्रि-समागम का भेद न जाना।

विशेष—अभिसार के पश्चात् नायक-नायिका की विदा-वेला का बडा अनूठा मनोविज्ञान सम्मत चित्रण कविवर विद्यापति ने इस पद मे किया है। दो काम-भाव भरित हृदय जब बिछुडते हैं तब उनके शरीर को जो कष्ट अनुभव होता है उसकी अभिव्यक्ति इन पंक्तियो मे बड़ी स्वाभाविकता से हुई है—

"निज निज मन्दिर नागरि नागर
चलइत करु अनुबन्ध।
बिरह-विषानल दुहु तनु जारल
लोचन लागल धन्द।"

मनोभावों एव अनुभावों का प्रकाशन भी यहां उत्कृष्ट रूप से हुआ है। "छन छन गगनहि चाय" मे सवेरा हो जाने एवं नायिका-नायक को लोगों के देखने की

व्यंजना बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। नायिका की सखियाँ बडी चतुर होती है; वे उसे लोकापवाद से बचाने के लिए अपने विशिष्ट काम-अनुभव का मत्र छोडती है। इसी तथ्य का प्रकाशन "कत अनुभव" शब्द-पद द्वारा ध्वनित है। 'बिरह-बिषानल' एव 'प्रेम-पयोनिधि' मे रूपक सुन्दर है।

शब्दार्थ—दुहु=दोनो। मनमथ=कामदेव। निरखि=देखकर। रजनि-जनित रति=रात में हुआ समागम। बिशेष अलापन=मधुर प्रेमालाप। अलप रहल=अलसाए हुए। चाँचल कुन्तल=चंचल केशराशि। मन्दिर=घर। अनुबन्ध=प्रेमबोल। बिषानल=विष की आग। सहचरि=सखी। चीत-रीत=हृदय की स्थिति। प्रेम-पयोनिधि=प्रेम रूपी सागर। पोहाओल=व्यतीत होना। गुरुजन=बडे-बूढे। जागल=जगना। बिदायक बेला=विदा का वक्त। जारल=जलाता है। धन्द=चिता। लोलत=शोभित होना। आनहि भाँति=और ही प्रकार।

छलना

(१२६)

मन्दिर अछलों सहचरि मेलि।
परसंगे रजनि अधिक भई गेलि।
जब सखि चललहुँ अप्पन गेह।
तब मझु नीद भरल सब देह।
सूति रहल हम करि एक चीत।
दैब-बिपाक भेल बिपरीत।
न बोल सजनि सुन सपन-सम्बाद।
हँसइत केहु जनि कर परिवाद।
बिषाद पडल मझु हृदयक माँझ।
तुरित घोचायलौं नीबिक काज।
एक पुरुष पुनु आओल आगे।
कोप अरुन आँखि अधरक दागे।
से भय चिकुर चीर आनहि गेल।
कपाल काजर मुख सिन्दुर भेल।
अंतर कहब केह अपजस गाब।
बिद्यापति कह के पतिआब।

प्रसंग-संकेत—इस प्रसग के अंतर्गत कविवर बिद्यापति नायिका के अभिसार के पश्चात् हुए क्षत-विक्षत रूप का चित्रण किया चाहते है किन्तु भला सुचतुरा नायिका योही कैसे स्वीकारेगी कि उसने किसी परपुरुष से सभोग कराया है। अत. वह अपनी पूरी चतुराई से अपने प्रणय-सम्बन्ध को छिपाने का प्रयत्न करती है—सभी करते है। जवानी मे न जाने कितने गुपचुप अभिसार करने का मौका मिलता है पर सद्चरित्रता एव चतुराई का आवरण, उक्ति की छलना ही उसे छिपाने मे समर्थ होती है। कविवर बच्चन के शब्दो मे—

"चली सरल शुचि सीधे पथ पर किसकी रामकहानी,
कुछ अवगुन करही जाती है चढ़ती बार जवानी।

यहाँ दूध का धोया कोई हो तो आगे आए।
मेरी आँखों में फिर भी खारा पानी।"

तो प्रस्तुत प्रसंग मे विद्यापति की अभिसार-क्षता सुचतुरा नायिका भी अपने अभिसार को छिपाने का भरसक प्रयत्न कर रही है। वह अनेक रूपको और चातुर्यो से अपने सभोग की कहानी छिपा रही है और इसी कला को 'छलना' नाम से अभिहित किया गया है जिसमे त्रिया-चरित्र शृगार-रस से स्नात हुआ मनोमुग्धकारी बन पडा है।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—नायिका कहती है कि जब मै अपने सदन मे ही थी कि तभी मुझे मेरी एक सखी मिली और उससे बाते करते ही अधिक रात्रि व्यतीत हो गई। हे सखी ! जब मै अपने घर की ओर चली तब मेरा सारा शरीर नीद से भरपूर होकर बोझिल हो गया। मै तो चित्त को एकाग्र करके सो गई, किन्तु दुर्भाग्यवश उसका फल अनुकूल नही फला—विपरीत घटना घट गई। हे सखी ! मेरे स्वप्न की बातो को सुनकर मत बोलना, नही तो हँसते हुए कोई देखकर उसका शिकवा न करने लगे अर्थात् तुम्हारे कुछ चर्चा चलाने का काम-भाव लोग ताड लेगे। मेरे हृदय के बीच विषाद उत्पन्न हुआ और मैने तुरत नीबी-बन्धन—नारे—को ढीला कर दिया। उसी समय एक व्यक्ति मेरे आगे आया, जिसकी आँखे क्रोध—काम-भाव के उद्वेग—से रक्तिम हो रही थी और उसने अपने दातो से मेरा होठ इस तरह पकडा—पकडकर चूसा—कि उस पर दाग हो गया। उसके डर से मेरी केशराशि और साडी का रंग-ढग ही कुछ और हो गया—वह अस्त-व्यस्त हो गया—और माथे पर काजल तथा मुख मे सिन्दूर लग-लिपट गया। आशय यह है कि नायक ने स्वप्न मे नायिका के साथ इस तरह समागम किया कि जैसे वह नशे मे हो। नायिका कहती है कि हे सखी ! मै मन की ऐसी न कहने योग्य बाते भला किससे कहूँ और यदि कहूँ भी, तो वह अपयश का गीत बन जायेगा। कविवर विद्यापति कहते है कि ऐसी बातो मे भला विश्वास किसे होता है, इसलिये मन की बात मन ही मे रहनी चाहिये, बस मूक रहा जाय।

विशेष—स्वप्न मिलन सम्बन्धी प्रेम भी होता है जिसे शुक्ल जी ने जायसी के प्रेम-विवेचन मे कहा है। वास्तव मे यह तो सच है कि जिस भाव का—विशेषतः काम-भाव का—हर क्षण अधिक अनुभव किया जाता है वह कभी न कभी स्वप्न मे रूप धारण कर आता है। यह अवचेतन मन का गम्भीर विषय है। स्वप्नदोषादि विकार भी इसी मन-कुण्ठा या स्वप्न-क्रिया का परिणाम है। इस पद मे नायिका छलना से इसी स्वप्नाभिसार का रहस्याधार अपनी लोकलाज को रखने के लिए ले रही है जिसमे सभोग-रस का निर्झर झर रहा है, इन पक्तियों मे कितना नशा है—

"एक पुरुष पुनु आओल आगे।
कोप अरुन आँखि अधरक दागे।

से मय चिकुर चीर आनहि गेल।
कपाल-काजर मुख सिन्दुर भेल।"

स्वप्न-सम्भोगिता नायिका का यहाँ बडा सश्लिष्ट चित्र है। वास्तव मे इस प्रकार की पदाभिव्यक्तिया विशुद्ध कला का परिचय कराती है। यहाँ नीति, मर्यादा और भक्ति का आदर्श स्थापित करना भूल होगी और काव्य रस परिपाक मे बाधा भी। इनका आनन्द बस गूँगे के गुड के स्वाद की भाँति लेना ही वाछनीय होता है। विद्यापति इसी स्वाद के रसिक कवि है, भक्त नही।

शब्दार्थ—मन्दिर अछलो=जब महल मे थी। सहचरि=सगिनि। मेलि=मिल गई। परसगे=बातचीत का सिलसिला। भई गेलि=बीत गई, हो गई। अप्पन=अपना। गेह=घर। मझु=मुझे। भरल सब देह=सारा शरीर बोझिल हो गया। सूति रहल=सो रही। एक चीत=चित्त एकाग्र। दैब-बिपाक=दुर्भाग्यवश। परिबाद=अपवाद, शिकवा। क माँझ=के बीच। तुरित=तुरत। घोचयलौ=ढीला कर दिया। नीबिक काज=साडी का बन्धन। आओल=आया। अरुन आँखि=सूर्य के समान लाल आँख। से=उसके। चिकुर चीर=सिर की साडी। आनहि=अन्य, और। कपाल=माथा। काजर=काजल। भेल=लिप गया। अनग=हृदय। अपजस=अपयश। गाब=गायेगे। के पतिआब=कौन विश्वास करेगा।

(१२७)

कुसुम तोरय गेलहुँ जाहाँ।
भमर अधर खडल ताहाँ।
ते चलि एलहुँ जमुना तीर।
पवन हरल हृदय चीर।
ए सखि सरुप कहल तोहि।
आनु किछु जनि बोलसि मोहि।
हरि मनोहर बेकत भेल।
उजर उरग संसअ लेल।
ते धसि मजूर जोड़ल झाँप।
नखर गाडल हृदय काँप।
भन बिद्यापति उचित भाग।
बचन पाटव कपट लाग।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

अपने अधर-क्षत होने के कारण को छिपाती हुई नायिका कहती है कि हे सखी! जहाँ मे कुसुम तोडने गई थी वही दुष्ट भौरे ने मेरा होठ काट लिया इसीलिए डर से कि कही वह फिर मेरा अधर-दशन न करने लगे मै भागी-भागी यमुना के किनारे

चली आई, लेकिन वहाँ भी जान नही बची, क्योकि पवन ने मेरी छाती पर का—उरोजों का—अंचल उडा दिया। हे सखी ! मैने यह तुमसे बिलकुल सच कहा है, इसलिए तुम मेरे विषय मे और कुछ मत कहो। अरे, इतना ही नही, जब मेरा सुन्दर हार दीखने लगा तब उसे श्वेत सर्प समझकर उस पर मोर झपटा। अर्थात् उसकी छाती का अचल पवन के झोके से हट गया और फलस्वरूप छाती का सुन्दर श्वेत हार देखने से सर्प का सदेह होने लगा। मयूर के झपटने से उसके नख का चिह्न छाती पर उग आया और मेरा हृदय थर-थर काँप उठा। कविवर विद्यापति कहते है कि नायिका की इस तरह की बाते छलपूर्ण लग रही है अर्थात् इसमे कोई सत्यता नही।

विशेष—अपने सम्भोग को गुप्त रखने की कला मे नायिका बडी निपुण होती है। यहाँ उसका त्रिया-चरित्र दर्शनीय होता है। आचार्यो ने प्रेम को गुप्त रखने वाली सुचतुरा नायिकाओ के तीन भेद किये है—भूत गुप्ता, वर्तमान गुप्ता और भविष्यादि गुप्ता। प्रस्तुत पद की नायिका भूत गुप्ता की श्रेणी मे है जो अभिसार के पश्चात् उसे छन्न से छिपा रही है। गुप्ता नायिकाओ के वर्ग मे 'भूत गुप्ता' का बडा महत्त्व होता है, बडी छलना होती है। प्रस्तुत पद मे सम्भोगिता नायिका ने कैसा विचित्र रूपक बाधा है कि वह बाग मे गई, वहाँ भ्रमर ने काटा, अधर उसके कारण दतक्षत हुए, फिर वह भागी, यमुनातट पर गई, वहाँ उद्दण्ड पवन ने उरोजो का आँचल उडा दिया। फलस्वरूप भीतर का उज्ज्वल हार दीखा, उसको सर्प जानकर शत्रु मयूर झपटा और यो हुए कुच क्षत ! प्रणय-सम्भोग की यह गोप-लीला का रूपक कितना मजेदार है। हद है कपट छल की भी ! वास्तव मे यौवन प्रेम करना सिखाता है, प्रेम छल करना सिखाता है और यही व्यापार शृगार रसिको के लिए आह्लादकारी होता है।

"भमर अधर खडल ताहाँ"—उक्ति मे चतुर चचल नायक की गुप्त उपमा "भ्रमर" बडी सगत बन पडी है और फिर जब नायिका के गुलाबी लाल-लाल अधरो पर वह भौरा बैठने की कल्पना की जाती है तो एक विशेष प्रकार के पुलक आनन्द और चित्र से मन मस्त हो जाता है। पवन से उडता हुआ सुन्दरी का आँचल और फिर उसके भीतर झलकता हुआ उरोजाश्रित हार किस रसिक का मन न मोह लेगा ? वास्तव मे भावना-वासना के शृगारी चित्र खीचने मे कविवर विद्यापति ने कमाल किया है।

शब्दार्थ—कुसुम=कुसम, एक प्रकार का फूल जो वसन्त ऋतु मे फूलता है। तोरय=तोडने के लिए। गेलहुँ जाहाँ=जहाँ गई। भमर=भौरा भ्रमर। खडल=काटा, दशन किया। ताहाँ=वहाँ। ते=इसी कारण। एलहुँ=आई। तीर=किनारा। चीर=कपडा। सरुप=सत्य। तोहि=तुमको। आनु=और। किछु=कुछ। जनि बोलसि=मत बोलना। उजर=श्वेत, उजला। ससअ=सदेह। मजूर=मयूर। उरग=सर्प। जोडल झाँप=झपटा। नखर गाड़ल=नख गड़ गया। पाटव=पटुता। कपट=छल।

(१२८)

सखि हे तोहे हमर बहु सेवा।
ऐसनि बानि कबहु जनि बोलबि
जाति कुल किए मोर लेवा।
गोकुल नगर कान्हु रति-लम्पट
जौबन सहज हमारा।
तुहु सखि रभसि मोहे जनि बोलबि
लोक करब पतिग्रारा।
केसर कुसुम हेरि हम कौतुक
भुज जुग मेटल ताहि।
दाड़िम भरम पयोधर ऊपर
पडलहु कीर लोभाहि।
चकित उभय भुज इति उति पेखल
तें बस भए गेल ग्रान।
इथे परिवाद कहसि मोहे बैरिनि
इह कबि सेखर भान।

भावार्थ—पूर्व पद क्रम के अनुसार प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका कहती है—हे सखी! मै तुम्हारी अत्यधिक टहल करूँगी। तुम ऐसे बचन कभी मत बोलना, मेरी जाति और मेरे कुल का धर्म बर्बाद करोगी, क्यो?—अर्थात् मै अच्छे कुल की लडकी हूं, तुम जो चाहती हो वह मैं नही कर सकती। गोकुल नगर के कन्हैया सुन्दरियो के लिए बडे लम्पट एव रसिक है और मेरी जवानी भी स्वभावत. उद्भिन्न है, उठान पर है। हे सखी! तुम मेरी बातो को इस तरह हँसी मे मत उडाया करो, इससे लोगो को यह विश्वास हो जायेगा कि मेरा कृष्ण के साथ प्रणय सम्बन्ध है। अर्थात् मेरी अवस्था और तुम्हारी हँसी—दोनो मिलकर यह स्पष्ट कर देगे कि मैंने सचमुच कृष्ण से सम्भोग किया है। मैने तो खेल-खेल मे ही केशर के फूल को दोनो हाथो से मसल डाला। आशय यह है कि मेरे शरीर पर लगे अगराग को देखकर कुछ शक न करो। मेरे दोनो उठे हुए उरोजो को देखकर भ्रम-वश लोभ से तोता उन पर टूट पडा और उन्हे दागी कर गया है अत उनको किसी रसिक ने नख-क्षत किया होगा, ऐसा सन्देह तुम न करो। सहसा तोते के झपट पडने से आश्चर्यचकित होकर अपने दोनों हाथो को मैने इधर-उधर फेका, अतः मेरा रूप-रग बदला-बदला दीखता है, मै तुम्हे अस्तव्यस्त दीखती हूँ। हे सखी! ये सब मेरी बैरिने है जो प्रवाद फैलाकर मुझे कलकित करना चाहती है। कविवर विद्यापति कहते है कि—सखी ने

कहा—हे सुन्दरी ! तुम सत्य कह रही हो , मै भी कुछ ऐसी ही कल्पना करती हूँ।

विशेष—पूर्व पद १२७ की भाँति यहाँ भी भूत गुप्ता नायिका अपने सम्भोग को छिपाने के लिए बडी युक्तियाँ-उक्तियाँ लडा रही है और बडे मज़ से अन्त में वक्रोक्तिमय विश्वाससूचक उक्ति भी है—

"इह कबि सेखर भान"

जिससे सम्भोग किया गया हो उसी प्रेमी की आलोचना करके नायिका किस प्रकार अपनी मिथ्या सच्चाई दूसरो पर थोप रही है—

"गोकुल नगर कान्हु रति-लम्पट
जौबन सहज हमारा ।"

सहज सुन्दर युवती की इस मिथ्या सच्चाई पर आँख मूँदकर विश्वास कर लेने मे ही रस है। यहाँ वाग्वैदग्ध्य उच्च कोटि का है क्योकि उसमे शृगार का रस लिप्त है।

"दाडिम भरम पयोधर उपर पडलहु कीर लोभाहि" मे भ्रम अलकार है किन्तु वह भ्रम नायिका के उरोज क्षत होने के कारण को कितना सत्य ठहरा रहा है, विचारणीय है। यहाँ की व्यजना तो जैसे अलकार को भी अलकृत कर देती है। सम्पूर्ण पद मे कलात्मकता एव उक्ति-चमत्कार प्रधान है। रस का स्रोत तो मन्द हुआ ही नही है।

शब्दार्थ—तोहे=तुम्हे । बहु=बहुत। ऐसनि बोलबि=ऐसी वात कभी मत कहना। रति-लम्पट=उद्दण्ड, कामी। जौबन=यौवन, जवानी। तुहु=तुम। रभसि=हँसना। मोहे=मुझे। बोलबि=बोलेगी। कौतुक=खेल। हेरि=देखी। भुज जुग=युगल कर, दोनो हाथ। मेटल ताहि=उसको मसल दिया। दाडिम=अनार। भरम=भ्रम। पयोधर=स्तन, उरोज। चकित=आश्चर्य से। उभय भुज=दोनो हाथ। इति उति पेखल=इधर-उधर फेका। तै=इसी कारण से। भए गेल=हो गया। आन=दूसरा, बदल गया। इथे=यही। कहसि=कहती है। मोहे=मुझे। इह=यही (पु०)।

(१२९)

खरि नरि-बेग भासलि नाई।
धरए न पारथि बाल कन्हाई।
ते धसि जमना भेलहु पार।
फूटल बलआ टूटल हार।
ए सखि ए सखि न बोल मंद।
बिरह बचन बढ़ाए दंद।

कुंडल खसल जमुन माँझ ।
ताहि जोहइत पड़लि साँझ ।
अलक तिलक ते बहि गेल।
सुध सुधाकर बदन भेल।
तटिनि तट न पाइअ बाट ।
ते कुच गड़ल कठिन काँट ।
भनइ बिद्यापति अपसाद ।
बचन-कओसले जितिअ बाद ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका अपनी सखी से कहती है—हे सखी ! नदी की गति अति प्रबल, वेगवती थी, जिसमे मेरी नैया बह गई और उसे बाल कन्हैया नही पकड सके, क्योंकि वे छोटे थे। अत मै स्वय ही यमुना मे कूद पडी और तैरकर पार हुई। अत मेरी चूडियाँ फूट गई और हार भी टूट गया है। हे सखी ! तुम मुझसे इस तरह असगत भद्दी बाते मत कहो। कटु बोलो से तो हमारे आपस मे भेद-भाव का द्वन्द्व ही बढेगा। अर्थात् ऐसी बातो मे हमारे-तुम्हारे बीच बिगाड हो जायेगा, तुम्हारा मुझ पर सदेह करना व्यर्थ है। मेरे कान का कुण्डल निकलकर यमुना मे गिर गया, उसी को ढूढने-ढूँढने शाम हो गई। महावर और तिलक पानी मे पैठने के कारण धुल गया, इसीलिए तो स्वच्छ चन्द्रमा की भाँति मेरा मुँह निर्मल हो रहा है। किसी तरह किनारे पर तो आ गई किन्तु वहाँ रास्ता ही नही पाया, और अरण्य मे भटकने के कारण मेरे स्तन मे वहाँ के तीखे काँटे चुभ गये। अर्थात् रास्ता न मिलने के कारण भटककर वन मे चली गई, वहाँ मेरा शरीर काँटो से उलझकर छिद गया। कविवर विद्यापति कहते है कि नायिका बातो की चतुराई से ही अपने गुप्त सम्भोग के निर्बल पक्ष को पुष्ट करती है, जीतती है। अर्थात् सम्भोग के पश्चात् नायिका अपनी अवस्था को छिपाने के लिये कोई-न-कोई बहाना निकाल ही लेती है और सखियो के पूछने पर उलटा-सीधा बता देती है, हार कभी नही मानती ।

विशेष—पूर्व १२८ पद के अनुसार भूत गुप्ता नायिका अपने सम्भोग-व्यापार की सत्यता पर पर्दा डाल रही है। नदी की तीक्ष्ण धारा मे रति-उन्माद की खीचा-तानी की दशा मे---चूडी का मौल जाना एव हार का टूट जाना स्वाभाविक ही है। किन्तु विलम्ब के कारण का तर्क पानी मे कर्ण-भूषण खो जाने वाला बडी गहरी सूझ प्रकट करता है—-

"कुडल खसल जमुन माँझ ।
ताहि जोहइत पड़लि साँझ ।"

हो सकता है कि जल-क्रीडा ही हुई हो। प्रशसा तो इस बात की है, किस प्रकार

नायिका अपनी प्रत्येक शारीरिक शृंगारिक अस्तव्यस्तता का समाधान करती है जिसका प्रभाव रसिकों पर ऐसा ही होता है कि—

"और पिए जा और जिए जा
इसी मंत्र का जाप करे।"

इस प्रकार के पदों में कवि का वाग्वैदग्ध्य एवं उक्ति-चमत्कार खूब निखरा है। सम्भोग के पश्चात् नारी का मुखमण्डल कुछ स्वच्छ चमत्कृत-सा स्वभावतः प्रतीत होता है, उसी की सूक्ष्म व्यंजना इस पंक्ति में निखर कर आई है—

"सुध सुधाकर बदन भेल।"

शब्दार्थ—खरि=प्रबल, तीव्र। नरि-बेग=नदी की वेगवती धारा। भासलि=डूब गई या बह गई। धरए न पारथि=पकड़ने में असमर्थ। बाल कन्हाई=बालक कृष्ण। ते धंसि=इसलिए पैठकर। भेलहुँ=हुई। बलआ=वलय, चूड़ी। न बोल मद=गन्दी बात मत कर। बिरह=कटु, कठोर। बढाए=बढ़ता है। दद=द्वन्द्व, मत-भेद, बिगाड़। खसल=गिर गया। माँझ=बीच। ताहि ..साँझ=उसको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते शाम हो गई। अलक=महावर। ते=से। बहि गेल=धल गया, बह गया। सुध सुधाकर=स्वच्छ चन्द्र। बदन भेल=मुख हुआ। तरिनि तट=नदी का किनारा। बाट=रास्ता। कुच=स्तन। गड़ल=चुभ गया। अपसाद=पराजय, हार। कओसले=चतुराई। जितिअ=जीतती है।

(१३०)

ननदी सरुप निरूपह दोसे।
बिनु बिचार बेभिचार बुझओबह
सासू करतन्हि रोसे।
कौतुक कमल नाल सयँ तोरल
करए चाहल अबतसे।
रोष कोष सयँ मधुकर आओल
तेँहि अधर करु दसे।
सरबर-घाट बाट कटक-तरु
देखहि न पारल आगू।
साँकरि बाट उबटि कहु चललहु
ते कुच कंटक लागू।
गरुअ कुम्भ सिर थिर नहिं थाकए
तेँ उधसल केस-पास।
सखि जन सयँ हम पाछे पड़लिहु
ते भेल दीघ निसास।

पथ अपबाद पिसुन परचारल
तथिहु उतर हम देला।
अमरख चाहि धैरज नहि रहले
तें गदगद सर भेला।
भनइ विद्यापति सुन बर जौबति
ई सभ राखल गोई।
ननदी सयँ रस रीति बढ़ाबह
गुपुत बेकत नहि होई।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगानुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका अपनी ननद मे कहती है कि हे ननद ! तुम तो मेरे स्वरूप का ही दोष-निरूपण करती हो। बिना सोचे-समझे मेरा व्यभिचार व्यक्त करोगी तो मेरी साम मुझ पर कुपित होगी, अर्थात् बिना विचारे मुझे व्यभिचारिणी कहोगी और इसे मेरी सास सुनेगी तो मुझ पर क्रोध करेगी। खेल-खेल मे अपने केशो का शिरोभूषण बनाने के हेतु मैने ज्यो ही नाल मे कमल को तोडा त्यो ही उसके कोष से भौरा सरोष निकला और मेरे अधर को काट लिया। तालाब के किनारे जाने की राह सघन कटक-पूर्ण वृक्षो से आवृत थी जिससे आगे का रास्ता दिखाई नही पडा। पतली पगडडी होने के कारण कुपथ पर चलकर भटकना पडा जिससे मेरे स्तन मे काँटे चुभ गये; अर्थात् मेरा कुच क्षत-विक्षत हो गया। इसके अतिरिक्त सिर पर भी पानी का भारी घडा सिर पर धरे होने के कारण वह स्थिर नही रह पाता था, थक जाने पर काँपने लगता था, इसलिये मेरे बाल उलझे-पुलझे हो गए। इधर सखियो से मै बहुत पीछे रह गई थी, इसलिये तेजी मे जल्दी-जल्दी चलना पडा जिस कारण से लम्बी-लम्बी साँसे चल रही है, मै हाँफ रही हूँ। उधर पथ के दुष्ट पथिको ने पथ पर कुबोल कलक का प्रचार किया। लेकिन मैने उन्हे वही मुँह तोड उत्तर दे दिया। आशय यह है कि उसकी उस दशा को देखकर लोग उसे कलकिनी समझे और उसके कलक का प्रचार करने लगे किंतु नायिका ने साहस से उनका सामना किया। अधिक क्रोध के कारण मुझ मे धीरज नही रहा, जिससे मेरे स्वर भर्रा गये है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे सुन्दर युवती ! तुम ननद से भले ही इन सब बातो को गोपनीय रखने की इच्छुक थी किंतु वह सारी बाते जान ही गई है, क्योकि तुम इस कला मे निपुण नही हो, छिपाने का ढंग तुम्हे मालूम नही। तुम ननद से रस-युक्त बाते करो जिससे छिपी हुई बाते स्पष्ट न हो। आशय यह है कि तुम उससे चाल न खेलो वह सब कुछ जानती है। यदि प्रेमपूर्वक उसे सब कुछ बता दोगी तो वह शायद किसी से कुछ न कहेगी—तुम्हारा गुप्त सम्भोग बना रहेगा।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सद्य सम्भोगिता नायिका के हावो-भावो और अनुभावों

का सजीव चित्रण है। तुरत सम्भोग के पश्चात् न केवल उसके ओष्ठ, कुच आदि ही क्षत-विक्षत होते है वरन् उसके स्वरो मे भी भर्राहट आ जाती है, साँस तेज हो जाती है। इस तथ्य को गुप्ता नायिका किस तर्क छल की आड मे छिपा रही है, देखिये—

"सखि जन सयँ हम पाछे पड़लिहु
ते भेल दीघ निसास।"

और भी—

"अमरख चाहि घैरज नहि रहले
तें गदगद सर भेला।"

इस प्रकार शब्द-शब्द मे नायिका की उत्कृष्ट छलनामयी बाते प्रकट की गई है। अधरो के और कुचो के घायल हो जाने के लिये क्रमश कमल नाल से कमल तोडने और पथ भूलकर अरण्य मे भटक जाने के कारण भौरे एव कटको का प्रहार वडी गहरी सूझ का परिणाम प्रकट करता है। इन पवितयो मे यह कला की कारीगरी पहचानने योग्य है—

ओष्ठो के लिये :

"कौतुक कमल नाल सयँ तोरल
करए चाहल अबतंसे।
रोष कोष सयँ मधुकर आओल
तेंहि अधर करु दंसे।"

इसी प्रकार कुचो के लिये .

"साँकरि बाट उबटि कह चललहु
ते कुच कंटक लागू।"

पर ध्यान रखने वाली विशेष बात यह है कि इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण वर्णन मे भी कही पर कवि की भावुकता एव सरसता का ह्रास नही हुआ जैसा कि अन्य बिहारी आदि कवियो की रचना मे हुआ है। शृगार-रस के प्रत्येक पद-स्थल मे धारा प्रवाहित रखना विद्यापति भूल नही सके। इसी पद की अतिम पक्ति मे वे स्पष्ट कर देते है—

"·········रस रीति बढाबह
गुपुत बेकत नहि होई।"

शब्दार्थ—सरुप······दोसे=स्वरूप देखकर दोषारोपण करना। करतन्हि रोसे =क्रोध करेगी। कौतुक=खेल। कमल नाल सयँ=कमल की डडी से, मृणाल से। तोरल=तोड़ी। अबतसे=सिर मे पहनने का आभूषण। रोष=क्रोध। कोष= भीतर, खजाना, भण्डार। सयँ=से। मधुकर=भ्रमर। आओल=आया। दसे=

डस लिया, काट लिया। सरबर-घाट=तालाब का किनारा। बाट=राह। कट: तरु=काँटो का पेड। साँकरि=पतली। कुच=स्तन। गरुअ कुम्भ=भरा हुआ घडा। थिर=स्थिर। उधसल=उलझ गया। केस-पास=सिर का बाल। पडलिहु=पड गई। दीघ निसास=लम्बी स्वाँस। अपबाद=बुराई। पिसुन=निंदा करने वाले। तथिहु=जहाँ-का-तहाँ, वही। देला=दिया। अमरख=गुस्सा, क्रोध। धैरज=धैर्य। गदगद=भर्राया। भेला=हुआ। भनइ=कहता है। बर जौबति=श्रेष्ठ युवती। ई=यह। सभ=सब। गोई=छिपाकर। राखल=रखना। बढावह=बढाओ। गुपुत=छिपा हुआ। वेकत=स्पष्ट, व्यक्त। नहि होई=नही होगी।

(१३१)

जाहि लागि गेलि हे ताहि कहाँ लइलि हे
ता पति बैरि पितु काहाँ।
अछलि हे दुख सुख कहह अपन मुख
भूषन गमओलह जाहाँ।
सुन्दरि, कि कए बुझाओब कते
जन्हिका जनम होइत तोहे गेलिहु
अइलि हे तन्हिका अते।
जाहि लागि गेलहु से चलि आएल
ते मोयँ धाएल नुकाई।
से चलि गेल ताहि लए चललिहु
ते पथ भेल अनेआई।
संकर-बाहन खेड़ि खेलाइत
मेदिनि-बाहन आगे।
जे सब अछलिसँग से सब चललि भँग
उबरि अएलहुँ आति भागे।
जाहि दुइ खोज करइ छथि सासुन्हि
से मिलु अपना सगे।
भनइ बिद्यापति सुन बर जौबति
गुपुत नेह रति-रगे।

भावार्थ—'छलना' प्रसग के अतर्गत प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

सखी नायिका से कहती है—तुम जिसको लेने के लिये गई थी उसको कहाँ लाई ? और उसका पति तथा उसके पति का शत्रु एव उसका पिता कहाँ है ? आशय यह है कि—"तू तो जल लाने गई थी, और जल का पति समुद्र होता है, समुद्र के शत्रु अगस्त्य है और अगस्त्य का पिता घडा है; तो जल का घडा कहाँ है ?"

वहाँ का दुःख-सुख तुम अपने मुख से कहो जहाँ अपने गहने खो आई अर्थात् मुझसे बहाना क्यो कर रही हो ? मै तो सभोग के सब रहस्यो को समझती हूँ, इसलिये यह मेरे मुँह से मत कहलवाओ ! हे सुन्दरी ! अब तुम क्या बहाना करके अपने पति को क्या समझाओगी ? तुम तो सूर्योदय होते ही यहाँ से गई थी और सूर्यास्त होने के समय तुम आई हो। नायिका कहती है कि हे सखी ! जिस जल के लिये मै गई वही चला आया, इसलिये मुझे भागकर छिपना पडा अर्थात् मै तो पानी के लिये गई थी और बीच मे ही वर्षा का जल बरसने लगा, फिर मै क्या करती ? अत मुझे भागकर भीगने के भय से छिपना पडा, सारा दिन पानी बरसता रहा, इसलिये न आ सकी। जल बरसना जब समाप्त हुआ तब मै जल लेकर चली, तो पथ पर अनर्थ होने लगा। शकर का वाहन—अर्थात् बैल—खेल रहा था और पृथ्वी को सर पर धारण करने वाला सर्प भी उसके सामने ही था। मेरे साथ मे जो सहेलियाँ थी, वह भी मुझे छोडकर इधर-उधर छिटककर भाग गई। मै तो बड़े भाग्य से, सयोगवश जान बचाकर आई हूँ, ऐसा समझो। जिन दोनो चीजो की खोज सासुजी करती थी, वे दोनो तो अपने-आप मे मिल गई अर्थात पानी पानी मे और मिट्टी का घडा मिट्टी मे। कविवर विद्यापति कहते है कि हे श्रेष्ठ युवती ! गुप्त प्रेम से तो रति-क्रीडा मे बाधाएँ उपस्थित होती ही है अर्थात चोरी-चोरी किसी से प्यार हो जाने पर उसे निभाना कठिन हो जाता है, क्योकि प्रेमी से मिलने का गुप्त पथ आशकाओ से खाली नही होता। कोई देख न ले, कोई कुछ कह न दे, कही देर न हो जाय, घर वाले कही कुछ न पूछ बैठे, आदि-आदि—और प्रेमी से निश्चित समय पर न मिलने से प्रेम मे त्रुटि आने का खटका भी बना रहता है।

विशेष—गुप्ता नायिका अपने परपुरुष सभोग-व्यापार को छिपाने मे बडी सुचतुरा होती है। प्रस्तुत पद मे जब वह कहती है कि—

"जाहि लागि गेल हु सेचलि आएल
ते मोयँ धाएल नुकाई।"

तो जैसे एक तीर से वह दो शिकार बेधती है। सामान्यत तो अर्थ यह कि वह वर्षा के जल से न भीगने के कारण छिप गई अत देर हो गई और विशेष व्यंजना यह कि पथ पर ही रस जलधर रूप नायक मिल गया और उसके लिये छिपने के कारण विलम्ब हो गया। यो वाक्-चातुर्य एव अर्थ-गौरव दोनो ही अपने पूर्ण उत्कर्ष पर है। पद मे ऊहा का समावेश उसके सहज रस परिपाक मे अवश्य बाधक हुआ है और उसमे दृष्टकूट के अर्थो की जटिलता आगई है, जैसे—

"ता पति बैरि पितु काहाँ।"

अर्थात् जल, उसका स्वामी समुद्र, उसका शत्रु अगस्त्य और उसका पिता घडा। यो घडा का बोध बडी दुरूहता से होता है और होता क्या है सारे पद-रस-लालित्य को

सोख लेता है। इसी प्रकार—

"संकर-बाहन खेड़ि खेलाइत
मेदिनि-बाहन आगे।"

पक्ति का अर्थ भी बडा दुरूह हो जाता है जबकि उसकी भावाभिव्यक्ति मे कोई रस नही। केवल चमत्कार-प्रदर्शन ही यहाँ प्रधान है।

शब्दार्थ—जाहि=जिस। लागि=लिये। ताहि=उसे। लइलि हे=लाई हो। ता······काहाँ=तिसका पति और पति का बैरी पिता कहाँ है अर्थात् जल का पति सागर और सागर का शत्रु अगस्त्य और अगस्त्य का पिता घडा। अछलि=थी। कहह अपन मुख=अपने मुख से कहो। भूपन=आभूषण, जेवर, गहना। गमओलह=खोई, बर्बाद की। जाहा=जहाँ। कि कये=किस प्रकार। बुझाओब=समझाओगी। कते=पति। जन्हिका=जिनके। जनम होइत=जन्म होते। तन्हिका=तिनके। अंते=अत होते, अस्त होते अर्थात् सूर्योदय और सूर्यास्त से अभिप्राय है। ते=इसीलिए। भेल=हुआ। अनेआई=अन्याय। सकर-बाहन=शकर की सवारी, बैल। खेडि=खेल। मेदिनि-वाहन=शेषनाग, सर्प। चलति भगॅ=भाग चली। उबरि=बचकर। अएलहुँ=आई हूँ। अति=बडे। भागे=भाग्य से। दुइ=दो की। करइ छथि=करती थी। सासुन्हि=सास। से ··...सग=सो अपने आप मे मिल गई। बर जौबति=श्रेष्ठ युवती। गुपुत=गुप्त, छिपा हुआ। नेह=स्नेह।

मान

(१३२)

खनहि उन महँघि भइ किछु अरुन नयन कइ
कपट धरि मान सम्मान लेही।
कनक जयँ प्रेम कसि पुनु पलटि बाँक हसि
आधि सयँ अधर मधु-पान देहि।
अरेरे इन्दुमुखि अढ़ न कर पिअ हृदय खेद हर
कुसुम-सर रंग संसार सारा।
बचन बस होसि जनु ससरि भिन्न होइत तनु
सहज बरु छाड़ि देब सयन सीमा।
प्रथमे रस भंग भेल लोभे मुल सोभ गेल
बाँधि भुज-पास पिय धरब ग्रीमा।
जदि नयन-कमल-बर मुकल कल कान्ति धर
खर नखर-घात कइ सेहे बेला।
परम पद लाभ सम मोद चिर हृदय रम
नागरि सुरत-सुख अमिअ मेला।
सरसकवि सुरस भन चारू तर चतुरपम
नारि अराहिअइ पँचबान।
सकल जन सुजन गति राम लखिमाक पति
रूप नरायन सिबसिंघ जान।

प्रसंग-संकेत—शृंगारी काव्य-वर्णन की परम्परा मे नायिका का मान-वर्णन एक महत्त्वपूर्ण विषय माना गया है। पुरुष-समागम से पूर्व नवेली नायिका के तन-मन मे एक विशेष प्रकार का चातुर्य एव उन्माद भाव स्वभावत. जाग्रत हो उठता है। उसके भावो-हावो-मनोभावों एव अग निक्षेपों से एक सलोना रूप टपकने लगता है। वह नायक से रूठती है, रीझती है और नायक की काम-भावना उद्दीप्त होती जाती है। इसी बीच वह अटूट-सा मान धारण कर लेती है। नायक के हरजाईपन के प्रति उपालम्भ आरम्भ करती है, खिंची-खिंची-सी हो जाती है। उसके मनाने के लिए नायक अनेक प्रकार की

युक्तियाँ अपनाता है किन्तु मान की मिकदार बढती ही जाती है और उसी बढोत्तरी में बस एक क्षण आता है कि नायक नायिका को किसी भी भाँति मना ही लेता है, मान-मर्यादा का आवरण हट जाता है और दोनो ही महासुख के रसमय मानसरोवर मे साथ-साथ डुबकियाँ लगाने लगते है । इसी प्रसंग-परम्परा को लेकर 'मान' शीर्षक से कविवर विद्यापति ने अपने मधुर पदो की रचना की है ।

भावार्थ—चतुर सखी नायिका को मनोचित युक्तियाँ सिखलाती हुई कह रही है कि हे सुन्दरी ! तुम्हार साथ सम्भोग करने के लिए जब तुम्हारा प्रियतम उद्यत हो तो तुम क्षण-क्षण मे महँगी होती जाना । आशय यह है कि अपने मान को पल-पल मे बढाती ही जाना । अपनी आँखो को कृत्रिमता से कुछ क्रोधित-सा बनाकर अरुण वर्ण कर लेना ताकि नायक तुम्हे रूठा-रूठा-सा अनुभव करे । इस प्रकार कपटपूर्वक उससे अपना वाछित मान-सम्मान प्राप्त करना । आशय यह है कि इस प्रकार से मान-प्रदर्शन के कारण नायक नायिका को पूर्ण प्रेम-सम्मान प्रदान करेगा । यो प्रथम उसके स्वर्ण जैसे प्रेम को अपने मान की कसौटी पर कस-परख लेना फिर शरारतपूर्ण हँसी हँसना और फिर उसे परि-तृप्त करने के लिए चुम्बन का मधुपान प्रदान करना । अरी चन्द्रमुखी ! जिद न कर, प्रिय-तम के मन की काम-जन्य पीडा को दूर करो······देखो, यह समस्त ससार कामदेव के पुष्पबाण के रग मे रजित है । आशय यह है कि यह सारा ससार ही काम-रसरग से आह्लादित है, आकर्षित है । यो ही प्रियतम के मीठे वचनो के वश मे न हो जाना, जरा खिसककर उसके अक मे लगने से पूर्व अपने शरीर को अलग करना और अच्छा होगा यदि सहज ही तुम सेज की सीमा से अलग भी हो जाओ । आशय यह है कि यदि तुम सहज भाव-प्रदर्शन से सेज को त्यागकर उठ दोगी तो बडा ही अच्छा होगा । पहले तुमने यह सब कुछ नही किया अत पूर्ण रसानद का क्रम न जुडा, वह विच्छेद हो गया और चुम्बन की लोलुपता के वशीभूत होने के कारण तुम्हारे मुख की सुन्दरता का ह्रास हो गया पर इस बार तुम अपने भुजपाशो मे प्रियतम की गरदन दबा लेना । यदि तुम्हारे कमल नयन उन्माद के कारण झिपकर कली की भाँति मुँदने लगे तो उस बेला मे आ अपने तेज नखो का आघात करना और यो उस उन्माद की दशा से सजग हो जाना । इस क्रिया से परम पद आनद (ब्रह्मानद) सदृश हृदय मे चिरतन काम-विलास मे रमते रहने का महासुख प्राप्त करना । हे सुचतुरे ! मैथुन का सुख अमृत मिश्रित-सा होता है । सरस कवि सरसतापूर्वक कहते हैं कि रमणियाँ बडी चतुराई से कामदेव की पूजा करती है, उसे सिद्ध करके रसानद भोगती है । सारे सज्जनो के हितकारक रूप के अवतारस्वरूप राजा शिवसिह इस प्रकार के रस-रहस्य से पूर्णतः अवगत है ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे नायिका के मान का वर्णन मनोविज्ञान सम्मत है । 'कनक जयँ प्रेम कसि' उक्ति द्वारा कविवर विद्यापति ने समस्त मान का महत्त्व विशुद्ध प्रेम की कसौटी पर कसकर दिखा दिया है । 'नयन-कमल' 'इन्द्रमुखि' आदि स्थलों

पर अलकारो की छटा अपूर्व बन पडी है। मैथुन-सुख के क्षणिक आनद की अनुभूति को ब्रह्मानंद के तुल्य बनाकर विद्यापति ने ऐहिक प्रेम-रस-भोग की जाज्वल्य भावना का प्रकाशन किया है। इन पक्तियो मे भोगवादी भावना की अत्यत मार्मिक एव तथ्य-पूर्ण अभिव्यजना हुई है—

"परम पद लाभ सम मोद चिर हृदय रम
नागरि सुरत-सुख अमिय मेला।"

समस्त पद मे वर्णन कलात्मक होने हुए भी हृदय-रस से आप्लातित है।

शब्दार्थ—खनहि खन=पल-पल मे। महँघि=महँगी। अरुन=लाल। कपट=छल। लेही=लेना। कनक जयँ=स्वर्ण जैसा। सयँ=से। अढ=जिद। ससरि=चुपचाप सरक जाना। सयन सीमा=सेज। ग्रीमा=गरदन। मुकल=कली। कान्ति=शोभा। खर=तेज। नखर-घात=नाखून का आघात। सेहे=उस। वेला=वेला, समय। परम पद लाभ=मोक्ष का सुख, ब्रह्मानद। सम=समान। मोद=सुख, आनद। सुरत-सुख=मैथुन-सुख। नागरि=सुचतुरा रमणी। अमिय मेला=अमृत मिश्रित। चारु तर चतुरपम=सुन्दर चातुर्यपूर्ण ढग से। अराहिअइ=पूजा करती है।

(१३३)

लोचन अरुन बुझल बड भेद।
रयनि उजापर गरुअ निबेद।
ततहि जाह हरि न करह लाथ।
रयनि गमओलह जन्हिके साथ।
कच कुंकुम माखल हिय तोर।
जनि अनुराग राँगिकरु गोर।
आनक भूषण तोर कलङ्क।
बड़ ओ भेद मन्द ओ परसङ्ग।
चिटि-गुड़ चुपड़लि राइक पोरि।
लओले लाथ बेकत भेल चोरि।
भनइ विद्यापति बजबहु बाद।
बड़ अपराध मौन पए साध।

भावार्थ—'मान' प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा अपने नायक श्री कृष्ण के पर-रमणी-गमन व्यवहार के प्रति आवेश जनित मान प्रकट करते हुए कहती है कि हे कृष्ण, तुम्हारे लाल हुए नेत्रो को देखकर समस्त रहस्य मेरी समझ मे आ गया है कि रात भर तुमने दूसरी नायिका के साथ समागम मे खूब जागरण किया है, यह बात साफ प्रकट होती है। हे माधव,

झूठ-मूठ कोई बहाना मुझसे न करो, बस वही जाओ जिसके साथ तुमने सारी रात व्यतीत की है और कि जिसके स्तनो का केसर तुम्हारे हृदय पर लिपटा हुआ है—मानो अनुराग के रग से रगकर वह गोरा हो गया है। आशय यह है कि श्री कृष्ण का सारा शरीरवर्ण श्याम है किन्तु उनका वक्षस्थल कुछ गोरा है—इसका कारण नायिका का राग-अनुराग है। वैसे भी काले-से-काले रग के आदमी का वक्षस्थल कुछ गोरा तो होता ही है, यहाँ उसे नायिका की सूक्ष्म कल्पना-सूझ का परिणाम बताया गया है। नायिका राधा के प्रबल रूप, राग, अभिसारादि की यहाँ सूक्ष्म व्यजना सिद्ध हुई है। तेरा मैथुन-कृत्य तेरे लिए कलक रूप है किन्तु दूसरे के लिए वही आभूषण रूप है। आशय यह है कि नायिका का कुकुम जो नायक के वक्षस्थल मे लिपटा है उसके लिए बदनामी का कारण है जबकि नायक के लिए वही सौन्दर्यानन्द का प्रतीक है। सखी कहती है कि यह मैथुन-रहस्य तो बडा है किन्तु उसका प्रसग-वर्णन सामान्य कोटि का है। जिस भाँति नीच के घर मे चीटी गुड से लिप्त रहती है और वह कृत्य या प्रसग उचित नही होता उसी भाँति हे राधे, निन्दनीय रूप मे श्री कृष्ण का अन्य किसी के साथ मैथुन-प्रसग जिसे कृष्ण ने बहाना बनाकर हम से बहुत छिपाना तो चाहा पर वह हमको प्रकट हो गया है। आशय यह है कि कृष्ण की अनुचित रति-क्रिया की चोरी का प्रसग छिपा नही, वह उसी प्रकार प्रकट हो गया कि जैसे नीच के यहाँ गुड मे लिपटी चीटी का समागम व्यक्त हो जाता है। कविवर विद्यापति कहते है, अब इस प्रसग मे अधिक बोलना व्यर्थ है क्योकि बडा अपराध हो जाने पर फिर चुप्पी साध लेना ही उचित होता है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे नायिका के मान का प्रसग मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधृत है। नायिका का ऐसा मान स्वाभाविक कहा जायगा जबकि उसका नायक किसी दूसरी रमणी के साथ अभिसार किये हो। नारी इस तथ्य की पहचान और उसके विद्रोह की रीति को भली-भाँति जानती है। अत. कवियो एव आचार्यो ने शृगार-रस के प्रसग मे इस 'मान' को विशेष महत्त्व दिया है। नायिका का चुटीला ताना यहाँ व्यग वक्रोक्ति रूप मे अनूठा है—

"ततहि जाह हरि न करह लाथ।
रयनि गमग्रोलह जन्हिके साथ।"

उक्ति-चमत्कार की दृष्टि से यह पक्ति वडी उत्कृष्ट है—

"जनि अनुराग राँगिकरु गोर।"

काव्य मे व्यंजना एव व्यग्यार्थ का बडा महत्त्व माना गया है। व्यंजना एवं व्यग्यार्थ इस पंक्ति मे जितना उत्कृष्ट है उसे हमारे ऊपर भावार्थ में पढ़े—

"चिटि-गुड़ चुपड़लि राड़क पोरि।"

"बड़ अपराध मौन पए साध" मे लोक-तत्त्व का समाहार है कि हमारे

अपराधो का एक मात्र उपचार मौन हो जाने मे ही है।

शब्दार्थ—लोचन अरुन=लाल नेत्र। बुझल=जान लिया। भेद=रहस्य। रयनि=रात। उजापर=जागरण। गरुअ=बडा, खूब। निवेद=जाहिर करना, व्यक्त करना। ततहि=वही। जाह=जाओ। न करह=न करो। लाथ=बहाना। कुकुम=केसर। गमओलह=व्यतीत करना। कुच=स्तन। माखल=मला हुआ या लगा हुआ। हिय=हृदय, वक्षस्थल। आनक=दूसरे का। मन्द=सामान्य। राडक=नीच। पोरि=घर। लओले=लगाने पर। बेकत=व्यक्त। बजबहु=बोलना। बाद=व्यर्थ।

(१३४)

कुंकुम लओलप नख-खत गोइ।
अधरक काजर अएलह धोइ।
तइओ न छपल कपट-बुधि तोरि।
लोचन अरुन बेकत भेल चोरि।
चल चल कान्ह बोलह जनु आन।
परतख चाहि अधिक अनुमान।
जानओं प्रकृति बुझओं गुनसीला।
जस तोर मनोरथ मनसिज-लीला।
बचन नुकाबह बेकतओ काज।
तोय हँसि हेरह मोय बड़ लाज।
अपथहु सपथ बुझाबह राधे।
कोन परि खेओम सठ अपराधे।
भनइ बिद्यापति पिअ अपराध।
उद्घट न कर मनोरथ साध।

भावार्थ—पूर्व 'मान' विषयक्रम के अनुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा कह रही है कि हे माधव! उस नायिका के नखों द्वारा किये गये घायल वक्षस्थल को छिपाने की गरज से तुम कुकुम से लेप कर यहाँ आये हो। उसकी आँखो का चुम्बन लेने के कारण तुम्हारे अधरो पर जो काजल लग गया था उसे धो आये हो। फिर भी तुम्हारा छल-कपट तुम्हारे चातुर्य से छिपा न रह सका और तुम्हारी चोरी इस बात से खुल गई कि तुम्हारे नेत्र रात भर उस नायिका के साथ समागम हेतु जागरण करने के कारण साफ लाल दिखलाई पड रहे है। नायिका कहती है कि हे चतुर कान्ह चलो···चलो, अब हमसे कोई और बात न बनाओ। भला प्रत्यक्ष को प्रमाण या अनुमान की क्या आवश्यकता? तुम्हारे चतुर स्वभाव एव कामगुण चातुर्य से मै भली-भाँति परिचित हूँ, मुझे न बनाओ! तुम्हारा सम्भोग विषयक मनोरथ

एव तद्विषयक लीलाओ से खूब परिचित हूँ। यद्यपि तुम वाक्चातुर्य से अपना पर-नायिका से किया सम्भोग छिपाना चाहते हो पर यह काम स्वत तुम्हारे रग-ढग से प्रकट हो रहा है। तुम इस जघन्य रूप मे जब मुझे हँसकर देखते हो तो तुम्हे देखकर मुझे बडी लज्जा होती है, घृणा होती है तुम पर! तुम कितने बुरे हो कि कुपथ पर अथवा परकीया-गमन करके भी राधा को उसी की शपथ देकर झुठलाने-पतियाने चले हो! भला मैं तुम्हे इस धृष्टता एव दुष्ट अपराध के लिए कैसे क्षमा कर सकती हूँ? कविवर विद्यापति कहते है कि हे राधे, अपने प्रियतम श्री कृष्ण के काम-अपराध को यों खुल्लमखुल्ला प्रकट न करो और अपने मनोरथ को भी पूरा करो। आशय यह है कि राधा कृष्ण के साथ अधिक मान-प्रदर्शन एव व्यग-उपालम्भ का आधार त्याग कर अपने मन की लगी मिटाए उनके साथ स्वय सम्भोग-सुख प्राप्त करे।

विशेष—प्रस्तुत पद मे परम्परा के अनुसार ही मान-वर्णन किया गया है। "तोय हँसि हेरह मोय बड लाज" पक्ति मे नारी की अपने दुराचारी पुरुष के प्रति जुगुप्सा वृत्ति का मनोवैज्ञानिक प्रकाशन हुआ है। यहाँ 'लाज' शब्द घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, दुखादि भावना का सहज प्रकाशन कर रहा है।

"कोन परि खेओम सठ अपराधे" पक्ति मे लोक-मर्यादा एव व्यवहार की अभिव्यजना है कि "शठम् शाठ्ये समाचरेत" "परतख चाहि अधिक अनुमान" पक्ति का साम्य इस लोक-मुहावरे के साथ बैठता है—"प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या।"

शब्दार्थ—लओलप=लिपटा आए हो। खत=क्षत। गोइ=छिपाकर। अधरक=ओष्ठो का। अएलह धोइ=धो आए हो। तइओ=फिर भी। न छपल= नही छिप सका है। कपट-बुधि तोरि=तेरी छल से भरी चतुराई। बेकत=व्यक्त। बोलह जनु आन=कोई और बाते मत बोलो या बनाओ। परतख=प्रत्यक्ष, खुलासा। मनसिज-लीला=काम-क्रीडा। नुकावह=छिपाना, गोप रखना। बेकतओ=प्रकट है। काज=पर-नारी के साथ समागम-कार्य। तोय=तुम। मोय=मुझे। बड लाज= बडी लज्जा होती है। अपथहु=कुपथ पर चलना। उद्घट=प्रकट। मनोरथ साध =अपने सम्भोग की इच्छा पूर्ण करो।

(१३५)

आध आध मुदित भेल दुहु लोचन
बचन बोलत आध आधे।
रति आलसे सामर तनु झामर
हेरि पुरल मोर साधे।
माधब, चल चल चल तिन्हि ठाम।
जसु पद-जावक हृदयक भूषन।
अबहु जपत तसु नाम।

कत चंदन कत मृगमद कुंकुम
तुअ कपोल रहु लागि ।
देखि सौति अनुरूप कएल बिहि
अतए मानिए बहु भागि ।

भावार्थ—'मान' प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

नायिका नायक से व्यगमयी उक्ति मे कहती है—हे माधव ! तुम्हारी दोनों आँखे अधमुँदी-सी लग रही है और जो बात मुँह से निकालते हो वह भी अस्फुट-अधूरी ही रह जाती है । रति-क्रीडा करते-करते अधिक थकावट हो जाने के कारण तुम्हारा श्याम तन और भी काला पड गया है, जिसको देखकर तुम्हे दोषी कहने-समझने का मेरा साहस और पुष्ट हो गया है । हे माधव ! जाओ-जाओ अब उसी जगह जाओ अर्थात् तुमने जिस नायिका के साथ जहाँ पर जहाँ विलास किया है उसी स्थान पर जाओ । उसी के पास जाओ जिसके पैर का लगा महावर तुम्हारे हृदय का आभूषण बना हुआ है और अब भी तुम जिसके नाम का स्मरण कर रहे हो । बताओ तो कि तुम्हारे गालो पर चन्दन और केशर-कस्तूरी कहाँ से लग गये है ? मै तो यह देखकर अपने को अत्यन्त भाग्यवान समझती हूँ कि विधाता ने मुझे एक योग्य सौत दी है ।

विशेष—यहाँ नायिका का व्यग और उसकी वक्रोक्ति-उक्ति बडी तीखी बन पडी है—

"रति-आलस सामर तनु झामर
हेरि पुरल मोर साधे ।"

× × ×

'देखि सौति अनरूप कएल बिहि
अतए मानिए बहु भागि ।"

चतुर मस्त नायिका नायक के साथ विपरीत सम्भोग-क्रिया मे बडा आनन्द लेती है । पर उसे असल नायिका बखूबी ताड गई है । कितनी समझदारी है उसकी इन पक्तियो में, कथन मे—

"जसु पद-जावक हृदयक भूषन
अबहु जपत तसु · नाम ।
कत चंदन कत मृगमद कुंकुम
तुअ कपोल रहु लागि ।"

और सटपटाए हुए नायक की मनोभावना का चित्र इन पक्तियों मे कितना स्पष्ट उतर कर आया है—

"आध आध मुदित भेल दुहु लोचन
बचन बोलत आध आधे।"

इस प्रकार की अभिव्यजना का रस लेकर यह विदित होता है कि कविवर विद्यापति ने शृगारिक भोग का चप्पा-चप्पा छान मारा था, उसे सरस बना डाला है।

शब्दार्थ—आध मुदित=आधा बन्द, मुँदा, अधनिमीलित। दुहु लोचन=दोनो आँखे। सामर=श्यामला। तनु=तन। भामर=काला, मुरझाया। हेरि पुरल=देखकर पूर्ण हुई। तिन्हि ठाम=वही, उसी जगह। जसु पद-जावक=जिसके पैर का महावर। अबहु=अब भी। तसु=तिसका। कत=कही। मृगमद=मृग लोचन, कस्तूरी। कुकुम=केशर। तुअ=तुम्हारे। कपोल=गाल। लागि=लगा हुआ। देखि=देखकर। सौति=सौत। अनुरूप=योग्य। बिहि=विधि—ब्रह्मा। बहु भागि=भाग्यवान।

(१३६)

सुन सुन सुन्दरि कर अवधान।
बिनु अपराध कहसि काहे आन।
पुजलौं पसुपति जामिनि जागि।
गमन बिलम्ब भेल तेहि लागि।
लागल मृगमद कुंकुम दाग।
उचरइत मंत्र अधर नहि राग।
रजनि उजागर लोचन घोर।
ताहि लागि तोहे मोहे बोलसि चोर।
नवकबिसेखर कि कहब तोय।
सपथ करह तब परतीत होय।

भावार्थ—'मान'-प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

राधा से कृष्ण कहते है कि हे सुन्दरी! मेरी बातो को मनोयोगपूर्वक सुनो। मैंने तो कोई अपराध नही किया अत निरपराध तुम मुझे अपराधी समझकर बार-बार उलटी-सीधी बाते क्यो कहती हो ? सारी रात जगकर मैने शकर जी का पूजन किया है, इसलिए मुझे वहाँ से आने मे देर हो गई। पूजन के समय ही मेरे अग मे केशर-कस्तूरी का धब्बा लग गया है और बहुतेरे मत्रोच्चारण करते-करते मेरे होठो की अरुणिम भी जाती रही। अर्थात् मेरे अधर किसी अन्य स्त्री के चुम्बन से सूखे नहीं हैं। रात्रि-जागरण के कारण ही मेरे नेत्र बहुत अरुण हो गये है और इसे ही देखकर तुमने मुझे चोर या परकीयागामी कहा है। अभिनव कविशेखर विद्यापति लिखते है कि नायिका कहती है—हे मधुसूदन! मै तुम्हे और क्या कहूँ ? अर्थात् यो तो विश्वास करती नही, पहले कसम खाओ तब मुझे तुम्हारे कथन पर विश्वास होगा।

विशेष—श्री कृष्ण ने परकीया-गमन किया है, उनके कथन से यह व्यजना साफ प्रकटाई गई है—

"लागल मृगमद कुकुम दाग।
उचरइत मंत्र अधर नहि राग।
रजनि उजागर लोचन घोर।
ताहि लागि तोहे मोहे बोलसि चोर।"

किन्तु शकर जी के पूजन के मिस वह नायिक राधा को धर्म-विश्वास देने मे चातुर्य दिखला रहे है। प्रणय-मिलन, मान-सम्मान की यह सुमधुर अभिव्यजना प्रत्येक देश-काल के रसिको को लुभा लेने वाली है। शृगार-रस की स्वच्छन्द धारा का प्रवाह यों ही अबाध गति से बहा है—उसमे नीति-मर्यादा का नही, कला और सौन्दर्य का आग्रह ही प्रधान है।

शब्दार्थ—अवधान=मन लगाना, ध्यान देना। बिनु=बिना। कहसि=कहती हो। काहे=क्यो। आन=आकर। पुजलौ=पूजा किया। पसुपति=शकर। जामिनि=रात्रि। जागि=जागकर। भेल=हुई (स्त्री०)। तेहि लागि=इसीलिए। लागल=लग गया। मृगमद=कस्तूरी। कुकुम=केशर। उचरइत=उच्चारण करने से। रजनि=रात। उजागर=लाल। लोचन=आँख। ताहि लागि=इसीलिए। बोलसि=बात करती है, फटकारती है। कि······तोय=तुमको क्या कहूँगी। सपथ=कसम। करह=खाओ। परतीत=यकीन, विश्वास, प्रतीति। होय=हो।

(१३७)

ए धनि माननि करह संजात।
तुअ कुच हेम-घट हार भुजगिनि।
ताक उपर धर हात।
तोहे छोड़ि जदि हम परसब कोय।
तुअ हार-नागिनि काटब मोय।
हमर बचन यदि नहि परतीत।
बुझि करह साति जे होय उचीत।
भुज-पास बाँधि जघन-तर तारि।
पयोधर-पाथर हिय दह भारि।
उर-कारा बाँधि राख दिन-राति।
विद्यापति कह उचित इह साति।

भावार्थ—'मान'-वर्णन के अन्तर्गत प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

नायक कृष्ण नायिका को विश्वास दिलाने के लिए कहते हैं कि हे रूपवती

मानिनी ! तुम अपने ऊपर नियत्रण क्या नही करती ? अर्थात् अपना क्रोध क्यो नहीं छोडती ? यदि तुम्हे विश्वास न हो तो मै तुम्हारे स्तन रूपी स्वर्ण-घट और नागिन जैसी गले की माला पर अपना हाथ रखता हूँ और शपथ खाता हूँ कि तुम्हे छोडकर यदि मै किसी और का स्पर्श करूँ तो तुम्हारी माला नागिन बनकर मुझे डस ले। मेरी बातो मे यदि तुम्हे विश्वास नही होता हो तो तुम अपने ही 'मन से समझा-बूझकर जो दण्ड तुम्हे उचित जँचे या हो, मुझे दो। उस दण्ड के फलस्वरूप मुझे अपने भुजपाश के फन्दे मे जकडकर, जघाओ के तले दबाकर एव मेरे हृदय पर अपना कुच रूपी पत्थर का बोझ धरकर अपने उर-बदीगृह मे बाँधकर दिन-रात कैदी बनाकर रख छोडो। कविवर विद्यापति कहते है कि श्री कृष्ण ने राधा से कहा कि यदि मै तुमसे अपने प्रेम-प्रदर्शन के मिथ्या वचन कह रहा हूँ तो मुझे इतना ही कठोर दण्ड दो, मेरे लिये यही उचित होगा।

विशेष—प्रस्तुत पद मे रूपक अलकारो का प्रयोग खूब हुआ है—जैसे, भुज-पास, पयोधर-पाथर एव उर-कारा। पुरुष मानिनी स्त्री को अपने वाक्‌चातुर्य से बनाने मे अत्यधिक प्रवीण होता है उसी को विद्यापति ने बडे वैदग्ध्य से इन शब्दो मे व्यक्त किया है—

"तोहे छोडि जदि हम परसब कोय।
तुअ हार-नागिनि काटब मोय।
हमर बचन यदि नहि परतीत।
बुझि करह साति जे होय उचीत।"

नायिका को प्राय अपने नायक के प्रति यही सदेह सालता है कि कही वह परायी स्त्री से तो नही फँस गया है, इसी की वह अनेक प्रकारेण सन्तुष्टि हुआ चाहती है। इसी नारी-रहस्य-भाव की सतुष्टि के लिये मनोवैज्ञानिक ढग से सारे पद की अभिव्यजना कराई गई है। वास्तव मे कविवर विद्यापति शृगार के Subjective कवि थे। उन्हे शृगार-भावना की गहराई मे उतरने की क्षमता प्राप्त थी अत उनके प्रत्येक पद मे शृगारी भावना अपने चरमोत्कर्ष पर है।

शब्दार्थ—ए धनि=ए सुन्दरी। करह सजात=सयम रखो, अपने क्रोध या मान का चापल्य हरो। तुअ=तुम्हारे। कुच=उरोज। हेम-घट=स्वर्ण-घट। ताक उपर=उसके ऊपर। परसब=स्पर्श करूँ। परतीत=विश्वास। साति=दण्ड। जघन-तर=जघाओ के नीचे। तारि=दबाकर। पयोधर-पाथर=कुच रूपी पत्थर। हिय=हृदय। दह=दो। भारि=बोझ। उर-कारा=हृदय रूपी बन्दीगृह।

(१३८)

अरुन पुरब दिसा बितलि सगर निसा
गगन मगन भेला चंदा।

मूदि गेलि कुमुदिन तइग्रो तोहर धनि
मूदल मुख ग्ररबिंदा।
चाँद बदन कुबलय दुहु लोचन
ग्रधर मधुरि बिरमान।
सगर सरीर कुसुम तोय सिरिजल
किए दहु हृदय पखान।
ग्रसकति करह ककन नहि पहिरह
हार हृदय भेल भार।
गिरिसम गरुग्र मान नहि मुंचसि
ग्रपरुब तुग्र बेवहार।
ग्रबगुन परिहरि हेरह हरखि धनि
मानक ग्रबधि बिहान।
राजा सिबसिघ रूपनरायन
कबि बिद्यापति भान।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

सखियाँ नायिका की सेज के निकट जाकर कहती है कि हे सखी ! देखो तो, पूर्वदिशि ग्ररुण हो गई है ग्रर्थात् सूर्योदय होने वाला है। सारी रात बीत चुकी है, ग्राकाश मे चन्द्रमा लीन हो गया है। कुमुदिनी भी सम्पुटित हो गई है। लेकिन तब भी तुम्हारा कमल-सा मुख खिला नही, तुम उसे मूँदे हुए हो ग्रर्थात् ग्रभी तक भी सोई रही हो। बिधि ने तुम्हारा मुख चन्द्रमा के, दोनो ग्राँखे कमल के ग्रौर ग्रधर ग्ररुण मधुरी पुष्प के समान निर्मित किये है तथा तुम्हारे सारे शरीर का सृजन फूल है लेकिन तुम्हारा हृदय पत्थर के समान कठोर क्यो कर दिया ? ऐसा क्यो करती हो कि कगन नही पहनती हो ग्रौर हृदय पर का हार तो तुम्हे भार ही लगता है ग्रर्थात इतनी कोमल एव ग्रालस्यमयी हो कि तुम्हे कोई ग्राभूषण सह्य ही नही होता, यहा ठीक बात नही। तुम पर्वत के समान ग्रपना बोझिल मान भी नही छोडती हो ; तुम्हारो यह व्यवहार भी ग्रपूर्व है, ग्राशय है ग्रसगत है। हे सुन्दरी ! ग्रब भी इन ग्रवगुणो का त्याग कर प्रसन्नतापूर्वक मेरी ग्रोर देखो। मान का समय तो समाप्त हो गया है। राजा शिवसिह रूप मे ग्रागर है, यह कविवर विद्यापति कहते है।

विशेष—ग्रभिसारिका का मान ग्रटूट होता है। उसका ग्रपार सौन्दर्य जहाँ एक ग्रोर लुभाता है वहाँ दूसरी ग्रोर पत्थर-सा कठोर भी लगता है। इस तथ्य की सफल ग्रभिव्यक्ति इन पक्तियो मे हुई है—

"सगर सरीर कुसुम तोय सिरिजल
किए वहु हृदय पखान।"

प्रातःकालीन सुखद वातावरण का चित्रण इन पंक्तियो मे दर्शनीय है—

"अरुन पुरब दिसा बितलि सगर निसा
गगन मगन भेला चंदा।
मूदि गेलि कुमुदिन तइओ तोहर धनि
मूदल मुख अरबिंदा।"

'मान' को पर्वत के भार के समान तुलना मे रक्खा गया है जो बडा उपयुक्त ही है।

शब्दार्थ—अरुन पुरब=पूरब का लाल आसमान। दिसा=दिशा। सगर=सारी। निसा=रात। भेला=हो गया। मूँदि गेलि=मूद गई। तइओ=तब भी। तोहर=तुम्हारा। धनि=सुन्दरी। अरबिदा=कमल के समान। बदन=मुख। कुबलय=कमल। दुहु=दोनो। मधुरि=रसीला लाल पुष्प। सगर=सारा। तोय=तुम्हारा। सिरिजल=सृजन किया, बनाया। पखान=पाषाण, पत्थर। असकति=आलस्य के कारण। भेल=हुआ। गिरिसम=पर्वत के समान। गरुअ=गुरु। मुचसि=छोडती। तुअ=तुम्हारा। बेवहार=व्यवहार। अबगुन=अवगुण। परिहरि=त्यागकर। हेरह=देखो। हरखि=खुशी के साथ, हर्ष से। अबधि=समय। बिहान=प्रात। सिबसिघ=शिवसिह।

(१३६)

मदन-कुंज पर बइसल नागर
वृन्दा सखि मुख चाहि।
जोड़ि जुगुल कर बिनति करए कत
तुरित मिलाबह राहि।
हम पर रोखि बिमुख भइ सुन्दरि
जबहु चललि निज गेहा।
मदन हुतासन मझु मन जारल
जीब न बाँधइ थेहा।
तुअ अति चतुर सिरोमनि नागर
तोहे कि सिखाओब बानि।
तुहु बिनु हमर मरम कोन जानत
कइसे मिलाएब आनि।
चन्दन चाँद पवन भेल रिपु सम
बृन्दाबन बन भेल।
कोकिल मयूर झंकार देत कत
मझु मन मनमथ सेल।

छल छल नयन बयन भरि रोग्रत
चरन पकड़ि गहि जाब।
हा हा से धनि हमए न हेरब
सिंह भूपति रस गाब।

भावार्थ—पूर्व पद के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

कामदेव रूपी झाडी पर बैठकर कन्हैया वृन्दा नामक सखि के मुँह का अवलोकन कर रहे है और दोनो हाथ जोडकर उससे कितना निवेदन कर रहे है कि जितना जल्द हो सके मुझे राधा से मिला दो। वे कहते है कि जब से मुझ पर क्रोधित होकर और मुँह मोडकर सुन्दरी राधा अपने घर चली गई तब से कामाग्नि मेरे मन को बुरी तरह जला रही है, और आत्मा से धैर्य नही धारण किया जा रहा है। सखी कहती है कि हे कृष्ण ! तुम तो चतुरो मे चतुर हो, चतुरो के सिर का आभूषण हो, मै तुमको क्या सिखाऊँगी बोलना ; और तुम्हे छोडकर हमारे हृदय का मर्म कौन जानता है, इसलिए तुम ही सोचो न कि मै राधा अर्थात् नायिका को कैसे लाकर तुमसे मिलाऊँगी ? कृष्ण कहते है कि मुझे तो राधा के बिना चन्दन, चन्द्रमा और पवन शत्रु के समान हुए लगते है और पूर्व का रासमय वृन्दाबन भी अब कटकाकीर्ण घमासान जंगल की तरह हुआ लगता है। अर्थात् उस सुन्दरी का जाना मुझे बहुत अखर रहा है, कुछ भी अच्छा नही लगता। कोयल और मयूरो की मधुर ध्वनियाँ उठ-उठकर मेरे अन्तर के सुप्त काम-देव के पीडन को जगा-जगा देती है। कृष्ण की आँखो मे आँसू छलछला रहे है और वे सिसक-सिसककर चरण पकडकर आग्रह करते है कि हे सुन्दरी ! तुम जाओ और उसे अभी बुलाकर ले आओ। यो तो वह मुडकर भी मेरी ओर नही देखेगी। कविवर विद्यापति कहते है कि राजा शिवसिंह इस रस को भली-भाँति जानते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शृगार के विरह-पक्ष की उद्भावना बडी स्वाभाविक एव मर्मस्पर्शी है। काम-पीडित प्राणी के लिए शृगार के साधन एव उपचार भी दग्धकारी लगते है, वह तो केवल विरह की ज्वाला ही ज्वाला सर्वत्र पाता है। चन्दन, चन्द्रमा, वायु, रासस्थल, वृन्दावन, कोयल, मयूर सभी दुखदायी हो गए है। मदन के प्रहारो से कृष्ण आहत हो चुके है, वह अत्यन्त कातर है, अश्रुमय है, आमृयुक्त है। उनके मनोभावो का सहज प्रकाशन इन पक्तियो मे दृष्टव्य है—

"छल छल नयन बयन भरि रोग्रत
चरन पकड़ि गहि जाब।"

एक बडी विशेषता यह है कि अन्य कृष्णभक्त-कवियो—सूरादि—ने विरह-पक्ष की व्यापक अनुभूति नायिका के ही हृदय मे पायी है, उसे अभिव्यक्त किया है किन्तु विद्यापति ने यहाँ विरह की स्वाभाविक पीडामय स्थिति का प्रकाशन पुरुष श्री कृष्ण के हृदय मे पैठ कर किया है। रसिक-शिरोमणि (और परब्रह्म रूप भी) श्री कृष्ण की ऐसी विरहात्मक

दशा जितनी स्वाभाविक है उतनी ही प्रभावशाली भी। नीचे हम महाकवि सूरदास जी का एक प्रसिद्ध पद दे रहे है जिससे कविवर विद्यापति के प्रस्तुत पद के विरह सम्बन्धी उपकरण और तद्जन्य अनुभूति तथा अभिव्यजना मे सूक्ष्म साम्य स्पष्ट झलकता है—

"दूर करहु बीना कर धरिबो।
मोहे मृग नहि रथ हाँम्यो, नाँहिन होत चन्द्र को ढरिबो।
बीति जाहि पै सोई जानै, कठिन है प्रेम पास को परिबो।
जबते बिछुरे कमल नयन, सखि रहत न नयन नीर को गरिवो।
सीतल चन्द अगिनि सम लागत कहिए धीर कौन विधि धरिवो।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिन सब झूठो जतननि को करिबो।"

अन्य भी एक पद सूर ने लिखा है—

"दधि सुत किर मानु भई भुंजे।
तबये लता लगनि अति शीतल अब भइ विसम ज्वाल की पुंजे।"

अतिशयोक्ति के कारण इस पद मे भाव-पक्ष तीव्र हो गया है।

"तुहु बिनु हमर मरम कोन जानत
कइसे मिलाएब आनि।"

इन पक्तियो मे सह-अनुभूति व्यापक है और और सरलता से हमे विरही के विरह-कक्ष मे पहुँचने का द्वार खोल देती है। वर्णन मे कवि-प्रसिद्धि का आधार लिया गया है किन्तु उसमे मर्म की वाणी मद प्रतीत हुई नही लगती, वह सर्वत्र हृदयग्राही है और यही विद्यापति के शृगारी वर्णन की प्रमुख विशेषता है।

शब्दार्थ—मदन-कुज=कामदेव रूपी झाडी। बइसल=बैठकर। नागर=नायक, कृष्ण। विनति=विनती। करए=करता है। कत=कितना। तुरित=तुरत। मिलाबह=मिलाओ। राहि=राधा, नायिका। रोखि=रोष, क्रोध। भइ=हुइ। निज गेहा=अपने घर को। मभु=मुझ। जारल=जलाया। जीब=जीव, आत्मा। थेहा=धैर्य। तुअ=तुम्हारा। अति चतुर=बहुत चतुर। तोहे=तुम्हे। सिखाओब=सिखाना। तुहु=तुम्हारे। हमर=हमारा। मरम=मर्म। कोन जानत=कौन जानता है। कइसे=किस तरह। भेल=हुआ। रिपु=शत्रु। सम=समान। मनमथ=कामदेव। धनि=सुन्दरी। हमए=हमे। हेरब=देखना। सिह····· गाब=राजा शिवसिंह इस रस को जानते है।

(१४०)

माधव, इ नहि उचित बिचार।
जनिक एहन धनि काम-कला सनि
से किअ करु व्यभिचार।

प्रानहु ताहि अधिक कए मानब
हृदयक हार समान।
कोन परजुगति आन के ताकब
की थिक तोहर गेग्रान।
कृपन पुरुष के केओ नहि निक कह
जग भरि कर उपहास।
निज धन अछइत नहि उपभोगब
केवल परहिक आस।
भनइ बिद्यापति सुनु मथुरापति
इ थिक अनुचित काज।
माँगि लायब बित से जदि हो नित

भावार्थ—'मान' प्रसग के क्रमानुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

सखियाँ कहती है कि हे माधव! तुम्हारा ऐसा विचार—परकीया-गमन—उचित नही है। जिसके घर काम की कला के समान सुन्दरी हो भला वह परनारियो के सग मे व्यभिचार क्यो करता है? वैसी स्वकीया रूपवती को तो उसे प्राण से भी अधिक प्यारी मानना चाहिए और हृदय के हार की भाँति स्नेहयुक्त। तुम्हे क्या कमी है जो परनारी की ओर कुदृष्टि डालते हो? यह कैसा तुम्हारा ज्ञान? कृपण व्यक्ति को कोई अच्छा नही कहता, सारा ससार उसका उपहास करता है कि अपना धन पास होते हुए भी वह कृपण—सुन्दरी स्वकीया होते हुए भी—उसका उपभोग नही करता, केवल दूसरो के धन की ही—परकीया-गमन की—आशा करता है। सखियो के कहने का आशय यह है कि तुम्हारी स्त्री तो परम रूपवती है फिर दूसरो की ओर कुदृष्टि रखना सर्वथा अनुचित और उपहासात्मक है। कविवर विद्यापात कहते है कि हे मथुरा-नरेश, कृष्ण! सुनो, वस्तुत. तुम्हारा यह कार्य सर्वथा अनुचित है, माग-मागकर एकत्रित किए हुए पराये धन से ही यदि नित्य काम चल जाता—स्थायी रूप बन पाता—तो स्वय कोई धन कमाने का कष्ट कार्य क्यो करता?

विशेष—हर स्त्री पर सहज अनुरक्त हो जाने वाले रसिक पुरुष की इस पद मे खिल्ली उड़ाई गई है। कृपण की वृत्ति के साथ ऐसे पुरुष की रसिक वृत्ति का तुलना बडी मौलिक बन पडी है। प्राय कवियो ने ऐसे पुरुष की तुलना भ्रमर से की है किन्तु यहाँ कृपण के व्याज से कथन मे बडा चमत्कार पैदा किया गया है—

"निज धन अछइत नहि उपभोगब
केवल परहिक आस।"

यहाँ बड़े प्रभावपूर्ण ढग से बात को कहकर निपटाया गया है। माग-मागकर कोई

नही पलता ; कर्म करना ही महत्त्वपूर्ण है। यह लोक-व्यवहारात्मक दृष्टिकोण भी इस शृंगार-प्रसंग में बखूबी आ गया है, देखिये—

"माँगि लायब बित से जदि हो नित
अपन करब कोन काज।"

शब्दार्थ—इ नहि=यह नही। जनिक=जिनकी। एहन=ऐसी। धनि=स्त्री। सनि=समान । से=सो। किअ=कैसे । करु=करता है। । कोन=कौन। परजुगति=जरूरत, आवश्यकता, कमी। आन के=दूसरो के, (स्त्री०)। ताकब=देखना। की थिक=क्या है। तोहर=तुम्हारा। गेआन=ज्ञान। कृपन=कृपण, कजूस। केओ=कोई। निक=अच्छा। जग भरि=सारा ससार। अछइत=होते हुए। परहिक आस=पराये की आशा। इ थिक=यह है। बित=वित्त, धन। जदि=यदि। काज=कार्य।

(१४१)

बिरह व्याकुल बकुल तरुतर।
पेखल नन्द-कुमार रे।
नील नीरज नयन सयँ सखि
ढरइ नीर अपार रे।
पेखि मलयज-पङ्क मृगमद
तामरस घनसार रे।
निज पानि-पल्लव मूंदि लोचन
धरनि पड़ असँभार रे।
बहइ मन्द सुगन्द सीतल
मन्द मलय-समीर रे।
जनि प्रलय कालक प्रबल पावक
दहइ सून सरीर रे।
अधिक बेपथ टूटि पड़ खिति
मसृन मुकुता-माल रे।
अनिल तरल तमाल तरुवर
मुंच सुमनस जाल रे।
मान-मनि तजि सुदति चलु जहि
राए रसिक सुजान रे।
सुखद स्तुति अति सरस दण्डक
कबि बिद्यापति भान रे।

भावार्थ—'मान' वर्णन प्रसगक्रम के अनुसार कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद मे लिखते है—

सखियां राधा से कह रही है कि हे सखी ! मौलश्री के वृक्ष के नीचे विरह से व्यथित तुम्हारे प्रियतम नन्दकुमार कृष्ण को मैने तुम्हारी प्रतीक्षा मे खडे हुए देखा है। तुम नही थी, अत उनके नीले कमल जैसे नेत्रो से, हे सखी, अत्यन्त अश्रु ढुलक रहे थे। चन्दन का लेप, कस्तूरी, कमल एव कपूर—प्रणय-द्रव्यो को यो ही व्यर्थ मे धरे देखकर वे व्यथित हो अपने पाणि-पल्लव से नेत्रो को मूँदकर पृथ्वी पर बरबस अचेत होकर गिर पडे। आशय यह है कि कृष्ण के निकट कपूर, कस्तूरी, चन्दन-लेप, कमल आदि प्रणय-शृगार के अभिसार के साधन थे किन्तु राधा वहाँ न थी, अत. वह बडी दयनीय दशा मे वियोगी होकर गिर पडे, अचेत हो गये। यो यहाँ प्रणय-वियोग की मूर्छा-दशा का मार्मिक भाव व्यजित हुआ है। शीतल, मद, सुगन्धित मलयानिल बह रहा था किन्तु कृष्ण के शून्य तन को वह मानो प्रलयकालीन भीषण आग बनकर जला रहा था। आशय यह है कि श्री कृष्ण को, सम्भोग को उद्दीप्त करने वाले तत्त्व ही राधा की विरह-व्यथा मे घातक सिद्ध हो रहे थे। आत्यतिक व्यथा-जनित कम्पन के कारण उनके गले की चिकनी-चमकीली मोतियो की माला टूटकर पृथ्वी पर गिर-कर बिखर गई यो कि जैसे चचल पवन के झोके के कारण तमाल के पेड से पुष्पो का ढेर गिरा हो। सखी कहती है अत हे सुन्दर दशन वाली राधे ! प्रियतम श्री कृष्ण की ऐसी नाजुक दशा मे उन्हे सतोष प्रदान करने के लिए अपने मन का मान त्यागकर उनसे अभिसारार्थ चलो। कविवर विद्यापति कहते है कि यह शृगार-मान विषयक दण्डक छद कानो के सुनने मे अति सरस है।

विशेष—जैसा कि अन्तिम पक्तियो मे कविवर विद्यापति ने लिखा है, यह छद अपनी शब्द-योजना, लय, भाव एव ध्वनि मे बडा सरस बन पडा है। उदाहरण के लिए यह पक्तियाँ कितनी कलात्मक, कितनी भाव-रस से पूर्ण है—

"बिरह व्याकुल बकुल तरुतर
पेखल नन्द-कुमार रे।
नील नीरज नयन सयँ सखि
ढरइ नीर अपार रे।"

'बिरह व्याकुल बकुल', 'नील नीरज नयन', 'सयँ सखि' आदि मे अनुप्रास एव संगीत की छटा छलकी पड़ रही है। इधर 'नील नीरज नयन' में उपमा भी बड़ी मोहक है। विप्रलम्भ शृगार मे सुखदायी प्राकृतिक दृश्य भी दुखद हो जाते है, इसकी मार्मिक अभिव्यजना इन पंक्तियों मे दशनीय है—

"बहइ मन्द सुगन्द सीतल
मन्द मलय-समीर रे।
जनि प्रलय कालक प्रबल पावक
दहइ सून सरीर रे।"

'जनि' शब्द से उत्प्रेक्षा भी नगीने-सी जड दी गई है।

"निज पानि पल्लव मूँदि लोचन
धरनि पड़ असँभार रे।"

इन पक्तियो मे विरह जन्य मूर्च्छा की दशा का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। सम्पूर्ण पद मे करुण एव शृगार-रस का समन्वित भाव व्यजित है।

शब्दार्थ—बकुल=मौलश्री का पुष्प। पेखल=देखा। नील नीरज=नील कमल, यहाँ श्री कृष्ण के सुन्दर नेत्रों का उपमान है। सयँ=से। ढरइ=गिरता है, बहता है। नीर=पानी, अश्रु से तात्पर्य है। मलयज-पङ्क=चन्दन का लेप। मृगमद=कस्तूरी। तामरस=कमल। घनसार=कपूर। पानि पल्लव=कोमल पल्लव रूपी हाथ। मूँदि=बन्द करके। धरनि पड=पृथ्वी पर गिरकर। असँभार=बिना सहारे के गिर पडने से अर्थ है। मलय-समीर=मलयानिल। जनि=मानो। क=की। प्रबल पावक=प्रचड आग। दहइ=जलाना। सून शरीर=निर्जीव-सा हुआ शरीर। वेपथ=दुख, व्यथा। खिति=पृथ्वी। मसृन=चिकनी या चमकीली से तात्पर्य है। मुकुता-माल=मोतियो की माला। तरल=चचल। अनिल=हवा। मुच=गिर जाना। सुमनस जाल=पुष्पो का पुज। मान-मनि तजि=मन का मान त्यागकर। सुदति=सुन्दर दाँतो वाली। राए=राधा। सुखद=सुख देने वाले। स्रुति=कान, सुनने मे। सरस=रसमय। दण्डक=एक छद का नाम।

(१४२)

**रामा, कि अब बोलसि आन।
तोहर चरन सरन से हरि
अबहु मेटह मान।
गोबर्धन गिरि बाम कर धरि
कएल गोखल पार।
बिरह से सिन करक कंकन
गरुअ मानए भार।
दमन कालो कएल जे जन
चरन जुगुल-बरे।**

अब भुजंगम भरम भूलल
हृदय हार न धरे।
सहज चातक छाड़ए न बरत
न बइसे नदी तीर।
नबिन जलधर-बारि बिनु
न पिबए ताहरि नीर।

भावार्थ—'मान' वर्णन प्रसगानुसार कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद मे लिखते है—

सखी राधा से कह रही है कि हे रमणी ! अब भी क्यो तुम बेतुकी बाते कहती हो ?—जबकि श्री कृष्ण तुम्हारे चरणो पर फिदा है। अत भला इसी मे है कि तुम अब भी अपना मिथ्या मान त्यागो, और उनसे प्यार करो। हे राधे, देखो तो कि जिसने अपने बाम कर पर अत्यत भारी भरकम गोवर्धन पर्वत सहज उठाकर रख लिया और इन्द्र के कोप से नष्ट होते हुए गोकुल की रक्षा की, उसे बचा लिया वही बहादुर सर्व दुखभजक श्री कृष्ण तुम्हारे विरह-वियोग के दुख से इतना क्षीण-तना हो गया है कि अपने हाथ के कगन को भी बडा भार अनुभव करता है। जिसने कालिय नाग का दमन अपने दोनो मजबूत उत्तम चरणो के बल पर किया था वही बलवान श्री कृष्ण अब इस भय-भ्रम से अपने हृदय पर हार भी धारण नही करता कि कही सर्प न हो। स्वाति बिन्दु का पिपासु चातक अपने सहज भाव-स्वभाव के अनुसार अपनी पिपासा की शान्ति का व्रत नही तोडता और न किसी गगा आदि जैसी पवित्र नदी के तट पर ही जल पीने की इच्छा से जाकर बैठता है—क्योकि वह तो एक मात्र स्वाति बूंद को पीने का ही इच्छुक होता है। वह तो नए बादलो के स्वाति नक्षत्र मे गिरे जल के बिन्दु के अतिरिक्त और कही के जल से प्यास नही बुझाता।

विशेष—प्रस्तुत पद मे श्री कृष्ण के महापराक्रमी होने का भी सकेत "गोबर्धन गिरि बाम कर धरि" पक्ति द्वारा बडी सुन्दरता से दिया गया है। उनके लोकरक्षक पक्ष का यहाँ उद्घाटन भगवान की आस्था-भावना को जाग्रत करता है। किन्तु भगवान भी प्रेम के पुजारी है। यह लीलामयी सृष्टि, उसकी विरह-व्याकुल आत्माएँ उन्हे उस रूप मे भी प्रिय है जबकि वह पूर्ण परब्रह्म है—सद्चिदानन्द है। यही व्यंजना इन पक्तियो मे प्रकाशित हुई है—

"बिरह से सिन करक कंकन
गरुअ मानए भार।
× × ×
अब भुजंगम भरम भूलल
हृदय हार न धरे।"

प्रेमलक्षणा भक्ति मे तन्मयता की आत्मपीडायुक्त अनुभूति और आत्मसमर्पण का ही महत्त्व प्रधान है—यही इस पद मे प्रकट है।

'चातक' के स्वाति प्रेम की चर्चा काव्य-प्रसिद्ध है ही। महाकवि तुलसी ने भी 'चातक' के अनन्य प्रेम को प्रकट करके भगवान की भक्ति की अन्योक्ति से सच्ची महत्ता प्रकट की है—

"बधिक बधे परे पुण्य जल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम-पट मरतहु लगी न खोंच।"

और इन पक्तियो मे कविवर विद्यापति ने भी कृष्ण की प्रेम महत्ता यो प्रकट की है—

"नबिन जलधर-बारि बिनु
न पिबए ताहरि नीर।"

'भुजगम भरम भूलल' मे अनुप्रास की छटा विद्यमान है। "बिरह से सिन करक ककन गरुअ मानए हार।" यहाँ अतिशयोक्ति का निराकरण बडी उत्कृष्टतापूर्वक 'मानए' क्रिया पद द्वारा किया गया है; यदि यही 'जानए' होता तो अतिशयोक्ति का प्रहार निश्चित हो जाता किन्तु विरह मे केवल अनुभूति का ही महत्त्व है अत ककन के भार की अनुभूति मानना स्वाभाविक एव मर्मसगत है।

"अब भुजगम भरम भूलल
हृदय हार न धरे।"

पक्तियो मे भ्रम अलकार एव संदेह विकार का स्वाभाविक भाव व्यजित है। "दमन कालो कएल" पूर्व ही विद्यापति ने लिखकर 'भुजगम' की कल्पना को तथ्यमय बना दिया है जिसमे स्मृति की सापेक्षता एव मनोविज्ञान की सरलता वर्तमान है। यह लिखने का तात्पर्य यह है कि विद्यापति के पदो मे एक भी शब्द अर्थ-गौरव से रहित नही आया—यही उनके महाकवि की प्रतिभा का ज्वलत प्रमाण कहा जायगा। इसके लिए प्रथम पक्ति मे "से हरि" कहकर सखी ने राधा को व्यजित किया है कि "से" अर्थात् वह तुम्हारे 'प्रियतम' श्री कृष्ण। यहाँ 'से' शब्द से राधा के एकान्त प्रेमी श्री कृष्ण के आकर्षण का एव उनकी व्यापक सम्बन्ध भावना का सहज प्रकाशन है।

शब्दार्थ=रामा=रमणी। कि अब बोलसि आन=क्या अन्यथा कहती हो। आन=अन्यथा। तोहर=तुम्हारे। सरन=शरण। से हरि=वह तुम्हारे प्रियतम श्री कृष्ण। अवहु=अब भी। गिरि=पर्वत। बाम=बाया। कर=हाथ। कएल=किया। पार=उद्धार करने या रक्षा करने से तात्पर्य है। खिन=क्षीण। करक ककन=हाथ मे पहना हुआ कगन। गरुअ=अत्यधिक। भार=बोझ स्वरूप। कालो=कालिय नाग। दमन=मारना। जे जन=जिस पुरुष ने, आशय है महापराक्रमी कृष्ण ने। बरे=उत्तम। जुगुल=दोनों। भरम=धोखा। भूलल=भ्रमित होना।

बरत=प्रतिज्ञा। बइसे=बैठता है। नबिन जलधर=नये बादल, असाढ के बादल। बारि=जल, स्वाति जलबिन्दु से आशय है। न पिबए=नही पीता। ताहरि=उस बादल का। नीर=पानी।

(१४३)

सखि हे बूझल कान्ह गोआर।
पितरक टाँड़ काज दहु कओन लह
ऊपर चकमक सार।
हम तो कएल मत गेलहि होएत भल
हम छलि सुपुरुख भाने।
तोहर बचन सखि कएल आँखि देखि
अमिअ-भरम बिष पाने।
पसुक संग हुन जनम गमाओल
से कि बुझथि रतिरंग।
मधु-जामिनि मोर आज विफल गेलि
गोप गमारक संग।
तोहर बचन कूप धसि जाएब
तैं हमे गेलहु अबाट।
चदन भरम सिमर आलिंगल
सालि रहल हिय काँट।
भनइ विद्यापति हरि बहुबल्लभ
कएइ बहुत अपमान।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
लखिमा पति रस जान।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका कहती है कि हे सखी ! मै तो जान गई कि कृष्ण आखिर ग्वाला ही है, मूर्ख है। पीतल के कगन मे ऊपरी चमक-दमक ही रहती है, पर उससे कौन क्या पायेगा, वह आभूषण तो व्यर्थ है। आशय यह है कि कृष्ण मे पीतल के आभूषण की तरह केवल बाहरी चमक-दमक है उनके भीतर कुछ नही है, वे सीधे गोप है। मै तो समझी थी कि उसके पास जाने से मेरी कामंना की सन्तुष्टि होगी क्योकि मैंने उसे एक सुन्दर पुरुष होने की ही कल्पना की थी। तुमने जैसी बाते कही उसके अनुसार मैने बिना जाने-बूझे देखे-भाले उसे अपनाया किन्तु मेरी तो ऐसी हालत हो गई जैसी अमृत के धोखे मे विषपान कर लेने पर होती है। पशुओं के साथ गाय चराने मे जिसकी सारी आयु गुजरी, वह भला रति-क्रिया का मर्म क्या समझे ? आज मेरी

मधुमय मिलन-यामिनी अहीर गँवार के साथ व्यर्थ ही बीती। तुम्हारे कहने के अनुसार हो मैं तो कुएँ में डूबने के लिए कुपथ पर जा रही थी। मैंने चन्दन के वृक्ष के धोखे में सेमल के कँटीले वृक्ष का आलिंगन कर लिया जिसका भ्रम हृदय में काँटे-सा चुभ रहा है। आशय यह है कि नायिका कृष्ण को रति-क्रिया में निपुण, परम चतुर समझकर कृष्ण के पास काम-क्रीडा के लिए गई थी, लेकिन कृष्ण द्वारा उसकी पिपासा न बुझ पायी, वह अतृप्त ही सारी रात बिताकर लौट आई और जिस सखी के कहने से वह कृष्ण के पास गई थी उसके पूछने पर वह अपनी नादानी को और कृष्ण को भी वह कोस रही है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि कृष्ण बहुत रमणियों के साथ रमण करते हैं, लेकिन तुम्हारा उन्होंने बहुत अपमान किया है। राजा शिवसिंह—लखिमा के पति, जो परम रूपवान हैं, वे इस रस-रहस्य को भली-भाँति जानते हैं।

विशेष—अधिक रूपवान पुरुष भी किन्तु जो नारी के साथ यथावसर संभोग करके उसे सन्तुष्ट नहीं कर पाता वह बडा मूर्ख, बडा पापी होता है—उस स्त्री की दृष्टि में। यहाँ नायिका बडे नपे-तुले शब्दों में ऐसे पति की मूर्खता का उल्लेख कर रही है—

"सखि हे बूझल कान्ह गोआर।
पितरक टाँड़ काज दहु कओन लह
ऊपर चकमक मार।"

गँवार के पश्चात् सहसा ऐसे मूर्ख पति का दर्जा पीतल के कंगन या हस्ताभूषण—पितरक टाँड—तुल्य तुच्छ कर दिया है; बात कहने की करामात यहाँ बडी सफाई से प्रकट हुई है। किन्तु काम-पीडन का अनुभव भी उर को कम नहीं चुभ रहा है—

"चंदन भरम सिमर हम ऐंलिगल
सालि रहल हिय काँट।"

यहाँ कला के भीने आवरण में कामिनी के अतृप्त काम-भाव को गम्भीर मनोविज्ञान सम्मत सत्य रूप में प्रकट किया है। शक्ति सुरुचि दोनों से वंचित पुरुष के प्रति वासना-प्रज्ज्वलित नारी की जितनी बडी भाव-प्रतिक्रिया हो सकती है वह कविवर विद्यापति की काव्य पंक्तियों की सीमा का सहज अतिक्रमण नहीं कर सकती। वास्तव में विद्यापति कामशास्त्र को कलात्मक काव्य रूप में प्रकट करने में पूर्णत सफल हो सके हैं किन्तु वह फिर भी शास्त्री नहीं, कवि ही रहे हैं, यह उनकी महत्ता है।

शब्दार्थ—बूझल=समझ गई, (स्त्री०)। गोआर=अहीर, गोप। पितर=पीतल। क=का। टाँड=बर्तन। कओन=कौन। गेलहि=गई। होएत=होगे। भल=भला, अच्छा। छलि=थी। सुपुरुख=सुपुरुष, सुन्दर व्यक्ति, भला आदमी। तोहर=तुम्हारी। कएल=किया। अमिअ=अमृत। भरम=भ्रम। पसु=पशु। हुन=वे, वह। गमाओल=बिताया, व्यतीत किया। से=वह। कि=क्या। बुझथि=

जाने। रतिरग=रति-क्रिया। मधु-जामिनि=वसन्त की रात्रि। मोर=मेरा। गेलि= गई, बीती। गमार=गँवार, मूर्ख। धसि जाएब=डूब जाऊँगी। तै=तू। अबाट= कुरास्ता, बेराह। सिमर=सेमल, एक प्रकार का कँटीला वृक्ष। हिय=हृदय। बहु-वल्लभ=बहुत रमणियो के साथ रमण करने वाला। कएल=किया।

(१४४)

मधु सम बचन कुलिस सम मानस
प्रथमहि जानि न भेला।
अपन चतुरपन पिसुन हाथ देल
गरूअ गरब दुर गेला।
सखि हे, मन्द प्रेम परिनामा।
बड कए जीवन कएल अपराधिन
नहि उपचर एक ठामा।
झाँपल कूप देखहि नहि पारल
आरति चललहु धाई।
तखन लघुगुरु किछु नहि गूनल
अब पछताबक जाई।
एक दिन अछलहु आन भान हम
अब बूझिल अबगाहि।
अपन मूँड अपने हम चाँछल
दोख देब गए काहि।
भनइ विद्यापति सुनु बर जौबति
चित्त गनब तहि आने।
पेमक कारन जीउ उपेखिए
जग जन के नहि जाने।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

राधा सखी से कहती है कि हे सखी! मै श्री कृष्ण के मधु सम वचन और पत्थर जैसे हृदय से पूर्व परिचित न हो सकी। आशय यह है कि मोहन की मीठी-मीठी बातो मे उनके हृदय की कठोरता को मैं पहले नही जान सकी और अपनी सारी चतुराई को उस दुष्ट छलिया के हाथ मे सौप दिया। अत अब अपनी बुद्धिमानी का महागर्व मुझ मे नही रहा, वह चूर-चूर हो गया। हे सखी! सचमुच, हे सखी, अन्त में प्रेम का फल बडा दुखदायी होता है। प्रेम के कारण मैंने अपने जीवन को सर्वथा अपराधी बना लिया है—अब मेरे उपचार के लिए एक भी स्थान उपयुक्त नही, शान्तिदायक नही, कहाँ जाऊँ? कही भी शान्ति नही मिलती। उस समय मैं उन्माद

में इस तरह भागी चली कि मुझे ढँका हुआ कुआँ भी नही दिखाई पडा। आशय यह है कि मैं काम-यौवन के मद मे अधी हो गई थी। मुझे ऊँच-नीच का ध्यान भी नही रहा। तब मैंने बड़ों-छोटों को भी कुछ नही जाना और अब तदर्थ मै पश्चात्ताप कर रही हूँ। वह एक दिन था जो मैने कुछ और ही समझा था, लेकिन अब अच्छी तरह से समझ रही हूँ, कि मैंने अपने सिर को अपने ही हाथो से नोच-खसोट दिया है। अब इसके लिए किस पर दोष मढा जाय—किसे अपराधी कहूँ, वह तो मै ही हूँ। कविवर विद्यापति कहते है कि हे श्रेष्ठ सुन्दरी ! मन मे उसके लिये कुछ और न सोचो। आशय है कि अब किए का अधिक पश्चात्ताप मन मे न करो। क्योकि प्रेम के लिये तो प्राणो तक को तुच्छ समझा जाता है ; इस सत्य को ससार मे कौन नही जानता ?

विशेष—परपुरुष-गमन का पश्चात्ताप लोकापवाद स्त्री की छाती को चीर-चीर डालता है। भावुकता के आवेश मे वह जो कुछ कर जाती है उसका परिणाम कितना दुखदायी होता है, इस मर्मस्पर्शी अनुभूति का प्रबल प्रकाशन विद्यापति ने इन पक्तियो मे यों किया है—

'सखि हे, मन्द प्रेम परिनामा।
बड़कए जीबन कएल अपराधिन
नहि उपचर एक ठामा।"

गालिब भी इसी प्रेमभूल के पश्चात्ताप से जले थे—

"दिले नादा तुझे हुआ क्या है
आखिर इस मर्ज की दवा क्या है ?"

कोई दवा नही ! और बावरी मीरा की भी इसी प्रेम पश्चात्तापमयी अनुभूति को जरा देखिए—

"जो मैं ऐसा जाणती प्रीति किए दुख होय।
नगर ढिढोरा पीटती प्रीति करो जनि कोय।"

किन्तु अन्तत: प्रेम पश्चात्ताप नही है, वह तो प्राणो का वरदान है, जीवन का परम तत्त्व है; इसे सभी मानते है। इसी बात को कविवर विद्यापति ने यो कहा है—

"पेमक कारन जीउ उपेखिए
जग जन के नहि जाने।"

हाँ, प्रेम मे अभिमान अथवा गरुगर्व अभिशाप अवश्य है—

"झाँपल कूप देखहि नहि पारल
आरति चललहु धाई।
तखन लघुगुरु किछु नहि गूनल।
अब पछताबक जाई।"

इस प्रकार सम्पूर्ण पद में प्रेम को ध्रुव केन्द्र मानकर बड़ी प्रबल अनुभूतियों का प्रकाशन किया गया है।

शब्दार्थ— मधु सम=मधुर, मीठा। कुलिस=कठोर। मानस=हृदय। अपन= अपना। चतुरपन=बुद्धिमानी, चतुराई। पिसुन=धोखा देने वाला। गरुअ=गुरु। गरब=गर्व, घमण्ड। मन्द=बुरा, खराब। परिनामा=परिणाम। ठामा=जगह। झाँपल=ढँका हुआ। देखहि नहि पारल=दिखाई नही पडा। आरति=आवेग। धाई=भागकर, दौडकर। तखन=तब। लघुगुरु=बडा-छोटा। किछु=कुछ। पछ-ताबक=पाश्चात्ताप, पछतावा। अछलहु=था। आन=और। भान=समझ। बूझिल अबगाहि=और समझ रही हूँ। अपन=अपना। मूंड=माथा। चाँछल=छाँटा, काटा, बाल काटने से तात्पर्य है। दोख=दोष। काहि=किसे। पेमक=प्रेम के। कारन=कारण। जीउ=जीव, आत्मा। उपेखिए=उपेक्षा।

(१४५)

माधब, दुर्ज्जय मानिनि-मानि।
बिपरित चरित पेखि चकरित भेल
न पुछल आधहु बानि।
तुअ रूप साम अखर नहि सुनए
तुअ रूप रिपु सम मानि।
तुअ जन सयँ सम्भास न करई
कइसे मिलाएब आनि।
नील बसन बर, काँचन चुरि कर
पौतिक माल उतारि।
करि-रद चुरि कर मोति माल बर
पहिरल अरुनिम सारि।
असित चित्र उर पर छल, मेटल
मलयज देह लगाइ।
मृगमद तिलक धोइ दृगंचल, कच
सयँ मुख लए छपाइ।
एक तील छल चारु चिबुक पर
निन्दि मधुप-सत सामा।
तृन-अग्रें करि मलयज रजल
ताहि छपाओल रामा।
जलधर देखि चन्द्रातप झाँपल
सामरि सखि नहि पास।

तमाल तरु गन चुना लेपल
सिखि पिक दूरि निबास।
मधुकर डर धनि चम्पक-तरु तल
लोचन जल भरिपूर।
सामर चिकुर हेरि मुकुर पटकल
टूटि भए गेल सत चूर।
तुम गुन-गाम कहए सुक पंडित
सुनतहि उठल रोसाइ।
पिंजर झटकि फटकि पर पटकत
धाए धएल तहि जाइ।
मेरु सम मान सुमेरु कोप सम
देखि भेल रेनु समान।
विद्यापति कह राहि मनाबए
आपु सिधारह काम।

भावार्थ—'मान' वर्णन प्रसग के अतर्गत कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद मे लिखते है—

दूती श्री कृष्ण से कहती है कि हे माधव! उस मानिनी राधा का मान सहज मे ही जीता नही जा सकता। मै उसका प्रतिकूल चरित्र देखकर चकित हो गई और आधी बात भी पूछने-कहने मे असमर्थ हो गई। वह तुम्हारे नाम के दो 'श्याम रूप' शब्दो तक को सुनना नही चाहती और शत्रुरूप लगता है उसे तुम्हारा रूप-सौन्दर्य! उसे तुमसे इतनी घृणा हो गई है। तुम्हारे जैसी रूपाकृति वाले आदमी से तो वह बातचीत भी नही करती, फिर मै किस भाँति उसे लाकर तुमसे भेट कराऊँ? उसने नीले रग की सुन्दर साडी, सोने की अथवा काँच की चूडी और नीलमणि की माला उतारकर हाथीदाँत की चूडियाँ, मोतियो की सुन्दर माला तथा लाल या गेरू रग की सादी साडी पहन ली है। आशय यह है कि उसे कृष्ण से इतनी विरक्ति हो गई कि जिस रग के कृष्ण है उस रग की वस्तुओ को त्यागकर वह सादी वेशभूषा धारण कर चुकी है। उसकी छाती पर गुदा हुआ जो अश्वेत अर्थात् काला सुन्दर चिह्न था उसे उसने चन्दन का लेप लगाकर मिटा डाला है। कस्तूरी के तिलक को दृगचल या आँसू से धोकर और बालो को बिखेरकर अपना मुख ढँक लिया है। एक तिल उसकी सुन्दर ठुड्डी पर था, जिससे भौरो के बच्चो की कृष्णता भी शरमाती थी, उसे भी उसने तिनके की नोक से चन्दन की रज लगाकर छिपा दिया है। श्यामला बादल को देखकर उसने चंदोवा लगा लिया है और जितनी साँवली सखियाँ उसके पास रही उन सबको उसने दूर कर दिया है। श्यामले तमाल के तरुओं मे उसने

चूना लिपवाकर उन्हे धवल बना दिया है और मयूर-कोकिल को अपने उपवन से उडाकर दूर कर दिया है। वह भौरो के डर से चम्पक तरु के नीचे चली गई है ताकि उसे उनका श्यामवर्ण दिखलाई न पडे और आँखे भर-भरकर दुःख से रो रही है। उसने अपने कृष्णवर्ण केशों को शीशे मे देखकर उसे इस तरह से पटका कि उसके सैकडो टुकडे हो गये, चूर-चूर हो गया वह। तुम्हारे अनेक गुणो का गान जब पण्डित तोता करने लगा तब उसे सुनते ही वह क्रोधित होकर उठी और पिजडे को झटककर उठा उसने उसे पत्थर पर पटककर दे मारा और तोते को जा पकडा। यो उसके मेरु पर्वत के समान कभी न डिगने वाले मान और सुमेरु के समान बडे क्रोध को देखकर मै अपने को धूलि-कण जैसी तुच्छ समझने को विवश हो गई। कविवर विद्यापति कहते है कि दूती ने कहा, हे कृष्ण! राधा को मनाने के लिये अब आप ही जाइये, वरना उसको मनाना औरो के वश की बात नही है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे उदण्ड नायिका के मान और कोप का चित्रण बडे कौशल से किया गया है। कृष्ण काले थे अतः नायिका राधा को श्यामवर्ण से घोर घृणा हो गई थी। इस घृणावृत्ति को अनेकानेक प्राकृतिक उपकरणो के माध्यम से प्रकट किया गया है जिसका वर्णन अद्भुत ढग से हुआ है। समस्त वर्णन मे अत्युक्ति प्रधान है और अतिशयोक्ति का एक उदाहरण कितने नए ढग का है यह दर्शनीय है—

"तमाल तरु गन चुना लेपल
सिखि पिक दूरि निबास।"

नायिका के 'मान' को मेरु समान और कोप को सुमेरु समान ठीक ही कहा गया है क्योंकि—

"पिंजर झटकि फटकि पर पटकत
धाए धएल तहि जाइ।"

वर्णन मे सूझ एव चमत्कार होते हुए भी भाव-तत्त्व का अभाव है। यहाँ कवि का हृदय नही बोला, कलम की कारीगरी ही प्रधान रही है। नायिका के मान से अधिक यहाँ उसका पागलपन एव रोष ही अधिक प्रकट हुआ है।

शब्दार्थ—दुर्ज्जय=जिसे जीता न जा सके, अजेय। मानि=मान। चरित=चरित्र। पेखि चकरित=देखकर चकित। भेल=हुई। आधहु=आधा। तुअ=तुम्हारा। साम=श्याम। अखर=शब्द, अक्षर। रिपु=शत्रु। सम=समान। मानि=जानता या समझता। सयँ=समान। सम्भास=बातचीत। मिलाएब=मिलाऊँगी। आनि=लाकर, बुलाकर। कांचन चुरि=सोने की चूडी। मौतिक माल=मणिमाल। उतारि=उतार दिया। रद चुरि=खराब, भद्दी चूडी। पहिरल=पहनी। अरुनिम सारि=लाल भद्दी साडी। असित=काला। उर पर छल=हृदय पर लेप किया। मलयज=चन्दन। मृगमद=कस्तूरी।

दगंचल=आँसू। कच=बाल। लए छपाइ= छिपा लिया। छल=था। चारु चिबुक=सुन्दर ठुड्डी, अधर के नीचे का भाग। मधुप-सुत=मधुकर की सन्तान। सामा=श्यामल। तृन-अग्रे=तिनके का अगला भाग, नोक। छपाओल=छिपाया। रामा=राधा। जलधर=बादल। झाँपल=ढँका। सामरि=श्यामल। सिखि पिक= मयूर, कोकिल। धनि=सुन्दरी। तरु तल=पेड के नीचे। लोचन=नेत्र। सामर चिकुर=श्यामला बाल। मुकुर=शीशा, आईना। पटकल= पटक दिया। सत चूर= सौ खण्ड। तुअ=तुम्हारा। सूक पडित=तोता पण्डित। रोसाई=क्रोधित होकर। पिंजर=पिंजडा। फटकि=शिला, पत्थर। धाए धएल= दौडकर पकडा। सम= समान। कोप=क्रोध। रेनु=धूल-कण। राहि=राधा। मनाबए=मनाने के लिये।

(१४६)

मानिनि हम कहिए तुअ लागी।
नाह निकट पाइ जे जन बंचए
तेकर बड़हि अभागी।
दिनकर-बन्धु कमल सब जानए
जल तेहि जीबन होई।
पङ्क बिहिन तनु भानु सुखाबए
जल पटाब बरु कोई।
नाह समीप सुखद जत बैभब
अनुकुल होएत जोई।
तेकर बिरह सकल सुख सम्पद
खन खन दगधए सोई।
तुहु धनि गुनमति बूझि करह रति
परिजन ऐसन भास।
सुनइत राहि हृदय भेल गदगद
अनुमति कएल प्रगास।

भावार्थ—'मान' प्रसगक्रमानुसार कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद मे लिखते हैं—

दूती कह रही है कि हे मानिनी राधे! मैं तो तुम्हारे ही भले के लिए कहती हूँ कि जो नारी अपने पति के पास पहुँचने से या उससे समागम करने से वंचित रह जाती है वह बडी अभागिन होती है। इस बात को सभी लोग जानते है कि कमल सूर्य का बंधु है। जल ही किंतु उसके जीवन का आधार होता है। किंतु कीचड़ विहीन होने पर कमल को वही बंधु सूर्य जला-सुखा देता है और फिर चाहे कितना भी जल

छिड़को वह मुरझाया ही रहता है। आशय यह है कि सुखद वस्तुओ का तभी तक सम्बन्ध रहता है जब तक कि प्रणय का ससर्ग बना रहता है इसी प्रकार जैसे कि कमल कीचड का घोर प्रणय ससर्ग है और उस‍ा विहीन होने पर कमल को न तो उसका आधार जल कुछ प्रमुदित कर पाता है और सूर्य तो उसे जला ही देता है। इसी भाँति राधा कृष्ण के प्रणय ससर्ग की सर्वस्वा है, उन्हे कृष्ण को विरहाकुल नहीं रखना चाहिए, उनके निकट पहुँचना चाहिए। दूती कहती है कि हे राधे ! पति के निकट जितनी वैभव-वस्तुएँ सुखदात्री एव आनन्दानुकूल होती है वही सारी सुखमय सम्पदाएँ विरहावस्था मे क्षण-क्षण मे दग्ध करती है। हे रमणी ! जरा सोचो-समझो और कृष्ण के साथ रति-क्रीडा करो, यही बात हम परिजनो को उचित लगती है। यह सुनकर राधा गदगद हो गई, उन्हे रोमाच हो आया और उन्होने कृष्ण के साथ रति-क्रिया करने की अनुभूति का प्रकाश विकीर्ण कर दिया—वे राजी हो गई।

विशेष—प्रेम-तत्त्व की गूढ अभिव्यजना इन पक्तियो मे बडी उत्कृष्टता से की गई है—

"दिनकर-बन्धु कमल सब जानए
जल तेहि जीवन होई।
पङ्क बिहिन तनु भानु सुखाबए
जल पटाब बरु कोई।"

सूर्य, जलादि प्रेम के सामान्य उपकरण बताकर 'कीचड' को प्रेम का मूल तत्त्व बताया गया है। वस्तुत प्रेम मे अच्छा-बुरा, सुन्दर-असुन्दर कुछ नही, केवल आत्मसात होना रहना ही अनिवार्य होता है। कमल और कीचड की इस प्रेमव्यापक सम्बन्ध भावना का प्रकाशन बडा तात्विक हुआ है और आलकारिक चमत्कार से उसमे काव्य सौष्ठव भी अक्षुण्ण रखा गया है। भारतीय नारी के लिए उसका पति ही उसका सर्वस्व होता है—इस सास्कृतिक तत्त्व की पुष्टि इन पक्तियो मे हुई है—

"नाह निकट पाइ जे जन बंचए
तेकर बड़हि अभागी।"

अन्त मे मानिनी का मान-भाव सम्भोग-शृगार की इच्छा-धारा मे तिरोहित हो जाता है, देखिये—

"अनुमति कएल .प्रगास।"

शृगार-वर्णन परम्परा के अनुसार वियोग मे सभोग के सभी सुखद प्राकृतिक तत्त्व विरोधी लगते है, इस भाव का प्रकाशन इन पक्तियो मे केवल व्यजना से है—

"नाह समीप सुखद जत बैभब
अनुकुल होएत जोई।

तेकर बिरह सकल सुख सम्पद
खन खन दगधए सोई।"

इन पंक्तियो मे आत्मा की निश्छल अभिव्यक्ति की मार्मिकता प्रधान है, ऊहात्मकता का जोर यहाँ नही—मूलत यही विशेषता विद्यापति के काव्य मे अन्य शृंगारिक कवियो से अधिक परिलक्षित होती है।

शब्दार्थ—वचए=वचित रहना। नाह=पति। तुअ लागी=तुम्हारे हित मे। बड़हि=बहुत। अभागी=बुरे भाग्य वाली। दिनकर=सूर्य। जे=जो। तेहि=उसका। पङ्क=कीचड। बिहिन=विहीन। तनु=शरीर। भानु=सूरज। पटाब=छिड़कना। बरु=भले ही। बैभव=ऐश्वर्य। जत=जितना। तेकर=उसके। खन=क्षण। दगधए=जलाता है। रति=मैथुन। गुनमति=गुण वाली। राहि=राधा। अनुमति=स्वीकृति, रजामन्दी। कएल प्रगास=प्रकाश किया।

(१४७)

मानिनि आब उचित नहि मान।
एखनुक रग एहन सन लगइछ
जगल पए पँचबान।
जूड़ि रयनि चकमक करु चाँदनि
एहन समय नहि आन।
एहि अवसर पिय-मिलन जेहन सुख
जकरहि होए से जान।
रभसि-रभसि अलि बिलसि बिलसि करि
करए मधुर मधु पान।
अपन अपन पहु सबहु जेमाओलि
भूखल तुअ जजमान।
त्रिबलि तरंग सितासित संगम
उरज सम्भु निरमान।
आरति पति मँगइछ परतिग्रह
करु धनि सरबस दान।
दीपक-दिप सम थिर न रहय मन
दृढ़ करु अपन गेआन।
संचित मदन बेदन अति दारुन
बिद्यापति कबि भान।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

सखी नायिका राधा से कहती है कि हे मानिनी! अब तुम्हारा अधिक मान

करना उचित नही, अनुचित है अर्थात् वह बहुत हो चुका। तुम्हे देखकर इस समय का तुम्हारा रगढग ऐसा प्रतीत होता है जैसे कामदेव सोते से जग गया हो। ये ठंडी भीगी-भीगी रात, जिसमे चाँदनी चमचमा रही है, ऐसा मादक समय फिर कभी नही आयेगा। इस अवसर पर प्रिय-मिलन से जो सुख होगा वह तो वही बता सकेगी जो अपने प्रियतम से मिलेगी। भ्रमर फूलो पर उमग में मँडरा-मँडराकर सुखपूर्वक रस पान करने मे लीन है। अपने-अपने पति को सभी स्त्रियो ने भोजन खिला दिया है लेकिन तुम्हारे प्रियतम ही एक भूखे रह गये है। नायिका की त्रिबली रूपी तरग या रोमराजी द्वारा श्वेत-कृष्ण—गगा-यमुना— का सगम हुआ, वहाँ, जहाँ उसके उरोज रूपी शिव स्थापित है। आशय यह है कि नायिका के अधोभाग से उर्ध्व होती हुई रोम राजी त्रिबली है जो उसके उरोजो के मध्य मिली श्वेत माल से मिली जिससे गगा-यमुना के सगम का सुन्दर दृष्य प्रतीत हुआ। हे राधे! देखो, दु.खी पति कितना कातर होकर तुमसे प्रणय-दान माँग रहा है। हे सुन्दरी! तुम भी अपना सर्वस्व उसे दान करो तुम्हारा मन दीपशिखा की भाँति स्थिर नही रहता, प्रकम्पित रहता है, तुम अपने ज्ञान मे उसे दृढ कर लो। कविवर विद्यापति कहते है कि अन्तर मे सचित कामदेव की वेदना अति दुखदायी होती है। अर्थात् इसे जितना छिपाकर रक्खोगी उतना ही दुःख बढेगा, विकलता बढेगी।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सभोग-शृगार के उचित मधुमय वातावरण का चित्रण बडा स्वाभाविक एव उद्दीपनकारी है। चाँदनी रात मे काम-भावना का वेग बढ जाता है, देखिये—

> "जूड़ि रयनि चकमक करु चाँदनि
> एहन समय नहि आन।
> एहि अवसर पिय-मिलन जेहन सुख
> जकरहि होए से जान।"

वास्तव मे शीतल रात, चमचमाती चाँदनी के मादक समय मे पिय-मिलन कितना अनिवार्य और सुखमय होता है, यह यशस्वी कवि बच्चन जी के शब्दो मे देखिये—

> "इस रूपहरी चाँदनी मे सो नहीं सकते, पखेरू और हम भी।
> पूर्णिमा का चाँद अबर पर चढ़ा है
> तारिकावलि खो गई है,
> चाँदनी में वह सफेदी है कि जैसे
> धूप ठडी हो गई है,
> नेत्र-निद्रा के मिलन की बीथियों में
> चाहिए कुछ-कुछ अंधेरा,
> इस रूपहरि चाँदनी में सो नहीं सकते पखेरू और हम भी।

इस तरह की रात अंबर के अजिर में
रोज तो आती नहीं है,
चाँद के ऊपर जवानी इस तरह की
रोज तो छाती नहीं है,
हम कभी होंगे अलग, औ' साथ होकर
भी कभी, होगी तबीयत,
यह विरल अवसर विसुधि मे खो नहीं सकते पखेरू और हम भी।
इस रूपहरी चाँदनी में सो नहीं सकते पखेरू और हम भी।"

(आरती और अगार : पृष्ठ १७०–७१)

त्रिबली एव हार के सगम की कल्पना-तुलना क्रमश श्याम यमुना एव श्वेत गगा से की गई है जो सर्वथा उचित एव नवीन है क्योकि त्रिबली का भी वर्ण श्याम होता है और यमुना का भी, गगा का वर्ण भी श्वेत होता है और हार का भी। इधर उत्तुग उरोजो को शकर जी का रूपक भी यथासगत है—गगा और यमुना के पक्ष मे भी और हार तथा त्रिबली के पक्ष मे भी। चचल मत्त नायिका के चलायमान की उपमा झिल-मिल-झिलमिल जलती हुई दीपशिखा से दी है जिसका दृष्याकन स्वय अपने मे एक अनूठा भावचित्र बन गया है। यो कला-पक्ष एव भाव-पक्ष की दृष्टि से यह पद पूर्ण सफल बन पड़ा है। शृगार का प्रबल उद्वेग इस पक्ति मे साकार है—

"संचित मदन बेदन अति दारुन
बिद्यापति कबि भान।"

शब्दार्थ—मानिनि=मानवती। आब=अब। एखनुक=इस घडी का। एहन=इस प्रकार। लगइछ=लगती है। पँचबान=कामदेव। जूडि रयनि=भीगी रात। नहि आन=नही आ सकता। जकरहि=जिसको। अलि=भौरा। करि=कर। करए=करता है। अपन=अपना। सबहु=सभी। जेमाओलि=भोजन कराई, खिलाई। तुअ=तुम्हरा। सितासित=गगा-यमुना। उरज=उरोज, स्तन। सम्भु=शम्भु, शिव। निरमान=निर्माण। आरति=आर्त्त, दुखपूर्ण स्वर। मँगइछ=माँग रहा है। परतिग्रह =दान, उपहार। करु=करो। धनि=सुन्दरी। सरबस=सर्वस्व। दीपक-दिप=दीपशिखा। सम=समान। थिर······मन=मन स्थिर नही रहता। गेआन=ज्ञान। मदन=अनग, कामदेव। बेदन=वेदना। अति=बहुत। दारुन=कठोर, दारुण, असह्य।

(१४८)

अखिल लोचन तम-ताप-बिमोचन
आनन्दकन्दे।

एक नलिनि-मुख मलिन करए जदि
इथे लागि निन्दह चन्दे ।
सुन्दरि, बूझल तुग्र प्रतिभाति ।
गुन गन तेजि दोष एक घोषसि
ग्रन्त ग्रहीरनि जाति ।
सकल जीव-जन जीब समीरन
मन्द सुगन्ध सुसीते ।
दीपक-जोति परस जदि नासए
इथे लागि नीन्द मारुते ।
स्थावर जंगम कीट पतंगम
सुखद जे सकल सरीरे ।
कागद पत्र परस जग्रो नासए
इथे लागि निन्दह नीरे ।
खन-खन सकल कुसुम मन तोषय
निसि रहु कमलिनि संगे ।
चम्पक एक जइग्रो नहि चुम्बए
इथे लागि निन्दह भृङ्गे ।
पाँच-पाँच गुन दस गुन चौगुन
ग्राठ दुगुन सखि माझे ।
बिद्यापति कान्हु ग्राकुल तो बिनु
विषाद न पावसि लाजे ।

भावार्थ—प्रस्तुत पक्ति मे कविवर विद्यापति लिखते है—

सखी सकीर्ण दृष्टिकोण रखने वाली नायिका से कहती है कि देखो, समस्त ससार की ग्राँखो के ग्रन्धकार—ग्रज्ञान—ग्रौर ताप—कष्ट—को दूर करने वाले ग्रानन्द-कन्द भगवान श्री कृष्ण का ग्रवतरण हो रहा है । चन्द्रमा यदि केवल एक ही कमल-मुख को उदास करता है, तो क्या इसीलिये उसकी निन्दा की जानी उचित है ? ग्रर्थात्, नही, यह उचित नही क्योकि वह सारे ससार के नेत्र-दिल तो परिफुल्लित करता है ग्रपनी शीतल मधुर किरणो से। हे सुन्दरी ! मै तुम्हारी सकीर्ण प्रतिभा को भली-भाँति जानती हूँ कि तुम कृष्ण के सारे गुणो का परित्याग कर उनके एक दोष का प्रचार कर रही हो, ग्राखिर हो तो छोटी ग्रहीरिन जाति की ही न ! शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन सब जीवों का प्राण है, लेकिन यदि उसके छू जाने से दीपक बुझ जाता है तो क्या इसीलिए उसकी निन्दा करेंगे, क्या उचित है ? जड़, चेतन, कीट एवं पतंग इन समस्त जीवों के लिये जो जल सुखकर है, यदि उसके स्पर्श से कागज़ नष्ट हो जाता

है तो क्या सबको उसकी निन्दा करना उचित है ? भौरा प्रतिक्षण समस्त फूलों के मन को संतुष्ट करता है और सारी रात वह कमलिनी के साथ रहता है, लेकिन चम्पा के फूल को चूमने नही जाता है तो क्या इसीलिए उसकी निन्दा करनी चाहिए ? मै मानती हूँ कि कृष्ण—५×५×१०×४×८×२ = १६०००—सोलह हजार सखियो के साथ रहते है, किन्तु कविवर विद्यापति कहते है कि सखी ने नायिका से कहा कि फिर भी वह तुम्हारे वियोग और अभाव मे व्याकुल रहते है । बताओ, क्या इसके लिए तुम्हारा मन दुःखी नही होता ? तुम्हे लज्जा नही आती जो तुम उनके प्रति इतनी सकीर्ण वृत्ति रखती हो ?

विशेष—विशुद्ध शृंगारी कवि होते हुए भी कविवर विद्यापति अपने अन्तर मे कृष्ण के लीलामय विराट् ब्रह्म की भावना लिए हुए थे जो इन पंक्तियो मे महाप्राण स्वर से मुखरित हो उठी है—

"अखिल लोचन तम-ताप-बिमोचन
उदयति आनन्दकन्दे ।"

वास्तव मे कृष्ण पूर्ण ब्रह्म सद्चिदानन्द रूप है, ऐसी हमारे गम्भीर धर्म दर्शन की भी मान्यता है किन्तु इस ससार मे उनका अवतरण हुआ है लीलावतार के रूप मे । पद मे आए नलिनि, सकल जीव-जन, समीरन मन्द सुगन्ध उपकरण उसी के 'एकोऽहं बहुस्यामि' के प्रतीक है । वल्लभ सम्प्रदाय का दर्शन भी इसी धर्म दर्शन पर टिका है । कृष्ण किसी एक के नही सभी के प्रेमी है, प्रेय है, आनन्द रूप प्रियतम है । आत्मा को उनके मिलन-सुमरन की पीडा मे डूबना चाहिए, तभी वह उसे अंक भर सकते है, इसीलिए कहा भी है—

"पाँच-पाँच गुन दस गुन चौगुन
आठ दुगुन सखि माझे
बिद्यापति कान्हु आकुल तो बिनु
विषाद न पावसि लाजे ।"

यहाँ कृष्ण के विराट् रूप की ओर सकेत है । इस प्रकार दार्शनिक अभिव्यजना से पूर्ण होते हुए भी प्रस्तुत पद मे सम्भोग-शृंगार का वर्णन ही प्रधान है, शेष अर्थ व्यजना से है । "इथे लागि निन्दह भृङ्गे" उक्ति मे अत्यत सूक्ष्मता से वाछित अर्थ-लक्ष्य की सिद्धि प्रकट हुई है । समस्त पद सैद्धान्तिक एवं कलापक्षीय दोनो ही दृष्टि से बडा उत्कृष्ट है ।

शब्दार्थ—अखिल=ससार । लोचन=नयन । तम=अन्धकार । उदयति=उदय होते । नलिनि=कमलिनी । मलिन=मलीन, उदास । करए=करता है । इथे लागि=इसीलिए । निन्दह=निन्दा करता है । बूझल=समझ गई । तुअ=तुम्हारा । प्रतिभाति=प्रतिभा । घोषसि=प्रचार करती हो । अन्त=आखिर । अहीरनि=

अहीरिन, ग्वालिन। जीब=जीव, आत्मा। समीरन=समीर, पवन, हवा। नासए=बर्बाद करे। मारुते=पवन को। स्थावर=एक ही स्थान पर स्थिर रहने वाला पदार्थ, जैसे वृक्ष, पहाड आदि। जगम=पिडज, पिड से पैदा होने वाला जीव, मनुष्य आदि। कीट-पतगम=कीडा, पतगा आदि, इसमे अडज अर्थात् अडे से पैदा होने वाला जीव और उखमज अर्थात् मैल मे पैदा होने वाला जीव आदि आता है। कागद=कागज। नीरे=जल को। खन-खन=क्षण-क्षण निसि=रात। रहु=रहता है। चम्बए=चूमने के लिये। भृङ्ग=भौरो का। पाँच माझे=५×५=२५×१०=२५०×४=१०००×८=८०००×२=१६०००। सखि माझे=सखियो के साथ। कान्हू=कान्हाँ, कृष्ण। तो विनु=तुम्हारे बिना।

(१४६)

चानन भरम सेवलि हम सजनी
पूरत सब मनकाम।
कंटक दरस परस भेल सजनी
सीमर भेल परिनाम।
एकहि नगर बसु माधब सजनी
पर-भामिनि बस भेल।
हम धनि एहन कलावति सजनी
गुन गौरब दुर गेल।
अभिनव एक कमल फुल सजनी
दोना नीमक डार।
सेहो फुल ओतहि सुखायल छथि सजनी
रसमय फुलल नेबार।
बिधि बस आज आएल सजनी
एत दिन ओतहि गमाय।
कोन परि करब समागम सजनी
मोर मन नहि पतिआय।
भनइ बिद्यापति गाओल सजनी
उचित आओत गुनसाइ।
उठ बधाव करु मन भरि सजनी
आज आओत घर नाहि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका सखी से कहती है कि मैने भ्रम मे कृष्ण की सेवा चन्दन रूपी वृक्ष समझ कर की, यह जानकर कि उससे मेरी सभी मनोकामनाएं पूर्ण होंगी। किन्तु हे

सखी ! केवल उससे काँटो ही का दरस-परस मिला और परिणाम सेमल के कँटीले वृक्ष का ही निकला। आशय यह है कि कृष्ण सेमल के वृक्ष की भाँति निकले जिनसे मिलकर कटकमय दुखद परिणाम ही उपलब्ध हुआ। हे सखी ! एक ही नगर मे मै और कृष्ण रहते है लेकिन हाय, वह पर-स्त्री के वश मे हो गये है। हे सखी ! मै इतनी कलामर्मज्ञा हूँ किन्तु मेरी चतुरता और काम-क्रीडा मे निपुण होने का सारा गुण-गौरव, ये सभी कुछ उनके फेर मे पडकर नष्ट हो गया है। हे सखी ! उसने मुझ जैसी एक नये कमल के फूल को मानो नीम की कडवी डाली पर लटका दिया। और यो वह फूल तो वही डाली पर ही सूख गया और नेवार का फूल सरस होकर खिल गया। आशय यह है कि कृष्ण ने मेरी तो उपेक्षा की और दूसरी स्त्री से प्यार किया है। हे सखी ! आज वह भगवान की प्रेरणा से मेरे यहाँ आया हुआ है, इतने दिवस तो उन्होने उन्ही स्त्रियो के साथ रति-क्रिया करने मे बिताए है। किस प्रकार मै उनके साथ समागम करूँ ? हे सखी ! मेरे मन मे इसके लिये विश्वास या उत्साह नही होता। कविवर विद्यापति कहते है कि हे सुन्दरी ! वह गुणवान नायक तुम्हारे पास फिर भी अवश्य आएगा इसे उचित जानो अर्थात् वह सब समझता है, इसलिए वह बराबर तुम्हारे पास आएगा। उठो, उन्हे हृदय से बधाई देकर उत्सव मनाओ, आज तुम्हारा पति तुम्हारे घर आ रहा है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे परकीया डाह की अभिव्यक्ति प्रभावशाली हुई है। नारी उपेक्षा-भाव की अनुभूति इन पक्तियो मे बडे मौलिक और काल्पनिक ढग से व्यक्त हुई है जो पूर्णत मर्मस्पर्शी है—

"अभिनव एक कमल फुल सजनी
दोना नीमक डार।
सेहो फुल ओतहि सुखायल छथि सजनी
रसमय फुलल नेबार।"

दुष्ट नायक के प्रेम-साम्य और आकर्षण का परिणाम 'सेमल' के माध्यम से उचित ही ठहराया गया है। 'चानन भरम' उक्ति मे भोली नायिका के प्रथम प्रणय-भ्रम का उत्कृष्ट भाव व्यजित किया गया है। सच तो यह है कि कविवर विद्यापति के प्रत्येक शब्द मे मनोवैज्ञानिक, यथार्थ और कल्पना सम्मत व्यजना बडी उत्कृष्ट हुई है।

शब्दार्थ—चानन भरम=चन्दन के भ्रम। सेवलि=सेवा। सजनी=सखी। मन-काम=मनोकामना। भेल=हुआ। बसु=बसता है। माधब=माधव, कृष्ण। धनि=सुन्दरी। एहन=ऐसी। कलावति= ला मे निपुण। गुन=गुण। अभिनव=नूतन, नया। दोना=लटका। क=की। सेहो=वह भी। ओतहि=वहाँ ही। सुखायल=सूख गया। रसमय=सरस। बिधि बस=भगवान की प्रेरणा से। आएल= आया। गमाय=बिताकर। कोन=कौन। बधाव=वधाई। नाहि=प्रियतम, नाथ, पति।

(१५०)

सजनी अपद न मोहि परबोध।
तोड़ि जोड़िअ जहाँ गाँठ परए तहाँ
तेज तम परम बिरोध।
सलिल सनेह सहज थिक सीतल
इ जानए सब कोई।
से जदि तपत कए जतने जुड़ाइअ
तइओ बिरल रस होई।
गेल सहज हे कि रिति उपजाइअ
कुल-ससि नीली रग।
अनुभवि पुनु अनुभवए अचेतन
पडए हुतास पतंग।

भावार्थ—प्रस्तुत पक्ति मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका सखी से कहती है कि हे सखी! इस तरह अनुपयुक्त ढग स मुझे मत समझाओ। अगर किसी चीज को तोडकर जहाँ जोडेगे वहाँ उसमे गाँठ पड ही जायेगी तथा अन्धकार और उजाले मे भी पारस्परिक विरोध रहता है। स्वाभाविक रूप से पानी का स्नेह शीतलता से है, इसे सभी जानते है, यदि उसे आग पर रखकर गरम किया जाये और फिर यत्नत ठडा किया भी जायगा तो भी वह नीरस ही रहता है। कुल रूपी चन्द्रमा पर लगा हुआ नीला धब्बा उसको अपना उज्ज्वल स्वाभाविक रूप प्राप्त नही करने देता। दीपक की लौ मे एक बार जलन का अनुभव करके फिर उसका अनुभव करने के लिये अज्ञानी भुनगा ही आग मे पडता है, मनुष्य को यह उचित नही कि एक बार छल से आहत होकर फिर छल मे पडे। आशय यह है कि कृष्ण के साथ एक बार तो कलक-छल मिला अब पुन कैसे उसके लिये तत्पर हुआ जाय।

विशेष—प्रस्तुत पद मे अनेक उदाहरणो के द्वारा छली नायक के पुन प्रेम-पाश मे न पडने की बात पीडित कलकित नायिका कह रही है। प्रेम का सम्बन्ध एक बार टटकर फिर नही जुडता और यदि जुडता है तो गाँठ या ईर्ष्या शका की गाँठ पडी ही रहती है—

"तोड़ि जोड़िअ जहाँ गाँठ परए तहाँ।"

एक स्थान पर रहीम ने भी इसी तथ्य का उद्घाटन किया है, तुलना कीजिए—

"रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर ना जुड़े जुड़े गाँठ पड़ि जाय।"

"तेज तम परम बिरोध" उक्ति के द्वारा दो फटे हुए हृदयो की असगति का भाव बडी उत्कृष्टता से व्यक्त किया गया है। कुल रूपी चन्द्र और कलक रूपी धब्बे का प्रयोग

मौलिक बन पडा है । अन्तिम पक्तियो मे अग्नि मे जले पतग के फिर जलने का भाव प्रकट कर अनुभवहीनता की निर्बलता तो प्रकट की ही गई है, साथ ही अनुभव से चेतन प्राणी को कुछ सीखना चाहिए—इस लोक-शिक्षा का भाव भी मर्मस्पर्शी ढग से व्यजित है ।

शब्दार्थ—अपद=च्युत, इस तरह । मोहि=मुझे । परबोध=सिखाना, समझाना । तोडि जोडिअ=तोडकर जोडो तो । तेज=प्रकाश, उजाला । तम=अन्धकार । सलिल=जल । थिक=है । सीतल=शीतल, ठडा । इ=यह । जानए=जानता है । से=वह । जुडाइअ=ठडा कीजिए । तइओ=तो भी । बिरत=रसहीन । गेल=गया, छूटा । रिति=रीति-व्यवहार । ससि=शशि, चन्द्रमा । अचेतन=अज्ञान, मूर्ख । पडए हुतास पतग=पतग अग्नि मे पडता है ।

(१५१)

कबहु रसिक सयँ दरसन होए जनु
दरसन होए जनु नेह ।
नेह बिछोह जनु काहुक उपचए
बिछोह धरए जनु देह ।
सजनी दुर करु ओ परसग ।
पहिलहि उपजइत प्रेमक अंकुर
दारुन बिधि देल भंग ।
दैबक दोष प्रेम जदि उपजए
रसिक सयँ जनु होय ।
कान्ह से गुपुत नेह करि अब एक
सबहु सिखाओल मोय ।
एहन औषध सखि कहि नहि पाइअ
जनि जौवन जरि जाब ।
असमंजस रस सहए न पारिअ
इह कवि सेखर गाब ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा कहती है कि हे सखि ! कभी भी रसिकों का दर्शन न हो और दर्शन हो भी जाये तो उससे प्यार न हो, यदि प्यार भी हो जाये तो फिर कभी विछोह पैदा न हो और यदि विछोह हो जाये तो फिर शरीर न रहे । हे सखी ! अब तो उस प्रणय-प्रसंग को दूर करो, न दुहराओ । पहली ही बार के प्रेमाकुर को ब्रह्मा ने बड़ी कठोरता से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । ईश्वर की प्रेरणा से यदि फिर कभी प्रेम हो भी तो किसी रसमर्मज्ञ से न हो । कृष्ण से गुप्त प्रेम करने के उपरात मैं सब

को यही सिखावन देती हूँ कि किसी रसिक के साथ प्रेम न करे। इस प्रकार की दवा भी मै कही नही पाती कि जिसके पीने से जवानी जल जाती। दुविधा का रस असह्य होता ही है, ये कवि विद्यापति गाते है, मानते है।

विशेष—कविवर विद्यापति की विरहानुभूति भी उसी प्रकार की मर्मस्पर्शिता एव तीव्रता लिये है जैसी कि जायसी, मीरा, सूर एव धनानद आदि कवियो के काव्य मे पायी जाती है। प्रस्तुत पद की ये पक्तियाँ विरह-वेदना की युग-युगान्तर एव लोक-लोकान्तर व्यापी अभिव्यक्ति मुखरित करती है—

"कबहु रसिक सयँ दरसन होए जनु
दरसन होए जनु नेह।
नेह बिछोह जनु काहुक उपचए
बिछोह धरए जनु देह।"

मीरा भी एक स्थल पर इसी भाँति चीख उठी थी—

"जो मै एसा जाणती प्रीति किए दुख होय।
नगर ढिडौरा पीटती प्रीति करो जनि कोय।"

किन्तु विद्यापति तो नेह विछोह के पश्चात् देह धरना भी वृथा ही मानते है—

"बिछोह धरए जनु देह।"

इस पद की प्रत्येक पक्ति को कवि ने अपना घायल प्राण सौपा है, ऐसा प्रतीत होता है—

"दैबक दोष प्रेम जदि उपजए
रसिक सयँ जनु होय।"

या—

"एहन औषध सखि कहि नहि पाइअ
जनि जौवन जरि जाब।"

कितनी विवशता है यौवन के रोग की! और फिर उसे जलाने की कोई औषधि भी तो नही, वह तो स्वय जलाता हुआ हवनकुड है। इस प्रकार की सीधी आत्माभिव्यजना के पद सर्वत्र सुलभ नही, इसी प्रकार के दुर्लभ पदो मे है विद्यापति का यह पद। गीति-काव्य की समस्त विशेषताएँ—भावना का नैसर्गिक स्फोट, उसके साथ अनुभूति की एकता एव अभिव्यजन (Expression) की साँगिकता—इस पद मे सफलता से सयुक्त है। यह पद अपनी विशेषताओ के कारण सहज ही स्मरणीय बन जाता है और 'हसरत' की इन पक्तियो को चरितार्थ करता है—

"शायरी उसे कहते हैं ऐ 'हसरत'
जो दिल पे तीर सी उतर जाये।"

अलकारहीन होने पर इस गीत मे प्राण-रस एव भाव-सौन्दर्य पूर्णतः विद्यमान है;

शायद इसी प्रकार के उत्कृष्ट काव्य के लिए मम्मट अथवा किसी अन्य आचार्य ने 'कही-कही अलकार न हो' कहकर भी उत्कृष्ट काव्य की महत्ता प्रतिपादित की है।

शब्दार्थ—कबहु रसिक सयँ=कभी भी रसिको से। दरसन=दर्शन। जनु=मत। नेह=स्नेह, प्यार। बिछोह=बिछुडन। सजनी=सखी। धरए=धारण। देह=शरीर। दुर=दूर, अलग। करु=करो। ओ=वह। परसग=प्रसग, कहानी। पहिलहि=पहले ही। उपजइत=उपजता है। क=का। दारुन=दारुण, कठिन। बिधि=ब्रह्मा। देल=दिया। भग=नष्ट। दैबक=दैव का, देवता का। जदि=यदि। सयँ=से, साथ। कान्ह=कृष्ण। गुपुत=गुप्त, छिपा हुआ। सबहु=सबको। सिखाओल=सिखाती हूँ। मोय=मै। एहन=इस प्रकार का। पाइअ=पायी। जौबन=यौवन। जनि=जिससे। जरि=जल। जाव=जाये। असमजस=सदेह, आशका। इह=यह। कवि सेखर=कविवर विद्यापति के लिए।

(१५२)

जनम होअए जनु , जौं पुनि होई।
जुबती भए जनमए जनु कोई।
होई जुबति जनु हो रसमति।
रसओ बुझए जनु हो कुलमति।
इ धन माँगओ बिहि एक पए तोहि।
थिरता दिहह अबसानहु मोहि।
मिलि सामी नागर रसधार।
परबस जनु होए हमर पिआर।
होए परबस कुछ बुझए बिचारि।
पाए बिचार हार कओन नारि।
भनइ बिद्यापति अछ परकार।
दंद-समुद होअ जीब दए पार।

भावार्थ—'मान' प्रसग-वर्णन के क्रमानुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा कहती है कि हे सखी! प्रणय की विवशता से अच्छा है कि जन्म ही न हो और यदि वह हो ही तो कोई बाला युवती होने के लिए न जन्मे और यदि युवती हो भी तो रसज्ञाता न हो—काम की अनुभूति से अभिभूत न हो और यदि रति-रसज्ञाता हो भी तो ऊंच कुल मे जन्मी न हो। हे ईश्वर! मै तुझसे यही वरदान माँगती हूँ कि अतिम समय तक मुझे सयम की स्थिरता देना ताकि मै प्रियतम के प्रणयावेश मे कही लोक-लाज न खो दूँ। मुझे जो चतुर रसिक स्वामी वरे वह मेरा प्रियतम किसी परकीया स्त्री के प्रेम मे वशीभूत न हो जाय। और यदि वह पर-स्त्री के वश मे हो भी तो सोच-समझकर हो, वह यह विचार कर सके कि कौन नारी

उसके गले का हार हो सकती है, सच्ची और अत्यधिक प्रिया होने योग्य है। कविवर विद्यापति कहते है कि भली-भाँति प्रणय के द्वद-सागर से अपना प्राण विसर्जन करके पार होओ। आशय यह है कि सच्चा प्रेम आत्मबलिदान चाहता है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे प्रणयानुभूति की चचल और शृखलाबद्ध भावाभिव्यजना बडी मार्मिक हो सकी है। प्रारम्भ से ही यह क्रम स्थापित हुआ है। नारीयोचित विवशता एव करुणा का भाव ही यहाँ मुख्यत व्यजित है। परकीया-गमन की वेदना का भाव स्वकीया के माध्यम से बडा हृदयस्पर्शी प्रकट हुआ है, देखिये—

"मिलि सामी नागर रसधार।
परबस जनु होए हमर पिआर।"

प्रणय के द्वद-सागर का रूपक दिया गया है—यह है वेदना एव सवदेना का द्वद—प्रणय एव पीडा का द्वद जिसका एक ही समाधान है कि प्रेमी अपना आत्मबलिदान देकर उससे पार हो—

"भनइ विद्यापति अछ परकार।
दद-समुद होअ जीब दए पार।"

सम्पूर्ण पद मे अनुभूति की तीव्रता का स्वर व्यापक है।

शब्दार्थ—जनु=मत, नही। जौ=जो। पुनि=फिर। जनमए=जन्मे, पैदा हो। रसमति=रसज्ञाता या रस से अभिभूत। कुलमति=उच्च कुल वाली। इ धन=यह वरदान। बिहि=विधना, ईश्वर, ब्रह्मा। एक पए तोहि=तुझसे एक ही। थिरता=स्थिरता। दिहह=देना। अबसानहु=अवसान या अत तक। सामी=स्वामी, पति। परबस=दूसरे के वशीभूत, परकीया के वश मे होने से आशय है। हमर=मेरा। पिआर=प्रियतम। बुझए बिचारि=बुद्धि-विचार। पाए बिचार=विचार कर सके। कओन=कौन। अछ परकार=भली-भाँति। दद-समुद=द्वद का सागर। होअ=होओ। जीव दिए पार=प्राण देकर पार होओ, आत्मबलिदान करके प्रणय पाओ से आशय है।

(१५३)

चरन-नखर मनि-रंजन छांद।
धरनि लोटायल गोकुलचांद।
ढरकि ढरकि पड लोचन नोर।
कतरुप मिनति कएल पहु मोर।
लागल कुदिन कएल हम मान।
अबहु न निकसए कठिन परान।
रोस तिमिर अत बेरि किए जान।
रतनक भए गेल गैरिक भान।

नारि जनम हम न कएल भागि ।
मरन सरन भेल मानक लागि ।
विद्यापति कह सुनु धनि राइ ।
रोअसि काहे कह भल समुझाइ ।

भावार्थ—'मान' प्रसग-वर्णन के क्रमानुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा कहती है कि हे सखी ! मै कितनी निठुरा, कितनी बुरी हूँ कि अब मुझे अपने मान पर ही बडा परिताप हो रहा है। हाय, अभिसारार्थ मुझे मनाने के लिए, मेरे चरण नख की मणि को रजित करने के मिस गोकुल के चद्र श्री कृष्ण पृथ्वी पर लोट गये। उनके नेत्रो से ढुलक-ढुलककर आँसू गिर पडे और कितनी ही प्रकार से उन्होने मेरा मान नष्ट करने के लिए मेरी मिन्नते की, पर मैने दुर्दिन के वशीभूत होकर मान किया, उसे उनकी किसी भी प्रार्थना पर न तोडा। हाय, अब भी तो मेरे कठोर प्राण नही निकलते, मै मर भी तो नही रही हूँ। उस समय अपने रोष रूपी अधकार मे मै बराबर जान-बूझकर अति देर करती रही, न मानी और यो मेरे लिए रत्न मानो गेरू बना रहा। आशय यह है कि मैने श्री कृष्ण के रत्न रूपी प्रणय को गेरू मिट्टी तुल्य जानकर गँवा दिया। मैने नारी जन्म को सौभाग्यवान नही किया केवल अपने तुच्छ मान के लिए मैने ये मृत्यु की शरणी ली। कविवर विद्यापति कहते है कि हे सुन्दरी राधे, सुनो—तुम भला रोती क्यो हो, हमे भली प्रकार समझाकर अपनी वेदना का प्रदर्शन करो।

विशेष—प्रियतम के साथ अधिक मान उचित नही, उससे कभी-कभी नारी को चिररुदन करना पड जाता है। इसी भाव को लेखक की इन पक्तियो मे देखिये—

"मान जाओ, मान कर रोना न पड़े।
प्यार में प्यार को खोना न पड़े।"

कविवर विद्यापति ने प्रस्तुत पद मे नायिका के कठोर मान का परिणाम इन पक्तियो मे बडा हृदयस्पर्शी व्यक्त किया है—

"नारि जनम हम न कएल भागि।
भरन सरन भेल मानक लागि।"

सम्पूर्ण पद मे नारी सुलभ काम-व्याकुलता की अनुभूति का ज्वार स्वाभाविक तीव्रता से प्रस्फुटित हुआ लगता है। देखिये—

"ढरकि ढरकि पर लोचन नोर।
कतरुप मिनति कएल पहु मोर।"

अन्य शृगारी कवियो मे विद्यापति का स्थान इसीलिए उच्चतम कहा जा सकता है कि उन्होंने शृगार का वर्णन नहीं किया वरन् अपने हृदय का जलता हुआ अंगारा

सामने धर दिया है मानो शृगार और हृदय का एक रूप हमारे समक्ष खडा हो जाता है ; यही उनके काव्य का महाप्राणत्व है—अनोखा, अपूर्वभूत । 'गोकुलचाद' पद मे अलकार चमत्कार नवीन है । गोकुल के कृष्ण के लिए गोकुल का चाँद कहना बडा उपयुक्त एव स्वाभाविक भी है—सारा कृष्ण काव्य श्री कृष्ण के इसी रूपाकर्षण से युक्त है, रसमय है । 'रोस तिमिर' मे रूपक अलकार का प्रयोग बडा मौलिक एव मनोवैज्ञानिक ढग का है । क्रोध मे मनुष्य अपने सद्विवेक को इसी प्रकार खो देता है जैसे अन्धकार मे कोई मूल्यवान वस्तु खो जाती है । यहाँ दशा का चित्रण और प्रभाव पूर्ण रूप प्रकट मे होता है ।

शब्दार्थ—चरन-नखर=चरणो के नाखून । मनि-रजन=मणि को रजित करने के लिए । छाद=मिस, बहाने से । धरनि=पृथ्वी । लोटायल=लोटना । गोकुलचाद=गोकुल का चाद, श्री कृष्ण । ढरकि=ढुलकना । परु=पडना । नोर=आँसू, पानी । कतरुप=कितनी भाँति । मिनति=मिन्नत, प्रार्थना । पहु=प्रियतम । मोर=मेरी । लागल कुदिन=दुर्दिन का लगना । कएल=किया । हम=मै । मान=प्रियतम से कुछ लज्जावश रूठने का बहाना मान कहलाता है । अवहु=अब भी । न निकसए=नही निकले । कठिन परान=कठोर प्राण । रोस तिमिर=क्रोध रूपी अन्धकार । बेरि=देर, समय । जान=जान-बूझकर । रतनक=रत्न को । मानक लागि=मान के लिए । सरन=शरण । धनि राइ=सुन्दरी राधा । रोअसि काहे=रोती क्यो हो । कह भले=अच्छी तरह ।

(१५४)

धनि भेलि मानिनि सखि गन माँझ ।
अनुनय करइत उपजए लाज ।
पिरितक आरति बिरति न सहई ।
इंगित भंगिए दुहु सब कहई ।
राहि सुचेतनि कान्हु सयमान ।
मनहि समाधल मन अभिमान ।
अधर मुरलि जौं धएल मुरारि ।
फोइ कबरि धरि बाँधि समारि ।
जौं निज पुर-पथ धएल मुरारि ।
सखि लखि अनतए चलु.बर नारि ।
हरि जब छाया कर धनि पाय ।
धनि संभ्रम बइसलि कर लाय ।
कह कबि सेखर बुझय सयान ।
इंगित रस पसारल पँचबान ।

भावार्थ—'मान' प्रसग-वर्णन के क्रमानुसार कविवर विद्यापति लिखते है—

मानिनी मुन्दरी राधा सखी जनो के बीच मे है और अत उसे श्री कृष्ण से इस अवसर पर प्रणय की प्रार्थना करते हुए लाज अनुभव होती है। प्रणय की इच्छा-आतुरता विरक्ति अथवा प्रियतम से पराङमुखता सहन नही करती वरन् इशारो-इशारो की भगिमा या चितवन से ही आँखे सब रहस्य कह डालती है, इच्छा-आतुरता सातव्य हो जाती है। राधा भली प्रकार सजग है और कृष्ण बडे चतुर है। राधा ने मन-ही-मन मे अपने मन के मान का समाधान कर लिया। आशय यह है कि राधा ने अब अपने मानाभिमान का मन से विघटन आरम्भ कर दिया, वह कृष्ण को अनुरक्ति दिखलाने लगी। कृष्ण ज्योही यदि अपने अधरो पर बसुरी रखते कि राधा अपनी अस्त-व्यस्त केशराशि को सभालकर जूडा बाध लेती थी। यदि अपने राजमार्ग की ओर कृष्ण जाते तो वह सुन्दरी राधा अपनी सखियो की ओर देखकर अन्यत्र या किसी दूसरी ओर को चल पडती थी। इस चलत-फिरत की मनहरण क्रिया मे जब मार्ग के एक स्थल पर रुककर श्री कृष्ण ने राधा को पाया और उस पर छाया की या उस पर प्यार मे झुके तभी राधा ने यथाशीघ्र उनका हाथ पकडा और बस वही बैठ रही। कविवर विद्यापति कहते हे कि चतुर रसिक ही इस रहस्य को जान सकता है कि कामदेव ने इशारो का मधु-रस सर्वत्र बिखराया हुआ है।

विशेष—प्रिया और प्रियतम का प्रणय-व्यापार अत्यत अजाना, अकथनीय एव अनूठा होता है। सस्कृत कवियो ने इस व्यापार की एक एक भाव-अनुभाव एव मनोवैज्ञानिक इच्छा-सरणि का अनुगमन किया है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् मे दुष्यन्त एव शकुन्तला का प्रणय-व्यापार भी हृदय की अन्तत मनाओ एव भावनाओ का रसमय अभिव्यजन है। इस व्यापार मे सकेत का महत्त्व अधिक है क्योकि वह एक तो तरुणाई के आने पर नैसर्गिक हो जाता है और दूसरे उससे लोकलाज भी बनी रहती हे और तीसरे प्रेम की व्यथित विरक्ति का भी उसमे निराकरण हो जाता है, इसी के लिए विद्यापति यहाँ लिखते है—

"विरितक आरति बिरति न सहई।
इंगित भंगिए दुहु सब कहई।"

प्रणय मे क्रिया-प्रतिक्रिया का कितना मधुर आभास होता है इसकी अभिव्यक्ति राधा और कृष्ण के बीच इस प्रकार प्रकट हो रही है—

"अधर मुरलि जौं धएल मुरारि।
फोइ कबरि धरि बाँधि समारि।"

यहाँ राधा के जूडे बाँधने की क्रिया मे एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी साथ ही लिपटा है। वह यह कि प्राय कुमारियाँ जब किसी सुन्दर नवयुवक पर सहज या कूट रूप मे आकर्षित होती है उस समय नयन-विक्षेपी के साथ वे अपनी केशराशि, वेणी आदि

का साज-संवार, दिखराव आदि दिखलाने लगती है और बहुतसी तो अपनी नागिन-सी एक या दोनो चोटियो को वक्ष पर हाथ से डाल देती है। पर यह सब कुछ व्यापार मधुर तो होता ही है और यहाँ विद्यापति को माधुर्य स्रोत प्रवाहित करना ही लक्ष रहा है। 'सकेत-रस' जो कामदेव से ही नि सृत होता है उसे सच्चे रसिक ही भोग पाते है, जान पाते है—इस तथ्य की अभिव्यक्ति "वुझय सयान" द्वारा बडी पूर्ण हो सकी है। वास्तव मे शब्द-अर्थ गौरव का ज्ञान जितना विद्यापति को था उतना हिन्दी के किसी अन्य कवि को नही, यह उनके प्रत्येक पद के प्रत्येक शब्द से पुष्ट होता है।

शब्दार्थ—धनि=सुन्दरी। सखि गन माँझ=सखियो के बीच मे। अनुनय करइत=प्रार्थना करते हुए। उपजए लाज=लज्जा पैदा होती है। पिरितक=प्रीति की। आरति=आर्त्तता, आतुरता या व्यथा। विरति=विरक्त। न सहई=नही सही जाती। इगित भगिए=इशारो की भगिमा या चितवन। राहि सुचेतनि=राधा सजग है। सयान=चतुर। मनहि=मन मे ही। समाधल=समाधान करते है। अभिमान=मान। जौ=जब या ज्योही मे भी आशय है। फोइ=बिखरे खुले। कबरि=केश। धरि बाँधि समारि=सँभाल कर जूडा बाँध लेती है। पुर-पथ=राज या नगर मार्ग। धएल=जाते है। मुरारि=श्री कृष्ण। सखि लखि=सखियो को देखकर। अनतए=अन्यत्र। बर नारि=सुन्दरी नारी अर्थात् राधा। हरि जब छाया=जब श्री कृष्ण क छाया। धनि=सुन्दरी राधा। सभ्रम=यथाशीघ्र, तुरन्त। धनि पाय=राधा को पाकर। बइसलि कर लाय=हाथ थामकर बैठ गई। वुझय सयान=चतुर जानता है। इगित रस=सकेत का रस। पसारल=बिखराना। पँचबान=कामदेव।

श्री कृष्ण का मान

(१५५)

राधा-माधब रतनहि मदिर
निबसय सयनक सूख।
रस रस दारुन दंद उपजल
कान्ह चलल तब रूस।
नागर-अंचल कर धरि नागरि
हसि मिनती करु आधा।
नागर-हृदय पाँचसर हनलक
उरज दरसि मन बाधा।
देख सखि झूठक मान।
कारन किछुओ बुझए न पाइए
तब काहे रोखल कान।
रोख समापि पुन रहस पसारल
भेल मधथ पँचबान।

अवसर जानि मनाबथि राधा
कबि बिद्यापति भान ।

भावार्थ—'मान' प्रसग-वर्णन के क्रम मे ही यहाँ सखियाँ परस्पर राधा-कृष्ण विषयक प्रणयाभिसार की चर्चा कर रही है। कविवर विद्यापति लिखते है—

राधा और कृष्ण रत्न भवन मे अभिसार की सुख-शय्या पर ही, आनन्दपूर्वक निवास करते है। शनै.-शनैः दोनो मे घोर द्वद उत्पन्न हो गया और तब इससे श्री कृष्ण रूठकर चलने लगे। तभी चतुर कृष्ण का दामन थामकर सुचतुरा नायिका राधा हँसकर उनसे न जाने की प्रार्थना करने लगी। इससे रसिक चतुर श्री कृष्ण के हृदय पर कामदेव ने पचशर का आघात किया और राधा के खुले हुए कुचो को देखकर उनका मन बँधा रह गया, वे न जा सके। इससे सखियाँ परस्पर कह रही है कि हे सखी देख तो, श्री कृष्ण तो मिथ्या मान करते है ! रूठने का जब कोई कारण या रहस्य ही ज्ञात नही हुआ तो कृष्ण ने रोष भला क्यो किया ? वह रोष को समाप्त करके फिर काम-क्रीडा से परस लिपट गए और उनका मध्यस्थ कामदेव हो गया। यह अवसर उपयुक्त जानकर राधा जी श्री कृष्ण को मनाती है, ऐसा विद्यापति कहते है। आशय यह है कि मैथुन-क्रिया का उचित अवसर जानकर राधा जी कृष्ण से अभिसार का आनन्द लूटना चाहती है।

विशेष—नायिका और नायक के प्रणयमध्य मे जो मान होता है वह बालू की दीवार जैसा अस्थिर होता है और सुचतुरा नायिका का मान भले ही नायक कठिनाई से तोड सके किंतु नायक का मान तो नायिका एक हल्के झटके मे नष्ट कर देती है। इसी भाव की अभिव्यक्ति इस पद मे मुख्यत हुई है। देखिये—

"नागर-अंचल कर धरि नागरि
हँसि मिनती करु आधा ।"

और फिर नायिका की इस हल्की-सी चोट का असर नायक के हृदय पर कितना गहरा होता है, इसी मे कमाल है—

"नागर-हृदय पाँचसर हनलक
उरज दरसि मन बाधा ।"

नायक और नायिका के बीच महासुख का मध्यस्थ रूप कामदेव ही होता है काम-मनोविज्ञान की यह तथ्यपूर्ण किंतु सरस काव्यमय व्यजना इन पक्तियो मे बड़ी उत्कृष्ट हुई है—

"रोख समापि पुन रहस पसारल
भेल मधथ पँचबान ।"

दाम्पत्य मैथुन-सुख-व्यापार की यह रूठने-मनाने वाली व्यजना हर एक के जीवन मे स्वाभाविक है और यहाँ उसी की स्वभावोक्ति की है विद्यापति ने ! "नागर-अचल

कर धरि" उक्ति मे नारी की पुरुष के प्रति रति-समर्पण भावना का चित्रवत् प्रकाशन हुआ है ।

शब्दार्थ—रतनहि मदिर=रत्नो का बना भवन । निबसय=रहते है । सयन क सूख=सेज का सुख, अभिसार का आन्नद देने वाली शय्या । रस रस=शनै.-शनै. । दारुन दद=घोर द्वद । उपजल=पैदा होना । चएल=चले । रूस=रूठकर । नागर-अचल=नायक या कृष्ण का दामन । कर धरि=हाथ मे लेकर । पाँचसर=कामदेव के पचशर, कामवाण । हनलक=चोट करना, हनना । उरज=कुच । मन बाधा=मन को वशीभूत किया, बाँधा । झूठक मान=मिथ्या अभिमान । बुझए न पाइए=जान न पाए । काहे=क्यो । रोखल=गुस्सा हुए । कान=श्री कृष्ण । समापि=समाप्त । पुन रहस पसारल=फिर काम-क्रीडा मे पसर गये, लेट गये । मधथ=मध्यस्थ । पँचबान=कामदेव । मनावथि=मनाती है ।

(१५६)

एत दिन छलि नब रीति रे ।
जल मीन जेहन पिरीति रे ।
एकहि बचन बीच भेल रे ।
हँसि पहु उतरो न देल रे ।
एकहि पलँग पर कान रे ।
मोर लेख दुर देस भान रे ।
जाहि बन केओ नहि डोल रे ।
ताहि बन पिया हँसी बोल रे ।
धरब योगिनिया के भेस रे ।
करब में पहुक उदेस रे ।
भनइ विद्यापति भान रे ।
सुपुरुष न कर निदान रे ।

भावार्थ—'मान' प्रसग के अन्तर्गत प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

इतने दिनो तक तो नवल प्रीति की, और जल और मछली की तरह अविच्छेद वह प्रीति की रीति बनी रही । आशय यह है कि नायिका सखी से कहती है कि हे सखी ! इतने दिनो तक कृष्ण और मुझ मे ऐसा प्रेम था कि जैसे जल और मछली का ; एक पल के लिए भी एक दूसरे से जुदा नही होते थे । फिर केवल एक ही बोल ने अतर या भेद डाल दिया जो हँसकर मेरे प्रियतम ने मेरी बातो का उत्तर नही दिया । एक ही पलग पर मेरे साथ कान्हा सोये हुए थे, लेकिन मुझे तो लगता था कि वे किसी दूर देश मे है । जिस वन मे किसी के आने-जाने का कोई साधन नही उस

वन मे मेरे प्रियतम हँस-हँसकर किसी अन्य सुन्दरी से बोलते है। नायिका राधा कहती है कि मैं योगिनी का वेष धारण करके अपने प्रियतम को ढूँढूँगी। कविवर विद्यापति नायिका की दशा को समझकर कहते है कि सच्चे प्रेमी-जन कभी भी अपने प्रेम का अत नही किया करते या उनसे किमी भी कारण से प्रेम का अत नही करना चाहिए।

विशेष—किसी से प्रेम करना बुरा नही किन्तु किसी से कटु वचन अथवा व्यवहार से उसे तोडना पीडा और पश्चात्ताप का कारण बन जाता है, इसी गूढ भाव की अभिव्यक्ति इन पक्तियो मे बडी सुन्दरता से हुई है—

"एकहि वचन बीच भेल रे।
हँसि पहु उतरो न देल रे।"

नवल प्रीति की रीति का रग उसका अटूट सम्बन्ध जल और मीन के अटूट प्रेम सम्बन्ध की भाँति होता है, इस सम्बन्ध-भावना को आलकारिक रूप मे यो व्यक्त किया गया है—

"एत दिन छलि नब रीति रे।
जल मीन जेहन पिरीति रे।"

जल और मीन की अपार प्रीति कवि प्रसिद्धि के अनुरूप है। सम्पूर्ण पद मे प्रेम की अटूट सम्बन्ध-भावना का प्राधान्य प्रभावशाली है—

शब्दार्थ—एत=इतने। छलि=था। नब=नया। रीति=व्यवहार। मीन=मछली। जेहन=जिस प्रकार। पिरीति=प्रीत। भेल=पडा हुआ। पहु=प्रियतम। उतरो=उत्तर। न देल=नही दिया। कान=कान्हा। मोर लेख=मेरे लिये। देस=देश। भान=लगता। जाहि=जिस। केओ=कोई। ताहि=तिस, उस। धरब=धरूँगी। भेष=वेष। करब=करूँगी। पहुक=पिया का। उदेस=खोज-ढूँढ। भान=समझकर। सुपुरुष=सच्चा पुरुष। निदान=अन्त, खतम।

(१५७)

जतहि प्रेम रस ततहि दुरन्त।
पुन कर पलटि पिरित गुनमन्त।
सबतहु सुनिये अइसन बेवहार।
पुनु टूटए पुनु गाँथिए हार।
ए कन्हु कन्हु तोहहि सयान।
बिसरिए कोप करए समधान।
प्रेमक अकुर तोहे जल देल।
दिन-दिन बाढ़ि महातरु भेल।
तुअ गुन न गुनल सउतिन आछ।
रोपि न काटिए बिषहुक गाछ।

जे नेह उपजल प्रानक ओल।
से न करिअ दुर दुरजन बोल।
जगत बिदित भेल तोह हम नेह।
एक परान कएल दुइ देह।
भनइ बिद्यापति न कर उदास।
बड़क बचन करिए बिसबास।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविबर विद्यापति लिखते है—

जहाँ प्रेम रूपी रस है वही विच्छेद रूपी विद्वेष भी है। गुणवान पुरुष खण्डित प्रेम को फिर से जोड लेते है। सब जगह का व्यवहार ऐसा ही सुना जाता है कि टूटा हुआ हार फिर-फिरकर गूँथते है। हे कृष्ण ! तुम्ही को गुणवान कहा जायेगा जो क्रोध को भूलकर फिर प्रेम का समाधान करते हो, टूटा हुआ प्रेम फिर जोड लेते हो। प्रेम के अकुर को तुमने ही जल से सीचा जो दिन-दिन बढकर विशाल वृक्ष हो गया। नायिका कहती है कि हे कृष्ण ! किन्तु तुमने अपने प्रेम के महान् गुण का ध्यान न रक्खा और सौत करके ले आए। अरे लगा कर तो विष का वृक्ष भी नही काटना चाहिए। आशय यह है कि एक बार चाहे किसी भी स्त्री से प्रेम हो, उसे अपनाया जाय पर फिर किसी परनारी मे प्रेम न करना ही पुरुष के लिए उचित है। जो प्रेम अत्यन्त सिचन करने पर उपजाया जाता है, अर्थात् प्राण की बाजी लगाने पर प्राप्त होता है उसे दुर्जन के कथन से—दुष्ट नारी के बहकावे मे—नही त्यागना चाहिए। हमारा तुम्हारा प्यार अब छिपा नही रहा। ससार को मालूम हो गया है कि हम एक प्राण दो शरीर है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे बाले ! हृदय मे उदासी मत लाओ। बडो के दिए हुए वचन-विश्वास पर तुम्हे भी विश्वास करना चाहिये। आशय यह है कि राधा को कृष्ण के प्रेम पर पूर्ण विश्वास करना चाहिये।

विशेष--प्राय प्रेम का धागा टूट जाने पर न जुडने वाली बात कवियो एव और लोगो ने कही है किन्तु कविवर विद्यापति ने इसके विपरीत यहाँ प्रेम का हार ी तुलना मे रखकर नई बात यह कही है कि उसे समझदार लोग फिर-फिर टूटने पर जोडते है जैसे हार को जोडा जाता है। आलकारिक ढग पर कही गई यह उक्ति मौलिकता से भाव-व्यजना एव लोक-उपदेश के लिए बडी उत्तम बन पडी है—

"सबतहु सुनिये अइसन वेवहार।
पुनु टूटए पुनु गाँथिए हार।"

'प्रेम प्रभु की रचना का सार है'—यहाँ कृष्ण को इसी रूप मे रखते हुए महान् ृे:-सिचन का पवित्र भाव व्यजित किया गया है—

प्रेमक अंकुर तोहे जल देल।
दिन-दिन बाढ़ि महातरु भेल।"

प्रेम के आविर्भाव के सम्बन्ध मे कही गई यह उक्ति बडी शाश्वत कही जायगी। प्रेम करके किसी भी दशा मे उसे नष्ट करना उचित नही, इसी बात को बडे प्रभावशाली ढग से "रोपि न काटिए बिषहुक गाछ।" उक्ति से व्यक्त किया गया है। सम्पूर्ण पद मे भावाभिव्यजना बडे श्रेष्ठ विचारो से सम्मत बनाई गई है। प्रेम की दृढता रखने के लिए यह पद एक आदर्श प्रतीक है।

शब्दार्थ—जतहि प्रेम=जहाँ प्रेम। ततहि दुरन्त=वहाँ विच्छेद। पलटि= लौटकर। गुनमन्त=गुणवान। सबतहु=सब जगह। अइसन=ऐसा। बेवहार= व्यवहार। गाँथिए=गूँथिए। ए कन्हु=हे कृष्ण। तोहहि=तुम्ही को। सयान= ज्ञानवान, चतुर। बिसरिए=भूलकर। कोप=क्रोध। करए=करते थे। क=का। तोहे=तुम्हारा। देल=दिया हुआ। बाढि=बढकर। महातरु=विशाल वृक्ष। भेल=हुआ। तुअ=तुम्हारा। गुन=गुण। न गुनल=नही समझी। सउतिन आछ=सौत जो थी। रोपि=बोकर, लगाकर। न काटिए=नही काटा जाता। क= का। गाछ=वृक्ष। जे=जो। नेह=स्नेह, प्रेम। से=सो, उसको। न करिअ=नही करते। दुरजन=दुर्जन। जगत बिदित=ससार को मालूम है। भेल=हो गया। तोह हम=हमारा तुम्हारा। परान=प्राण। बडक=बडो के। करिए=करिये। बिस-बास=विश्वास।

(१५८)

को हम साँझक एकसरि तारा
भादव चौठिक ससी।
इथि दुहु माझ कओन मोर आनन
ज पहु हेरसि न हसी।
साए साए कहह कहह कन्हु कपट करह जनु
कि मोरा भेल अपराधे।
न मोयँ कबहु तुम अनुगति चुकलिहुँ
बचन न बोलल मंदा।
सामि समाज प्रेम अनुरंजिए
कुमुदिनि सन्निधि चंदा।
भनइ बिद्यापति सुनु बर जौबति
मेदिनि मदन समाने।
राजा सिबसिंघ रूपनरायन
लखिमा देबि रमाने।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा कहती है कि हे सखी! क्या मैं सध्याकाल की एकाकिनी

*

तारिका हूँ या भादव शुक्लपक्ष की चतुर्थी का अशुभ चन्द्रमा ? मेरा मुँह इन दोनो मे किसके जैसा है, जिससे मेरा पति मेरी ओर मुसकराकर नही देखता ? आशय यह है कि भादो के चौथ का चाँद और साध्यकालीन सबसे पहली उगी हुई तारिका को देखना अशुभ होता है। अत. क्या मे अशुभ मुख वाली हूं जो कृष्ण मेरी ओर नजर भर कर देखते भी नही है। हे सखी ! तुम कृष्ण से कहो, अवश्य कहो कि वे मुझसे छल न करे; आखिर मुझसे अपराध ही क्या हुआ है, ऐसा पूछो उनसे ? मैने न तो कभी उनकी आज्ञा पालन करने मे भूल की है और न बुरी बात ही कही है। मैंने तो उन कृष्ण रूपी अपने स्वामी के प्रेम समाज जनों तक को उनकी प्रसन्नता हेतु अनुरंजित किया है और मै उनके निकट सदा ऐसी बनी रही जैसे चन्द्रमा के निकट कुमुदिनी बनी रहती है। आशय यह है कि मैने सदा ही कृष्ण और उनके प्रेमी जनो को सन्तुष्ट रक्खा है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे श्रेष्ठ युवती सुनो ! राजा शिवसिह पृथ्वी पर कामदेव के समान जो लखिमादेवी के पति है, वे इस प्रकार के प्रेम-सम्बन्ध की रसमय चर्चा को खूब अच्छी तरह जानते है।

विशेष—विराट् कल्पना का सजीव चित्र इन पक्तियो मे चित्रित है—

"की हम साँझक एकसरि तारा
भादब चौठिक ससी।"

किन्तु उस चित्र से नारी हृदय की विरह-वेदना झाँक-झाँककर रो रही है—

"इथि दुहु माझ कओन मोर आनन
जे पहु हेरसि न रिसि।"

दु खी नारी ने यहाँ अपने अशुभ व्यक्तित्व एव मुख के लिए साध्यकालीन तारिका एव भादव शुक्ल चतुर्थी का चन्द्रमा के उपमान कितने उपयुक्त ढग से चुनकर अपनी तुलना उपमा बनाई है और फिर वेदना की भावाभिव्यक्ति की है। अलकार एव भाव-पक्ष का यह समन्वय बडा अनूठा है। ऐसी महाप्राण अभिव्यजनाएँ कम ही हुआ करती है और विद्यापति ने इतस्तत. उन्हे खूब किया है। उनके पद इसीलिए रसिको के अमृत-चषक है। राधा कृष्णचन्द्र के लिए सदा निकट की कुमुदिनी बनी रही, कितनी आस्था है यहाँ—

"कुमुदिनि सन्निधि चदा।"

यो मर्म को छूने वाला तत्त्व विद्यापति के पदो मे सभी शृगारी कवियो से कुछ अधिक रहा है, ऐसा प्रतीत होता है।

शब्दार्थ—की=क्या। क=का, की। एकसरि=अकेली। भादब=भादो। चौठिक=चौथ का। ससी=शशि, चन्द्रमा। इथि दुहु=इन दोनो। माझ=मैं। मोर आनन=मेरा मुंह। जे=जो। पहु=प्रियतम। हेरसि=देखता। कन्हु=कृष्ण से। जनु=मत। कि=क्या। भेल=हुआ। न मोयँ=नही मैं। अनु-

गति=आज्ञा मे । चुकलिहुँ=भूल की है । मदा=बुरा । सामि=स्वामी, पति । सन्निधि=निकट, पास, समीप । सुनु=सुनो । बर जौबति=श्रेष्ठ युवती । मेदिनि=पृथ्वी । मदन=कामदेव । रमाने=पति ।

(१५६)

करतल कमल नयन ढर नीर ।
न चेतए सभरन कुंतल चीर ।
तुअ पथ हेरि-हेरि चित नहि थीर ।
सुमिरि पुरुब नेहा दगध सरीर ।
कत परि माधब साधब मान ।
बिरही जुबति माँग दरसन दान ।
जल-मध कमल गगन-मध सूर ।
आँतर चान कुमुद कत दूर ।
गगन गरज मेघ सिखर मयूर ।
कत जन जानसि नेह कत दूर ।
भनइ बिद्यापति बिपरित मान ।
राधा बचन लजाएल कान ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

सखी कहती है कि हे कृष्ण ! तुम्हारी राधा कमल रूपी हाथ पर अपना मुख रखकर नयन से अश्रु गिराती है । वह न तो शरीर के गहनो को सम्भालती है, न बाल, न वस्त्र । तुम्हारी राह देख-देखकर उसका मन स्थिर नही रह पाता और तुम्हारे अतीत के प्रेम की याद करने से उसका शरीर जलता रहता है । सखी कहती है कि हे कृष्ण ! कब तक गर्व ग्रहण किये रहोगे ? जल मे कमल और अम्बर पर सूर्य रहता है और चन्द्र और कुमुद भी कितनी दूर बसा करते है किन्तु फिर भी उनमे क्या दूरी दूरी होती है ? आकाश पर बादल गरजते है और पर्वत के शिखर पर मोर बोलता है लेकिन कितने लोग जानते है कि उनका प्रेम दूर का है ? आशय यह है कि प्रेम की दूरी दूरी नही हुआ करती, वह सदा निकट है यह ध्यान रखना चाहिए । कविवर विद्यापति इस पुरुष विषयक विपरीत मान का वर्णन करते है और राधा के प्रति ऐसे प्रेममय वचनो को सुनकर कृष्ण अपने निठुर प्रेम-व्यवहार के प्रति लज्जित हो गये ।

विशेष—विरहिणी नारियाँ प्राय प्रिय-विरह मे उदास होकर अपने सुन्दर मुख हथेली पर टिकाकर अस्तव्यस्त-सी उसकी प्रतीक्षा मे चिन्तित रहा करती है, उसी का चित्र इन पक्तियो मे बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया गया है—

"करतल कमल नयन ढर नीर।
न चेतए सभरन कुंतल चीर।"

करतल कमल के लिए मुख उपमेय यहाँ नही है जिससे अर्थ स्पष्टता मे व्याघात पैदा अवश्य होता है। प्रेम मे दूरी-अदूरी का कोई अर्थ नही, इसी तथ्य को कवि प्रसिद्धि के अनुसार इन पक्तियो मे घटाया गया है—

"जल-मध कमल गगन-मध सूर।
आँतर चान कुमुद कत दूर।
गगन गरज मेघ सिखर मयूर।
कत जन जानसि नेह कत दूर।"

सम्पूर्ण पद मे विरहिणी नारी के हृदय का दुःख मर्मस्पर्शी ढग से व्यजित हुआ है।

शब्दार्थ—करतल कमल=कमल के समान हथेली। नीर=अश्रु। कुतल=बाल, केश। चीर=वस्त्र, साडी। तुअ=तुम्हारा। हेरि-हेरि=देख-देखकर। थीर=स्थिर। पुरुब नेहा=पूर्व प्रेम। दगध=दग्ध, ज्वलन्त। कत परि=कब तक। जुब्रति=युवती। दरसन=दर्शन। सूर=सूर्य। आँतर=अन्तर। कत=कितना। सिखर=ऊपर, चोटी। कत=कितना। जन=लोग। जानसि=समझते है। विपरित=विपरीत, उल्टा। मान=मानकर। लजाएल=लज्जित हुए। कान=कान्हा, कृष्ण।

मान-भंग

(१६०)

बड़ई चतुर मोर कान ।
साधन बिनहि भाँगल मझु मान ।
जोगी बेस धरि आग्रोल आज ।
के इह समुझब अपरुब काज ।
सास बचन हम भीख लइ गेल ।
मझु मुख हेरइत गदगद भेल ।
कह तब—'मान-रतन दइ मोय' ।
समझल तब हम सुकपट सोय ।
जे किछु कहल तब कहइत लाज ।
कोई न जानत्र नागर-राज ।
बिद्यापति कह सुन्दरि राई ।
किए तुह समुझबि से चतुराई ।

प्रसग-सकेत—सभोग-क्रिया के पूर्व 'मान' या नायिका और नायक के बीच परस्पर रूठने-मनाने का व्यापार शृगार-भाव के उद्दीपन के लिए बडा महत्त्वपूर्ण होता है; पर उस मान के नष्ट हो जाने पर नायक-नायिका रति-क्रीडा मे लीन हो जाते है। अनेक आसनो, चतुराइयो एव कलाओं के द्वारा सभोग-सुख का भोग किया जाता है। कामशास्त्र मे इन्ही काम-लीलाओ का विधान वर्णित है, पर कृष्ण कवियो ने इन्ही लीलाओ की व्यजना दिव्यता प्रदर्शित करने के लिए की है। राधा-कृष्ण की इन लीलाओं के वर्णन द्वारा उन्होने ब्रह्म एव जीवात्मा के एकान्त मिलन का मनोमुग्धकारी रूपक बाधा है—उसमे यह भौतिक ससार, इसकी श्लीलता-अश्लीलता का कोई प्रयोजन नही, वहाँ तो केवल मात्र कैवल्य है, अनत सुख है, अभिसार है। यह ठीक है कि लोक-दृष्टि से इस प्रकार का घोर कामशास्त्रीय शृगारी वर्णन सामान्य इन्द्रीय लोलुप सासारिक जीवों के लिए आचरण विरुद्ध सिद्ध हो सकता है किंतु कला का नाम भौतिकता नही और न ही कोई अपूर्णता की अभिव्यक्ति है। कला अखड है, वह अपनी स्वच्छन्द अभिव्यक्ति में ही सुन्दर है। यहाँ कला का दोष नही, भले ही हम इस प्रकार के अतिशय कलावादी

कवियो को अनुत्तरदायी कह सकते है, किंतु सामान्यत. कलामर्मज्ञ तो सासारिकता के तुच्छ धरातल से कुछ ऊपर ही रहते है, फिर कला की निताात स्वच्छन्द अभिव्यजना से कोई समाजगत हानि हो सकती है, यह सर्वथा सत्य नही कहा जा सकता।

प्रस्तुत 'मान-भग' प्रसग मे कविवर विद्यापति ने राधा एव कृष्ण के मधुमय मैथुन व्यापार की स्वच्छन्द अभिव्यजना की है। यह व्यापार चूँकि राधा-कृष्ण विषयक है अत अत्यधिक रहस्यमय है किंतु उसमे अजस्र रस की धारा फूटी पड रही है, उसका आनन्द मे मौन रहकर पान किया जाय इसी मे कल्याण है। कली के सूक्ष्म रस को पीने के लिए हमे भौरे की अतृप्त वृत्ति, और मुग्धावस्था मे प्रवेश करना होगा। इसी प्रकार हमे विद्यापति की कविता का मधुलोलुप भँवर बनना होगा।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है कि राधा सखी से कह रही है कि—

मेरा प्रियतम श्री कृष्ण बडा चतुर है। बिना किसी उपाय के उसने मेरे दृढ मान को भग कर दिया। वह आज योगी का रूप धारण करके आया। उसके इस रहस्यमय रूप के अद्‌भुत अपूर्व कार्य को भला कौन समझ सकेगा ? वह साधु का रूप धरकर आया था अत सास की आज्ञा पाकर मै उसे भीख देने गई। वह मेरा मुख देखकर ही भाव-विह्वल हो गया। और तब वह बोला, 'तुम मुझे अपना मान रूपी रत्न प्रदान करो।' उसकी इस कपटमय बात को सुनकर मै उसके कपट को समझी कि वह मुझसे 'सुरत' या मैथुन की याचना कर रहा था। जो कुछ कहा गया अब उसे कहने मे मुझे तुमसे लज्जा आती है। अरे, चतुरो के राजा उस कृष्ण की रहस्यमयी करतूतो को कोई नही जानता। कबिवर बिद्यापति कहते है कि हे सुन्दरी राधे, कहो कि तुम भी भला कैसे श्री कृष्ण की काम-चतुराई को समझी जबकि उसे कोई समझता ही नही है।

विशेष—'मानरतन' मे रूपक अलकार मौलिक है। कामिनी का मान भग कर उससे 'मान-रतन' या सुरत प्राप्त करना नायक के लिए बडा कठिन कार्य होता है, पर कृष्ण ऐसे चतुर नायक है कि बिना 'साधन' के ही राधा का मान भग करने पर उतारू हुए। यहाँ 'साधन' शब्द योग-सभोग साधना की ऐहिक एव पारलौकिक दोनो अभिव्यजना मे पूर्ण है। 'सास बचन' से राधा का परकीया होना सिद्ध है। "कोई न जानल नागर-राज" पक्ति मे परब्रह्म कृष्ण का रहस्य-रसमय रूप और उसकी लीला का भाव व्यजित है। सम्पूर्ण पद मे लौकिक एव अलौकिक भावो का रसमय उद्रेक स्पष्ट होता है।

शब्दार्थ—बडई चतुर=बडा ही चतुर। साधन=उपाय। बिनहि=बिना। भाँगल=भग करना। मझु=मेरा। बेस=वेश। आओल=आया। के=कौन। इह=इस। अपरुब काज=अपूर्व कार्य। भीख लइ गेल=भीख देने गई। हेरइत=देखना, निहारना। गदगद भेल=भाव-विह्वल हुआ। मान-रतन=मान रूपी रतन। मोय=मुझे दो। सुकपट सोय=उस बड़े कपटी या छली को। जानल=जानता है।

राई=राधा। किए=कैसे। तुहु=तुम। समुझबि=जानोगी, समझोगी। से=उसकी, वह। चतुराई=चालाकी।

(१६१)

जटिला सास फुकरि तहि बोलल
बहुरि बेरि काहे ठाढ़ि।
ललिता कहल अमंगल सूनल
सति पतिभय अबगाढ़ि।
सुनि कह जटिला घटल की अकुसल
घर सयँ बाहर होय।
बहुरिक पानि धरि हेरह जोगी
किये अकुसल कह मोहि।
जोगेस्वर फेरि बहुरिक पानि धरि
कुसल करब बनदेव।
इहे एक अंक बंक बिसंकओ
बन मधि पसुपति सेव।
पुजनक तंत्र-मंत्र बहु आछए
से हम किछु नहि जान।
जटिला कह आन देव कहाँ पाओब
तुहु बीज कर इह दान।
एत सुनि दुहु जन मंदिर पइसल
दुहु जन भेल एक ठाम।
मनमथ मंत्र पढ़ाओल दुहु जन
पूरल दुहु मनकाम।
पुनु दुहु जन मंदिर सयँ निकसल
जटिला सयँ कह भाखी।
जब इह गौरि अराधन जाओब
बिधवा जन घर राखी।
एत कहि सबहु चललि निज मंदिर
जोगी चरन प्रनाम।
बिद्यापति कह नटबर सेखर
साधि चलल मनकाम।

भावार्थ—'मान-भग' प्रसग-वर्णन के क्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—बड़ी देर से योगीरूप श्री कृष्ण को भिक्षा देने के लिए राधा को उनके पास खड़ी

देखकर झगडालू जटिला सास ने जोर से पुकारकर राधा से व्यग मे कहा—"हे कुलवधू कुलच्छिन ! वहाँ इतनी देर से क्यो खडी है ?" सास की यह कर्कश चिल्लाहट सुनकर राधा की कोई सखी यह ताड गई कि उसकी प्रिय सखी राधा पर सकट आ गया है। अत. उसने चतुराई से राधा-कृष्ण का सभोग कराने के लिए उसकी कर्कशा सास से कहा कि मैने यह एक बडी अनिष्टकारक बात सुनी है कि सती राधा के विधवा हो जाने का या पति-भय का अशुभ योग या लग्न अवश्यभावी है। यह सुनकर कर्कशा जटिला सास कहने लगी कि भला वह क्या अशकुन घटा या घटेगा ?—और यह कहकर वह घर से बाहर हुई। फिर वह कृष्ण रूपी योगी से कहने लगी कि जरा इस नव-वधू का हाथ तो देखो और बताओ कि तुमने वह अनिष्टकारी बात मुझसे क्यो कही, क्या घटेगा ऐसा ? तब योगीश्वर श्री कृष्ण ने बहुरिया राधा का हाथ उलटा-पलटा और देखकर कहा कि वनदेव अथवा शकर भगवान सब भला करेगे। हाँ, बस इसके हाथ मे एक ही ये रेखा कुछ टेढी एव अशुभ है जिससे अशुभ घट जाने की आशका होती है, अत इस रेखा के प्रभाव को नष्ट करने के लिए इसे वन मे जाकर पशुपतिनाथ या शकर भगवान की सेवा करनी चाहिए। यह उपचार सुनकर जटिला सास छद्म रूपधारी योगीश्वर श्री कृष्णसे अनुनय भाव से कहने लगी—"आराधना के तो बहुत से तत्र-मत्र होते है जिन्हे मै बिलकुल नही जानती। पर तुम जैसा देवता मै अन्यत्र कहाँ पाऊँगी अत कृपा करके तुम ही इसे झाड-फूँक करके, बीजमत्र देकर ठीक कर दो।" इतना सुनकर और कर्कशा सास की सहमति पाकर दोनो—राधा और कृष्ण—घर मे प्रवेश कर गए और एक जगह होकर परस्पर काम-क्रीडा के लिए मिले। वहाँ दोनो ही ने कामदेव के मत्र का मिलकर पाठ किया। प्रणयाभिसार हुआ और दोनो की ही मनोकामना परितृप्त हुई। फिर दोनो जने घर से बाहर निकले और योगी श्री कृष्ण ने छलपूर्वक जटिला सास से कहा कि जब ये गौरी पूजा या पार्वती आराधना के लिए जाये तो विधवाओ को इसके साथ मत भेजना। आशय यह है कि राधा को अकेली ही पार्वती पूजन के लिए वन मे जाने दिया जाय, कोई विधवा स्त्री उसकी देख-रेख के लिए न चले अर्थात् जब विधवा ही साथ न जायगी तो सधवा या विवाहित कैसे लोक-लाज छोडकर राधा के साथ होगी ? और स्वय सास भी तो विधवा होगी, फिर तो बात बन ही जायगी। इस प्रकार फिर स्वच्छन्दता से राधा और कृष्ण अकेले-अकेले वन मे विचरकर आनन्द लूटेगे। योगी की इस बात की स्वीकृति को अभिव्यजित कर सब स्त्रियाँ उसके चरणो मे प्रणाम करके अपने-अपने घर को चली गईं। कविवर विद्यापति कहते है कि नटवर चतुर श्री कृष्ण अपनी मनोकामना पूर्ण करके चल दिये, या मन का काम-भाव सन्तुष्ट कर चले।

विशेष—प्रस्तुत पद मे 'वक्रोक्ति' बडी उत्कृष्ट है। सारा वर्णन ही वक्रोक्ति के माध्यम से किया गया है। इन पक्तियों मे इस तथ्य की प्रामाणिकता बोलती है—

"मनमथ मंत्र पढ़ाओल दुहु जन
पूरल दुहु मनकाम।"

'पतिभय' शब्द श्लेष है। एक ओर 'पतिभय' से व्यजना है कि परकीया-गमन निषेध है; दूसरा आशय यह है कि पति के लिए लगन अनिष्टकारक है। कहा जाता है कि विद्यापति शैव भी थे। यहाँ 'पसुपति' एव 'गौरी' पूजन का प्रसग इस कथन को उद्-घाटित करता है। श्री कृष्ण को 'योगीश्वर' भी कहा जाता है। विद्यापति ने 'जोगेस्वर' शब्द का प्रयोग करके उन्हे वल्लभ के गुणवान, रूपवान, लीलामय परब्रह्म रूप जैसा भी व्यजित किया है। सम्पूर्ण पद मे सम्भोग-शृगार का भाव ही प्रधान है। 'मनकाम' मे भी श्लेष है, अर्थात् मनोकामना अथवा मन मे जगा काम-भाव साध चले, सन्तुष्ट कर चले।

शब्दार्थ—जटिला=कर्कशा या राधा की सास का नाम भी हो सकता है। फुकरि=फुँकार जैसी पुकार से, जोर से चिल्लाकर। तहि=उससे, राधा से। बहुरि=कुलवधू, यहाँ व्यग मे प्रयुक्त है। वेरि=देर से। काहे ठाढि=क्यो खडी है। ललिता कहल=सखी ने कहा। अमगल सूनल=अशुभ सुना है। सति पतिभय=सती राधा को पतिभय अर्थात् पति के अनिष्ट की आशका। अबगाढि=अवश्य। घटल की अकु-सल =क्या अशुभ घटित हुआ। घर सयँ=घर से। होय=हुई। बहुरिक पानि= बहु राधा का हाथ। हेरह=देखो। जोगेस्वर=-श्री कृष्ण—योगीश्वर। पानि=हाथ। इहे=यही। अक बक=टेढा चिह्न या हाथ की टेढी रेखा। बिसकओ=अशुभ की आशका लगती है। बन मधि=जगल के मध्य मे। पसुपति=शकर भगवान। सेव=सेवे या सेवा करे। पुजनक=पूजा करने के। बहु आछए=बहुत से है। से=वह। किछु=कुछ। आन=अन्यत्र। तुहु =तुम ही। बीज=मन्त्र। इह=इसे। दान=प्रदान करना। एत सुनि=यह सुनकर। दुहु जन=दोनो जने अर्थात् राधा-कृष्ण। मदिर पइसल=घर मे घुस गये, प्रवेश पा गये। सयँ=से। निकसल=निकले, बाहर आए। भाखी=कहा। गौरि=पार्वती। अराधन=पूजने को। प्रनाम=प्रणाम। साधि चलल=पूर्ण करके। मनकाम=मनोकामना या मन के काम-भाव को।

(१६२)

गोकुल देवदेयासिनि आओल
नगरहि ऐसे पुकारि।
अरुन बसन पंन्हि जटिल बेस धरि
कान्ह द्वार माझ ठारि।
सुनि धनि जटिला तुरित चल आओल
हेरइत चमकित भेल।

हमर बधुक रीति देखि जनि आनमति
कहि मदिर लइ गेल।
देवदेयासिनि कान।
जटिला बचन सुधामुखि नियरहि
एक दीठि हेरइ बयान।
कह तब अतनु देव इथे पाओल
हृदि-मधि पइसल काल।
निरजन होइ मंत्र जब झाड़िए
तब इह होएब भाल।
एत सुनि जटिला घर दोहे लेअल
निरजन दुहु एक ठाम।
सब जन निकसल बाहर बइसल
पुरल कान्ह मनकाम।
बहु खन अतनु मंत्र पढ़ि झारल
भागल तब सेहो देवा।
देवदेयासिनि घर सयँ निकसल
चातुरि बूझब केबा।
जटिला बहुत भकति करि हरखित
कतक भीख आनि देल।
कह कबिसेखर भीख लिए तब
सेहो देयासिनि गेल।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

गोकुल मे एक देवदासी योगिनी अर्थात् झाड-फूंक करने वाली स्त्री आई हुई है; नगर भर में ऐसा कोलाहल मच गया है। लाल वस्त्र पहने जादूगरनी या योगिनी का कठोर वेश धारण किए कन्हैया राधा के दरवाजे पर खडे हो गये। यह जानकर जटिला अर्थात् राधा की सास तुरत घर से बाहर चली आई और योगिनी का रूप देखकर चकित हो गई। कहने लगी कि मेरी वधू का भी रग-ढग कुछ और प्रकार का हो गया है, ऐसा कहकर वह उसे अपने घर के अन्दर ले गई। कृष्ण ही देवदासी का रूप बनाए हुए थे अत जटिला की बातो को सुनकर चातुर्य से चन्द्रमुखी राधा का मुँह उसके निकट ही खडे होकर निर्निमेष दृष्टि से देखने लगे। फिर कहने लगे कि कामदेव ने इसे धर दबाया है और इसके हृदय के अन्दर काल घुस बैठा है। निर्जन मे जब इसे मत्र-तत्र से झाडा-फूंका जायेगा तब कही इसका उपचार हो सकता है। इतना सुनकर जटिला ने दोनो को घर ले जाकर एकान्त स्थान मे कर दिया; वे दोनो एकान्त

मे हुए । सारी स्त्रियाँ घर से निकलकर बाहर बैठ गई और एकान्त पाकर कृष्ण ने राधा के साथ अपनी सारी रति-विलास की मनोकामनाएँ पूरी की । कृष्ण बहुत देर तक कामदेव का मत्र पढ-पढकर राधा के रोग का उपचार करते रहे, झाडते-फूँकते रहे और तब कही यह काम रूपी भूत उससे दूर हुआ । देवदासी का छद्म वेषधारी कृष्ण जब घर से निकले तब उनके बनावटी रूप को कोई जान नही सका । जटिला ने खुश होकर उनकी बहुत प्रकार से सेवाएँ की और उन्हे कितनी ही अधिक भिक्षा लाकर दी । कविशेखर विद्यापति कहते है कि भिक्षा लेकर वह देवदासी चली गई—कृष्ण विदा हो गये ।

विशेष—प्राचीन काल मे तत्र-मत्र और जादू-टोने का विषम अनाचारात्मक प्रचलन रहा होगा, इस ओर इससे पूर्व पद प्रसगो से यह प्रतीत होता है । बहुरूपिया का भेष धारण करके तत्कालीन चतुर नायक-नायिकाएँ प्रेम-रस लूटते होगे, यह सकेत हमे विद्यापति, जायसी आदि कवियो की रचनाओ से साफ प्रतीत होता है । कुटनियों और दूतियो के अतिरिक्त स्वय रसिक नायक इस कूट रूप क्रिया को करते थे । प्रस्तुत पद मे नायक श्री कृष्ण बहुरूपिया का भेष बनाकर सुन्दरी राधा से अपनी काम-मनो-भावना को कैसे पूर्ण करते है, कितनी झीनी-झीनी अभिव्यजना है इस तथ्य की—

"बहु खन अतनु मत्र पढि झारल
भागल तब सेहो देबा ।"

विद्यापति ने नायक के इस लिबास को "जटिल बेस" कहकर मानो जाने-अनजाने उस अनाचारी विषम पद्धति पर एक करारा व्यग कसा है । इस प्रकार के पदो को पढकर एक यह भी प्रतिक्रिया होती है कि राधा-कृष्ण का शृगारिक वर्णन करके विद्यापति किसी भक्ति भावना की अनुभूति अभिव्यक्त नही कर रहे थे वरन उनका लक्ष्य शृगार-वर्णन ही था—वे विशुद्ध शृगारी कवि है भी । "अतनु देव" अर्थात् कामदेव का गुणगान करना ही उनके काव्य का मूलप्रयोजन था । पर उनकी कलात्मक अभिव्यजना निश्च्छल अवश्य रही अत वह हमे वासना की छिछली भावभूमि से रसानन्द की गहराई मे ले जाती है—वहाँ, जहाँ न कुछ श्लील है और न अश्लील, जहाँ केवल "आनन्द अखड घना है ।"

शब्दार्थ—देवदेयासिनी=देवदासी, तत्र-मत्र से झाड-फूँक करने वाली योगिन । आओल=आई । नगरहि=नगर मे । अरन बसन=लाल वस्त्र । पैन्हि=पहनकर । जटिल=कठोर । बेस=वेष । धरि=धारण कर । कान्ह=कान्हा, कृष्ण । सुनि=सुनकर । जटिला=राधा की सास । तुरित=शीघ्र, तुरन्त । हेरइत=देखते ही । चमकित=चकित । भेल=हो गई । हमर=हमारे । आनमति=और मति, रोग के कारण बदल जाने से अभिप्राय है । कहि=कहकर । मदिर=महल, घर । लइ=ले । गेल=गई । कान=कृष्ण । सुधामुखि=अमृतमुखी, चन्द्रमा । नियरहि=नजदीक ही । एक दीठि=एक टक । हेरइ=देखना । अतनु देव=कामदेव । इथे=

इसे । हृदि=हृदय । मधि=मध्य, बीच । एत सुनि=इतना सुनकर । निरजन=निर्जन, एकान्त । दुहु=दोनो । एक ठाम=एक जगह । निकसल=निकल गईं । बइसल=बैठ गईं । पुरल=पूर्ण हुआ । मनकाम=मनोकामना । बहु खन=बहुत देर तक । सयँ=से । चातुरि=चालाकी, चतुराई । भकति=भक्ति, सेवा । हरखित=हर्षित, खुशी के साथ । आनि देल=लाकर दिया ।

(१९३)

बर नागर साजइ नागरि बेसा ।
मुकुट उतारि सीमंत सँवारल
बेनी बिरचित केसा ।
चंदन धोइ सिंदुर भाल रंजल
लोचन अंजन अंका ।
कुंडल खोलि कर्नफूल पहिरल
भरि तनु केसर-पंका ।
बेसर खचित सतेसरि पहिरल
चूरि कनक कर कंजे ।
चरन-कमल पास जावक रंजन
तापर मजिर गजे ।
कंचुकि माँझ कदम्ब-कुसुम भरि
आरम्भन कुच आभा ।
अरुनाम्बर बर सारी पहिरल
वस्त्र बिलोकन सोभा ।
धरि परिबादिन स्याम मिलन हित
शुभ अनुकूल पयाने ।
पहिलहि बाम चरण तुलि मोहन
त्रियागति लच्छन भाने ।
ऐसन चरित मिलन जहाँ सुन्दरि
दूरहि एकलि ठारि ।
कर धरि यंत्र-तंत्र सँवारल
को इह लखइ न पारि ।
राइक निकट बजाओल सुन्दरि
सुनइत भइ गेल साधा ।
ए नव यौवनि नबिन बिदेसिनि
आओ पुकारइ राधा ।

सुनइत स्याम हरखि चित्त श्रओल
उठि धनि आदर देल।
बाँह पकड़ि निज आसन बइसाओल
कत कत हरखित भेल।
× × ×
जबहि बजाओल बीन सुमाधुरि
रीझि देहल मनि-माल।
अइसे बजावए हमर जंतरिया
मोहन जंत्र रसाल।
नाम गाम कह कुल अवलम्बन
ब्रज आगम किए काजा।
सुखमइ नाम, मथुरापुर जदुकुल
गुनीजन पीड़इ राजा।
धनि कह तुअ गुन रीझि प्रसन्न भेल
माँगह मानस जोय।
मनोरथ कर्म जाँचलि जदि सुन्दरि
मान रतन देह मोय।
हँसि मुख मोड़ि पीठि देइ बइसल
कान्ह कएल धनि कोर।
टूटल मान बढ़ल कत कौतुक
भूपति के करु ओर।

भावार्थ—'मान'-भग' प्रसग के अतर्गत प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

कृष्ण औरत का वेष सज्जित कर रहे है। मुकुट उतारकर सिर के बालो की सीमत—माग—सँवारते है और वेणी या चोटी गूंथी। चन्दन को धोकर मस्तक मे सिंदूर-तिलक लगाते है और आँख मे अजन या काजल डालते है। कुण्डल उतारकर कान मे कर्णफूल पहन लिया और सारे शरीर मे केशर के घोल का प्रलेपन किया। नाक मे कीमती मूल्यवान आभूषण—बेसर—पहना और कमल करो मे स्वर्ण की चूडियाँ पहनी। कमल जैसे पावो मे महावर लगाई और ऊपर, कमर में मुखरित मजीर बाँध ली। चोली के भीतर कुचस्थल पर कदम और फूलों को रखकर कुचो को सुन्दर आभायुक्त बनाया। इस प्रकार की अमूल्य लाल रग की साड़ी पहनी, जिसकी वस्त्र-शोभा देखने लायक थी। इस प्रकार के आकर्षक वेष में वीणा लेकर कृष्ण-राधा से मिलन-समागम के लिए उपयुक्त लग्न देखकर चले। पहले ही बायें पैर को आगे बढ़ाकर

ोहन ने स्त्रियो की चाल का लक्षण दिखलाया। आशय यह है कि वे स्त्री वेष के अनुसार ही कार्य-कलाप अदा करने लगे। इस तरह का रूप धारण कर वहाँ चले जहाँ सुन्दरी दूर अकेली खडी थी। हाथ से वीणा के तारो को नीची नजर करके इस तरह सँवारते चले कि इन्हे कोई देख ही न सकी। वे राधा के कुछ निकट जाकर वीणा बजाने लगे, जिसकी आवाज सुनकर सुन्दरी राधा के मन मे काम की इच्छा जाग गई। तब राधा की सखियो ने कृष्ण को पुकारा—हे नव युवती! नई विदेशिनी! यहाँ आओ, तुम्हे राधा टेर रही है। यह सुनते ही कृष्ण प्रसन्नमना होकर वहाँ पहुँचे और सुन्दरी ने उठकर उनको सम्मान दिया। फिर बाँह पकडकर उनको अपने आसन पर आसीन किया और कितना अपार सुख माना, कौन कहे?

× × × ×

जभी श्री कृष्ण ने मधुर-मधुर वीणा बजाई कि जिससे खुश-पुलकित होकर रीझ मे राधा ने अपना मणिमाल उनको दे दिया और कहा कि हमारा मनप्रिय जादूगर भी इसी तरह मीठे मोहन मत्र बजाकर सबको अपने वश मे कर लेता है। दूसरा अर्थ यह भी कि हमारा प्रेमी जादूगर भी ऐसा ही मीठा वाद्य-यत्र बजाकर मोह लेता है। सुन्दरी पूछती है, "तुम्हारा नाम क्या है, जहाँ रहते हो उस ग्राम का नाम क्या है, तुम किस कुल के हो और किस लिए इस ब्रज मे आना हुआ?" स्त्री वेषधारी कृष्ण बोले, "मेरा नाम तो सुखमई है और मै मथुरापुरी की रहने वाली यदुवशी कुल की हूँ। वहाँ के राजा ने गुणियो को दुख दिया है अत वहाँ से भागकर यहाँ चली आई हूँ।" इस पर सुन्दरी राधा बोली, "मै तुम्हारे गुणो पर बडी मुग्ध हूँ, अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसी लिए जो मन चाहे वह मुझसे वस्तु माँगो।" कृष्ण बोले, "हे सुन्दरी! यदि मेरे मनोरथ को पूर्ण किया चाहती हो तो मुझे अपने रत्न तुल्य मान को प्रदान करो—सभोग प्रदान करो।" इस पर नायिका हँस पडी और मुँह घुमाकर पीठ फेरकर बैठ गई। उपयुक्त अवसर समझकर कृष्ण ने उस सुन्दरी को अपने अक मे ले लिया। कविवर विद्यापति कहते है कि इस प्रकार दोनो का मान टूटा और अत्यन्त काम-कौतुक बढा। राजा शिवसिह के अतिरिक्त और कौन ऐसा है जो इस रस-रहस्य को समझे, जाने!

विशेष—नायक कृष्ण ने जिस चातुर्य से पुरुष से नारी का वेष धारण किया है, उसके जो उपकरण पद मे विद्यापति ने एकत्रित किये है वे बड़े उपयुक्त है, कलात्मक ढग से उनका सयोजन किया है—

"मुकुट उतारि सीमंत सँवारल
बेनी बिरचित केसा।
चंदन धोइ सिंदुर भाल रंजल
लोचन अंजन अंका।"

लगता है जैसे सामने रक्खा कोई आकर्षक चित्र आकर्षक ढग से बदल रहा हो। चमत्कार-कला और रूपाभिव्यक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

"पहिलहि बाम चरग तुलि मोहन त्रियागति लच्छन भाने।" पक्तियो मे नारी की मुग्धकारी मानमयी चाल की व्यजना बडी मधुर बन पडी है।

'ए नव यौवनि नविन बिदेसिनि" मे अनुप्रास एव लय की मृदुल गुँजार है, अगवानी है। पद के अन्तर्गत सवाद शैली का भी समावेश बडे नपे-तुले शब्दो द्वारा किया गया है जिसको भावार्थ पढकर समझा जा सकता है। मान को रत्न का रूपक ठीक ही दिया गया है · रत्न भी दुर्लभ और मान भी ! सम्पूर्ण पद मे ध्वनि, अभिव्यक्ति-चमत्कार एव शृगार-रस-परिपाक का यथारूप महत्त्व है।

शब्दार्थ—नागर=कृष्ण। नागरि वेसा=स्त्रियो का वेष। उतारि=उतार कर। सीमत=केशराशि का नीचला भाग, माग। भाल=मस्तक। लोचन=आँख। अका=चिह्न, रेख, डालने से अभिप्राय है। कर्णफूल=कर्नफूल, कान मे पहनने का आभूषण। भरि तनु=सारे अग मे। बेसर=नाक का आभूषण। चूरि कनक=सोने की चूडी। भरि=भरकर। आरम्भन=शुरू का। कुच=स्तन। सोभा=शोभा। परिबादिन=वीणा। पयाने=चले। पहिलहि=पहले ही। बाम=बाया। त्रियागति =स्त्रियो की चाल। लच्छन=लक्षण। ऐसन=ऐसा। एकलि=अकेली। ठारि= खडी। राइ=राधा। क=का। भइ=हो। गेल=गई। नव यौवनि=नई जवानी वाली। नबिन=नवीन। पुकारइ=पुकारती हे। सुनइत=सुनते ही। स्याम=श्याम, कृष्ण। हरखि=हर्षित। आओल=आये। आसन बइसाओल=आसन पर बठाया। कत ·····भेल=अपार खुश हुई। रीझि= मोहित। देहल=दिया। मनि-माल= मणि की माला। अइसे=इस तरह। बजा वए=बजाता है। हमर=हमारा। जतरिया=मनमोहन, कृष्ण के लिए प्रयोग है गाम=ग्राम, गाव। किए काजा= किस काम के लिए। गुनि······राजा=राजा गुणियो को दु.ख देता है। धनि= सुन्दरी। कह=कहा। तुअ=तुम्हारे। गुन=गुण। माँगह=माँगो। मानस= हृदय। जोय=जो है। कान्ह=कृष्ण। कएल=ले लिया। कोर=गोद। कत=कितना। कौतुक=खेल। भूपति=पृथ्वी का राजा, राजा शिवसिह के लिए है।

विदग्ध-विलास

(१६४)

आजुक लाज तोहे कि कहब माई।
जल देइ धोइ जदि तबहु न जाई।
नहाइ उठल हम कालिंदी तीर।
अंगहि लागल पातल चीर।
तें बेकत भेल सकल सरीर।
तहि उपनीत समुख जदुबीर।
बिपुल नितम्ब अति बेकत भेल।
पालटि तापर कुंतल देल।
उरज उपर जब देहल दीठ।
उर मोरि बइसल हरि करि पीठ।
हँसि मुख मोडए ढीठ कन्हाई।
तनु-तनु झाँपइते झाँपल न जाई।
बिद्यापति कह तुहू अगेआनि।
पुनु काहे पलटि न पैसलि पानि।

प्रसंग-सकेत—मान भग हो जाने के पश्चात् नबेली बाला मध्या बन जाती है। इस अवस्था मे पहुँचकर उसे उस प्रकार की व्रीडा, लज्जा, हिचक और गुप्त उत्सुकता नही रह जाती जैसी कि नवोढा की होती है। वह मैथुन की बाते अपनी सखियो से जी भर कर करती है एव उसमे सभोग-व्यापार के प्रति मुखर अभिरुचि, वाकवैदग्ध्य एव चतुराई इसी प्रकार आ जाती है जैसे कि कली के खिलते ही उसका सौरभ वायु के झोको के साथ अठखेलियाँ करने लगता है। शृ गारी कवियो ने, विशेषत हिन्दी के विशेष शृ ंगारी कवि बिहारी ने इस प्रकार का वर्णन दिल खोलकर किया है। मध्या एव प्रौढा नायिका रति-क्रिया के समय नायक के साथ स्वय भी अनेकानेक अभिसार की चेष्टाएँ करती है और प्राय· ऐसी नौबत तक आ जाती है कि वह विपरीत सभोग-क्रिया करने को उतारू हो जाती है। विपरीत क्रिया मे वह वह चेष्टाएँ करती है जो नायक को करनी चाहिये, यानी स्वय नायक का चुम्बन-आलिगन करती है, उसके जैसे काम-आसन स्थापित करती है, आदि। इस सब क्रिया को वह बड़े चाव से सखियों से कहा करती है। तो कविवर

विद्यापति ने यहाँ राधा के इसी कृत्य प्रसग की चर्चा की है।

भावार्थ—'विदग्ध विलास' के इस प्रसग मे, प्रस्तुत पद द्वारा कविवर विद्यापति लिखते हैं—

नायिका राधा कह रही है कि हे सखी ! अरे, आज जो रति-क्रिया सम्बन्धी लज्जा की चर्चा है वह तुझसे क्या कहूँ, कैसे कहूँ ? वह तो ऐसी लज्जा है कि जल से धोऊँ तो भी न मिटे। देख, मैं यमुना के तट पर स्नान करके उठकर बाहर आई तो रेशम की बारीक साडी मेरे अगो से चिपक गई, फलस्वरूप मेरा सारा अग व्यक्त हो उठा और वही सम्मुख बैठे हुए थे माधव ! मेरे मासल नितम्ब उन्हे भली प्रकार से व्यक्त हो गए, दिखलाई पड गए। इससे मुझे बडी लज्जा आई और मेने झट से उलटकर उनपर केशराशि डाल दी। जब श्री कृष्ण ने मेरे कुचो पर दृष्टि डाली तो मैंने छाती को मोडकर उनकी तरफ अपनी पीठ कर ली। और तब ढीठ या उद्दण्ड श्री कृष्ण मुख मेरी ओर से मोडकर हँसने लगे। मैं अपने अग-प्रत्यग को लज्जावश ढँकने या छिपाने का प्रयत्न करने लगी, पर हाय, छिपा नही पा रही थी। कविवर विद्यापति कहते है कि हे राधे, सचमुच तुम भी बडी नादान हो, भला तब तुम लौटकर फिर जल मे जाकर क्यों न छिप गई या बैठ गई ?

विशेष—प्रस्तुत पद मे सद स्नाता नायिका का बडा उद्दीपनकारी चित्र खीचा गया है। जल-स्नान के पश्चात् नायिका तरुणी की बारीक साडी का अग से चिपक जाना स्वाभाविक है और फिर उसके पीन नितम्बो एव उत्तुग कुचो का उसमे से दीखना किसको मोहित न करेगा और फिर लज्जावश सहसा नायिका के केशो का बिखर जाना ! वस्तु-चित्र एव भाव-चित्र का यह समन्वित साकार दृश्य है इन पक्तियो मे—

"नहाइ उठल हम कालिंदी तीर।
अंगहि लागल पातल चीर।
× × ×
बिपुल नितम्ब अति बेकत भेल।
पालटि तापर कुंतल देल।
उरज उपर जब देहल दीठ।
उर मोरि बइसल हरि करि पीठ।"

वास्तव मे इन प्रणय-लीलाओ मे महा रस का अजस्र स्रोत फूटकर बहता है। नारी की पक्की लज्जा का मार्मिक अभिव्यजन इस पक्ति मे कितनी सुन्दरता से किया गया है—

"जल देइ धोइ जदि तबहु न जाई।"

वास्तव मे कविवर विद्यापति का कवि सूक्ष्म शृंगारी भावो की व्यजना मे ही पूर्ण सफल हो सका है। अनुभावो एव चेष्टाओ का सम्पूर्ण प्रकाशन इन पक्तियों मे कितना और कैसा साफ उतरकर आया है जैसे स्वच्छ दर्पण मे कोई चिर-सुन्दर प्रतिबिम्ब खिलखिला उठा हो—

"उरज उपर जब देहल दीठ ।
उर मोरि बइसल हरि करि पीठ।
हँसि मुख मोडए ढीठ कन्हाई ।
तनु-तनु झाँपइते झाँपल न जाई ।"

"तनु-तनु झाँपइते झाँपल न जाई ।"—पंक्ति मे नारीयोचित लज्जा और उससे जनित सकपकाहट-सटपटाहट का भाव-चित्र अत्यन्त रोमाचकारी बन पडा है ।

शब्दार्थ—तोहे=तुम्हे । कि कहब माई=अरी सखी क्या कहूँ । जल देइ=पानी से । जदि=यदि । तबहु न जाई=तब भी न धुले या जाए । कालिदी तीर=यमुनातट । अंगहि=अग से । पातल चीर=पतला वस्त्र या बारीक साडी । लागल=चिपक गई, लग गई । तैं=इसलिए या फलस्वरूप । बेकत भेल=व्यक्त हुआ । सकल सरीर=सारा अग । तहि=वहाँ । उपनीत=बैठे हुए । समुख=सम्मुख । जदुबीर=माधव, श्री कृष्ण । बिपुल नितम्ब—मोटे मासल नितम्ब (Heavy Buttocks) व्यजना सुन्दर नितम्ब से है । पालटि=पलटकर, यहाँ केशो को फेककर पलट देने से आशय है जैसा कि स्त्रियाँ नहाकर प्राय किया करती है । तापर=उस-पर । कुतल=केश । उरज उपर=उरोजो या कुचो के ऊपर । जब देहल दीठ=जब दृष्टि डाली—श्री कृष्ण ने । तनु-तनु=अग-प्रत्यग । झाँपइते=ढँकने या छिपाने पर । झाँपल न जाई=ढँके या छिपाए नही जा सके । तुहू=तू भी, राधा के लिए विद्यापति कह रहे है । अगेआनि=अज्ञानी, नादान, भोली । पुनु=तब फिर । काहे पलटि न पैसलि पानि=क्यो न पलट कर जल मे जा बैठो ।

(१६५)

हम अबला सखि किये गुन जा- ।
से रसमय तनु रसिक सुजा- ।
कतहु जतन मोर कोर बइसाई ।
बाँधल बेनि से कबरि खसाई ।
कंचुक देल हृदय पर मोर ।
परसि पयोधर भै गेल भोर ।
कंठ पहिराओल मनिमय हार ।
अंग विलेपन कुंकुम भार ।
बसन पेन्हाओल कए कत छंद ।
किंकिनि जालहि नीबि निबंध ।
निज कर-पल्लव मभु मुख माज ।
नयनहि कयल सु-काजर साज ।

अलक तिलक दए चोलि निहारि ।
कह कविसेखर जाँओ बलिहारि ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा कहती है—हे सखी ! मै नादान अबला बाला भला सभोग के गुण को क्या समझ पाती ? वे नायक कृष्ण तो स्वय पूर्ण रसमय और रस-मर्मज्ञ है। बडे चातुर्य और प्रयत्न से उन्होने मुझे अपनी गोद मे बिठलाया अर्थात् मैं ऐसा नही चाहती थी, और उन्होंने मेरी जो केशराशि बिखरी हुई थी उसकी वेणी बाँध दी। मेरी छाती पर चोली रख दी, फिर मेरे कुचो को छूते ही खुद सुध-बुध खो बैठे। मेरे गले मे मणियो का हार पहनाया और अग मे केशर का अत्यन्त प्रलेपन किया। बडा छल करके उन्होने मुझे वस्त्र पहनाया और किकिणी से ही मेरी नीबी को बाँध दिया। अपने पल्लव के समान हाथो से मेरा मुख धो-पोछकर साफ किया और आँखो मे सुन्दर काजल लगाया। महावर लगाकर और चन्दन का तिलक करके उन्होने मेरी चोली को ताका। कविवर विद्यापति कहते है—सखी ने कहा कि हे राधे ! तुम भी उन पर समर्पित हो जाओ न ! आशय यह है कि उन्होने तो तुम्हारे लिए इतना किया, लेकिन तुमने तो उनके लिए कुछ भी नही किया, इसीलिए तुम अपने-आपको उनपर बलिहार कर दो।

विशेष—सभोग के अवसर पर नायक नायिका का जिस निपुणता के साथ शृ गार करता है, उसका उन्मादकारी चित्रण इस पद मे सफल बन पडा है। विदग्ध-विलास का निरावरण चित्रण करना ही यहाँ कवि का कर्म रहा है। इस दृष्टि से वह शब्द-शब्द मे सफल हुआ है। रसिक जनो के लिए इस प्रकार का विदग्ध-विलास सदा ही वाछनीय रहा है और विद्यापति उच्चकोटि के रसिक कवि थे। अत उनकी सफलता इसी बात मे है कि वह अपने शृ गार का वर्णन राजा शिवसिह जैसे शृ गारी राजाओ के मनोरजनार्थ पूर्ण रूप से कर सके। सस्कृत एव हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य मे भी ऐसा वर्णन खूब हुआ है। इस प्रकार के दो उदाहरणों का रसपान कीजिए, कविवर द्विज का पद है—

"सीस फूल सरकि सुहावने लिलार लग्यौ,
लांबी लटें लटकि परी है कटि छाम पर।
द्विज देव, त्योंही कछु हुलसि हिए ते हेलि,
फैलि गयो राग मुख-पंकज ललाम पर ।
स्वेद-सीकरन सरावोर ह्वै सुरंग चीर,
लाल दुति दै रही सु हीरन के दाम पर ।
केलि रस साने दोऊ, थकित बिको न तऊ,
'हा' की होर ठुमुक सु 'ना' की धूमधाम पर ।"

श्रौर रस-सागर कविवर जयदेव के ललित शब्दों मे—

"करु यदुनन्दन ! चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे।
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलश सहोदरे ॥१॥
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीड़ति हृदयानन्दने ॥ ध्रुवपदम्॥
श्रलि कुलगञ्जनमञ्जनकं रति नायकसायक मोचने।
त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जल उज्ज्वलय प्रिय ! लोचने ॥ निज०॥२॥
नयनकुरङ्गतरङ्गविकास निरासकरे श्रतिमण्डले।
मनसिजपाश विलासधरे शुभवेश ! निवेशय कुण्डले ॥ निज०॥३॥
भ्रमरचय रचयन्तमुपरि रुचिरंसुचिरं मम समुंखे।
जितकमले विमले परिकर्मय निर्मजनकमलकं मुखे ॥ निज० ॥४॥
मृगमदरसव लितं ललितं करु तिलकमलिकरजनी करे।
विहितकलङ्ककलं कमलानन ! विश्रमितश्रमरीकरे ॥ निज०॥५॥
मम रुचिरे चिकुरे करु मानद ! मनसिजध्वजचामरे।
रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डिशिण्डकडामरे ॥ निज० ॥६॥
सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे।
मणिरशनावसनाभरणानि शुभाशय ! वासय सुन्दरे ॥ निज० ॥७॥
श्री जयदेववचसि रुचिरे सदयं हृदयं करु मण्डने।
हरिचरणस्मरणामृत निर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने ॥ निज० ॥८॥"

उक्त कविवर जयदेव का पद जोकि शृ गारी है किन्तु विद्यापति के शृंगार से वह अलग है, ऊँचा है। विद्यापति का शृ गार कामोद्दीपनकारी है, लौकिक है किन्तु जयदेव का शृंगार सत्यत राधा-कृष्ण विषयक है, दिव्य है तभी तो उन्होने कहा है—

'हरिचरणस्मरणामृत निर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने ॥"

यह ठीक है कि विशेष आदर्शवादी दृष्टि से विद्यापति का लौकिक सभोग-शृ गार आलोचना का विषय बन सकता है किन्तु ऐसा करने से हमे या तो उनके पूर्व की सस्कृत की घोर शृ गारी परम्परा को मिटाना होगा या फिर विद्यापति के काव्य पर आलोचना का अन्याय लागू करना होगा। विद्यापति सस्कृत-अपभ्रश आदि भाषासाहित्य के पूर्ण मर्मज्ञ थे। अतः रसिक कवि होने के नाते उनका शृ गार-वर्णन देशज भाषा में बड़ा स्पष्ट बनकर आया है और उनसे आगे रीतिकालीन कवि बिहारी, पद्माकर आदि ने ही नही, सूर, मीरा, रसखान, नन्ददास आदि भक्त कवियों ने भी इस प्रकार का शृंगार-वर्णन किया है। वास्तव मे शृ गार-वर्णन की उत्कृष्टता इसी बात मे है कि वह हमें रूप, वासना-उन्माद के नशे में चूर कर दे ; हमारी इन्द्रियाँ स्पन्दित न होकर उससे अवसन्न हो जाए और इन्द्रियों की ऐसी अवसन्नावस्था कामुकता की सीमा का अतिक्रमण अवश्य कर जाएगी—वहाँ तो केवल अकथनीय सुख की अनभति हो

अनुभूति शेष रह जाएगी, और विद्यापति के पद इसी अनुभूति के प्याले है।

शब्दार्थ—अबला=अबोध नारी। किये=क्या। गुन=गुण। कतहु=कितने। जतन=यत्न, प्रयत्न। मोर=मुझे। कोर=गोद, अंक। बइसाई=बैठाकर। बाँधल=बँधा हुआ। बेनि=वेणी। कबरि खसाई=बाल खोलकर। कचुक=चोली। परसि=स्पर्श करते, छूते। पयोधर=स्तन, कुच। भै गेल भोर=होश भूल गए। कुकुम=चन्दन। बसन=वस्त्र। पहिराओल=पहनाये। कए कत छंद=बहुत छल करके। किंकिनि=किंकिणी, करधनी। नीबि निबंध=नीबी को बाँधे। कर-पल्लव=पल्लव के समान हाथ। कयल=किया, लगाया। अलक=महावर। तिलक=टीका। निहारि=देखे। जाँओ=जाओ। बलिहारि=समर्पण हो जाओ।

(१६६)

ए धनि रंगिनि कि कहब तोय।
आजुक कौतुक कहल न होय।
एकलि सुतल छलि कुसुम सयान।
दोसर मनमथ कर - धनुबान।
नुपुर झुन - झुन आओल कान।
कौतुक मुँदि हम रहल नयान।
आओल कान्हु बइसल मझु पास।
पास मोड़ि हम लुकाओल हास।
कुंतल कुसुमदाम हरि लेल।
बरिहा माल पुनहि मोहि देल।
नासा मोतिम गीमक हार।
जतने उतारल कत परकार।
कंचुकि फुगइत पहु भेल भोर।
जागल मनमथ बाँधल चोर।
कवि बिद्यापति एह रस भान।
तुहू रसिका पहु रसिक सुजान।

भावार्थ—'विदग्ध-विलास' के अन्तर्गत प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

राधा सखी से कह रही है—ऐ रँगीली रसवती सुन्दरी! क्या कहूँ तुमसे? आज की रति-क्रीड़ा का हाल तो बस कुछ कहा नही जाता। मैं अकेली पुष्प-शय्या पर विश्राम कर रही थी कि कोई अन्य अपरिचित कामदेव हाथ मे धनुष-बाण लेकर आ गया। झुन-झुन नूपुर की आवाज मेरे कान मे पड़ी। मैंने कपट-कौतुक से अपने नेत्र मूंद लिए। फिर कान्हा मेरे पास आए और बैठ गये। मैंने पार्श्व या करवट फेरकर अपनी हँसी को छिपा लिया। कृष्ण ने मेरे केशो मे लगी फूलों की माला

उतारकर ले ली और बढ़िया मयूर पुच्छ-पखी अपनी माला मुझे दे दी, मेरे गले मे पहना दी। न जाने किस चतुराई से उन्होने मेरी नाक का मोती और गले का हार उतार लिया, कुछ न जान सकी! मेरी चोली खोलते-खोलते प्रियतम भी स्वयं सुध-बुध खो बैठे और झट कामदेव ने जगकर चोर को पकड लिया। कविवर विद्यापति इस रस को जानकर कहते है कि तुम्हारे प्रियतम तो रस-मर्मज्ञ है ही, लेकिन तुम भी पूर्ण रसिक मर्मज्ञा हो। अर्थात् धीरे-धीरे रस लूट लिया करती हो, इसलिए कोई बात नही, दोनो बराबर है।

विशेष—काम-प्रमत्त नायिका के भावानुभावो का चित्रण यहाँ युक्तियुक्त हुआ है। उन्माद की दशा मे नारी की यह दशा हो जाना तो स्वाभाविक ही है—

"नासा मोतिम गीमक हार।
जतने उतारल कत परकार।"

सम्पूर्ण पद मे सभोग-शृगार की उन्मादक अवस्था की प्रभावशाली व्यजना है। कितना वाग्वैदग्ध्य, कितना नशा है इन पक्तियो मे—

"कंचुकि फुगइत पहु भेल भोर।
जागल मनमथ बाँधल चोर।"

कचुकि के खोलते ही कामदेव का जागरण कितनी तीव्र गति से होना दिखाया गया है—एकदम यथार्थ की विद्युत गति मे। वास्तव मे काम-भावो का यथार्थ एव चमत्कृत प्रकाशन विद्यापति के पदो मे पूर्ण प्रवेश के साथ हुआ है।

शब्दार्थ—ए=ऐ। धनि=सुन्दरी। रगिनि=रसवती। कि=क्या। कहब=कहूँ। तोय=तुझे। आजुक=आज का। एकलि=अकेले। छलि=थी। सयान=सेज, शय्या। दोसर=दूसरा। मनमथ=कामदेव। कर=हाथ। नयान=नयन। बइसल=बैठा। मभु=मेरे। पास मोड़ि=मुँह फेरकर, करवट बदलकर। लुकाओल=छिपाई। हास=हँसी। कुसुमदाम=फूल की माला। बरिहा=बढ़िया, अच्छा, सुन्दर। मोहि=मुझे। नासा=नाक। गीम=गला। क=का। जतने=यत्न से। कचुकि=चोली। फुगइत=खोलते। पहु=पिया, प्रियतम। भेल भोर=बेसुध हो गये। भान=समझकर।

(१६७)

हरि धरि हार चओकि परु राधा।
आध माधव कर गिम रहु आधा।
कपट कोप धनि दिठि धरु फेरी।
हरि हँसि रहल बदन - बिधु हेरी।
मधुरिम हास गुपुत नहि भेला।
तखने समखि - मख चम्बन देला।

करु धरु कुच, आकुल भेलि नारी ।
निरखि अधर - मधु पिबए मुरारी ।
चिकुर - चमर भरु कुसुमुक धारा ।
पिबि कहु तम जनि बम नव तारा ।
बिद्यापति कह सुन्दरि बानी ।
हरि हँसि मिलिलि राधिका रानी ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

कृष्ण ने सोई हुई राधा का चुपके-चुपके पास जाकर हार पकडा कि वह चौक पड़ी । आधा हार कृष्ण के हाथ मे और आधा राधा के गले मे रह गया । अर्थात् झटके मे टूटकर हार के दो भाग हो गए। बनावटी क्रोध मे सुन्दरी नायिका ने अपनी नजर मोड़ ली और कृष्ण हँसकर उसके मुख-चन्द्र को निहारने लगे। राधा की भी मधुर-मधुर गुप्त मुस्कान छिपी न रह सकी और कृष्ण ने तभी उसके मुख का गाढ चूम कर लिया । ज्योही कृष्ण ने उसके उरोज को हाथो से पकडा कि वह कोमल नारी सत्रस्त हो उठी । कृष्ण यह देखकर उसके अधरामृत का पान करने लगे । लगता था कि उस मधुर काम विनोद स्पदन के फलस्वरूप उसके केश रूपी चमर से इस भाँति कुसुमो की लडी या धारा गिर रही थी, जैसे अन्धकार नये-नये तारो का पान करके उन्हे उगल रहा हो । कविवर विद्यापति सुन्दरी नायिका की बात कहते है कि यो रूठने वाली राधा रानी हँसकर कृष्ण से मिल गई, उनसे अभिसार करने लगी ।

विशेष—बहाने से सोई हुई मानिनी अभिसारिका का चुपके से आकर नायक का हार पकडना, झटके से नायिका का चौकना, हार के दो टूक हो जाना, आधा भाग नायक के हाथ मे और आधा नायिका के गले मे रह जाना—ये सब चित्रवत् अभिसार-चेष्टाएँ इन दो पक्तियो मे समा गई है—

"हरि धरि हार चऔंकि परु राधा ।
आध माधव कर गिम रहु आधा ।"

इस प्रकार के हाव-भाव-अनुभावमय चित्रो का चित्रण बिहारी के एक दोहे मे खूब हुआ है, यहाँ विद्यापति ने वही कलात्मकता दिखलाई है । बनावटी कोप मे नायिका का नज़र फेर लेना और फिर नायक का प्यार की हँसी हँस देना, ये दो विरोधी अनुभावों की सापेक्ष चितवन कितनी मधुर है इन पक्तियो के घूँघट मे छिपी—

"कपट कोप धनि दिठि धरु फेरी ।
हरि हँसि रहल बदन-बिधु हेरी ।"

फिर नायिका का मीठा गुप्त हास क्या छिपने की वस्तु है ?—"मधुरिम हास गुपुत नहि भेला ।" इस प्रकार भावानुभावो की मधुर व्यंजना इस पद मे बड़ी उत्कृष्ट हुई है ।

एक महाप्राण मौलिक कल्पना सभोग के कारण नायिका की केशराशि से झरते हुए फूलों के प्रति कवि ने की है—

"चिकुर-चमर झरु कुसुमुक धारा ।
पिबि कहु तम जनि बम नव तारा ।"

चिकुर-चमर मे रूपक की छटा तो सुन्दर है ही किंतु आगे चलकर उत्प्रेक्षा द्वारा अंधकार तारो को उगल रहा हो, यह कल्पना इस हेतु की गई है क्योकि चिकुर-चमर ही केश नही होते उनका वण श्याम होता है, अधकर के समान, अत. उनसे तारे रूपी फूल झड रहे है। इस प्रकार केशों के रग सादृश्य के अनुसार उनके दो उपमान बने—चमर और अंधकार। चमर के रूप मे वह शृंगार सज्जित केश गुथी माला का अर्थ बोध कराते है और अधकार के रूप मे वह रात के छिटकते-टूटते हुए तारों के फूल का भान कराते है। इस प्रकार यहाँ कल्पना का रूप विराट् है, कम से कम शब्दो मे, बडे से बड़े भाव ! इस प्रकार की महाप्राण कल्पना विद्यापति के एक उत्कृष्ट कलावादी कवि होने की साक्षी है।

शब्दार्थ—धरि=पकडते। चमकि पर=चौक गई। आधा=अर्ध। माधब कर=कृष्ण का हाथ। गिम=गला। रहु=रहा। कोप=क्रोध। दिठि=दृष्टि। बिधु=चन्द्रमा। हेरी=देखना। गुपुत=गुप्त। तखने=तभी। करु=हाथ। धरु=पकडा। कुच=उरोज, स्तन। भेलि=हुई। निरखि=देखकर। पिबए=पीने लगे। चिकर=केशराशि। चमर=चॅवर। झरु=झडा। कुसुमुक=फूल का। पिबि=पी, पीने से मतलब है। कहु=कर। तम=अंधकार। बम=उगलना। मिलल राधिका=राधा मिल गई।

(१६८)

सासु सुतल छलि कोर अगोर।
तहि अति ढीठ पीठ रहु चोर।
कत कर आखर कहब बुझाई।
आजुक चातुरि कहल कि जाई।
नहि कर आरति ए अबुझ नाह।
अब नहि होयत बचन निरबाह।
पीठ आलिंगन कत सुख पाब।
पानिक पियास दूध किए जाब।
कत मुख मोरि अधर रस लेल।
कत निसबद कए कुच कर देल।
समुख न जाए सघन निसोआस।
किए कारन भेल दसन विकास।

जागल सास चलल तब कान।
न पूरल आस बिद्यापति भान।

भावार्थ—'विदग्ध-विलास' प्रसगक्रम के अनुसार प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा कह रही है कि हे सखी ! मुझे अपनी गोद मे समेटकर मेरी सास सो रही थी किंतु वहाँ भी तो अत्यत चतुर या निडर श्री कृष्ण चोर की भाँति मेरे पीछे आ बैठे। किन शब्दो मे इस बात को समझाकर बताऊँ या कहूँ ? अरे आज की जो चतुराई उन्होने दिखलाई है भला कैसे और किससे कही जा सकती है ? मैंने उनसे कहा—हे नादान प्रिय, इतनी जल्दी न करो—अब इस दशा मे रति-क्रिया करने का जो वचन दिया है उसका भी निर्वाह नही हो सकता। आशय यह है कि राधा कृष्ण से यह सकेत करना चाहती है कि रति-क्रिया कभी हडबडाहट मे नही हुआ करती। सास देख लेगी तो क्या कहेगी, इसलिये शीघ्रता न करो, पीठ पीछे लुक-छिपकर रति-क्रिया का उपक्रम न बनाओ। यो तो वह बन ही नही सकता। राधा ने आगे कहा—हे कृष्ण, मेरी पीठ के पीछे से आलिगन करके तुम्हे रति-क्रिया का भला क्या रस-भोग उपलब्ध होगा ? कही पानी की पिपासा दूध से शात होती है, वह तो पानी से ही बुझती है। आशय यह है कि नारी के साथ सभोग का मजा तो उसके अग्रभाग से आलिगन करके ही आता है, पीछे से आलिगन करना तो व्यर्थ है। राधा कह रही है कि हे सखी ! इतना कुछ कहने-सुनने पर भी श्री कृष्ण न माने और कितनी ही बार मुख घुमा-घुमाकर उन्होने मेरे अधरो को चूमा, रस लिया और मुझे चुपचाप करके कितनी ही बार मेरे कुचो को अपने हाथो मे लेकर जी भर-भरकर मसला। उस सभोग के समय की मेरी ऊँची साँस कही सास के सम्मुख न जाए और कही वह जाग न जाए इसलिये मेरे दात चमकने लगे—प्रोज्ज्वल दाँतो की शोभा प्रकट हो गई। आशय यह है कि सभोग जनित जोर की सांस न निकले इसलिये मैने स्वत मुख खोल लिया और मेरे उज्ज्वल दाँतों की छटा दरसने लगी। फिर भी मेरे दाँतो के प्रकाश से सास जाग ही उठी और तब श्री कृष्ण चल दिये। (यहाँ 'किए कारन' से यह भी आशय अभिधा से लगता है कि 'किस लिये न जाने मेरे दाँत उस समय विकसित हो गए, चमक उठे।' पर इस अर्थ से व्यजना पर चोट पहुँचती है और अर्थ भी तो असगत-सा हो जाता है। हाँ,'किए' शब्द मे पाठान्तर हो सकता है।) कविवर विद्यापति कहते हैं कि राधा अनमनी-सी होकर सखी से कह रही है कि इतना होने-करने पर भी तो काम-विलास की पूर्त्ति न हो सकी, मामला अधूरा ही रह गया।

विशेष—प्रस्तुत पद मे काम-भाव और उसके व्यापार का चित्रण उद्दीपन रूप मे किया गया है। इस प्रकार के पदो मे निश्चय ही सामाजिक मर्यादा का सर्वथा बांध टूटा हुआ लगता है। कला के नाम पर सर्वथा ही नग्न चित्रण लोक-रुचि के विरोध

मे खडा हो जाता है। किंतु फिर भी संभोग-श्रृंगार का छलछलाता हुआ रस इस पद की पक्ति-पक्ति मे उपलब्ध होता है। सभोग की सही स्थिति को धारण करने की व्यंजना यहाँ बड़ी यथार्थ एव रोमांचकारी है—

"पीठ आलिंगन कत सुख पाब।
पानिक पियास दूध किए जाब।"

यहाँ दूसरी पक्ति मे दृष्टांत भी लोकोक्ति सम्मत बन पडा है।

"कत मुख मोरि अधर रस लेल।
कत निसबद कए कुच का देल।"

चुम्बन एव कुच-मर्दन की कला का यह नुस्खा पहुँचे हुए रसिको को भी असमजस और उसे जानने की उत्सुकता मे डाल सकता है। वाग्वैदग्ध्य की दृष्टि से भी यह पक्तियाँ उत्कृष्ट कही जाएँगी।

रति-क्रिया की आशा किसके यौवन मे पूर्ण हुई है, यह पक्ति इसी तथ्य को प्रकट करती है—

"न पूरल आस बिद्यापति भान।"

"सासु सुतल छलि कोर अगोर।
तहि अति ढीठ पीठ रहु चोर।"

इन पक्तियो मे ढीठ नायक की चतुराई की बात बडे कौतुहलपूर्ण ढग से कही गई है जिसमे उक्ति-चमत्कार उच्चकोटि का है।

शब्दार्थ—सासु सुतल छलि=सास सो रही थी। छलि=थी। कोर अगोर=गोद मे लेकर या समेटकर। तहि=वहाँ भी। अति ढीठ=अत्यत चतुर या निडर। पीठ रहु=पीछे आ बैठा। चोर=चोट्टा। कत कर आखर=किन शब्दो मे। कहब=कहूँ। बुझाई=समझाकर। आजुक=आज की। चातुरि=चतुराई, चालाकी। कहल कि जाई=क्या कही जा सकती है। नहि करआरति=जल्दी न करो। आरति=शीघ्रता, जल्दी। ए अबुझ नाह=हे नासमझ प्रियतम। ए=हे। अबुझ=नासमझ। बचन निरबाह=बचन या वायदे का निर्वाह, काम का कौल-करार पूरा नही होता। पीठ आलिगन=पीठ के लिपटने से। कत=क्या, कितना या कितनी बार। पाब=पाना। पानिक पियास=पानी की प्यास। किए=कही। मोरि=मोडकर। अधर रस लेल=अधरो का चुम्बन करके उनका रस लिया। निसबद=बिना शब्द या शोर किए, मौन, चुपचाप। कए कुच कर देल=हाथो मे कुचों को लेकर मर्दन किया या मसला। समुख=सम्मुख, सास के सम्मुख से आशय है। सघन निसोआस=यहाँ सभोग के कारण जगी हुई ज़ोर-ज़ोर की साँस से आशय है। किए कारन=किस कारण से, यहाँ 'किए' के स्थान पर 'ए कारन' भी पाठान्तर हो सकता है जिसका अर्थ होगा इस कारण से जो जैसा कि हम ने भावार्थ में लिखा है अधिक ठीक रहेगा। भेल=हुआ। दसन बिकास=दाँत चमक

उठे। जागल=जाग गई। चलल=चल दिये। कान=श्री कृष्ण। न पूरल आस=आशा पूर्ण न हुई, रति-क्रिया की इच्छा पूरी न हो सकी।

(१६६)

कि कहब हे सखि आजुक रंग।
सपनहि सूतल कुपुरुष संग।
बड़ सुपुरुख बलि आओल धाई।
सूति रहल मझु आँचर झँपाई।
काँचलि खोलि आलिंगन देल।
मोहे जगाए आपु निंद गेल।
हे बिहि हे बिहि बड़ दुख देल।
से दुख रे सखि अबहु न गेल।
भनए विद्यापति इह रस धद।
भेक कि जान कुसुम-मकरंद।

भावार्थ—'विदग्ध-विलास' प्रसगक्रम के अनुसार कविवर विद्यापति इस पद में लिखते है—

नायिका राधा कह रही है कि हे सखी ! आज के रति-रग के विषय मे तुझसे क्या कुछ कहूँ। मैं जैसे स्वप्न भ्रम मे उस नपुसक के साथ सभोग की आशा मे सो गई। उसे बड़ा पुष्ट पुरुष जानकर मै भागी-भागी आई थी कि रति-क्रिया का बडा रस आएगा किन्तु वह मरा तो मेरा ही आँचल मुह पर ढँककर बस सोया रहा। पहले-पहले तो उसने मेरी कचुकी या चोली का बंध खोलकर मेरा आलिगन किया और फिर मुझे जगाकर—मेरी काम-वासना को उद्दीप्त करके—आप गाढ नीद मे खो गया। हाय-हाय, ईश्वर ! इस प्रकार उसने मुझे बड़ा दु ख दिया—काम-पीडन जगाकर उसका उपचार न किया, अभिसार का पूर्ण आनन्द न आया। हे सखी ! वह अपूर्ण अतृप्त रही रति-क्रिया का मेरा कष्ट अभी तक दूर नही हुआ है। कविवर विद्यापति कहते है कि यह तो सभोग का विचित्र रस-रहस्य है, इसे साधारण जन क्या समझेगे ? भला फूल के पराग को मेढक क्या जाने ! आशय यह है कि अरसिक जन भला रति-रस-रहस्य को भोगना क्या जाने—भले ही वे बडे नाक वाले या मर्यादा वाले अपने को समझें, कहे। इस विषय मे यशस्वी कवि बच्चन जी की यह पक्तियाँ यहाँ पठनीय हैं जिनमें विद्यापति के पद के अन्तिम भावों का यथातथ्य प्रकाशन होता है—

"यह कमल का वास है, दादुर,
इसे पहचान तू सकता नहीं है।
यह कमल की पूर्ण सत्ता
का बड़ा बारीक सत है,

गानरत की प्राण-ध्वनि है
या किसी कवि का कवित है,
या कि विरही यक्ष का उच्छवास
जिससे मेघदूत प्रसूत होता,
या निमंत्रण यक्षिणी का
मौन बैठी जोकि अलका में कहीं है।
यह कमल का वास है, दादुर,
इसे पहचान तू सकता नहीं है।
भौंर सुनता यह निमंत्रण
और गिरि - वन खंड करता
पार, आता, गुनगुनाता
और पंकज में समाता,
नाक तुझको, सूँघने की
सूक्ष्मता तुझ में कहा, कीचड बिहारी,
कीट-भक्षी जीभ से मकरंद-
मधु को छान तू सकता नहीं है।
यह कमल का वास है, दादुर,
इसे पहचान त सकता नही है।

(आरती और अगारे . ८३वा गीताश)

विशेष— नायिका पर अपूर्ण रति-क्रिया का बडा घातक प्रभाव पडता है, उसकी नायक के प्रति घोर घृणा, वितृष्णा एव उपेक्षा जाग जाती है। वह अपनी अतृप्ति के दु ख से हाय-हाय ईश्वर चिल्लाती है। इस अपूर्ण काम-भावना का प्रकाशन ही कविवर विद्यापति ने किया है। रमणी को सुन्दर तन्दुरुस्त पुरुष भाता है, यही मनोवैज्ञानिक तथ्य इस पक्ति मे सहज व्यक्त है—

"बड़ सुपुरुख बलि आओल धाई।"

छठी पक्ति मे 'मोहे जगाए' प्रयोग कर विद्यापति ने बडे सुन्दर ढंग से राधा मे यह व्यजित करा दिया है कि उसमे नायक ने काम जाग्रत किया पर दुष्ट स्वय सो गया—बिना कुछ किए-धरे ही सो गया, स्पदनहीन हो गया। इस सपूर्ण भाव मे अपूर्ण प्रतृप्त काम-वासना की प्रतिक्रिया उबलकर फूट पडी है। फ्रायड होते तो विद्यापति को इस काव्याभिव्यक्ति के लिए खूब सराहते। "सपनहि सूतल" शब्दो मे काम-जन्य सभ्रम एवं जड़ता का मनोभाव भी बडे निशाने से प्रकट हुआ है क्योकि आगे नायिका यह भी तो कहना चाहती है कि उसका समागम भ्रम एव जडतावश हुआ—'कुपुरुष सग'। इस प्रकार 'वक्रोक्ति' का पुट भी कमाल का है।

शब्दार्थ—रग=रति-रग। सपनहि सूतल=भ्रम मे सो गई। कुपुरुष=यहाँ नपुसक पुरुष से तात्पर्य है। बड़ सुपुरुख=बडा रसिक। बलि=जानकर। आओल धाई=दौड़ी-दौड़ी आई। सूति रहल=सोया रहा। मभु=मुख। आँचर भँपाई=आंचल से ढँककर। काँचलि=कंचुकी, चोली। मोहे जगाए=मुझ जगाकर, आशय यह है कि मेरा काम जगाकर। आपु निद गेल=आप नीद मे सो गया। हे बिहि=हे ईश्वर। से दुख=वह दुःख, अर्थात् अपूर्ण अतृप्त काम-पीड़न। अबहु न गेल=अब तक भी नही गया है। इह रस धद=इस सभोग-रस का वैचित्र्य। भेक=दादुर, मेढक। कि जान=क्या जानेगा। कुसुम-मकरद=पुष्प का पराग, पुष्प-रस।

(१७०)

आकुल चिकुर बेढ़लि मुख सोभ।
राहु कएल ससि-मंडल लोभ।
बड़ अपरब दुइ चेतन मेलि।
बिपरित रति कामिनि कर केलि।
कुच बिपरीत बिलम्बित हार।
कनक कलस बम दूधक धार।
पिय मुख सुमुखि चूम तजि ओज।
चाँद अधोमुख पिबए सरोज।
किंकिन रटत नितम्बनि छाज।
मदन - महारथ बाजन बाज।
फूजल चिकुर माल धरु रग।
जनि जमुना मिलु गंगतरंग।
बदन सोहाओन स्रम-जल बिन्दु।
मदन मोति लए पूजल इन्दु।
भनइ बिद्यापति रसमय बानी।
नागरि रम पिय-अभिमत जानी।

भावार्थ—प्रस्तुत पक्ति मे कविवर विद्यापति लिखते है—

अस्तव्यस्त केशराशि ने नायिका के मुख की शोभा को इस प्रकार ढाँप लिया (या बढा दिया) जिस प्रकार राहु ने चन्द्रमा के ऊपर अनुराग-लोभ किया हो। राधा-कृष्ण—इन दोनों के सचेतन प्राणो का मिलन अपूर्व लग रहा है; नायिका विपरीत काम-क्रीडा का आनन्द ले रही है। उसके स्तन का उलटा लटका हुआ हार ऐसा शोभायमान लगता है जैसे स्वर्ण कलश से दूध की धार फूट रही हो। लज्जा को त्यागकर नायिका नायक के मुंह को इस प्रकार चूमती है जिस प्रकार चन्द्रमा अधोमुख हुआ कमल का रसपान करता हो। आशय यह है कि चन्द्रमुखी कामातुर नायिका रति के

लिये इतनी व्यग्र है कि वह स्वय अपने को सम्भालने मे असमर्थ हो रही है और अपनी पिपासा शांत करने के लिये नायक का कमल रूपी मुख चूमती है। उसकी कमर में बँधी हुई किंकिणी की आवाज इस प्रकार मधुर मनोरम लग रही है जैसे कामदेव रूपी महारथी का वाद्य बज रहा हो। खुले हुए केशों मे छितारी-बिखराई माला का रंग मिलकर ऐसा सुन्दर फबता है मानो गगा और यमुना की चचल लहरें परस्पर मिल रही है। सभोग श्रम जन्य स्वेद-जल से धुला-खिला मुख इस प्रकार से शोभायमान होता है मानो कामदेव रूपी मोती को लेकर चन्द्रमा की पुजा हो रही हो। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि मानो मुख-चद्र की पूजा स्वय स्वेद-श्रम-जल के मोतियो को लेकर कामदेव कर रहा हो। कविवर विद्यापति रसमयी वाणी मे कहते है कि नायक की इच्छानुसार या उसकी इच्छा को समझकर ही नायिका इस विपरीत सभोग-क्रिया द्वारा उससे रमण करती है।

विशेष—विपरीत सभोग-क्रिया के अवसर पर जो दशा और चेष्टाएँ नायिका की हो जाती है उनका चित्रवत् वर्णन इस पद मे किया गया है। इन पक्तियो मे रूपक और उत्प्रेक्षा अलकार मनमोहक है—

"मदन-महारथ बाजन बाज।
फूजल चिकुर माल धरु रंग।
जनि जमुना मिलु गंगतरंग।"

स्थल-स्थल पर उत्कृष्ट एव मौलिक कल्पनाओ का चित्रण भी विशेष हुआ है—

"कुच बिपरीत बिलम्बित हार।
कनक कलस बम दूधक धार।
पिय मुख सुमुखि चूम तजि ओज।
चाँद अधोमुख पिबए सरोज।"

विपरीत क्रिया मे नायिका का हार नीचे को लटकेगा ही और उसके ऊपर होंगे स्वर्णिम कुच रूपी कलश, जिनसे उन्माद की दूध जैसी धारा प्रस्फुटित सहज रूप मे होगी। कल्पना से मोहक यथार्थ की चित्रकृति कितनी आकर्षक है यहाँ! इसी प्रकार प्रियतम का नीचे की ओर मुखकमल चूमती हुई नायिका का अधोमुख क्या चन्द्रमा से कम सुन्दर होगा! सूक्ष्म कल्पना के अकन की दृष्टि से विद्यापति की यह पक्तियाँ श्रेष्ठ काव्य-कला का उदाहरण कही जाएँगी। इस प्रकार कला-पक्ष एव भाव-पक्ष—रूप और भोग—इन दोनो ही रूपो मे यह पद अपनी व्यजना-अभिव्यजना मे अनूठा है। भावो-कल्पनाओं की एकता (Unity of emotions and imaginations) के सश्लिष्ट सजीव शृगार का आकार कहना चाहिये इस पद को। इस प्रकार का शृगार-वर्णन सस्कृत के कवियो ने ही सफलतापूर्वक किया, हिन्दी मे तो विद्यापति अकेले ही उनकी टक्कर के कवि कहे जायेगे।

शब्दार्थ—आकुल चिकुर=चचल, अस्तव्यस्त बाल। सोभ=शोभा। कएल=

किया। ससि=शशि, चन्द्रमा। बड़=बड़ा। अपरुब=अपूर्व। दुइ=दो। चेतन=प्राण। बिपरीत बिलम्बित=उलटा लटका। कनक कलस=स्वर्ण कलश। बम=बहना, उगलना। क=का। तजि ओज=लाज छोड़कर, खुलकर। किकिन=करधनी। नितम्बनि=सुन्दर बनावट की नायिका। मदन=कामदेव। फूजल चिकुर=खुले हुए बाल। जनि=जिस प्रकार। मिलु=मिलकर। बदन=मुख। सोहाओन=सुहावना। स्रम=श्रम। इन्दू=चन्द्रमा। अभिमत=अभिलाषा, इच्छा।

(१७१)

बिगलित चिकुर मिलित मुखमंडल
चाँद बेढ़ल घनमाला।
मनिमय कुंडल स्रवन दुलित भेल
घाम तिलक बहि गेला।
सुन्दरि तुअ मुख मङ्गल-दाता।
रति - बिपरीत समर जदि राखबि
कि करब हरि हर-धाता।
किंकिन किनिकिनि कंकन कनकन
घनघन नूपुर बाजे।
रति - रन मदन पराभव मानल
जय-जय डिमडिम बाजे।
तिल एक जघन सघन रब करइत
होअल सैनक भंग।
बिद्यापति कबि इ रस गाबए
जामुन मिलली गंग।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका के गीले बिखरे हुए केशो ने उसके मुख को इस प्रकार से घेर लिया है मानो चन्द्रमा को चारों ओर से बादलो की माला ने ढँक लिया हो। मणि निर्मित कुण्डल कान मे हिलने लगे और संभोग-श्रम-जनित श्रम-कणों से भाल का तिलक भी बह गया।

हे सुन्दरी! तुम्हारा मुखमंडल तो शुभ और आनन्द प्रदाता है, यदि इसी प्रकार विपरीत रति का युद्ध ही करती रहोगी तो भी ब्रह्मा, विष्णु और शिव तुम्हारा क्या बिगाड़ सकते हैं! आशय यह है कि तुम तो मगलदाता हो, तुम्हारे संभोग-क्रीड़ा-कलाप तो देवताओं के लिये भी सुखमय है। उन्मत्त सभोग के कारण करधनी की किन-किन, और कंगन की कन-कन तथा नूपुर की घन-घन का घोर रव इस प्रकार हो रहा है जैसे रति रूपी रण मे कामदेव ने हार मान ली हो और इस खुशी

मे उसके विजेता जयघोष कर रहे हो। पल भर के लिये जाँघ की बँधी ध्वनि हुई अर्थात् विपरीत रति करते समय नायक और नायिका की जँघाओ के रगड़ खाने से ध्वनि हुई, फिर युद्ध करते-करते नायक-नायिका रूपी सैनिको का मोर्चा भग हो गया। अर्थात् काम-युद्ध समाप्त होते ही मनोवेग शात हो गए, पल का सुख शात हो गया; फिर दोनो अलग-अलग हो गए। कविवर विद्यापति इस रस का गान करके कहते है कि यो यमुना के साथ गगा मिली—दोनो को मिलन सफलीभूत हुआ, दोनो संभोग का चरम सुख प्राप्त करके विलग हुए।

विशेष—इस पद मे सम्भोग को एक अनूठे युद्ध का रूपक दिया गया है जिसके सैनिक है नायक-नायिका और उनके अस्त्रशस्त्र हैं सज्जित शृंगार के प्रसाधन ! सभोग के समय शृ गारिणी के आभूपणो का जो उन्मादकारी स्वर गूँजता है उस ध्वनि को तद्वत यहाँ प्रतिध्वनित किया गया है—

"किंकिन किनिकिनि ककन कनकन
घनघन नूपुर बाजे।"

यहाँ ककार की आवृत्ति पूर्ण रूप मे अनुप्रास की मधुर लय का गुजार कर रही है। उन्मत्त हुई नायिका जब पूर्ण जोश के साथ नायक से जुटती है उस समय उसकी अनुभाव चेष्टाओ का यह यथार्थ चित्रण होते हुए भी कितना काल्पनिक है, कितना उन्मादकारी है—

"बिगलित चिकुर मिलित मुखमंडल
चाँद बेढल घनमाला।
मनिमय कुंडल स्त्रवन दुलित भेल
घाम तिलक बहि गेला।"

इससे अधिक भी कलात्मक रूप मे सभोग-शृ गार का वर्णन हो सकता है, यह कल्पना करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।

शब्दार्थ—बिगलित चिकुर=बिखरे हुए बाल। बेढल=घेरा। घन=बादल। तुअ=तुम्हारा। मङ्गल-दाता=आनन्ददायक। समर=रण, युद्ध। कि=क्या। करब=करेंगे। हरि=विष्णु। हर=शकर, शिव। धाता=विधाता, विधि, ब्रह्मा। ककन=कगन। रन=रण। मदन=कामदेव। पराभव=पराजय। मानल=मान लिये। जघन=जँघा। रब=आवाज, ध्वनि। करइत=करती है। होअल=हो गया। सैन=सेना। क=का। भग=भ्रष्ट, नाश, खत्म, समाप्त। इ=यह। गाबए=गाते है।

(१७२)

सखि हे कि कहब किछु नहि फूर।
सपन कि परतेख कहए न पारिए
किए नियरे किए दूर।
तड़ित - लता तल जलद समारल
आँतर सुरसरि धारा।
तरल तिमिर ससि सूर गरासल
चौदिस खसि पड़ु तारा।
अम्बर खसल धराधर उलटल
धरनी डगमग डोले।
खरतर बेग समीरन सचरु
चंचरिगन करु रोले।
प्रलय - पयोधि - जले तन झाँपल
इ नहि जुग अवसान।
के बिपरीत कथा पतिआयत
कबि बिद्यापति भान।

भावार्थ—'विदग्ध-विलास' प्रसगक्रमानुसार प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

कोई सखी दूसरी से कहती है कि हे सखी ! मैं तुझसे क्या कहूं, सामर्थ्य मे कहते हुए कुछ बात ही नही बनती कि वह बात जो राधा-कृष्ण के मिलन-समागम के विषय मे है कि क्या वह स्वप्न की है या प्रत्यक्ष की है, या पास की है या दूर की है , बस यों समझ कि उसके विषय मे मुझसे कुछ स्पष्ट कहा ही नही जा सकता। कुछ ऐसा लगा कि बिजली की लता जैसी राधा के नीचे बादल रूप मे श्री कृष्ण समाए हुए हैं और दोनो की पहचान मे केवल एक ही वस्तु थी—गगा की धार के समान प्रोज्ज्वल राधा का हार। विराट् कल्पना से युक्त आशय यहाँ यह है कि विद्युत समान सुन्दरी राधा बादल रूपी कृष्ण के साथ विपरीत क्रिया मे रत थी—केवल एक हार ही यह बता रहा था कि राधा राधा है क्योंकि वह श्री कृष्ण के ऊपर चढी हुई विपरीत रति-क्रिया मे रत पुरुष-सी प्रतीत हो रही थी। आगे सखी कह रही है कि राधा के घने चचल श्याम केश रूपी अंधकार ने उसके सुन्दर चन्द्र-से मुख एव सूर्य-से भाल-लाल सिंदूर को ग्रस लिया हो—ऐसा लगता था, और चारों ओर या चारों दिशाओं में उसके केशो के पुष्प रूपी तारे मानो बिखरे पडे थे। और ऐसा भी लगा कि आकाश खिसका हो, पर्वत उलटा हो और धरती डगमग डोली हो। आशय यह है कि सभोग के झोकों से राधा का अम्बर रूपी चीर खुल गया, पर्वत रूपी स्तन मर्दन से गिर पडे या शिथिल पड गए एवं हिलने-

डुलने के कारण पृथ्वी रूपी कटि नितम्ब सहित डोल उठी। सखी कहती है कि बडे वेग से पवन चलने लगा तथा भ्रमरावली ने शोर कर दिया। आशय यह है कि सभोग के कारण श्वास रूपी तीव्र वायु चल पडी एव भ्रमरावली जैसी किकिणी आदि की मदमय आवाज़ उठने लगी। इस प्रकार सखी कहती है कि प्रेमोदधि के जल मे सारा शरीर निमज्जित हो गया किन्तु इस निमज्जन का कोई युगान्त नही होता—यह मैथुन-क्रिया तो चिरन्तन होती रहेगी। अत कविवर विद्यापति कहते है कि इस विपरीत रति-क्रिया-कथा पर कौन विश्वास करे? आशय यह है कि इस विपरीत क्रिया का कोई आर-पार नही, यह अगम्य एव अकथ्य है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे रति-क्रिया का बडा उद्दीपन एवं रोमाचकारी चित्रण है। सभोग-चेष्टाओ का सूक्ष्म किन्तु यथार्थ रूप इन पक्तियो मे बडा नशीला है—

"अम्बर खसल धराधर उलटल
धरनी डगमग डोले।
खरतर बेग समीरन सचरु
चचरिगन करु रोले।"

इन्ही पक्तियो मे प्रस्तुत-अप्रस्तुत या उपमेय-उपमान का सादृश्य भी बडे कलात्मक ढग से किया गया है। सभोग के समय नायिका का चीर उघर ही जाता है और तब वह दृश्य क्या आकाश खिसकने जैसा कौतुहलमय नही होता? इसी प्रकार नायिका के कुच मर्दित होने के कारण शिथिल पड ही जाते है, उस स्थिति की समता या सम्भावना या उपमा पर्वत के उलट जाने से कितनी सूक्ष्म यथार्थ एव रोमाचकारी है। सभोग के समय श्वास वायु का तीव्र हो जाना स्वाभाविक ही होता है और उसका साम्य 'खरतर वेग समीरन सचरु' से कितना भावोद्दीपक है; फिर मैथुन के झोको मे नायिका की कमर किकिणी भी तो बजना स्वाभाविक है जिसके लिए "चचरिगन करु रोले" की माधुर्य उपमा सिद्ध हो सकती है। इस प्रकार अलकार-अलकृति एव भावानुभाव-अभिव्यक्ति का बडा सश्लिष्ट कौशल प्रकट किया गया है। इस प्रकार यह चित्रण कोरा श्रृंगार-वर्णन का वर्णन न होकर पूर्ण रस परिपाक का साधन है। राधा-कृष्ण की युगल कामरत जोड़ी का अनूठा चित्र इस पक्ति मे कितनी महाप्राण कल्पना को अंक में बिठलाए हुए है—

"तड़ित-लता तल जलद समारल
आँतर सुरसरि धारा।"

राधा के लिए तडित-लता और कृष्ण के लिए जलद का उपमान तो उचित है ही, साथ 'समारल' शब्द में दोनों का मधुर अभिसार भी ध्रुवतारे की भाँति अपनी सत्ता बनाए बैठा है। चमकीले हार का महत्त्व भी बीच मे 'सुरसरि धारा' से क्या कम होगा। इस प्रकार कला-पक्ष एवं रस-पक्ष की दृष्टि से यह पद बड़ा उत्तम है।

शब्दार्थ—कि कहब= क्या कहूँ। किछु=कुछ। नहि फूर=सामर्थ्य नही, आशय है कि कुछ बात कहने की सामर्थ्य ही नही है। सपन कि परतेख=स्वप्न या प्रत्यक्ष की। कहए न पारिए=कही नही जा सकती। किए=क्या। नियरे=पास। तड़ित-लता=बिजली की लता, राधा के लिए उपमान है। तल=नीचे, विपरीत क्रिया का बोधक शब्द है। समारल=समाया हुआ, अवस्थित। आँतर=अन्तर। सुरसरि धारा=गगा की धारा, राधा के प्रोज्ज्वल हार का उपमान है। तरल तिमिर=चंचल अधकार, राधा के बिखरे केशो का उपमान है। ससि सूर=चन्द्र-सूर्य, राधा के क्रमश मुख एव भाल के सिन्दूर टीके का उपमान है। गरासल= ग्रसा किया हुआ। चौदिस=चारो दिशाओ मे या चारो ओर। खसि=गिरना। पड़ु=पेड। अम्बर=वस्त्र, आकाश, राधा के वस्त्र का उपमान। धराधर=पर्वत, राधा के कुच का उपमान। धरनी=पृथ्वी, राधा की कटि या उसके नितम्ब का उपमान। खरतर बेग=तेज प्रवाह। समीरन=वायु, सम्भोगजन्य तीव्र श्वास का उपमान है। सचरु=चलती है, सचारित हुई। चचरिगन=भ्रमरावली, कमर की किकिणी का उपमान। करु रोले=शोर या आवाज करे। प्रनय-पयोधि-जले=प्रणय रूपी सागर का जल। तन झाँपल=शरीर छिप गया, निमज्जित हो गया। इ नहि=इस मे नही। जुग अवसान=युगान्त। के=कौन। बिपरीत कथा=विपरीत रति-क्रिया-कथा। पति-आयत=विश्वास करेगा।

(१७३)

दुहुक सजुत चिकुर फूजल।
दुहुक दुहु बलाबल बूझल।
दुहुक अधर दसन लागल।
दुहुक मदन चौगुन जागल।
दुअओ अधर करए पान।
दुहुक कठ आलिगन दान।
दुअओ केलि सयँ सयँ भेलि।
सुरत सुखे बिभाबरि गेलि।
दुअओ सअन चेत न चीर।
दुअओ पियासल पीबए नीर।
भन बिद्यापति ससय गेल।
दुहुक मदन लिखन देल।

भावार्थ—'विदग्ध-विलास' प्रसगक्रमानुसार इस अन्तिम पद में कविवर विद्यापति विपरीत रति-क्रिया का वर्णन 'पूर्णत्व' रूप मे करते हुए अपनी ओर से ही लिखते हैं—

राधा-कृष्ण की पारस्परिक विपरीत रति-क्रिया के फलस्वरूप दोनों के बँध

केश खुल गए और सयुक्त हो गए, लिपट-उलझ गए। दोनो ने ही एक-दू
प्रबल को जान लिया। आशय यह है कि दोनो ही एक-दूसरे के मैथुन-बल से भ
परिचित हो गए। दोनो के अधरो पर ही दाँत लग गए और दोनो ही मे चौगुन।
जाग गया। दोनो ने एक-दूसरे के अधरो का पान किया। दोनो ही परस्पर एक-दूस
को आलिगन दान करते है। यो दोनो ने ही साथ-साथ रति-विलास किया। सारी रात संभोग-सुख की उपलब्धि मे व्यतीत हो गई। दोनों ही रति-क्रिया से शय्या पर पडे शिथिल-अचेत अपने खुले वस्त्रो का भी ध्यान नही करते। दोनो पिपासित होकर पानी पीते है। कविवर विद्यापति कहते है कि अब सशय मिट गया। दोनो ने ही परस्पर एक-दूसरे के अगो पर काम-चिह्न अकित कर दिए है।

विशेष—सामाजिक दृष्टि से काम-सभोग-सबन्ध भले ही वर्जित हो किन्तु यह दो तन, दो मन और दो आत्माओ के पूर्णानन्द का प्रतीक है। दो तन, दो मन और दो आत्माओ का एकत्व रूप ही सभोग है, काम है, आनन्द है। दर्शन एवं अध्यात्म मे इसी का नाम है योग—जीवात्मा एव परमात्मा का मिलन ज्ञान और ज्ञेय का लीनत्व! सम्पूर्ण पद मे 'दुहुक' महत्त्वपूर्ण शब्द लिख-लिखकर विद्यापति ने दो शरीरो का—पुरुष एव नारी का—अग एकत्व का अभिव्यजन प्रस्तुत किया है।

काम-अचेतन अवस्था मे पुरुष एव नारी का भेदत्व मिट जाता है, केवल परस्पर आनन्द ही आनन्द रह जाता ह। प्रत्येक पक्ति मे यही महाप्राण भाव व्यजित है। सभोग की पूर्ण शारीरिक एवं मानसिक अवस्था का चित्रण यहाँ सजीव है, सशक्त है एव सहज सरल भी है।

शब्दार्थ—दुहुक=दोनो के। चिकुर=बाल। फूजल=बिखर जाना, खुल जाना। बलाबल=बल-अबल। बूझल=जाना। अधर=होठ। दसन=दाँत। लागल=लगे, जुडे। मदन=कामदेव। जागल=जग गया। केलि=रति-विलास-क्रिया। सयँ=साथ। सुरत सुखे=मैथुन का सुख। बिभाबरि=रात। गेलि=गई, व्यतीत हो गई। सअन=शय्या। चेत=ध्यान। चीर=वस्त्र। पियासल=प्यासे। पीबए नीर=पानी पीते है। ससय गेल=सशय या खटका मिट गया। मदन लिखन देल=कामदेव के लिखे चिह्न से आशय है।

बसंत

(१७४)

माघ मास सिरि पचमी गँजाइलि
नवम मास पचम हरुआई।
अति घन पीड़ा दुख बड़ पाओल
बनसपति भेलि धाई हे।
सुभ खन बेरा सुकुल पक्ख हे
दिनकर उदित - समाई।
सोरह सम्पुन बतिस लखन सह
जनम लेल ऋतुराई हे।
नाचए जुबतिजना हरखित मन
जनमल बाल मधाई हे।
मधुर महारस मङ्गल गाबए
मानिनि मान उड़ाई हे।
बह मलयानिल ओत उचित हे
नव घन भओ उजियारा।
माधवि फूल भेल मुकुता तुल
ते देल बन्दनवारा।
पोअरि पाँड़रि महुअरि गाबए
काहरकार धतूरा।
नागकेसर—सख धूनि पूरए
तकर ताल समतूरा।
मधु लए मधुकर बालक दएहलु
कमल - पंखरी लाई।
पओनार तोरि सूत बाँधल कटि
केसर कएलि बघनाई।
नेत नव पल्लव ज ओछाओल
सिर दल कदम्बक माला।
बैसलि भमरी हरउद गाबए
चक्का चन्द निहारा।

बसंत

कनग्र केसुग्र सुति-पत्र लिखिएँ हलु
राशि नछत कए लोला।
कोकिल गनित-गुनित भल जानए
रितु बसंत नाम थोला।

× × ×

बाल बसत तरुन भए धाग्रोल
बढ़ए सकल ससारा।
दखिन पवन घन अंग उगारए
किसलय कुसुम परागे।
सुललित हार मजरि घन कज्जल
ग्रखितौं ग्रजन लागे।
नव बसत रितु ग्रनुसर जौबति
बिद्यापति कवि गावे।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
सकल कला मनभावे।

प्रसंग-संकेत—हमारे यहाँ शृंगारी काव्य मे षट्ऋतु वर्णन ग्रथवा बारहमासा वर्णन द्वारा शृंगार की ग्रवस्थाग्रो, चेष्टाग्रो ग्रादि का वर्णन सूर, नद, बिहारी ग्रादि सभी शृगारी महान् कवियो ने किया। सस्कृत के महान् कवियो—कालिदास ग्रादि ने भी इस वर्णन को ग्रपने काव्यो मे महत्त्व दिया है। सभी ऋतुग्रो मे बसत ऋतु कामी जनों के लिये ग्रधिक मादक, सुखदायी एव भावना-वसनाप्रिय होती है। ग्रत. कवियों ने इसका वर्णन बडा जी खोलकर एव ग्रत्यन्त निपुणता के साथ किया है। बात यह है कि बसत-वर्णन मे कवियो को प्रकृति के स्वच्छन्द स्वरूप का भावनामय वर्णन करने के ग्रवसर बहुतायत से मिलते है। इसी ऋतु मे नर-नारियो मे—पुरुष प्रकृति मे—एक ग्रसीमोल्लास का नशा छा जाता है। ग्रग्रेजी कवियो ने भी Spring Season का ग्रपने काव्य मे सुन्दर वर्णन किया है। कविवर विद्यापति ने ग्रनेक उपकरणों के द्वारा इस ऋतु का वर्णन बडी मौलिकता, ग्रत्यन्त कल्पना एव यथोचित स्वाभाविकता, भावमयता से किया है।

भावार्थ—प्रस्तुत पद में कविवर विद्यापति बसंत के प्रकृति के मोहक दृश्य का वर्णन करते है—

माघ के महिने की श्री या बसतपचमी पूर्णत· [illegible]र नव मास पाँच दिवस बीतने पर जब उसे प्रसव की बहुत पीड़ा हुई तब हर[illegible] वनस्पतियाँ उसको नहलाने के निमित्त धाय बनकर पधारी (महीनों के ग्रनुसार जेठ से माघ माह तक पूर्ण नौ महीने होते है। बसंतपचमी का ग्राशय है कि इस दिन बसंत का जन्मोत्सव होता है ग्रौर इस दिन पुत्र रत्न की उत्पत्ति भी बड़ी शुभ होती है। सर्वत्र हरियाली

. जाता है । चैत-बैसाख के दो माह बसत के सुख से सुखद रहते है ।)

शुभ क्षण की वेला मे जिस प्रकार सूर्य सम्पूर्ण कला मे उदय हुआ उसी सोलह अगों से परिपुष्ट तथा बत्तीसों लक्षणो से युक्त ऋतुराज बसत ने जन्म । युवतियाँ हर्षित हुई बाल बसत के जन्मकाल मे, नाचती है और पूर्ण उमग के थि रस-मधुर स्वरो मे मगलगान गाती है एव मानवती स्त्रियाँ भी अपना मान छोड़ देती है, खुशी मनाती है । मलयानिल बहने लगा, जिससे बचाव करना उचित होता है अत आकाश मे नय भूरे-भूरे घन घिर आए । माधवी सुमन मोती के समान प्रोज्ज्वल प्रतीत होते है अत· उनका चँदोवा बनाया गया । 'पिअरि पाँडरि' और 'महुअरि' नामक उन्मत्तकारी राग गाया जाने लगा और धतूरा तुरही बजाने लगा । नागेश्वर की चटकीली कली भी उस रागमय वातावरण से ताल मे ताल मिलाकर शख-ध्वनि करने लगी । कमल की पखुड़ियों से रस ला-लाकर भौरे बालक बसत को मधु पिला रहे है । कमलनाल तोड़कर उसे बसत-शिशु की कमर मे सूत समान बाधा गया और केशर ने उसे सिहनख पहनाया । नये-नये पल्लवो की सेज बिछाई गई और उसके सिरहाने तकिया के स्थान पर कदम्ब की माला को रक्खा गया । भ्रमरी पास मे बैठकर झूले का गीत—लोरी—गाने लगी और बसत-शिशु का चन्द्रमुखमण्डल निहारने लगी या शिशु चन्द्रमण्डल को आश्चर्य से देखने लगी । धतूरा और पलाश बच्चे की जन्मपत्री लिख रहे है तथा शुभ राशि और नक्षत्र का विचार कर रहे है । गणिताचार्य कोकिल ने गणित-ज्ञान मे निपुण होने के कारण उस शिशु का नाम बहुत विचारोपरान्त 'बसत' रक्खा ।

फिर शनैः-शनै. बालक बसत युवक हो गया और सारे ससार की ओर बढने लगा अर्थात् भ्रमण-रमण करने लगा । मलयानिल या दक्खिनी पवन उसके शरीर मे किसलय फूलो का रसादि लेकर उबटना करने लगा । उसके गले मे मजरी का अति सुन्दर हार पडा है और बादल ने उसकी आँखो में स्वय काजल लगा दिया । कविवर विद्यापति कहते है कि ऋतुराज बसंत नवयुवतियो को आगे करके इस रसिक रूप मे आया और परम रूपवान राजा शिवसिह को ये सब रूप-रस की कलाएँ अति भाती है, अर्थात् वे कला-मर्मज्ञ है ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे बसत मास का वर्णन है किंतु एक नये ही प्रकार से यह वर्णन किया गया है । बसत का मानवीकरण पहले शिशु फिर रसिक युवक के रूप में किया गया है । बसत के जन्म का दिवस भी कितना महत्त्वपूर्ण रक्खा गया है—"नवम मास पंचम हरुआई ।" ज्योतिष एव चिकित्सा शास्त्र के अनुसार इस दिन का जन्मा बच्चा बड़ा रसिक, स्वस्थ्य एवं सुन्दर होता है और बसंत भी तो आगे इसी रूप मे आता है । बसंत ऋतु के आगमन मे यदि मलयवात चचल हो जाती है तो भूरे-भूरे घन आकाश पर छा जाते है, बसती पुष्प खिल उठते है, जगह-जगह स्त्रियों का मोहक 'महुअरि' एवं 'पीअरि पाँड़रि' प्रचलित राग सुनाई पड़ने लगता है, धतूरा और पलाश मुस्कराते हैं—

मँडराने लगे । सूर्य की किरणे उत्तप्त हो गईं और केसरिया ५
लगे । राजा बसत के बैठने का आसन पिठल-पत्र हुआ और स्व
उनके माथे के ऊपर का छत्र हुआ । आमो की मजरियाँ किरीट तुल्य हु
कोकिला पचम स्वरो मे गाने लगी । मयूरो का झुण्ड नाच करने लगा और
साज छेड़ने लगे तथा पक्षीगण रूपी ब्राह्मण आशिष सूचक मत्र बसत के लिये
आशय है कि पक्षीगण कलरव करने लगे । चँदोवे या वितान से फूलो के रस
लगे और उनको दक्षिणी-पवन से प्यार हो गया अर्थात् पवन के साथ रस-सौर
लगा । कुदबल्ली का वृक्ष ध्वज बन गया और पाटलतून के पत्ते तरकश तथा अ
के पत्ते तीर बन गये । पलाश धनुष बन गया और लौग की लता उसकी प्रत्यचा बन
और यो ये सब एक साथ होकर मिल गये । ज्यो ही बसत राज को इस रूप मे शिशिर-ऋतु ने देखा कि इसकी सेना तितर-बितर हो गई, वह भाग खडा हुआ । अर्थात् जाडा नष्ट हो गया । मधुमक्खियो के समूह से बसत ने लश्कर तैयार किया जिसने शिशिर का सारा अस्तित्व मिटा दिया । फिर बसत ने कमल को बधनमुक्त किया , उसने नूतन प्राण पाए । और प्रतिदान मे उसने अपना नव-पल्लव दल का आसन बसत को विराजने के हेतु प्रदान किया । कविवर विद्यापति कहते है कि वृन्दावन की नई स्थली मे ऋतु-राज रूपी कृष्ण विहार करते है और यही समय उसके बडे महात्मय का है ।

विशेष—बसत को कवियो ने ऋतुराज माना है । सचमुच इस ऋतु मे ऐसा प्रतीत भी होता है मानो कि रूप-रस और शृंगार के अवतार ने इस सृष्टि पर उतरकर उसे रगमय, रसमय और आनदमय कर दिया हो। सर्वत्र एक असीमोल्लास की स्वरलहरी गुजायमान रहती है । हर पुष्प हँसता प्रतीत होता है, पर तरु मधुर बात करता लगता है, सास-सास मे मलयानिल समा जाती है । सौन्दर्य प्रेमी कवियो के लिये इस ऋतु का राजा बसन्त माधव या कामदेव एक ही रूप मे है । प्रस्तुत पद मे विद्यापति ने समस्त शोभा सुषमा के साथ बसतराज के आगमन का सदेश दिया है—मादकता, मनोहरता एव मन्मथता की भाव-व्यजना पद मे प्रधान है । प्रत्येक प्राकृतिक उपकरण को एक न एक ...सी रूप प्रदान किया गया है, जैसे—

"नृप - आसन नव पीठल पात ।
कांचन कुसुम छत्र धरु माथ ।"

यह तो हुआ बसतराज का मुकुट छत्रधारी वेश जो पीठल के पत्र और चम्पक के पुष्प रूपी आसन और छत्र को धारण किये है किन्तु उसके धनुषवाण भी तो विचित्र है—पाटल के पत्ते तरकश, अशोक के पत्ते बाण, पलाश-पत्ते धनुष तथा लवँग-लता प्रत्यचा है । देखिए—

"कुंदबल्ली तरु धएल निसान ।
पाटलतून असोक - दल बान ।

किसुक लवँग-लता एक संग।
हेरि सिसिर रितु आगे दल भंग।"

.ार बसतराज की वाछित विजय भी उपयुक्त ही दिखाई है—

'सिरिसक सबहु कएल निरमूल।"

जयी राजा का कर्म शत्रु का विनाश और शत्रु के द्वारा किये गए त्रस्त जन का .ा होता है। बसतराज शिशिर त्रस्त कमल का उद्धार करते हैं, उसे पुनः विकसित .ाला प्राणदान देते है, देखिए—

"उधारल सरसिज पाओल प्रान।"

ह़ाँ हमे राम के उस प्रसग का स्मरण हो आता है जहाँ उन्होने पाषाणी अहिल्या का उद्धार किया है।

तब कमल ने सत्कार मे अपना सर्वस्व ही दान कर दिया—

"निज नब दल करु आसन दान।"

इस प्रकार इस पद मे बसत ऋतु का वर्णन तो है ही, साथ ही बसंत को यशस्वी राजा का एव अन्य उपकरणो को प्रजा प्रसाधन का रूप देकर विशुद्ध मानवीकरण का भाव प्रकट किया गया है एव सुखद निसर्ग राजसी वातावरण का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है।

प्रकृति के इतिवृत्त रूप वातावरण का चित्रण प्रायः प्रत्येक कवि ने किया है किन्तु उसमे साधारणयिता लाने मे उतनी सफलता जितनी विद्यापति को कही-कही मिली है शायद कम ही कवियो को मिली है। कवि सेनापति इस प्रकार के चित्रण करने में सिद्धहस्त कहे जाते है, उन्ही का एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे वर्णन बसतराज के आगमन सम्बन्धी ही है। अब आप ही विद्यापति के पद के साथ उसे रखकर देखे कि किसका प्रभाव, किसकी शक्ति अधिक है—

"बरन बरन तरु फूले उपबन बन,
सोई चतुरंग सग दल लहियत है।
बंदी जिमि बोलत बिरद बीर कोकिल हैं,
गुञ्जत मधुप गान गुन गहियत है।
आवै आस-पास पुहपन की सुबास सोई,
सोंधे के सुगध माँझ सने रहियत है।
सोभा को समाज, 'सेनापति' सुखसाज, आज,
आवत बसत रितुराज कहियत है।"

शब्दार्थ—आएल=आया। रितुपति=ऋतुराज। धाओल अलिकुल=भौंरों का झुण्ड दौड़ पड़ा। दिनकर=सूर्य। पौगड=गर्म, उष्ण। धएल=धारण किया। हेमदड=स्वर्ण-चमक। नृप-आसन=राज्यासन, राजाओं के बैठने का

आसन। धरु=धारण किया। समुख हि=सामने ही। गाय=गाने लगा। सिखि-कुल=भौरो का झुण्ड। नाचत=नाचने लगा। अलिकुल=भौरो का समूह। द्विज-कुल=पक्षीगण, ब्राह्मण खानदान। सह भेल=साथ हुआ। निसान=झडा, पताका। किंसुक=पलाश। असोक-दल=अशोक के पत्ते। बान=बाण। हेरि=देखकर। सिसिर=शिशिर। मधु-मखिका कूल=मधुमक्खी का समूह। कएल=किया। निरमूल=निर्मूल्य। उधारल=उद्धार किया। सरसिज=कमल। पाओल प्रान=प्राण पाया। निज=अपना। नब=नया। दल=पत्र। करु=किया। कह=कहते हैं। क=का।

(१९६)

नव बृन्दावन नव नव तरुगन
नव नव बिकसित फूल।
नवल बसंत नवल मलयानिल
मातल नव अलिकूल।
बिहरइ नवलकिसोर।
कालिंदी-पुलिन कुंज बन सोभन
नव नव प्रेम-बिभोर।
नवल रसाल-मुकुल-मधु मातल
नव कोकिल कुल गाय।
नवयुवती गन चित उमताअई
नव रस कानन धाय।
नव जुवराज नवल बर नागरि
मीलए नव नव भाँति।
निति निति ऐसन नव नव खेलन
बिद्यापति मति माति।

भावार्थ—'बसत' वर्णनक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

उल्लसित नवीन वृन्दावन है, नए-नए पल्लव प्रस्फुटित विटप है और हैं नए-नए खिले पुष्प! नव बसत, नव मलयानिल और नए-नए मस्त भ्रमरों का दल है। इस सुखद नवल बासती वातावरण मे नव-वयस्क कृष्ण विहार करते है। जहाँ कृष्ण विहार करते हैं उस नूतन प्रेम विभोर कालिंदी तट पर कुज वन शोभायमान हो रहा है। नवल आम्र मंजरी के मधु-सौरभ मे मस्त हुआ कोकिल कुल गा रहा है। मदमस्त बासती वातावरण के कारण नव-रमणियो का हृदय बौराया जा रहा है और काम-शृंगार का नूतन रस उपवन में फैल गया है। युवराज श्री कृष्ण नए हैं, किशोर हैं और नबेली रमणी

भी सुन्दर है—यों दोनो नई-नई प्रक्रिया से मिल रहे हैं। इस प्रकार की नित नूतन प्रणय-लीला और सुखद बसती वातावरण मे कवि विद्यापति की बुद्धि भी बौरा गई है। आशय यह है कि कवि विद्यापति भी नव बसत के नव प्रणयोल्लास मे खो गया है।

विशेष—यहाँ प्रकृति का आलम्बन रूप मे चित्रण बडा मनोमुग्धकारी हुआ है। वैसे भी बसत के वातावरण मे सर्वत्र सुखद दृश्य ही दिखलाई पड़ते है किन्तु विद्यापति ने उनके चित्रण मे एक मीठी ध्वन्यात्मकता पैदा करके पद को हृदयग्राही बना दिया है। "मीलए नव नव भाँति" उक्ति मे मानो समस्त वातावरण का रस निकालकर विकीर्ण कर दिया हो—ऐसा लगता है।

"नव बृन्दावन नव नव तरुगन
नव नव बिकसित फूल।
नवल बसत नवल मलयानिल
मातल नव अलिकूल।"

उक्त पक्तियो मे पहले तो बसत के रम्य वातावरण की स्थापना की गई है और फिर उत्कृष्ट व्यजना से शृ गार के अमर काम-भाव का चचल चित्र चित्रित किया गया है—"मातल नव अलिकूल" पक्ति के द्वारा जिसकी मधुर व्यजना प्रणय-पिपासा की वासना के तार बडी कोमलता से झकृत कर देती है। प्रकृति के मुक्त चित्रण मे प्रणय की ऐसी सूक्ष्म रसाभिव्यक्ति का प्रकाशन विद्यापति ने बड़ी सफलता से किया है, यह दूसरे शृ गारी कवि के लिये इतना सहज कार्य नही।

शब्दार्थ—मातल=मस्त हुआ। अलिकूल=भ्रमरदल। बिहरइ=विहार करते है। नवलकिसोर=नव-व्यस्क श्री कृष्ण। कालिदी-पुलिन=यमुनातट। सोभन=शोभायमान। रसाल=आम्र। बिभोर=आनन्दलीन। उमताअई=बौराया हुआ होना। कानन=उपवन। धाय=दौड जाना, सचरित हो जाना, रस के फैल जाने से आशय है। जुवराज=युवराज श्री कृष्ण से आशय है। बर नागरि=सुन्दरी रमणी राधा से आशय है। मीलए=मिलते है। मति माति=बुद्धि बौरा जाना, बुद्धि का पगला या प्रमत्त हो जाना।

(१७७)

**लता तरुअर मडप जीति।
निरमल ससधर धबलिए भीति।
पउँअ नाल अइपन भल भेल।
रात परीहन पल्लव देल।
देखह माइ हे मन चित लाय।
बसन्त-बिबाहा कानन-थलि आय।**

मधुकरि-रमनी मंगल गाब।
दुजबर कोकिल मंत्र पढ़ाब।
करु मकरंद हथोदक नीर।
बिधु बरिम्राती धीर समीर।
कनम्र किंसुक मुति तोरन तूल।
लाबा बिथरल बेलिक फूल।
केसर कुसुम करु सिंदूर दान।
जम्रोतुक पाम्रोल मानिन मान।
खेलए कौतुक नव पँचबान।
बिद्यापति कवि दृढ़ कए भान।

भावार्थ—'बसत' प्रसग के वर्णनक्रम मे कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद मे लिखते हैं—

बसत के उल्लसित वातावरण के कारण बेलि-विटपो ने मडप को विजय कर लिया। आशय यह है कि बेलि-विटप परस्पर मिलकर ऐसे सघन रूप मे परिणत हो गये है कि मंडप की कोई आवश्यकता ही नही रही, वे स्वय मडप से अधिक शोभाशाली हो गये है। मानो निर्मल चद्र ने स्वय लता-विटप पुज रूपी मडप की भित्ति को स्वच्छ श्वेत (Whitewashed) कर दिया हो। आशय यह है कि बेलि-विटप निर्मित सघन कुज चन्द्रमा की चद्रिका से धवल सुन्दर प्रतीत होता है। कमलनाल के सुन्दर मागलिक चित्र (शगुन के विशेष चित्र जो पृथ्वी पर प्राय गेरू, चावल आदि के मिश्रण से बनाए जाते है) है और पल्लवो ने लाल परिधान पहन लिया है। आशय यह है कि कमलनाल की शोभा विशेष मगल चित्र तुल्य शोभित है और कमल पल्लव लाल परिधान-से भले मोहक लगते हैं। अरी माँ! जरा मन लगाकर देख तो कि प्रकृति-वधू से बसत ब्याह रचाने के लिये उपवन-स्थल मे आ पहुँचा है। विवाह उपलक्ष हेतु भ्रमरी रूपी रमणी मगलगान गा रही है और द्विज श्रेष्ठ रूप कोकिल विवाह का मगल मत्र पाठ कर रहा है। विवाह निमित्त हाथ का सकल्प जल ही पुष्प का पराग है। बरात मे शीतल चन्द्र और मन्द पवन है। धतूरा एव पलाश के पुष्प मुक्ता-तोरण तुल्य हैं। बेली के बिखरे पुष्प मानो विवाह निमित्त छीटे गये धान के बीज या खील है। दूसरा आशय यह भी हो सकता है कि बेली का फूल खील या लावा बिखरा रहा है। केसर पुष्प सिदूर का अर्पण कर रहा है। मानिनी वधू ने दहेज रूप मे मान प्राप्त किया है। कविवर विद्यापति दृढता-पूर्वक कहते है कि यह सब क्रीडा नव कामदेव अथवा बसतराज की ही है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे प्राकृतिक उपमानो—लता, तरुवर, चद्र मधुकरी—आदि के द्वारा बसत रूपी नायक का विवाह-वर्णन किया गया है जिसमे चमत्कार का निर्वाह खूब हुआ है। इस प्रकार कवि ने बसत के प्रफुल्ल प्राकृतिक वातावरण का चित्रण बड़ा

संश्लिष्ट रूप मे किया है। साथ ही विवाह-विधान पूरे सांस्कृतिक ढंग का है। उदाहरण के लिये यह पक्तियाँ पठनीय हैं—

"मधुकरि-रमनी मंगल गाब।
दुजबर कोकिल मंत्र पढ़ाब।
करु मकरंद हथोदक नीर।
बिधु बरिआती धीर समीर।"

प्रकृति-वधू के विवाह का वातावरण तो बडा मधुर मोहक है ही, साथ ही अंत में "जओतुक पाओल मानिन मान" के द्वारा उसे दहेज मे कितना अमूल्य धन दिया गया है—मान ! यहाँ विद्यापति की मौलिक उद्भावना विद्युत की भाँति चमककर चमत्कृत कर देती है।

शब्दार्थ—तरुअर=विटप, पेड। ससधर=चन्द्रमा। धबलिए=श्वेत पोत देना। भीति=भित्ति, दीवार। पउँअ नाल=कमल की नाल, डंडी। अइपन=शुभ उपलक्ष मे बनाया जाने वाला शगुन का विशेष चित्र जो गेरू, चावल आदि के मिश्रण से प्राय: बनाया जाता है। परीहन=परिधान। मन चित लाय=मन लगाकर, ध्यान देकर। बसन्त-बिबाहा=बसत रूपी दूलहा ब्याह हेतु। थलि=स्थल, जगह। मधुकरि-रमनी= भ्रमरी रूपी रमणी। मगल गाब=मगलगान गाती है। दुजबर=द्विज श्रेष्ठ, ब्राह्मण। करु=हाथ। मकरद=पुष्प पराग। हथोदक नीर=हाथ का जल, विवाह का सकल्प जल। बिधु=चन्द्रमा। बरिआती=बरात मे बराती। धीर समीर=मदपवन। कनअ= स्वर्ण, धतूरा। किसुक=पलाश। मुति=मोती। तोरन=तोरण। तूल=समान या तुल्य। लाबा=विवाह का छिला धान या खील। बिथरल=बिखराता है। जओतुक= दहेज। मानिन=नव वधू, मान करने वाली। पँचबान=कामदेव या बसत। दृढ= निश्चय।

(१७८)

नाचहु रे तरुनी तजहु लाज।
आएल बसन्त रितु बनिक राज।
हस्तिनि, चित्रिनि, पदुमिनि नारि।
गोरी सामरी एक बूढ़ि बारि।
बिबिध भाँति कएलन्हि सिंगार।
पहिरल पटोर गृम झूल हार।
केओ अगर चंदन घसि भर कटोर।
ककरहु खोइँछा करपुर तमोर।
केओ कुमकुम मरदाब आंग।
ककरहु मोतिअ भल छाज मांग।

भावार्थ—'बसंत' प्रसग के वर्णनक्रम मे कविवर विद्यापति इस पद में लिखते हैं—

हे तरुणी ! लज्जा त्यागो,नाचो···नाचो क्योकि बसत ऋतु का बसत रूपी वणिक-राज आ गया है। हस्तिनी, चित्रणी एव पद्मिनी जाति की गोरी, काली, वृद्धा और षोडशी बालाओ आदि सभी प्रकार की नारियो ने अनेक प्रकार से शृंगार किया है। रेशमी वस्त्र पहन लिये है और उनकी ग्रीवा मे सुन्दर हार झूलने लगे हैं। किन्ही ने अगर-चन्दन सुगन्धित द्रव्यो को प्रलेपन हेतु कटोरो मे घिसकर भर लिया है और किसी ने अपनी साडी की आँटी या खोइंछा मे वस्त्र से लपेटकर कपूर एव पान रख छोडा है। कोई अपने अंग मे कुकुम का मर्दन करवाती है और किसी की माग मे जडा मोती बड़ा शोभनीय होता है।

विशेष—बसतागमन नारियो के लिये शृ गार का सदेश लेकर आता है। प्राय. सभी जाति की नारियो को जिनका वर्गीकरण काम शास्त्रीयो ने चार वर्गो मे किया है–पद्मिनी, हस्तिनी, सिहनी एव चित्रणी—इस अवसर पर शृ गार करने को कामना जागती है उसी का मनमोहक वर्णन विद्यापति ने यहाँ किया है। पद मे कोई मौलिकता तो नही, ऐसा चित्रण प्राय सभी शृ गारी कवियो ने किया है। जायसी ने तो विशद रूप मे इन चारो जाति की नारियो के काम-सम्बन्धी गुणो-अवगुणो की भी काव्याभिव्यक्ति अपने पद्मावत काव्य मे की है। पर विद्यापति ने 'बूढी' स्त्री को भी शृ गारिणी बनने वाली बात कही है जो विचारणीय है। सभव है कि विद्यापति के युग मे वृद्धा भी बसतागमन पर शृ गारी भावो से प्रेरित होती हो, कौन कहे ? किन्तु—

"हस्तिनि, चित्रिनि, पदुमिनि नारि ।
गोरी सामरी एक बूढ़ि बारि ।"

इन पक्तियो का एक आशय और भी निकलता है कि हस्तिनी, चित्रणी, पद्मिनी, गोरी, काली सभी प्रकार की नारिया बसत के उल्लास रूपी 'बारि' अथवा जल मे डूबी हुई हैं। तब तो बिहारी के इस दोहे की महत्ता सहज सिद्ध हो जाती है—

"बूढ़े अनबूढ़े तरे जेहि बूढ़े सब अंग ।"

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी बसतागमन केवल तरुणियो को ही नही वृद्धाओं को भी पुलकमय एवं सुखमय होता है, सम्भवत. विद्यापति का यही व्यजना करना लक्ष्य हो।

शब्दार्थ—तजहु लाज=लज्जा को छोड़ो। आएल बसन्त=बसंत आ पहुँचा है। बनिक=वणिक, व्यापारी। हस्तिनी, चित्रिनि, पदुमिनि नारी=यह नारियो का रूप, गुणो-अवगुणो एव काम भावों से सम्मत कामाचार्यों ने वर्गीकरण किया है जिसमें पद्मिनी नारी ही सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। सामरी=काले वर्ण वाली। बूढ़ि=वृद्धा या डूबी। बारि=षोडशी बाला या जल। बिबिध=अनेक। कएलन्हि=किया। पहिरल=पहना। पटोर=रेशमी वस्त्र। गृम=गला, ग्रीवा। केओ=किन्हीं। कटोर=कटोरा। ककरहु=किसी ने। खोइँछा=आँटी में नारियां जो वस्तु बांधकर

प्राय कपडा उरस लेती हैं। करपुर=कपूर। तमोर=पान। कुमकुम=कुंकुम। मर-दाब=मलवाया। आँग=शरीर। छाज=शोभित। भल=बडा।

(१७६)

अभिनव पल्लव बइसक देल।
धवल कमल फुल पुरहर भेल।
करु मकरद मदाकिनि पानि।
अरुन असोग दीप दहु आनि।
माइ हे आज दिवस पुनमंत।
करिए चुमाओन राय बसंत।
सपुन सुधानिधि दधि भल गेल।
भमि भमि भमरि हुँकारइ देल।
टेसु कुसुम सिंदुर सम भास।
केतिक - धुलि बिथरहु पटबास।
भनइ बिद्यापति कविकंठहार।
रस बुझ सिवसिघ सिव अबतार।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

बसतराज के विराजनार्थ नव-पल्लव दिया गया। सफेद कमल-पुष्प मंगल कलश बन गया। मकरद (पुष्प-रस) ही गगाजल बन गया और अरुण अशोक वृक्ष ही दीपकाकार हो गया। अर्थात् दीपक बन गया। हे माता! आज का दिन अत्यन्त पुण्यवान है इसलिये ऋतुराज बसत-वर का पवित्र पदार्थो से चुमाओन करो। पूर्ण चन्द्र ही चुमाओन करने वाला पवित्र दधि हो गया है। भ्रमरी बसतोत्सव का सबको घूम-घूमकर आमत्रण दे रही है, टेर रही है। पलाश-पुष्प सिन्दूर तुल्य आभासित हो रहे है। केवडे के परागकण बिखर रहे है और वस्त्रो को सुवासित कर रहे है। कवि-कंठहार विद्यापति कहते है कि साक्षात् शिवम् के अवतार राजा शिवसिह इस शृगार के रस-रहस्य को अच्छी तरह समझते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे बसतराज को वर के रूप मे प्रस्तुत किया गया है और उसके शुभ विवाह का विधान बडे उत्तम ढग से रचाया गया है। प्रकृति का प्रत्येक उपकरण मागलिक उपादान बन गया है। कवि ने इसके लिए बडी अनूठी कल्पना का परिचय दिया है। एक मौलिक कल्पना के आधार पूर्ण चद्र को कवि ने दही का सादृश्य प्रदान किया है जो सूक्ष्म निरीक्षण का श्रेष्ठ उदाहरण भी है। देखिए—

"सपुन सुधानिधि दधि भल गेल।"

इसी भाँति अशोक को दीपक और पुष्प-पराग को गंगाजल और श्वेत कमल को कलश का उपमेय बनाकर बड़ी अनूठी उद्भावना की है—

"करु मकरंद मंदाकिनि पानि ।
अरुन असोग दीप दहु आनि ।।
×　　×　　×
धवल कमल फुल पुरहर भेल ।।"

विशेष बात यह है कि उपमेय के रूप, गुण, रंग और आकार का धर्म साम्य पूरी तरह मिलता है जैसे पूर्ण चन्द्र का कूंडे मे जमे दधि रूप से, बडे श्वेत कमल का कलश से। यह सादृश्यपूर्ण उपमा-अभिव्यक्ति विद्यापति के सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण की साक्षी है।

भारतीय उच्चकुलीन विवाह सस्कार की एक उत्कृष्ट व्यजना बसत रूपी दूल्हे की 'चुमाओन' क्रिया द्वारा प्रकट की गई है। इसमे दही आदि पवित्र पदार्थों को न्योछावर करके वर को आशीर्वाद प्यार का चुम्बन दिया जाता था। यह पंक्ति कवि की धार्मिक एव सास्कृतिक आस्था का पूर्ण प्रकाशन करती है। सभवत. इसी कारण विद्यापति के गीत इतने जनप्रिय हो सके होगे।

शब्दार्थ—अभिनव=नया। बइसक=बैठने के निमित्त। देल=दिया। धवल=सफेद, उज्ज्वल। पुरहर=मगलदायक, वह कलश जो विवाह के मण्डप में रक्खा जाता है। भेल=हुआ। मदाकिनी पानि=गगाजल। अरुन असोग=लाल अशोक। पुनमत=पुण्यवान। करिए=करो। राय बसत=राज बसत। सपुन=सारा। सुधानिधि=सुधाकर, चन्द्रमा। भमि भमि=घूम-घूमकर। हुँकारइ देल=पुकारता है। टेसु कुसुम=टेसु पलाश का फूल। सम=समान। भास=लगता है। केतिक=केतकी। धुलि बिथरहु=धूल मे बिखेरता है। बुझ=जानते हैं, समझते है। सिव=शिव। अबतार=अवतार।

(१८०)

दखिन पवन बह दस दिस रोल।
से जनि बादी भाषा बोल।
मनमथ कॉ साधन नहि आन।
निरसाएल से माननि मान।
माइ हे सीत-बसंत बिबाद।
कओन बिचारब जय-अबसाद.।
दुहु दिस मधथ दिवाकर भेल।
दुजबर कोकिल साखी देल।
नव पल्लब जयपत्रक भाँति।
मधुकर-माला आखर-पाँति।

बादी तह प्रतिबादी भीत।
सिसिर-बिन्दु हो अन्तर सीत।
कुन्द-कुसुम अनुपम बिकसंत।
सतत जीत बेकताओ बसंत।
बिद्यापति कबि एहो रस भान।
राजा सिबसिंघ एहो रस जान।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

दसो दिशा मे इठलाता शोर मचाता हुआ दक्खिनी वातास डोल रहा है जैसे वादी भाषा बोल रहा हो। कामदेव का कोई साधन नही था इसलिए वह (मलयानिल) मानवती रमणियो के मान को खडित कर देता है। अर्थात् उन्हे निराश कर देता है। क्योंकि दक्खिनी पवन का झोका रमणियो को कामातुर करता है, किन्तु उनके पास उनकी काम-वासना को सतुष्ट करने वाला प्रियतम तो होता नही अत उनका मान खडित हो जाता है, वे निराश हो जाती है। हे सइआ ! अब शीत और बसत में परस्पर वाद-विवाद या सघर्ष भी चल पडा है और इसमे कौन विजयी होगा और कौन पराजित, यह विचार कौन करेगा ? इन्ही दोनो के मध्य मे जैसे सूर्य मध्यस्थ न्यायधीश हो गया और ब्राह्मण रूपी कोकिल मामले का गवाह बना। नये पल्लव ही विजय-पत्र (न्याय-पत्र) की भाँति बने और भौरों की टोलियाँ ही उस विजय-पत्र पर लिखी अक्षर-पक्तियाँ बनी। अतत वादी रूपी बसत से प्रतिवादी रूपी शिशिर भयभीत या पराजित हो गया और भागकर शबनमी कणो मे लीन हो गया, छिप गया। कुन्द-कुसुम अपूर्व रूप से विकसित हुए और बसत की चिर विजय की अभिव्यक्ति करने लगे। कवि विद्यापति इस रस के मर्म को समझकर कहते है कि राजा शिवसिह भी इस बासती रस-रहस्य को भली-भाँति जानते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे बसत को वादी और शिशिर को प्रतिवादी का रूप दिया गया है और अततः वादी की विजय और प्रतिवादी की पराजय उचित ही दिखलाई गई है। सूर्य को मध्यस्थ या जज एवं कोकिल को गवाह बनाया गया है जो वैसे भी शिशिर एव बसत के अतर को ऋतु वातावरण के माध्यम से व्यक्त करते हैं—यहाँ कवि का प्रकृति प्रभाव निरीक्षण का भाव बडी उत्कृष्टता से अभिव्यजित हुआ है। न्याय-पत्र को बसत की विजय-पक्ष के अनुरूप ही "नव पल्लब" को बताया गया है और उनपर मँडराते भौरो की टोली को कहा गया है "आखर-पाँति" अक्षरों की पक्तियाँ ! यहाँ चमत्कार-प्रदर्शन कितना सूक्ष्म एव चित्रवत् है ! कल्पना करके ही एक दृश्य नयनो के पटल पर चित्रित हो जाता है मानो कमलमय भौरो को ... स्थित हो और पास मे बसत खड़ा मुस्करा रहा हो। प्रकृति सौन्दर्य का ... कमल को किंतु मानवीकरण का यथार्थ आधार लेकर वर्णन करने में प्रायः कम

सफलता मिल पाती है, किंतु विद्यापति की कलम कहीं कुण्ठित हुई नही लगती, यहाँ उनके महान् चित्रकार कवि होने का स्पष्ट प्रमाण कहा जाएगा।

शब्दार्थ—दखिन पवन=दक्षिण की हवा। रोल=घूमकर। से जनि बादी=वह जन वादी। मनमथ काँ=कामदेव को। आन=और, अन्य, दूसरा। निरसाएल=नीरस, अर्थात् बेरस का कर दिया। मधथ दिवाकर=मध्यस्थ सूरज। भेल=हुआ। कओन=कौन। बिचारब=विचार करेगा। साखी=गवाही। देल=दिया। नव पल्लब=नया पत्ता। जयपत्र=विजय-पत्र। क=के। आखर=अक्षर। पाँति=पंक्ति। भीत=पराजित। वेकताओ बसत=बसत की अभिव्यक्ति। अनुपम बिकसंत=अपूर्व विकास।

(१८१)

अभिनव कोमल सुन्दर पात।
सबारे बने जनि पहिरल रात।
मलय-पवन डोलय बहु भाँति।
अपन कुसुम रस अपने माति।
देखि देखि माधब मन हुलसंत।
बिरिदावन भेल बेकत बसंत।
कोकिल बोलय साहर भार।
मदन पाओल जग नब अधिकार।
पाइक मधुकर कर मधु पान।
भमि-भमि जोहए मानिनि-मान।
दिसि दिसि से भमि बिपिन निहारि।
रास बुझाबए मुदित मुरारि।
भनइ बिद्यापति ई रस गाव।
राधा-माधव अभिनव भाव।

भावार्थ—'बसंत' का वर्णन करते हुए प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते

नये-नये, कोमल-कोमल, सुन्दर-सुन्दर पत्ते ऐसे प्रतीत होते है जैसे सारे वन ने वस्त्र धारण कर लिये हो। बहुत प्रकार—शीतल मद चाल—से दक्षिणी हवा और पुष्प अपने ही रस-सौरभ से आप ही मतवाला हो रहा है। यह देख-देखकर कामदेव का मन हुलसित हो उठा और यो व वृन्दावन मे प्रकट हो गये। आम्र-शाखों पर बैठकर मीठी बोली बोलने लगी। मानो कामदेव ने ससार नव अधिकार प्राप्त कर लिया हो। भौरा रूपी दूत—आशय है रसिक जन—फूलों—अर्थात् रमणियो का—मधुपान करता है और घूम-घूमकर माननीयों का मान

खोजता-ताकता फिरता है। वह चारो ओर घूमकर वन की शोभा का अवलोकन करता है और कृष्ण परम प्रसन्न होकर रासलीला का मजा लूट रहे हैं। कवि-वर विद्यापति इस रस को गाकर कहते हैं कि राधा और कृष्ण के भीतर नये प्रणय-भावों का सचार हुआ है।

विशेष—बसत मे समस्त वनराजि नूतन अरुण पल्लव-परिधान से आवेष्टित हो जाती है, उस समय का मनोरम शब्द-चित्र इन पक्तियो मे सजीव किया गया है—

"अभिनव कोमल सुन्दर पात।
सबारे बने जनि पहिरल रात।"

रमिक जन भौरे की भाँति प्रफुल्लित वन मे कुसमु-बदनाओं का रसपान करने की ताक और खोज मे फिरता है और जहाँ उसे अवसर मिला कि उसने आनद-रस लूटा। इसी मनोभावना की अभिव्यक्ति ये पक्तियाँ पूर्णत करती है—

"पाइक मधुकर कर मधु पान
भमि-भमि जोहए मानिनि-मान।"

यहाँ 'मधुकर' एव 'मानिनि-मान' दोनो शब्दो का प्रयोग रति-रस से परिलिप्त है। अतत: 'राधा-माधव' शब्द नायक-नायिकाओं के सभोग-शृंगारी भावो का समर्थन करते हैं। बसत के वातावरण मे सारा ससार कामानुभूति से अभिभूत हो जाता है, इस मनोभाव की वैदग्ध्यपूर्ण व्यंजना इस पंक्ति मे बडी उत्कृष्टता से हुई है—

"मदन पाओल जग नब अधिकार।"

सम्पूर्ण पद मे शृ गार के भावानुभाव प्रभावपूर्ण रूप मे व्यक्त हुए है।

शब्दार्थ—अभिनव=नूतन। सुन्दर पात=सुन्दर पत्ता। सबारे=सारे। बने=बनने। पहिरल=पहना। मलय-पवन=दक्षिणी पवन। बहु भाँति=बहुत प्रकार से। हुलसत=हुलसित होना। बिरिदावन=वृन्दावन। भेल=हुआ। बे[illegible]=[illegible] मदन=कामदेव। पाओल=पाया। भमि-भमि=घूम-घूमकर। जोहए=ढूंढे करे। मानिनि=मानवती। बिपिन=वन। निहारि=देखकर। मुदित मुरा[illegible] हर्षित कृष्ण। अभिनव=नया, नूतन।

(१८२)

चल देखए जाऊ रितु बसंत।
जहाँ कुंद-कुसुम केतकि हसंत।
जहाँ चंदा निरमल भमर कार।
जहाँ रयनि उजागर दिन अँधार।
जहाँ मुगुधलि मानिनि करए मान।
परिपंथिहि पेखए पँचबान।

भनइ सरस कवि-कंठ-हार ।
मधुसूदन राधा बन बिहार ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

चलो, चलकर ऋतुराज बसत का वातावरण देखे। जहाँ कुद और केतकी के फूल बिहँस रहे है, जहाँ निर्मल चन्द्रमा और काले भौरे है। जहाँ की रात उजली है और दिन अधकार-युक्त! अर्थात्-श्वेत पुष्प और चाँद-सितारो से रात्रि प्रकाशित है और अधिक हरियाली एव लताओ से बोझिल दिन अधकारयुक्त। जहाँ मुग्धामस्त, मानवती रमणियाँ मान करती हैं, जहाँ कामदेव अपने विरोधियों को हेर रहा है, उन पर संहार-मयी नजर डाल रहा है। शृगार-रस के श्रेष्ठ कवि विद्यापति कहते हैं कि ऐसे मत्त-अवसर मे राधा और कृष्ण जी भर कर स्वच्छन्दता से वन मे विहार-रस लूट रहे हैं।

विशेष—प्रस्तुत पद मे बसत के उन्मादकारी वातावरण का चित्रण बड़े मर्म-स्पर्शी रूप मे किया गया है। उसका प्रत्येक उपकरण मानो रसिको के हृदय मे समाकर उनकी सुषुप्त वासना के तार झकृत कर रहा है। सभावन (Fancy) का उत्कृष्ट कौशल और उसकी अभिव्यक्ति इन पक्तियो मे दर्शनीय है—

"जहाँ चदा निरमल भमर कार।
जहाँ रयनि उजागर दिन अँधार।"

रात मे अँधियारी होती है और दिन मे उजियाली होती है, यह निसर्गगत बात है। किन्तु विरोधाभास के द्वारा इसके विपरीत "जहाँ रयनि उजागर दिन अँधार" कह-कर कवि ने रात-दिन के रसमय वातावरण की अनूठी सृष्टि कर डाली है। रात इसलिए अँधियारी नही क्योकि निर्मल चन्द्र रूपी नायक उससे अभिसार कर रहा है और दिन इस-लिए अँधियारा है क्योकि उन्माद रूप काले भौरे उसपर छाए हैं और लताओं की सघन मिलन छाया मे वह लीन है। इस प्रकार इन दो पंक्तियो मे अलकार, कल्पना-भावना और अभिव्यजना की समन्वित उत्कृष्टता प्रतिपादित कर दी गई है। पद के शब्द-शब्द से शृंगार-रस का सागर छलक रहा है। ऐसे वातावरण मे कामदेव का उन्मुक्त अस्तित्व स्थापित होता है और मानो वह जग के आदर्श विरोधियो को अपने पचबाण लिये परा-जित करने की दृष्टि से हेरता है—इस सत्य की सूक्ष्म सुन्दर अकाट्य एवं आह्लादकारी व्यंजना मे यह पक्ति बेजोड़ है—

"परिपंथिहि पेखए पँचबान।"

शब्दार्थ—चल देखए=चलो देखने। रितु=ऋतु। केतकि=केवड़ा। हसंत=बिहँसते हुए। निरमल=निर्मल, स्वच्छ। कार=काला। उजागर=उजाला, चमत्कार-पूर्ण। अँधार=अधकारपूर्ण। मुगुधलि=मुग्धा। मानिनि=मान करने वाली। पेखए=भेजता है। पँचबान=अनग, कामदेव।

(१८३)

मधुरितु मधुकर पाँति ।
मधुर कुसुम मधुमाति ।
मधुर बृन्दाबन माँझ ।
मधुर मधुर रससाज ।
मधुर जुबति जन संग ।
मधुर मधुर रसरंग ।
मधुर मृदंग रसाल ।
मधुर मधुर करताल ।
मधुर नटन - गति भंग ।
मधुर नटनी नट संग ।
मधुर मधुर रस गान ।
मधुर बिद्यापति भान ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

अहा ! कितना सुन्दर दृश्य है—ये मधुऋत, ये भौरो की स्वच्छन्द टोलियाँ और ये मधुर मद-मत्त मन को हरने वाले फूल ! मन को लुभाने वाले ऐसे मधुर-मधुर रस-उपकरण इस वृन्द-वन मे मौजूद है। मनहर युवतियो के साथ ये काम-क्रीड़ा-कलाप, ये रस-रंग हो रहे है। ये रसयुक्त मधुर मृदग एव ये मधुर करताल की वाद्य ध्वनि हो रही है; मधुर भावभंगी के साथ ये मनहर नट और मधुर नटनी के सग मे उसका मधुर नर्त्तन ! सभी ओर ये मधुर-मधुर रस का गान हो रहा है, जिसको मधुर कवि विद्यापति भलि-भाँति समझते है। अर्थात् कविवर विद्यापति कहते है कि ये सारा वातावरण ही राग-रस-रग से अनुप्राणित हो रहा है।

विशेष—संभोग-शृगार को जाग्रत करने वाले उपकरणों का इस पद मे वर्णन विशेष है। समस्त वातावरण के प्रति एक सहज आकर्षण की व्यजना सफल हो सकी है। जैसे सारा वातावरण ही मुखरित होकर नृत्यरत हो रहा हो, ऐसा प्रतीत होता है। वृन्दावन की कलित क्रीडामयी स्थली को कवि ने यहाँ रागरजित कर दिया है। कवि ने सुखद वृन्दावन स्थली की आसक्ति इस पक्ति मे प्रभावशाली ढग से की है—

"मधुर बृन्दाबन माँझ ।
मधुर मधुर रसराज ।"

कवि के रागानुग प्रेम-भाव का प्रदर्शन प्रकटीकरण ही इस पद मे प्राधान्य रहा है। यहाँ सभोग-शृगार उद्दीपन पक्ष जैसा मुखरित हो गया है।

शब्दार्थ—मधुरितु=बसत ऋतु। पाँति=टोली। मधुमाति=रस से भरे हुए। माँझ=मध्य, बीच। रससाज=रसमय वाद्य-यत्र। जुबति=युवती। रस-रंग=क्रीड़ा-कलाप। रसाल=रसपूर्ण। करताल=करताल, एक प्रकार का वाद्य-यंत्र।

(१८४)

बाजत द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया ।
नटति कलावति माति श्याम संग
कर करताल प्रबन्धक ध्वनिया ।
डम डम डफ डिमिक डिम मादल
रुनु झुनु मजीर बोल ।
किंकिनि रनरनि बलआ कनकनि
निधुबन रास तुमुल उतरोल ।
बीन, रवाब, मुरज स्वरमंडल
सा रि ग म प ध नि सा बहु निधि भाव ।
घटिता घटिता धुनि मृदग गरजनि
चचल स्वरमडल करु राव ।
श्रम भर गलित लुलित कबरीयुत
मालति माल बिथारल मोति ।
समय बसत रास-रस वर्णन
बिद्यापति मति छोभित होति ।

भावार्थ—'बसत' वर्णन के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

बसतोल्लास मे दिग्-दिग धम-धम के साथ बाजे बज रहे है । मस्त हो-होकर कलावन्ती नारियाँ कृष्ण के साथ मे नृत्यरत होती हैं । उनके हाथों से करताल की सधी-बधी ध्वनियाँ उद्भूत हो रही है । डम-डम डफ एव डिमक डिम ढोल-डंफ के तथा रुन-झुन-रुनझुन मजीर के बोल उठ रहे है । किंकिणी की रणन-रणन एव कगन के खन-खन स्वर गुजायमान हो रहे हैं । यो मधुवन मे रति-रास-क्रीड़ा बडे उल्लास-उत्साहपूर्वक चल रही है, जिसकी तुमुल-तरल स्वरलहरी श्रवणगोचर हो रही है । वीणा, रवाब या सारंग, मुरुज का सा रे गा मा पा धा नी का सम्मिलित स्वरमडल तरगित भावों की बहुल राशि लुटा रहा है । आशय है कि सगीत का असीमित अखड कोष बिखर रहा है—स्वर-स्वर से, वाद्य-वाद्य से ।

घटिता-घटिता की ध्वनि से मृदग गूंजता-गरजता है । और चचल स्वरमंडल-वाद्य से मधुर स्वर उद्भूत हो रहा है । वाद्य वादन की मेहनत और तन्मयता में वादकों—नायक-नायिकाओं—के पसीने से भीगकर उनके केश चचल होकर बिखर गए हैं और मालती की माला मोती बिखराती है । बसत काल के रास-रस-वर्णन में कवि विद्यापति लिखते हैं कि उनकी बुद्धि भी चलायमान हो गई है, वह भी मुग्धावस्था में लीन हो गए हैं ।

विशेष—प्रस्तुत पद के शब्द-शब्द में ताल तल और अनुप्रास का मिठास बिकीर्ण

होता है। ब्रज की रासलीला का जो उन्माद, जो रस जो आह्लाद रहा है उसी की ललित अभिव्यक्ति करना यहाँ कवि का ध्येय है। संगीत की दृष्टि से उनका यह पद उत्कृष्ट है। कवि सगीत का मर्मज्ञ है अतः उसके रागमय स्वर यो फूट पडे है—

"बीन, रवाब, मुरज स्वरमंडल
सा रि ग म प ध नि सा बहु निधि भाव।"

यहाँ 'बहु निधि भाव' उक्ति से यह प्रकट होता है कि कवि का संगीत शास्त्रीय ज्ञान प्रौढ था। सगीत की तल्लीनता का बोध होता है इन पक्तियो मे—

"चचल स्वरमडल करु राव।
स्रम भर गलित लुलित कबरीयुत
मालति माल बिथारल मोति।"

रास-वर्णन का सजीव स्वरसयुत प्रकाशन इस पद की बड़ी विशेपता है।

शब्दार्थ—द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया=बाजो के स्वर। नटति कलावति=कलावत नारियाँ नाच रही है। माति=मस्त। कर करताल=हाथ के करताल वाद्य। प्रबन्धक ध्वनिया=सधी-बधी आवाज़े, आशय मधुर ध्वनियो से है। डंफ=एक ढोल जैसा स्वर करने वाला वाद्य विशेष, डफरा। मादल=डफ का सगी समान वाद्य। बलआ=वलप, कगन। निधुबन=मधुवन पाठान्तर हो सकता है। राव=स्वर। स्रम=श्रम। गलित=भीगी हुई। स्वरमडल=एक वीणा जैसा वाद्य। छोभित=चलायमान।

(१८५)

रितुपति-राति रसिक रसराज।
रसमय रास रभस सस माँझ।
रसमति, रमनि-रतन धनि राहि।
रास रसिक सह रस अवगाहि।
रंगिनि गन सब रंगहि नटई।
रनरनि कंकन, किंकिन रटई।
रहि-रहि राग रचय रसवत।
रतिरत रागिनि रमन बसंत।
रटति रवाब महतिक पिनास।
राधारमन करु मुरलि बिलास।
रसमय विद्यापति कबि भान।
रूपनारायन भूपति जान।

भावार्थ—'बसत' वर्णन के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति यहाँ लिखते हैं—

मधुर बसत रसिक जनो का राजा है। वह रसमय रास करने मे ही रमण करता है। आशय यह है कि ऋतुराज रूपी कृष्ण रास के मिस गोपी नायिकाओ से रमण भी

कर लेते हैं। रसीली रमणियों में श्रेष्ठ रत्न जैसी सुन्दरी राधा रास के रसिक श्री कृष्ण के सग रस में अवगाहन कर रही हैं, सहवास में लीन हो रही हैं। समस्त रमणियाँ रंगमय क्रीडा या सह नृत्य करती है और नृत्याभिसार मे लीन होने के कारण उनके ककण और किंकिणियाँ मधुर ध्वनियाँ करती है। शनैः-शनैः रसिक बसत रसमय राग प्लावित करता है, रचता है और रगिनि प्रकृति के साथ रमणरत होता है। रवाब, श्रेष्ठ वीणा (महतिक) और पिनास वाद्य-यत्र स्वरसयुत है, बज रहे है और राधा के साथ रमण करने वाले प्रियतम श्री कृष्ण मुरलीवादन करते हैं। रसलीन कविवर विद्यापति कहते है कि इस शृंगार-रस-रहस्य की माया को रूपनारायण राजा शिवसिह भली-भाँति जानते है आशय है कि इसी लिए तो मै उन्हे गाकर सुना रहा हूँ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे पूर्व पद की भाँति ही सगीत रास का वर्णन है किन्तु भाव-पक्ष की दृष्टि से यह पद वैसा नही बन पडा। हाँ, सपूर्ण पद मे 'रकार' की शृंखलित आवृत्ति उसके लालित्य को पुष्ट करती है और अनुप्रास की छटा को उदाहरणीय बनाती है। देखिए—

"रहि-रहि राग रचय रसवत।
रतिरत रागिनि रमन बसंत।"

सभोग-शृगार का उद्दीपन पक्ष यहाँ सफलता के साथ प्रकट है। सगीत कला की दृष्टि से यह पद उत्कृष्ट कोटि का है। विलास के वातावरण का चित्रण पद की पंक्ति-पक्ति से प्रतिध्वनित होता है, देखिए—

"रहि-रहि राग रचय रसवंत।
रतिरत रागिनि रमन बसंत॥"

शब्दार्थ—राति=मधुर से आशय है। रभस=रमण। रसमति=रसीली। रमनि-रतन धनि राहि=रमणियो मे रत्न जैसी सुन्दरी राधा। रास रसिक=रास के रसिक श्री कृष्ण। सह=सग। रस अबगाहि=रस मे उतरना, अभिसार करने से आशय है। रगहि नटई=रगमय क्रीड़ा या नृत्य करती है। रहि-रहि=धीरे-धीरे। महतिक= एक श्रेष्ठ बड़ी वीणा। पिनास=एक वाद्य-यत्र। राधारमन=राधा के साथ रमण करने वाले प्रियतम श्री कृष्ण। मुरलि बिलास=मुरलीवादन करने से तात्पर्य है। रटति= आवाज करते हैं।

(१८६)

मलय पवन बह। बसंत बिजय कह॥
भमर करइ रोर। परिमल नहि ओर॥
रितुपति रँग हेला। हृदय रभस भेला॥
अनंग मंगल मेलि। कामिनि करथु केलि॥
तरुन तरुनि संगे। रयनि खेपबि रगे॥

बिहरि बिपदि लागि। केसु उपजल आगि ॥
कवि बिद्यापति भान। मानिनि जीवन जान ॥
नृप रुद्रसिंह बरु। मेदिनि कलपतरु ॥

भावार्थ—'बसत' वर्णन के प्रसंगक्रम में कविवर विद्यापति लिखते हैं—

मलयानिल इठलाता चलता हुआ बसत विजय का सदेश कहता है। भ्रमर हर्षोन्मत्त होकर गुजार कर रहे हैं और पुष्प का सौरभ बेहद छाया हुआ है। आशय यह कि भ्रपरगण वन-उपवन मे बेहद सुगध का पान कर गुजार कर रहे है। बसंत ने उन्माद का रंग छिडक दिया है अत: हृदय मे कामदेव विहरण कर उठा है या हृदय उल्लसित हो उठा है। मुदमगलकारी कामदेव से मिलन हुआ है अत: अब रमणियाँ रति-क्रीडा करें, वे स्वतत्र है। पर तरुण-तरुणियो के इस रति-रग-सग मे हाय, रगीन रात व्यतीत हो जायगी या रात बितायेंगे—काम-विहार के सुखद अवसर पर यह दु खद भावना विघ्न डाल गई, एक ज्वाला जल उठी।

कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे मानिनी ! इस क्षणिक जीवन की रसमय महत्ता को जानकर, अनुभव करके पृथ्वी के कल्पतरु रूप राजा शिवसिह को अपना बनाओ, उनसे प्यार करो, रस दो-लो !

विशेष—यौवन रूपी बसत का रास रग पुन -पुन: प्राप्त होने वाला नही होता उसके अल्प सुख के भोग मे ही जीवन की सार्थकता है अन्यथा जीवन क्षणभंगुर तो है ही, देखिए—

"ये जीवन तम का डेरा है केवल इसमें लौ का नर्तन
ये चन्द्र बदन, ये मधुर मिलन, ये रूप मिलन, ये आलिंगन
लौ झिलमिल झिलमिल जलती हो,
सकेत मिलन, का करती हो,
परवाना उसपर जले नहीं यह बात असम्भव लगती है।

(लेखक की रचना से)

कविवर विद्यापति ने क्षणिक जीवन के क्षणिक रति-विलास का महत्त्व इन पक्तियो मे मर्मस्पर्शी ढग से व्यक्त किया है—

"बिहरि बिपदि लागि। केसु उपजल आगि ॥
कवि बिद्यापति मान। मानिनि जीवन जान ॥"

"जीवन जान" शब्दो मे जीवन के सुखभोग की महत्ता जैसे खीच कर रक्खी गई है। जीवन की पिपासा और कामदेव के मगलस्वरूप की आराधना की अभिव्यजना करना विद्यापति के कवि की कविता का धर्म रहा और यो उनकी कविता मे जीवन का रस ही रस है !

शब्दार्थ—भमर=भ्रमर। करइ रोर=हर्षोत्फुल्ल होकर गुजार करता है।

परिमल=सौरभ। नहि ओर=सीमा नही है, अपरिमित है। रितुपति=ऋतुओ का राजा बसत। रभस=विहरण करना। अनग मगल=शुभ कामदेव। करथु=करें। केलि=काम-क्रीडा। रयनि=रात। खेपबि=बितायेगे। रगे=काम-क्रीडा में। बिहरि=विहार में। बिपदि=विपत्ति, यहाँ विघ्न की आशका हो जाने से आशय है। उपजल आगि=ज्वाला जल उठी। जीवन जान=आशय है कि क्षणिक जीवन के रसानुभव के महत्त्व को जानो। कलपतरु=कल्पतरु।

विरह

(१८७)

सखि हे बालम जितब बिदेस।
हम कुलकामिनि कहइत अनुचित
तोहहुँ दे हुनि उपदेस।

ई न बिदेसक बेलि।
दुरजन हमर दुख न अनुमापब
ते तोहे पिया लग मेलि।

किछु दिन करथु निबास।
हम पूजल गे सेहे पए भुंजब
राखथु पर - उपहास।

होयताह किए बध-भागी।
जहि खन हुन मन जाएब चितब
हमहु मरब धसि आगी।

बिद्यापति कबि भान।
राजा सिबसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमान।

प्रसंग-संकेत—कविवर विद्यापति शृगार के श्रेष्ठतम कोटि के कवियो मे अपना सर्वोच्च स्थान पाए हुए कवि हैं। शृंगार के दो पक्ष होते है—संभोग एव विप्रलम्भ। सभोग-शृ गार-वर्णन प्राय: नारी के नखशिख एव कुछ स्थूल मनोभावो तक ही सीमित होता है। कवि की महाप्राण अनुभूति का प्रकाशन विप्रलम्भ शृंगार मे ही हुआ करता है। वियोग वास्तव मे सच्चे प्रेम की कसौटी है। प्रकृति का प्रत्येक उपकरण कवि के लिये उसकी विप्रलम्भ भावना का एक मात्र प्रेरक उपकरण बन जाता है। वह उसमे विराट् वेदना की झांकी पाता है। सूरज, चाँद, तारे, वायु, हिम, बेलि-विटप, पशु-पक्षी—सभी मे वह अपनी प्रणय-वेदना की अनुभूति पाता है और इस प्रकार उसकी अभिव्यक्ति मे देशकाल की सीमा का व्यवधान नही रहने पाता, वह अनतकाल के प्राणों मे गूंजने वाली भावना मुखरित करता है—तभी तो सूर को गोपियो की निसदिन बरसने वाली आँखों के अश्रु से आज भी हमारा हृदय भीग-भीग उठता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विप्रलम्भ शृंगार की अनुभूति का क्षेत्र व्यापक है। उसकी अभिव्यक्ति अनंत है। प्रस्तुत

प्रसंग के अंतर्गत कविवर विद्यापति ने एक विरहिणी प्रेमिका का मर्मस्पर्शी रूप-चित्रण, भाव-चित्रण एव पीर-चित्रण किया है। भ्रमरगीत प्रसग के अंतर्गत सूरदास,नददास आदि कवियो ने भी गोपिकाओं की मनोव्यथा का ऐसा ही विरहजन्य चित्रण किया अवश्य है किंतु वहाँ भक्ति-भावना के सम्बन्ध-निर्वाह मे गीतितत्त्व की सागिकता कही-कही उखड़ी-सी लगती है, दूसरे उस विरह मे सारी गोपिकाएँ शरीक है अतः प्रेम सम्बन्ध का विशेपोन्मुख प्रवाह इतना तीव्र नही जितना विद्यापति के इस 'विरह' प्रसग के अंतर्गत प्रतीत होता है। कृष्ण-वियोग और विरह का वर्णन तो यहाँ है ही, साथ ही एक सामान्य विरहिणी या नायिका के मर्म की बहुत सी सहज भावनाएँ भी यहाँ मार्मिक ढग से प्रकट हुई है। सहज मनोभावो एव विरह-विदग्ध की सीधी अभिव्यक्तियो का प्राचुय विद्यापति के इस प्रसग को बड़ा उत्कृष्ट बना देता है, जैसे—

"आसक लता लगाओल सजनी
नयनक नीर पटाय।
से फल अब तरुनत भेल सजनी
आँचर तर न समाय।"

वास्तव मे विरह-वर्णन मे कविवर विद्यापति सूर, मीरा, नददास, बिहारी आदि महान् कवियो से पहले भी हुए है, सफल भी एव उनके आदर्श भी। यह बात इस प्रसग से पुष्ट होगी।

भावार्थ—राधा सखी से कहती है कि हे सखी! प्रियतम श्री कृष्ण विदेश—मथुरा—जीतने के लिये जायेगे। मै तो कुलकामिनी हूँ, अत उनसे न जाने का आग्रह करूँ, यह बात मेरे लिये बडी अनुचित है। तो फिर मै तुझ से विनय करती हूँ कि तू ही उन्हे न जाने का अनुरोध-उपदेश कर दे। यह विदेश जाने की वेला नही है। दुष्ट जन मेरे हृदय के क्लेश का अनुमान नही लगा सकते। इसलिए ही मैं तुझे प्रियतम कृष्ण के पास समझाने-बुझाने भेज रही हूँ। तू जा कर कहना कि वे कुछ दिन यहाँ और ठहरे। मैंने जो काम की आराधना की है उसका फल भोगूंगी ही अर्थात् अतत: मैं प्रणय किये की बदनामी का फल तो पाऊँगी किंतु इस समय तो मरी दशा उनके प्रस्थान करने के कारण बडी विपम है। अत. वे अभी न जाये और इस वर्तमान लोक-उपहास से मेरी रक्षा कर लें। अन्यथा वे जायेगे तो वे मेरी हत्या करने के भागी होगे—मैं आत्महत्या कर लूंगी। जिस क्षण वे यहाँ से प्रस्थान करने की मन मे सोचेगे मैं भी तत्क्षण आग मे धँस-कर जल मरूँगी। कविवर विद्यापति लिखते हैं कि लखिमादेइ के पति रूपनारायन राजा शिवसिह को सुनाने के लिए मैंने यह पद लिखा है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे सम्भावित विरहजन्य क्लेश की भावना का प्रकाशन बड़े मर्मस्पर्शी ढग से हुआ है जिसके लिए विशेषत. यह पंक्ति पठनीय है—

"जेहि खन हुन मन जाएब चितब
हमहु मरब धसि आगी।"

इन पंक्तियों मे जैसे अबला जीवन की करुण कहानी हिचकी लेकर दम तोड़ रही है।

शब्दार्थ—बालम=सजन। जितब=जायेगे, जीतेगे। बिदेस=अन्य देश, मथुरा से तात्पर्य है क्योकि श्री कृष्ण वही गए थे। कुलकामिनि=कुलवधू, क्योकि राधा विवाहित थी, पर कृष्ण की परकीया भी। कहइत अनुचित=कहने मे जो उचित नहीं, लोक-मर्यादा के प्रतिकूल हो। तोहहुँ=तू भी, आशय तू ही से है। हुनि=उन्हे, श्री कृष्ण को। उपदेस=सीख,उपदेश,यहाँ अनुरोध करने से तात्पर्य है। ई=यह। न बिदेसक बेलि =विदेश जाने की वेला या समय नही। करथु=करे। निबास=ठहरे से तात्पर्य है। पूजल=आराधना। जे=जिसको, कामदेव को। पए भुजब=भोग पाऊँगी, फल भोगूँगी से आशय है। राखथु=रक्षा करे। पर-उपहास=दूसरो की हँसी, लोक-उपहास। होयताह=होएँगे। बध-भागी=हत्या के भागीदार। जेहि खन=जिस क्षण। हुन=उनके। जाएब चितब=जाने का विचार करेगे। धसि आगी= आग मे धँसकर, जलकर।

(१८८)

माधब, तोहें जनु जाह बिदेस।
हमरो रंग रभस लए जएबह
लएबह कोन सँदेस।
बनहि गमन करु होएति दोसर मति
बिसरि जाएब पति मोरा।
हीरा मनि मानिक एको नहि माँगब
फेरि माँगब पहु तोरा।
जखन गमन करु नयन नीर भरु
देखहु न भेल पहु ओरा।
एकहि नगर बसि पहु भेल परबस
कइसे पुरत मन मोरा।
पहु संग कामिनि बहुत सोहागिनि
चन्द्र निकट जइसे तारा।
भनइ विद्यापति सुनु बर जौबति
अपन हृदय धरु सारा।

भावार्थ—'विरह' प्रसग के वर्णनक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

राधा रिरियाकर कह रही है कि हे कृष्ण ! तुम विदेश (मथुरा) को मत जाओ। देखो, मेरी रति-सुख, विलास-क्रीड़ा को छीन ले जाकर भला वहाँ से क्या सुखदायक संदेश या उपहार लाओगे ? आशय यह है कि मुझे रोती छोड़कर जाओगे और फिर वहाँ

से भला क्या खुशी लेकर लौटोगे ? वन मे प्रवेश करते ही तुम्हारी मति परिवर्तित हो जायगी और मेरी याद भी तुम्हे न आएगी, मुझे भूल जाओगे। हीरा, मणि, माणिक्य इनमे से एक की भी मैं याचना-कामना नही करती इनके बदले मे बस मैं तो, हे प्रियतम, तुम्हे ही माँगती हूँ। तुम जिस क्षण प्रस्थान करने लगोगे कि मेरी आँखे अश्रु-जल से भर जायेगी और मैं, हे प्रियतम, तुम्हारी ओर देख भी न पाऊँगी। जब एक ही नगर में बस-कर भी तुम परवश हो गए हो कि विदेश जाने को तत्पर हो तब मैं अपने मन को कैसे पतिआऊँ कि वहाँ तुम मेरे ही रहोगे, इसका मेरे मन को तो विश्वास नहीं होता। फिर हे प्रियतम, तुम्हारे साथ वहाँ तो बहुत सी कामिनिये और सुहागिनें इस प्रकार से रहेगी जैसे चन्द्रमा के निकट तारिकाएँ रहती है। आशय यह है कि ऐसी स्थिति मे तुम अन्य कामिनियों के निकट भला मुझे क्यो याद करोगे ? निदान, कविवर विद्यापति कहते है कि हे सुन्दरी, मेरी बात सुनो कि अपने हृदय मे तुम धैर्य धारण करो, तुम्हारे कृष्ण किसी अन्य रमणी के नही हो सकते। वह तुम्हारे है, तुम्हारे रहेगे।

विशेष—इस पद मे नारी हृदय की भावुकता और विरह-पीर का वर्णन स्वाभाविकता से हुआ है। विदा की वेला मे नारी का पुरुष को दुःख का प्रदर्शन, उसकी विवशता एव दर्द का प्रकाशन इन पक्तियो मे बडा करुणाजनक हुआ है—

"हीरा मनि मानिक एको नहि माँगब
फेरि माँगब पहु तोरा।
जखन गमन करु नयन नीर भरु
देखहु न भेल पहु ओरा।"

श्री कृष्ण अनेक रमणियों को आकर्षक थे। उनके लिए वे ऐसे थे जैसे चन्द्रमा और वे थी ऐसी जैसे उस चन्द्र के निकट उसे निर्निमेष देखने वाली तारिकाएँ हो। यहाँ एक ओर उपमा का चमत्कार है, दूसरी ओर प्रेमाकर्षण का विशिष्ट भाव व्यजित है। यो जहाँ एक ओर विरह की अनुभूति स्वभावोक्ति मे परि-णित होकर फूटी है वहाँ सहज अलकार प्रयुक्ति भी उसके सौन्दर्य को बढा रही है।

शब्दार्थ—माधब=श्री कृष्ण। तोहे=तुम। जनु=मत। जाह=जाओ। बिदेस=परदेस, मथुरा। हमरो=मेरा। रग रभस=रति-सुख, विलास-क्रीड़ा। जए-बह=ले जाकर। लएबह=लाओगे। कोन सँदेस=कौनसा सुख का सदेश या उपहार। बनहि गमन=वन-गमन। करु=करके। होएति दोसर मति=दूसरी ही मति हो जाती है। बिसरि जाएब=भूल जाओगे। मोरा=मेरी। मनि=मणि। मानिक=माणिक्य। एको=एक भी। माँगब=मागती हूँ। फेरि=बदले मे। पहु=प्रियतम। जखन=जिस क्षण। गमन करु=प्रस्थान करोगे। देखहु न भेल=देखने न पाए। पहु ओर=प्रियतम की ओर। भेल परबस=दूसरे के वश मे। कइसे=कैसे। पुरत=पूरा हो।

धरु सारा=धैर्य धरा

(१८६)

कालि कहल पिया ए साँझहि रे
जाएब मोयँ मारुग्र देस।
मोय ग्रभागलि नहि जानलि रे
सँग जइतग्रों जोगिन बेस।
हृदय मोर बड़ दारुन रे
पिया बिनु बिहरि न जाए।
× × ×
एक सयन सखि सूतल रे
ग्राछल बालम निसि मोर।
न जानल कति खन तेजि गेल रे
बिछुरल चकेवा जोर।
सून सेज हिय सालए रे
पिया बिनु घर मोयं ग्राजि।
बिनति करग्रों सहलोलिनि रे
मोहि देह ग्रगिहर साजि।
बिद्यापति कबि गाग्रोल रे
ग्राबि मिलब पिय तोर।
लखिमा देइ बर नागर रे
राय सिबसिंघ नहि भोर।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका कहती है—कल सध्या को ही मेरे प्रियतम ने मुझसे कहा कि मैं मथुरापुरी को प्रस्थान करूँगा। किन्तु मैं ग्रभागिन नही समझ सकी ग्रन्यथा मैं भी योगिन का वेष धारण कर उनके साथ निश्चय ही चली जाती। मेरा हृदय भी ग्रति कठोर—पत्थर के समान—है, जो उनके विच्छेद को सहन कर रहा है ग्रौर विदीर्ण नही हो जाता।

× × ×

नायिका कहती है कि हे सखी! रात एक ही पलंग पर ग्रपने प्रियतम के साथ सोई हुई थी, लेकिन न जाने वह किस समय सोते हुए छोड़कर चले गये। जिससे मुझ चकवे की जोड़ी का विच्छेद हो गया। ग्रब यह सूनी सेज प्रियतम के बिना मेरे उर को कष्टप्रद लग रही है, इसलिये हे मेरे साथ विहार करने वाली सखी! मैं तुमसे विनती करती हूँ कि मेरे लिये ग्रग्नि की चिता सजा दो। कविवर विद्यापति गाकर कहते हैं कि धीरज रक्खो, तुम्हारा प्रियतम फिर तुमसे ग्राकर ग्रवश्य मिलेगा। लखिमा

देई के चतुर पति राजा शिवसिंह, जो रस मर्मज्ञ हैं, वे कभी भूल नहीं करते।

विशेष—विरहिणी की आत्मपीड़ा का प्रकाशन प्रस्तुत पद मे मर्मस्पर्शी रूप में किया गया है। देखिए—

"हृदय मोर बड़ दारुन के
पिया बिनु बिहरि न जाए।"

कवि प्रसिद्धि के अनुसार चकवा और चकवी रात मे बिछड़ जाते है, उसी को यहाँ यों व्यक्त किया गया है—

"बिछुरल चकेवा जोर।"

किन्तु इस उक्ति की व्यजना जब इस प्रकार जानते है कि प्रियतम रात को साथ सोते-सोते ही प्रियतमा को छोडकर चला जाए तब हमे चकवा-चकवी के विछोह की पीड़ा का अहसास होने लगता है। इसी सम्बन्ध भावना को चकवा-चकवी की जोड़ी के बिछड जाने वाले भाव से पूर्व इन पक्तियो मे विद्यापति ने प्रकट कर दिया है—

"एक सयन सखि सूतल रे
आछल बालम निसि मोर।"

इस प्रकार मानवीय और पक्षी सम्प्रदाय का आत्मपीड़न सापेक्ष भावना से जोड दिया गया है जो भाव-पक्ष की दृष्टि से बडा मौलिक और अनूठा व्यापार कहा जायगा। स्मृति अलंकार स्वाभाविक बन पडा है।

शब्दार्थ—कालि कहल=कल कहे। जाएब=जाऊँगा। मारुअ=मथुरा। अभागलि=अभागिन। जइतओ=जाती। बेस=वेप। बिहरि=फटना, विदीर्ण होना। एक सयन=एक ही सेज, पलग। आछल=थी, था। निसि=रात। मोर=मेरा। कति खन=किस वक्त। तेजि गेल रे=छोड़ गया। चकेवा=चकवा, चाक, (एक प्रकार का पंछी)। बिनति=विनती। करओ=करती हूँ। सहलोलिनि=संग की रहने वाली, सहेली। अगिहर=आग की चिता। आबि=आकर। मिलन=मिलेंगे।

(१६०)

मधुपुर मोहन गेल रे
मोरा बिहरत छाती।
गोपी सकल बिसरलनि रे
जत छल अहिबाती।
सूतलि छलहुँ अपन गृह रे
निन्दइ गेलउँ सपनाई।
करसौं छुटल परसमनि रे
कोन गेल अपनाई।

कत कहबो कत सुमिरब रे
हम मरिए गरानि ।
आनक धन सों धनबति रे
कुबजा भेल रानि ।
गोकुल चान चकोरल रे
चोरी गेल चंदा ।
बिछुड़ि चललि दुहु जोड़ी रे
जीब दइ गेल धंदा ।
काक भाख निज भाखह रे
पहु आम्रोत मोरा ।
खीर खाँड़ भोजन देब रे
भरि कनक कटोरा ।
भनहि विद्यापति गाम्रोल रे
धैरज धर नारी ।
गोकुल होयत सोहाम्रोन रे
फेरि मिलत मुरारी ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा कहती है कि मेरे कन्हैया मुझे छोड़कर मथुरा को चले गये, मेरी छाती उनके वियोग मे विदीर्ण हुई जा रही है। हाय, उन्होने तो सारी सौभाग्यशालिनी गोपियो को भी विस्मृत कर दिया। अर्थात् उन्होने गोकुल की समस्त अबला नारियो की अभिलाषा को कुचल डाला। मैं अपने घर मे निद्रालीन थी और उस निद्रा मे स्वप्न देखने लगी कि मेरे हाथ से पारसमणि छूटकर गिर पडी और न जाने किस अपरिचित ने उसे अपना बना लिया, उसपर अधिकार कर लिया। आशय यह है कि मणि रूपी कृष्ण से स्वप्न मे उसका जो दरस-परस हो रहा था वह भग हो गया और न जाने किस अज्ञात ने उस पर अपना अधिकार कर लिया,कृष्ण पराये हो गए। मैं उसके विषय मे कितना कहूँगी और कितना याद करूँगी ? मैं तो लज्जा-ग्लानि से परिपूरित हो चूकी हूँ। अरे,वह कुबजा तो पराये धन—कृष्ण—को हथियाकर धनवान होकर अब रानी बन गई है। कितना अनर्थ हो गया कि यहाँ तो कृष्ण गोकुल के चन्द्र थे और अब मथुरा मे वह इसके विपरीत चकोर बनकर रह गए है। आशय यह है कि गोकुल की नारियाँ उन्हे चन्द्र समझकर प्यार से निहारा करती थी और अब मथुरा जाकर कृष्ण स्वय कुब्जो के रूप-याचक बन गए है। उनकी दशा वहाँ चन्द्र को निहारने वाले तुच्छ रूप-याचक चातक की जैसी हो गई है। इस प्रकार तुच्छ रूप मे चन्द्रमा चोरी चला गया है। हाय, अब हम दोनों की निर्मित प्रणय जोड़ी का विच्छेद हो गया है और वह विच्छेद प्राणों को दुःख के कोहराम मे डाल

गया है। आशय है कि प्राणो मे विरह-दुख का कोहराम मच गया है। हे काग ! तुम अपनी भाषा मे शुभ शकुन बोलो तो, जिससे मेरे प्रियतम आये। यदि मेरे प्रियतम मेरे पास लौट आये तो स्वर्ण-कटोरे मे भरकर तुम्हे खाँड मिश्रित खीर खाने के लिये दूँगी। विद्यापति गाकर कहते है कि हे सुन्दरी ! धैर्य धारण करो। गोकुल फिर सुहावना होगा और यही तुम्हारा प्रियतम कृष्ण तुम्हे फिर मिलेगा।

विशेष—शृगारी कवियो ने सौतिया डाह का विशद वर्णन किया है। और यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि नारी अपने पति का अखण्ड प्रेम चाहती है, वह किसी सौत-सम्बन्ध को सहन नही कर सकती—महान् से महान् नारी भी नही। यहाँ कृष्ण और कुब्जा के सम्बन्ध के प्रति जगी सौतिया डाह की अभिव्यक्ति की गई है—सौत को पराये धन अर्थात् पति की "धनिका या रानी" बतलाकर—

"कत कहबो कत सुमिरब रे
हम मरिए गरानि।
आनक धन सों धनबति रे
कुबजा भेल रानि।"

कृष्ण जब गोकुल मे थे तो सब के लिए प्रेम सुधाकर के रूप मे थे। किंतु मथुरा जाने पर वे विपरीत हो गए—चाँद से चकोर बन गए ! "गोकुल चान चकोरल रे"—यहाँ चन्द्र और चकोर का प्रयोग कर जहाँ उक्ति मे आलकारिक छटा दिखलाई गई है वहाँ व्यजना भी बडी गूढ की गई है कि कृष्ण ने मथुरा जाकर अच्छा नही किया, यहाँ वे सब स्त्रियो के प्राणाधार थे और वहाँ कुब्जा के प्रेम-याचक बन गए है, तुच्छ हो गए। यहाँ व्यग, वक्रोक्ति व्यजना का मिश्रित भाव प्रकट होता है। विरहिणी नारी हृदय की आस्था, उसके विश्वास और प्रेम का सहज भाव इन पंक्तियो मे मुखरित हुआ है—

"काक भाख निज भाखह रे
पहु आओत मोरा।।"

सहज प्राचीन ग्रामीण मान्यता के अनुसार काग के बोल प्रिय आगमन के शुभ सूचक माने गए है। वही मान्यता उक्त पक्तियो मे व्यक्त हुई है जिससे निश्चित ही पद की लोक-गीतात्मकता सिद्ध होती है।

शब्दार्थ—मधुपुर मोहन गेल=मोहन मथुरा गया। मोरा=मेरी। बिहरत=विदीर्ण हो रही है। बिसरलनि=बिसार दिये। छल=थी। छलहुँ=थी। गृह=घर। करसौ=कर से, हाथ से। कोन=कौन। कत=कितना। कहबो=कहूँगी। गरानि=ग्लानि। आनक=दूसरे का। सों=से। भेल=हुई। जीब=जीव, आत्मा। धंदा=उलझन। पहु=प्रियतम। खाँड़=शक्कर, चीनी। कनक=सोना। धैरज=धैर्य, धीरज। फेरि=फिर।

(१६१)

सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज
की सरसिज बिनु सूरे।
जौबन बिनु तन तन बिनु जौबन
की जौबन पिय दूरे।
सखि हे मोर बड़ दैब बिरोधी।
मदन बेदन बड़ पिया मोर बोलछड़
अबहु देहे परबोधी।
चौदिस भमर भम कुसुम-कुसुम रम
नीरसि माँजरि पीबइ।
मंद पबन चल पिक कुहु-कुहु कह
सुनि बिरहिनि कइसे जीबइ।
सिनेह अछल जत हम भेव न टूटत
बड़ बोल जत सब थीर।
अइसन के बोल दहु निज सिम तेजि कहु
उछल पयोनिध नीर।
भनइ बिद्यापति अरेरे कमलमुखि
गुनगाहक पिया तोरा।
राजा सिबसिंघ रूपनरायन
सहजे एको नहि भोरा।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

कमल के अभाव मे तालाब और तालाब के अभाव मे कमल और फिर दिनकर के अभाव मे भला कमल की क्या महत्ता हो सकती है ? यौवन के अभाव मे तन और तन के अभाव मे यौवन और प्रियतम के दूर रहने पर—उसके अभाव मे—भला यौवन का क्या महत्त्व हो सकता है, या वह क्या शोभायमान हो सकता है ? आशय यह है कि भले ही यौवन रूपी कमल भी हो सकता है उसे अभिवृद्ध करने वाला तन रूपी तालाब भी हो सकता है किंतु यदि कोई प्यार करने वाला दिनकर नही तो उस यौवन रूपी कमल की क्या महत्ता ? गो कि यौवन मे शरीर प्रस्फुटित हो भी जाता है किंतु वह बिना प्रेमी के वृथा है। हे सखी ! विधाता मेरा बडा विरोधी हो गया है, कामदेव की इतनी कठोर वेदना और प्रियतम भी छली, मिथ्यावाची और बेवफा !—तिस पर भी तुम मुझे उसके प्रणय के प्रति सूझ-बूझ बताकर बहला-फुसला रही हो, क्यो ? चारो ओर घूम-घूमकर भौरे फूलो के साथ रमते है तथा रसहीन मजरियो को भी चूसते है, उनका रसपान करते हैं। मन्द-मन्द वायु चल रही है तथा कोयल कुहू-कुहू कूक रही है।

उसकी कूक सुनकर विरही स्त्रियाँ भला कैसे जीवित रह सकती हैं ! प्रियतम के साथ स्नेह इतना बढ गया था कि मैंने अपनी मूर्खतावश यह समझ लिया वह कभी नही टूटेगा अर्थात् हम दोनो कभी बिछुडेगे ही नही। मुझे यह विश्वास था कि महान् पुरुषो की जितनी बात होती है वह दृढ होती है। किंतु हाय, वह स्नेह बना न रह सका, टूट गया। ऐसा कौन कह सकता है कि समुद्र का पानी अपनी सीमा छोडकर कही और उछलकर जा पडे ? आशय यह है कि वह अपने महान् प्रियतम पर विश्वास कैसे न कर लेती और यह कल्पना भी कैसे कर लेती कि वे उसका प्रेम इतनी निर्दयता से कुचलकर चले जाएँगे, जबकि वह इतना अटूट और आदर्श हो चुका था। कविवर विद्यापति कहते है कि अरे कमलमुखी ! तुम्हारा प्रियतम तो गुण-ग्राहक है अर्थात् वह तुम जैसी गुणवती को कैसे छोड देगा ? राजा शिवसिंह जो परम रूपवान है वे किसी को भी सहज मे नहीं भूलते।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कमल, तालाब और सूर्य के प्रतीको को लेकर क्रमशः यौवन, तन और प्रियतम की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है और सम्बन्ध भावना का निर्वाह यहाँ आलकारिक ढग से व्यक्त हुआ है। कमल का तालाब से सम्बन्ध है और वह सूर्य के उदय होने पर ही खिलता है। इसी प्रकार यौवन रूपी कमल यौवन रूपी तडाग मे होता है किंतु वह प्रियतम रूपी सूर्य को पाकर ही खिलता है। इस प्रकार सम्पूर्ण यौवन का महत्त्व प्रियतम के मिलन पर आधारित बतलाया गया है जो कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्टतापूर्वक वर्णित कहा जाएगा।

सभोग के दृश्य विरहिणी के प्राणो को परेशान करते है, यह मनोवैज्ञानिक तथ्य इन पक्तियो के अतर से ध्वनित है—

"मदन बेदन बड़ पिया मोर बोलछड़
अबहु देहे परबोधी।
चौदिस भमर भम कुसुम-कुसुम रम
नीरसि माँजरि पीबइ।
मद पबन चल पिक कुहु-कुहु कह
सुनि बिरहिनि कइसे जीबइ।"

यहाँ प्रकृति का उद्दीपन रूप मे वर्णन प्रधान है।

महान् लोगो के प्रेम को ऐसे अटूट कहा गया है कि जैसे विशाल सागर का जल सीमा को तोड़कर नही बहता। यहाँ कवि की कल्पना बड़ी विराट्, सूक्ष्म एव मौलिक है—

"अइसन के बोल दहु निज सिम तेजि कहु
उछल पयोनिध नीर।"

पर विशेषता यह है कि यहाँ तो किसी के अस्थिर प्रेम के प्रति व्यंग्य व्यंजना है, एक

मीठी चुटकी कि कृष्ण महान् प्रेमी बनते थे और हमे वैसे ही लगते भी थे किंतु यहाँ से जाते-जाते पिछले प्रेम की सारी सीमा को तोड गए—कितने निष्ठुर अविश्वसनीय एवं छली है वे ! सचमुच, मीठी व्यंग्य व्यजना की दृष्टि से विद्यापति के पदो की उक्तियाँ बड़ी मार्मिक हैं। इसलिये उनका भाव-पक्ष सर्वत्र मासल रहा है। "नीरसि मॉजरि पीबइ" एवं "सुनि बिरहिनि कइसे जीबइ" पक्तियो मे यौवन-वासना की उद्दाम पिपासा अँगड़ा रही है। इसी प्रकार की अभिव्यक्तियो को लक्ष्य करके लेखक ने कवि की अर्चना मे एक कविता लिखी है, उसके भाव देखिए—

" हे मैथिल कवि,
शृंगारिक रवि,
मेरा मानस तुमको अपना युग-युग शीश झुकाए।
तुमने यौवन की मदिरा वह पद कलश डुबाए,
जिनको भक्त-रसिक दोनो ही पीकर भी न अघाए,
राधा रूपसि रूपाभा की
अभिनव मूर्त्ति बनाकर,
जाने कितने माधव, मधुवन, मनमथ माथ झुकाए।
मेरा मानस तुमको अपना युग-युग शीश झुकाए।
कला, कला में जीवन, जीवन मे जो रस की धारा,
उसमें तुमने अवगाहन कर रति का रूप उघारा,
शब्द-शब्द में चित्र कलामय
चित्र - चित्र मे जीवन,
जीवन मे सच्चे सपनों के तुमने अर्थ बुझाए।
मेरा मानस तुमको अपना युग-युग शीश झुकाए।
तुम्हें श्लील-अश्लील तर्क के शर का भय न सताया,
यौवन की उद्दाम पिपासा ने बस तुम्हें रिझाया,
सूरा मीरा सभी तुम्हारे
पथ के रस से भीगे,
'तोहर सरिस एक तोहं माधव'—भाव सरस दुहराए।
मेरा मानस तुमको अपना युग-युग शीश झुकाए।
और तुम्हारे काव्य-सिंधु पर मै जो कुछ लिख पाया,
सचमुच, केवल उसकी कुछ ही लहरों को गिन पाया,
रस के राजा ! केवल तुमसे
यही याचना मेरी,

दे दो आशिर्वाद कि मेरी वाणी गंध लुटाए।
मेरा मानस तुमको अपना युग-युग शीश झुकाए।"

शब्दार्थ—सरसिज बिनु=कमल के बिना। सर=तालाब। सूरे=सूर्य। जौबन=यौवन। मोर=मेरा। दैब=विधाता। मदन=कामदेव। बेदन=वेदना। अबहु=अब भी। परबोधी=फुसलाना, बहलाना। चौदिस=चारो ओर। भमर=भौरा। भम=भ्रमण। पीबइ=पीता है। पिक=कोयल। कइसे जीबइ=किस प्रकार जीवित रहेगी। सिनेह=स्नेह। अछल=था। जत=जितना। अइसन=ऐसा। सिम तेजि=सीमा छोडकर। पयोनिध=समुद्र। नीर=पानी। तोरा=तुम्हारा। एको नहि=एक को भी नही।

(१९२)

सखि हे कतहु न देखि मधाई।
काँप शरीर थीर नहि मानस
अबधि नियर भेल आई।
माधब मास तीथि भयो माधब
अबधि कइए पिआ गेला।
कुच-जुग सभु परसि कर बोललन्हि
ते परतिति मोहि भेला।
मृगमद चानन परिमल कुंकुम
के बोल सीतल चंदा।
पिया बिसलेख अनल जो बसिए
बिपति चिन्हिए भल मंदा।
भनइ बिद्यापति सुन बर जौबति
चित जनु झंखह आजे।
पिय बिसलेख-कलेस मेटाएत
बालम बिलसि समाजे।

भावार्थ—'विरह' वर्णन के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

विरहिणी राधा कह रही है कि हे सखी ! मैं प्रियतम कृष्ण को कही भी नहीं देख पा रही हूँ। इस दु.ख मे मेरा शरीर कम्पायमान हो रहा है, मन स्थिर नही है और लगता है कि जैसे मेरी मृत्यु को अवधि पास आ रही है—मैं उनके विरह-वियोग मे जीती नही रहूँगी, मुझे अपनी इस विषम दशा से ऐसा ही लग रहा है। वैशाख माह की एकादशी तिथि को लौटकर मुझमे मिलने की अवधि वे निश्चित कर गए थे। यद्यपि मुझे उनकी बात पर विश्वास नही हो रहा था किन्तु जब उन्होने मेरे दोनो उभरे हुए कुचो का स्पर्श कर निश्चित आने का विश्वास दिलाया तब मुझे उनके कहने

पर विश्वास हो गया था कि लौट ही आएँगे। कौन कहता है कि कस्तूरी, चन्दन का लेप, कुकुम एव चन्द्रमा ये सब शीतल सुखमय होते है`` ```होते होगे, पर मुझे नही। प्रियतम के वियोग मे यदि मै आग मे कूदकर जल मरती तब लोगो को ज्ञात होता कि मेरे लिए उपरोक्त शृगारी उपकरण भले है या बुरे—वे जान जाते कि मैं प्रियतम के वियोग मे कितनी दारुण पीडा रही थी। कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे सुन्दरी ! सुनो, इतना पश्चात्ताप एव दुख हृदय मे मत लाओ, निश्चित ही प्रियतम श्री कृष्ण शृगार-विलसित समाज (कस्तूरी, चन्दन के लेप, कुकुम आदि) सहित निश्चित ही तुम्हारे साथ विहार करके तुम्हारा प्रिय-विच्छेदजन्य क्लेश दूर करेगे। आशय यह है कि कस्तूरी, चन्दन का लेप, कुकुम और चन्द्रमा आदि शृगारी-उपकरण जो वियोग मे जला रहे हैं, उन्ही को सुखद समाज बनाकर श्री कृष्ण राधा के साथ अवश्य रमण करेगे, उसकी काम-पीडा को दूर करेगे।

विशेष—शृगारिक शपथे भी बड़ी विचित्र होती हैं। उनमे एक मीठा मिथ्यात्व, एक नशीला विश्वास छिपा रहता है जिसका अपरिमित स्वाद आदि काल से रसिक नारी और पुरुष समाज करता आया है और उसी अपरिमित स्वाद के मज़े से परि-लिप्त है यह पक्ति—

"कुच-जुग सभु परसि कर बोललन्हि
ते परतिति मोहि भेला।"

यहाँ "ते परतिति`` " उक्ति मे भोली बाला का स्वभाव भी बडा मनोमुग्ध-कारी है।

यहाँ वियोग मे सभोग को उद्दीप्त करने वाले प्राकृतिक उपकरण विपरीत प्रभाव डाले रहे हैं जो प्राचीन शृंगारी काव्य वर्णन की परम्परा के अनुसार ही है—

"मृगमद चानन परिमल कुंकुम
के बोल सीतल चदा।
पिया बिसलेख अनल जो बसिए
बिपति चिन्हिए भल मंदा।"

शब्दार्थ—कतहु=कही भी। मधाई=श्री कृष्ण। थीर नहि मानस=मन स्थिर नही है। अबधि नियर=निकट समय, मृत्यु का समय निकट हो आया है—यहाँ इससे आशय है। माधब मास तीथि भयो=वैशाख मास की एकादशी तिथि। अबधि कइए पिआ गेला=आने की अवधि कहकर प्रियतम श्री कृष्ण गए थे। कुच-जुग सभु=उभरे हुए दोनो कुच। परसि=छूकर। ते=इसलिए। परतिति=विश्वास। मोहि=मुझे। मृगमद=कस्तूरी। चानन परिमल=चन्दन का घोल या लेप। के बोल=कौन कहता है। सीतल=ठडा, सुखमय। पिय बसलेख=प्रियतम

का विच्छेद, वियोग। अनल=आग। जो बसिए=जो बस जाए तो, यहाँ आग के प्रसंग से अर्थ हुआ कि जो कूद पड़ती। चिन्हिए=जानते। बिपति=कष्ट। भल मदा=अच्छा-बुरा। झंखह=दुःख, पश्चात्ताप। कलेस=विरहजन्य दुःख। बालम=साजन। बिलसि=विहार करके। समाजे=समाज में या सहित, आशय है जो शृंगारी उपकरण—कस्तूरी, चन्दन का लेप, कुकुम आदि उपकरण—राधा को वियोग मे जलाते प्रतीत होते है।

(१९३)

लोचन धाए फेधायल
हरि नहि आयल रे।
सिव-सिव जिबओ न जाए
आस अरुझाएल रे।
मन करे तहाँ उड़ि जाइअ
जहाँ हरि पाइअ रे।
पेम-परसमनि जानि
आनि उर लाइअ रे।
सपनहु संगम पाओल
रंग बढ़ाओल रे।
से मोरा बिहि बिघटाओल
निन्दओ हेराएल रे।
भनइ बिद्यापति गाओल
धनि धइरज धर रे।
अचिरे मिलत तोहि बालम
पुरत मनोरथ रे।

भावार्थ—'विरह' वर्णन के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

विरहजन्य अनुभूति मे लीन राधा आप ही चिंताकुल होकर सोच कर रही है, प्रियतम के प्रेम-पथ पर दौड-दौडकर उन्हे तलाश करते हुए नेत्र फेनिल हो गए हैं, सूज गए है किन्तु निठुर कृष्ण नही लौटे। हे शिव! हे शिव! अब तो जीना भी दूभर हो गया है, प्राण भी नही निकल जाते क्योकि उनके मिलन की आशा ने उन्हे उलझा जो रखा है। मन करता है कि वहाँ उडकर चली जाऊँ जहाँ श्री कृष्ण मिलेगे। उनके प्रेम की स्पर्श-मणि जानकर उन्हे हृदय से लगा लूँ, ऐसी कामना उठती है। कभी-कभी स्वप्न मे ही उनसे समागम पाकर अपने मन की रति-भावना की वृद्धि करके शात हो लेती थी कि विधाता ने वह स्वप्न भी मिटा डाला क्योकि अब नीद भी जाती रही है। आशय यह है कि अब हर क्षण उनकी स्मृति आती है अत. सो नही पाती,

और जब सो ही नही पाती तो उनसे स्वप्न मे मिलन-समागम कैसे हो। कविवर विद्यापति गाते हैं और कहते हैं कि हे रमणी! धैर्य धारण करो। जल्दी ही तुम्हे तुम्हारे साजन मिलेंगे और मनोरथ पूर्ण करेंगे।

विशेष—अभिलाषित वस्तु की प्राप्ति स्वप्न मे होना मनोविज्ञानिकों ने सिद्धान्तत माना है। यहाँ उसीकी काव्याभिव्यजना कविवर विद्यापति ने यो की है—

"सपनहु संगम पाओल
रग बढ़ाओल रे।"

गीत तत्त्व की भावुकता और सचारी भाव की तीव्रता यहाँ हृदयस्पर्शी ढग से प्रकट है—

"मन करे तहाँ उड़ि जाइअ
जहाँ हरि पाइअ रे।"

प्रियतम को "पेम परसमनि" जानने का भ्रम-भाव व्यजित है अत. भ्राँतिमान अलकार का रूप निखरा हुआ प्रतीत होता है।

शब्दार्थ—धाए=दौडकर। फेधायल=फेनयुक्त हो गये, सूज गये। हरि=श्री कृष्ण। आयल=आए। सिव-सिव=दुःख सूचक सम्बोधन—हे शिव, हे शिव। जिबओ=प्राण भी। न जाए=नही जाता। अरुझाएल=उलझाए। तहाँ=वहाँ। पाइअ=पाए। पेम परसमनि=प्रेमस्पर्श की मणि। आनि=लेकर। उर लाइअ=हृदय से लगा लूँ। सपनहु=स्वप्न मे। सगम=मिलन-समागम। से=वह। बिहि=विधाता। बिघटाओल=नष्ट कर दिया। निन्दओ=नीद भी। हेराएल=भुला देना। धइरज=धैर्य। अचिरे=जल्दी। तोहि=तुम्हे। पुरत=पूर्ण होगे। मनोरथ=इच्छा।

(१६४)

सखि मोर पिया।
अबहु न आओल कुलिस-हिया॥
नखर खोआओलुँ दिवस लिखि-लिखि।
नयन अँधाओलुँ पियापथ देखि॥
जब हम बाला परिहरि गेला।
किए दोस किए गुन बुझइ न भेला॥
अब हम तरुनि बुझब रस-भास।
हेन जन नहि मोर काहे पिआ पास॥
आएब हेन करि पिआ मोरा गेला।
पुरबक जत गुन बिसरित भेला॥
भनइ बिद्यापति सुन अब राइ।
कानु समुझाइत अब चलि जाइ॥

भावार्थ—'विरह' वर्णन के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति लिखते है—

राधा कह रही है कि हे सखी ! मेरे पाषाण-हृदय प्रियतम श्री कृष्ण अभी तक नहीं आए है। उनके लौट आने वाले दिवस का नाम लिखते-लिखते मैने नाखून घिस दिए है और प्रिय-पथ को निहारते-निहारते नेत्र अधे कर लिए है, किंतु वे वज्र-हृदय नही लौटे। आशय यह है कि श्री कृष्ण जिस दिन को लौट आने का विश्वास देकर राधा को छोडकर गए थे उस दिवस की प्रतीक्षा मे राधा ने दिन गिन-गिनकर नाखून घिस दिये है और प्रतीक्षा पथ को निहारते-निहारते वह अधी हो चली है; किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी निठुर कृष्ण अभी तक नही लौटे। राधा कहती है कि जब मै नादान बाला थी तब वे मुझसे लडकपन की प्रीति जोडकर फिर उसे तोडकर और मुझे छोडकर चले गए थे, उन्होने—क्या दोष है, क्या गुण है—यह भी न जाना। आशय है कि मुझसे उस समय प्रीति जोडते हुए अच्छे-बुरे का कोई विचार न किया। अब मै तरुणी हो गई हूँ और रति-रस के विषय मे जानने लगी हूँ। जब कोई भी मेरा अपना नही है तो प्रियतम ही भला क्यो पास हो ! "मै लौटकर आऊँगा"—यह कहकर मेरे प्रियतम चले गए पर हाय, जाकर वे मेरे पिछले जितने गुण थे उनको भूल गए। कविवर विद्यापति कहते है कि अच्छा, तो राधा अब सुनो, कि कृष्ण को समझाने-बुझाने के लिये अब चला जाए, वे लौट आएँगे। (यहाँ आशय विद्यापति की पक्ति के अनुसार ही स्पष्ट नही है। 'समुझाइत' मे पाठान्तर हो सकता है।)

विशेष—प्रस्तुत पक्ति मे यद्यपि बात अत्युक्ति-सी लगती है किंतु वह अत्युक्ति भी भावाभिव्यजन को तीव्रता प्रदान कर रही है, अस्वाभाविकता नही। देखिए—

"नखर खोआओलुँ दिवस लिखि-लिखि।
नयन अँधाओलुँ पियापथ देखि॥"

यह सब कुछ अशुभ होने का कारण भी पहले जो व्यक्त कर दिया गया है—

"सखि मोर पिया।
अबहु न आओल कुलिस-हिया॥"

"कुलिस-हिया" अर्थात् पत्थर दिल वाले प्रियतम की घोर स्मृति और प्रतीक्षा मे दिन गिनते और पथ पर दृष्टि बिछाये यदि नख घिस गए हो, आँखे अँधिया गई हों तो क्या अत्युक्ति ! स्मृति अलकार सम्पूर्ण पद का प्राण है। क्योकि—

"आएब हेन करि पिआ मोरा गेला।
पुरबक जत गुन बिसरित भेला॥"

शब्दार्थ—कुलिस-हिया=पाषाण हृदय। आओल=आये है। अबहु=अभी तक। नखर=नख। खोआओलुँ=मिटा डालना, यहाँ नाखूनो के प्रसग मे 'घिस गए है' अर्थ होगा। लिखि-लिखि=लिख-लिखकर या गिन-गिनकर। अँधाओलुँ=अधा कर देना। बाला=किशोरी, नादान। परिहरि गेला=छोड़ गए। किए=क्या।

बुझब रस-भास=रति-रस के विषय को जान गई हूँ। गेला=गये। पुरबक=पिछले। जत=जितने। बिसरित=भूलना। राइ=राधा। चलि आइ=चला जाय।

(१६५)

आसक लता लगाओल सजनी
नयनक नीर पटाय।
से फल अब तरुनत भेल सजनी
आँचर तर न समाय।
काँच साँच पहु देखि गेल सजनी
तसु मन भेल कुह भग्न।
दिन-दिन फल तरुनत भेल सजनी
अहु खन न करु गेआन।
सब कर पहु परदेस बसि सजनी
आयल सुमिरि सिनेह।
हमर एहन पति निरदय सजनी
नहि मन बाढ़य नेह।
भनइ विद्यापति गाओल सजनी
उचित आओत गुनसाह।
उठि बधाव करु मन भरि सजनी
अब आओत घर नाह।

भावार्थ—'विरह' वर्णन के प्रसगानुसार कविवर विद्यापति इस पद मे लिखते है—

राधा कह रही है कि हे सखी ! आँखो के अश्रुजल से सीच-सीचकर मैंने आशा की लता उपजाई थी। जवानी मे अब उसका उरोज रूपी फल पुष्ट हो गया है, पक चला है अत: अचल के तले मे ढके वह नही समा पाता, पुष्ट उरोज अचल के भीतर से प्रकट होते हैं। मेरे प्रियतम श्री कृष्ण ने उम कुच रूपी फल को वस्तुत: जाते हुए अपरिपक्वावस्था मे देखा और उसे देखकर उनके मन को बडो निराशा हुई, वह चले गए। पर वह फल उनके जाने के पश्चात् दिन-प्रतिदिन बढने लगा—यह रहस्य अभी तक उन्हे ज्ञात नही हुआ है। आशय है कि परिपक्व यौवन के प्रतीक उरोज तो पूर्णावस्था को प्राप्त हो चले है किंतु प्रियतम श्री कृष्ण को अभी तक इस बात का ज्ञान नही हुआ है। हे सखी ! सिबके प्रियतम जो परदेस थे अब अपनी-अपनी प्रियतमा के प्रेम का स्मरण कर घर लौट आए है पर एक मेरे ही निष्ठुर पति, हे सखी, एक ऐसे है जो नही लौटे—उनके हृदय मे मेरे प्रति स्नेह नही उमडा। कविवर विद्यापति कहते है कि अरी सजनी ! तुम्हारे उचित अर्थात् सच्चे एव गुणसम्पन्न प्रेमी पति श्री कृष्ण अवश्य लौट आएँगे। उठो और मन भरकर बधाई दो, अब तुम्हारा कत घर आने वाला है।

विशेष—कीट्स् ने कहा है—"All beauty is the expression of what may be generally called emotion." और गेटे ने एक स्थल पर कहा है—"A creation is beautiful when it has reached at the height of its natural development." इन दोनो विद्वानो का आशय क्रमश. काव्य-कला की सौन्दर्यानुभूति और उसके अभिव्यजन के प्रति यह है · "प्राय. जो कुछ आवेग या सवेग कहा जाता है, सौन्दर्य उसी का अभिव्यजन है।" × × "वही सृजन सुन्दरम् हो जाता है जब वह नैसर्गिक विकास के शिखर पर पहुँच जाता है।" जब हम कविवर विद्यापति के काव्य और उसके भाव-पक्ष व कला-पक्ष पर विचार करते है तो उक्त दोनो ही मत सिद्ध पाते है। प्रस्तुत पद की प्रारम्भिक पक्तियो मे सुन्दरम् की अनुभूति एव अभिव्यजना अपने नैसर्गिक विकास के चरम लक्ष्य पर पहुँची है—

"आसक लता लगाओल सजनी
नयनक नीर पटाय।
से फल अब तरुनत भेल सजनी
आँचर तर न समाय।"

यहाँ अश्रुजल से प्रणयाशा की लता का सिचन आवेग एव सवेग का सौन्दर्याभिव्यजन कर रहा है और दूसरी ओर उसके नैसर्गिक विकास के चरम-शिखर पर स्थित झलक उस लता के फल—उराजो—के रूप मे हुई है जो आँचल की सीमा का अतिक्रमण किया चाहते है।

स्वभावोक्तियुक्त सुन्दर और कोमल वाणी यहाँ फूट रही है—

"सब कर पहु परदेस बसि सजनी
आयल सुमिरि सिनेह।
हमर एहन पति निरदय सजनी
नहि मन बाढ़य नेह।"

मिलन की करुण स्मृति और विरह की अपार पीडा के मनोभावो से सम्पूर्ण पद बडा उत्कृष्ट बन पडा है।

शब्दार्थ—आसक लता=उम्मीद की बेल। लगाओल=लगाई या उपजाई। सजनी=सखी। नयनक नीर=आँख का जल—अश्रु। पटाय=सीचकर। से फल=उस आशा की बेल के फल—उरोजो से तात्पर्य है। तरुनत भेल=तरुण होना, उरोजो के पुष्ट होने के लिये प्रयुक्त है। आँचर तर=अचल के नीचे। न समाय=समाते नही है, 'उरोज ढँके नही रहते' से तात्पर्य है। काँच=कच्चे, अपरिपक्व। साँच=सचमुच। पहु=प्रियतम, श्री कृष्ण। देखि गेल=देखकर गये। तसु=उसको। कुह=निराशा। अहु खन=अभी तक, इस समय तक। गेआन=ज्ञान। बसि=बसे हुए। आयल=आए। सुमिरि=सुधि कर। सिनेह=स्नेह। हमर=मेरा। ऐहन=ऐसे। निरदय=निठुर।

नहि मन बाढ़य नेह=मन मे स्नेह नही बढा या उमड़ा। बधाब करु=बधाई करो। नाह=पति, कत।

(१९६)

कोन गुन पहु परबस भेल सजनी
बुझलि तनिक भल मद।
मनमथ मन मथ तनि बिनु सजनी
देह दहए निसि चंद।
कहग्रो पिसुन सत ग्रबगुन सजनी
तनि सम मोहि नहि ग्रान।
कतेक जतन सौं मेटिए सजनी
मेटिए न रेख पखान।
जे दुरजन कटु भाखए सजनी
मोर मन न होए बिराम।
ग्रनुभव राहु पराभव सजनी
हरिन न तज हिमधाम।
जतग्रो तरनि जल सोखए सजनी
कमल न तेजए पांक।
जे जन रतल जाहि सौ सजनी
कि करत विहि भए बाँक।
बिद्यापति कबि गाग्रोल सजनी
रस बूझए रसमत।
राजा सिबसिघ मन दए सजनी
मोदवती देह कत।

भावार्थ—'विरह' वर्णन के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति यहाँ लिखते हैं—

राधा कह रही है कि हे सखी ! किस गुण से प्रियतम श्री कृष्ण किसी के वश मे हुए, हे सजनी, उसके विषय मे ग्रच्छाई-बुराई को मै कुछ-कुछ जान गई हूँ। ग्राशय यह है कि श्री कृष्ण परदेस मे किसी की सुन्दरता के गुण पर रीझ गए है यह मै जान गई हूँ—ग्रच्छे या बुरे कैसे भी रूप मे। पर उनके ग्रभाव मे कामदेव मेरे ग्रन्तर को मथ रहा है ग्रौर रात को राकेश विरह-ज्वाला से मेरे शरीर को जलाता है। निन्दा करने वाले चाहे उनके सैकड़ो ग्रवगुण मुझसे बखान करे किन्तु उनके समान प्रेमी मुझे कोई ग्रौर दूसरा नही हो सकता। हे सखी ! कितने भी यत्न से मिटाग्रो किन्तु पत्थर की लकीर नही मिटा करती। ग्राशय यह है कि हृदय पर पडा सच्चे प्रेम का प्रभाव लाख प्रयत्न से दूर नही हो सकता, कृष्ण का प्रेम ग्रमर हो चुका है। हे सखी ! यद्यपि दुष्ट लोग कितन

भी कटु बोले—बदनामी करे—किन्तु उसे सुनकर उनके प्रेम के प्रति मेरा मन उदासीन या विरत नही हो सकता। यह सभी को अनुभव सिद्ध है कि हे सजनी, कठोर राहु से आग्रस्त होने पर भी चन्द्रमा अपने मृगचिह्न को नही त्यागता। चाहे जितना भी तालाब के जल को सूर्य सुखा दे, हे सखी, कमल फिर भी कीचर या छीलर का परित्याग नही करता। आशय यह है कि सच्चा प्रेम-सम्बन्ध अविच्छेद्य है, अमर है। हे सखी ! जो प्रेमीजन जिससे अनुरक्त हो गया—बस हो गया, विधाता तदर्थ विरोधी होने पर भी क्या कर सकता है ? कविवर विद्यापति गाते है—हे सखी ! रस-मग्न व्यक्ति ही रस की बाते जानते है। हे सखी ! तुम तो मोदवती के कत राजा शिवसिह को मन दो, उनसे अनुरक्ति रखो।

विशेष—प्रेम की दृढता की पत्थर की रेखा से तुलना करके उसकी महत्ता को आलकारिक ढग से शोभनीय कर दिया गया है—

"कतेक जतन सौं मेटिए सजनी
मेटिए न रेख पखान।"

प्रेम की अमरता का सूर्य-पानी और कमल-कीचड के प्रतीको द्वारा कवि ने इन पक्तियो मे बडा शाश्वत सदेश दिया है—

"जतओ तरनि जल सोखए सजनी
कमल न तेजए पाँक।"

सच्चे प्रेम की महत्त्वपूर्ण व्यजना इन पक्तियो मे श्रेष्ठ काव्य कोटि की हुई है। और दो हृदयो के वास्तविक अनुराग के बन्धन को तो विधाता भी यदि कुपित हो जाय तो खण्डित नही कर सकता। कितनी महाप्राण ललकार है—

"जे जन रतल जाहि सौं सजनी
कि करत विहि भए बाँक।"

इसी अनुराग के बल पर लखनऊ से विवश अलविदा लेते हुए किसी नवाब की आत्मा गरज उठी थी—

"क्या ताब फलक की जो हम से छुटा है लखनऊ।
हम लखनऊ पर फिदा हम पर फिदा है लखनऊ।"

शब्दार्थ—कोन=किस। पहु=प्रियतम, श्री कृष्ण। परबस=पराधीन। भेल=हुए। सजनी=सखी। बुझलि=जान जाना। तनिक=थोड़ा, जरा। भल=अच्छा। मद=बुरा। मनमथ=कामदेव। मथ=बिलोना। तनि बिनु=उनके अभाव मे। देह=शरीर। दहए=जलाता है। निसि=रात। कहओ=कहे। पिसुन=निन्दक, बुरा कहने वाला। सत=सैकडो। अबगुन=बुराई। तनि सम=उनके या श्री कृष्ण के समान। मोहि=मुझे। नहि आन=दूसरा नही। कतेक=कितने। जतन=यत्न। सौं=से। मेटिए=मिटाई। रेख पखान=पत्थर की रेखा। कटु भाखए=कड़ुआ या अप्रिय वचन, बदनामी करने से आशय है। बिराम=विरक्त,

उदासीन। राहु पराभव=राहु के ग्रस लेने पर भी। हरिन=हरिण, मृग, चन्द्रमा पर पड़े निशान को कहा गया है। हिमधाम=चन्द्रमा। जतश्रो=जितना भी। सोखए=सुखाना। तेजए=छोडना। पाँक=कीचड। तरनि=सूर्य। रतल=आसक्त, अनुरक्त होना। जे जन=जो व्यक्ति। जाहि सौ=जिससे। कि करत=क्या कर सकना। विहि=ब्रह्मा, विधाता। भए बाँक=टेढा हो जाने पर, विरोध या प्रतिकूल होने पर। कत=पति। रसमत=रसलीन व्यक्ति।

(१६७)

माधब हमर रटल दुर देस।
केश्रा न कहइ सखि कुसल-सनेस।
युग-युग जीबथु बसथु लाख कोस।
हमर अभाग हुनक नहि दोस।
हमर करम भेल बिहि बिपरीत।
तेजलनि माधब पुरुबिल पिरीत।
हृदयक बेदन बान समान।
आनक दुःख आन नहि जान।
भनइ बिद्यापति कवि जयराम।
दैब लिखल परिनत फल बाम।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा कहती है कि मेरे प्रियतम कृष्ण दूर के लिये प्रस्थान कर गये है। हे सखि! उनका कुशल सवाद आकर कोई नही सुनाता। वे चाहे लाख कोस की दूरी पर भी जाकर रहे पर दीर्घायु होकर युग-युग जिए—मेरी तो यही कामना है, क्योकि मैं ही अभागिन थी, जो उनसे बिछुड गई, इसमे उनका क्या कसूर है। यह सब तो मेरे भाग्य का ही विरोध या दोष है कि जो कन्हैया ने भी मेरे पूर्व प्रेम का परित्याग कर दिया, मुझे विरहिणी बना दिया। उनके विरह से हृदय मे जो दु:ख हो रहा है, वह वाण के समान कष्टकारक लग रहा है, किसी अन्य का दु ख कोई अन्य नही समझ सकता। कविवर विद्यापति कहते है कि कवि जयराम, दैव का लिखा हुआ परिणाम तो विपरीत ही फलता है! आशय यह है कि जो कुछ ईश्वर भाग्य मे लिख देता है उसका परिणाम तो प्रतिकूल ही होता है।

विशेष—भारतीय विरहिणी की अपने प्रियतम के प्रति पीर भरी भावना भी कितनी मगलमयी होती है जिसके सहारे वह अपने जीवन के पतझर मे भी विचलित नही होती; उसकी शुभ कामना का कारुणिक प्रकटीकरण इन पक्तियों में दृष्टव्य है—

"युग-युग जीबथु बसथु लाख कोस।
हमर अभाग हुनक नहि दोस।

हमर करम भेल बिहि बिपरीत।
तेजलनि माघब पुरुबिल पिरीत।"

धन्य है ऐसी पावन नारी और उसकी भावना को ! अपने दुख को दुख और सुख को सुख मानने वाला ससार भला पर-पीर को क्या जाने, इस लोक-सत्य की उद्भावना इस पक्ति मे बडी स्वाभाविक हुई है—

"आनक दुख आन नहि जान।"

और विधि लिखित करमगति या भाग्यवाद के प्रति कितना गहरा असन्तोष का भाव प्रकट हुआ है—

"दैब लिखल परिनत फल बाम।"

सम्पूर्ण पद मे दुख एव आदर्शवाद की प्राण-रससिक्त उद्भावना हुई है।

शब्दार्थ—रटल दुर=दूर चला गया। देस=देश। केआ=कोई। सनेस=सन्देश। युग-युग जीबथु=दीर्घायु हो। बसथु=बसे, रहे। हमर=हमारा। हुनक=उनका। बिहि=विधि, विधाता, ब्रह्मा। तेजलनि=त्याग दिये। पुरुबिल=पहले का, पूर्व का। पिरीत=प्रीति। क=का। बेदन=वेदना, दुख, कष्ट। बान=वाण। आनक=दूसरे का। नहि जान=नही जानता है। दैब=विधाता। बाम=बायाँ, उलटा, विपरीत, प्रतिकूल।

(१६८)

जौबन रूप अछल दिन चारि।
से देखि आदर कएल मुरारि।
अब भेल झाल कुसुम रस छूछ।
बारि बिहून सर केओ नहि पूछ।
हमरि ए बिनती कहब सखि रोय।
सुपुरुष बचन अफल नहि होय।
जाबे रहइ धन अपना हाथ।
ताबे से आदर कर संग साथ।
धनिकक आदर सब तहँ होय।
निरधन बापुर पुछय न कोय।
भनइ बिद्यापति राखब सील।
जो जग जीबिए नबओ निधि मील।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

नायिका कहती है कि चार दिन का यौवन एव रूप मैंने भी पाया था और उसे देखकर माधव ने भी मेरा आदर अर्थात् मुझ से प्रेम किया था। अब तो मैं फीके

मुरझाए पुष्प की भाँति नीरस हो गई हूँ। जल से रहित तालाब को भला कौन पूछता है, कोई नही पूछता। हे सखी ! मेरी यह विनती उनसे रो-रोकर कहना कि सत्पुरुषो की वाणी कभी असत्य या झूठी नही होती। आशय यह है कि कृष्ण से यह कहना कि तुम जैसे महान् पुरुष किसी अबला से छल नही करते। धनवान का तो प्रत्येक जगह आदर होता है, लेकिन निर्धन बेचारे की कोई कही बात भी नही पूछता। आशय यह है कि जब तक मुझ अबला नारी के पास रूप रूपी धन रहा तब तक कृष्ण ने मुझसे प्यार किया और उसके न रहने पर त्याग दिया। कविवर विद्यापति कहते है कि हे नारी ! तुम शील मर्यादा धारण किये रहो अर्थात् रूप रूपी निधि खो जाने की चिता न करो। बस, अपने नारीत्व की मर्यादा की रक्षा करो। इस प्रकार से यदि ससार मे जीवित रहोगी तो तुम्हे नवो निधियाँ प्राप्त हो सकती है। आशय यह है कि कष्टो मे जी कर ही दुर्लभ इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है—इसी दशा मे कृष्ण मिलेगे।

विशेष—कविवर विद्यापति के पदो मे एक भाव की सगति (unity) विशेषत हुई है जो गीति-काव्य की आत्मा है। प्रस्तुत पद की प्रारम्भिक पक्तियो मे यौवन के खडित प्रेमाकर्षण का भाव-प्रकाशन मार्मिक हुआ है—

"जौबन रूप अछल दिन चारि।
से देखि आदर कएल मरारि।"

वास्तव मे प्राय. यौवनावस्था का प्रणय-व्यापार का आधार क्षणिक सौन्दर्य दर्शन ही होता है, और फिर तो केवल मन को मसोस देने वाली उसकी स्मृति ही शेष रह जाती है जिसकी सिद्धि के लिये पद मे अनेकानेक लोक एव प्राकृतिक उदाहरणो का समावेश कर उसे भावना से चितनपरक बना दिया गया है किंतु विशेषता यह है कि उसकी सरसता मे व्याघात नही पहुँचाया गया। सौन्दर्य के बीत जाने पर वह गध-रसहीन शुष्क सुमन की भाँति रह गया और उसके अनाकर्षण का भाव जलहीन तालाब के उपमान द्वारा उदाहरण के माध्यम से यो व्यक्त किया गया—

"बारि बिहून सर केओ नहि पूछ।"

और धनवान के आदर के समक्ष निर्धन का क्या महत्त्व !—

"धनिकक आदर सब तहँ होय।
निरधन बापुर पुछय न कोय।"

लोक-सत्य की यथार्थ अभिव्यजना है यहाँ ! किंतु फिर भी इस ससार के अपरिमित ऐश्वर्य के प्रति कवि का निराशावादी या पलायनवादी दृष्टिकोण नही, वह उसके प्रति आदर्शवादी और आस्थावादी है। सासारिक सुख-ऐश्वर्य का आकर्षण उसे सदा है, वह विरक्त नहीं होना चाहता—

"भनइ विद्यापति राखब सील।
जो जग जीबिए नबग्रो निधि मील।"

सचमुच, जगजीवन के प्रति इस प्रकार का दृष्टिकोण मगलकारी ही कहा जाएगा। बिहारी ने भी कहा है—

"इहि ग्रासा ग्रटक्यो रहे ग्रलि गुलाब के मूल।
ऐहें फेरि बसंत ऋतु इन डारन वे फूल।"

शब्दार्थ—जौबन=यौवन, जवानी। रूप ग्रछल=रूप था। से=यह। कएल=किया। भेल=हुग्रा। झाल=नीरस, फीका। छूछ=रसहीन। ए=यह। सुपुरुष=सत्पुरुष। जावे=जब तक। तावे=तब तक। धनिक=धनवान। क=का। निरधन=निर्धन। बापुर=बेचारा। मील=शील। जीबिए=जिन्दा रहने पर। नबग्रो निधि=देवताग्रो की नवनिधि, जैसे—महापद्म, पद्म, शख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील ग्रौर खर्व। मील=मिलेगी, प्राप्त होगी।

(१६३)

सखि हे हमर दुखक नहि ग्रोर।
ई भर बादर माह-भादर।
सून मदिर मोर।
झपि घन गरजंति संतत
भुवन भरि बरसंतिया।
कन्त पाहुन काम दारुन
सघन खर सर हतिया।
कुलिस कत सत पात मुदित
मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक
फाटि जायत छातिया।
तिमिर दिग भरि घोरि यामिनि
ग्रथिर बिजुरिक पाँतिया।
बिद्यापति कह कइसे गमाग्रोब
हरि बिना दिन-रातिया।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

नायिका कहती है कि हे सखी! मेरे दुख का तो ग्रन्त नही ग्रर्थात् वह ग्रपार है। जल से भरा हुग्रा लबालब बादल, ग्रौर ये भादो का काम-पीडित करने वाला महीना, ग्रौर हाय, मेरा गृह प्रियतम के बिना सूना-सूना है! घिर-घिरकर बादल निरन्तर गरजता है ग्रौर लोक भर मे—सर्वत्र—बरसत है। इस ऐसे विषम समय में मेरे

प्रियतम परदेस मे प्रवासी बने है और कठोर कामदेव कस-कसकर जहरीले तीखे बाण मार मुझे घायल कर रहा है। सौ-सौ बार कैसा घोर वज्रपात हो रहा है और प्रसन्न-चित्त मत्त मयूर उन्मत्त हो-होकर नाच रहा है। मतवाले मेढक और डाहुक इतने जोर-जोर से बोल रहे है, कि लगता है जैसे मेरी छाती विदीर्ण हो जाएगी। समस्त दिशाएँ अन्धकारपूर्ण हो रही हैं। अत: काली रात बडी भयावनी प्रतीत होती है। चमकती हुई चचल बिजलियो की रेखाएँ भी रह-रहकर दीखती है। कविवर विद्यापति कहते है कि सचमुच वह अबला नारी ठीक ही कहती है कि बताओ ऐसी स्थिति मे भला कृष्ण के बिना मै कैसे दिन-रात व्यतीत करूँ ?

विशेष—विरहिणी के लिये जीवन का दु:ख छाती पर धरा पहाड-सा प्रतीत होने लगता है। प्राकृतिक सुखद दृश्य उसके काम-पीडन को और बढा देते है। भादों की झमाझम बरसती हुई वर्षा, गरजता हुआ मेघ उसका जीवन भार कर देता है। इस सब कुछ की स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रस्तुत पद मे उत्कृष्टता से हुई है। अन्धकारमयी चचला चमकती हुई भयानक रात का चित्रण कवि ने कितने कलात्मक शब्दो मे किया है, देखिए—

"तिमिर दिग भरि घोरि यामिनि
अथिर बिजुरिक पाँतिया।"

वर्षा, बिजली व बादल के विकल कर देने वाले वातावरण से विद्यापति की भोली विरहिणी नायिका ही क्या तुलसी के आदर्श पुरुप राम भी विचलित होकर एक बार चीख उठे थे, उद्धरण स्मरण से दे रहा हूँ—

"घन घमण्ड नभ गरजत घोरा।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा।
दामिनि दमक रह न घन माहीं।
खलो की प्रीति यथा थिर नाहीं।"

शब्दार्थ—हमर=हमारे। क=का, की। ओर=सीमा, आखिरी तट। ई=यह। बादर=बादल। भादर=भादो। मोर=मेरा। गरजति=गरजता है। भुवन=लोक। बरसतिया=बरसता है। पाहुन=परदेस, विदेश, कुटुम्ब के घर। दारुन=दारुण, कठोर। सर=शर, बाण, तीर। कुलिस=बिजली, वज्र। कत=कितना। सत=शत, सौ। पात=टूटना, गिरना, पडना। मुदित=खुशी, प्रसन्न। मातिया=उन्मत्त, मतवाला। दादुर=मेढक। डाक=डाकना, चिल्लाना, ज़ोर से। दिग=दिशा। तिमिर=अन्धकार। यामिनि=रात। अथिर=अस्थिर, चचल। बिजुरिक=बिजली का। पाँतिया=कतार। कइसे=किस प्रकार। गमाओब=व्यतीत करेगी।

(२००)

मोर बन बन सोर सुनइत
बढ़त मनमथ पीर ।
प्रथम छार असाढ आओल
अबहु गगन गँभीर ।
दिबस रयना अरे सखी
कइसे मोहन बिनु जाए ।
आबए साओन बरिख भाओन
घन सोहाओन बारि ।
पंचसर-सर छुटत रे कइसे
जोअए बिरहिन नारि ।
आबए भादो बेगर माधो
काँसों कहि एहि दुख ।
निडर डर डर डाक डाहुक
छुटत मदन बनूक ।
अछूह आसिन गगन-भासि न
घनन घनघन रोल ।
सिंह भूपति भनइ ऐसन
चतुर मास कि बोल ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका कहती है कि वन-वन मे मोर की शोर-ध्वनि को सुनकर काम की पीडा हृदय मे बढ चली है। अभी तो आषाढ़ की वर्षा का पहला बादल ही बरसा है या पहली ही बरखा हुई है फिर भी अभी आकाश जलपूरित बादलो से आच्छादित दीखता है । हे सखी ! ऐसे मे प्रियतम मोहन के बिना मेरे दिन-रात कैसे व्यतीत हो ? अब आगे सावन का मन-भावन मौसम आ रहा है, मनोरम वर्षा होगी। अम्बर पर सुहावने बादल घिरेंगे और कामदेव का विषैला वाण छूटेगा, कहो कि ऐसे मे विरहिणी स्त्रियाँ अपने प्रियतम के बिना कैसे जीवित रह सकेंगी ? इसके बाद भादो का महीना भी आ रहा है, कृष्ण के बिना काम-पीडन का यह गुप्त रहस्य और किस से कहा जा सकता है ? निर्भय डाहुक की डर-डर ध्वनि इस प्रकार हो रही है मानो कामदेव की बन्दूक छूट रही हो। शरद या आश्विन का महीना भी आता है। आकाश स्वच्छ और मेघहीन दीखता है। बादल के गरजने का शोर-शब्द नही सुन पड़ता। राजा शिवसिंह यह कहते है कि ऐसे इन चार महीनों का चातुर्मास्य शृंगार-वर्णन होता है। अर्थात् यह चार मास—आषाढ, सावन, भादो और आश्विन—विरहिणीयों-

विरहीयों के लिये कष्टदायक होते हैं ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कवि ने आषाढ से आश्विन मास तक—चातुर्मास्य—का वर्णन किया है जो विरहिणी के काम-पीडन को अत्यधिक कष्टदायक बना देता है। कुछ कवियो ने इस चातुर्मास्य की अवधि सावन से मानी है जिसका अन्त कार्त्तिक तक होता है। अस्तु,—यहाँ डाहुक पक्षी के 'डर-डर' स्वर के प्राण-विदारक शब्द की सगति कामदेव की बन्दूक छूटने के भयानक शब्द से मिलाई है जो भयाकुला विरहिणी की मानसिक दशा का प्रकाशन ज्यो का त्यो अनुभव कराने मे समर्थ है, देखिए—

"निडर डर डर डाक डाहुक।
छुटत मदन बनूक।"

यहा 'ड'···'ड' की एक साथ परस्पर रगडती हुई आवृत्ति से ऐसी ध्वनि निकलती है मानो बन्दूक ही छूट रही है। यहाँ शब्द-ध्वनि मन के भय-भाव को जाग्रत करने मे पूर्णतः समर्थ हुई है। प्रकृति-निरीक्षण-वर्णन की दृष्टि से पद मे कई स्थलों पर कवि को आशातीत सफलता मिली है। उदाहरण के लिए ये पक्तियाँ पठनीय है—

"प्रथम छार असाढ आओल
अबहु गगन गँभीर।
× × ×
अछूह आसिन गगन-भासि न
घनन घनघन रोल।"

विद्यापति के पदो का ऐसा प्रकृति-वर्णन शब्द-भाव और चित्रण की दृष्टि से पर्याप्त कलात्मक और भावमय भी बना है।

शब्दार्थ—सोर=शोर। सुनइत=सुनकर। मनमथ=कामदेव। आओल=आया। रयना=रात। आबए=आता है। बरिख=वर्षा। सोहाओन=सुहावना। बारि=जल। पचसर=कामदेव। सर=वाण। कइसे=कैसे। जीअए=जी सकती है। बेगर=बगैर, बिना। कॉसो=किसीसे। निडर=ढीठ, निर्भीक। मदन=कामदेव। बनूक=बन्दूक। भासि न=नही दीखता। रोल=आवाज, ध्वनि। सिह भूपति=राजा शिवसिह। ऐसन=इस प्रकार। चतुर=चार।

(२०१)

कुटल कुसुम नव कुंज कुटिर बन
कोकिल पचम गाबे रे;
मलयानिल हिमसिखर सिधारल
पिआ निज देश न आबे रे।

चानन चान तन अधिक उतापए
उपबन अलि उतरोले रे।
समय बसंत कंत रहु दुर देस
जानल बिधि प्रतिकूले रे।
अनमिख नयन नाह मुख निरखइत
तिरपित न भेल नयाने रे।
ई सुख समय सहए एत संकट
अबला कठिन पराने रे।
दिन-दिन खिन तनु हिम कमलिनि जनु
न जानि कि जिब परजत रे।
बिद्यापति कह धिक-धिक जीवन
माधब निकरुन कत रे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नवल कुंजो, कुटीरो एव वनो मे पुष्प प्रस्फुटित हो गये है और कोकिला पचम स्वरो मे गाने लगी है। मलयवात भी हिमालय के शिखर की ओर प्रस्थान कर गया—दक्षिण पवन डोलने लगा—किन्तु मेरा प्रियतम तो विदेश से अपने देश को लौटकर फिर भी नही आ रहा है। चन्दन और चन्द्रमा शरीर की जलन और अधिक बढा रहा है। इधर उपवन मे मधुकर-दल गुजार करने लगे। यह बसत ऋतु का समय और मेरे प्रियतम दूर देस के प्रवासी है—अत मैं समझ गई कि विधाता मेरे प्रतिकूल है। मैं अपने प्रियतम का मुख निर्निमेष देखती रही लेकिन उनके रूप को निहारकर आँखें कभी तृप्त न हो पायी। हाय, यह समय तो सुख भोगने का था लेकिन इतना सकट झेलना पडा है, लगता है कि मुझ अबला का प्राण बहुत कठोर है, नही तो इतने दु ख मे उसे निकल जाना चाहिये था। दिनो-दिन मेरा तन पाले मे गलती कमलिनी के तन की भाँति क्षीण हुआ जा रहा है। जीवन-पर्यन्त अभी क्या और भोगना है, नहीं जानती।

कविवर विद्यापति कहते है कि सचमुच इस कठोर विरह के विषाद से भरा जीवन धिक्कार है—श्री कृष्ण बडे ही निष्करुण पति है। यहाँ 'धिक्कार' शब्द कठोर पति के जीवन के लिये भी माना जा सकता है।

विशेष—प्रस्तुत पद में बसत में व्याप्त विरहिणी के विरह का प्रकाशन बडा कलात्मक एव भावमय हुआ है। सर्वप्रथम स्वतत्र प्रकृति-चित्रण बडा मोहक हुआ है—

"फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर बन
कोकिल पंचम गाबे रे।

मलयानिल हिमसिखर सिधारल
पिया निज देश न आवे रे।"

विद्यापति का प्रकृति-चित्रण यथास्थल स्वतत्र होते हुए भी मानवीय भावो-अनुभावों को उत्प्रेरित करता चला है, अत उसमे कोमल मर्म की कोमल अनुभूतियो को छूने की क्षमता सर्वत्र बनी रही है। कवि परम्परा के अनुसार मिलनावस्था के सुखद उपकरण—चन्दन, चन्द्रमा—विरहिणी के तन को गला रहे है—

"चानन चान तन अधिक उतापए"

कविवर विद्यापति के अतर मे रूपाकर्षण का भाव मचलता रहा और सम्भवत इसीलिये उनकी शृ गारिक आत्माभिव्यक्ति निश्च्छल रही है। इस सत्य का प्रतिपादन उनकी इस पक्ति मे कितने सरल शब्दो द्वारा हुआ है—

"अनमिख नयन नाह मुख निरखइत
तिरपित न भेल नयाने रे।"

इसी भाव की पुनरावृत्ति उनकी इस प्रसिद्ध पक्ति मे भी हुई है—

"जनम अवधि हम रूप निहारल
नैन न तिरपित भेल।"

कीट्स् की इस प्रसिद्ध पक्ति मे भी सौन्दर्य का यही आकर्षक भाव व्यजित है किंतु वह इतना व्यक्ति सापेक्ष नही जितना कविवर विद्यापति का है—

"A thing of beauty is a joy for ever."

वस्तुत. विद्यापति की सौन्दर्य-मूलक (Aesthetic) भावना बडी ही प्रौढ थी। विरहिणी के कृशगात की उपमा कितनी मौलिक एव प्रभावशालिनी है, देखिए—

"दिन दिन खिन तनु हिम कमलिनि जनु
न जानि कि जिब परजंत रे।"

पाले मे गली कमलिनी की जो दशा है वही दशा विरह-जली विरहिणी की है। कितना मार्मिक और मौलिक चित्रवत् सादृश्य है! वस्तुत कवि की ऐसी पक्तियाँ उसकी महाप्राण अभिव्यक्तियो की अविनश्वर सजीव रेखाकृतियाँ है।

शब्दार्थ—फुटल=फूटा, प्रस्फुटित हुआ। कुसुम=फूल। नव=नया। हिमसिखर=हिमालय की चोटी। सिधारल=गया। निज=अपने। न आबे=नही आ रहा है। चानन=चन्दन। चान=चन्द्रमा। अलि=भौरा। कत=पति, प्रियतम। जानल=समझ गई, जान गई। प्रतिकूल=विपरीत, उल्टा, बाम। अनमिख=एकटक। नाह=स्वामी, पति। तिरपित=तृप्ति। न भेल=नही हुआ। नयाने=नयन। ई=यह। एत=इतना। अबला=स्त्री। पराने=प्राण। खिन=खिन्न, क्षीण। हिम=ठंड, पाला, बर्फ। निकरुन कत=कठोर प्रियतम।

(२०२)

सजनी कानुक कहबि बुझाई ।
रोपि पेमक बिज अंकुर मूड़लि
बाँचब कौन उपाई ।
तेल - बिन्दु जैसे पानि पसारिए
ऐसन मोर अनुराग ।
सिकता जल जैसे छनहि सूखए
तैसन मोर सुहाग ।
कुल - कामिनि छलौं कुलटा भए गेलौं
तिनकर बचन लोभाई ।
अपने कर हम मूँड़ मुडाएल
कानु से प्रम बढ़ाई ।
चोर - रमनि जनि मन मन रोअई
अम्बर वदन छिपाई ।
दीपक लोभ सलभ जनि धाएल
से फल भुजइत चाई ।
भनइ बिद्यापति इह कलजुग रित
चिन्ता करह न कोई ।
अपन करम - दोष आपहि भुंजइ
जे जन पर-बस होई ।

भावार्थ—'विरह' वर्णन प्रसगक्रम के अनुसार कविवर विद्यापति इस पद मे लिखते है—

राधा कह रही है कि हे सखी ! श्री कृष्ण को भली-भाँति समझा-बूझाकर कहना कि मुझमे उन्होने प्रेम का बीज उपजाया और फिर उसका अकुर ही उखाड फेंका, अब मैं किस उपाय से बच सकती हूँ ? जिस प्रकार तेल की बूंद पानी मे पडकर फैल जाती है उसी प्रकार उनके साथ मेरी प्रीति है। आशय यह है कि पानी मे पडी और फैली हुई तेल की बूंद की भाँति मेरी प्रीति भी श्री कृष्ण के स्नेह-जल मे फैल गई है। किंतु हाय, मेरा सौभाग्य भी वैसा ही तुच्छ है—क्षणिक सिद्ध हुआ—जैसे कि रेत या बालू मे जल क्षण मे ही सूख जाता है। मैं कुलवधू थी और अब उनके प्रेम-छल के फलस्वरूप कुल्टा या छिनार स्त्री बन गई हूँ—लोक-बदनामी मेरे सिर मढ गई—उनके मीठे मिथ्या प्रेम-वचनो ने मुझे कुछ इस प्रकार से लुभा लिया जैसे मैंने अपने हाथो अपना सिर मूँड लिया कि जो श्री कृष्ण से अवैध प्रीति बढाई। चोर की रमणी की भाँति आचल मे मुख छिपाकर मैं मन ही मन में विलाप कर रही हूँ। मैं श्री कृष्ण के प्रेम को पाने के लिये इस

प्रकार बेतहाशा दौड़ी जैसे कि दीपक के लोभाकर्षण में शलभ दौड़ता है और बस जल मरता है; उसी प्रकार मुझे भी प्रेम का फल या दुःख भोगना चाहिये—भोग रही हूँ, जो विरह-ज्वाला मे निरतर जल रही हूँ। कविवर विद्यापति कहते है कि इस कलियुग की प्रीति की रीति ही ऐसी है, इसकी कोई चिता न करे। जो व्यक्ति दूसरे के वश मे—प्रेम के वश मे—हो जाते हैं उन्हे अपने प्रेम किये का दोष इस कलियुग मे अवश्य ही भोगना होता है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे विरहिणी—प्रोषितपतिका—नायिका की निश्छल प्रेम-पीड़ा की अनुभूति स्वाभाविक तीव्रता से फूट पडी है। उसके प्रणय एव दुर्भाग्य का पारस्परिक विरोध और विभेद कितना करुणाजनक है, उसे इन पक्तियो मे देखिए—

"तेल - बिन्दु जैसे पानि पसारिए
ऐसन मोर अनुराग।
सिकता जल जैसे छनहि सूखए
तैसन मोर सुहाग।"

प्रियतम के अनुराग-जल मे उस अबला का प्रेम लघु होकर भी अपनी लघुता मे इतना फैलने-चमकने वाला है जैसे पानी मे पडा तेल-बिन्दु! किंतु उसका फूटा सौभाग्य रेत मे पडे सूखते हुए जल के समान सिद्ध हुआ। कितनी भाव-तीव्रता एव गहरी अनुभूति है!

चोरी-चोरी किए प्रेम के प्रति उसे कितनी घोर यातना सहनी पड रही है, उसकी लोकसम्मत अभिव्यक्ति इन पक्तियो मे कितनी प्रभावशाली बन पडी है—

"चोर - रमनि जनि मन मन रोअई
अम्बर बदन छिपाई।
दीपक लोभ सलभ जनि धाएल
से फल भुजइत चाई।"

"से फल भुजइत चाई" मे मानो प्राण ही चीख उठे हो। प्रथम पक्ति "सजनी कानुक कहबि बुझाई" मे ही मूक वेदना का विस्फोट-सा होता प्रतीत होता है। विरह की द्रावक अनुभूति का प्रभावशाली प्रकाशन प्रस्तुत पद की बडी विशेषता है।

शब्दार्थ—कानु=श्री कृष्ण। क=को। कहबि बुझाई=समझाकर कहना। रोपि=बीज का लगाना। बिज=बीज। अकुर मूडलि=अकुर को उखाड़ फैका। बाँचब=बचूँगी। कौन उपाई=किस उपाय से। पानि=पानी। पसारिए=पसर जाना, फैल जाना। ऐसन=ऐसा। सिकता=बालू या रेत। छनहि=क्षण मे। तैसन=वैसा। मोर=मेरा। सुहाग=सौभाग्य। कुल-कामिनि छलौ=कुलवधू थी। कुलटा भए गेलौं=छिनार स्त्री बन गई। तिनकर बचन=उनके, श्री कृष्ण के मिथ्या प्रेम-वचन। लोभाई=लुभायमान हुई। कर=हाथ। मूँड मुडाएल=सिर मुडा दिया, आशय है अपकार कर लिया। चोर-रमनि=चोर की स्त्री। जनि=भाँति। अम्बर=

आचल। बदन=मुख। सलभ=शलभ, पतगा। धाएल=दौड़ना। से फल=उसका फल या परिणाम। भुजइत चाई=भोगना चाहिये। इह=इस। रित=रीति। भुजइ=भोगता है। जे जन=जो लोग। पर-बस=दूसरे के आधीन।

(२०३)

के पतिआ लए जाएत रे
मोरा पियतम पास।
हिए नहि सहए असह दुख रे
भेल साओन मास।
एकसरि भवन पिया बिनु रे
मोरा रहलो न जाय।
सखि अनकर दुख दारुन रे
जग के पतिआय।
मोर मन हरि हरि लय गेल रे
अपनो मन गेल।
गोकुल तजि मधुपुर बस रे
कत अपजस लेल।
विद्यापति कवि गाओल रे
धनि धरु पिय आस।
आओत तोर मनभावन रे
एहि कातिक मास।

भावार्थ—'विरह' वर्णन के प्रसगक्रम मे कविवर विद्यापति यहाँ लिखते है—

राधा विरहाकुल होकर कह रही है—हाय, कौन मेरा ऐसा अपना है जो पिया के पास मेरी विरह-पाती-काती ले जाय ? श्रावण का मास है, उर मे प्रिय-वियोग का असह दु:ख मैं सह नही पा रही हूँ। इस अकेले-अकेले सूने-सूने घर मे प्रियतम के बिना मुझसे रहा नही जाता। हे सखी ! अन्य के दारुण दु:ख के ऊपर यह ससार कब विश्वास करता है ?—कब सहानुभूति, स्नेह और सम्वेदन रखता है ? मनहरण कृष्ण मेरा मन हर कर ले गये······अरे ले क्या गये अपना मन ही अपना न रहा, स्वय उनके साथ हो लिया। गोकुल को छोडकर और मथुरा कचनपुरी मे बसकर उन्होने कितना अपयश लिया है। आशय यह है कि श्री कृष्ण ने गोकुल को मुझे (राधा को) त्यागकर बडा बुरा किया है। कविवर विद्यापति गाते है कि हे सुन्दरी राधे ! प्रिय-मिलन की आशा रखो, देखो, तुम्हारे चितचोर इसी कार्त्तिक के महीने मे आ जायेंगे।

विशेष—श्रावण मास कवियो के विरह-वर्णन का विशेष विषय रहा है। कविवर विद्यापति ऋतु और प्रकृति-वर्णन के सिद्धहस्त कवि थे। उन्होने प्राकृतिक

इतिवृत्त वर्णन से लेकर तद्विषयक मानवी भावनाओं के आवेगों-उद्वेगों की सृष्टि भी उसके साथ ही की है और वे उसमे पूर्णतः सफल हुए है। प्रस्तुत पद में प्रोषित-पतिका—विरहिणी नायिका— के लिये श्रावण माह पति बिना दुःखदायी हो गया है। एक ही आधार उपाय है केवल उस तक पाती भेजने का जिससे उसे कुछ शाति मिल जायगी—पर यही एक मनोगत भावना बिजली बनकर छू जाती है—

"के पतिआ लए जाएत रे
मोरा पियतम पास।"

आज भी न जाने कितनी विरहिणीयो और प्रेमिकाओ के लिये यह प्रश्न शूल बनकर छाती चीरता रहता है। इस प्रश्न को सहज गेयत्व मे बाँधकर विद्यापति ने अपने पद को अमर बना छोडा है।

शब्दार्थ—के=कौन। पतिआ=पाती, प्रणय-पत्रिका। लए जाएत=ले जाय। हिय=हृदय, उर। असह=जो सहा न जा सके। साओन=श्रावण। एकसरि भवन=अकेला सूना घर। रहलो न जाय=रहा नही जाता। अनकर=अन्य का, दूसरे का। दुख दारुन=घोर दुख। जग=ससार। के पतिआय=कब विश्वास करेगा। हरि=कृष्ण। हरि लय गेल=हर ले गए। मधुपुर=मथुरा नगर। अपजस=बुराई। धनि=सुन्दरी राधा। धरु पिय आस=प्रियतम श्री कृष्ण के मिलन की आशा। आओत=आवेगा। मनभावन=मन को भाने वाला, चित्तचोर श्री कृष्ण। एहि=इसी। कातिक=कार्त्तिक।

(२०४)

सजनी, के कह आओब मधाई।
बिरह - पयोधि पार किए पाओब
मझु मन नहि पतिआई।
एखन - तखन करि दिवस गमाओल
दिवस - दिवस करि मासा।
मास - मास करि बरस गमाओल
छोड़लूँ जीवन - आसा।
बरस - बरस करि समय गमाओल
खोयलूँ कानुक आसे।
हिमकर - किरण नलिनि जदि जारव
कि करब माधब मासे।
अंकुर तपन - ताप जदि जारब
कि करब बारिद मेहे।

इह नब जौबन बिरह गमाओब
कि करब से पिया गेहे।
भनइ बिद्यापति सुनु बर जौबति
अब नहि होइ निरासे।
से ब्रजनन्दन हृदय अनन्दन
झटित मिलब तुअ पासे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका कहती है कि हे सखी! कौन कहता है कि माधव आयेगा? इस विरह रूपी समुद्र को मै पार कर पाऊँगी, ऐसा तो मेरे मन को विश्वास नही होता। अब-तब करते-करते तो दिवस व्यतीत किये, दिवस-दिवस करते-करते माहो और माह-माह करते-करते वर्षा बिता दिये, अब तो जीवन की आशा भी छोड दी है, बरस-बरस की राह देखते-देखते कृष्ण से मिलने की आशा भी खो चुकी हूँ। चन्द्रमा की किरण यदि कमलिनी को जला ही डाले, तो फिर मधुमास आकर उसका क्या कर सकता है? यदि सूर्य की ज्वाला अकुर को जला कर भस्म कर दे, तो फिर बादल की बूँदे बरस कर ही क्या कर देगी अर्थात् यदि समय पर नही बरसी। यह मेरा नया यौवन यदि विरह मे ही रोते, चिल्लाते, बाट जोहते, पछताते बीत जायेगा तो फिर उस प्रियतम के घर पर जाकर ही क्या करूँगी अर्थात् जबकि खत्म हो जायेगा और इसी मे जवानी जल जायेगी। कविवर विद्यापति कहते है कि हे श्रेष्ठ युवती! अब निराशा नही होगी। वह ब्रजनन्दन हृदय को आनन्द देन वाले शीघ्र मिलने के लिये तुम्हारे पास आयेंगे।

विशेष—प्रस्तुत पद मे विरहजन्य प्रतीक्षा और विवशता की पीडा सुन्दर आलकारिक वर्णन द्वारा प्रकट हुई है। आलकारिक प्रयोग कही भी अस्वाभाविक नही हो पाए वरन् उनसे मनोभावो का तीव्र निष्क्रमन होता प्रतीत होता है, देखिए—

"हिमकर - किरण नलिनि जदि जारब
कि करब माधब मासे।
अंकुर तपन - ताप जदि जारब
कि करब बारिद मेहे।"

इसके लिये कहा भी है—

"कहा बरखा जब कृषी सुखानी"

'बिरह-पयोधि' मे रूपक का विराट् प्रयोग बन पडा है। प्रतीक्षा की अवधि का विवरण कितना भावसागिक हो सका है—क्षण . दिवस · मास : वर्ष पर वर्ष······यों ही बीत गए, केवल एक प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा मे—

"एखन-तखन करि दिवस गमाओल
दिवस - दिवस करि मासा।

मास - मास करि बरस गमाग्रोल
छोड़लूं जीवन - श्रासा।"

यहाँ इस अवधिक्रम का व्यतीत होना किसी भुक्तभोगी को ही सत्यत: समझ में आ सकता है और तब अंतिम मजिल मृत्यु "छोडलूं जीवन-आसा" उक्ति मे कितनी मार्मिकता से व्यंजित हुई है। सरलता से विरह की पीडा का गम्भीर दिग्दर्शन जितना विद्यापति करा सके है उतना कम ही कवियो—घनानद, जायसी को छोडकर—ने कराया है।

शब्दार्थ—के=कौन। आओब=आयेगा। मधाई=माधव। पयोधि=सागर। किए=कर। एखन=अब। तखन=तब। करि=करके। गमाओल=व्यतीत किया। छोडलूं=छोड दिया, त्याग दिया। खोयलूं=खो दिया। कानु=कन्हैया। क=का। हिमकर=चन्द्रमा। नलिनि=कमलिनी। जारब=जलायेगा। बारिद=बूंद, जल। मेहे=बादल की। इह=यह। नव=नया। जौबन=यौवन। गेहे=घर पर। से=वह। झटित=तुरत, शीघ्र। मिलब=मिलेंगे। तुअ=तुम्हारे। पासे=पास आकर।

(२०५)

अकुर तपन ताप यदि जारब
कि करब बारिद मेह।
ई नव जौबन बिरह गमाओब
कि करब से पिया गेह।
हरि हरि के इह दैव-दुरासा।
सिन्धु निकट जदि कंठ सुखाएव
के दुर करब पियासा।
चंदन - तरु जब सौरभ छोड़ब
ससधर बरिखब आगि।
चिन्तामनि जब निज गुन छोड़ब
की मोर करम अभागि।
साओन माह घन-बिन्दु न बरिखब
सुरतरु बाँझ कि छाँदे।
गिरिधर सेबि ठाम नहिं पाएब
बिद्यापति रहु धाँदे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

मार्तण्ड की ऊष्णता यदि पहले ही अकुर को जला दे तो उसपर बादल मेह बरसाकर ही क्या करेगा? वह फिर हरा नही हो सकता। मेरा नया यौवन यदि मैं विरह-वियोग में ही बिता डाला तो फिर प्रियतम घर आकर ही क्या करेंगे?

हरे, हरे ! दैव की यह कैसी प्रवचना है ? यदि सागर के समीप रहने पर भी कठ सूखने लगे तो फिर पिपासा को और कौन शात कर पायेगा ? चन्दन-तरु ही अपनी खुशबू को छोड दे और सुधाकर शीतलता छोडकर आग बरसाने लगे तथा चिन्तामणि स्वय अपने मुह मॉगे दान के महान् गुण को छोड दे—ये मेरा कैसा दुर्भाग्य है ? या मेरे कर्म कितने अभागे या निम्न है । अर्थात् प्रियतम सर्वगुण-सम्पन्न होते हुए भी, मेरे हाल को जानते हुए भी, मेरी सुधि न ले तो यह मेरा ही दुर्भाग्य है । सावन के महीने मे भी बादल बूँद जल न बरसाए , कल्पतरु बध्या की भॉति इच्छित फल प्रदान न करे—यह सब कुछ किस भॉति हुआ है ? बडा आश्चर्य है कि कृष्ण की सेवा के लिये स्थान नही मिलता । विद्यापति कहते है कि मुझे तो उक्त नारी की कही गई बातो पर विश्वास नही होता, सदेह होता है । आशय यह है कि प्राकृतिक तत्त्व अपने गुण त्याग दे ऐसा न तो कभी हुआ है और न होने की ही आशा की जा सकती है, क्योकि अपने गुणो को छोडने के लिये कोई प्रस्तुत नही होता, भला फिर लोकनायक कृष्ण अपनी प्रेमिका या दासी के प्रेम को कैसे ठुकरा सकते है ?

विशेष—कहा है "जो जाके न आये जवानी देखी"—बीतती, ढलती, जलती हुई जवानी के प्रति विरहिणी की यह चीत्कार सीधी प्राणो के पार सुनाई पडती है—

"अकुर तपन ताप यदि जारब
कि करब बारिद मेह ।
ई नव जौबन बिरह गमाओब
कि करब से पिया गेह ।"

यौवन की उद्दाम पिपासा की प्रतिध्वनि विद्यापति के पदो मे—सभोग एव वियोग दोनो ही प्रकार मे—बडी ही पैनी, प्रिय एव मार्मिक रही है । इन पक्तियो मे प्राकृतिक प्रतीको के माध्यम से अतृप्त पिपासा की गूँज गम्भीर हो गई है—

"साओन माह घन-बिन्दु न बरिखव
सुरतरु बॉझ कि छॉदे ।"

अन्त मे विद्यापति का भक्ति भाव जागृत हो गया है और वह सदेह वाही ढग से व्यजित हुआ है—

"गिरिधर सेबि ठाम नहि पाएब
बिद्यापति रहु धॉदे ।"

किंतु इस "रहु धॉदे" मे कृष्ण का परमेश्वरत्व ही व्यक्त करना समझना लक्ष्य है । उसीका अश सद्चिद अश जड़-चेतन मे व्यापा है फिर वह किसी की आराधना से आनदित होकर न रीझे, यह कैसे सम्भव है ? इसीके लिये उन्होने पहले कहा है—"ठाम नहि पाएब" क्योकि सत्य तो यह है—

"सारी भूमि गोपाल की यामै अटक कहा।
जाके मन में अटक है वोही अटक रहा।"

यो इस पद के अत मे कवि का महाप्राण भाव व्यक्त हुआ है।

शब्दार्थ—तपन ताप=सूरज की ज्वाला। बारिद मेह=बरसाती बादल। गमाओब=व्यतीत करूँगी। से=वह। करब=करेगा। के=कौन। पियासा=पिपासा, प्यास। छोडब=छोड देगा, त्याग कर देगा। ससधर=सुधाकर। बरिखब=बरसाने लगे, बरसने लगे। निज=अपना। गुन=गुण। मोर=मेरा। साओन=सावन। सुरतरु=देवताओ का वृक्ष, कल्पतरु, कल्पवृक्ष। ठाम=जगह। धाँदे=आश्चर्य, सदेह आशका।

(२०६)

चानन भेल बिषम सर रे
भूषन भेल भारी।
सपनहुँ हरि नहि आएल रे
गोकुल गिरिधारी।
एकसरि ठाढ़ि कदम-तर रे
पथ हेरथि मुरारी।
हरि बिनु हृदय दगध भेल रे
झामर भेल सारी।
जाह जाह तोंहे ऊधो हे
तोंहे मधुपुर जाहे।
चन्द्रबदनि नहि जीबति रे
बध लागत काहे।
भनइ बिद्यापति तन मन रे
सुनु गुनमति नारी।
आज आओत हरि गोकुल रे
पथ चलु झट झारी।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका कहती है कि अब शरीर मे चन्दन का लगा हुआ कोमल लेप कठोर वाण की तरह लग रहा है और शरीर मे पहने आभूषण बोझ की भाँति भारी लग रहे हैं। गोकुल गिरिधारी श्री कृष्ण स्वप्न मे भी दर्शन देने नही आये अर्थात् गोकुल के गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले कृष्ण अब ऐसा किनारा कर गए हैं। मैं अकेले कदम्ब के तरु के नीचे खडी-खड़ी कृष्ण का पथ देख रही हूँ, प्रतीक्षा कर रही हूँ। कृष्ण के बिना हृदय जल गया है और साडी मैली हो गई है। सखियाँ कहती है कि हे उधव ! अब तुम जाओ, मथुरापुरी को जाओ, क्योंकि चन्द्रमा के समान मुख वाली नायिका राधा

अब जीवित नही रह सकेगी, उसकी हत्या या मृत्यु का पातक किसे लगेगा ? कविवर विद्यापति कहते है कि हे गुणवती नारी ! जरा भली-भाँति सुनो, आज तुम्हारे प्रियतम श्री कृष्ण ही स्वयं गोकुल आ रहे है, इसलिये रास्ते मे जल्दी-जल्दी चलो अर्थात् उनके स्वागत मे विलम्ब न हो जाये। तुम्हारा सारा दुःख शीघ्र दूर होने वाला है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे विरहिणी राधा की स्थिति का चित्रण बडा कारुणिक हुआ है। इन पक्तियों मे उसकी दीन-हीनावस्था का जैसे सजीव चित्र उतार दिया गया है—

"एकसरि ठाढ़ि कदम-तर रे
पथ हेरथि मुरारी।
हरि बिनु हृदय दगध भेल रे
झामर भेल सारी।"

सम्पूर्ण पद मे विप्रलम्भ शृगार का वर्णन प्रधान है।

शब्दार्थ—चानन=सन्दल, चन्दन। भेल=हुआ। बिषम=कठिन, कठोर। सर=शर, वाण। सपनहुँ=स्वप्न मे भी। एकसरि=एकाकी, अकेले। ठाढि=खडी। तर=नीचे। हेरथि=देख रही हूँ। दगध=दग्ध, जला हुआ, दहित। झामर=मुर्झाया, म्लान। जाहु=जाओ। तोहे=तुम। मधुपुर=मथुरा। बध=हत्या। लागत=लगेगा। काहे=किसको। आओल=आ रहे हैं। चलु=चलो। झट झारी=जल्दी-जल्दी, तीव्र गति से, शीघ्रता से।

(२०७)

**बिपत अपत तरु पाओल रे
पुन नव नव पात।
बिरहिन-नयन बिहल बिहि रे
अबिरल बरिसात।
सखि अतर बिरहानल रे
नित बाढ़ल जाय।
बिनु हरि लख उपचारहु रे
हिय दुख न मिटाय।
पिय पिय रटए पपिहरा रे
हिय दुख उपजाब।
कुदिना हित जन अनहित रे
थिक जगत सोभाब।
भनइ बिद्यापति गाओल रे
दुख मेटत तोर।**

हरखित चित तोहि भेटत रे
पिय नन्दकिसोर।

भावार्थ—'विरह' वर्णन के प्रसग मे कविवर विद्यापति यहाँ लिखते है—

राधा कहती है कि हे सखी ! पतझर के सकट मे पडे अपत्र वृक्षो ने फिर से नव-नव पल्लव प्राप्त कर लिये है। आशय यह है कि तरुराजि का लुटा हुआ शृंगार पुन लौट आया है किन्तु मुझ राधा विरहिणी का प्रेमतरु ऐसा झरा है कि फिर न हरिया सका। विधाता ने विरहिणीयों की आँखो को अविरल बरसात हेतु ही निर्मित किया है। आशय यह है कि विरहिणी की आँखो से सदा से आँसू की बरसात झरती रहती है। हे सखी ! मेरे हृदय का विरहानल रोज़ बढता ही जा रहा है। लाख इलाज करने पर भी, बिना श्री कृष्ण के, हृदय का दुःख-दर्द नही जा सकता। पिया-पिया रटकर पपीहा हृदय मे दु ख पैदा करता है। दुर्दिन मे बुरा करने वालो का अवसर लग-लग जाता है और वे भलो के भले मे बुरा कर देते है, इस ससार का स्वभाव ही ऐसा दुष्ट है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे विरहिणी राधे ! गाओ, तुम्हारा कष्ट दूर होगा। तुम्हे प्रफुल्लित हृदय से तुम्हारे प्रियतम कृष्ण मिलेगे। तुम्हारा उनसे मिलन निश्चित है, ऐसा मानकर खुश रहो।

विशेष—प्रस्तुत पद मे विरहिणी के विरहाकुल हृदयोद्गारो का अकन बडा स्वाभाविक एव द्रवीभूत कर देने वाला हुआ है। ऐसे स्थलो पर लगता है कि कविवर विद्यापति ने विरहिणी नारी के दु खी हृदय का कोना-कोना खोज लिया है, देखिए—

"बिरहिन-नयन बिहल बिहि रे
अबिरल बरिसात।"

यहाँ कविवर मैथलीशरण गुप्त जी की नारी के प्रति कही गई यह पक्तियाँ गूँज उठती है—

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे है दूध और आँखों मे पानी॥"

मीरा ने अपनी पीडा के रोग का वैद्य कहा था साँवरिया को—

"मीरा की प्रभु पीर मिटेगी जब वैद सँवरिया होय।"

और विद्यापति भी उससे पहले कह चुके थे—

"बिनु हरि लख उपचारहु रे
हिय दुख न मिटाय।"

इस स्वार्थी जगत् की कठोरता पर यह पक्तियाँ कितना मार्मिक सत्य प्रकट करती है—

"कुदिना हित जन अनहित रे।
थिक जगत सोभाव।"

शब्दार्थ—बिपत=संकट, यहाँ पतझर के संकट से आशय है। तरु=वृक्ष। नव नव पात=नए-नए पल्लव। बिहल=निर्मित किया। बिहि=ब्रह्मा, विधाता। अबिरल=अविरल, निरंतर, लगातार। बिरहानल=विरह+अनल अर्थात् विरह की ज्वाला। बाढल जाय=बढ़ती जाती है। नित=रोज, नित्य। हरि=श्री कृष्ण। उपचारहु=इलाज करने से भी। लख=लाख। हिय=हृदय। उपजाब=पैदा करना। थिक=है। सोभाब=स्वभाव। हरखित=हर्षित, प्रफुल्लित।

(२०८)

मोर पिया सखि गेल दुर देस।
जौबन दए गेल साल सनेस।
मास अषाढ़ उनत नव मेघ।
पिया बिसलेख रहओं निरथेघ।
कोन पुरुष सखि कोन से देस।
करब मोयँ तहाँ जोगिनी भेस।
साओन मास बरसि घन बारि।
पंथ न सूझे निसि अँधिआरि।
चौदिसि देखिए बिजुरी रेह।
से सखि कामिनि जीवन सदेह।
भादब मास बरसि घन घोर।
सभदिसि कुहुकय दादुल मोर।
चेहुँकि चेहुँकि पिया कोर समाय।
गुनमति सूतलि अंक लगाय।
आसिन मास आस धर चीत।
नाह निकारुन न भेलाह हीत।
सर-बर खेलए चकबा हास।
बिरहिन बैरि भेल आसिन मास।
कातिक कंत दिगन्तर बास।
पिय-पथ हेरि-हेरि पेलहुँ निरास।
सुख सुखराति सबहु काँ भेल।
हमें दुखसाल सोआँम दय गेल।
अगहन मास जीब के अंत।
अबहु न आयल निरबए कंत।

एकसरि हम धनि सूतश्रों जागि।
नाहक श्राश्रोत, खाएत मोहि श्रागि।
पूस खीन दिन दीघरि राति।
पिया परदेस मलिन भेल काँति।
हेरश्रों चौदिस झँखश्रों रोय।
नाह बिछोह काहु जन होय।
माघ-मास घन पड़ए तुसार।
झिलमिल केचुश्रां उनत थन हार।
पुनमति सूतलि पियतम कोर।
बिधि बस दैब बाम भेल मोर।
फागुन मास धनि जीब उचाट।
बिरह-बिखिन भेल हेरश्रो बाट।
श्रायल मत्त पिक पंचम गाब।
से सुनि कामिनि जीबहु सताब।
चैत चतुरपन पिय. परबास।
माली जाने कुसुम बिकास।
भमि-भमि भमरा करु मधुपान।
नागर भइ पहु भेल श्रसयान।
बैसाख तबे खर मरन समान।
कामिनि कंत हनय पँचबान।
नहि जुड़ि छाहरि न बरसि बारि।
हम जे श्रभागिनि पापिनि नारि।
जेठ मास ऊजर नव रंग।
कंत चहए खलु कामिनि-संग।
रूपनरायन पूरथु श्रास।
भनइ बिद्यापति बारह मास।

भावार्थ—'विरह' प्रसग के अन्तर्गत बारहमासे का वर्णन करते हुए कविवर विद्यापति यहाँ लिखते है—

विरहिणी राधा कह रही है कि हे सखी ! मेरे प्रियतम श्री कृष्ण दूर देश को प्रस्थान कर गये है श्रौर भेंट स्वरूप मुझे यौवन की पीड़ा का संदेश दे गये हैं।

श्राषाढ़ का महीना श्राया है श्रौर श्राकाश पर बादल छा गये, किन्तु मैं प्रिय विच्छेद के कारण निराधार पड़ी हूँ। हे सखी ! किस देश मे मेरा पुरुष है, वह कौन सा देश है जहाँ मैं योगिनी का भेष धारण करके पहुँचूंगी।

सावन का महीना आया है और घनघोर वर्षा बरस रही है। अँधियारी रात है अतः पथ भी दिखलाई नही देता। केवल चारो दिशाओ मे बिजली की रेखा कौंधती हुई दीखती है जिसके कारण, हे सखी, कामिनी या विरहिणी का जीवन सदेह-संकट में पड़ गया है।

भादो मास हुआ है, घोर बादल बरसते है और सब तरफ मेढक तथा मोर बोल रहे है। चौक-चौककर भयभीत गुनवती नारियाँ अपने प्रियतम की गोद मे समाकर छाती चिपटाकर सो गई हैं।

आश्विन मास ने आकर मन को कुछ आशा बँधाई—शायद अब अभिसार का उपयुक्त समय जानकर समझदार प्रियतम लौट आए; किन्तु उस निष्करुण प्रियतम ने कोई भी हित की बात न सोची, हितकारी न हुआ, न आया। सुन्दर सरोवर मे चकवा और हस जल-विहार या खेल करते है। इस प्रकार इन सुखद दृश्यो के कारण यह आश्विन मास विरहिन के लिये शत्रु हो गया है।

कार्त्तिक के महीने मे प्रियतम ने दूर परदेस मे वास किया है, यहाँ मै उनके प्रत्यागमन का पथ निहारते-निहारते निराश हो गई हूँ। कार्त्तिक की कृष्ण अमावस्या की यह दीपावली की सुखमय रात सभी को सुखद होती है किन्तु मेरे स्वामी इस रात के लिए भी मुझे विरह का अपार दु.ख-दर्द ही दे गए है।

अगहन मास आया है और अपार विरह-कष्ट के कारण मेरा प्राणान्त हुआ चाहता है किन्तु अब तक भी मेरे निष्ठुर स्वामी नही आए है। मैं अबला अकेली नारी अकेले ही सोती हूँ और जागती हूँ। आशय यह है कि मैं रात मे जाग-जागकर अकेले ही पड़ रहती हूँ और फिर सोने के बाद सवेरे जागती हूँ तो भी अकेली—यह दिन-रात का अकेलापन भी कितना अभिपाप हो गया है। जब मुझे विरह की आग खा लेगी, जला देगी तो फिर क्या ?—नाहक ही तो वे आएँगे !

पौष का माह, दिन छोटे और रात बडी होती है। आशय यह कि पौष की लम्बी जुदाई की रात काटे नही कटती, प्रतीक्षा का दिन तो यों ही व्यतीत हो जाता है। प्रियतम परदेस मे है, राधा कह रही है कि मेरी जवानी की काति मलीन हो गई है, ढल गई है। मैं चारो ओर खोजती-देखती फिरती हूँ, झख मारती हूँ और फिर रोती हूँ। हे राम ! पति-विच्छेद किसी भी नारी को न हो—कोई मुझ जैसी विरहिणी न हो।

माघ का महीना आया, घनी बर्फ गिरने लगी। झिलमिल या बारीक चोली मे मेरे उभरे हुए उत्तुग कुच है और उनपर सुन्दर हार भी; किंतु इससे क्या जब पिया मी स ही नही है। जो सौभाग्यशालिनें है वे प्रियतम की गोद मे सोई हैं किंतु विधाता की कोप-दृष्टिवश मेरा ही भाग्य विरुद्ध है कि यो अकेली जल रही हूँ।

फागुन का माह सुन्दरी के मन में प्रिय-मिलन के हेतु उचाट या परेशानी पैदा

करता है। मैं विरह से अति क्षीण हुई केवल प्रियतम के आगमन का पथ जोह रही हूँ। मत्त पिक पचम स्वर मे गाता है और उसके उस गान को सुनकर कामिनी का प्राण भी उसे दु:खित करता है। आशय यह है कि कोकिल का मत्त स्वर कामिनी के प्राणों को काम-पीडा से अभिभूत कर देता है, सताता है।

चैत का महीना तो काम का चतुरपन लिये आया है किंतु हाय, मेरे लिये क्या, अरे मेरे प्रियतम तो परदेस मे हैं। माली तो कुसुम के प्रस्फुटन या विकास को जानता है और भौरा उड-उडकर गुजन करता हुआ उसका मधुपान करता है। आशय यह है कि कामिनी तो अपने प्रस्फुटित यौवन रूपी पुष्प के विकसित रूप को सीचना भर जानती है पर वह आप ही उसका मधुपान कैसे कर सकती है—उसके लिये तो किसी रसिक भ्रमर की ही आवश्यकता होती है। राधा आगे कहती है कि यह मेरे बडे दुर्भाग्य की बात है जो मेरे प्रियतम चतुर रसिक होकर भी मेरे यौवन के पुष्प का रसपान करने के लिये अज्ञानी हो गए है।

वैसाख का माह इतना घोर गरम हो उठता है कि मरण सदृश अनुभव होने लगता है। अपने पचबाणो से कामदेव वियुक्त हुए कामिनी और कत को बेधता या हनता है। दूसरा आशय यह भी है कि विरहिणी को दूरवासी कत कामदेव के बाणों से बेधता या मारता है। इतनी विषम स्थिति हो जाती है कि न कही शीतल छाया उपलब्ध होती है और न मेह ही बरसता है। लगता है कि यह सब-कुछ मुझ जैसी पापिन अभागिन नारी के कारण ही है।

जेठ का महीना है और सारा नवल रग-बिरगा वातावरण उजड गया किंतु तदपि पति अपनी कामिनी के साथ निश्चय ही काम-विलास करने को आतुर होता है। रूपनारायण राजा शिवसिंह की हास-विलास-शृगार की सभी काम-भावनाएँ और वासनाएँ पूर्ण हो, कविवर विद्यापति ने इस बारहमासे का एतदर्थ ही वर्णन किया है।

विशेष—कवि-परम्परा के अनुसार यहाँ बारहमासे का विरह-वर्णन है। किंतु इस विरह-वर्णन की विशेषता केवल परम्परा पालन मात्र नही वरन् उसमे प्रतिमाह की जो प्राकृतिक, स्वाभाविक एव मनोवैज्ञानिक रति-विषयक प्रतिक्रिया विरहिणी के तन-मन पर हो सकती है, उसका प्रकाशन किया गया है। माघ के महीने का वर्णन देखिए—

"माघ-मास घन पड़ए तुसार।
झिलमिल केचुआँ उनत थन हार।
पुनमति सूतलि पियतम कोर।
बिधि बस दैब बाम भेल मोर।"

माघ मे बर्फ गिरना प्राकृतिक है तब बारीक चोली में कुचों का ठंड की कठोरता उभरना स्वाभाविक है और तब अन्य रमणियो की भाँति पति से संभोग करने का

रति-लालसा मनोवैज्ञानिक है। इस प्रकार विद्यापति ने बारहमासे का वर्णन भावपूर्ण किया है। प्रारम्भिक पक्तियो मे "यौवन को उपहार" कहकर कवि ने व्यग्यार्थ द्वारा रमणी की काम-भावना, उसके प्रियतम की निठुराई और सूक्ष्मत: अतृप्ति की महा-पीडा की अभिव्यजना की है—

"मोर पिया सखि गेल दुर देस।
जौबन दए गेल साल सेनस।"

कला एव भाव-पक्ष—दोनो ही ढग से विद्यापति का बारहमासा वर्णन अनूठा है।

शब्दार्थ—गेल=गये। दुर देस=दूर देश या परदेस। साल=पीडा, कष्ट; यहाँ काम-पीडन से तात्पर्य है। सनेस=सन्देश। उनत=उन्नत। नव मेघ=आषाढ का पहला बादल। पिया बिसलेख=प्रियतम का विच्छेद या वियोग। रहओ निरथेब=निराधार रहती हूँ। बिजुरी रेह=बिजली की रेखा। से=वह। जीवन सदेह=जीवन के प्रति सदेह होना, अर्थात् मृत्यु का भय। दादुल=मेढक। चेहुँकि चेहुँकि=चौक-चौककर भयभीत होने से आशय है। पिया कोर=प्रियतम की गोद। सूतलि=सोती है। चीत=चित्त, हृदय। नाह=स्वामी। निकारुन—निष्ठुर, निष्करुण। हीत=हितकारी। भेलाह=हुआ। सर-बर=तालाब मे। हास=हस। बैरि=दुश्मन। भेल=हुआ। दिगन्तर=दिगन्तर बास—दूर देश मे रहना। सुख सुखराति=सुखमय दीपावली की रात। सबहु=सभी को। दुखसाल=छाती को चीरने वाला जैसा घोर दु:ख। सोआमि=स्वामी। दय गेल=दे गये। जीब के अत=प्राणान्त से आशय है। एकसरि=अकेली। धनि=नारी। सूतओ=सोती हूँ। नाहक=व्यर्थ। आओत=आएँगे।। खाएत=खा जाने पर। खीन=क्षीण। दीघरि=बडी। काँति=आभा। मलिन=मैली। हेरओ=खोजती हूँ। चौदिस=चारो ओर। नाह बिछोह=कत का वियोग। काहु जन होय=किसी भी स्त्री को न हो। घन=सघन। पडए=पड़ता है। तुसार=बर्फ के कण। केचुआँ=चोली। झिलमिल=बारीक, चमकदार। उनत=उन्नत, यहाँ कुच के लिये पुष्ट होने से आशय है। थन=कुच। पुनमति=सौभाग्यशालिन, सौभाग्यवती। सूतलि=सोती है। बिधि बस=विधाता के वश मे। बाम=विरुद्ध। उचाट=परेशान। जीब=प्राण। बिरह-बिखिन=विरह से क्षीण। हेरओ बाट=राह जोहना या पथ निहारना। से=वह। सताब=सताता है। भमि-भमि=उड़-उड़कर। भमरा=भौरा। करु=करता है। नागर=चतुर रसिक। भइ=होकर। पहु=प्रियतम। भेल असयान=अज्ञानी हो गया है। तबे=तचित तपित हो जाना। खर=अत्यधिक उग्र रूप मे। मरन समान=मरण सदृश। कत=स्वामी। हनय=मारता है, बेधता है, शिकार करता है। पँचबान=कामदेव का बाण। जुड़ि छाहरि=शीतल छाया। न बरसि बारि=न मेह बरसता है। ऊजर=उजड जाना, नष्ट हो जाना। पूरथु=पूर्ण करें।

(२०६)

माधव देखलि बियोगिनि बामे।
अधर न हास बिलास सखी संग
अहोनिस जप तुअ नामे।
आनन सरद सुधाकर सम तसु
बोलइ मधुर धुनि बानी।
कोमल अरुन कमल कुम्हिलायल
देखि मन अइलहुँ जानी।
हृदयक हार भार भेल सुबदनि
नयन न होय निरोधे।
सखि सब आए खेलाओल रँग करि
तसु मन बिछुओ न बोधे।
रगड़ल चानन मृदमद कुंकुम
सभ तेजलि तुअ लागी।
जनि जलहीन मीन जक फिरइछ
अहोनिस रहइछ जागी।
दूति उपदेस सुनि गुनि सुमिरल
तइखन चलला धाई।
मोदवतीपति राघबसिंह गति
कवि बिद्यापति गाई।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

दूती कृष्ण से जाकर कहती है कि हे कृष्ण ! मैने वियोगिनी राधा की करुण दशा देखी है। उसके अधर पर मुस्कान नही है और न वह कभी सखियो के साथ हास-विलास-परिहास करती है, बस रात-दिन तुम्हारे ही नाम को जपा करती है। शरद ऋतु के सुधाकर या चन्द्रमा की तरह उसका सुन्दर मुख है और अमृत की भाँति मधुर उसकी वाणी है। लेकिन अब तो लाल कोमल कमल की तरह वह कुम्हला गई है और यह समझ लो कि उसकी ऐसी दयनीय दशा देखकर ही मै तुम्हारे पास आई हूँ। उर का हार भी उस सुन्दरी को भार हो गया है और उसकी आँखो के आँसू भी रोके नहीं रुकते। यद्यपि सारी सखियाँ आकर उससे फाग तक खेल गई, लेकिन विषादमय होने के कारण उसको उसकी कुछ खबर ही नही हुई। विरह से जलते उसके शरीर मे लेप करने के लिए चन्दन रगडा गया, केशर एव कस्तूरी घिसी गई किंतु उसने तो तुम्हारे लिये यह सब सुखमय साधन त्याग दिये हैं। मानो जल-वियुक्ता मछली की भाँति वह तड़-फड़ाती फिरती है। दिन-रात तुम्हारी पीर-प्रतीक्षा मे जागती रहती है। यो दूती की

बातों को सुनते ही, और अपनी प्रिया के गुणों को याद कर—श्री कृष्ण तत्क्षण दौड़ पड़े। कविवर विद्यापति मोदवती के पति राघवसिह की गति या दशा को इस प्रकार गाते है। आशय यह है कि जिस प्रकार प्रिया के गुण स्मरण को याद करके प्रेमावेश में श्री कृष्ण उससे मिलने धाए इसी प्रकार का प्रेम-भावुकता से परिपूर्ण स्वभाव मोदवती के पति राघवसिह का भी है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे विरहिणी का शारीरिक म्लान क्षीण दशा का चित्रण बड़ा आलकारिक एव मौलिक कल्पना से युक्त हुआ है। इसके उदाहरण स्वरूप यह पंक्तियाँ पठनीय हैं—

"आनन सरद सुधाकर सम तसु
बोलइ मधुर धुनि बानी।
कोमल अरुन कमल कुम्हिलायल
देखि मन अइलहुँ जानी।"

यहाँ आनन के साथ सरद सुधाकर की उपमा कितनी उचित है क्योकि शारदीय चंद्र कुछ भीगा-भीगा होता है और इधर नायिका का मुख भी अश्रु से भीगा-भीगा है। सुन्दरी का अगवर्ण कोमल अरुण कमल है किंतु मुरझाया हुआ अतः उसकी तन्वंगिता का भाव-सादृश्य उपमा के माध्यम से कितना झिलमिलाता-सा प्रतिभासित होता है। यों कला एव भाव-पक्ष की दृष्टि से प्रस्तुत पद बडा उत्कृष्ट बन पडा है।

शब्दार्थ—माधब=कृष्ण। देखलि=देखी। बामे=नायिका। अहोनिस=दिन-रात। तुअ=तुम्हारा। आनन=मुख। सरद=शरद। सुधाकर=चन्द्रमा। सम=समान। तसु=तिसका, उसका। अरुन कमल=लाल कमल। अइलहुँ=आई हूँ। क=का। भेल=हुआ। सुबदनि=सुन्दर मुख वाली। निरोधे=रोकना, नियन्त्रित करना। किछुओ=कुछ भी। रगडल=घिसा। चानन=चन्दन। मृगमद=कस्तूरी। कुकुम=केशर। सभ=सब। तेजलि=त्याग दिया है। लागि=लिये। जनि=जिस प्रकार। फिरइछ=घूमती है। तइखन=उसी समय। धाई=दौड़कर।

(२१०)

लोचन नीर तटनि निरमाने।
करए कलामुखि तथिहि सनाने।
सरस मृनाल करइ जपमाली।
अहोनिस जप हरिनाम तोहारी।
बृन्दाबन कान्हु धनि तप करई।
हृदय-बेदि मदनानल बरई।
जिब कर समिध समर कर आगी।
करति होम बध होएबह भागी।

चिकुर बरहि रे समरि कर लेग्रई।
फल उपहार पयोधर देग्रई।
भनइ बिद्यापति सुनह मुरारी।
तुग्र मथ हेरइत ग्रछि बर नारी।

भावार्थ—'विरह' प्रसग के ग्रन्तर्गत कविवर विद्यापति लिखते है—

राधा की विरहाकुल स्थिति को बतलाती हुई एक गोपी श्री कृष्ण से कह रही है—हे कृष्ण ! लोचनो के ग्रश्रुजल से एक सरिता बहाकर (या निर्माण कर) चन्द्रमुखी राधा उसमे स्नान करती है। ग्राशय यह है कि वह निरन्तर ग्राँसू बहा रही है। वह कोमल कमलनाल को जपमाला बनाकर दिन-रात तुम्हारे नाम का जप करती है, बस, तुम्हारा ही हर समय नाम जपती है, स्मरण करती है। हे कृष्ण ! वृन्दावन मे वह निरीह नारी इस भाँति तप लीना है कि उसकी हृदय रूपी वेदी पर सदा कामाग्नि किंवा विरहानल जलती रहती है। ग्रपने प्राणो को हवन की समिधा ग्रथवा काष्ठ बनाकर ग्रौर उसमे तुम्हारे स्मरण या रति की ग्राग या ग्ररणी को उकसाकर ग्रपने को होम कर रही है, तपा-जला रही है। हे कृष्ण ! उसकी इस प्रकार की मरण-हत्या के ग्रब तुम्ही भागी या दोषी होगे। वह ग्रपने केश रूपी कुश को सम्भालकर हाथो मे लेती है। ग्राशय यह है कि उसने केशो को यज्ञ के काम मे ग्राने वाला कुश रूप प्रदान कर दिया है। वह फलोपहार के रूप मे ग्रपने कुचो को समर्पित करती है ग्राशय है कि कुचो को उसने यज्ञ-प्रसाद रूप दिया है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे कृष्ण ! सुनो, वह तपस्विनी महान् नारी तुम्हारा पथ इस कठिनाई के साथ देख रही है, प्रतीक्षा का दारुण कष्ट सह रही है।

बिशेष—प्रथम पक्ति मे दूसरी पक्ति की सापेक्षता की दृष्टि से कितनी स्वाभाविक ग्रत्युक्ति कही गई है—"लोचन नीर तटनि निरमाने" क्योकि—"करए कलामुखि तथिहि सनाने।" 'कलामुखि' यदि स्वनिर्मित ग्रश्रु की नदी मे स्नान करे तो कितनी वेदना का सचार होगा, यह भावुक जन भली प्रकार जानते है। इस प्रकार कविवर विद्यापति के ग्रलकारो में भी एक मौलिकता एव भावमयता समायी रह सकी है। हृदय रूपी वेदी मे वासना रूपी ग्रग्नि का जलना कितना उपयुक्त एव ग्रनुभूति-गम्य रूप में व्यक्त हुग्रा है—

"हृदय - बेदि मदनानल बरई।"

इसी प्रकार का मौलिक रूपक—

"चिकुर बरहि रे समरि कर लेग्रई।
फल उपहार पयोधर देग्रई।"

फल उपहार के रूप मे कुचो को हाथ मे लेकर भेट करना कितना प्रगाढ रति-भाव का समर्थक है—एकदम मानसिक, शारीरिक, ग्रात्मसमर्पणजन्य ! काम की विक्षिप्तावस्था

का प्राण परक चित्रण प्रस्तुत पद मे प्रधानता से हुआ है। मनोभावों का स्वाभाविक कलात्मक प्रकाशन विद्यापति के ऐसे पदो मे अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का बन पडा है अतः उनकी वासना कलात्मक अभिव्यजना की ही पोषिका रही है, कही पर भी उसमे व्याघात अथवा कृत्रिमता नही आने पायी।

शब्दार्थ—लोचन नीर=नयनो का अश्रुजल। तटनि=सरिता। निरमाने=निर्माण करके। करए=करती है। कलामुखि=चन्द्रमुखी। तथिहि=उसी में, अश्रु-सरिता मे। सनाने=स्नान करती है। मृनाल=कमल की डडी। जपमाली=जप की माला। हरिनाम=श्री कृष्ण के नाम से आशय है। तोहारी=तुम्हारा, श्री कृष्ण का। धनि=सुन्दरी राधा। हृदय-बेदि=हृदय रूपी वेदी। मदनानल=मदन+अनल, कामदेव की अग्नि। बरई=जलती है। जिब=प्राण। समिध=समिधा, अग्निहोत्र की लकडी। समर=स्मरण, रति, कामदेव। आगी=आग। करति होम=हवन करती है। बध होएब्रह भागी=हत्या के भागीदार होगे। चिकुर=केश। बरहि=कुश। समरि=सम्भालकर। कर लेअई=हाथ मे लेती है। फल उपहार=फलोपहार, यज्ञ के प्रसाद रूप मे। पयोधर=कुच। तुअ पथ=तुम्हारा पथ। हेरइत=देखती है। अछि=है। बर नारी=श्रेष्ठ या महान् नारी, तपस्विनी राधा।

(२११)

अकामिक मन्दिर भेलि बहार।
चहुँदिस सुनलक भमर-झंकार।
मुरुछि खसल महि न रहलि थीर।
न चेतए चिकुर न चेतए चीर।
केओ सखि बेनि धुन केओ धुरि झार।
केओ चानन अरगजओं सँभार।
केओ बोल मंत्र कान तर जोलि।
केओ कोकिल खेद डाकिनि बोलि।
अरे अरे अरे कान्हु की रभसि बोरि।
मदन-भुजंग डसु बालहि तोरि।
भनइ विद्यापति एहो रस भान।
एहि बिष गारुड़ि एक पए कान।

भावार्थ—'विरह' प्रसग के अन्तर्गत यहाँ कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका राधा सहसा ज्योही भवन से बाहर हुई कि त्योंही उसे सर्वत्र या चहुँ ओर भौरो की गुजार सुनाई दी। इस कामोद्दीपक गुजार को सुनने के कारण वह स्थिर न रह सकी और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडी। न उसे केशो का ध्यान रहा और न साड़ी या वस्त्रो का—वे अस्तव्यस्त हो गए। तब कोई सखी तो उसकी

वेणी को सँवारने लगी और कोई वस्त्रों की धूल झाडने लगी, और कोई चन्दन कस्तूरी का लेप (चानन अरगजओ) करने लगी ताकि मूर्च्छा टूट जाए। कोई उसके कान में ज़ोर से मंत्र फूंकने लगी और कोई बोलती जोर से चिल्लाती हुई कोयल को उडाने-भगाने लगी ताकि राधा मे अधिक काम-भाव का, मूर्च्छा का सचार न हो। सखी ने कहा कि अरे कृष्ण ! तुम क्या परिहास करके बोल रहे हो ?—देखो तो काम रूपी काले सर्प ने तुम्हारी बाला अथवा प्रेयसी को डस लिया है, वह मर रही है। कविवर विद्यापति इस रति-रसमय शृंगार का वर्णन करते हुए बताते है कि इस काम रूपी सर्प के विष को उतार पाने के लिए एक कृष्ण ही समर्थ है, वही इस प्रकार के जहर को दूर करने वाले एक मात्र गारुडी है, विष-उतारक है।

विशेष—अतिशय विरहावस्था मे मूर्च्छा का आ जाना स्वाभाविक होता है। उसके लिए प्रथम पक्तियो मे कितनी तीव्रता एव अप्रत्याशितता से कवि ने वातावरण का प्रभाव मनोवैज्ञानिकता के अनुकूल स्थापित किया है—

"अकामिक मन्दिर भेलि बहार।
चहुँदिस सुनलक भमर-झंकार॥"

"न चेतए चिकुर न चेतए चीर" मे नारी की मूर्च्छित अवस्था-अस्तव्यस्तता का सम्पूर्ण चित्र उतारकर रख दिया गया है।

"मदन-भुजँग" मे रूपक अलकार का प्रयोग स्वाभाविक एव भाववर्धक हुआ है। उसकी सपुष्टि के लिए अन्तिम पक्ति का आधार बडा विदग्धतापूर्ण है—

"एहि बिष गारुडि एक पए कान।"

किसे ज्ञात नही कि श्री कृष्ण ही काम-नाग से डसी मूर्च्छिता राधा के विष-उतारक प्रेमी हैं। इस प्रकार कम शब्दो के द्वारा बडी अभिव्यजना कवि ने अपने लघु पदो मे की है। यो उनके पद गीत-तत्त्व की सफलता की दृष्टि से अनूठे कहे जायेगे।

शब्दार्थ—अकामिक=अकस्मात्, सहसा। मन्दिर=घर, भवन। भेलि बहार=बाहर हुई। चहुँदिस=चारो ओर, सर्वत्र। सुनलक=सुनाई दी। भमर-झकार=भौरो की आवाज, गुजार। मुरुछि=मूर्च्छित होकर। खसल महि=पृथ्वी पर गिर पड़ी। न रहलि थीर=स्थिर न रही। चेतए=ज्ञान हुआ। चिकुर=केश। चीर=वस्त्र, साडी आदि। केओ सखि=किसी सखी ने। बेनि=चोटी, वेणी। धुन=गूंथी या सँवारा। धुरि झार=धूल झाडने लगी। चानन=चन्दन। अरगजओ=कस्तूरी के लेप से। सँभार=सँभालती हैं, कस्तूरी चन्दन के लेप करने से आशय है। बोल मत्र=मत्र बोलती है। कान तर=कान मे या कान के नीचे। जोलि=जोर से। खेद=खदेडना, उडाना-भगाना। डाकिनि बोलि=चिल्लाहट के बोलों से। की=क्या। रभसि बोरि=इठलाकर या परिहास करके बोलना। मदन-भुजँग=कामदेव रूपी सर्प। बालहि=बाला को, राधा को। तोरि=तेरी। एहो=इस। एहि बिष=

ये विष, कामदेव रूपी सर्प का विष। गारुड़ि=विष उतारने वाला। एक पए कान=सिर्फ कृष्ण ही एक हैं।

(२१२)

माधब, कठिन हृदय परबासी।
तुझ पेग्रसि मोयँ देखल बियोगिनि
अबहु पलटि घर जासी।
हिमकर हेरि अवनत कर आनन
करु करुना पथ हेरी।
नयन काजर लए लिखए बिधुन्तुद
भय रह ताहेरि सेरी।
दखिन पवन बह से कइसे जुबति सह
कर कबलित तनु अगे।
गेल परान आस दए राखए
दस नख लिखए भुजगे।
मीनकेतन भय सिव सिव सिव कय
धरनि लोटाबए देहा।
करे रे कमल लए कुच सिरिफल दए
सिव पूजए निज गेहा।
परभृत के डर पायस लए कर
बायस निकट पुकारे।
राजा सिबसिंध रूपनरायन
करथु बिरह उपचारे।

भावार्थ—'विरह' प्रसग के क्रम मे कविवर विद्यापति यहाँ लिखते है—

श्री कृष्ण को राधा की एक सखी उसकी विरहावस्था के विषय मे बताती हुई कह रही है—हे कृष्ण ! तुम परदेसी का उर बडा कठोर है। अरे, तुम्हारी प्रेयसी वियोगिनी राधा को मैंने देखा है—उसकी दशा बडी शोचनीय है। तुम अब भी घर को लौट जाओ, उसे सात्वना दो, शायद वह ठीक हो जायगी। चाँद देख और फिर सहसा उदास होकर वह मुँह को विनत करके करुण हुई वह तुम्हारी राह निहारने लगती है—प्रतीक्षा मे उदासीन और लीन हो जाती है। नयनो के काजल से राहु का चित्र बनाती और जैसे वह उसी के भय से उसी की शरण लेती है। आशय यह है कि उसकी आँखों का काजल ही उसके चन्द्रमुख को मानो ग्रसे रहता है अर्थात् उसे शृंगार भी काल बन गया है। दक्खिन पवन के प्रवाह-प्रहार को वह युवती भला कैसे सहे, वह तो उसके शरीर के अगों-प्रत्यंगों को कवलित करता है—खाता है। जाते हुए प्राणो को वह तुम्हारी

मिलनाशा पर रखे हुए है और अपने दसो नखो से वह भुजंग का चित्र बनाती है ताकि उसे दक्खिनी मादक पवन न जलाए, वह अपने आहार करने वाले उसके नख-चित्रित भुजग को देखकर दूर रहे—भाग जाए। स्मर या कामदेव के भय से वह शिव-शिव करती हुई धरती पर अपने शरीर को लुठाती है ताकि शिव का नाम सुनकर कामदेव पास न फटके, क्योकि शकर से वह जलाया गया था इससे भयभीत होकर उसके पास न फटकेगा। हाथ रूपी कमल मे अपने कुच रूपी श्रीफल को लिये वह अपने ही घर मे शिवपूजन करती है। कोयल के डर से हाथ मे खीर लेकर वह काग को पास बुलाती है ताकि शत्रु काग के डर से काम-पीडन को जाग्रत करने वाली कोकिल पुकार ही न कर सके। ऐसी दशा मे रूपावतार राजा शिवसिह उस विरहिणी के विरह-रोग का उपचार करे, वे ही कर भी सकते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे वाग्वैदग्धता का वैभव खूब देखने को मिलता है। विरह-पीड़िता नायिका दसो अँगुलियो से सर्प का चित्र बना रही है क्योकि दक्खिनी पवन उसके काम-भाव की वृद्धि कर रहा है और सर्प पवन का शत्रु होता है; काजल से राहु का चित्र बना रही है ताकि दुष्ट चन्द्रमा विकल न करे। अत· स्वय अशुभ चिह्नो का निर्माण कर वह विरहिणी शुभ प्रतीको से बचने की व्यथ चेष्टा कर रही है, कितनी विवशता है, अभाव है, विरोध है जीवन मे! इसी को वाग्वैदग्ध्य के द्वारा व्यजित किया गया है, देखिए—

"हिमकर हेरि अवनत कर आनन
करु करुना पथ हेरी।
नयन काजर लए लिखए बिधुन्तुद
भय रह ताहेरि सेरी।
दखिन पवन बह से कइसे जुबति सह
कर कबलित तनु अगे।
गेल परान आस दए राखए
दस नख लिखए भुजगे।"

रूपक की मौलिक अभिव्यक्ति इन पक्तियो मे पठनीय है—

"करे रे कमल लए कुच सिरिफल दए
सिव पूजए निज गेहा।"

सम्पूर्ण पद मे विप्रलभ शृगार का अभिव्यजन अनूठा हुआ है।

शब्दार्थ—तुझ=तेरी। पेअसि=प्रेयसि। मोयँ=मैंने। पलटि घर जासी=लौटकर घर जाओ। हिमकर=चन्द्रमा। हेरि=देखकर। अवनत=झुका हुआ। आनन=मुख। करु करुना=करुणा करके, दयनीय रोदनमयी होकर। लए=से। बिधुन्तुद=राहु। सेरी=शरण। ताहेरि=उसकी। दखिन पवन=दक्खिनी हवा, मलयानिल। कबलित=खा लेना। गेल परान=गये हुए प्राण, आशय है जाते हुए

प्राणो से। भुजगे=काला सर्प। मीनकेतन=स्मर, कामदेव। परभृत=कोयल। पायस=खीर। बायस=काग।

(२१३)

कुसुमित कानन हेरि कमलमुखि
मूदि रहए दु नयान।
कोकिल कलरव मधुकर धुनि सुनि
कर देइ झाँपइ कान।
माधव, सुन सुन बचन हमारा।
तुअ गुन सुन्दरि अति भेल दूबरि
गुनि गुनि प्रेम तोहारा।
धरनी धरि धनि कत बेरि बइसइ
पुन तहि उठइ न पारा।
कातर दिठि करि चौदिस हेरि हेरि
नयन गरए जलधारा।
तोहर बिरह दिन छन छन तनु छिन
चौदिस चाँद समान।
भनइ बिद्यापति सिवसिंह नरपति
लखिमा देइ रमान।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

फूल-फले उपवन को निहारकर कमल के समान मुख वाली नायिका अपने दोनो नेत्रो को बद कर लेती है। कोकिल का कलरव और भौरो की गुँजार सुनकर हाथों से कानो को ढँक लेती है। हे कृष्ण! सुनो, मेरी बात तो सुनो! तुम्हारे गुण या प्रणय की स्मृति मे वह सुन्दरी बिलकुल दुबली (तन्वगी) हो गई है और धरती थामकर तो वह कितनी ही बार बैठती है, फिर वहाँ से उठ भी नही पाती, इतनी क्षीणतना हो गई है। कातर दृष्टि से चारो ओर तुम्हे ढूँढती है और बराबर उसकी आँखो से अश्रु-धारा गिरती रहती है। तुम्हारे वियोग मे प्रति दिवस प्रति क्षण चतुर्दशी के चन्द्रमा की तरह उसका बदन क्षीणकाय होता जा रहा है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि लखिमादेवी के पति राजा शिवसिंह इस रहस्य को जानते है जिन्हे मैं गा-गाकर सुनाया करता हूँ।

विशेष—प्रस्तुत पद में विरहिणी की दयनीय दशा का चित्रण बड़ा कारुणिक हुआ है। नारीयोचित निर्बलता एंव विवशता के परिणाम स्वरूप उसकी यह दशा किस सहृदय को भला द्रवीभूत न कर देगी—

"धरनी धरि धनि कत बेरि बइसइ
पुन तहि उठइ न पारा।"

विरहाघात के कारण दिवस-दिवस के प्रति क्षण मे क्षीण होती जाती स्त्री की उपमा चतुर्दशी के चन्द्रमा से कितनी सगत बन पडी है—

"तोहर बिरह दिन छन छन तनु छिन
चौदिस चाँद समान।"

सम्पूर्ण पद मे विरह-भाव की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

शब्दार्थ—कुसुमित=फूला-फला। कानन=वन, जगल। हेरि=देखकर। दु=दो। नयान=नयन। धुनि=ध्वनि, शब्द, आवाज। सुनि=सुनकर। कर=हाथ। झाँपइ=तोपती है, बन्द करती है। तुअ=तुम्हे। दूबरि=दुबली। धरि=पकड़कर, थामकर। कत बेरि=कितनी बार। बइसइ=बैठती। कातर=दयनीय। दिठि=दृष्टि। चौदिस=चारो ओर। तोहर=तुम्हारे। चौदिस=चतुर्दशी। नरपति=राजा। देइ=देवी।

(२१४)

सरदक ससधर मुखरुचि सोंपलक
हरिन के लोचन-लीला।
केसपास लए चमरि के सोंपलक
पाए मनोभव पीला।
माधव, जानल न जीबति राही।
जतबा जकर लेले छलि सुन्दरि
से सब सोंपलक ताही।
दसन-दसा दालिम के सोपलक
बन्धु अधर रुचि देली।
देह-दसा सौदामिनि सोंपलक
काजर सनि धनि भेली।
भौंहक-भंग अनंग-चाप दिहु
कोकिल के दिहु बानी।
केबल देह नेह अछ लओले
एतबा अएलहुँ जानी।
भनइ बिद्यापति सुन बर जौबति
चित झँखह जनु आने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

दूती कह रही है कि हे कृष्ण ! तुम्हारी प्रिया ने अपने मुख की शोभा शरद ऋतु के चन्द्रमा को समर्पित कर दी और नयनो की चपलता हरिण को दे दी है। काम-पीडन से पीड़ित होकर उसने अपनी श्याम कुतल राशि सुन्दर पूँछ के बालो वाली चमरी गौ को प्रदान कर दी है। आशय यह है कि उसने अपनी केशराशि तुच्छ चमर बनाने के लिये नष्ट कर डाली है। (चमरी गौ की पूँछ का चमर सुन्दर बनता है।) सखी कहती है कि हे कृष्ण! समझ लो कि राधा अब जीवित नही रहेगी। उस सुन्दरी ने जितनी रूप-सज्जा की सामिग्री जिस-जिस से ली थी वह सब उसी-उसीको सौप दी है। दाँतो की सुघराई अनार के सुपुर्द कर दी और अधरो की लालिमा बन्धूक के पुष्प को फेर दी है। देह की चमचमाती प्रज्ज्वलता चचला के हवाले कर दी है। वह विरह की लपटो से जलकर कज्जल-सी काली हो गई है। अपने भौहो के कटाक्ष को तो उसने कामदेव के धनुष को दे दिया है और कोयल को अपनी मृदु वाणी दे दी है। दूती कहती है कि हे कृष्ण ! तुम्हारे प्रेम मे, तुम्हारे मिलन हेतु बस समझ लो कि वह केवल शरीर ही धारण किए हुए है, इतना ही जानकर मैं तुम्हारे पास आई हूँ। कविवर विद्यापति कहते है कि हे श्रेष्ठ युवती ! तुम मन मे इतने अशुभ भाव-विचार न लाओ अर्थात् कृष्ण तो समझते ही है कि उन्होने अपनी शोभा-सुषमा को बाँटकर सबको कृतार्थ किया है, वे उसकी पूर्त्ति कर ही देगे। कविवर विद्यापति कहने है कि लखिमादेवी के पति राजा शिवसिह परम रूपवान है, वह इस कथन का रहस्य भली-भाँति जानते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कवि प्रसिद्धि के अनुसार सुन्दरी की आगिक रूप छटा के उपमान—दाँतो की शोभा के लिये अनार, देह काति के लिये चपला आदि—ग्रहण किये है किंतु विरह-पीडन के प्रभावानुसार अपनी सौन्दर्य छटा को उन्हे ही फेर देने वाली बात बड़ी विदग्धता से कही गई है, जैसे—

> "देह-दसा सौदामिनि सोंपलक
> काजर सनि धनि भेली।
> भौंहक-भंग अनंग-चाप दिहु
> कोकिल के दिहु बानी।"

सम्पूर्ण पद मे इसी प्रकार का परम्परित ढग का शृंगार-वर्णन है किंतु उसके भीतर वेदना की तीव्र अनुभूति निरंतर चल रही है अतः उसमें हार्दिकता भी बनी रह सकी है। केवल चमत्कार-प्रदर्शन ही नही अड़ सका है। इन पंक्तियो में अनुभूति की यही पराकाष्ठा व्यक्त है—

> "जतबा जकर लेले छलि सुन्दरि
> से सब सोंपलक ताही।"

"धरनी धरि धनि कत बेरि बइसइ
पुन तहि उठइ न पारा।"

विरहाघात के कारण दिवस-दिवस के प्रति क्षण मे क्षीण होती जाती स्त्री की उपमा चतुर्दशी के चन्द्रमा से कितनी सगत बन पडी है—

"तोहर बिरह दिन छन छन तनु छिन
चौदिस चाँद समान।"

सम्पूर्ण पद मे विरह-भाव की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

शब्दार्थ—कुसुमित=फूला-फला। कानन=वन, जगल। हेरि=देखकर। दु=दो। नयान=नयन। धुनि=ध्वनि, शब्द, आवाज। सुनि=सुनकर। कर=हाथ। झाँपइ=तोपती है, बन्द करती है। तुअ=तुम्हे। दूबरि=दुबली। धरि=पकड़कर, थामकर। कत बेरि=कितनी बार। बइसइ=बैठती। कातर=दयनीय। दिठि=दृष्टि। चौदिस=चारो ओर। तोहर=तुम्हारे। चौदिस=चतुर्दशी। नरपति=राजा। देइ=देवी।

(२१४)

सरदक ससधर मुखरुचि सोंपलक
हरिन के लोचन-लीला।
केसपास लए चमरि के सोंपलक
पाए मनोभव पीला।
माधब, जानल न जीबति राही।
जतबा जकर लेले छलि सुन्दरि
से सब सोंपलक ताही।
दसन-दसा दालिम के सोपलक
बन्धु अधर रुचि देली।
देह-दसा सौदामिनि सोंपलक
काजर सनि धनि भेली।
भौंहक-भंग अनंग-चाप दिहु
कोकिल के दिहु बानी।
केबल देह नेह अछ लओले
एतबा अएलहुँ जानी।
भनइ बिद्यापति सुन बर जौबति
चित झँखह जनु आने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ रमाने।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

दूती कह रही है कि हे कृष्ण ! तुम्हारी प्रिया ने अपने मुख की शोभा शरद ऋतु के चन्द्रमा को समर्पित कर दी और नयनो की चपलता हरिण को दे दी है। काम-पीड़न से पीड़ित होकर उसने अपनी श्याम कुतल राशि सुन्दर पूंछ के बालो वाली चमरी गौ को प्रदान कर दी है। आशय यह है कि उसने अपनी केशराशि तुच्छ चमर बनाने के लिये नष्ट कर डाली है। (चमरी गौ की पूँछ का चमर सुन्दर बनता है।) सखी कहती है कि हे कृष्ण! समझ लो कि राधा अब जीवित नही रहेगी। उस सुन्दरी ने जितनी रूप-सज्जा की सामिग्री जिस-जिस से ली थी वह सब उसी-उसीको सौप दी है। दाँतो की सुघराई अनार के सुपुर्द कर दी और अधरो की लालिमा बन्धूक के पुष्प को फेर दी है। देह की चम-चमाती प्रज्ज्वलता चचला के हवाले कर दी है। वह विरह की लपटो से जलकर कज्जल-सी काली हो गई है। अपने भौहो के कटाक्ष को तो उसने कामदेव के धनुष को दे दिया है और कोयल को अपनी मृदु वाणी दे दी है। दूती कहती है कि हे कृष्ण ! तुम्हारे प्रेम मे, तुम्हारे मिलन हेतु बस समझ लो कि वह केवल शरीर ही धारण किए हुए है, इतना ही जानकर मैं तुम्हारे पास आई हूँ। कविवर विद्यापति कहते है कि हे श्रेष्ठ युवती ! तुम मन मे इतने अशुभ भाव-विचार न लाओ अर्थात् कृष्ण तो समझते ही है कि उन्होने अपनी शोभा-सुषमा को बॉटकर सबको कृतार्थ किया है, वे उसकी पूर्त्ति कर ही देगे। कविवर विद्यापति कहते है कि लखिमादेवी के पति राजा शिवसिह परम रूपवान है, वह इस कथन का रहस्य भली-भाँति जानते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कवि प्रसिद्धि के अनुसार सुन्दरी की आगिक रूप छटा के उपमान—दाँतो की शोभा के लिये अनार, देह काति के लिये चपला आदि—ग्रहण किये है किंतु विरह-पीडन के प्रभावानुसार अपनी सौन्दर्य छटा को उन्हे ही फेर देने वाली बात बड़ी विदग्धता से कही गई है, जैसे—

"देह-दसा सौदामिनि सोंपलक
काजर सनि धनि भेली।
भौंहक-भंग अनंग-चाप दिहु
कोकिल के दिहु बानी।"

सम्पूर्ण पद मे इसी प्रकार का परम्परित ढग का शृ गार-वर्णन है किंतु उसके भीतर वेदना की तीव्र अनुभूति निरतर चल रही है अतः उसमे हार्दिकता भी बनी रह सकी है। केवल चमत्कार-प्रदर्शन ही नही अड़ सका है। इन पक्तियों मे अनुभूति की यही पराकाष्ठा व्यक्त है—

"जतबा जकर लेले छलि सुन्दरि
से सब सोंपलक ताही।"

और फिर विरहिणी का इस दु:खद दशा मे भी जीवित रहने का कारण कितना मर्म-भेदी है—

"केबल देह नेह अछ लओले
एतबा अएलहुँ जानी।"

वस्तुत. विद्यापति के पदो मे काव्य का कला-पक्ष केवल भाव-सौन्दर्य बृद्धि का साधन बनकर आया—प्रधान साधन बनकर, साध्य बनकर नही। इसीलिये उनके काव्य मे प्राण-रस का सर्वत्र सचार बना रह सका है।

शब्दार्थ—सरदक=शरद ऋतु का। ससधर=चन्द्रमा। मुखरुचि=मुख की शोभा। सोपलक=सुपुर्द कर दिया, सौप दिया। लए=-लेकर। चमरि=चँवर। मनोभव=काम। जानल=समझ लो। राही= राधा। जतबा=जितना। जकर= जिसका। छलि=थी। ताही=उसे ही। दसन=दाँत। दालिम=अनार। बन्धु= बन्धुली, एक प्रकार का लाल फूल। सौदामिनि=बिजलियाँ। सनि=समान। भेली= हुई। अनग=कामदेव। चाप=धनुष। दिहु=दे दी। एतबा=इतना। अएलहुँ= आई हूँ। बर=श्रेष्ठ। जौबति=युवती। चित=चित्त। झँखह=पश्चात्ताप। जनु= मत।

(२१५)

आएल उनमद समय बसंत।
दारुन मदन निदारुन कत॥
ऋतुराज आज बिराज हे सखि
नागरी जन बंदिते।
नव रंग नव दल देखि उपवन
सहज सोभित कुसुमिते॥
आरे कुसुमित कानन कोकिल साद।
मुनिहुक मानस उपजु बिखाद॥
अति मत्त मधुर मधुर रव कर
मालती मधु-संचिते।
समय कंत, उदंत नहि किछु
हमहि बिधि-बस-बचिते॥
बंचित नागर सेह संसार।
एहि रितुपति सौं न करए बिहार॥
अति हार भार, मनोज मारए
चंद-रबि सन भानए।

पुरुष पाप संताप जत हो
मन, मनोभव जानए ।।
जारए मनसिज मार सर साधि ।
चानन देह चौगुन हो धाधि ।।
सब धाधि आधि बेआधि जाइति
करिए धैरज कामिनी ।
सुपहु मन्दिर तुरित आओत
सुफल जाइति जामिनी ।।
जामिनी सुफल जाइत अवसान ।
धैरज धरु विद्यापति भान ।।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

मादक बसत का समय आ गया है। अब कामदेव तो कठोर हो ही गया साथ ही प्रियतम भी निर्मम हो गए है। हे सखी ! आज ऋतुराज बसत विराज रहा है और चपल-चतुर रमणियाँ उसकी बन्दना कर रही है। नवल रगोयुक्त नवल पत्तो के साथ, देखो, प्रफुल्ल उपवन की स्वाभाविक छटा कितनी भली लग रही है। ये कुसुमित कानन मे कोयल की ऐसी मीठी कूक सुनने मे आती है कि जिसको सुनकर मुनियो के मन मे भी विषाद—कामपीडन—उत्पन्न हो जाता है। मालती पुष्प के पराग से परिलिप्त ये उन्मत्त भौरे मालती पर मधुर-मधुर गुजार कर रहे है, मधुपान कर रहे है। यह समय तो प्रिय-मिलन का है लेकिन उनका कोई सदेशा नही, वे आये नही, लगता है कि मै ही विधि की विडम्बना से इस रसमय वातावरण का सुख उठाने मे वचिता हो गई हूँ। ठीक है कि ऐसा ही व्यक्ति शायद ससार मे पूर्णत: वचित कहलाता है, जो इस ऋतुराज के साथ विहार नही करता। गल-हार भार-सा प्रतीत हो रहा है और कामदेव अलग सता रहा है। चन्द्रमा सूर्य के समान तापवान लगने लग गया है। पुरुप के कठोर होने से मेरे हृदय को जो दु:ख-सताप या काम-पीडन हो रहा है, वह मेरा ही मन जानता है या कामदेव। कामदेव शर-सधान करता है और मुझे जलाता है। शरीर का चन्दन काम-ज्वाला को चौगुना करके धधकता है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे नायिका ! तुम्हारी आधि-व्याधि—दैहिक-मानसिक पीडाएँ—की ज्वाला दूर हो जायेगी, तुम अपने मन मे धैर्य धारण करो। तम्हारे प्रियतम शीघ्र ही तुम्हारे घर पर आ रहे हैं फिर तुम्हारी सारी रात सफलतापूर्वक—अभिसार मे—व्यतीत होगी।

विशेष—विप्रलम्भ शृंगार की काम-पीड़ा की अनुभूति प्रधान है। वर्णन शृंगारी परम्परा का जैसा ही है। कवि का काम विषयक मादक दृष्टिकोण इन पंक्तियों से साफ प्रकट होता है—

"बचित नागर सेहँ संसार।
एहि रितुपति सौं न करए बिहार।"

यही मानो कवि की काव्य मनीषा का सम्पूर्ण धर्म (Religion) है। इस दृष्टि से विद्यापति का हिन्दी के शृ गारी कवियों मे ही क्या, ससार के शृगारी कवियो की कोटि में सम्माननीय स्थान समझा जाना चाहिए। उनके काव्य मे काव्य की मधुमती भूमिका का विस्तार व्यापक है। काव्य मे कला, प्रकृति, जीवन और इनकी झिलमिलाती हुई स्पष्ट अभिव्यक्ति विद्यापति के पदो मे लयमान हो गई है। इसीलिए उनके पद आज तक पुराने नही पडे, वह सदा नये रहेगे। जीवन की वासना के प्रति उनकी आकर्षक वृत्ति न जाने कितने मुनियो के मन की गगरी छलकाने मे समर्थ रहेगी, रही होगी—

"आरे कुसुमित कानन कोकिल साद।
मुनिहुक मानस उपजु बिखाद।"

शब्दार्थ—आएल=आ गया। उनमद=उन्मत्त। दारुन=कठोर। मदन=कामदेव। कत=पति, प्रियतम। नागरी=चतुर स्त्री। वदिते=बन्दना करती है। कुसुमिते=खिला हुआ, फूला-फला। कानन=वन। साद=आवाज़। क=का। बिखाद=विषाद। रव=ध्वनि। सचिते=सचित करता है। उदत=हाल, वार्त्ता, कुशल समाचार। बचिते=बची हुई हूँ। नागर=व्यक्ति, लोग। एहि=इस। रितुपति=ऋतुराज, बसत। सौ=से, साथ। मनोज=काम। मारए=मारता है। सन=समान। भानए=लगता है। जत=जितना। मनोभव=कामदेव। जानए=जानता है। जारए=जलाता है। मनसिज=कामदेव। सर=शर, वाण। साधि=साधकर, निशाना बनाकर। चानन=चन्दन। देह=शरीर। धाधि=ज्वाला। बेआधि=व्याधि, रोग। जाइति=दूर होना। सुपहु=प्रियतम। मन्दिर=महल। तुरित=तुरन्त, शीघ्र। आओत=आ रहे है। सुफल=सफल। जाइति=बीतेगी। जामिनी=रात। अवसान=अन्त, खत्म। धैरज=धैर्य। धरु=धारण करो। भान=कहना।

(२१६)

माधब, कत परबोधब राधा।
हा हरि हा हरि कहतहि बेरि बेरि
अब जिउ करब समाधा।
धरनि धरिये धनि जतनहि बइसइ
पुनहि उठए नहि पारा।
सहजहि बिरहिन जग महँ तापिनि
बैरि मदन - सर - धारा।

अरुन - नयन - नीर तीतल कलेबर
बिलुलित दीघल केसा ।
मन्दिर बाहिर करइत ससय
सहचरि गनतहि सेषा ।
आनि नलिनि केओ रमनि सुताओलि
केओ देइ मुख पर नीरे ।
निसबद पेखि केओ साँस निहारए
केओ देइ मद समीरे ।
कि कहब खेद भेद जनि अन्तर
घन घन उतपत साँस ।
भनइ बिद्यापति सेहो कलावति
जीव बँधल आस-पास ।

भावार्थ—'विरह' प्रसग के अन्तर्गत इस पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

राधा की एक सखी श्री कृष्ण से कहती है कि माधव, भला बताओ कि मैं राधा को कितना कुछ समझाऊँ, धीरज बँधाऊँ ? बारम्बार "हा कृष्ण···हा कृष्ण" कहती हुई अब वह प्राण विसर्जित करने वाली है । वह विरहिणी नारी बडे प्रयत्नपूर्वक भूमि को पकड-पकडकर बैठती है और फिर उठ भी नही पाती । वैसे तो स्वभावतः ही सर्वत्र ससार मे विरहिणी के लिए ताप-सताप होता है, उससे वह तपती-जलती रहती है किन्तु उसपर भी काम-वाणो की वर्षा तो उसे और भी विक्षिप्त बना देती है । उसकी दुखती लाल आँखो का अश्रुजल उसके शरीर को गीला कर देता है । उसके लम्बे-लम्बे केश अस्तव्यस्त हुए हैं । घर से बाहर होकर सखियाँ सन्देह करती हैं कि कही उसका जीवन-दीप न बुझ गया हो, न बुझ जाय । कोई कमल लाकर उसपर उस विरहिणी रमणी राधा को सुलाती है और कोई उसके मुख पर जल छपकती है । उसे मूक किवा शब्दहीन देखकर कोई उसकी चलती साँसों की परीक्षा करती है और कोई धीरे-धीरे पंखा झलकर उसे शीतल हवा करती है ताकि वह ठीक हो सके । सखी कह रही है कि हे कृष्ण ! मैं कैसे कहूँ कि उसके दिल का जो दु.ख-भेद मैं जान सकी हूँ । वह बड़े गम्भीर गरम साँस ले रही है—जैसे, मरणासन्न व्यक्ति लेता है । कविवर विद्यापति कहते हैं कि उस सुन्दर कलावती रमणी के प्राण श्री कृष्ण के मिलन की आशा के बधन में बँधे हुए हैं अन्यथा वह अब तक कभी का प्राण त्याग कर चुकी होती ।

विशेष—प्रस्तुत पद में विरह-पीरजनित भावों-अनुभावों, चेष्टाओं और दशाओं का चित्रण बड़ा कलात्मक हुआ है, कहीं-कहीं अति-उक्ति भी आ गई है किन्तु उसमें प्रभाव

है, अस्वाभाविकता नही । देखिए—

"आनि नलिनि केओ रमनि सुताओलि
केओ देइ मुख पर नीरे ।"

विमूर्च्छिता नारी का एक यथावत् सजीव शब्द-चित्र देखिए—

"अरुन-नयन-नोर तीतल कलेबर
बिलुलित दीघल केसा ।"

यहाँ अँग्रेजी के प्रसिद्ध कवि कीट्स के रूप चित्रो की स्मृति आ जाती है ! शब्द-चित्रांकन मे हिन्दी के दो ही कवि—विद्यापति एवं बिहारी—काव्य-जगत् के उच्चकोटि के कलाकार हैं ।

शब्दार्थ—क त परबोधब=कितना समझाऊँ । बेरि बेरि=बारम्बार । जिउ=प्राण । समाधा=यहाँ विसर्जित करने से आशय है, समाप्त । जतनहि=प्रयत्न से । बइसइ=बैठती है । पुनहि=फिर । नहि पारा=नही सकती । सहजहि=स्वभावत. । बौरि=पागल । मदन-सर-धारा=कामदेव के वाण-वर्षा से तात्पर्य है । अरुन-नयन=दुखते हुए लाल नेत्र । नोर=नीर, अश्रु । तीतल=भीगा हुआ । कलेबर=शरीर । बिलुलित=बिखरे हुए, अस्तव्यस्त । दीघल=दीर्घ, लम्बे । केसा=केश । मन्दिर=घर । सहचरि=सखी । सेषा=मौत । उतपत साँस=गरम साँस । आस-पास=आशा के पाश मे ।

(२१७)

अनुखन माधब माधब सुमरइत
सुन्दरि भेलि मधाई ।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल
अपने गुन लुबुधाई ।
माधब, अपरुब तोहर सिनेह ।
अपने बिरह अपन तनु जरजर
जिबइत भेलि संदेह ।
भोरहि, सहचरि, कातर दिठि हेरि
छल-छल लोचन पानि ।
अनुखन राधा राधा रटइत
आधा आधा बानि ।
राधा सयँ जब पुनतहि माधब
माधब सयँ जब राधा ।
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत
बाढ़त बिरहक बाधा ।

दुहुदिस दारु-दहन जैसे दगधई
आकुल कीट परान ।
ऐसन बल्लभ हेरि सुधामुखि
कवि विद्यापति भान ।

भावार्थ—'विरह' प्रसग के अन्तर्गत विद्यापति का प्रस्तुत पद श्रेष्ठतम कहा जायगा। यहाँ साधक साध्य, गायक गेय एव प्रेम प्रेय के बीच का व्यवधान सर्वथा हट गया है—'मै' 'तू' मे समाकर एकाकार हो गया है। इसीको त्वरीयावस्था, योगावस्था, समाधिस्थावस्था, चरमानदावस्था कहा जाता है। यहाँ पहुँचकर राधा और कृष्ण, पुरुष-प्रकृति, ब्रह्मा-माया सब कुछ एकरूप हो जाते है, इसीका स्थिर दर्शन है 'एकोऽम द्वितीयो नास्ति' और आनन्द-दर्शन है 'एकोऽम बहुस्यामि !' ऐसा लगता है कि अतत इसी अनुभूति की अभिव्यजना करना कविवर विद्यापति के शृंगारी पद लिखने का लक्ष्य था। यहाँ वे लौकिकता की सीढियाँ पार करते-करते दिव्यता की मजिल छू लेते है, आत्मविमुग्ध होकर प्रेम के महानन्द की मूर्च्छना मे लीन हो जाते हैं, एक ऐसी पीडा से उनका अखड नाता जुड जाता है जो सर्वत्र है, सनातन है—

हर क्षण 'माधव-माधव' के नाम का स्मरण करती-करती सुन्दरी राधा स्वयं माधव हो गई है। वह इतनी प्रेम-भावलीना हो गई है कि अपनेपन को भी भूल गई है और अपने ही गुण-रूप पर सम्मोहित हो गई है। हे माधव, तुम्हारा प्रेम भी बडा अनूठा है ! वह राधा अपने ही विरह मे अपना शरीर जर्जर बना रही है और वह जीयेगी या जी रही है इसमे भी सदेह होता है। वह बिसुध भोली होकर दयनीय दृष्टि से सखियो को देखती है और आँखो से छल-छलकर आँसू गिराती है। वह अनबूझे अटपटे शब्दो मे प्रतिक्षण राधा-राधा रटने मे लीन रहती है। राधा से कृष्ण और उसी प्रकार कृष्ण से राधा एकाकार हो गए हैं। यह कष्टकारक प्रेम कभी भी खण्डित नही हो सकता वरन् राधा मे और विरह की वृद्धि कर रहा है। उसके कीट सदृश प्राण दोनो दशा मे नाम रूप-भावो से अकुला-अकुलाकर ज्यो काष्ठाग्नि-से जले जा रहे है। आशय यह है कि वह राधा रूप मे अपनेपन से भी कृष्ण के विरह मे जल रही है और कृष्ण के रूप-भाव मे भी उसे जलना ही पडता है क्योकि एक वियोगी की विरह-ज्वाला तो कृष्ण मे भी है न ! कविवर विद्यापति कहते है कि उस चन्द्रमुखी राधा ने ऐसा ही प्राणवल्लभ या प्रेमी को खोजा-वरा है, फिर क्या किया जाय ?

विशेष—प्रस्तुत पद मे प्रेमावेश की चरम अभिव्यक्ति—वह अभिव्यक्ति जो बिना इहलोक के विस्मरण किये मुखरित ही नही हो सकती—हुई है। राधा राधा नहीं रह गई, अपने प्रेमी के निरन्तर स्मरण मे वह "मैं" से "तू" ही बन गई है—राधा से कृष्ण मे परिणत हो गई है। एक क्षण की भी यह गाफिलता न जाने कितने जन्मों का

विरह संताप नष्ट कर देती है, इसे कौन कहे, कौन समझे ! प्रथम पंक्ति मे ही प्रेम का लबालब भरा जाम छलक उठा है—

"अनुखन माधब माधब सुमरइत
सुन्दरि भेलि मधाई ।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल
अपने गुन लुबुधाई ।"

"ओ निज भाव सुभावहि बिसरल अपने गुन लुबुधाई ।" पक्तियो मे जीव की उस स्तिथि की व्यजना भी है जब वह ब्रह्म के निरन्तर ध्यान मे अपने भौतिक ससार के गुणो-कार्यो को विस्मृत कर ब्रह्म रूप—अहम ब्रह्मास्मि या अनलहक—मे लीन हो जाता है । यही सच्चा योग है, भोग है ! दर्शन और काव्य-भावुकता की दृष्टि से विद्यापति का प्रस्तुत पद ससार के गीत-काव्य मे बड़ी विशिष्ट कोटि का कहा जायगा। विरह, आसक्ति, साधना, प्रेम और जितने भी उत्तमोत्तम गुण है उनकी अभिव्यजना यहाँ पूर्णरूपेण सफल हुई है ।

इन पक्तियो मे विरह और आसक्ति की चरम सीमा देखिए—

"अपने बिरह अपन तनु जरजर
जिबइत भेलि संदेह ।
× × ×
अनुखन राधा राधा रटइत
आधा आधा बानि ।"

यहाँ "आधा आधा बानि" मे वाणी की अस्फुटता केवल अवाक् अधर हिलने तक ही अनुभव होती है । कितनी सूक्ष्म व्यजना है ! सूफियो का तसव्वुर भी इस पद मे पूर्णतः प्रकट है किंतु उसमे भारतीय साधना का आग्रह ही प्रधान है—हाय-तोबा नही । अमर प्रेम की साध यहाँ दृष्टव्य है—

"दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत
बाढ़त बिरहक बाधा ।
दुहुदिस दारु-दहन जैसे दगधई
आकुल कीट परान ।"

"आकुल कीट परान" के जलने का उदाहरण देकर राधा की असीम वेदना और साधना सशरीर जैसे समक्ष खड़ी कर दी गई है । यहाँ साधनात्मक रहस्यवाद प्रवेग के साथ प्रवर्त्तित हुआ लगता है । राधा और माधव तो यहाँ केवल प्रतीक या उपकरण है, तथ्य तो आत्मा-परमात्मा और प्रेम विषयक है । विद्यापति के इस पद की प्रेरणा भारतीय रहस्यवादी कवियो के काव्य मे अपने-अपने रूप और अपनी-अपनी भाषा-शैली मे मुख-

गूँज रही है—

"आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा
खोना पाना हुआ जीत वे हारे ही है
प्रिय पथ के यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं।"

(साध्यगीत, पृष्ठ ३०)

तरुण कवि श्री नीरज जी की तन्मयता की दृष्टि से यह पंक्तियाँ भी यहाँ पठनीय है—

"दीप स्वयं बन गया शलभ अब जलते जलते
मंज़िल ही बन गया मुसाफिर चलते चलते
गाते गाते गेय हो गया गायक ही खुद
स्वप्न सत्य ही हुआ स्वयं अब छलते छलते।"

वस्तुत. आत्म तन्मयता, स्मृति विकलता तथा साधना निष्ठा की दृष्टि से विद्यापति का प्रस्तुत पद बेजोड है, उसकी समकक्षता मे दूसरी कोई रचना रखना शोभा नही देता। वस्तुत: भाव-पक्ष की अखड अनुभूति की लय इस पद मे अमर बनाकर समाहित की गई है। सम्भवत यही पद पदावली का सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है—अनुभूति की गहराई और काव्य तन्मयता की पूर्णता की दृष्टि से।

शब्दार्थ—सुमरइत=स्मरण करती हुई। भेलि मधाई=श्री कृष्ण रूप हो गई है। बिसरल=भूल गई है। लुबुधाई=अनुरक्त हो गई है। तोहर=तुम्हारा। सिनेह=स्नेह, प्रेम। सहचरि=सखी। आधा आधा बानि=अटपटी वाणी मे। सयँ=से। दारुन=घोर कष्टकार। दारु-दहन=काठ की आग। ऐसन बल्लभ=ऐसे कृष्ण जैसे कठोर प्रेमी से। हेरि=ढूँढा। सुधामुखि=सुन्दर मुख वाली राधा, चन्द्रमुखी राधा।

कृष्ण का विरह

(२१८)

रामा हे, से किए बिसरल जाई।
कर धरि माथुर अनुमति मंगइत
ततहि परल मुरुछाई।
किछु गदगद सरे लहु-लहु आखरे
जे किछु कहल बर रामा।
कठिन कलेवर तेइँ चलि आओल
चित्त रहलि सोइ ठामा।

से बिनु राति दिवस नहि भावए
ताहि रहल मन लागी।
आन रमनि सयँ राज सम्पद मोयँ
आछिए जइसे बिरागी।
दुइ एक दिवस निचय हम जाओब
तुहु परबोधबि राई।
बिद्यापति कह चित्त रहल नहि
प्रेम मिलाएब जाई।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

दूती से कृष्ण कह रहे है—हे ! उसको अर्थात् राधा को मेरा मन किस भाँति भुला सकता है ? उसका हाथ पकडकर कृष्ण जाने के लिये अनुमति माँगते-माँगते ही वही मूर्च्छित होकर गिर पडे। होश मे आने पर कृष्ण ने सखी से मधुर अस्फुट स्वर-वाणी मे कहा कि हाँ, मेरा हृदय बडा कठोर है जो मैं वहाँ से चला आया। इसके लिए तुम चाहे जो कुछ मुझसे कहो लेकिन मेरा मन तो हरदम वही रमा रहता है, कठोर शरीर भले ही यहाँ चला आया है। उसके बिना मुझे दिन-रात कुछ नही भाते, हरदम मन राधा मे ही रमा रहता है और अन्य रमणियो के सुख-सम्पत्ति भोग से जैसे मुझे वीतराग हो गया है। दो-एक दिन मे मैं निश्चित कि राधा मे मिलने आऊँगा, तुम यह कहकर उसे समझा-बुझा देना। कविवर विद्यापति लिखते है कि अब श्री कृष्ण के पास उनका हृदय तो रहा नही वह तो राधा के पास पहुँच ही गया केवल अब जाकर के स्थूल प्रेम-मिलन होगा। आशय यह है कि श्री कृष्ण का हृदय राधा के पास पहुँच गया कितु बाह्य प्रेम-मिलन के लिये अब वे जाएँगे।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कृष्ण की विरह-वेदना का प्रकाशन किया गया है। यहाँ किसी की निम्नाकित पक्तियाँ स्मरण हो आती है जब श्री कृष्ण स्वय कहते है—

"आन रमनि सयँ राज सम्पद मोयँ
आछिए जइसे बिरागी।"

और—

"ये बहार नफरत नजर आती है।
तेरी याद इस कदर सताती है।"

शब्दार्थ—रामा=सखी। से=वह, उसे। किए=किस प्रकार, कैसे। बिसरल=भूलाया। माथुर=नायक, कृष्ण। मंगइत=माँगते वक्त। ततहि=वही। मुरुछाई=मूर्च्छित हो गये। लहु-लहु=धीरे-धीरे, मधुरता से। सरे=स्वर। सोइ ठामा=उसी जगह। से बिनु=उसके बिना। भावए=भाना। ताहि=उसी में।

रहल=रहता है। आन=अन्य, और। रमनि=रमणी। आछिए=हो गया हो, है। जइसे=जैसे। दुइ=दो। निचय=निश्चय। जाओब=जायेगे। तुहु=तुम। परबोधबि=समझाना, बुझाना। राई=राधा।

(२१६)

तिल एक सयन ओत जिउ न सहए
न रहए दुहु तनु भीन।
माँझे पुलक गिरि अतर मानिए
अइसन रह निसि-दीन।
सजनी कोन परि जीबए कान।
राहि रहल दुर हम मथुरापुर
एतहु सहए परान।
अइसन नगर अइसन नव नागरि
अइसन सम्पद मोर।
राधा बिनु सब बाधा मानिए
नयनन तेजिए नोर।
सोइ जमुना जल सोइ रमनीगन
सुनइत चमकित चीन।
कह कबिसेखर अनुभवि जनलौं
बड़क बडई पिरीत।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

पूर्व प्रसगक्रम मे श्री कृष्ण दूती मे कह रहे है कि मेरे और राधा के प्राण सेज से पल भर का वियोग होना भी सहन नही कर सकते थे और न ही परस्पर हम दोनों के तन कभी भिन्न रहते थे। मिलन मे अधिक रोमाच के कारण थोडा सा कभी पार्थक्य हो जाता था अतः वह रोमाच भी हम लोगो को पर्वत सदृश दु.खदायक लगता था। हम इसी भाँति रात-दिन अभिसारयुक्त ही बने रहते थे। हे सखी! इस दशा मे तुम्हीं विचारो कि अब यह कृष्ण किस प्रकार जिन्दा रह सकता है? मेरी प्रिया राधा मुझसे कितनी दूर हो गई है और मैं इस मथुरापुरी मे उससे कितनी दूर हूँ, तदपि विच्छेद का इतना दु.ख भी प्राण सह लेता है, धिक्कार है! ऐसी सुन्दर ये मथुरा नगरी है और ऐसी सुन्दर यहाँ की सब नवयुवतियाँ है और ऐसी सुन्दर यहाँ की मुझे प्राप्त सम्पत्तियाँ हैं फिर भी राधा के बिना मैं यह सब कुछ बाधातुल्य मानता हूँ, यह सब कुछ मेरे लिये तुच्छ है और मेरी आँखे हरदम आँसू बहाती रहती है। वहाँ का वह यमुनाजल और वहाँ की वह रमणियो या गोपियो की चर्चा सुनते ही हृदय स्मृति से अभिभूत होकर विह्वल हो-हो जाता है। कविवर विद्यापति कहते है कि इस अनुभव से अब मैं यही

समझता हूँ कि महान् लोगों की प्रेमलीला का महत्त्व भी बड़ा ही होता है। आशय यह है कि महान् कृष्ण की राधा के साथ प्रीति-क्रिया हर रूप में महान् ही है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे वियोगी हृदय की छलछलाती हुई वेदना को स्वाभाविकता से प्रकट किया गया है। प्रस्तुत पक्तियो मे सुप्त स्मृति और पीड़ा की करवट देखिए—

"तिल एक सयन ओत जिउ न सहए
न रहए दुहु तनु भीन।
× × ×
राधा बिनु सब बाधा मानिए
नयनन तेजिए नोर।"

रति-क्रिया के समय रोमाच का किंचित् पार्थक्य भी असहनीय होता था, अतः उसकी चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति इन पक्तियो मे किस सुन्दरता से हुई है—

"माँझे पुलक गिरि अतर मानिए
अइसन रह निसि-दीन।"

प्रणयासक्ति की इससे उत्कृष्ट व्यंजना और कैसी होगी! स्मृति अलकार का मर्मस्पर्शी प्रयोग इन पक्तियों मे कितना सहज भाववर्धक बन पड़ा है—

"अइसन नगर अइसन नव नागरि
अइसन सम्पद मोर।
× × ×
सोइ जमुना जल सोइ रमनीगन
सुनइत चमकित चीत।"

भाव-चापल्य, स्मृति-व्यथा और आसक्ति-विरक्ति का सम्मिलित स्वर गूँज उठा है सम्पूर्ण पद मे।

शब्दार्थ—सयन=शयन। जिउ=जीव, आत्मा। न सहए=बर्दाश्त नही करता था। दुहु=दोनो। भीन=भिन्न, अलग। अइसन=इसी प्रकार। कोन परि=किस प्रकार। जीबए=जी सकता है। कान=कान्ह, कृष्ण। राहि=राधा। रहल=रहती है। सहए=सहता है। परान=प्राण। नागरि=चतुर स्त्रियाँ। सम्पद=सम्पत्ति। मोर=मेरा। नयनन=आँखो से। तेजिए=छोडना, त्यागना। नोर=नीर। सोइ=वही। चीत=चित्त, हृदय। अनुभवि=अनुभव से। जनलौ=जाना, समझा। बड़क=बड़ो का। बड़ई=बडा ही। पिरीत=प्रीत।

भावोल्लास

(२२०)

सरस बसंत समय भल पाओलि
दछिन पवन बिहु धीरे।
सपनहुँ रूप बचन एक भाखिए
मुख सों दुरि करु चीरे।
तोहर बदन सम चान होअथि नहि
जाइओ जतन बिहि देला।
कए बेरि काटि बनाओल नव कय
तइओ तुलित नहि भेला।
लोचन-तूल कमल नहि भए सक
से जग के नहि जाने।
से फेरि जाए लुकाएल जल भए
पंकज निज अपमाने।
भनहि बिद्यापति सुनु बर जौबति
ई सभ लछमी समाने।
राजा सिवसिंघ रूपनरायन
लखिमा देइ पति भाने।

प्रसंग-सकेत—पुरुष को आत्मसमर्पण करना नारी की सुकोमल वृत्ति का परिचायक है। पुरुष के साथ सुखमय समय व्यतीत करने एव सम्भोग-विलास का आनन्द लूटने की लिप्सा नारी मे प्रबल हो जाती है। वह भावोल्लास की तरगो से अभिभूत होकर अपने प्रियतम से विशेष भावभगिमा और अनुभाव-चेष्टाओ के माध्यम द्वारा अभिसार की कामना करती है। उसका यही व्यापार कवियो के शृगार-वर्णन का एक प्रमुख साधन है जिसके आह्लाद की अनुभूति रसिको के हृदय को बरबस अपने शृंगार-रस मे निमज्जित कर देती है। कविवर विद्यापति ने इस प्रसग में नायिका के इसी भावोल्लास का वर्णन बडे मनोवैज्ञानिक एव मोहक रूप मे किया है।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

रसवन्त बसत का सुन्दर सुहावना समय आया है। मलयानिल मन्द-मन्द चल रहा है। हे सुन्दरी ! स्वप्न में खोई हुई होने के मिस ही प्रेम की मधुर बात कहो न !

अपने मुख पर से आँचल हटा दो। सचमुच विधाता ने तुम्हारे मुख के समान चाँद को बनाने के लाख प्रयत्न किये तदपि नही बना सके। बराबर उन्होंने काँट-छाँट कर नये तरीके से चाँद को बनाया भी तदपि वह तुम्हारे मुख के समान नही बन सका। तुम्हारी आँखो के तुल्य कमल भी नही हो सका, समार मे यह कौन नही जानता ? फिर वह कमल अपना अपमान समझकर, ल ज के मारे जल मे जाकर छिप गया। कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे श्रेष्ठ तरुणी ! सुनो, यह सब लक्ष्मी के तुल्य है। राजा शिवसिंह जो रूप मे आगर है, लखिमादेवी के पति कहलाते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे नायिका के अग उपमेयो के सौन्दर्य को चन्द्रमा, कमल आदि प्रचलित उपमानो के समकक्ष रखकर उसकी विशेषता प्रकट की गई है एवं उपमान-उपकरणो का अपकर्ष व्यक्त किया गया है, अतः चतुर्थ प्रतीप अलकार भी स्वतः आभासित होता है। प्रणय-उत्सुकता को तीव्रता से व्यक्त करने मे यह पक्तियाँ कितनी मधुर है—

"सपनहुँ रूप वचन एक भाखिए
मुख सों दुरि करु चीरे।"

"मुख सो दुरि करु चीरे" मे घूँघट के नीचे सुन्दर मुखडा निहार लेने का भाव मानो अपने कर बढ़ाता-सा प्रतीत होता है। सुन्दरी के सौन्दर्य के अद्भुत निर्माण के समान तो स्वय विधाता भी कोई अन्य रूप बनाकर भी वैसा न बना पाए, यहाँ वाग्वैदग्ध्य विहँस उठा है—

"तोहर बदन सम चान होअथि नहि
जाइओ जतन बिहि देला।"

"बिहि" या विधाता भी जिस सृष्टि के समान कोई दूसरी न बना सका फिर अन्य की बात कौन कहे ! सचमुच, विद्यापति की रूप सृष्टि इसी कोटि की है जिससे विधाता भी ईर्ष्या कर सकते हैं !

शब्दार्थ—सरस=रससहित, रमवन्त, रसभरा, रसमय। भल=बढ़िया, सुहावना। भाखिए=कह दो। दुरी=अलग। चीरे=कपडा। होअथि नहि=नहीं हो सकता है। कए=कितने। बेरि=बार। बनाओल=बनाया। तइओ=तो भी। लोचन-तूल=नयनतुल्य। नहि भए सक=नही हो सका। से=यह। के=कौन। फेरि=फिर। जाए=जाकर। लुकाएल=छिप गया। पंकज=कमल। निज=अपना। बर=श्रेष्ठ। जौबति=युवती। ई=यह। समाने=समान है।

(२२१)

सुतलि छलहुँ हम घरबा रे
गरबा मोतीहार।
राति जखनि भिनुसरबा रे
पिया आएल हमार।
कर कौसल कर कँपइत रे
हरबा उर टार।
कर-पंकज उर थपइत रे
मुख-चद निहार।
केहनि अभागलि बैरिनि रे
भागलि मोर निन्द।
भल कए नहि देखि पाओल रे
गुनमय गोबिन्द।
बिद्यापति कबि गाओल रे
धनि मन धरु धीर।
समय पाए तरुबर फर रे
कतबो सिचु नीर।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

श्री कृष्ण के साथ स्वप्न-मिलन सम्बन्धी भावोल्लास को प्रकट करते हुए उन्मादिनी नायिका कहती है कि मैं अपने घर मे सोई थी, मेरे गले मे मुक्ताहार था। कल रात का जब प्रात.काल हुआ तब अनुरक्त होकर मेरे प्रियतम श्री कृष्ण आए। अपने कम्पित हाथ से उन्होने बडे चातुर्यपूर्वक मेरे हृदय का हार हटाया और अपना हस्त-कमल मेरी छाती पर रखकर मेरे मुख-चन्द्र को निहारा। हाय, मेरी नीद भी कैसी अभागिन और बैरिन सिद्ध हुई कि उस प्रात.कालीन सत्य स्वप्निल-मिलन की वेला मे झट से टूट गई और मै अपने सुचतुर गुणवान रसिक प्रियतम श्री कृष्ण को भली-भाँति देख भी न पायी। कविवर विद्यापति गाते है कि हे रमणी ! मन मे धैर्य धारण करो। अरे उपयुक्त समय पर ही वृक्ष फला करता है, चाहे उसे कितना भी क्यो न सीचा जाय, वह समय से पूर्व नही फला करता। आशय यह है कि हर शुभ कार्य समय आने पर ही सफल होगा, चाहे कोई कितना भी तदर्थ प्रयत्न या पश्चात्ताप क्यो न करे।

विशेष—प्रस्तुत पक्ति मे यद्यपि रूपक अलकार का प्रयोग मौलिक तो नहीं तदपि उसके साथ जो चेष्टा जुडी है वह उसे अत्यन्त आकर्षक एवं रोमांचकारी बनाने मे सफल सहायक है—

"कर कौसल कर कँपइत रे
हरबा उर टार।
कर-पंकज उर थपइत रे
मुख-चंद निहार।"

कर-पकज एवं मुख-चद तो प्रचलित रूपक है किन्तु उनका संचालन कर रहे हैं 'कर कौसल' एवं 'कर कँपइत' शब्द-चित्र ! इस प्रकार रोमाचित दशा की स्थिति समक्ष खडी हो जाती है, गुदगुदाती है। लोकोक्ति के रूप मे यह पक्ति कितनी तथ्यमयी है—

"समय पाए तरुबर फर रे
कतबो सिचु नीर।"

इसी की नकल पर न जाने किस कवि ने लिखा—

"समय पाय तरुवर फरे केतुक सींचो नीर।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यापति की रचनाओ ने परिवर्ती हिन्दी कवियों पर अपना प्रभाव अवश्य डाला है। महान् कवियो की उक्तियो मे यही सामर्थ्य होती है।

शब्दार्थ—सुतलि=सोई हुई। छलहुँ=थी। घरबा=घर मे। गरबा=गले मे। जखनि=जब। भिनुसरबा=सवेरा। आएल=आए। कौसल=चातुर्य। उर टार=हृदय से हटाया। पकज=कमल। थपइत=रखना, स्थापना करना। निहार=प्रेम अथवा कामुक दृष्टि से देखना। केहनि=कैसी। भागलि मोर निन्द=मेरी नीद भाग अथवा टूट गई। भल कए=भली प्रकार से, अच्छी तरह। फर=फलना। कतबो=कितना भी। सिचु नीर=पानी से सीचा जाय।

(२२२)

मोरा रे अँगनमा चनन केरि गछिआ
ताहि चढ़ि कुररय काग रे।
सोने चोच बाँधि देब तोयँ बायस
जओं पिया आओत आज रे।
गाबह सखि सब झूमर लोरी
मयन-अराधन जाऊँ रे।
चओदिस चम्पा मओली फूलली
चान इजोरिया राति रे।
कइसे कए मोयँ मयन अराधब
होइति बड़ि रति साति रे।
बिद्यापति कवि गाबए तोहर
पहु अछ गुनक निधान रे।

राम्रो भोगीसर सब गुन आगर
पदमा देइ रमान रे।

भावार्थ—'भावोल्लास' प्रसग के अन्तर्गत प्रस्तुत पद में कविवर विद्यापति लिखते हैं—

नायिका कह रही है—मेरे आगन मे चन्दन के पेड है और उसपर बैठा हुआ काग 'काँय-काँय' करता है। आशय यह है कि काग प्रियतम के आगमन की पूर्व शुभ-सूचना देता है (ऐसी अनूठी आस्था लोगो मे होती भी है। कौए का मुडेर अथवा घर के वृक्ष पर चढकर बोलना किसी भूले-भटके के शुभागमन की पूर्व सूचना होती है। लोक-साहित्य मे काग-वाणी सम्बन्धी अभिव्यजनाएँ बहुत हुई मिलती है।) नायिका कहती है कि हे काग! तेरी चोच मैं स्वर्ण से मढवा या बँधवा दूंगी यदि आज ही मेरे प्रियतम घर लौटकर आ जायेगे। अरी प्यारी सखियो! सभी झूमर-लोरी के विशेष गीत-राग गाओ क्योकि मैं कामदेव की पूजा को जाने के लिये तत्पर हो रही हूँ। आशय यह है कि काग अब प्रिय-मिलनाभिसार का सदेश दे चुका है अत: मै भी खुश हूँ, तुम सब भी होओ। ये देखो, सर्वत्र चम्पा-मल्लिका के पुष्प विकसित है और मधुर-मधुर चन्द्रमा सहित ये उजाली रात! तभी सहसा प्रिय-वियोग की वर्तमान अनुभूति चुभ जाती है और नायिका कहती है—किन्तु मैं कामदेव का पूजन भी कैसे करूँगी?—मुझे तो अत्यन्त रतिजन्य पीडा सालती है—प्रिय दूर जो है! कविवर विद्यापति गाते है कि अरी रमणी! तेरे प्रियतम तो गुणो के आगार है—बडे समझदार है—ऐसे ही जैसे कि पद्मादेई के साथ रमण करने वाले राजा भोगीश्वरसिह सब गुणो के आगार हैं।

विशेष—प्रस्तुत पद मे लोक गीतत्व प्रधान है। काग के शुभ बोलो के ऐवज में उसकी चोच स्वर्ण से जडवाने वाली मधुर भावुक मान्यता आज भी प्रचलित है, उसी का प्रकाशन कितने स्वाभाविक शब्दों मे हुआ है—

"मोरा रे अँगनमा चनन केरि गछिआ
ताहि चढ़ि कुररय काग रे।
सोने चोंच बाँधि देब तोयँ बायस
जओं पिया आओत आज रे।"

कितना मीठा प्रलोभन है! प्राकृतिक वातावरण के चित्रण मे कितना कमाल प्रकट है इन पंक्तियों में—

"चओदिस चम्पा मओली फूलली
चान इजोरिया राति रे।"

क्योंकि यही वातावरण तो "मयन-अराधन जाऊँ रे" की सापेक्षता रखता है। विद्यापति ने शृंगार के मनोभावो से युक्त चित्रों को चित्रित करने में प्रकृत कल्पना एवं वातावरण की सृष्टि बड़ी रोमांचकारी की है।

शब्दार्थ—मोरा रे अँगनमा=मेरे आगन मे। चनन=चन्दन। केरि=का। गछिआ=पेड़। ताहि=उस। काग=कौआ। कररय=बोलता है, आशय है 'काँय-काँय' करता है। बाँधि देब=बाँध दूंगी, आशय है सोने से चोच को 'मढा दूंगी'। तोयँ=तुझे, यहाँ चोच के लिये 'तेरी' से आशय होता है। बायस=काग। जओ=यदि। झुमर लोरी=एक विशेष राग, रागनियो सम्मत लोक-गीत। मयन-अराधन=कामदेव का पूजन। चान=चन्द्रमा। इजोरिया राति=उजाली या चाँदनी रात। कइसे कए=किस भाँति करके। मोयँ=मै। रति साति=रति-जन्य पीडा, काम-पीडन। अछ=है। पहु=प्रियतम। आगर=खान या कोष से आशय है।

(२२३)

अँगने आओब जब रसिया।
पलटि चलब हम इषत हँसिया।
रस-नागरि रमनी।
कत कत जुगति मनहि अनुमानी।
आवेसे आँचर पिया धरबे।
जाएब हम न जतन बहु करबे।
कँचुआ धरब जब हठिया।
करे कर बाँधब कुटिल आध दिठिया।
रभस माँगब पिआ जबही।
मुख मोड़ि बिहँसि बोलब नहि नहि।
सहजहि सुपुरुख भमरा।
मुख कमलक मधु पीअब हमरा।
तखन हरब मोर गेआने।
बिद्यापति कह धनि तुअ धेआने।

भावार्थ 'भावोल्लास' प्रसग के अन्तर्गत इस पद मे कविवर विद्यापति लिखते

नायिका स्वत कल्पना कर रही है—जब मेरे आगन मे साजन आयेगे तो मैं थोडा-थोड़ा-सा स्मिति छिट॰ काती हुई—मद हास करती हुई—पलट कर चल दूंगी। कविवर विद्यापति कहते है कि ऐसी है वह रस मे सुचतुरा रसमय रमणी! वह मन मे अभिसार-चातुर्य की कैसी-कैसी युक्तियाँ अनुमानती है, विचार करती है। आवेश मे जब साजन अचल पकड़ेगे तब लाख प्रयत्न करनें पर भी मै उनके साथ अभिसारार्थ नही जाऊँगी। जब हठपूर्वक चोली मे कुचो के स्पर्श हेतु हाथ डालेगे तब मैं उनके हाथ को अपने ह बांधकर कुटिल अर्ध-मादक दृष्टि से देखूंगी—शरारत की नज़र से वैसा न कर मृदुल ताड़ना दूंगी। जब साजन मुझसे सुरत अथवा मैथुन (रभस) की याचना क

तब मैं मुख मोड़कर मिठास से हँसती-हँसती हुई "ना-ना" कहूँगी। स्वभाव से ही रसिक पुरुष भँवरे जैसे होते है। जिस समय वह मेरे मुखकमल के मधु का पान करेगे—चुम्बनादि लेगे—तब मेरा सारा अपनापन हर लेगे। कविवर विद्यापति कहते है—हाँ, रमणी ! तुम इस बात को अवश्य ध्यान मे रखना—जरा सतर्क बनी रहना।

विशेष—प्रस्तुत पद मे प्रणयजन्य नायिका की स्वाभाविक "हा-ना" सम्बन्धी युक्तियो की योजना बड़ी यथार्थ की है, जब वह सोचती है—

"करे कर बाँधब कुटिल आध दिठिया
रभस माँगब पिआ जबही।
मुख मोड़ि बिहँसि बोलब नहि नहि।"

यहाँ नायिका की 'नहि नहि' की अस्वीकृति, आधी दृष्टि एव मुखमुडी हँसी प्रणय की सम्पूर्ण स्वीकृति की पूर्व सूचना दे रही है। भाव-अनुभावो की अभिव्यक्ति मे नि.सदेह विद्यापति को पूरी सफलता मिली है। कोई पक्ति ऐसी नही जिसमे विद्यापति का शृंगार-वर्णन इतिवृत्तात्मक अथवा ऊहात्मक रहा हो वरन् उसमे स्वय 'माधव' गूँज उठा है।

शब्दार्थ—अँगने=आगन मे। रसिया=साजन, प्रेमी। पलटि चलब=लौट कर चल दूँगी। इषत=कुछ। कत=कितनी। जुगति=युक्ति। मनहि=मन मे। अनुमानी=सोची। आबेसे=आवेश उत्तेजन मे। आँचर=अचल। धरबे=पकड़ेगे। जाएब हम न=आशय है मै अभिसारार्थ न जाऊँगी। जतन=यत्न। बहु=बहुत। करबे=करने से। कँचुआ=चोली। हठिया=जिदपूर्वक। करे कर बाँधब=अपने हाथ से उनके हाथ बाध लूँगी। कुटिल=तिरछी। आध दिठिया=अर्ध-मादक दृष्टि से तात्पर्य है। रभस=मैथुन, सुरत, काम-याचना। सहजहि=स्वभाव से। सुपुरुख=रसिक जन। भमरा=भौरा। मुख कमलक=मुख रूपी कमल का। तखन=उस समय। हरब=हर लेगे, छीन लेगे। गेआन=यहाँ अपनेपन से आशय है। धनि=रमणी। तुअ=तुम। धेआने=ध्यान, 'सतर्क रहने' से यहाँ आशय है।

(२२४)

पिआ जब आओब ई मझु गेहे।
मंगल जतहु करब निज देहे।
कनअ कुम्भ करि कुच जुग राखि।
दरपन धरब काजर देइ आँखि।
बेदि बनाओब हम अपन अङ्क मे।
झाड़ करब ताहे चिकुर बिछौने।
कदलि रोपब हम गरुअ नितम्ब।
आम पल्लव ताहे किंकन सुझम्प।

दिसि दिसि आनब कामिनि ठाट ।
चौदिस पसारब चाँदक ‍ ‍ट ।
बिद्यापति कहे पूरब आस ।
दुइ एक पलक मिलब तुम्र पास ।

भावार्थ—'भावोल्लास' प्रसग के अतर्गत प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

नायिका कह रही है कि जब प्रियतम इस घर मे आएँगे तो जितना भी मंगल अर्थात् आमाद-प्रमोद का उपक्रम होगा वह अपने अग मे करूँगी । आशय यह है कि पिया-मिलन की खुशी मे मैं शरीर पर खूब शृगार के साधनसहित अलकृत होऊँगी । अपने दोनो उरोजो को स्वर्ण घट-सा सुन्दर बना कर रखूँगी । काजल लगाकर आँखों को दर्पण तुल्य बनाकर रक्खूँगी । प्रियतम के विराजने के लिये मै अपनी गोद मे वेदी बनाऊँगी, और उसमे झाड़ू लगाने के लिये अपने केश खोलकर उनकी झाड़ू बनाऊँगी—लगाऊँगी । अपने पीन नितम्बो को केला तुल्य रोपूँगी और झकृत किकिणी उसमे आम्र पल्लव जैसी प्रतीत होगी । आशय यह है कि दोनो मासल नितम्ब तो स्थूल जघाओं के सहित केला के निर्मित सिहद्वार जैसे उच्च सुदर प्रतीत होगे एव सभोग के झोंकों के समय कमर की किकिणी की मधुर ध्वनि यो होगी जैसे आम्र पल्लव शब्दायमान हो रहे हों । दूर-दूर की सजी सुन्दरियाँ लाऊँगी और अपने चारो ओर चन्द्रमा की हाट (मेला) फैलाऊँगी । अर्थात् सर्वत्र चन्द्रमुखियो की नुमायश होगी । कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे रमणी ! निश्चय ही तुम्हारी प्रिय-मिलन की आशा पूर्ण होगी । दो एक निमिष में तुम्हारे प्रियतम तुम्हारे पास होगे ।

विशेष—प्रियतम के आगमन के निमित्त कामिनियो की शृगारीकरण की भावना अतिशय उद्दीप्त हो जाती है । प्रायः वस्तुगत अलकारो का महत्त्व ही इस ओर शृ गारी कवियो ने प्रतिपादित किया है, कितु मानसिक अलकारों का भी अपना बडा महत्त्व होता है । मानसिक अलकार वस्तुगत अलकारो को भी अधिक मार्मिक एव रसमय बना देते हैं, कितु उनको मानसिक रूप मे व्यक्त करना बड़ा ही कठिन कार्य है । कविवर विद्यापति ने मागलिक मानसिक अलकारो का यहाँ विधान रचा है—नायिका अपने कुचों को कनग्र कुम्भ करेगी, वेदी अपने अक को बनाएगी और कजराई आँखो को आकर्षण दर्पण बना देगी, आदि अभिव्यंजना बड़ी मौलिक बन पडी है । कितु इस प्रकार की अभिव्यंजना सस्कृत के कवियो ने भी बड़ी निपुणता से की है । विद्याप‍ ‍ पद की तुलना में संस्कृत की यह अभिव्यंजना भी पठनीय है—

"दृष्टिर्बन्दनमालिकाः स्तन युगं लावण्य पूर्णोघटौं,
शुभ्राणा प्रकटः स्मितः सुमनासाबवत्र प्रभा दर्पणः

रोमांचोद्गम एव सर्वपकण: पाणी पुनः पल्लवा
स्वाङ्गेरेव गृह प्रियस्थ विगतम्तन्व्याकृतं मङ्गलम ॥"

निश्चय ही यहाँ विद्यापति की पदाभिव्यक्ति से लालित्य एव कल्पना अधिक बारीक एवं सरस बन बड़ी है।

शब्दार्थ—ई=इस। मझु=मे। गेहे=घर मे। आग्रोब=आयेगे। मंगल=शुभ शृ गार। जतहु=जितना। निज देहे=अपने शरीर में। कनअ कुम्भ=स्वर्ण घट। जुग=दोनो। अक मे=गोद मे। चिकुर=केश। बिछीने=बिखराकर, खोलकर। कदलि=कदली या केला। रोपअ=लगाना। गरुअ=स्थूल। पसारब=पसारना, 'लगाने' से आशय है। चाँदक हाट=चाँद का बाजार। पूरब=पूर्ण।

(२२५)

दुहुक दुलह दुहु दरसन भेल।
बिरह जनित दुख सब दुर गेल।
कर धरि बइसाओल बिचित्र आसन।
रमन-रतन-स्याम रमनी रतन।
बहु बिधि बिलसए बहु बिधि रंग।
कमल मधुप जनि पाओल सग।
नयन नयन दुहु बयन बयान।
दुहु गुन दुहु गुन दुहुजन गान।
भनइ बिद्यापति नागरि भोर।
त्रिभुवनविजयी नागर चोर।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

दोनो का दुर्लभ दर्शन अर्थात् प्रेमी और प्रेमिका का दुर्लभ दर्शन परस्पर दोनों को प्राप्त हुआ। विरह-प्रकट सारे दु.ख भी दूर हो गये। नायिका ने नायक का धर थामकर विचित्र आसन—कामासन—पर आसीन किया। कृष्ण सुन्दर रसिक-रत्न हैं और राधा रमणी-रत्न है। दोनो बहुत प्रकार से रति-क्रिया करते है, ऐसे, कि मानो भौरा और कमल का समागम हो रहा हो। दोनो एक दूसरे को देख-देखकर आँखों-आँखों के सकेत से प्रणय के वचन व्यक्त करते है और दोनो एक दूसरे के गुणों का गान करते है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि नायिका राधिका तो बड़ी भोली है, लेकिन त्रिभुवनविजयी नायक कृष्ण पक्के धूर्त्त है, चतुर चोर है।

विशेष—प्रस्तुत पद में राधा-कृष्ण की सुन्दर जोड़ी की उपमा 'रत्न' से दी गई है जो अपने मे पूर्ण खरी है। अंत मे वक्रोक्ति के माध्यम से कृष्ण को रसिकों के चोर कहकर 'राजा' होने की ध्वनि दी गई है और राधा को भोली कहकर काम दुहिता 'श्रद्धा' के आसन पर बैठाया गया है—

"भनइ बिद्यापति नागरि भोर।
त्रिभुवनविजयी नागर चोर।"

इन दोनों पंक्तियों के शब्द-शब्द का गौरव, उनकी व्यंजना और समक्ष खड़ी हुई वक्रोक्ति परस्पर एकाकार रूप मे दृष्टिगत होते है। कम शब्द और पूर्ण भावाभिव्यंजना की इतनी उत्कृष्टता हम महान् कवियों मे ही पा सकते है।

शब्दार्थ—दुहु=दोनो। क=का। दुलह=दुर्लभ। दरसन=दर्शन। भेल=हुआ। जनित=जन्य। दुर=दूर। गेल=गया। बइसाओल=बैठाया। रतन=रत्न। बहु बिधि=बहुत प्रकार से। बिलसए=विलास करना। रंग=रति-क्रिया। जनि=समान। पाओल=पाया। सग=साथ। बयन=बोली। गुन=गुण। नागरि=नायिका, राधा। भोर=भोली। नागर=नायक कृष्ण। त्रिभुवनविजयी=तीनों लोक जीतने वाले।

(२२६)

चिर दिन से बिहि भेल अनुकूल रे।
दुहु मुख हेरइत दुहु से आकुल रे।
बाहु पसारिए दुहु दुहु धरु रे।
दुहु अधरामृत दुहु मुख भरु रे।
दुहु तनु कॉपइ मदन उछल रे।
किन किन किन खरि किंकिनि रुचल रे।
जाइतेहि स्मित नव बदन मिलल रे।
दुहु पुलकावलि ते लहु लहु रे।
रस-मातल दुहु बसन खसल रे।
बिद्यापति रस-सिन्धु उछलल रे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

बहुत दिन तपस्या करने के पश्चात् ईश्वर उदार या पक्ष मे हुआ है। नायक और नायिका दोनो एक दूसरे का मुख देख-देखकर प्रणयाकुल हो रहे है। दोनों भुजपाश पसारे दोनो परस्पर आलिगन करते है और दोनों एक दूसरे के मुँह मे अधरामृत भरते हैं, अर्थात् एक-दूसरे का अधरपान करते है। दोनो के अतर मे कामदेव उछल रहा है इसलिये दोनो का बदन कॉप रहा है। किंकिणी की कन-कन ध्वनि भली लग रही है। एक दूसरे के निकट पहुँचते ही नव मधुर मुस्कान से दोनो के मुखारबिन्दु मिल गए, उससे दोनों का हृदय शनै-शनै कामातुर या रोमाचित हो उठा; वे धीरे-धीरे विलास करने लगे। दोनो रस मे मतवाले हो रहे थे इसलिये दोनों के शरीर से वस्त्र खुल गए—दोनों निरावरण हो गए। कविवर विद्यापति कहते हैं कि प्रेमी और प्रेमिका के मिलने से रस का समुद्र उच्छल हो गया—काम-सिंधु मे ज्वार आ गया।

विशेष—रोमाचजन्य कामानुभावो एव चेष्टाओं का यथातथ्य वर्णन प्रस्तुत पद की पक्ति-पक्ति में प्रभावशाली हुआ है, तदर्थ यह पक्तियाँ पठनीय है—

"बाहु पसारिए दुहु दुहु धरु रे।
दुहु अधरामृत दुहु मुख भरु रे।
दुहु तनु काँपइ मदन उछल रे।
किन किन किन खरि किंकिनि रुचल रे।"

अन्तिम पक्ति "किन किन किन खरि किकिनि रुचल रे।" मे अनुप्रास एवं कामोद्दीपनमयी मधुर ध्वनि का समन्वय विशिष्ट हुआ है। वस्तुत. सभोग-शृंगार का सागर उच्छल हो गया है यहाँ, कवि की इस सम्बन्ध मे लिखी गई यह उक्ति अपनी सत्यता मे सबल है—

"बिद्यापति रस-सिन्धु उछलल रे।"

आदर्शवादी दृष्टिकोण से यहाँ शृ गार-वर्णन सीमा का अतिक्रमण भले ही कर गया है किंतु उसमे अभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता एव कलात्मकता अपने मे पूर्ण कही जायगी।

शब्दार्थ—चिर=बहुत, लम्बा अरसा। बिहि=विधि, ब्रह्मा। दुहु=दोनों। हेरइत=देख-देखकर। पसारिए=फैलाकर। धरु=धरना, पकडना। भरु=भरना। मदन=कामदेव। रुचल=भाना, अच्छा लगना। जाइतेहि=जाते ही। स्मित=हँसती हुई। लहु=शनैः। पुलकावलि=पुलकित होना, प्रफुल्लित होना। खसल=खुल गया। बसन=वस्त्र। रस-सिन्धु=रस का समुद्र।

(२२७)

सुनु रसिया,
अब न बजाऊ बिपिन बँसिया।
बार बार चरनारबिंद गहि
सदा रहब बनि दसिया।
कि छलहुँ कि होएब के जाने
बृथा होएत कुल हँसिया।
अनुभव ऐसन मदन - भुजंगम
हृदय मोर गेल डसिया।
नद-नन्दन तुम सरन न त्यागब
बलु जग होए दुरजसिआ।
बिद्यापति कह सुनु बनितामनि
तोर मुख जीतल ससिआ।
धन्य धन्य तोर भाग गोआरिनि
हरि भजु हृदय हुलसिआ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका कहती है कि हे रसिक साजन, सुनो ! अब तुम मधुवन मे बाँसुरी न बजाना। मैं बार-बार तुम्हारे चरणकमल छूती हूँ और विश्वास दिलाती हूँ कि मैं तुम्हारी सदा दासी बनकर रहूँगी। मैं क्या थी और अब कौन जाने कि क्या हो जाऊँगी ? इसलिये व्यर्थ मे ही कुल का उपहास होगा। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि कामदेव रूपी सर्प मेरे हृदय को डस गया है। हे कृष्ण ! मै तुम्हारी प्रणय-शरण कभी नही छोड़ूँगी, भले ही दुनिया मे इसके लिये बदनामी या अपयश हो।

कविवर विद्यापति कहते है कि हे रमणियो की मणि सुन्दरी स्त्री ! जो मैं कहता हूँ उसे सुनो,—तुम्हारे मुख के सौन्दर्य ने तो चन्द्रमा को भी विजय कर लिया है। आशय कि तुम्हारा मुख चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर है।

हे ग्वालिन ! तुम्हारा धन्य भाग्य है। आशय है कि कृष्ण सरीखे साक्षात् परब्रह्म प्रेमी की सेवा-सुश्रूसा का तुम्हे अवसर मिला है। अब तुम हर्षित हृदय से कृष्ण ही का भजन करो।

विशेष—प्रस्तुत पद मे रूपक अलकार का प्रयोग "चरनारबिद" एव "मदन-भुजगम" मे सार्थक हुआ है। प्रणय मे लोक-निंदा और लाज की चिता का परित्याग ही वास्तविक रस का भोग है—इस तथ्य की हिमायत मे नायिका का यह साहस किस रसिक को मुग्ध न कर लेगा—

> "नंद-नन्दन तुम सरन न त्यागब
> बलु जग होए दुरजसिआ।"

अतिम पक्ति मे नायिका के मुख-सौन्दर्य की उत्कृष्टता चन्द्रमा की पराजय का माध्यम से सिद्ध की गई है जिसमे कवि का वाग्वैदग्ध्य सफल हुआ है, देखिए—

> "तोर मुख जीतल ससिआ।"

यहाँ 'जीतल' शब्द नायिका के मुख-सौन्दर्य पक्ष को बड़ा प्रभावशाली बना गया है। अतत. कवि ने शृ गार-भाव का पर्यवसान कृष्ण की रागुनग भक्ति-भावना मे किया है—

> "धन्य धन्य तोर भाग गोआरिनि
> हरि भजु हृदय हुलसिआ।"

यहाँ ग्वालिन शब्द एव हरि शब्द बडे महत्त्वपूर्ण इसलिये भी बन गए हैं क्योकि कृष्ण तो परब्रह्म रूप व्यजित हुए है और ग्वालिन सासारिक आत्मा के रूप मे, किंतु सर्वत्र ही विद्यापति के पदो मे यह भाव व्यजित नही, यहाँ केवल उनकी भक्ति-भावना काम कर गई है अन्यथा वे है शृंगार के रस-सिद्ध कवि ही।

शब्दार्थ—सुनु=सुनो। बिपिन=वन। बँसिया=बाँसुरी। बनि=बनकर। रहब=रहूँगी। दसिया=दासी, सेविका। कि=क्या। छलहुँ=थी। होएब=होऊँगी।

के=कौन। हँसिया=हँसी। ऐसन=ऐसा। मदन=कामदेव। भुजंगम=सर्प। मोर=मेरा। गेल=गया। बलु=भले ही। दुरजसिश्रा=बदनामी, हँसी। बनितामनि=सुन्दरी। तोर=तुम्हारा। भाग=भाग्य। गोश्रारिनि=गोपी, श्रहीरिन। हुलसिश्रा=उल्लासपूर्वक।

(२२८)

सखि, कि पुछसि श्रनुभव मोय।
सेहो पिरित श्रनुराग बखानिए
तिल तिल नूतन होय।
जनम श्रबधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधु बोल स्रबनहि सूनल
स्रुति पथ परस न भेल।
कत मधु - जामिनि रभस गमाश्रोल
न बूझल कइसन केल।
लाख लाख जुग हिय हिय राखल
तइश्रो हिय जुड़ल न गेल।
कत बिदगध जन रस श्रनुमोदई
श्रनुभव काहु न पेख।
बिद्यापति कह प्रान जुड़ाएत
लाखे न मिलल एक।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

नायिका कहती है—हे सखी! रति-क्रिया का श्रनुभव या श्रास्वादन मुझसे क्या पूछती हो? उस प्रीत का श्रनुराग-वर्णन करने से वह प्रतिपल नूतन ही होता जाता है। जन्म भर मैं प्रियतम का रूप-सौन्दर्य देखती रही हूँ फिर भी मेरे पिपासु नेत्र परितृप्त नही हुए। उनके रसमय वचन केवल कानो से सुने तो, लेकिन कर्ण-पथ पर उनका कोई स्पर्श नही हुश्रा। श्राशय यह है कि उनके प्रणय-बोल सुनकर कभी कान नही भरे, सदा उनके मीठे बोल सुनकर प्रणय-पिपासा उफनती ही रही। बसत की कितनी मधुमय यामिनी उनके साथ रति-क्रिया मे व्यतीत कर दी, लेकिन श्रभी तक यह नही समझ पायी कि रति-क्रिया कैसी होती है। श्राशय यह कि रति-क्रिया के पश्चात् फिर-फिर रति-क्रिया की कामना बनी ही रही, उसके श्रास्वादन के वास्तविक रहस्य से मैं श्रनजान ही रही। लाख-लाख युगो तक उनके हृदय को श्रपने हृदय मे छिपा-समाकर रक्खा, लेकिन फिर भी श्रभी तक हृदय से हृदय नही जुड पाया। श्ररे, यहाँ कितने रसिको ने पूर्ण प्रणय-रसपान किया लेकिन उसके श्रानन्द की वास्तविक

अनुभूति, उसका गूढ अनुभव किसी को नही हुआ। कविवर विद्यापति कहते है कि अब तुम्हारे प्राण अवश्य सन्तुष्ट हो जायेगे क्योकि लाखों प्रेमी रसिक जनों में कृष्ण जैसा एक भी न मिलेगा। आशय यह है कि कृष्ण सच्चे प्रेमी और सुचतुर रसिक हैं, उनसे प्रणय-व्यापार अधूरा नही रहेगा।

विशेष—विद्यापति का प्रस्तुत पद उनके कवि के काव्य लक्ष्य को समझने में बड़ा सहायक होता है। इसकी यह पक्ति—

"जनम अबधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपति भेल।"

सौन्दर्यमूलक (Aesthetic) भावना की उत्कृष्ट अभिव्यजना करती है। एक प्रकार सम्पूर्ण जन्म की महत्ता, उसकी पिपासाकुल भावना का 'देवता' उन्होने सौन्दर्य को बताकर ध्वन्यालोककार के इस दृष्टिकोण को पूर्णत चरितार्थ कर दिया है—

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
एतत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।"

अर्थात् महाकवियो की वाणी या कविता मे लावण्य एव ललना जैसा कोई सौन्दर्य विद्यमान रहता है।

और प्रेम के प्रति कही गई यह पक्ति भी कितनी उत्कृष्ट है—

"सेहो पिरित अनुराग बखानिए
तिल तिल नूतन होय।"

यौवन की उद्दाम पिपासा क्या कभी शाँत होती है, हुई किसी की?—इस अमर वासना के प्रति कवि की लिखी यह पक्तियाँ कितनी यथार्थ है—

"कत मधु-जामिनि रभस गमाओल
न बूझल कइसन केल।"

किंतु फिर भी प्रेम, रूप और शृगार के अनुभवी रसिक भी इसके रस से परितृप्त न हो सके, उनका अनुभव अधूरा ही रहा—

"कत बिदगध जन रस अनुमोदई
अनुभव काहु न पेख।"

सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पद जहाँ एक ओर कवि की निश्छल आत्माभिव्यक्ति एव कला-सौन्दर्य प्रियता को प्रस्तुत करता है—उसके कविधर्म से हमे परिचित कराता है वहाँ दूसरी ओर अमर वासना की सुन्दरतम स्थिति का भी ठोस स्थापन करता है। काव्य-कला के प्रति जो जीवनवादी दृष्टिकोण रखते हैं भले ही उनकी मनीषा विद्यापति के इस विशुद्ध सौन्दर्यमूलक दृष्टिकोण के प्रति आकर्षित न हो किंतु हमे तो क्विनटीलिन के इन शब्दों के अनुसार ही विद्यापति के रसात्मक और कलात्मक पदों का स्वाद लेना उचित होगा—

"The learned understand the reason of art, the unlearned feel the pleasure." आशय है कि पडित लोग कला की परिभाषा ही करते है कितु अनपढ़ उससे आनन्द-रस उठाते है। हमे विद्यापति के पद रस लेने के लिये ही पढना है, तर्क के शर साधने के लिये नहीं।

शब्दार्थ—कि=क्या। पुछसि=पूछती हो। मोय=मुझसे। पिरित=प्रीत। बखानिए=वर्णन। नूतन=नया। होय=होता है। अबधि=समय। निहारल=देखा। तिरपित=तृप्त। भेल=हुआ। मधु बोल=मीठी बोली। स्रबनहि=कान से। कइसन=कैसा। केल=केलि, रति-क्रिया। राखल=रखना। तइओ=तो भी। बिदगध=रसवाले, रसिक। काहु=किसी को। प्रान=प्राण। जुडाएत=जुड़ा जायेगा।

प्रार्थना और नचारी

(२२६)

बिदिता देबी बिदिता हो
अबिरल-केस सोहन्ती।
एकानेक सहस को धारिनि
जरि रंगा पुरनन्ती।
कजल रूप तुअ काली कहिए
उजल रूप तुअ बानी।
रबिमंडल परचंडा कहिए
गंगा कहिए पानी।
ब्रह्मा-घर ब्रह्मानी कहिए
हर-घर कहिए गौरी।
नारायन-घर कमला कहिए
के जान उतपत तोरी।
बिद्यापति कविवर एहो गाओल
जाचक जन के गति।
हासिनि देइ पति गरुड़नरायन
देवसिंघ नरपति।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

हे सर्वज्ञाता देवी ! तुम सब कुछ जानने वाली हो। तुम्हारे सिर पर घनी काली अलके सोहती हैं। तुम देखने मे एक हो, किंतु अनेक सहस्र रूपो को धारण करती हो। तुम समरभूमि मे रणचण्डी, नगरनटी के समान नाचती हो अर्थात् अविजेय हो। तुम ही काला वेष धारण करने वाली काली कहलाती हो और श्वेत रूप मे वाणी अधिष्ठात्री सरस्वती कहलाती हो। रविमण्डल मे तुम प्रचण्डा हो और पवित्र जल सज्ञा मे गगा जी हो। ब्रह्मा के घर मे ब्रह्माणी और शंकर के घर की गृहणी पार्वती या गौरी भी तुम्ही हो। नारायण के घर की लक्ष्मी तुम्ही कहलाती हो। इस प्रकार तुम्हारी उत्पत्ति का हाल—अवतरण का रहस्य—कौन जान सकता है ? कविवर विद्यापति यह गाकर कहते है कि याचक जन की गति—या उद्धार कर्त्ता—हासिनी देवी के

पति उपाधियुक्त गरुडनारायण कहलाने वाले राजा देवसिह है अर्थात् के विषय मे सब कुछ जानते है। अर्थात् भगवती के भक्तों की इच्छा को सकते है, उन्हे सन्तुष्ट कर सकते हैं।

विशेष—प्रस्तुत पद मे देवी की वदना की गई है किंतु उसे आद्या शक्ति रूप मे प्रकट किया गया है। देवी की विराट् माया की अभिव्यंजना करना ही कवि का उद्देश्य रहा है, तभी तो वह कहता है—

"के जान उतपत तोरी।"

क्योकि—

"एकानेक सहस्र को धारिनि।"

यहाँ देवी के विराटत्व का भाव चित्रोपम ढग से अभिव्यक्त हुआ है।

शब्दार्थ—बिदिता=जानने वाली। अबिरल=सघन। सोहन्ती=शोभायमान। एकानेक=एक से अनेक। कजल=स्याह, काला। तुअ=तुम। उजल=श्वेत, उज्ज्वल। बानी=सरस्वती। हर=शकर। गौरी=पार्वती। कमला=लक्ष्मी। के=कौन। जान=जानता है। उतपत=उत्पत्ति। तोरी=तुम्हारी। नरपति=आदमी का मालिक, राजा।

(२३०)

कनक-भूधर-शिखर वासिनि
चन्द्रिका चय चारु हासिनि
दशन कोटि विकास, बंकिम-
तुलित चन्द्रकले।
क्रुद्ध-सुररिपु बलनिपातिनि
महिष - शुम्भ - निशुम्भ - घातिनि
भीत - भक्तभयापनोदन—
पाटल प्रबले।
जय देवि दुर्गे दुरिततारिणि
दुर्ग मारि विमर्द हारिणि
भक्ति नम्र सुरासुराधिप—
मंगलायतरे।
गगन मंडल गर्भगाहिनि
समर - भूमिषु सिंहवाहिनि
परसु - पाश - कृपाण - सायक —
शंख - चक्र - धरे।

अष्ट भैरवि संग शालिनि
सुकर कृत्त कपाल कदम्ब मालिनि
दनुज शोणित पिशित बद्धित-
पारणा रभसे।
संसारबंध - निदानमोचिनि
चन्द्र - भानु - कृशानु - लोचनि
योगिनी गण गीत शोभित-
नृत्यभूमि रसे।
जगति पालन - जनन - मारण
रूप कार्य सहस्त्र कारण
हरि विरंचि महेश शेखर-
चुम्ब्यमान पदे।
सकल पारकला परिच्युति
सुकबि विद्यापति कृतस्तुति
तोषिते शिवसिंह भूपति
कामना फलदे।

भावार्थ—माँ दुर्गा की महान् स्तुति करते हुए प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

सुमेरु पर्वतराज के उच्च शिखर पर बसने वाली, विमल चद्रिका की जैसी मोहक हँसी हँसने वाली, जिसके कोटि दाँतो का उज्ज्वल विकास चन्द्रकला के तुल्य है। जो कुपित हुए देवो के शत्रु दानवो या राक्षसो के बल को मिटा देने वाली है, जो महिषासुर एवं शुम्भ-निशुम्भ दैत्यों को मारने वाली है, जो भयभीत भक्तगनो का भय भगाने मे पूर्णतः प्रबल या समर्थ है; उस देवी दुर्गा माँ की जय हो। जो पापो से उद्धार करने वाली है, दुर्ग नामक राक्षस को मारकर यातना का हरण करने वाली है और जो भक्तिभाव से विनम्र हुए देवासुर के अधिपति का भी मगल करने वाली है; उस दुर्गा माँ की जय हो। जो शून्य मण्डल के गर्भ मे अवगाहन कर उसके भेद की ज्ञाता है, जो युद्धस्थल मे शेर की सवारी करने वाली है एव परसा, पाश, कृपाण, बाण, शंख एवं चक्र को धारण करती है। जिनके सग मे सदैव अष्ट भैरवियाँ रहती है जो अपने हाथो से हने कपालकदम्ब की माला पहनती हैं, जो दानवो के रक्त-मास का भक्षण करके आनंद मनाती है; जो ससार के बंधन को नष्ट करने वाली है, जिसके लोचनों मे चंद्र, सूर्य एव अग्नि समाहित है, जो योगिनियों या डकनियो के गीतों पर नृत्य स्थल मे नृत्य रस विकीर्ण करती है; जो संसार का पालन, जन्म और मरण करने वाली है, जो सहस्रों कार्य-कारण की स्वरूपवती है, जिनके पुण्यपाद ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तथा शेखरकवि (महान् कवियों द्वारा) द्वारा

आराधित हैं; जो सारे पापों को क्षमा कर देने वाली है—ऐसी कामना को प्रदान करने वाली महान् भगवती माँ दुर्गा की स्तुति-आराधना, राजा शिवसिंह को संतुष्ट करने के लिये, कविश्रेष्ठ विद्यापति ने रची है, की है।

विशेष—देवी की विराट् महिमा का वर्णन करना ही यहाँ कवि का परम लक्ष्य रहा है। प्रारम्भ से लेकर अंत तक पौराणिक कथानकों का सूक्ष्माधार लेकर कवि ने देवी के गुण रूपों का वर्णन बडा प्रभावशाली किया है। देवी का सजीव चित्र इन पंक्तियों के शब्दों द्वारा खींचकर रख दिया गया है—

"समर-भूमिषु सिंहवाहिनि
परसु-पाश-कृपाण-सायक —
शंख-चक्र-धरे।"

पद मे भाषा बड़ी ओजस्वी है जो सर्वथा विषयानुरूप है।

शब्दार्थ—भावार्थ से देखे, सरल है।

(२३१)

जय जय संकर जय जय त्रिपुरारि।
जय अध पुरुष जयति अध नारि।
आध धवल तनु आधा गोरा।
आध सहज कुच आध कटोरा।
आध हड़माल आध गजमोती।
आध चानन सोहे आध बिभूती।
आध चेतन मति आधा भोरा।
आध पटोर आध मुँज डोरा।
आध जोग आध भोग बिलासा।
आध पिधान आध नग बासा।
आध चान आध सिंदुर सोभा।
आध बिरूप आध जग लोभा।
भने कविरतन बिधाता जाने।
दुइ कए बाँटल एक पराने।

भावार्थ—शकर-स्तुति का वर्णन करते हुए कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद में लिखते है—

हे शंकर, हे त्रिपुर असुर के शत्रु त्रिपुरारि! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे अर्धनारी और अर्धपुरुष रूप—अर्धनारीश्वर! तुम्हारी जय हो। तुम्हारा अर्द्धांग तो श्वेत भस्म के कारण स्वच्छ या धवल है और अर्द्धांग गौरी के ससर्ग स्वरूप गोरा है। अर्द्धांग तो कटोरा के आकार का कुच धारी है और अर्द्धांग स्वाभाविक रूप मे है। तुम्हारी आधी माला

,ा की अथवा मुंडों की है और आधी गजमुक्ताओं की है। आधे शरीर मे चन्दन ा शोभित होता है और आधे मे भस्म लिपी हुई शोभायमान होती है। तुम्हारी आधी मति तो सजग है और आधी भोली या मुग्धा है। तुम्हारे आधे अग मे रेशमी वस्त्र (पटोर) आच्छादित हुए सुशोभित होते है और आधे मे मुँज का कमरबध कसा है। तुममें अर्ध योग और अर्ध भोग परस्पर बिलसित है अर्थात् तुम सम रूप मे योग और भोग धारण किये हो। तुम्हारा आधा शरीर वस्त्रालकृत है तो आधा शरीर निपट नगा है—तुम दिगम्बर हो। तुम्हारे भाल पर अर्ध चन्द्रमा (द्वितीया का चद्र) शोभायमान है और आधे मे सिंदूर का टीका शोभित होता है। तुम्हारा आधा स्वरूप जग को भयानक है और आधा लुभायमान है। कविवर विद्यापति कहते है कि इस रहस्य को तो विधाता या ईश्वर ही जानते हैं कि क्योकर उसने एक प्राण को दो विपरीत रूप-गुण मे विभाजित किया है—कि हे शकर, एक ओर तो तुम भयानक हो और दूसरी ओर आकर्षक भी।

विशेष—प्रस्तुत पद मे पौराणिक मान्यता के अनुसार शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप प्रकट किया गया है। विशेषता यह है कि शब्द-शब्द मे मानो चित्रकार की एक-एक रेखा विद्यमान है। पद मे इतिवृत्त वर्णन तो है ही किंतु उसके माध्यम से नारी और पुरुष—प्रकृति-पुरुष—का आदि एकत्व रूप-भाव भी व्यजित है जो दार्शनिक पक्ष के उद्घाटन मे भी सहल है। तभी तो अत मे कहा गया है—

"भने कविरतन बिधाता जाने
दुइ कए बाँटल एक पराने।"

स्पष्ट है कि एक ही परम प्राण के दो भाग है—प्रकृति और परुष ! अर्थात् यह सम्पूर्ण सृष्टि ही शिव मलग्ना है।

शब्दार्थ—अध=आधे। धवल=उज्ज्वल। हड़माल=हड्डियो की माला। चानन=चन्दन। सोहे=शोभायमान होता है। बिभूती=भभूति, भस्म। मति=बुद्धि। भोरा=मुग्धा, भोली। पटोर=रेशमी वस्त्र। मुँज डोरा=मुँज की मेखला या रस्सी जो योगी कमर मे बाधते है। पिधान=वस्त्रावरण। नग बासा=नग्नदेह, दिगम्बर। आध चान=आधा चन्द्रमा, द्वितीया के चन्द्रमा से आशय है। बिरूप=भयानक स्वरूप। जग लोभा=ससार को लुभाने वाला। भने=कहते हैं। बिधाता=ईश्वर। दुइ=दो। किए=क्योंकर। पराने=प्राण को।

(२३२)

भल हर भल हरि भल तुअ कला।
खन पित बसन खनहिं बघछला।
खन पंचानन खन भुजचारि।
खन संकर खन देव मुरारि।

खन गोकुल भए चराइअ गाय।
खन भिखि माँगिए डमरु बजाय।
खन गोविंद भए लिअ महादान।
खनहि भसम भरु कांख वो कान।
एक सरीर लेल दुइ बास।
खन बैकुंठ खनहि कैलास।
भनइ बिद्यापति बिपरति बानि।
ओ नारायण ओ सूलपानि।

भावार्थ—शकर जी की स्तुति करते हुए प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

हे शकर, हे विष्णु, अच्छे हो तुम और तुम्हारी कला ! तुम क्षण भर को पीताम्बर-धारी विष्णु रूप बन जाते हो और क्षण मे व्याघ्र चर्म धारण कर लेते हो। व्यजना यह है कि हरि-हर दोनों ही मूलत. एक रूप है, विभिन्न रूप परिवर्तन तो केवल उनकी कला मात्र है। क्षण मे तुम पचमुखधारी होते हो तो क्षण भर मे चारभुजाओ वाले बन जाते हो। आशय यह है कि पचानन शिव एव चतुर्भुजधारी विष्णु के स्वरूप मे वास्तविक रूप मे कोई द्वैत नही है। तुम क्षण भर मे शकर बन जाते हो और क्षण भर मे विष्णु-रूप हो जाते हो। क्षण में गोकुल के गौ चरैया या कृष्ण बन जाते हो और क्षण भर में डमरू बजाकर भिक्षा मांगने लगते हो। क्षण भर मे माधव बनकर गोपिकाओ से प्रणय का महादान माँगने लगते हो और क्षण मे ही बगल की झोली और श्रवणों मे भस्म भरने लगते हो। कितना आश्चर्य है कि तुम्हारे एक ही शरीर ने दो निवासस्थान ले रक्खे है ! क्षण मे तुम बैकुठ या स्वर्ग मे होते हो तो क्षण मे हो कैलाश पर्वत पर जा विराजते हो। अरे, विद्यापति भी भला स्वय कैसा परस्पर उल्टा कथन कह रहे है। भला शंकर जी की भी क्या बात, वह तो नारायण भी है और त्रिशूलफणि या त्रिशूल धारण करने वाले शंकर भी ! आशय है उन महादेव जी का रूप तो महाविराट् है।

विशेष—प्रस्तुत पद में कवि ने शिव एव विष्णु—इन दोनों रूपों का एक रूप मे ही प्रतिष्ठापन किया है बडे वाग्वैशिष्ट्य के द्वारा, देखिए—

"खन पंचानन खन भुजचारि
खन संकर खन देव मुरारि।"

वैष्णवो एवं शैवों का धार्मिक ढग का पारस्परिक अपने-अपने रूप के प्रति खिचाव-दुराव पूर्व काल में खूब रहा है; तुलसी ने भी शिव और राम रूप की एकता का भाव इसी उद्देश्य से अनेक स्थलों पर प्रकट किया है कि शैव और वैष्णवों में पारस्परिक सद्भावना जागे। विद्यापति के इस पद के रचने का प्रयोजन भी यही लगता है। जब वे कहते हैं कि—

"एक सरीर लेल दुइ बास।
खन बैकुंठ खनहि कैलास।"

..न बैकुठ" और "खन कैलास" शब्दो में साम्यता स्थापित करने वाला जादू ..-सा प्रभाव प्रकट होता है।

शब्दार्थ—भल=अच्छे। हर=शिव जी। हरि=विष्णु। तुग्र=तुम्हारी। खन=क्षण में। पित बसन=पीताम्बर वस्त्र जिसे धारण करने वाले हैं विष्णु जी। खनहि =क्षण भर मे ही। बघछला=व्याघ्र चर्म जिसे धारण करने वाले हैं शिव जी। पचानन =पाँच मुख वाले, शकर जी का एक नाम। भुजचारि=चार भुजाओं वाले, विष्णु। भिखि=भिक्षा। महादान=गोपियों से प्रणय का दान माँगने वाले गोविंद या माधव से आशय है। भरु=भरकर। काँख=बगल, शकर भभूत की झोली बगल मे दबाये रहते है। लेल=लेते हैं। दुइ बास=दो निवासस्थान। बैकुठ=देवलोक, स्वर्ग। कैलास =शकर के निवास का स्थान, कैलाश पर्वत। बिपरित=उल्टी। बानि=कथन। सूलपानि=त्रिशूल हाथ मे धारण करने वाले, शिव जी। नारायण=विष्णु। ओ=वह।

(२३३)

आगे माई एहन उमत बर लैल हिमगिरि
देखि देखि लगइछ रंग।
एहन उमत बर घोड़बो न चढ़इक
जो घोड़ रँग रँग जंग।
बाघक छाल ज बसहा पलानल
साँपक भीरल तंग।
डिमिक डिमिक जे डमरु बजाइन
खटर-खटर करु अंग।
भकर भकर जे भाँग भकासथि
छटर पटर करु गाल।
चानन सों अनुराग न थिकइन
भसम चढ़ावथि भाल।
भूत पिसाच अनेक दल साजल
सिर सों बहि गेल गंग।
भनइ बिद्यापति सुनु ए मनाइनि
थिकाह दिगम्बर अंग।

भावार्थ—शंकर जी की स्तुति-वर्णन करते हुए कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद में लिखते हैं—

अरी मेनका माता! हिमालय ऐसा उन्मत्त-दूल्हा खोजकर लाए हैं कि उन्हें देख-

देखकर बस आश्चर्य होता है। वह ऐसा विक्षिप्त वर है कि उसके चढने के लिये कोई घोड़ा ही नहीं है जबकि रंग-बिरगे घोडो का समूह भी है। आशय यह है कि शकर जी विवाह के उपलक्ष में अनेक सुन्दर घोडो के होते हुए भी किसी घोडे पर सवार नही हुए, वह जो नादिया या साँड की सवारी किये है, बडे विचित्र हैं वे भी ! उस अद्भुत दूल्हा शिव के पास जो व्याघ्र चर्म है उसे उसने अपने नादिया या बैल के वाहन पर फैलाया-बिछाया हुआ है और सर्प की डोर का तग बनाकर उसे कस रक्खा है। और जो उसका डमरू है उसे 'डिम-डिम' कर बजा रहा है। उसके अग 'खट-खट' का कर्कश स्वर कर रहे है या वह अपने अगो की रगड से 'खटर-खटर' का शब्द करता आ रहा है। वह 'भकर भकर' करके भग फॉक-चबा रहा है। वह अपने गालो से 'छटर पटर' की आवाज करता है (शकर और उनके भक्त विशेष प्रकार से गाल बजाते है)। उसे चन्दन से कोई प्यार-सरोकार नही वह तो सिर पर भस्म चढाता है। वह भूत-पिशाचो का दल सजाकर लाया है और उसके सिर से गगा जी की धारा फूट रही है, बह रही है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि पार्वती की माता मेनका ! जरा मेरी भी तो सुनो कि ये जो तुम्हारी कन्या का ओघड दूल्हा बनकर आ रहे है और जो शरीर से दिगम्बर या नगे है, बड़े महान् है। इनकी तो लीला बडी अद्भुत है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे पौराणिकता का आधार लेकर शिव-पार्वती के विवाह का प्रसग चलाया गया है जिसका प्रयोजन शिव के औघड़ रूप का वर्णन करना ही है, किन्तु यह कोरा इतिवृत्त वर्णन ही नही उसमे शब्दो का चयन एव शैली का चमत्कार अपूर्व है, जैसे—

"डिमिक डिमिक जे डमरु बजाइन
खटर खटर करु अंग।
भकर भकर जे भाँग भकोसथि
छटर पटर करु गाल।"

प्रत्येक शब्द-ध्वनि अपने-अपने कार्य-व्यापार के साथ चल रही है। भग फॉकने मे जो नैसर्गिक ध्वनि उद्भूत हो सकती है उसके उपयुक्त "भकर भकर जे भाँग भकोसथि" उक्ति शब्दो की ध्वनि करती है। सम्पूर्ण पद के अनुरूप यदि कोई चित्रकार शिव का चित्र बनाए तो ऐसा प्रतीत होगा जैसे शिव विचित्र वेष में हमारे सामने खड़े हो।

शब्दार्थ—आगे माई=अरी माता। एहन=ऐसा। उमत=उन्मत्त, पागल-सा। वर=दूल्हा। लेल=लाया। हिमगिरि=पर्वतराज हिमालय। लगइछ रंग=अचम्भा होता है। जंग=समूह या दल से आशय है। बाघक छाल=व्याघ्रासन। बसहा=नादिया, साँड का वाहन। पलानल=बिछाया हुआ। क=का। भकोसथि=फाँकते है, खाते-चबाते हैं। छटर पटर करु गाल=शंकर और उनके भक्तों के गाल बजाने से निकली हुई आवाज। चानन=चन्दन। सों=से। अनराग=प्यार। न थिकइन=

नही है। भाल=सिर या माथा। दल=सेना। मनाइनि=पार्वती की माँ मेनका अप्सरा। थिकाह=हैं। दिगम्बर अग=बिना वस्त्र वाला शरीर, नग्न शिव जी।

२३४

बेरि बेरि अरे सिव मों तोय बोलों
फिरसि करिअ मन माय।
बिन संक रहह भीख माँगिए पए
गुन गोरब दुर जाय।
निरधन जन बोलि सब उपहासए
नहि आदर अनुकम्पा।
तोंहें सिव आक धतुर फुल पाओल
हरि पाओल फुल चम्पा।
खटँग काटि हर हर जे बनाबिअ
त्रिसुल तोड़िय करु फार।
बसहा धुरन्धर हर लए जोतिअ
पाटए सुरसरि धार।
भन विद्यापति सुनहु महेसर
इ लागि कएलि तुअ सेबा।
एतए जे वर से बर होअल
ओतए जाएब जनि देबा।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

माता पार्वती कहती है—हे शिव ! मैंने तुमसे बार-बार कृषि करने के लिये कहा है और तुम हो कि मनमस्त घूमते रहते हो अर्थात् जिधर मन मे आता है उधर चले जाते हो। निश्चित एव निर्द्वंद्व रहने से और भीख माँगने से गुण-गौरव या आत्म-सम्मान दूर हो जाता है। निर्धन व्यक्ति से सब उपहास करके बोलते हैं और न कोई उसका सम्मान करता है और न कोई उसपर दया ही करता है—वह तो पूर्णत· दयनीय बन जाता है। इसी से तो तुम्हे आक और धतूरा मिला और विष्णु ने भक्तों से चढ़ावे मे चम्पा का फूल प्राप्त किया है। हे शिव ! तुम अब से भी सम्भलो ! अपने खटांग (लकडी निर्मित साधुओ का एक आधार-स्तम्भ) को काटकर उसका हल बनाओ और त्रिशूल को तोडवाकर उसका फाल (हल के लोहे की नोक) बनाओ। तुम्हे ढूँढना तो कुछ है ही नही और बस अपने धुरन्धर नादिया या बैल (बसहा) को हल में जोत डालो और बस खेती को अपने शिर की गगा की धारा से जलपूरित कर दो, सीच डालो। कविवर विद्यापति कहते है कि फिर माता पार्वती कहती हैं कि हे शिव ! सुनो, इसीलिये तो मैंने तुम्हारी सेवा की है, तुम निठल्ले न रहो, जन-कार्य करो। खैर, इस जन्म मे तो

तुम जैसे पति मुझे मिले हो, मिले हो; लेकिन परलोक जाने के उपरांत वहां ऐसा न करना, मुझे दु.खी न बनाना।

विशेष—प्रस्तुत प्रद मे एक विशेष भाव निहित है जो आलस्य से लोक-कर्मठता की ओर ढकेलता है। यहाँ शिव की पत्नी पार्वती ही स्वय अकर्मण्य निठल्ले शिव को कृषि कर्म की ओर अनुप्रेरित कर रही है—

"खटँग काटि हर हर जे बनाबिअ
त्रिसुल तोड़िय करु फार।
बसहा धुरन्धर हर लए जोतिअ
पाटए सुरसरि धार।"

विस्मय है कि विशुद्ध सौन्दर्य के कवि विद्यापति की भावना जैसे व्यवसायात्मक होकर कर्ष कर्म की ओर मुट्ठी बाँधे तत्पर होने की चेतना जागृत करती है। यहाँ कविवर प्रसाद जी की श्रद्धा का भी स्मरण हो आता है जिसने अकर्मण्य निराश मनु को कर्म करने के लिये प्रेरित किया है—

"शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे है हो निरुपाय
समन्वय उनका करे समस्त
विजयनी मानवता हो जाय।"

वस्तुत नारी शक्ति की सज्ञा ही है, उसमे लोक-कर्म की प्रेरणा पाकर इस कर्म-लोक मे सफल हो सकता है। नही तो नारी की शक्ति उसकी उपेक्षा मे पुकार उठेगी--

"एतए जे बर से बर होअल
ओतए जाएब जनि देवा।"

यो प्रस्तुत पद मे लोक के कर्म-तत्त्व की ओर ज्वलत भाव व्यजित है। नारी यहाँ पुरुष के सुप्त कर्म की जागृत चेतना बनकर आई है, पार्वती को उसका प्रतीक समझना चाहिये।

शब्दार्थ—बेरि बेरि=हर वक्त, बार-बार। सिव=शिव। मो=मै। तोय=तुम्हे। फिरसि=घूमना-फिरना। मन माय=मनमानी। बिन सक=बिना शका के, लाज-शर्मरहित होकर। गुन=गुण। निरधन=निर्धन। अनुकम्पा=दया। तोहें=तुम्हें। पाओल=पाये, मिला। हरि=विष्णु। हर=शिव। हर=हल, खेत जोतने का औजार। फार=फाल, जो हल मे लगा होता है। बसहा=बशहा, बैल। धुरन्धर=चतुर। पाटए=पटाना। सुरसरि=गगा। महेसर=महेश्वर। इ=इसी। लागि=लिये। कएलि=की। तुअ=तुम्हारी। एतए=यहाँ, इस जन्म मे। बर=पति। ओतए=वहाँ, उस जन्म में।

(२३५)

हम नहि आज रहब यहि आँगन
जो बुढ़ होएत जमाई, गे माई।
एक त बइरि भेल बीध बिधाता
दोसर धिया कर बाप।
तेसरे बइरि भेल नारद बाभन
जे बूढ़ आनल जमाई, गे माई।
पहिलुक बाजन डामरु तोरब
दोसरे तोड़ब रुँडमाल।
बरद हाँकि बरिआत बेलाएब
धिआले जाएब पराई, गे माई।
धोती लोटा पतरा पोथी
एहो सभ लेबन्हि छिनाई।
जौं किछु बजता नारद बाभन
दाढ़ी धए घिसिआएब, गे माई।
भन बिद्यापति सुनु हे मनाइन
दृढ़ करु अपन गेआन।
सुभ सुभ कए सिरी गौरी बिआहू
गौरी हर एक समान, गे माई।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे राजा हिमाचल की पुत्री पार्वती और शिव का विवाह उल्लिखित है। जिसमे शादी के लिये सम्मति देने के कारण श्री नारद को हिमाचल की स्त्री मैना द्वारा कोसा जाने का रोचक वर्णन है।

प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

पार्वती की माता मेनका कुपित होकर कहती है कि हाय मैया, आज मैं तो इस घर-आँगन मे नही रहूँगी यदि यह बूढा शिव मेरा दामाद या जमाई होगा। एक तो ब्रह्मा ही बैरी हुआ अर्थात् ब्रह्मा ने मेरी पुत्री के भाग्य मे बूढा बर लिख दिया और दूसरा बेटी पार्वती का बाप हुआ अर्थात् जो उससे पार्वती को ब्याहने के लिये तैयार हो गया और तीसरा बैरी नारद नाम का ब्राह्मण हुआ जो बूढ़ा बर ढूँढकर ले आया। पहले तो मैं उसके बजाने वाले डमरू को तोड़ूँगी, फिर उसकी ग्रीव की मुडमाल तोड़ूँगी। उसके वाहन बैल को हाँककर सारी बारात को भगा दूंगी, और फिर अपनी पुत्री पार्वती को भी भगाकर ले जाऊँगी। बरातियो की धोती-लोटा पत्रा-पोथी— वह सब भी छिनवा लूंगी और इस बीच यदि नारद ब्राह्मण कुछ बोला तो उसकी दाढ़ी पकड़कर झँझोड़ूँगी, घसीटूँगी। कविवर विद्यापति कहते हैं कि सुनो मेनका ! अपना ज्ञान दृढ़ करो—अपने को स्थित प्रज्ञ

करो अर्थात् इस तरह बेहोशी में बातें मत करो और शुभम्-शुभम् कहकर अपनी बेटी गौरी पार्वती का विवाह रचाओ। अर्थात् ऐसे शुभ अवसर मे ऐसी खरी-खोटी बातें नहीं कहनी चाहियें। अरी मात ! निश्चय जानो कि शिव-पार्वती एक ही रूप हैं, आद्या शक्ति के युगल प्रतीक हैं।

विशेष—यहाँ शिव-पार्वती के विवाह का प्रसग ही वर्णित है। यद्यपि पार्वती की माँ मेनका इस विवाह को उपयुक्त न जानकर अनमेल समझती है, अतः उसका विरोध करती है किंतु इस विरोध के पीछे कविवर विद्यापति की एक विशिष्ट व्यंजना रही है—शिवत्व के पूर्णत्व का प्रबोध कराना। शिव ब्रह्मरूप है, माता पार्वती आद्या शक्ति हैं—यों दोनो का सयोग समुचित है। इसी विशुद्ध भक्ति-भाव को मेनका के विरोध व्यक्त और वक्रोक्ति द्वारा सम्पादित किया गया है। कितनी चतुराई से कुपित मेनका को अत मे विद्यापति शिव के साथ पार्वती का विवाह करने के लिये कह देते है। तब उनकी चतुराई के प्रति दाँत तले अँगुली दबानी पडती है और कुपित मेनका का शिव को विरूप सिद्ध करने वाला सारा भाव जैसे घुल जाता है; शिव का शुभत्व रूप इन पक्तियो के भावों से जैसे प्रकट हो जाता है—

"सुभ सुभ कए सिरी गौरी बिआहू
गौरी हर एक समान, गे माई।"

शब्दार्थ—यहि=इस। जमाई=दामाद, जमाता। त=तो। बइरि=बै[illegible]ात्रु। बिधाता=ब्रह्मा। दोसर=दूसरा। धिया=पुत्री,लडका। कर=का। तेसरे=तीसरा। भेल=हुआ। जै=जो। आनल=ढूंढकर लाया। पहिलुक=प्रथम ही। डामरु=डमरू, एक प्रकार का बाजा। रुँडमाल=मुडमाल। बरद=बर्द्ध, बैल। हाँकि=[illegible] बरिआत=बारात। बेलाएब=भगाऊँगी। जाएब पराई=भाग जाऊँगी। एहो=यह भी, ये। लेबन्हि छिनाई=छिनवा लूंगी। बजता=बोलेगे। किछु=कुछ। धए=पकड़ कर। मनाइन=मैना। करु=करो। अपन=अपना। बिआहू=विवाहो, विवाह करो। हर=शिव।

(२३६

नाहि करब बर हर निरमोहिया।
बित्ता भरि तन बसन न तिन्हका
बघछल काँख तर रहिया।
बन बन फिरथि मसान जगाबथि
घर आँगन ऊ बनौलनि कहिआ।
सासु ससुर नहि ननद जेठौनी
जाए बैसति धिया केकरा ठहिया।

बूढ़ बड़द ढकपाल गोल एक
सम्पति भाँगक झोरिया ।
भनइ विद्यापति सुनु हे मनाइन
सिव सन दानी जगत के कहिया ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

मेनका कहती है—मै निर्मोही शकर को अपनी पुत्री का पति या दूल्हा कभी नही बनाऊँगी । जिसके तन पर बिलॉद भर भी वस्त्र शरीर ढँकने को नही और जो हर-दम बगल मे बाघ का चर्म दबाए फिरता है । यो ही जगल-जगल मरघट जगाता हुआ भटकता फिरता है । आशय यह है कि जो अपावन स्थलो पर अवधूत बना घूमता-फिरता है । रहने के लिये उसने घर-आँगन ही कब बनाया है ? विवाहोपरात मेरी पुत्री किसके पास जाकर बैठेगी क्योकि वहाँ न सास है, न ससुर, न ननद और न जेठानी ही । उसके पास एक बूढा बेढब—रुण्ड मुण्ड का गोल आवेष्टनधारी—बैल है और सपत्ति मे कहने को उसके पास भाँग की एक झोली है—इसके सिवाय उस दरिद्र के पास और धरा ही क्या है ! कविवर विद्यापति कहते है कि हे मेनका ! सुनो । तुम जो कह रही हो, सो तो ठीक है, बिलकुल तुम्हारे ही कहे अनुसार उनका दरिद्र रहन-सहन है, लेकिन उनके समान दानी भी कौन और कब हुआ है ?—सोचो तो !

विशेष—प्रस्तुत पद मे शिव के विपन्न रूप का चित्रण बडा रोचक हुआ है, पढ-कर हँसी आती है—

"सासु सुसर नहि ननद जेठोनी
जाए बैसति धिया केकरा ठहिया ।
बूढ़ बड़द ढकपाल गोल एक
सम्पति भाँगक झोरिया ।"

"सम्पति भाँगक झोरिया" मे उक्ति-वैचित्र्य तो है ही, साथ ही हास्य-रस का पुट .. स्वाभाविक बन पड़ा है । सम्पूर्ण पद मे शकर के रूप का उपहास उडाया गया है किन्तु अंत मे जैसे किसी ने चलते-चलते ठोकर मार दी हो—शिवजी के रूप के प्रति उपहास! —वे तो ससार के परमदानी हैं, इतने दानी कि आप कगाल के रूप मे हो गए है । देवता के उपहास के उदण्ड भाव के प्रति आस्था और आराधना का यह भक्ति-भाव उत्कृष्ट रूप मे व्यजित हुआ है—

"सिव सन दानी जगत के कहिया ।"

यही इस पद की बड़ी विशेषता है ।

शब्दार्थ— नाहि=नही । हर=शिव । निरमोहिया=निर्मोही को । तर=नीचे । रहिया=रहता है । फिरथि=फिरता है । जगाबथि=जगाता है । ऊ=वह । बनौलनि=बनाया । कहिआ=कब । जाए=जाकर । बैसति=बैठेगी । धिया=पुत्री ।

केकरा=किसके। ठहिया=नज़दीक, पास। बड़द=बैल। क=का। मनाइन= मेनका, पार्वती की माँ। सिव=शिव। सन=समान। के=कौन।

(२३७)

कतए गेला मोर बुढ़वा जती।
पीसल भाँग रहल सेइ गती।
आन दिन निकहि रहथि मोर पती।
आज लगाइ देल कौन उदगती।
एकसर जोहए जाएब कौन गती।
ठेसि खसब मोरि होत दुरगती।
नदनबन बिच मिलल महेस।
गौरी हरखित भेल छुटल कलेस।
भनइ बिद्यापति सुनु हे सती।
इहो जोगिया थिका त्रिभुवन पती।

भावार्थ—[एक बार पावती से बिना कुछ कहे-सुने भगवान शकर कही चले गये और पार्वती उन्हे न पाकर दु खी हो रही है।]

प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

पार्वती कहती है कि हाय, मेरे बूढे योगी पति किधर चले गये ? उनके लिये पीसी हुई भग तो ज्यो-कि-त्यो पड़ी रह गई है। और दिन तो मेरे पति शिव भली-भाँति मेरे पास यहाँ रहते थे कितु आज किसने उनके मन मे ऐसी उद्विग्नता लगा दी ? मै उन्हें ढूँढने के लिए अकेली स्थिति मे किस प्रकार जाऊँगी ? कही राह पर जो ठोकर खाकर गिर पडी तो मेरी बुरी दशा हो जायगी। तदपि बहुत खोजने-ढूंढने पर उन्हे नन्दन-कानन मे रमते हुए भगवान शकर मिल ही गए और तब पार्वती बहुत हर्षित हुई; उनके मन का सारा सताप मिट गया। कविवर विद्यापति कहते है कि हे सतो, पार्वती ! यह जो तुम्हारा पति है कि जिसे तुम योगी समझती हो, यह तो त्रिभुवन का नाथ है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे माता पार्वती का शिव के प्रति अनन्य अनुराग भाव ही विशेष रूप से व्यजित है। अबला नारी को अकेलेपन की आशका का भाव बड़ा अखरता है, वही बात पार्वती के प्रति भी घट रही है। वह सोच रही हैं—

"एकसर जोहए जाएब कौन गती
ठेसि खसब मोरि होत दुरगती।"

किंतु वह साहस कर चल ही दी और शिव जी से मिल गई, उनके सारे सताप मिट गए। इसके पश्चात् शिव जी को "त्रिभुवन पती" का पद 'इहो जोगिया' कहकर दिया गया

है जो, विद्यापति शैव मत के प्रति आस्थावान थे, इस बात का संकेत देता है।

शब्दार्थ—कतए=कहाँ। गेला=गया। मोर=मेरा। जती=योगी, तपस्वी। आन=और, अन्य। निकहि=अच्छी तरह से। रहथि=रहता था। देल=दिया। उदगती=उद्वेग। एकसर=अकेली। जोहए=ढूंढने। खसब=गिरना। मोरि=मेरी। होत=होगी। दुरगती=दुर्गती। महेस=महेश। हरखित=हर्षित, खुशी। भेल=हुई। कलेस=क्लेश, दु:ख। इहो=यह। थिका=है। त्रिभुवन पती=तीनो लोक का स्वामी।

(२३८)

जोगिया एक हम देखलौं गे माई।
अनहद रूप कहलो नहि जाई।
पंच बदन तिन नयन बिसाला।
बसन बिहुन ओढ़न बघछाला।
सिर बहे गग तिलक सोहे चंदा।
देखि सरूप मेटल दुखदंदा।
जाहि जोगिया लै रहलि भवानी।
मन आनलि बर कोन गुन जानी।
कुल नहि सिल नहि तात महतारी।
बएस हिनक थिक लछु जुग चारी।
भन बिद्यापति सुनु ए मनाइनि।
एहो जोगिया थिका त्रिभुवन दानि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

अरि माता! मैंने एक ऐसे योगी को देखा है कि जिसके अपूर्व अनूठे स्वरूप का वर्णन मुंह से नही किया जाता। उसके पाँच मुख और तीन विशाल नेत्र हैं तथा वह वस्त्रहीन है, और उसके पास ओढ़ने के लिए केवल व्याघ्र चर्म है। उसके सिर पर से गगा की धारा बहती है और ललाट पर चन्द्रतिलक सुशोभित होता है। उसके रूप को देखकर मेरा दु:ख-द्वन्द नष्ट हो गया है। जिस ऐसे योगी के लिए पार्वती आज तक अविवाहित रही, उसने भला उसके कौन से गुण पर रीझकर मन से उसे अपना पति मान लिया। जिस योगी का न कुल है, न शील है, न माँ-बाप हैं और आयु भी तो उसकी चार लाख युगों की है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे मेनका, सुनो! अरे, यह योगी तो तीनों लोक का दानी है—उसका स्वामी है।

विशेष—प्रस्तुत पद में शिव के पौराणिक रूप का इतिवृत्त चित्रण प्रधान है, देखिए—

"पंचबदन तिन नयन बिसाला।
बसन बिहुन ओढ़न बघछाला।
सिर बहे गंग तिलक सोहे चंदा।
देखि सरूप मेटल दुखदंदा।"

यहाँ "देखि सरूप मेटल दुखदंदा।" पंक्ति मे पौराणिक शिवरूप के प्रति घोर आस्था का भाव व्यंजित है। वैसे शिव का दूसरा अर्थ कल्याण से भी है जिससे दु:ख का नाश हो जाना स्वाभाविक है। अततः शिव को विराट् रूप अवस्था मे व्यक्त कर कवि ने उसे ब्रह्मा का प्रतीक माना है। इन पंक्तियो मे यही व्यंजना प्रधान है—

"कुल नहि सिल नहि तात महतारी।
बएस हिनक थिक लछु जुग चारी।"

× × ×

और फिर—

"एहो जोगिया थिका त्रिभुवन दानि।"

शब्दार्थ—देखलौ=देखा है। अनहद=जिसको समझा नही जा सके, विचित्र। बदन=मुख। बिसाला=विशाल, बडा। बिहुन=विहीन। ओढन=ओढने को। सोहे=शोभे। चदा=चन्द्रमा। सरूप=स्वरूप। दुखददा=दु:ख-द्वन्द। जाहि=जिस। कोन=कौन। सिल=शील। बएस=उम्र। हिनक=उनकी। थिक=है। लछु=लक्ष, लाख। जुग चारी=चार युग। ए=हे। मनाइनि=मेनका। एहो=यह।

(२३९)

सिव हो, उतरब पार कओन बिधि।
लोढ़ब कुसुम तोरब बेलपात।
पुजब सदासिव गौरिक सात।
बसहा चढ़ल सिव फिरहू मसान।
भँगिया जरठ दरवो नहि जान।
जप तप नहि कैलहु नित दान।
बित गेला तिन पन करइत आन।
भन बिद्यापति सुनु हे महेस।
निरधन जानिके हरहु कलेस।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

हे शिव ! मैं पापी इस ससार रूपी सागर से किस भाँति पार उतर सकूँगा ? आशय है कि सांसारिक पापों से मेरा उद्धार किस भाँति होगा ? पुष्प चुन-चुनकर, बेलपत्र तोड़-तोड़कर पार्वती के साथ, हे शिव, सदा तुम्हे पूजूँगा। हे शिव ! तुम तो नादिया या बैल

पर चढकर मरघटों मे घूमते-फिरते हो। तुम तो भँगड़ी हो, मुझ वृद्ध के पाप-मनपीड़न को नही समझते ! मैं न तो जप-तप कर सका और न मैंने नित्यप्रति दान ही किया। जीवन की तीनो अवस्थाएँ—शैशव, किशोर, युवा—अहभाव की अकड में ही बीत गई ; और अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। कविवर विद्यापति कहते है कि हे महेश ! सुनो, मुझे निर्धन जानकर मेरी ओर कृपा करो और मेरे पाप-सताप दूर करो।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति ने अपनी विनय-वेदना का प्रकाशन किया है। यहाँ उनके अतर की आवाज फूट निकली है। पद मे कोई अलकार नही, उक्ति-चमत्कार नही, वाग्वैदग्ध्य नही तदपि उसमे आत्म-पीडन—जो काव्य का प्राण है—पूर्णतः समाहित है जो हृदय को छूकर विगलित कर देता है। इन पक्तियो में इसकी सत्यता ज्ञातव्य है—

"जप तप नहि कैलहु नित दान।
बित गेला तिन पन करइत आन।"

ऐसा प्रतीत होता है कि कविवर विद्यापति अपनी वृद्धावस्था तक आकर अपने पदों मे अधिक सादगी और स्वाभाविकता ले आए है। अलकार-प्रदर्शन का मोह तो उन्हें प्रायः ही रहा है, किन्तु हाँ, वे व्यजना के प्रेमी अवश्य रहे। किन्तु इस पद मे, जो उन्होने वृद्धावस्था मे ही लिखा है—"जरठ दरदो नहि जान", उनकी सीधी अनुभूति ही अनुभूति प्रकट हुई है जिसमे गीत-तत्त्व के एक प्रमुख भाव की सगति ही प्रधान है, जो बडी विशिष्ट कही जायगी, जैसे—

"निरधन जानिके हरहु कलेस।"

यहाँ निर्धन का क्लेश हरने वाली प्रार्थना मर्मस्पर्शी है।

शब्दार्थ—उतरब=उतरेंगे। कओन बिधि=किस प्रकार। लोढब=चुनूँगा, बिनूँगा। बेल पाति=बेलपत्र। बसहा=बशहा, बैल। फिरहू=फिरते हो। जरठ=बूढा। कैलहु=किया। बित=बीत, व्यतीत। गेला=गया। तिन पन=शैशव, किशोर, युवा—अवस्थाएँ। आन=अकड। हरहु=दूर करो। कलेस=क्लेश, दुःख।

(२४०)

जखन देखल हर हो गुननिधी।
पुरल सकल मनोरथ सब बिधी।
बसहा चढ़ल हर हो बुढ़ जती।
काने कुंडल सोभे गले गजमोती।
बइसल महादेव चौका चढी।
जटा छिरिआओल माआल भरी।
बिधिकरु बिधिकरु बिधिकरु करू।
बिधि न करइ से हर हो हठ धरू।

बिधिए करइत हर हो घुमि खसु ।
सँसरि खसल फनि सिरि गौरी हँसु ।
केश्रो नहि किछु कहइन्हि हिनकहूँ ।
पुरबिल लिखल छला मोर पहूँ ।
कवि बिद्यापति गाओल ।
गौरी उचित बर पाओल ।

भावार्थ—शिव-पार्वती विषयक स्तुति-वर्णन करते हुए कविवर विद्यापति लिखते हैं—

हिमाचल निवासियो ने जिस समय गुण के निधान रूप शंकर जी के दर्शन किये कि उनके सारे सद्मनोरथ सर्वप्रकारेण उसी समय सुफल-सफल हो गए। बूढे यती शिवशकर जी बैल पर असवार है, उनके कान मे कुण्डल एव गले मे गज-मुक्ताओ की माला सुशोभित है । महादेव जी विवाह-मण्डप मे आए और चौका या आसन पर विराजमान हुए । उन्होने अपनी जटाओ को मस्तक पर बिखरा लिया । कर्मकाण्डियो ने उनसे आग्रह किया कि हे महादेव, विवाह की यह विधि सम्पन्न करिये—यह विधि····· वह विधि सम्पन्न करिये ; किन्तु वे शिव जी है कि कोई भी विधि सम्पन्न नही कर रहे हैं और जिद पकडे हुए है कि मैं करूँगा ही कुछ नही । और जब वे विधि करने पर आए या करते है तो उसे सम्पन्न करने-करने मे ही इतने तल्लीन हो जाते है कि खुमारी या नीद का चक्कर-सा खाकर गिर पडते है । सिर-शरीर मे लिपटे सर्प भी गिर पडते है और यह अद्भुत नज़ारा देखकर माँ गौरी (पार्वती जी) हँसने लगती हैं,—कहती है कि अरे, इन्हे या शकर जी को कोई भी कुछ न कहो। ये तो मेरे पूर्व जन्म के भाग्य मे लिखे हुए पति है । कवि विद्यापति गाते है कि इस भाँति गौरी ने अपना उचित पति पा लिया है ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शिव-पार्वती के विवाह का प्रसग वर्णित है । शिव जी के विचित्र रूप का चित्रण करने मे कवि ने हास्य-रस का सचार भी किया है, देखिए—

"बिधिए करइत हर हो घुमि खसु ।
सँसरि खसल फनि सिरि गौरी हँसु ।"

किन्तु "गौरी हँसु" उक्ति मे पार्वती के पीडित मन का उद्गार हँसी मे व्यक्त हुआ भी व्यजित है। और यहाँ आदर्श भारतीय पत्नी का भाव किस उत्कृष्टता से व्यजित है—नशे मे धुत शकर जी के हास्यास्पद रूप पर भी पार्वती का अनुराग कितना अनन्य है कि वह सबसे कह उठती है—

"केश्रो नहि किछु कहइन्हि हिनकहूँ ।
पुरिबल लिखल छला मोर पहूँ ।"

शब्दार्थ—जखन=जिस समय । देखल=देखा । हर=शिव जी । पुरल=पूरी हुई । सकल=सारे । सब बिधी=सब प्रकार से । बसहा=बैल, नादिया, शिव जी

का वाहन। बुढ़ जती=बूढ़ा यती या साधू। सोभे=शोभित होना। बइसल=बैठे हैं। चौका=विवाह-मण्डप का आसन। छिरिआओल=बिखरा देना। माआल=मस्तक। बिधि=कर्मकाण्ड का तौर-तरीका। करू=करो। हठ धरू=ज़िद किये हुए। बिधिए करइत=विधि करते हुए। घुमि खसु=चकराकर गिर पडे। सँसरि खसल=फिसलकर गिर गया। फनि=सर्प। हिनकहूँ=इनको, शंकर जी को। पुरबिल लिखल=पूर्व जन्म का भाग्य में लिखा हुआ। छला=है। मोर पहूँ=मेरे पति।

(२४१)

हर जनि बिसरब मो ममिता
हम नर अधम परम पतिता।
तुअ सन अधमउधार न दोसर
हम सन जग नहि पतिता।
जम के द्वार जवाब कओन देब
जखन बुझत, निजगुन कर बतिया।
जब जम किंकर कोपि पठाएत
तखन के होत धरहरिया।
भन बिद्यापति सुकवि पुनीत मति
संकर बिपरीत बानी।
असरन सरन चरन सिर नाओल
दया करु दिअ सुपलानी।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

हे शिवजी! आप मेरे स्नेहाराधन को भुला न देना। मैं मनुष्य हूँ, अत नीच हूँ, महा पापी हूँ। तुम जैसा कोई अन्य पापियो का उद्धार करने वाला भी नहीं है और मुझ जैसा कोई दूसरा महापापी इस ससार में नही है। अत: मेरे तुम्हारे बीच उद्धार करने वाला बानक खूब बन गया है, मेरा उद्धार तुम्हें निश्चय ही कृपा करके करना होगा। जब मेरे गुण की बात यमराज के दरबार में पूछी जाएगी तब उनका जवाब कौन देगा? व्यजना यह है कि जब मेरे अवगुण का लेखा-जोखा मृत्यु के पश्चात् होगा तब उससे छुटकारा पाने के लिए मेरे पास कौन-सा साधन है? जब यमराज मुझपर क्रोधित होकर अपने दूत मुझे दण्ड देने के लिये भेजेंगे उस समय मुझे रक्षित रखनेवाला—यमदूतों के डण्डों की मार से बचा लेने वाला कौन होगा? सुकवि विद्यापति पवित्र बुद्धि-भाव से शिव जी के विपरीत शुभ कार्य की टेव अर्थात् उनके अवढर उदार गुण-रूप की स्तुति करते हैं कि हे शिवशंकर! मैं अशरण हुआ तुम्हारी शरण हूँ और चरणों पर सिर झुकाता हूँ। दया करके मुझे अभय रूपी छाजन या छप्पर का आश्रय प्रदान करो।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कवि ने अपने उद्धार हेतु शंकर जी से आत्मनिवेदन किया है। कविवर विद्यापति यद्यपि शृ गार-रस के ही प्रधान कवि हैं फिर भी एकांत क्षणों में जहाँ वे अन्तर्मुखी हुए हैं उन्होंने बडी निश्छलता से अपने दोषो का परिहार करने के लिये शिवादि की स्तुति-प्रार्थना की है। यहाँ ये सूर एव तुलसी के आत्मनिवेदन के अग्रणी बन गए हैं। उनकी इन पक्तियों की प्रेरणा—

"तुअ सन अधमउधार न दोसर।
हम सन जग नहि पतिता।"

आगे सूर एव तुलसी के विनय के पदो से भी प्रस्फुटित हुई है, जैसे—

"मै हरि पतित-पावन सुने।
मै पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने।। (तुलसी)
× × × ×
प्रभु हौं पतितन कौ टीकौ।
और पतित सब धौस चारिको हौ तो जनमत होकौ।"

या—

"मो सो कौन कुटिल खलकामी।
जेहि तन दियौ ताहि बिसरायौ ऐसो नौन हरामी।"

यम के द्वार पर पहुँचकर जब यमराज "निजगुन" अर्थात् विद्यापति के गुणो की बात पूछेगे तब "जम के द्वार जवाब कओन देब"—की दशा होगी किन्तु गुण के प्रति यमराज पूछेगे ही क्यो और फिर जवाब क्यो न बनेगा ?—इसका रहस्य है "निजगुण" शब्द की गम्भीर व्यजना ! यहाँ 'गुण' कहकर पूर्ण अवगुण की व्यंजना करना कवि का अलम् रहा है।

शब्दार्थ—जनि=मत, न। बिसरब=भुला देना। मो=मेरी। ममिता=सहानुभूति, अनुरक्ति। अधम=नीच। हम=मैं। तुअ सन=तुम जैसा। अधम-उधार=नीच पापियो का उद्धार करने वाले। न दोसर=दूसरा या अन्य कोई नही है। सन=जैसा या समान। जम के द्वार=यम या काल का दरवाजा, पर यहाँ दरबार से आशय है। कओन=कौन। देब=देगा। जखन=जब। बुझत=पूछेगे। निजगुन=मेरे गुण, व्यंजनार्थ है 'अवगुण' से। जम किंकर=यम के दूत। कोपि पठाएत=क्रोधित होकर भेजेंगे। तखन=तब, उस समय। के होत धरहरिया=कौन बचाने वाला होगा। पुनीत मति=पवित्र बुद्धि-भाव से। सकर बिपरीत बानी=शिव जी की टेव या आदत उल्टी है; क्योकि वह अवढर दानी हैं—कुपात्र राक्षसों को भी वर दे देते हैं—असुन्दर को सुन्दर मानकर धारण करते हैं; वे महादेव जो हैं ! असरन=निराश्रित। सरन=शरण, आश्रित। नाओल=झुकाता हूँ। सुपलानी—सु+पलानी=अच्छा छाजन या छप्पर, आशय है कि दया करके अपना पूर्ण अभय-आश्रय दें।

(२४२)

एत जप-तप हम किस्र लागि कलहु
कथिला कएलि नित दान।
हमरि धिया के एहो बर होयता
अब नहि रहत परान।
हर के माय बाप नहि थिकइन
नहि छइन सोदर भाय।
मोर धिया जों सासुर जैती
बइसति ककर लग जाय।
घास काटि लौती बसहा चरौती
कुटती भाँग धतूर।
एको पल गौरी बैसहु न पौती
रहती ठाढ़ि हजूर।
भन विद्यापति सुनु ए मनाइनि
दृढ़ करु अपन गेग्रान।
तीन लोक के एहो छथि ठाकुर
गौरा देवी जान।

भावार्थ—अपनी पुत्री गौरी का अवढर शिव के साथ विवाह होते देख मेनका असन्तुष्ट होती है और विरोध प्रदर्शित करती है। उसीका वर्णन प्रस्तुत पद मे करते हुए कविवर विद्यापति लिखते है—

मेनका कहती है कि हाय, मैने इतने जप-तप किसके लिए किये और इतना नित्यदान भी क्यो किया जो मेरी बेटी गौरा के लिए यही ऐसा अवधूत वर हो सकता है। यह जानकर तो अब मेरे प्राण भी नही रहेगे। हरे राम! शिव के न माँ है, न बाप और न सगे भाई-बन्धु ही है। ऐसी दशा मे मेरी बेटी विवाह होकर यदि सुसराल जायगी तो भला किसके पास जाकर बैठेगी? वहाँ मेरी बेटी भला घास काटकर शिव के वाहन बैल या नादिया को चराएगी या उसके लिए भाँग-धतूरा कूटेगी, भंग छानकर शिव को पिलाएगी?—क्या-क्या अनुचित कठिन काम उसे करने होगे, कौन जाने! गौरा वहाँ एक पल के लिए भी आराम से बैठ भी न पाएगी। उसे हर समय स्वामी शिव की जी-हजूरी मे एक पॉव से खडी रहना होगा। कवि विद्यापति कहते है कि मेनका, मेरी भी सुनो कि तुम अपने ज्ञान को गूढ करो, बुद्धि को चचल न बनाओ। अरे ये शिव तीनो लोक के स्वामी साक्षात् ब्रह्मरूप है और यह तुम्हारी बेटी साक्षात् भगवती है। व्यजना है कि शिव-पार्वती की युगल मूर्ति त्रिलोक्य की आद्या शक्ति है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे पार्वती की माता मेनका का अपनी पुत्री के प्रति वात्सल

भाव स्वभावत: फूट पड़ा है जब वह यह सोचती है कि जोगी शिव के साथ विवाह हो जाने के उपरात उसकी प्यारी बेटी कैसे दिन काटेगी—अकेली रहेगी, उसे अपनी सुनसान सुसराल का वातावरण विकल कर देगा। सचमुच शकर जी जैसे निखट्टू पति के साथ अपनी पुत्री का विवाह करते हुए प्रत्येक माँ का अपनी पुत्री के प्रति यह चिंताजनक वात्सल्य भाव उमडना स्वाभाविक है। इन पक्तियो मे यही भाव अभिव्यजित हो रहा है—

"हर के माय बाप नहि थिकइन
नहि छइन सोदर भाय ।
मोर धिया जों सासुर जैती
बइसति ककर लग जाय ।"

अतत: कवि ने शिव-पार्वती को साक्षात् ब्रह्म एव आद्या शक्ति के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया है और उनके लौकिक रूप-भाव का अतिक्रमण करके उन्हे सनातन प्रतिष्ठा के आसन पर बिठला दिया है—

"तीन लोक के एहो छथि ठाकुर
गौरा देवी जान ।"

शब्दार्थ—एत=इतने । किअ लागि=किसके लिये । कैलहु=किया । कथिला=क्योकर। कएलि=किये। नित=नित्य, रोज। धिया=बेटी, पुत्री। एहो=ये अवढर, शिव से आशय है। होयता=हो सकते है। नहि छइन=नही है। सोदर भाय=सगा भाई-बन्धु। बइसति=बैठेगी। ककर=किसके। बसहा=बैल, शिव का वाहन नादिया। चरौती=चरायगी। ठाढि हजूर=स्वामी के आगे खडी रहेगी—जी-हजूरी मे दासी बनी रहेगी। मनाईनि=मेनका। दृढ करु=स्थिर करो। अपन=अपना। गेआन=ज्ञान। ठाकुर=स्वामी। छथि=है।

(२४३)

कखन हरब दुख मोर,
हे भोलानाथ ।
दुखहि जनम भेल दुखहि गमाएब
सुख सपनहु नहि भेल,
हे भोलानाथ ।
आछत चानन अवर गँगाजल
बेलपात तोहि देब,
हे भोलानाथ ।
यहि भव-सागर थाह कतहु नहि
भैरव धरु कर आए,
हे भोलानाथ ।

भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति
देहु अभय बर मोहि,
हे भोलानाथ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे शिव जी की विशुद्ध भक्ति-भावनामय स्तुति करते हुए कविवर विद्यापति लिखते हैं—

हे भोलेश ! मेरे दु खो का विनाश कब करोगे ? दुःख मे ही मेरा जन्म हुआ है, दु ख मे ही उसे व्यतीत किया है और सुख तो स्वप्न मे भी उपलब्ध नही हुआ। हे भोलेश ! मैं तुम्हे अक्षत चन्दन और गगाजल बेलपत्र को चढाऊँगा। इस मायामय संसार-सागर की कहीं थाह प्रतीत नही होती। हे भैरव ! मेरा हाथ गह कर मुझ डूबते हुए को बचाइये, इस मायामय ससार-सागर से मुझे उबारिये। कवि विद्यापति प्रार्थना करता है कि हे भोलेनाथ ! मेरी गति या मुक्ति तो केवल आप ही है, आप ही बस मेरे लिए मुक्ति-प्रदाता है। अत मुझे अभयदान दीजिये। हे भोलेश ! मेरा अन्य कोई भी आश्रय नही, अवलम्ब नही, केवल आप ही मेरा उद्धार करे।

विशेष—प्रस्तुत पद मे दैन्य भाव का प्रकाशन हुआ है। यहाँ दार्शनिक ढग से जीव, ब्रह्म (शिवरूप मे) और मायामय ससार का विश्लेषण है। इन पक्तियो मे दार्शनिक तत्त्व की व्यजना है—

"यहि भव-सागर थाह कतहु नहि
भैरव धरु कर आए,
हे भोलानाथ।"

भक्त की दीनता की हृदय विदारक पीडा इन पक्तियों मे व्यक्त है—

"दुखहि जनम भेल दुखहि गमाएब
सुख सपनहु नहि भेल,
हे भोलानाथ।"

जरावस्था तक आकर जैसे कवि के यौवन के स्वप्न मिथ्यात्व में बदल गए। रंगीला-ससार फीका पड़ गया, शृगार-रस विष बन गया, इहलोक के आकर्षण का सार नष्ट हो गया। विद्यापति के इस प्रकार के पदों मे अभिव्यक्ति की सादगी और अनुभूति की निश्च्छलता-गंभीरता बड़ी मार्मिक बन पडी है। यही वे परमभक्त है !

शब्दार्थ—कखन—किस क्षण, कब। हरब=हरोगे, विनाश करोगे, दूर करोगे। मोर=मेरे। दुखहि जनम=दुःख मे ही जन्म हुआ। गमाएब=गँवाया, व्यतीत किया। सपनहु=स्वप्न मे भी। नहि भेल=नही हुआ, आशय है कि उपलब्ध नहीं हुआ। आछत=अक्षत। चानन=चन्दन। अवर=और। भव-सागर=संसार रूपी सागर। कतहु=कहीं भी।

(२४४)

यहि बिधि ब्याहन आयो
एहन बाउर जोगी।
टपर टपर कए बसहा आयल
खटर खट रुँडमाल ।
भकर भकर सिव भाँग भकोसथि
डमरू लेल कर लाय ।
ऐपन मेंटल पुरहर फोरल
बर किमि चौमुख दीप ।
धिया ले मनाइनि मंडप बइसलि
गाबिए जनु सखि गीत ।
भन बिद्यापति सुनु ए मनाइनि
ई थिका त्रिभुवन ईस ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

ये बावला जोगी शिव इस अशुभ रूप मे पार्वती को विवाहने आया है। 'टपर टपर' कर चलने वाला वृष साथ मे लाया है और उसके गले मे कटे शिरो की माला 'खटर खटर' कर खड-खडाती है। शिव 'भकर भकर' करके भाँग फाँकता खाता है और डमरू हाथ मे लिये है। शुभ ऐपन या अल्पना (गेरू तथा चावल के घोल से कुछ रेखाएँ या चित्र विवाहादि उपलक्षों-उत्सवो मे चित्रित किए जाते है इसे ही ऐपन या अल्पना कहा जाता है)को उसने मिटा डाला है और रखे हुए शुभ मृत्तिका कलश—पुरहर—को उसने फोड डाला है, अब चारो ओर दीपक कैसे जले ? अपनी सुपुत्री गौरी को लिये माता मेनका मण्डप मे बैठी है और यह सब अशुभ दृश्य देखकर कहती है कि हे सखियो, विवाह के गीत मत गाओ। आशय यह है कि अवधूत शिव के साथ बेटी गौरी का विवाह उचित नही, नही होगा। तब विद्यापति कहते है कि हे मेनका, जो मैं कहता हूँ, उसे सुनो ! ये शिव तीनो लोको के परमात्मा हैं, साक्षात् परब्रह्म है। इनके इस अवढर रूप को देखकर तुम मन मे उनके प्रति कोई विकार न लाओ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे पार्वती-शकर के विवाह का प्रसग वर्णित है। पार्वती की माँ मेनका का क्रोध हास्य रस की सृष्टि का कारण हुआ है। इन पक्तियों मे सहज ढग से हास्य रस का सचार होता हुआ प्रतीत होता है—

"टपर टपर कर बसहा आयल
खटर खटर रुँडमाल ।
भकर भकर सिव भाँग भकोसथि
डमरू लेल कर लाय ।

"ऐपन मेंटल पुरहर फोरल
बर किमि चौमुख दीप ।"

यहाँ शब्द-योजना भी क्रिया-व्यापार और वातावरण के प्रभाव मे वृद्धि कर रही है। बैल के शीघ्रता से आने पर उसके खुरो की 'टपर टपर' आवाज़ आना और भाँग फाँकने से 'भकर भकर' की भौडी ध्वनि स्वाभाविक बात है। अतत: शकर जी के उपहासात्मक व्यक्तित्व को ईश्वरत्व मे परिणत करने मे कवि ने बडी आस्था-भावना को प्रकट किया है—

"भन विद्यापति सुनु ए मनाइनि
ई थिका त्रिभुवन ईस।"

शब्दार्थ—यहि बिधि=इस तरह। ब्याहन=विवाहने के लिये। बसहा=वृष, शंकर जी का वाहन नादिया। रुँडमाल=शिरो की माला। भकोसथि=फाँकते खाते है। ऐपन=गेरू एव चावलो के घोल से रची शुभ चित्रकारी। पुरहर=मिट्टी का बना विवाहोत्सव का घडा या कलसा। फोरल=फोड दिया। धिया=बेटी, पुत्री। मनाइनि=मेनका। बइसलि=बैठी। जनि=मत। ई थिका=ये है। त्रिभुवन ईस=तीनों लोक के परमात्मा—परब्रह्म रूप।

(२४५)

आजु नाथ एक बर्त मोहि सुख लागत हे।
तोहें सिव धरि नट बेष कि डमरू बजाएब हे।
भल न कहल गउरा रउरा आजु सु नाचब हे।
सदा सोच मोहि होत कवन बिधि बाँचब हे।
जे जे सोच मोहि होत कहा समुझाएब हे।
रउरा जगत के नाथ कवन सोच लागए हे।
नाग ससरि भुमि खसत पुहुमि लोटायत हे।
कार्त्तिक पोसल मजूर सेहो धरि खायत हे।
अमिय चूइ भुमि खसत बघम्बर जागत हे।
होत बघम्बर बाघ बसह धरि खायत हे।
टूटि खसत रुदराछ मसान जगाबत हे।
तब गउरी जयबह पड़ाए नाच के देखत हे।
भनहि विद्यापति गोबोल गाबि सुनाओल हे।
राखल गौरी केर मान त्रिलोक नचाबल हे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

पार्वती कहती है कि हे नाथ ! आज एक व्रत है, जिसे जानकर मेरे भी मन में इस एक सुख की अभिलाषा जग रही है कि हे शिव, तुम नटराज का वेष धारण करके

डमरू बजाओ, नाचो और मैं आपका इस रूप मे नृत्य देखूँ। शिव ने कहा कि हे पार्वती! तुमने यह बात शुभ नही कही कि "मैं नाचूँ।" मुझे तो सदा यही सोच होता है कि मेरे नृत्य से यह सृष्टि किस प्रकार बचेगी ? इस बात से मुझे जो-जो चिन्ता होती है, वह मैं तुम्हे कहाँ तक समझा पाऊँगा। तब पार्वती बोली कि आप तो संसार के ईश है, भला फिर आपको कौनसी कैसी चिन्ता है ? तब शंकर जी कहने लगे कि मैं जब नाचने लगूंगा तब यह सर्प जिसे मैं गले मे धारण किये हूँ, खिसककर पृथ्वी पर गिर पडेगा और तुम्हारे पुत्र कार्तिकेय ने जो मयूर पाल रक्खा है वह उसे पकडकर भक्षण करने लगेगा। मेरे नाचने से अमृत भी चू कर भूमि पर गिरने लगेगा जिससे मृत बाघ का जो चर्मासन है सिह रूप मे पुनर्जीवित हो जायेगा और मेरे वाहन बैल को पकड कर खाने लगेगा। फिर ये जो मेरी रुद्राक्ष की माला है वह भी टूटकर गिरेगी, जिससे सारा मरघट धधक उठेगा अर्थात् प्रेत रूपी आत्माए देह धारण कर भयकर नृत्य-रव करने लगेगी, फिर तो हे पार्वती! उस भयकर दृश्य को देखकर तुम भी भाग जाओगी, फिर नाच कौन देखेगा ? कविवर विद्यापति इस प्रसग को गा-गाकर सुनाते है कि इस प्रकार शकर भगवान ने पार्वती के मान को भी रख लिया और अपने ताण्डव नृत्य के कारण त्रिभुवन को नष्ट होने से भी उन्होने बचा लिया; कितने समझदार है शिव जी !

विशेष—शकर जी का ताण्डव नृत्य लोक-विध्वसकारी है, ऐसी पौराणिक मान्यता है। उसी की महत्ता का प्रतिपादन इस पद मे किया गया है। यहाँ कवि ने वाक्-चातुर्य का चमत्कार शिव के द्वारा ही प्रकट किया है। वह अपने ताण्डव नृत्य से सृष्टि विध्वस नही चाहते और यह भी नही चाहते कि प्रिया पार्वती की बात न रहे अत. अपनी चतुराई मे वह दोनो पक्ष ही रख लेते है और भोली पार्वती चुप हो रहती है। इस पक्ति मे चातुर्य की पराकाष्ठा है—

"तब गउरी जयबह पड़ाए नाच के देखत हे।"

और अतत. स्वय कवि अपने आशय को स्पष्ट कर देता है—

"राखल गौरी केर मान त्रिलोक नचाबल हे।"

"त्रिलोक नचाबल" में शिव के सहारकारी रूप का सकेत है। वस्तुत विद्यापति ने बड़ी से बड़ी बात कहने मे भी शब्दो की मितव्ययता (Economy) बडी कुशलता से दिखलाई है; यही उनके पदों का कलात्मक चमत्कार है, उनके कवि कर्म का कौशल है।

शब्दार्थ—मोहि=मुझे। तोहे=तुम्हे। धरि=धारण करना। भल=अच्छा। रउरा=तुम, आप। कवन बिधि=किस प्रकार। बाँचब=बचेगा। जे=जो। होत=होता है। ससरि=ससरना, खिसकना। कार्तिक=शंकर भगवान के पुत्र का नाम। पोसल=पाला हुआ। मयूर=मोर। सेहो=वह भी। अमिय=अमृत। बघम्बर=बघ-छाला, व्याघ्र की छाल। बसह=बशहा, बैल। मसान=श्मशान, जहाँ मुर्दे जलाये जाते हैं, मरघट। जयबह पड़ाए=भाग जाओगी। के=कौन। गाबि सुनाओल हे=गाकर

सुनाते हैं। राखल=रख लिया। रुदराछ=रुद्राक्ष, एक प्रकार की माला। त्रिलोक=तीनों लोक।

(२४६)

आगे माइ, जोगिया मोर जगत सुखदायक
दुख ककरो नहि देल।
दुख ककरो नहि देल महादेब
दुख ककरो नहि देल।
यहि जोगिया के भाँग भुलैलक
धतुर खोआइ धन लेल।
आगे माइ, कातिक गनपति दुइ जन बालक
जग भरि के नहि जान।
तिनका अभरन किछुओ न थिकइन
रति यक सोन नहि कान।
आगे माइ, सोना रूपा अनका सुत अभरन
आपन रुद्रक माल।
अपना सुत ला किछुओ ना जुरइनि
अनका ला जंजाल।
आगे माइ, छन में हेरथि कोटि धन बकसथि
ताहि देबा नहि थोर।
भन बिद्यापति सुनह मनाइनि
थिक दिगम्बर भोर।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

ऐ री मैया! मेरा शिव तो योगी है, सारी सृष्टि का सुख-प्रदाता है; उसने दु:ख तो किसी को भी नहीं दिया। मेरे महादेव ने दुःख किसी को भी नही दिया, किसी को भी नही दिया। अरे, लोग मेरे इस भोले योगी को भग खिला-खिलाकर छल-भुलावे मे डालते हैं और धतूरा खिलाकर धन-ऐश्वर्य प्राप्त करते है। आशय यह है कि दुष्ट जन भोले शिव को भाँग-धतूरा खिलाकर उनकी आराधना के छल से उनसे धन-ऐश्वर्य का वाछित वरदान पा लेते हैं और वे सहर्ष प्रदान भी कर देते है। अरी मैया! इनके कार्त्तिकेय और गणेश नाम के दो बच्चे हैं, इस बात को संसार भर मे कौन नही जानता कि जिनके पास में कोई आभूषण नही है और कान मे स्वर्णकुण्डल क्या एक रत्ती भर भी स्वर्ण नही है। अरी मैया! स्वर्ण-रौप्याभूषण तो वे दूसरो के बच्चों को पहनने के लिये दे देते हैं और अपने-आप ग्रीवा मे रुद्राक्ष की माला पहने रहते हैं। अपने पुत्रों के लिये उनसे कुछ भी नहीं बन पड़ता और दूसरों के लिये स्वयं झंझट उठाते है अर्थात् इसको

यह देना है, उसको वह देना है—इसी मे व्यस्त रहते है। हे माता! ये तो क्षण भर की प्रार्थनीय दृष्टि से देखने मे ही लोगों को करोडो का धन दान कर देते हैं, जिस पर खुश हो जाते हैं उसे थोडा नही देते अर्थात् उसे मालोमाल ही कर देते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि जिससे ये प्रसन्न हो गए कि उसे कुछ भी देने मे इन्हे टोटा नही पड़ता। कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे मेनका, सुनो! दिगम्बर रूप धारी शिव तो हरदम इसी दान की महानता मे मदमत्त भावुक बने रहते है। औघडदानी जो है वे!

विशेष—प्रस्तुत पद मे औघडदानी शिव का सरल स्वभाव व्यजित किया है। स्वभावोक्तियों द्वारा पद का उत्कृष्ट महत्त्व प्रति ।ादित हुआ है, यह पद की बडी विशेषता है। शिव का सारल्य इन पंक्तियो मे कितनी निपुणता से प्रकट है—

"अपना सुत ला किछुओ ना जुरइनि
अनका ला जजाल।"

कितना सरल और निराला स्वभाव है जगत् पिता शिव का! अन्य देवता अपने भक्तों से महान् भेट लेकर प्रसन्न होते है किंतु शिव है कि विषैले पदार्थ भक्ति मे भेट लेकर दैत्यो तक को महावरदान दे देते है। उनके इस महान् व्यक्तित्व की समता किस देवता मे है, तभी तो वे देवाधिदेव कहाते है। इसी तथ्य को इन पक्तियो मे बडे उत्कृष्ट ढंग से व्यक्त किया गया है—

"यहि जोगिया के भांग भुलैलक
धतुर खोआइ धन लेल।"

अत की पक्ति अपनी महान् व्यजना मे बेजोड है। शिव की भूल भी भलाई के प्रति कितनी अनुकूल है कि वह बुरो की बुराई को भी नही देखती, बस भक्ति से जिसने उन्हें आराधा कि उन्होने उमका कल्याण किया—

"भन बिद्यापति सुनह मनाइनि
थिका दिगम्बर भोर।"

इन दो पक्तियो मे एक 'भोर' शब्द द्वारा कवि ने शकर जी के महान् उदार चरित्र का विराट् विश्लेषण कर दिया है।

शब्दार्थ—आगे=ऐ। माइ=माता, मैया। मोर=मेरा। जगत=संसार। सुखदायक=सुख देने वाला। ककरो=किसीको। यहि=इस। भुलैलक=भुला देता है। लेल=ले लेता है। कातिक गनपति=कार्त्तिकेय और गणेश, शिव के दोनों पुत्रों का नाम। के=कौन। अभरण=आवरन, आभूषण। किछुओ=कुछ भी। न थिकइन=नहीं है। यक=एक। रूपा=चाँदी। रुद्रक=रुद्राक्ष। सुन=पुत्र। जुरइनि=बनता है। कोटि=करोड। बकसथि=देते हैं। थोर=थोडा। मनाइनि=मैंना। थिका=हैं।

(२४७)

जोगिया भँगवा खाइत भेला रँगिया
भोला बौड़लवा ।
सबके ओढ़ावे भोला साल दुसलवा
आप ओढ़य मृगछलवा ।
सबके खिलावे भोला पाँच पकवनमा
आप खाए भाँग धतुरवा ।
कोई चढावे भोला अच्छत चानन
कोई चढ़ावे बेलपतवा ।
जोगिन भूतिन सिव के सँघतिया
भैरो बजावे मिरदगिया ।
भन विद्यापति जै जै संकर
पारबती गौरि सँगिया ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

ये योगी भोला भाँग खाकर रँगीला हो गया है, बौरा गया है । अर्थात् इसकी दशा मस्त पागलो के जैसी हो गई है । ये कितना अजीब है कि सभी को तो शाल और दुशाले उढाता है और अपने-आप मृगछाला ओढता है । सभी को तो ये पाँचो पक्वान खिलाता है और आप भाँग-धतूरे का आहार करके ही मस्त रहता है । भोला के चढावे मे कोई तो चन्दन-चावल चढाता है और कोई बेलपत्र जैसा तुच्छ चढावा ही चढा देता है । आशय है कि भोला तो अपने हर प्रकार के भक्त से खुश रहता है, ऐसा अच्छा स्वभाव है उसका ! भोला के सग रहने वाली भुतनियाँ और जोगिनियाँ हैं । भैरो देव मृदग बजाता हुआ उसके साथ लगा रहता है । कविवर विद्यापति कहते हैं कि हे भोले नाथ ! तुम्हारी जै-जै हो । तुम कितने महान् हो कि इस रूप मे भी तुम्हारी सगिनी महामाता पार्वती है ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे शकर जी के औघड रूप का चित्रण किया गया है और विशेष है उनके सरल चरित्र एव स्वभाव का प्रकाशन, देखिए—

"सबके खिलावे भोला पाँच पकवनमा
आप खाए भाँग धतुरबा ।
कोई चढावे भोला अच्छत चानन
कोई चढ़ावे बेलपतबा ।"

वस्तुत. शिव जी के इस रूप-चरित्र स्वभाव का चित्रण कर कवि ने भक्तो का एक सहज आकर्षण उनके प्रति स्थापित करना चाहा है । सम्भवतः इसीलिए उनको शैव भक्त

कहा गया है। उनके परमपिता भी शैव भक्त थे अतः शैवचरित-वर्णन में उन्हें संस्कारतः सफलता मिली है।

शब्दार्थ—खाइत=खाकर। बौड़लबा=बौरा जाते है, पागल हो जाते हैं। ओढ़य=ओढ़ता है। मृगछलबा=मृग का चमडा। पकवनमा=पकवान। चानन=चन्दन। बेलपतबा=बेलपत्र, बेल का पत्ता। सँघतिया=साथ मे रहने वाली। मिरदगिया=मृदग, एक प्रकार का बाजा। रौरि=आपकी। सँगिया=सगिनी।

(२४८)

जौं हम जनितहुँ भोला भेला ठगना
होइतहुँ राम गुलाम, गे माई।
भाई बिभीखन बड़ तप कैलन्हि
जपलन्हि राम क नाम, गे माई।
पुरुब पछिम एको नहि गेला
अचला भेला यहि ठाम, गे माई।
बीस भुजा दस माथ चढ़ाओलि
भाँग दिहल भर गाल, गे माई।
नीच-ऊँच सिव किछु नहि गुनलन्हि
हरषि देलन्हि रुँडमाल, गे माई।
एक लाख पूत सवा लाख नाती
कोटि सौबरन क दान, गे माई।
गुन अवगुन सिव एको नहि बुझलन्हि
रखलन्हि रावन क नाम, गे माई।
भन विद्यापति सुकबि पुनित मति
कर जोरि बिनओ महेस, गे माई।
गुन अवगुन हर मन नहि आनथि
सेवक क हरथि कलेस, गे माई।

भावार्थ—[रावण शिव का महान् भक्त था। उन्ही की आराधना में उसने अपने शिर काट-काटकर चढाए थे और तब शंकर ने प्रसन्न होकर उसे प्रतापी होने का आशीर्वाद प्रदान किया था, किन्तु अपने पापो के परिणामस्वरूप वह राम से पराजित हुआ। इसीके पश्चात्ताप-प्रायश्चित मे वह शकर जी के गुणो की अभिव्यजना इस पद में कर रहा है। पद मे अभिधार्थ प्रधान न होकर व्यग्यार्थ ही प्रधान है। अन्त की पक्तियों में शिव जी एव राम जी की कृपा-महत्ता ही प्रधानतः व्यजित है।] प्रस्तुत पद में कविवर विद्यापति लिखते है—

रावण कह रहा है कि अरी माता, यदि मैं यह समझ पाता कि भोलास्वरूप शिव

ठग होगा तो मैं इसकी पूजा कभी न करके, बस, राम का ही सेवक हो जाता। सच-मुच, मेरे भाई विभीषण ने ही बहुत तपस्या की जो राम का नाम जपा। उसे पूरब-पच्छिम कही पर भी भटकना नही पड़ा और यही एक स्थल पर बैठे बैठे ही रामनाम के प्रताप से अचल जीवन या अमरत्व प्राप्त कर गया। आशय यह है कि रामनाम के प्रताप से उसे यहीं लका मे अमरत्व प्राप्त हुआ, अटल राज्याधिकार प्राप्त हुआ। रावण कहता है कि री मैया, मैने तो शिव को अपनी बीसो भुजा और दसो शीश काटकर चढा दिये और उसकी इच्छानुसार गाल भर-भरकर भाँग खिलाई, तिसपर भी उसने नीच-ऊँच या उचित-अनुचित का कुछ भी विचार नही किया और फलस्वरूप मुझको भी अपने ही जैसी मुण्डो की माला दे दी। आशय यह है कि मैंने स्वय अपने पुरजन-परिजन के सिर काट डाले, मुझे यह उपहार दिया है शिव ने ! मैया री ! देख, इस रावण ने एक लाख पुत्र और सवा लाख नाती तथा करोडों का स्वर्ण शिव को दान किया फिर भी शिव ने एक भी गुण-अवगुण पर ध्यान नही दिया और केवल 'रावण' का नाम मात्र शेष छोड़ा बाकी सब कुछ उसका नष्ट कर दिया। आशय यह है कि मेरी तपस्या-आराधना पर उन्होने कुछ भी विचार न करते हुए परिणामस्वरूप मेरे सारे कुल का नाश कर दिया और मेरा कलकी नाम ससार मे शेष छोड दिया। कविवर विद्यापति पावन मनीषा द्वारा कहते है कि मैं तो दोनो कर बद्ध करके शकर भगवान की वन्दना करता हूँ। वे मन मे किसी के भी गुण और अवगुण को कुछ भी नही समझते; जो सच्चे मन से उनकी सेवा करता है, हे माता, वे उसके दु खो को दूर करते है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे वाच्यार्थ द्वारा राम की गुण-महत्ता का गान किया गया किंतु व्यंग्यार्थ द्वारा शकर जी के अवढर दानी स्वरूप का प्रतिपादन हुआ है। रावण की मृत्यु राम के हाथों हुई और उसे स्वर्ग मिला किंतु विद्यापति ने इसका मूल श्रेय शिव को ही दिया है। किंतु अभीष्ट अर्थ का प्रतिपादन वक्रोक्ति के माध्यम से ही किया गया है। उदाहरणार्थ,

"गुन अवगुन सिब एको नहि बुझलन्हि
रखलन्हि रावन क नाम, गे माई।"

यहाँ रावण का नाम रख लिया से आशय हुआ कि उसका सारा वश तो राम-युद्ध में नष्ट हो गया केवल उसीका नाम इस दुष्कृत्य की स्मृति मे शेष रह गया, क्योंकि—

"हरषि देलन्हि रुँडमाल, गे माई।"

अर्थात् रावण के वंश जनो के युद्ध मे कटे मुण्डों की माला शकर जी ने पहले ही प्रदान कर दी है। इस प्रकार से प्रत्येक कथन एक वक्रोक्ति के माध्यम से अभिधार्थ से व्यंग्यार्थ प्रकाशित किया गया है। सम्पूर्ण पद मे यही विशेषता अपूर्व कही जायगी।

शब्दार्थ—जौं=यदि। जनितहुँ=जानता। भेला=होगा। ठगना=ठग। गुलाम=दास, सेवक। बड़=बड़ा, अधिक। कैलन्हि=क्रिया। क=का। पुरुब=पूर्व। पछिम=पच्छिम। नहि गेला=नही गया। यहि ठाम=इसी जगह, एक ही जगह। दिहल=दिया। गुनलन्हि=समझना, गुनना। देलन्हि=देना। पूत=पुत्र। सोवरन=स्वर्ण। क दान=का दान। रखलन्हि=रखना। पुनित मति=पवित्र बुद्धि। कर=हाथ। बिनश्रो=विनय करने से अभिप्राय है। नहि आनथि=नही आने देते। हरथि=हर लेते है, दूर करते है। कलेस=क्लेश, दु ख, कष्ट।

जानकी वन्दना

(२४६)

रे नरनाह सतत भजु ताही।
ताहि, नहि जननि जनक नहि जाही।
बसु नइहरा ससुरा के नाम।
जननि क सिर चढ़ि गेल वहि गाम।
सासु क कोर में सुतल जमाय।
समधि बिलह तौ विलहल जाय।
जाहि ओदर मे बाहर भेलि।
से पुनि पलटि ततय चलि गेलि।
भन बिद्यापति सुकवी भान।
कवि के कवि कहुँ कवि पहचान।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

हे नृप ! तुम सदा ही उसको भजो जिसके माता-पिता नही है—अर्थात् 'वैदेही सीता को,' जो सदा ही नैहर मे रहती है और ससुराल का नाम होता है अर्थात् माता-सीता की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई है, इसलिये सारी पृथ्वी ही तो उनका मायका हुआ और अयोध्या भी पृथ्वी पर ही है जहाँ वे राम के साथ रहती है, इस प्रकार उनकी ससुराल 'अयोध्या' तो बराए नाम है, सारी पृथ्वी ही उनकी मात्र भूमि है। अयोध्या को वे अपनी माता वसुन्धरा के ही सिर पर पाँव रख कर गईं। सास के अक मे जमाई सोए। आशय यह है कि वनवास मे जानकी के पति श्री राम पृथ्वी पर ही सोए। पृथ्वी को सीता जी की माँ कहा गया है। अतः श्री राम का सास की गोद मे सोने वाला भाव स्पष्ट है। यदि समधी सुखमय जीवन व्यतीत करता है तो वधू पुत्री भी सुखी होती है। जिस भूमि-माता के गर्भ से सीता जी पैदा हुई थी फिर श्री राम के गृह निर्वासन के दु ख से पीडित होकर वे उसी भूमि-माता के गर्भ मे समा गईं। आशय यह है कि अततः सीता जी को अपनी पृथ्वी माता का ही आश्रय मिला। इस प्रकार कवि श्रेष्ठ विद्यापति कल्पना से विचार कर

कहते हैं कि कवि के अतस् मे छिपे गूढ कवि की भावना को कोई कवि ही भली-भाँति जान सकता है। आशय है कि किसी कवि की गूढ अनुभूति की अभिव्यंजना को कोई कवि-हृदय ही पहचान सकता है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे जानकी-जन्म का बधान बाधकर कवि ने जानकी की विराट् महत्ता प्रकट की है। कहा जाता है कि बिहार के सीतामढी नामक स्थान मे कभी बडा अकाल पडा था। तब ज्योतिषियो की राय के अनुसार राजा जनक ने अपने हाथ से वहाँ की भूमि मे हल चलाया था ताकि वर्षा हो और अकाल हटे। तभी पृथ्वी से सीता जी निकाली गई। अत मे सीता जी को धोबी के लाछन के फलस्वरूप राम ने घर से निर्वासित किया और उसके पश्चात्ताप मे सीता जी ने भूमि-माता से प्रार्थना की कि वह उस निर्दोष को अपने मे लीन कर ले, फलस्वरूप वह भूमि मे समा गई। इसी किवदन्ती का आधार लेकर विद्यापति ने इस पद को रचा है। राम का सास की गोद मे सोने का आशय गम्भीरता से यही है कि सीता के कारण, उसकी माता पृथ्वी ने भी, राम को सकट के समय सुख ही दिया और सीता के लिये तो सारा ससार ही मायका है क्योकि वह पृथ्वी की पुत्री है। फिर पृथ्वी माता के गर्भ मे समा जाने वाली बात से यही आशय स्पष्ट होता है कि सीता पतिव्रता थी, अत वे स्वय स्थूल रूप से विलग होकर राम एव ससार को अपने पावित्र्य का प्रमाण दे गई। इस प्रकार प्रस्तुत पद मे पूर्णत माता जानकी की महत्ता का गुणगान किया गया है किंतु अत मे विद्यापति लिखते है—

"कवि के कवि कहँ कवि पहचान।"

सम्भवत यह कहने से उनका आशय यही रहा हो कि जो कुछ उन्होने जानकी की वन्दना मे कहा है वह सीता जी की लौकिक पौराणिक दोनो महत्ताओ के प्रति है और उसका वास्तविक अर्थ कोई सहृदय कवि ही जान सकता है, क्योकि कवि कवि के अर्थ-गौरव का मूल्य समझता है। इस दृष्टि से सम्पूर्ण पद मे श्लेषात्मक अर्थ भी लगाया जा सकता है। किंतु हमारी समझ मे इस पद का सीधा सा अर्थ, जो भावार्थ मे प्रकट है, ही जानना यथेष्ट होगा नही तो कबीर की उलटबासियो एव सूर के दृष्टिकूट के पदो की जैसी उलझन खडी हो जायगी जैसी कि "बरसे कम्बल भीगे पानी" आदि उक्तियो मे मिलती है।

शब्दार्थ—नरनाह=नर का स्वामी, नृपति। सतत=सदा। भजु=भजो। जननि=माता। जनक=पिता। जाही=जिसको। बसु=बसना, रहना। नइहरा=नैहर, मायका। क=का। सिर चढि=सिर पर चढकर। गेल=गई। वहि=वही। गाम=गाँव, अयोध्या के लिये है। कोर=अक, गोद। जमाय=दामाद। ओदर=पेट, गर्भ। भेलि=हुआ, निकला। ततय=वही। गेलि=गया। सुकवी=श्रेष्ठ कवि। के=का भावना से अभिप्राय है।

गंगा-स्तुति

(२५०)

बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे।
छोड़इत निकट नयन बह नीरे।
करजोरि बिनमओं बिमल तरंगे।
पुन दरसन होए पुनमति गंगे।
एक अपराध छेमब मोर जानी।
परसल माय पाए तुअ पानी।
कि करब जप-तप जोग धेआने।
जनम कृतारथ एकहि सनाने।
भनइ बिद्यापति समदओं तोही।
अन्त काल जनु बिसरह मोहीं।

भावार्थ—पुण्य भागीरथी के प्रति वन्दना व्यक्त करते हुए कविवर विद्यापति लिखते है—

हे मात! तुम्हारे पुण्यमय तीर पर मैंने बडा सुख-तत्त्व उपलब्ध किया है। तुम्हारा नैकट्य त्यागते हुए मेरे नयनो से अश्रुजल वह रहा है। हे स्वच्छ पावन तरगिणी गगे! मै हाथ जोडकर तुम्हारी विनय करता हूँ कि तुम पुण्यमती का अमित दर्शन मुझे पुन: होवे। हे मात! मैं विनम्र विनय करता हूँ कि मेरा यह एक अपराध जानकर भी तुम उसे क्षमा कर ही देना कि मैंने अपने अपावन पाँव से तुम्हारे पावन जल को स्पर्श किया है—उसमे चरण धोए है। अब क्या जप-तप और ध्यान करना शेप रह गया है? मेरा जन्म तो तुम्हारे जल मे एक बार ही स्नान करके सफल-सुफल हो गया है—उससे मेरे सारे पाप धुल गए। कवि विद्यापति कहता है कि हे मात, मैं पुन-पुन. तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अन्तकाल या प्राणान्त तक भुला न देना, बस अपने स्नेहाचल मे आश्रय दिये ही रहना।

विशेष—विद्यापति गगा के बड़े भक्त थे। अन्तकाल तक उनकी गगा-ममता व्यापक ही होती चली गई और उनकी मृत्यु पर स्वय गगा उन्हे उनकी दीन प्रार्थना पर लीन करने उनके आधे पथ ही स्वयमेव आ गई थी—ऐसी बात आज भी मिथिला में कही जाती है। गगा से की गई विनय की पराकाष्ठा निम्न पक्तियों मे प्राण को चीरती हुई गूंज उठी है—

"एक अपराध छेमब मोर जानी।
परसल माय पाए तुअ पानी।"

कवि को एक ही वेदना कचोट रही है कि हाय उसने निर्मल गंगा के जल में

अपने अपावन चरण क्यों स्पर्श किए !

कितनी सहज (Spontaneous) अभिव्यक्ति है ! "एकहि सनाने" उक्ति में "जनम कृतारथ" होने वाली पूत भावना गगा के प्रति भारतीय संस्कृति की सुप्त आस्था को भी स्नेह से जगा देने मे समर्थ कही जायगी। यह पद विद्यापति ने अपने सर्वथा निकट निधन के क्षणो में लिखा होगा, यह इस पक्ति से स्पष्ट है—"अन्त काल जनु बिसरह मोही।" भारतीय सस्कृति की दृढ मान्यतानुसार गगा की ध्यान-समाधि में जिसका निधन हो वह मोक्ष पाता है, इस दृष्टि से कहा जायगा कि कविवर विद्यापति मोक्ष के भागी हुए है।

शब्दार्थ—बड सुख सार=महान् सुख-तत्त्व। पाओल=पाया। तुअ=तुम्हारे। तीरे=किनारे पर, तट पर। छोड़इत निकट=सामीप्य छोड़ते हुए। बह नीरे=अश्रुजल बहता है। करजोरि=हाथ जोडकर। बिनमओं=विनय करता हूँ। बिमल तरगे=स्वच्छ निर्मल तरगो वाली तरगिणी—गगा। पुन=फिर। पुनमति=पुण्यवती। छेमब=क्षमा करना। परसल=स्पर्श किया। माय=माता। पाए=पाँव। तुअ=तुम्हारे। कि करब=क्या करना है। धेआने=ध्यान। कृतारथ=कृतार्थ। एकहि सनाने=एक स्नान से। समदओ=पुन-पुन कहना। तोही=तुम्हें। जनु बिसरह=मत भूलना। अन्त काल=मरणान्त तक, अन्तिम समय मे। मोही=मुझे।

(२५१)

ब्राह्मकमंडलु बास सुबासिनि
सागर नागर गृहबाले।
पातक महिष बिदारण कारण
धृतकरबाल बीच-माले।
जय गगे जय गंगे
शरणागत भय भंगे।
सुर मुनि मनुज रचित पूजोचित
कुसुम विचित्रित तीरे।
त्रिनयन मौलि जटाचय चुम्बित
भूति भूषित सित नीरे।
हरिपद कमल गलित मधुसोदर
पुण्य पुनित सुरलोके।
प्रविलसदमपुरी—पद दान—
विधान विनाशित शोके

सहज दयालुतया पातकि जन
नरकविनाशन निपुणे ।
रुद्रसिंह नरपति वरदायक
बिद्यापति कवि भणित गुणे ।

भावार्थ—गगा की स्तुति करते हुए कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद मे लिखते है—

हे मातेश्वरी गगे ! तुम ब्रह्मा के कमडल मे सानद रहने वाली हो और चतुर रसिक सागर की गृहबाला या गृहणी हो। पापी महिषासुर दैत्य को मारने के हेतु तुमने लहर-लहर रूपी माला की तलवार धारण की हुई है। हे महान् गगे ! तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम शरणाश्रितों के डर को दूर करने वाली हो। तुम्हारा पावन किनारा देवताओ, मुनियो एव मनुष्यो के द्वारा पूजा के पुष्पो से सजाया-सँवारा गया चित्रोपम प्रतीत होता है। त्रिलोचन अर्थात् शिव जी के सिर के जटापुँज को चूमते हुए तुम्हारा जल भस्म (राख) से विभूषित होकर साफ-स्वच्छ हो गया है। विष्णु के चरण-कमल से तुम्हारा मधुमय जल प्रादुर्भूत होकर आया है; उससे, यह मृत्यलोक तो क्या, देव-लोक या स्वर्ग तक पुण्य-पावन हो गया है। तुमने सुखद अमरपुरी अर्थात् देवलोक स्वर्ग का पद भी इस मृत्यलोक के शोक को नष्ट करने के लिये दान कर दिया—स्वर्ग से सहर्ष उतरकर इस मृत्यलोक मे आ गई। तुम्हारी महान् स्वाभाविकता इस बात मे है कि तुम अधम पापियो के नरक को नष्ट करने वाली हो—उन्हे इस नरकतुल्य पाप के ससार से मुक्ति दिलाने वाली हो। राजा रुद्रसिह को वरदान देने वाली इस प्रकार की मातेश्वरी गगा का कवि विद्यापति गुणगान-बखान करता है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे रूपक अलकार का प्रयोग मौलिकता से हुआ, जैसे—

'ब्राह्मकमडलु बास', 'पातक महिष', 'धृतकरबाल बीच-माले'।

गंगा के प्रति आस्था और विश्वास का भाव ही प्रधानतः व्यक्त हुआ है। वाग्वैदग्ध्य सुन्दर बन पड़ा है एव गगा के प्रति पौराणिक मान्यता को ही प्रतिपादित करना कवि का अभीष्ट रहा है।

शब्दार्थ—बास=निवास। सुबासिनि=सुख से रहने वाली। गृहबाले=गृहणी से आशय है। पातक=पाप। महिष=महिषासुर दैत्य जिसे चण्डी ने मारा था। बिदारण=मारना। करबाल=तलवार। बीच-माले=लहरों की माला, तलवार का उपमान है। त्रिनयन=तीन नेत्रों वाले, शिव जी। मौलि=सिर। जटाचय=केशपुँज। भूति=विभूति, भस्म। सित नीरे=स्वच्छ, श्वेत गंगाजल। हरि-पद=विष्णु के चरण। मधुसोदर=मधुमय जल से आशय है। पुनित=पवित्र। सूरलोके=देवलोक का, स्वर्ग का।

कृष्ण-कीर्त्तन

(२५२

माधब, कत तोर करब बड़ाई।
उपमा तोहर कहब ककरा हम
कहितहुँ अधिक लजाई।
जौं श्रीखड सौरभ अति दुरलभ
तौं पुनि काठ कठोर।
जौं जगदीस निसाकर तौं पुन
एकहि पच्छ इजोर।
मनि समान औरो नहि दोसर
तनिकर पाथर नामे।
कनक कदलि छोट लज्जित भए रह
की कहु ठामहि ठामे।
तोहर सरिस एक तोहँ माधब
मन होइछ अनुमान।
सज्जन जन सो नेह कठिन थिक
कवि बिद्यापति भान।

भावार्थ—श्री कृष्ण के निरुपम स्वरूप का वर्णन करते हुए कविवर विद्यापति प्रस्तुत पद मे लिखते है—

हे कृष्ण ! तुम्हारी श्रेष्ठता की बढाई कहाँ तक कितनी करूँ ? किसके साथ तुम्हारे रूप की उपमा दूँ, बस मुझे यह बात कहने मे भी अधिक लज्जा होती है—सचमुच, तुम्हारे तुल्य कोई दूसरा नही है। यदि चन्दन का सौरभ अति दुर्लभ है, श्रेष्ठ है तो फिर वह कठोर काठ भी तो है। आश्चय है कि यदि चन्दन की सुगन्ध उत्तम है तो चन्दन स्वयं कठोर काष्ठ भी तो होता है इस भाँति उसकी उत्तमता मे निकृष्टता भी जुड़ी है; पर श्री कृष्ण कोमलाग एव सुरभिमय दोनो गुणों से सम्पन्न हैं अतः चन्दन के साथ उनकी उपमा सगत नही। यदि इस जग का प्रकाशपिता चन्द्रमा है तो वह भी एक ही पक्ष—शुक्लपक्ष—मे प्रकाशित रहता है, शुक्लपक्ष मे ही लोप हो जाता है; किंतु श्री कृष्ण सदैव रूप से विभासित रहते हैं अतः चन्द्रमा के साथ उनकी तुलना कैसी ? यदि मणि की झिलमिलाहट के समान और अन्य पदार्थ नही है तो मणि का नाम भी तो 'पत्थर' की निकृष्ट संज्ञा से युक्त है जबकि श्री कृष्ण सुन्दर देहधारी हैं, चिर दैदीप्यमान हैं अतः मणि के साथ भी उनकी उपमा देना संगत नहीं। और क्या कहूँ कि सुन्दर कही जाने वाली स्वर्ण-कदली (केला) भी तो जगह-जगह लज्जावश तुच्छ—छोटी बनी रहती है; जबकि माधव सुडौल डील-डौल वाले सुन्दर पुरुष हैं अतः

स्वर्ण-कदली के साथ उनकी उपमा कैसी ? अतः इन सब बातो पर विचार करते हुए कविवर विद्यापति लिखते है कि हे माधव ! यह सत्य कि तुम जैसे हो बस, तुम ही एक हो। तुम्हारी उपमा किसी अन्य सौन्दर्याकार से नही दी जा सकती है। आशय है कि तुम्हारी उपमा बस तुम आप हो; ऐसा मन अनुमान लगाता है। कवि विद्यापति कहते है, सज्जन पुरुष से स्नेह जोडना बडा कठिन होता है। आशय यह है कि कृष्ण जैसे महान् श्रेष्ठ सुन्दर पुरुष से स्नेह सम्बन्ध जोडना इसलिये कठिन है क्योकि उसके रूप-गुणो के प्रति मनुष्य मे महान् श्रद्धा भी होनी चाहिये, जो बहुत कठिन कार्य है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कृष्ण के रूप-सौन्दर्य की तुलना मे प्रसिद्ध उपमानो—चन्द्रमा, चन्दन आदि का अपकर्ष दिखलाया गया है। यह वर्णन कवि प्रसिद्धि के अनुसार ही हुआ है, मौलिक नही। किंतु यह ध्यान रखने वाली बात है कि विद्यापति ने ही प्रथम हिन्दी मे श्री कृष्ण के लीलामय रूप का चित्रण अपने पदो मे स्वतन्त्रता से किया है और आगे के कवियो—सूर, मीरा, तुलसी आदि—ने उनकी उक्तियो की प्रेरणा से इतस्ततः उनके भावो को दुहराया भी है। जैसे इस पद की "तोहर सरिस एक तोहँ माधव" पक्ति के भावो को सूर ने "उपमा एक न नयन गही" उक्ति द्वारा व्यक्त किया है। मुझे स्मरण होता है कि तुलसी ने भी विनय-पत्रिका मे कही कुछ इससे मिलता-जुलता भाव व्यक्त किया है। कुछ भी हो, यह तो निश्चित है कि विद्यापति के पदो का प्रभाव जनता पर ही नही मध्यकालीन कवियो पर भी यथासभव पडा है।

शब्दार्थ—माधब=श्री कृष्ण। कत=कितनी। तोर=तुम्हारी, तेरी। करब=करूँ। बडाई=प्रशसा। उपमा=एक अलकार विशेप, तुलना। कहितहुँ=कहने मे भी। जौ=यदि। श्रीखड=चन्दन। सौरभ=सुगन्ध। अति दुरलभ=कठिनाई से प्राप्त होने वाला। काठ=काष्ठ, लकडी। निमाकर=चन्द्रमा। एकहि पच्छ=एक ही पक्ष—शुक्लपक्ष। इजोर=उजाला। तनिकर=उसका। पाथर=पत्थर। कनक कदलि=स्वर्ण-कदली (केला)। की कहु=कैसे कहूँ। ठामहि ठामे=जगह-जगह। तोहर सरिस=तुम जैसा। थिक=है।

(२५३)

माधब, बहुत मिनति कर तोय।
दए तुलसी तिल देह समर्पिनु
दया जनि छाड़बि मोय।
गनइत दोसर गुन लेस. न पाओबि
जब तुहुँ करबि बिचार।
तुहू जगत जगनाथ कहाओसि
जग बाहिर नइ छार।

किए मानुस पसु पखि भए जनमिए
अथवा कीट पतग ।
करम बिपाक गतागत पुनु पुनु
मति रह तुअ परसंग ।
भनइ बिद्यापति अतिसय कातर
तरइत इह भव - सिंधु ।
तुअ पद - पल्लव करि अवलम्बन
तिल एक देह दिनबंधु ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति श्री कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण का भाव व्यंजित करते हुए लिखते है—

हे कृष्ण ! मैं तुम से बहुत विनती करता हूँ। मैंने तिल और तुलसीदल दे-देकर अपनी ही काया, जो वस्तुतः तुम्हारी ही है, तुम्हे समर्पित की है। अब मुझे दया करके त्याग न देना अथवा मेरी ओर की हुई अपनी दया को न छोड़ देना—मेरी पूजा, मेरा समर्पण न ठुकरा देना, नही तो मेरा दिल टूट जायगा। जब तुम मेरे पापो या दोषो के प्रति-विचार करोगे—उनकी गणना करने लगोगे तो हे दयानिधि, तुम लेशमात्र भी कोई दूसरा गुण सिवाय अवगुण गुण के मुझमे नही पाओगे। तुम तो इस जगत् के नाथ कहाते हो—उसमे रहने वाले पापियो के उद्धारकर्त्ता हो तो देखो, मैं भी तो इस पापमय ससार से बाहर नही हूँ। तुम्हे मेरा भी दया करके उद्धार करना ही है—ऐसा सोचकर तुम मुझे छोड़ोगे नही। अपने दुष्कर्म फलस्वरूप यदि इस ससार मे मैं पुन. मनुष्य, पशु एव कीट या पतग की योनि मे भले ही जन्मूँ किन्तु इस आवागमन में, यह विनय है, कि मेरी प्रज्ञा का सत्य स्वरूप तुम्हारी ही भक्ति के प्रसग मे रमा रहे। कवि विद्यापति विनय करते है कि अत्यधिक दयनीय और कातर होकर इस ससार रूपी सागर से पार उतरने के हेतु उसने, हे माधव, तुम्हारे ही कर-कमल का अवलम्बन चाहा है। हे दीनो के बन्धु ! कृपा करके क्षण-भर के लिये अपने अवलम्बन रूप कर-कमलो को मुझे ग्रहण करने दो—मै पापो से मुक्त हो जाऊँगा।

विशेष—प्रस्तुत पद मे भगवान के प्रति एक भक्त का दैन्य भाव ही पूर्णतः व्यक्त हुआ है। "किए मानुस पसु पखि भए जनमिए अथवा कीट पतंग"—पक्ति को पढ़कर सहसा रसमय कवि रसखान का यह प्रसिद्ध पद स्मरण हो आता है—

"मानस हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।"

निःसन्देह यहाँ विद्यापति से अधिक रसखान की विनय एवं आस्था-भावना अधिक

कलात्मक एवं हृदयस्पर्शी है किंतु भगवान के प्रति पूर्णत: आत्मसमर्पण का भाव विद्यापति के पद में प्रधान लगता है, जब वे कहते है—

"तुअ पद-पल्लव करि अवलम्बन
तिल एक देह दिनबधु।"

शब्दार्थ—मिनति=विनती, प्रार्थना। तोय=तुमसे। जनि=मत। कहाओसि=कहाते हो। छार=छोडना। मानुस=मनुष्य। पसु=पशु। पखि=पक्षी। भए जनमिए=जन्म लूं। करम बिपाक=दुष्कर्म, कर्म का दोष। गतागत=गत+आगत, आना-जाना, जन्म-मरण, आवागमन। पुनु पुनु=फिर-फिर, बारम्बार। मति=बुद्धि, प्रज्ञा। तुअ=तुम्हारी। परसग=प्रसग। कातर=दयनीय। तरइत=पार होने हेतु। इह=इस। भव-सिंधु=समार रूपी सागर। अवलम्बन=सहारा, आधार। तिल एक=एक क्षण को। देह=दो।

(२५४)

तातल सैकत बारि - बिन्दु सम
सुत—मित—रमनि—समाज ।
तोहे बिसारि मन ताहे समरपिनु
अब मझु हब कोन काज ।
माधब, हम परिनाम निरासा ।
तुहुँ जगतारन दीन दयामय
अतय तोहर बिसबासा ।
आध जनम हम नींद गमायनु
जरा सिसु कत दिन गेला ।
निधुबन रमनि—रभस रँग मातनु
तोहे भजब कोन बेला ।
कत चतुरानन मरि मरि जाओत
न तुअ आदि अवसाना ।
तोहे जनमि पुन तोहे समाओत
सागर लहरि समाना ।
भनइ बिद्यापति सेष समन भय
तुअ बिनु गति नहि आरा ।
आदि अनादिक नाथ कहाओसि अब
तारन भार तोहारा ।

भावार्थ—प्रस्तुत पद में कविवर विद्यापति लिखते हैं—

जलते रेत पर पडे हुए पानी के कण का-सा मेरा हाल पुत्र, मित्र और सुन्दरियों

के समाज-सम्पर्क ने बना दिया है। अर्थात् जिस प्रकार तप्त बालू पर जल-बिन्दु का अस्तित्व नही रहता उसी प्रकार पुत्र, मित्र एव स्त्रियो के वशीभूत हुआ मैं भी अपना अस्तित्व गँवा बैठा। हे प्रभु ! तुमको भूलकर मैंने अपना मन उन्ही को भेट कर दिया। अब मेरा उद्धार किस प्रकार होगा ? हे मधुसूदन ! मेरा परिणाम—अत काल—निराशामय हुआ। लेकिन तुम तो संसार को पाप से मुक्त करने वाले हो और दीन के लिये दयावान हो, अतः तुम्हारा ही अत मे विश्वास है कि मेरा उद्धार करोगे। अपनी आधी आयु तो मैंने सोने—प्रमाद—मे ही गँवा दी। बुढापे और शैशव के भी कितने ही दिन बीत गये। वैभव या यौवन रूपी कानन मे सुन्दर रमणियों के साथ रास-रंग, क्रीड़ा-कलाप मे खोया रहा और यौवन व्यर्थ मे ही बीत गया। इस प्रकार सारी आयु बीत गई है अब मैं तुम्हारा [भजन किस समय करूँगा। चार मुखवाले कितने ब्रह्मा मर गये किंतु न तो तुम्हारा आदि हुआ न अन्त ही। जिस प्रकार सागर की लहरें सागर मे ही समा जाया करती है, उसी प्रकार यह सृष्टि तुमसे जन्मती है और तुममे ही लीन हो जाती है। कविवर विद्यापति कहते है कि हे जगतारण ! अब अन्तकाल मे मेरे पाप-भय को नष्ट करो, क्योंकि तुम्हे छोड़कर अन्यत्र मेरा उद्धारकर्त्ता कोई नही है, कही मेरी शान्ति या मोक्ष नही है। हे नाथ ! तुम्ही आदि-अन्त के स्वामी कहाते हो, परब्रह्म हो; अतः मेरे उद्धार का भार—दायित्व—तुम्हारे ही ऊपर है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे दैन्य भाव की अभिव्यजना अपनी पराकाष्ठा पर है—"माधब, हम परिनाम निरासा"—उक्ति मे जैसे कवि के मानस पर बैठा जीवनपर्यन्त का पाप-पश्चात्ताप हिचकी भर-भरकर रो उठता है और अपनी दयनीय सूचक उपमा भी उन्होंने कितनी प्राणभेधक दी है कि सुत, मित्र और कामिनियों का समूह जलता हुआ रेतपुंज और वे थे उसपर आकर्षित होने वाले, जलने वाले, मिटने वाले जल-बिन्दु सदृश ! शलभ और परवाने की उपमा से कही अधिक भावसंगत ये मौलिक उपमा-कल्पना कही जायगी जिससे कवि का मर्म पिघलकर ज्यों का त्यों हमारे सामने आ जाता है। पद में दार्शनिक भावों का भी प्रकाशन बडा पुष्ट बन पड़ा है विशेषतः अद्वैतवाद का जिसके अनुसार यह संसार मिथ्या मायामय है, जीव उसमें भरमाता फिर रहा है कि जिसको अंततः एक ब्रह्म में ही इस प्रकार लीन हो जाना है जैसे समुद्र में तरंगें लीन हो जाती हैं—

"निधुबन रमनि—रभस रँग मातनु
तोहे भजब कोन बेला।
कत चतुरानन मरि मरि जाओत
न तुअ आदि अवसाना।

तोहे जनमि पुन तोहे समाओत
सागर लहरि समाना।"

इस दार्शनिक भाव का प्रतिपादन कवि की परिपक्व मनीषा का परिणाम है क्योंकि अपने चरम उत्कर्ष पर काव्य दर्शन बन जाता है। अन्यथा विद्यापति तो स्वच्छन्द (Romantic) कवि थे; हाँ, उसके साथ ही मध्यकालीन भक्त भी! इस प्रकार उनके काव्य में शृंगार के साथ भक्ति एवं दर्शन का भी भाव परमोच्च कोटि का व्यक्त हो सका है।

शब्दार्थ—तातल=तप्त, गर्म। सैकत=सिकता, बालू। बारि=जल। सुत=पुत्र। मित=मित्र। रमनि=रमणी। तोहे=तुम्हें। समरपिनु=समर्पित कर दिया। मभु=मुझे। कोन=कौन। परिनाम=परिणाम। तुहुँ=तुम। जगतारन=संसार को तारने वाले, उद्धार करने वाले। दीन=गरीब। अतय=इसलिये, अतएव। तोहर=तुम्हारा। बिसबासा=विश्वास है। गमायनु=व्यतीत किया। निधुबन=वैभव-कानन। रमनि…मातनु=रमणियों के साथ रस रग मे माते हुए थे। कत=कितना। चतुरानन=चार सर वाला, ब्रह्मा। जाओत=जाते हैं। तुअ=तुम्हारा। अवसाना=अन्त। समाओत=समाहित होना, समा जाना। समन=शमन, नष्ट। आरा=सीमा, किनारा, अन्य। क=का। तोहारा=तुम्हारे ऊपर।

(२५५)

जतने जतेक धन पापे बटोरल
मिलि मिलि परिजन खाय।
मरनक बेरि हरि कोइ न पूछए
करम संग चलि जाय।
ए हरि, बन्दौं तुअ पद नाय।
तुअ पद परिहरि पाप-पयोनिधि
पारक कओन उपाय।
जाबत जनम नहि तुअ पद सेविनु
जुबती मनि मयँ मेलि।
अमृत तजि हलाहल किए पीअल
सम्पद आपदहि भेलि।
भनइ बिद्यापति नेह मने गनि
कहल कि बाढ़ब काजे।
साँझक बेरि सेवकाई मँगइत
हेरइत तुअ पद लाजे।

भावार्थ—प्रस्तुत पद में कविवर विद्यापति विशुद्ध आत्माभिव्यंजना करते हुए लिखते हैं—

हे प्रभु ! जितनी दौड़धूप और परिश्रम करके मैंने पाप का धन संचय किया उसे मेरे परिवार के लोगों ने मिलजुलकर फूंका—खाया। किंतु मेरे प्राणान्त पर, हे प्रभु, मुझे कोई नही पूछता। अब तो केवल मेरा किया हुआ दुष्कर्म ही मेरे साथ जाएगा। हे हरि ! मै तुम्हारे चरणो की झुककर वन्दना करता हूँ। तुम्हारे पावन चरणो को छोडकर इस ससार रूपी पाप-पारावार से उतरने के लिये और कौन सा साधन है ?—कोई भी तो नही ! मैंने जन्म भर तुम्हारे चरणों की सेवा नही की है और केवल कामिनी ही मुझे मणितुल्य प्यारी रही है। मैने तुम्हारा नाम रूपी अमृत त्यागकर दुष्कर्म रूपी हलाहल का ही पान किया, फलस्वरूप अब मेरी सारी सचित सम्पत्ति विपत्ति बन गई है। कविवर विद्यापति कहते है कि अरे मूढ कवि ! तू मन मे प्रभु के सच्चे स्नेह का सचार कर, उसपर विचार कर; केवल कहने से ही क्या कार्य बनेगा। आशय यह है कि कवि विद्यापति सच्ची प्रभु भक्ति की अनुभूति अपने मन मे धारण करे, केवल उसकी अभिव्यक्ति से कुछ भी न बनेगा; प्रभु की कृपा प्राप्त न होगी। जब जीवन का सध्याकाल–बुढापा–आ गया है तब मैं प्रभु का सेवक बनकर चला हूँ उनकी सेवा का वर पाने ! हाय, मैं स्वय विद्यापति कितना नीच हूँ कि जब युवक था तब इन्द्रियो को विषय की ओर लगाए रहा, स्वय विषयो का सेवक बना रहा और अब जब शरीर दुर्बल हो गया है, इन्द्रियाँ निर्बल हो गई है तब प्रभु की मिथ्या सेवा की भीख माँगता हूँ, कितना निर्लज्ज हूँ मै भी ! हे प्रभु ! अब तो मुझे तुम्हारे पावन चरणों को देखते हुए भी लज्जा आनी चाहिए या मुझे लज्जा होती है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे कवि का आत्मपीडन और निवेदन का भाव प्रधान है। ऐसा प्रतीत होता है कि वृद्धावस्था मे विद्यापति को अपने सम्पूर्ण शृगारी काव्य और जीवन से विरक्ति हो गई थी। अवस्था का यह प्रभाव और परिवर्तन जो उनके काव्य मे प्रकट हुआ है वह उन्हे एक सच्चे महान् भक्त कवि की कोटि मे खड़ा करता है। जरा-काल की तुलना उन्होने सध्याकाल से की है जो आधुनिक काव्याभिव्यजना की कोटि मे ली जा सकती है देखिए—

"साँझक बेरि सेबकाई मँगइत
हेरइत तुअ पद लाजे।"

रूपक अलकार की मौलिक प्रस्थापना 'पद नाय' कथन मे हुई है और तदर्थ 'पाप-पयोनिधि' का रूपक भी बड़ा सागिक बन पड़ा है। प्रतीकात्मकता का प्रयोग 'अमृत' अर्थात् सद्गुण एद 'हलाहल' अर्थात् अवगुण शब्दों द्वारा परिलक्षित होता है। एक प्रकार से आधुनिक छायावादी शैली का प्रयोग विद्यापति की इस प्रकार की रचनाओं मे सूक्ष्मतः देखने को मिलता है गोकि विद्यापति से परिवर्त्ती मध्यकालीन कवियो ने इस प्रकार की शैली का प्रयोग मेरे विचार से नगण्य ही किया हैं। यह विद्यापति के काव्य महत्त्व का एक पहलू कहा जायगा।

शब्दार्थ—जतने=यत्न। जतेक=जितने। पापे=पाप करके। बटोरल=संचित या इकट्ठा किया। मरनक बेरि=मरणान्त, मरने के समय पर। तुग्र=तुम्हारे। पद नाय=चरणों पर झुकता हूँ। परिहरि=त्यागकर। पाप-पयोनिधि=पाप का पारावार। पारक=पार होने का। उपाय=साधन। जावत जनम=जन्म से, जन्म भर। मनि=मणि। मयँ=मेरे लिये। हलाहल=कालकूट विष। सम्पद=सम्पदा, सम्पत्ति। आपदहि=विपत्ति। साँझक बेरि=सध्याकाल, वृद्धावस्था।

विविध

व्यथा

(२५६)

माधव, कि कहब तोहर गेआन।
सुपहु कहलि जब रोष कयल तब
कर मूनल दुहु कान।
आयल गमनक बेरि न नीन टरु
तइ किछु पुछिओ न भेला।
एहन करमहीनि हम सनि के धनि
कर से परसमनि गेला।
जओं हम जनितहुँ एहन निठुर पहु
कुच—कंचन—गिरि—साँधि।
कोमल करतल बाहु-लता लए
दृढ़ करि रखितहुँ बाँधि।
इ सुमिरिए जब जाओं मरिए तब
बूझि पड़ हृदय पषाने।
हिमगिरि-कुमरी चरन हृदय धरि
कवि विद्यापति भाने।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

नायिका राधा कहती है कि हे कृष्ण ! तुम्हारे ज्ञान के विषय मे मैं क्या कहूँ ? जब मैंने तुम्हें श्रेष्ठ प्रियतम कहा तब तुमने क्रोध किया और हाथ से अपने दोनो कान बन्द कर लिये, जिससे कि मेरी वाणी को तुम सुन भी न सको। जब तुम्हारे विदा-प्रस्थान का समय आया तब मेरी नीद नष्ट न हुई और मैं अन्तिम बार भी तुमसे मन की बात न पूछ सकी, न जान सकी। अर्थात् मेरे मन की लगी प्रीति मन ही में रह गई। इस प्रकार की मुझ जैसी कौन भाग्यहीना होगी जिसके करो में आकर स्पर्शमणि जाती रही हो अर्थात् मेरे पास से मेरे स्पर्शमणि रूप कृष्ण चले गये, लेकिन मैं मनो-कामना पूरी भी न कर सकी। यदि मैं यह समझती कि मेरे प्रियतम कृष्ण इतने निष्ठुर हैं तो मैं अपने उरोज रूपी स्वर्ण-पर्वत की संधि—उरोज की सीमन्तरेख—मे अपनी

दोनो बाहुओं की लता में उन्हे दृढ़ता से कुशलतापूर्वक बाँध कर रखती। जब-जब उनकी इस निठुराई का स्मरण होता है तब-तब मैं सोचती हूँ कि अच्छा होता यदि मर जाती। किंतु लगता है कि मेरा हृदय पत्थर के समान कठोर है जो उनके वियोग मे फट नहीं पाता और मैं मर नही पाती। कविवर विद्यापति हिमाचल की पुत्री पार्वती का चरण-कमल अपने हृदय पर रखकर राधा की राह विरह-गाथा लिखते हैं।

विशेष—नायिका राधा का विप्रलम्भ शृगार-वर्णन करना ही इस पद में कवि का अभीष्ट रहा है। प्रेम उत्कठिता नायिका का प्रियतम उसे सोती छोड़कर चला गया और उस अभागिन की मन की लगी लगी ही रह गई—

"आयल गमनक बेरि न नीन टरु
तइ किछु पुछिओ न भेला।"

उस-सी अभागिन और कौन होगी कि श्री कृष्ण की मधुर 'परसमनि' पाकर भी उसने खो दी। यहाँ 'परसमनि' शब्द मे भगवान की महत्ता पावन श्रद्धा का भाव व्यजित है। सासारिक आत्मा को परमात्मा के साक्षात्कार की अनुभूति 'परसमनि' से क्या कम महत्त्वपूर्ण होगी?

काव्य कलात्मकता की दृष्टि से—

कुच—कंचन—गिरि—साँधि।
कौसल करतल बाहु-लता लए
दृढ़ करि रखितहुँ बाँधि।"

पक्तियो मे रूपक की छटा एव उद्दीप्त व्यथित मनोभावो की तीव्रता प्रभावशाली बन पड़ी है। किंतु यह ध्यान मे रखने योग्य बात है कि प्रस्तुत पद मे वर्णन की शैली शृंगारिक होते हुए भी उसमे वासना से अधिक भक्ति-भावना का प्रभाव लक्ष्य है। इस भाव की चरम स्थिति इन पक्तियो मे स्पष्ट है—

"हिमगिरि-कुमरी चरन हृदय धरि
कवि बिद्यापति भाने।"

शब्दार्थ—कि=क्या। तोहर=तुम्हारा। गेआन=ज्ञान। सुपहु=श्रेष्ठ प्रियतम। रोष कयल=क्रोध किये। कर=हाथ। मूनल=बन्द किये। दुहु=दोनों। आयल=आया। गमनक=जाने का। बेरि=वक्त। नीन=नीद। तइ=इसी कारण से। किछु=कुछ। एहन=इस प्रकार। सनि=समान। के=कौन। धनि=सुन्दरी, रमणी। परसमनि=स्पर्शमणि। इ=यह। सुमिरिए=ध्यान करके। बूझि पड़= लगता है। हिमगिरि=हिमालय पर्वत, हिमाचल राजा का नाम। कुमरी=कुमारी, पुत्री। धारि=धारण कर।

प्रेम

(२५७)

फूल एक फुलवारि लाग्रोल मुरारि।
जतने पटाग्रोल सुबचन-बारि।
चौदिस बान्हल सीलक ग्रारि।
जिबे ग्रवलम्बन करु ग्रवधारि।
ततहु फुलल फुल ग्रभिनव पेम।
जसु मूल लहए न लाखहु हेम।
ग्रति ग्रपरुब फुल परिनत भेल।
दुइ जिव ग्रछल एक भए गेल।
पिसुन-कीट नहि लागल ताहि।
साहस फल देल बिहि निरबाहि।
बिद्यापति कह सुन्दर सेहु।
करिए जतन फलमत होए जेहु।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

श्री कृष्ण ने ग्रपनी फुलवारी मे एक पुष्प का पौधा लगाया। ग्राशय यह है कि इस ससार रूपी फुलवारी मे भगवान ने एक प्रेम-पुष्प का पौधा लगाया। उस प्रेम-पुष्प के पौधे को मधुर वचन रूपी जल से सीचा। उसके चारो ग्रोर मर्यादा की मेड़ उठा दी जिसका निश्चित ग्राधार लेकर वह जीए, फले-फूले। वहाँ नूतन प्रेम का वह पुष्प विकसित हुग्रा जिसका मोल लाखो रुपये का स्वर्ण भी नही हो सकता—वह प्रेम-पुष्प ग्रमूल्य है। वह फूल ग्रत्यन्त ग्रनूठे रूप मे रूपान्तरित हो गया—यौवनावस्था मे पष्ट हो गया। ग्रब जो प्राण थे वे एक हो गये। ग्राशय यह है कि जब दो मनुष्यों का प्रेम रूपी पुष्प परिपक्वावस्था मे पहुँच जाता है तो वे पूर्णत. एकत्व की स्थिति मे परिणत हो जाते है। तब दुष्ट जन रूपी कीट उस प्रेम-पुष्प मे नही लग पाते। प्रभु ने उस परिपक्व प्रेम-पुष्प को सदा खिलते रहने का साहस-फल देकर उसकी चिरतन सत्ता को निभाया है। ग्राशय यह है कि उस परिपक्व प्रेम-पुष्प से फिर साहस का फल निकलता है उदाहरण के लिये जैसे मीरा का प्रेम जब कृष्ण से जुड़ गया तब वह लोक-लाज ग्रथवा बदनामी का ख्याल न करते हुए ग्रपने प्रेम के मीठे फल रूपी पद गाती-नाचती हुई फिरती थी। कविवर विद्यापति कहते है कि सुन्दर तो वही प्रेम है जो साधना-सिचन करने के यत्नस्वरूप फलता-फूलता है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे प्रभु-प्रेम की महत्ता के प्रतिपादन मे कवि ने प्रतीकात्मक (छायावादी) शैली का ग्रनुसरण किया है। पुष्प प्रेम का, फुलवारी सृष्टि का, जल मृदु

वाणी का, मेड मर्यादा का, लाखो का स्वर्ण सासारिक वैभव का, कीट दुष्ट जन का प्रतीकत्व लिये है किंतु ये प्रतीक अपने मे गुप्त रहस्यमय न रहकर स्पष्ट भी हो गए हैं जिससे अर्थ तो साफ हो जाता है कितु प्रतीक विधान खडित हो जाता है, और रूपक अलंकार प्रधान हो जाता है जैसे पिसुन-कीट, सुवचन-बारि आदि से स्पष्ट है। अच्छा होता यदि सम्पूर्ण पद की व्यंजना प्रतीक विधान द्वारा ही की गई होती जैसी कि प्रथम पक्ति मे हुई है—

"फूल एक फुलवारि लाओल मुरारि।"

यहाँ प्रतीक विधान पूर्णत सफल है।

'प्रेम प्रभु की रचना का सार'—इस पद का वैशिष्ट्य इसी तथ्य पर आधारित है। प्रेम की महत्ता उसके सिचन मे, त्याग एव आत्मबलिदान मे ही है—इसकी अभिव्यजना इन पक्तियो मे बड़ी विशिष्ट हुई है—

"विद्यापति कह सुन्दर सेहु।
करिए जतन फलमत होए जेहु।"

शब्दार्थ—सरल है।

शिवसिंह का युद्ध

(२५८)

दूर दुग्गम दमसि भजेओ
गाढ़ गढ़ गूढ़िय गँजेओ
पातसाह ससीम सीमा
समर दरसओ रे।
ढोल तरल निसान सद्दहि
भेरि कोहल संख नद्दहि
तीनि भुवन निकेत
केतकि सान भरिओ रे।
कोह नीर पयान चलिओ
बायु मध्ये राय गरुओ
तरनि तेअ तुलाधरा
परताप गहिओ रे।
मेरु कनक सुमेरु कम्पिअ
धरनि पूरिय गगन झम्पिअ
हानि तुरए पदाति पयभर
कमन सहिओ रे।

तरल तर तरवारि रगे
बिज्जुदाम छटा तरगे
घोर घन संघात बारिस-
काज दरसेओ रे।
तुरए कोटिअ चाप चूरिअ
चारि दिसि सौं बिदिस पूरिअ
विषम सार असाढ़ धारा
धरनि भरिओ रे।
अन्ध कूअ कबन्ध लाइअ
फेरैबी फफ्फरिस गाइअ
रुहिर मत्त परेत भूत
बैताल बिछलिओ रे।
पार भइ परिपंथि गंजिअ
भूमि मडल मुंड मंडिअ
चारु चन्द्र कलेव कीत्ति
सुकेत की तुलिओ रे।
राम रूप स्वधम्म सिक्खिअ
दान दप्प दधीचि रक्खिअ
सुकवि नव जयदेव
भनिओ रे।
देवसिंह नरेन्द नन्दन
शत्रु नरवइ कुल निकन्दन
सिंह सम सिवसिंह राया
सकुल गुनक निधान
गनिओ रे।

भावार्थ—प्रस्तुत रचना कविवर विद्यापति ने अपने आश्रयदाता नरेश शिवसिह की प्रशस्ति के रूप मे लिखी है। उसकी वीरता का वढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

राजा शिवसिंह ने दूर-दूर देशो के अविजेय दृढ दुर्ग अपने शौर्य-पराक्रम से धराशाई कर दिये, जीत लिये। मुगल बादशाह कोअपनी राज्य-सीमा तक राजा शिवसिंह का युद्ध दिखलाई पड़ने लगा। ढोल का सधा हुआ चचल शब्द, नगाड़े या डके का गम्भीर घोष, भेरी या रणतूरी का कोलाहल और शंख का नाद हुआ। तीनों लोक रूपी आवास जैसे कार्त्तिकेय के केतिकी वाद्य के रव से भर गया—गूंज उठा। आशय

यह है कि प्रत्येक घर मे वीरता का राग गूंज उठा, सभी रण की सम्भावना से आतंकित हो उठे। राजा शिवसिंह ने उस समय तेज-प्रताप को पर्वत से झरते हुए झरने, वायु को चीरते-उड़ते हुए गरुड़राज एवं पृथ्वी पर विकीर्ण होते हुए तेज के समान ग्रहण किया। उस समय भय से सुमेरु पर्वत का शिखर कम्पायमान हो उठा, पृथ्वी धूलिमामयी हो गई, आकाश छिप गया; फिर भला हाथी, घोड़ों और पैदल दल का भार कौन सहने मे समर्थ होता ! चमचमाती चलती हुई तलवारों की चमकीली झलक ऐसी लगती थी जैसे बिजली की छटा तरंगित हो रही हो। उस रणक्षेत्र के हलचलमय दृश्य को देखकर ऐसा दिखलाई पडता था जैसे घनघोर बादलों का समूह विकट वर्षा के लिये उमड-घुमड़ गया हो। कोटि अश्व अपनी टापों से भूमि को चूर्ण करने लगे, चारो दिशाओ से असाढ की मूसलाधार वर्षा के समान तीखे तीरों की वर्षा होने लगी और सारी पृथ्वी जिनसे पट गई—रक्त, लहु, लोथ और रुण्ड-मुण्डो से रण-स्थल भर गया। अधकूपो मे कबध लगाया गया। आशय सम्भवत: यह हो सकता है कि कटे-मरे सैनिको की तलाश करने के लिए अधकूपो मे कबध लगाया गया हो और यह भी कि कायर सैनिको ने रण से छिपने-बचने के लिये अधकूपों की शरण लेने के निमित्त उनमे कबध लगाई हो। गीदड़ उस रक्त-मासमय वातावरण को देख खुश होकर बोलने लगे। रक्त पीकर मस्त हुए भूत-प्रेत, बैताल ही मुग्ध होने लगे, लोट-पोट होने लगे। राजा शिवसिह की सेना शत्रु की राज्य-सीमा को पार करके शत्रु-सैनिक-दल को मारने-काटने लगी। पृथ्वीमण्डल मुण्डो या सिरो से आच्छादित हो गया। सुन्दर चन्द्रमा की कला सदृश सुकृति राजा शिवसिह की कीर्त्ति सर्वत्र छा गई। इस प्रकार वह अपने स्वधर्म की रक्षा मे रामरूप सिद्ध हुए, दानी दधीचि का जैसा गौरव उन्होने दान देने मे प्राप्त किया, उसे स्थिर रक्खा—सुकवि अभिनव जयदेव इस प्रकार उनके विषय मे कहते है। राजा के पुत्र कुमार शिवसिह शत्रु नृप के कुल को समूल नष्ट करने के लिये अपने सिंह सदृश वीर पिता राजा देवसिह की गणना उन महान् जनो मे करेंगे जो सकल गुण सम्पन्न है।

विशेष—प्रस्तुत पद मे चारणकालीन भाषा शैली और रस का वर्णन प्रधान है। यदि इन पंक्तियो से—

"ढोल तरल निसान सद्दहि
भेरि कोहल सख नद्दहि
तीनि भुवन निकेत
केतकि सान भरिओ रे।"

वीर रस की निष्पत्ति प्रबल है तो रौद्र और वीभत्स का रूप यहाँ कितना उग्र है, देखिए—

"अन्ध कूअ कबन्ध लाइअ
फेरेवी फफ्फरिस गाइअ

रुहिर मत्त परेत भूत
बेताल बिछलिओ रे।"

फपफरिस, सद्दहि, नद्दहि आदि शब्द-योजना से चन्द्र के पृथ्वीराज रासो के युद्ध-वर्णन का स्मरण सहज हो आता है। शिवसिंह के रूप-गुण, दान-गान का वर्णन प्रशस्ति पद्धति पर हुआ है किंतु उसमे काव्य-कौशल अपने ढंग का है। उदाहरण देखिए—

"चारुचन्द्र कलेव कीत्ति
सुकेत की तुलिओ रे।
राम रूप स्वधम्म सिक्खिअ
दान दप्प दधीचि रक्खिअ
सुकवि नव जयदेव
भनिओ रे।"

चन्द्रकला के समान कीर्त्ति मे उपमा एव दान देने मे दधीचि के गौरव की तुलना बड़ी सगत है।

शब्दार्थ—दुग्गम=अविजेय। दमसि=शौर्यबल से। पातसाह=बादशाह। समर=रण। भेरि=रणतूरी। कोहल=कोलाहल। कोह नीर=पर्वत का निर्झर। राय गरुओ=गरुडराज। तरनि=सूर्य। तेअ=तेज प्रताप। तुरए=घोडे। चाप=टाप। चूरिअ=चूर्ण किया। रुहिर=रक्त। मत्त=मस्त। नरवइ=नृप। दप्प=गौरव। परिपंथि=शत्रु। केतकि=केतकी राग जो सेनापति कार्त्तिकेय ने देवासुर सगर मे बजाया था। शेष शब्दार्थ भावार्थ मे स्पष्ट हैं।

जोग

(२५९)

हम जोगिन तिरहुत के जोग देवैन्ह लगाय।
नयन हमार पढ़ाओल रे, जग मोहिनि नाम।
आरसि काजर पारल आँखि आँजल।
ताहि आँजल दुई आखि जमैआ अपनाओल।
रुनुकि भुनुकि धिया चलितथि जमैआ देखितथि।
पागक पेज उघारि हृदय बिच राखितथि।
भनइ बिद्यापति गाओल फल पाओल।
जोग हमर बड़ तेज, सेज धय रहताह।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

हम तो मिथिला या अयभुक्त की योगिनियाँ हैं, योग साथ लगा ही देंगी। हमारे नयन जादू पढाये हुए हैं और जगमोहिनी हमारा नाम भी है। हमने विशेष प्रकार का

आरसि काजल बनाकर अपनी आँखो मे लगाया है। उस विशेष प्रकार के जादूमय काजल को दोनों आँखों मे डालकर हमने दामाद को वश मे कर लिया है। अब हमारी बेटी रुन-भुन करती हुई उसे, जो हमारा दामाद बना है, देखने के लिये या वर रूप मे पसंद करने, देखने के लिये रुनुक-भुनुक कर प्रसन्न चित्त चलेगी। हमारी उस बेटी को हमारे दामाद पगड़ी का घुमाव खोलकर—सादर—हृदय मे बसायेगे। आशय है कि हमारी बेटी से सच्चा प्रेम करेगे। कवि विद्यापति कहते है कि योगिनियाँ कहती है कि योग का गीत गाकर हमने शुभ फल प्राप्त किया। हमारा योग बडा तेजवान है। हमारे दामाद हमारी बेटी के साथ शय्या पर ही धरे रहेगे, जसे छोडकर न जायेगे।

विशेष—विद्यापति के समय मे और आज भी बगाल और मिथिला मे जोगिनो का जादू-टोना प्रचलित रहा है। यहाँ योग वशीकरण का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इस वर्णन मे कवि ने अपने समय की जन-मान्यता को ही छदबद्ध करना चाहा है, सरस काव्य का वर्णन करना उनका लक्ष्य नही रहा फिर भी काव्य-चमत्कार यहाँ उपस्थित हुआ है। जैसे—

"नयन हमार पढ़ाओल रे, जग मोहिनि नाम।"

'आरसी काजल' का नेत्रो मे प्रयोग करना भी जादू चलाने का एक विधान है। किंतु मुझे लगता है कि यहाँ कवि ने सम्भवत. तिरहुत या त्रयभुक्त या मिथिला की सुन्दरियो को ही रूपाकर्षण की जादूगरनियाँ माना है क्योकि उनके वर्णन मे मिलन-सभोग और आकर्षित करने-कराने का भाव भी प्रधान है। इन पक्तियो मे यह ध्वनि साफ निकलती प्रतीत होती है—

"रुनुकि भुनुकि धिया चलितथि जमैआ देखितथि।
पागक पेज उघारि हृदय बिच राखितथि।"

"हृदय बिच राखितथि" मे जैसे सम्पूर्ण जादू और उसकी जादूगरनी प्रेम-मिलन के प्रति आतुर है। फिर "सेज धय रहताह" पक्ति भी सभोग-भाव के समर्थन मे मौजूद लगती है। मेरे एक मिथिलामित्र श्री शमशेर बहादुर 'बिहारी' हैं, वे विद्यापति के बड़े भक्त रसिक पाठक है। इस विषय में पूछने पर उनकी भी राय यही है कि तिरहुत की योगिनी और उनके जादू का रूपक बनाकर विद्यापति ने वहाँ की तत्कालीन रूप का जादू चलानेवाली सुन्दरियो का ही वर्णन किया है। आज भी विद्यापति के इस प्रकार के पद मिथिला मे इसी धारणा को लेकर गाए जाते हैं।

शब्दार्थ—तिरहुत=मिथिला। आरसि=दर्पण। पारल=बनाकर, काजल को पारना। आँजल=काजर को आँख मे डालने की क्रिया। ताहि=उसे। जमैआ=दामाद। धिया=बेटी। पागक पेज=पगड़ी का घुमाव। उघारि=खोलकर। सेज=शय्या।

(२६०)

हमरा कं जँओं तेजब गुन बूझब ।
जोगहि देब बनिसार अधिन कंय राखब ।
एको पलक जौं तेजब गुन बूझब ।
एहन जोग मोर तेज सेज नहि छोड़ब ।
आरसि काजर पारब निसि डारब ।
ताहि लय आँजब आँखि जोग परचारब ।
नयनहि नयन रिझाएब प्रेम लाएब ।
करब मोर गरहार हृदय बिच राखब ।
भनहि बिद्यापति गाओल जोग लाओल ।
दुलहा दुलहिनि समधान अधिन कए राखब ।

भावार्थ—योगिनियाँ कहती हैं कि हे दूल्हा जी ! जब तुम हमे छोडकर जाओ तब हम तुम्हारा गुण या जादू जानेगी । हम तुम्हे अपने योग-बल से प्रेम-मिलन के बन्दी-गृह मे डालकर आधीन किये रक्खेगी । यदि एक पल के लिये भी तुम हमे छोड़ो तो तब हम तुम्हारे गुण-बल को समझेगी । मेरे योग का अथवा जादू का प्रताप ऐसा है कि तुम शय्या छोड ही नही सकते । हम रात को जादूमय आरसि काजल बनाएँगी, उससे आँखों को आँजेंगी और तब तुमपर योग अथवा जादू चलाएँगी । नेत्रों से नेत्रों को मुग्ध बनाएँगी, प्रेम का सचार करेंगी । तुम्हे अपने गले का हार बना लेंगी, उर के बीच रख लेगी । कवि विद्यापति कहते हैं कि वे योगिनियाँ गा-गाकर योग लाती है । इस प्रकार दूल्हा और दुलहनिया को प्रेम से सन्तुष्ट करके वे अपने आधीन किये रखती हैं ।

विशेष—प्रस्तुत पद मे भी पूर्व पद की भाँति कविवर विद्यापति ने मिथिला की प्रसिद्ध रूपसी योगिनियो के रूपाकर्षण का भाव प्रकट किया है । वह योग-संभोग की महत्ता स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

"भनहि बिद्यापति गाओल जोग लाओल ।
दुलहा दुलहिनि समधान अधिन कए राखब ।"

यह पद मिथिला की प्राचीन सांस्कृतिक मान्यता का प्रकाशन करता है; कृपया इसके लिये इससे पूर्व २५६ पद का विशेष भी पढें । यहाँ 'जादू' एवं 'योग' शब्द रूपाकर्षण एव संभोग के प्रतीक बने हुए हैं । पद का मूल लक्ष्य शृगार का अभिव्यंजन करना है जिसके लिये वर्णन-चमत्कार प्रधान रक्खा गया है ।

शब्दार्थ—सरल हैं ।

दृष्टकूट

(२६१)

माधब, आब बुझल तुअ साजे।
पंच दून वह वह गुन सए गुन
से देलहु कोन काजे।
चालिस चारि काटि चौठा
से हम से पिया मोरा।
से निरखत मुख पेखत चौविस
करत जनम के ओरा।
साठिहु मह वह बिन्दु बिबरजित
के से सहत उपहासे।
हम अबला अब पहुक दोससँ
दुइ बिन्दु करब गरासे।
नव बुंदा दए नवए बाम कए
से उर हमर पराने।
कपटी बालमु हेरि न हेरए
कारन के नहि जाने।
भनइ बिद्यापति सुनु बर जौबति
ताहि करथि के बाधा।
अपन जीव दए परक बुझाइअ
नाल कमल दुइ आधा।

भावार्थ—प्रस्तुत पद में कविवर विद्यापति लिखते हैं—

राधा कहती है कि हे कृष्ण, अब मैं तुम्हारे चातुर्य गुण को समझ गई हूँ। पाँच को दो दस दस से गुणा करने पर फिर सौ से गुणा करने पर अर्थात् ५ × १० × १० × १०० = जो गुणनफल ५०००० आता है, उतनी शपथें देने से भी क्या काम सर सकता है। आशय यह है कि पचास हज़ार शपथ खाने पर भी कि वह लौट आएँगे, राधा चतुर कृष्ण पर कोई विश्वास करने को तत्पर नहीं। वह आगे कहती है कि चालीस में से चार घटाकर और शेषफल में चार का भाग देने पर जो नव बचता है (अर्थात् ४० − ४ = ३६ ÷ ४ = ९ शेष) वह नव वय की मैं हूँ जिसे तुमने निष्ठुरता से मरोड़ कर रख दिया है। आशय यह है कि कृष्ण ने राधा को नवयुवती होते ही निठुर बनकर छोड़ दिया। तब तो तुम चारों ओर खोजते-खोजते मेरा मुख-सौन्दर्य निहारा करते थे और इस प्रकार मेरा जन्म का अन्त कर रहे थे। आशय यह है कि प्रथम प्रेमाकर्षण के समय तुम मुझे कितना चाहते थे—यह जतलाया करते थे किंतु इस प्रकार मेरे जीवन को समाप्त

करने पर तुले थे, अब मैं वियोग मे कैसे जीवित रह सकती हूँ ? साठ में से दस घटा कर शेषफल से शून्य निकालकर जो पंच बचते है (अर्थात् ६० – १० = ५० – ० = ५ शेष) उन पचो का वह कटु सामाजिक उपहास कैसे सहा जा सकता है ? मैं तो अबला नारी हूँ । मुझे अपने पति के दोष के फलस्वरूप, कि जो उन्होंने मुझे परित्यक्ता बना छोड़ा है, विष के दो बिन्दु खा लेने हैं । नव बिन्दु देकर (अर्थात् ०००००००००) और बाइं ओर नौ का अक लिखकर (अर्थात् ९,००००००००) नव-पद्म [अर्थात् नवकमल जैसा मेरा हृदय, मेरा प्राण उस कपटी साजन को देख-देखकर भी देख नही पाता, इसका कारण भला कौन नही जानता ? कवि विद्यापति कहता है कि हे सुन्दर स्त्री ! सुनो, उन तुम्हारे प्रियतम कृष्ण को तुम्हारे पास आने से कौन भला रोक सकता है ? अपना प्राणदान देकर भी दूसरे की सन्तुष्टि होने दो। तुम्हारा उनका सम्बन्ध तो कमल एव उसकी नाल की भाँति एक दूसरे अर्धांग की भाँति जुडा-मिला है । आशय यह है कि राधा-कृष्ण का सम्बन्ध तो अटूट है अत. राधा को कृष्ण के प्रति कुछ अतिरिक्त अथवा अन्यथा नही विचारना चाहिये ।

विशेष—दृष्टकूट पद रचने की परम्परा मे विद्यापति का हिन्दी कवियो मे प्रथम स्थान है । इस प्रसग के अन्तर्गत कृष्ण कवियो ने अपनी कवित्व सूझ की करामात दिखलाने की चेष्टा की है, अतः यहाँ काव्य के रस-पक्ष की बात भी सोचना ठीक नही; बाहरी प्रदर्शन मे रस कहाँ, रस तो अन्तर की वस्तु है । हाँ, कवित्व के नाम पर भी प्रतिभा-पाण्डित्य का कितना अर्थ बुझाया जा सकता है, यह दृष्टकूट के पदो से भलीभाँति प्रकट होता है; भावार्थ से यह स्पष्ट जाना जा सकता है कि गणित का हल काव्य मे किस प्रकार परिकल्पित होकर चमत्कारक बन सकता है ।

विद्यापति के प्रस्तुत पद की भाँति सूरदास ने भी दृष्टकूट प्रसंग के अन्तर्गत एक प्रसिद्ध पद इस प्रकार का लिखा है, तुलना करे तो आप पाएँगे कि सूर की अपेक्षा विद्यापति ही विरह की अवधि निर्धारित करने मे अधिक हिसाबी कवि सिद्ध हुए है, देखिए—

"कहत कत परदेसी की बात
मन्दिर अरध अवधि बदि हम सों हरि अहार चलि जात ।
ससि रिपु बरष सूर रिपु युगवर हरि रिपु किय फिरे घात ।
मघ पंचम लै गये स्यामघन आइ बनी यह बात ।
नखत वेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हमे खात ।
'सूरदास' प्रभु तुमहि मिलन को कर मीड़त पछितात ।"

(कविता कौमुदी, प्रथम भाग : सम्पादक रामनरेश त्रिपाठी)

इसका भावार्थ यह है—

"हे उद्धव ! तुम क्यों परदेसी कृष्ण की बात करते हो ? वे महल का आधा

अर्थात् पक्ष (१५ दिन) की अवधि में लौट आने की बात हमसे कह गए थे किन्तु अब तो सिंह का आहार अर्थात् मास (एक महीना) भी व्यतीत हो गया है। चन्द्रमा का बैरी अर्थात् दिन तो हमे वर्ष के समान तथा सूर्य का बैरी निशाकाल युग के समान हो गया है तिसपर शंकर का बैरी कामदेव हमपर वार करता रहता है। मघा नक्षत्र से पंचम नक्षत्र चित्रा अर्थात् चित्त तो श्री कृष्ण ले गए इसलिये हमारी यह दशा हो गई है। सत्ताईस नक्षत्र, चार वेद और नौ ग्रह को जोडकर (अर्थात् ४०) और उनका आधा अर्थात् बीस (विष या जहर) खाने से अब हमे कौन रोक सकता है ? आशय है कि अब कृष्ण के विरह मे हम विष खाकर मर मिटेगी। सूरदास कहते है कि गोपियाँ कह रही है—हे कृष्ण ! तुम्हारे मिलन के हेतु हम हाथ मल रही, पश्चात्ताप कर रही है।"

विद्यापति एव सूर के इन दोनो दृष्टकूट पदो मे अवधि-निर्धारण की गणित-पद्धति एक जैसी है किन्तु सूर का अवधि-निर्धारण इतना जटिल हिसाबी नही जितना विद्यापति का। इधर काव्य-कौशल की दृष्टि से भी अन्तत. सूर को भाव एव कला-पक्ष की दृष्टि से विद्यापति के समान सफलता नही मिली। विद्यापति ने अन्त मे "अपन जीव दए परक बुझाइअ नाल कमल दुइ आधा।" लिखकर प्रेम मे आत्म-बलिदान के द्वारा कमल और उसकी नाल के समान प्रिया और प्रेमी के सयुक्त जीवन की कल्पना बडी विशिष्ट एव मौलिक की है। यों राधा-कृष्ण दोनो का ही दाम्पत्य महत्त्व प्रतिपादित कर दिया है और यो पद को नीरस होने से विद्यापति बचा ले गए है। सूर ने अन्त में आत्मवेदना का भाव जारी रखते हुए छोड़ा है—

" 'सूरदास' प्रभु तुमहि मिलन को कर मीड़त पछितात।"

"कर मीड़त पछितात" उक्ति मे अनुभूति की मार्मिकता तो विद्यापति के पद वैशिष्ट्य की तुलना की दृष्टि से आ गई है किन्तु "नाल कमल दुइ आधा" उक्ति लिख-कर विद्यापति सूर से अधिक अच्छा कह गए है।

शब्दार्थ—तुअ साजे=तुम्हारे चातुर्य का गुण। बुझल=समझ सकी हूँ। सए=सौ। दह दह=दस दस। दून=दूना। देलह=दिया। कोन काजे=कौनसा कार्य। चौठा=चार। मोरा=मरोड़ा। ओरा=अन्त। बिबरजित=निकालना, घटाना, निषेध करना। के=कौन। उपहास=सामाजिक हँसी। पहुक दोससँ=पति के दोष से। कपटी=छली। बालमु=साजन। बाधा=रुकावट। ताहि=उन्हे, कृष्ण को। परक बुझाइअ=दूसरे को सन्तुष्ट करना।

(२६२)

'कुसुमित कानन' कुंजे बसी।
नयनक काजर घोरि मसी।

नखसौं लिखल नलिनि दल पात।
लीखि पठाग्रोल ग्राखर सात।
पहिलहि लिखलनि पहिल बसंत।
दोसरे लिखलनि तेसरक ग्रत।
लिखि नहि सकली ग्रनुज बसंत।
पहिलहि पद ग्रछि जीवक ग्रत।
भनहि बिद्यापति ग्राखर लेख।
बुध-जन हो से कहए बिसेख।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

कृष्ण-विरह मे पुष्पित उपवन के कुज मे बैठकर राधा ने ग्रॉखों का काजल ग्रश्रुग्रो के जल मे घोलकर स्याही बनाई ग्रपने नाखूनो से कमल-पत्र पर लिखा। ग्राशय यह है कि राधा ने कृष्ण के वियोग मे ग्रपने खिले-फूले यौवन के उपवन मे बैठ रो-रोकर शृंगार के प्रमुख साधन काजल को धो डाला। उसने मन मसोसकर मानो कठोर नख से ग्रपने कोमल कमल जैसे हृदय पर श्री कृष्ण के स्मरण का पत्र लिखा। यो उसने केवल सात ग्रक्षर पत्र मे लिखकर उसे कृष्ण के पास भेजा। पहले ही उसने प्रथम बसत लिखा ग्रौर उसके बाद दूसरे उसने लिखा, तीसरे का ग्रत ! किन्तु वह बसंत का ग्रनुज या नामान्तर "माधव" न लिख सकी। कारण यह था कि माधव का पहला ग्रक्षर "मा" ही जीवन का ग्रत करने वाला प्रतीत हुग्रा था। इस सबका ग्राशय यथासम्भव यही होता है कि राधा ने जो प्रथम "कुसुमित कानन" के सात ग्रक्षर लिखे उससे पहला तो ग्राशय यह था कि हे कृष्ण, ग्रब राधा की जवानी मे बहार ग्रा गई है या उसके यौवन का कानन कुसुमित हो गया है; फिर दुबारा वह लिखती है कि ग्रब तीसरे का ग्रत हो चुका है—ये तीसरा है रजस्वला होने का तीसरा समाप्त हुग्रा दिन ग्रौर फिर वह "ग्रनुज बसत" का नाम तो लिख ही न पायी क्योंकि नारीयोचित लज्जा बीच मे दीवार बनकर खड़ी हो गई नही तो ग्रनुज बसत से ग्राशय होता "माधव" ग्रर्थात् कामदेव। शायद "लिखि नहि सकली ग्रनुज बसत" लिखकर राधा ने केवल व्यंजना से ही कृष्ण को लिखकर जतलाया हो कि ग्रब मुझे माधव या कामदेव सता रहा है, तुम शीघ्र ग्रा जाग्रो। काम मनोविज्ञान एवं नारी मनोविज्ञान के ग्रनुसार यही ग्रर्थ ग्रधिक समीचीन लगता है। "पहिलहि पद ग्रछि जीवक ग्रंत" पक्ति में सापेक्ष कारण दिया गया है कि "माधव" वह कैसे लिखती क्योंकि उसका "मा" प्रथम पद ही ग्रशुभ सूचक है क्योंकि "मा" का ग्रर्थ होता है नकारात्मक। फिर कामदेव के प्रभाव की ग्रभिव्यक्ति भी तो एक नारी के लिये उचित या शुभ नहीं कही जा सकती। इस प्रकार कविवर विद्यापति इस ग्रक्षर लेख की गूढ़ बात कहते हैं। जो रसिक बुद्धिमान लोग होंगे वह विशेष ग्रर्थ लगाएँगे ग्रौर कहेगे।

विशेष—प्रस्तुत पद दृष्टकूट-परम्परा मे लिखा गया है। प्रथम दो पंक्तियों में राधा की मनःपीड़ा को व्यक्त करने के लिए कवि ने अश्रुओं से काजल का घुल-मिलकर स्याही बन जाना और कमल पत्ते पर नायिका का उससे प्रियतम के लिये पत्र लिखना—ये दोनों बातें परस्पर बडे औचित्य से प्रकट की है। इस प्रकार गीति की भावगत भूमिका का तत्त्व विशिष्ट बन सका है और पद की जटिलता हार्दिकता पा सकी है। "माधब" शब्द की अर्थ-कल्पना विशद की गई है। सम्पूर्ण पद मे काम-भाव का प्रकाशन प्रधानता से हुआ है। पद मे लालित्य अक्षुण्ण रह सका है—दृष्टकूट की दूर की कोड़ी लाने वाली निरर्थक वर्णनात्मकता ही इस पद मे रही हो, यह बात नही कही जा सकती। हाँ, पद का भाव बोध ज़रा अधिक वक्र हो गया है जिससे शृंगार-रस-भोग मे कुछ व्याघात और विलम्ब अनुभव होना स्वाभाविक है।

शब्दार्थ—सरल है।

(२६३)

माधब मन जनु राखिए रोसे।
अबसर तेजि कतय चल गेलहुँ
ताहि हमर कोन दोसे।
तीनि सँ साठि आध मिन्हा दै
से कए गेलहुँ ठिकाने।
ता दीगुन तकरो पुनि सट गुन
अएलहुँ तकरो निदाने।
विरह उदाप दाप तन झाँझर
करए चाह जिब अन्ते।
अब हम करब की लए तुँअ आदर
प्रेम पदारथ कन्ते।
कुच युग कमल उतंग भार उर
से कुम्हिलाएल फूटी।
गर-गर चुबए अमिए भिजु आँचर
अब से रहल भय सीठी।
ई मधु बचन सुनिए मधुरापति
बिहुँसि हँसलि मुँह फेरी।
धन जन जौबन थिर नहि कहुँ खन
ककरानै एक बेरी।
अजय बैन कमल सुनु भामिनि
बूझल तुअ सद भावै।

सूखल सारि जौं नीर पटाबिए
अबसर किछु बनि आबै।
भनहि विद्यापति सुनु बर जौबति
ई थिक नब रस रीति।
अपन पुरुस के प्रेम जमाबिए
बिसरि जाहु सब नीति।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते हैं—

राधा श्री कृष्ण की निठुराई की शिकायत करती हुई कहती है—हे कृष्ण ! हमारे प्रति मन मे, देखो, गुस्सा धारण न करना। तुम्ही तो अपने विश्वस्त रूप से लौट आने का अवसर और उसकी अवधि तज-भूलकर न जाने किधर चले गए, इसमे हमारा क्या दोष है ? तीन सौ साठ दिन अर्थात् एक वर्ष मे से आधा अर्थात् एक सौ अस्सी दिवस का घाटा अर्थात् आधे वर्ष में लौटने का समय या ठिकाना देकर गए थे किंतु उसका दुगना अर्थात् एक सौ अस्सी का दुगना तीन सौ साठ दिवस अर्थात् पूरा एक वर्ष और फिर उसका छ. गुना अर्थात् छः वर्ष का लम्बा समय बिताकर अंत मे आए हो। विरह की आग से झुलसकर शरीर हड्डियो का ढाँचा या ककाल मात्र रह गया है; अब तो मैं अपना प्राणान्त करना चाहती हूँ। अब मैं तुम्हारे प्रेम-सम्मान को लेकर भी क्या करूँगी गोकि मैं मानती हूँ कि कत, तुम मेरे लिये प्रेम-पदार्थ हो, मेरा सर्वस्व हो। आशय यह है कि यद्यपि राधा कृष्ण को अपना सर्वस्व मानती है किन्तु वह इस बात से दुःखी है कि उसके पास उन्हे सुख देने के लिये कुछ भी न रहा, केवल जर्जर शरीर रह गया है। हे कृष्ण ! मेरे दोनो कमल जैसे उत्तुग स्तन छाती पर बोझ बन गए थे, अब वह फूट कर मुरझा गए है—स्तन सूखकर नीचे लटक गए है। मेरे जिस भीगे आँचल से अमृत-रस टप-टपकर गिरता था वह सूख कर रह गया है। राधा के यह मधु-वचन सुनकर मथुरा के स्वामी श्री कृष्ण प्रफुल्लित हुए मुँह फेरकर हँसे। धन, जन और यौवन कही एक क्षण के लिये भी टिकाउमान नही होते और यह भी कि किसको यह एक बार उपलब्ध नही होते। आशय यह है कि एक बार जीवन मे ऐश्वर्य भी मिलता है और जन अर्थात् कोई प्रेमी भी मिलता है और यौवन भी, किन्तु फिर सभी को इन्हें गँवाना ही होता है। श्री कृष्ण ने कहा—हे सुन्दरी राधे ! अब भी तुम्हारा मुख कमल-सा अम्लान है। मैं तुम्हारे प्रेम के सद्भाव को जो मेरे प्रति है उसे भली-भाँति जानता हूँ। देखो, यदि सूखे हुए धान के पौधो मे नीर पुराया जाय या उन्हे खूब जल से भर दिया जाय तो समय पाकर कुछ बात बन ही जाती है। आशय है कि रूप का मुरझाया पौधा प्रेम-बारि के सिंचन से स्पर्श पाकर कुछ न कुछ ताज़गी ले ही आता है।

कवि विद्यापति कहते है कि कृष्ण ने राधा से कहा—हे सुन्दरी ! सुनो, सच्चे रस की यही तो नवीन रीति है। आशय यह है कि सच्चा प्रेम-रस कभी

स्वादहीन नहीं होता, जब भी प्रेमी-प्रेमिका मिले कि म्लानता में भी रस-सरसता का पूर्ण आस्वादन हुआ। हे राधे ! तुम तो बस अपने पुरुष या प्रेमी से प्रेम ही प्रेम स्थापित किये रहो और जितनी भी नीति-मर्यादाएँ है, उनको भूल जाओ ?

विशेष—प्रस्तुत पद दृष्टकूट-परम्परा का है। पद मे नीरस वर्णन न होकर एक विरहिणी के पीड़ित हृदयोद्‌गारो का हृदय पर सीधी चोट करने वाला अभिव्यक्ति-करण हुआ है। छः वर्षों के पश्चात् निठुर प्रियतम अपनी प्रिया के पास आया है। विरहाघात की इस लंबी अवधि मे नायिका का यौवन, उसका अग-अंग और उसकी कामना मुरझा गई है। उसका यह कहना विप्रलम्भ शृंगार के सुप्त मनोभावों को झकझोरने वाला है—

"कुच युग कमल उतंग भार उर
से कुम्हिलाएल फूटी।
गर-गर चुबए अमिए भिजु आँचर
अब से रहल भय सीठी।"

सनातन लोक सत्य की सहज प्रभावशाली अभिव्यक्ति इन दो पक्तियों मे बडी उत्कृष्ट एव स्मरणीय हुई है—

"धन जन जौबन थिर नहि कहुँ खन
ककरानै एक बेरी।"

"थिर नहि कहुँ खन" मे नश्वरतावाद एव "एक बेरी" मे इस ससार के धन, जन और यौवन के रूपाकर्षण के प्रति व्यंग्यात्मक उपेक्षा भाव व्यजित है। "कुच युग कमल उतंग भार उर" तथा "बैन कमल सुनु" मे उपमा अलकार है तथा "सूखल सारि जौ नीर पटाबिए अबसर किछु बनि आबै।" मे सुखमय जीवन के प्रति आशावादी सदेश है। रसानन्द मे नीति-मर्यादा की दुश्चिन्ता करना जीवन के प्रति पराङ्‌मुख होना है—यहाँ कवि का कलावादी दृष्टिकोण स्पष्ट है—

"बिसरि जाहु सब नीती।"

शब्दार्थ—जनु=मत। अबसर=यहाँ समय से आशय है। तेजि=त्यागकर, भूलकर से आशय है। कतय=कहाँ। मिन्हा दै=घटा देने से। दीगुन=दुगना। तकरो=उसका। उदाप=उत्ताप। झाझर=ककाल। जिब=प्राण। कन्ते=हे स्वामी। उतग=ऊँचे। अमिए=अमृत। थिर=टिकायमान, स्थिर। कहुँ खन=क्षण भर कभी। ककरानै=किसको। एक बेरी=एक बार। अजय=अब भी। बैन=बदन, मुख। भामिनि=स्त्री। सारि=धान के पौधे। नीर पटाबिए=पानी भरने से। किछु बनि आबै=कुछ न कुछ लाभ होने से आशय है, यह मुहावरा है। ई थिक=यह है। बिसरि जाहु=भूल जाओ।

बाल-विवाह

(२६४)

पिया मोर बालक हम तरुनी।
कोन तप चुकलौंह भेलौंह जननी।
पहिर लेल सखि एक दछिनक चीर।
पिया के देखैत मोर दगध सरीर।
पिया लेली गोद कै चललि बजार।
हटिया के लोग पूछे के लागु तोहार।
नहि मोर देवर कि नहि छोट भाइ।
पुरुब लिखल छल बालमु हमार।
बाटरे बटोहिया कि तुहु मोरा भाई।
हमरो समाद नैहर लेने जाउ।
कहिहुन बबा के किनऐ धेनु गाइ।
दुधवा पियाइकें पोसता जमाइ।
नहि मोर टका अछि नहि धेनु गाइ।
कौन बिधि पोसब बालक जमाइ।
भनइ बिद्यापति सुनु ब्रजनारि।
धीरज धरहु त मिलत मुरारि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

हाय राम ! मेरे प्रियतम तो अभी बालरूप मे है और मैं युवती हूँ। मुझसे ऐसा कौनसा तप भ्रष्ट हो गया कि जो मैं नारी रूप मे हुई। मैंने दक्षिणी महीन वस्त्र तो पहन रखा है किन्तु उससे क्या ?—अपने नादान बालरूप पति को देखकर मेरा शरीर कामातुर हुआ जला जा रहा है। आशय है कि महीन साड़ी यद्यपि मैंने पहन रखी है ताकि मेरे अग उससे झलकते रहे किन्तु उससे लाभ भी क्या, मेरे बालक पति पर उसकी कोई काम-प्रतिक्रिया नही, मैं कामातुर हुई केवल जलती रहती हूँ। मैं पति को गोद में लेकर बाज़ार गई तो बाजार के लोगो ने पूछा कि यह तेरा कौन लगता है ? मैंने कहा, न तो यह मेरा देवर है और न छोटा भाई ही है—यह तो मेरे पूर्वजन्म का भाग्य मे लिखा पति है। हे पथ के पथिको ! तुम मेरे भाई हो तो मेरा सम्वाद पिता के घर—नैहर—को यह लेते जाओ . मेरे बाबा अर्थात् पिता से कहना कि वह काली गाय खरीदे और अपने बालक दामाद को उसका दूध पिला-पिलाकर पाले-पोसे—मेरे योग्य युवक बनाएँ। किन्तु मेरे पिता ने सूचना भिजवाई है कि न तो मेरे पास पैसा है और न कालो गाय ही है अत: किस प्रकार तेरे बालक दामाद का पोषण करूँगा ?

कवि विद्यापति कहते हैं कि हे ब्रज की स्त्री ! सुनो, अरे धैर्य धारण करो तुम्हें

अवश्य ही सुन्दर रसिक युवक कृष्ण मिलेगे और तुम्हारी इच्छा की संतुष्टि करेंगे।

विशेष—प्रस्तुत पद मे दबदबे अनमेल विवाह के प्रति व्यग्य वक्रोक्तिमय भाव प्रकट किया गया है। सम्भवत. यह प्राचीन काल की सभ्यता-सास्कृतिकता का प्रभाव ही विद्यापति की वाणी से मुखरित हुआ है। इस पक्ति मे मानो मध्यकालीन विपन्न और विवश युवती का अतर क्रदन कर उठा है—

"पिया मोर बालक हम तरुनी।
कोन तप चुकलौंह भेलौंह जननी।"

सम्पूर्ण पद मे अनमेल विवाह के प्रति नारी का दबा हुआ विद्रोह भड़कता-सा प्रतीत होता है। मुझे स्मरण होता है कि किसी स्थल पर—सभवतः किसी पुराण मे—मैंने यह उल्लेख पाया है कि राधा जब २७ वर्ष की तरुणी थी तब उनका पति सात वर्ष का शिशु था। इस अनमेल विवाह की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप वह कृष्ण की परकीया-प्रेमिका रही हों, कौन जाने-और कृष्ण के साथ लडकपन का प्रेम तो उनका था ही; सूर ने कहा है-"लरिकाई को प्रेम कहो अलि कैसे छूटे।" इस कथन से भी यही सकेत मिलता है। अत मे यहाँ विद्यापति भी बात स्पष्ट करते प्रतीत होते है—

"भनइ बिद्यापति सुनु ब्रजनारि।
धीरज धरह त मिलत मुरारि।"

"त मिलत मुरारि" से स्पष्ट है कि राधा को परपुरुष कृष्ण के मिलन की आशा बँधाई गई है। हास्य-व्यग्य की छटा पद की अपनी विशेपता है; उदाहरणार्थ—

"नहि मोर टका अछि नहि धेनु गाइ।
कौन बिधि पोसब बालक जमाइ।"

यहाँ "बालक जमाइ" के पालन-पोषण करने वाली बात हास्यस्पद ही प्रतीत होती है।

शब्दार्थ—मोर=मेरे। चुकलौह=चूक। तप चुकलौह=तप मे भ्रष्ट हो गई। भेलौंह=हुई। दछिनक चीर=दक्षिण का बारीक वस्त्र। दगध=जलना। लेली=लेकर। हटिया=बजरिया। के लागु=कौन लगता है। तोहार=तेरा। पुरुब लिखल=पिछले जन्म का भाग्य मे लिखा। छल=है। बालम=साजन। बाटरे बटोहिया=पथ के पथिक। समाद=सम्वाद। नैहर=पिता का घर। कहिहुन=कहना। बबा=पिता। किनऐ=खरीदें। धेनु गाइ=एक गाय विशेष, सम्भवतः शुभ लाभकारी काले रंग की गाय। दुधवा=दूध को। टका=पैसा। त=तुम्हे।

परकीया (स्वयंदूतिका)

(२६५)

अपर पयोधि मगन भेल सूर।
नखि-कुल-संकुल बाट बिदूर।

नर परिहरि नाविक घर गेल।
पथिक गमन पथ संसय भेल।
अनतए पथिक करिअ परबास।
हमे धनि एकलि कंत नहि पास।
एक चिंता अओक मनमथ सोस।
दसमि दसा मोहि कओनक दोस।
रयनि न जाग सखी जन मोर।
अनुखन सगर नगर भम चोर।
तोहे तरुनत हम बिरहिन नारि।
उचितहु बचन उपज कुलगारि।
बामा बचन बाम पथ धाव।
अपन मनोरथ जुगुति बुझाव।
भनइ विद्यापति नारि सुजानि।
भल कए रखलक दुहु अनुमानि।

भावार्थ—प्रस्तुत पद मे कविवर विद्यापति लिखते है—

एक काम-प्रेरिता चतुर नायिका स्वय ही बड़े वाग्वैदग्ध्य के सहारे एक राह चलते राही को आकर्षित करते हुए कहती है—

देखो पथिक, पश्चिम के सिधु मे सूर्य डूब गया है। नाखून वाले हिस्र सिंहादि पशुओ से आगे का पथ संकुल है और तुम्हारा रास्ता भी लम्बा है—तुम्हे दूर भी तो जाना है। उधर नदी और नाव को छोडकर केवट (नाविक) भी अपने घर चला गया है। गुज़रने वाले पथ पर गुजरते हुए पथिको को भय सशय पैदा हो गया है। किन्तु तुम कही अन्यत्र ही जाकर निवास करो, मैं तुम्हे अपने पास न टिकाऊँगी। क्योंकि मैं नारी हूँ, घर मे एकाकी हूँ, मेरे पति पास मे नही है। एक तो मुझे अपने पति-वियोग की चिता है, दूसरे कामदेव मेरा शोषण कर रहा है, सता रहा है—मैं कामातुर हूँ। मुझे दशमी की दशा है—मैं मरणन्तक कामपीड़न सह रही हूँ। न जाने किस अपराध के फलस्वरूप यह सब कष्ट मैं भुगत रही हूँ। मेरी सखियाँ भी रात को जगी नही रहती—सब सो जाती हैं। रात मे हर क्षण समस्त नगर मे चोर ही चोर भ्रमते रहते हैं। तुम तो युवक हो और मैं विरहिणी नारी हूँ। यदि उचित बात भी तुमसे करूँगी तो कुल का कलक मुझपर लग जायगा—लोग मेरी बदनामी कर देगे। यों उस स्त्री के काम के चतुर वचन विपरीत मार्ग पर ही चले। आशय यह है कि उस नायिका ने जो कुछ भी कहा वह काम-व्यापार के यद्यपि अनुकूल था किन्तु कहा सब लोक-मर्यादा के मार्ग के अनुकूल जतलाते हुए ही। इस प्रकार उस बामा ने अपना काम-मनोरथ बड़ी युक्ति से अनजान पथिक को समझा दिया। कविवर विद्यापति कहते हैं कि वह नारी बड़ी चालाक थी

उसने ने काम और मान इन दोनों भावों को भली प्रकार सुरक्षित रक्खा।

विशेष—प्रस्तुत पद में वचन-विदग्धा नायिका की वक्रोक्ति द्वारा उसके संभोग-शृंगार विषयक भावों-मनोभावों को व्यक्त किया गया है। इस प्रकार नायिका को शास्त्रियों ने स्वयदूती कहा है और उसके चातुर्य के विषय में जो कुछ सैद्धान्तिक प्रतिपादन उन्होंने किया है उसका सुन्दरतम चित्रण किया है इस पद में विद्यापति ने। यहाँ स्वयं-दूती नायिका ने पथिक से संभोग के उचित वातावरण और तत्सम्बन्धी अपनी इच्छा को प्रकट भी कर दिया है पर ज़रा मान के साथ तिरछे बैनों द्वारा; देखिए—

"रयनि न जाग सखी जन मोर।
अनुखन सगर नगर भम चोर।
तोहे तरुनत हम बिरहिन नारि।
उचितहु बचन उपज कुलगारि।"

सम्पूर्ण पद में वाग्-विलास और कथन-चातुर्य अनूठे ढंग का है।

शब्दार्थ—अपर पयोधि=पश्चिम का सिंधु। मगन भेल सूर=सूर्य डूब गया। नखि-कुल=नाखून वाला कुल अर्थात् हिंस्र पशुओं का दल। बाट बिदूर=मार्ग लम्बा है, दूरस्थ है। नर=नदी। परिहरि=छोडकर। नाविक=केवट। गेल=चला गया। अनतए=और स्थान पर। करिअ परबास=निवास करना। धनि=नारी। एकलि=अकेली। कत=पति। अओक=और दूसरे। मनमथ सोस=कामदेव का शोषण, कामपीड़न। दसमि दसा=दशमी की दशा, अशुभ मरणासन्न दशा। कओनक दोस=कैस दोष या अपराध से। रयनि=रात। सगर=सम्पूर्ण। भम=भ्रमना, घूमना। तरुनत=तरुण। कुलगारि=कुल की बदनामी—कलक। बामा=स्त्री। धाव=चली। जुगुति=युक्ति। बुझाव=समझाया।

(२६६)

हम जुबती पति गेलाह बिदेस।
लग नहि बसए पड़ोसियाक लेस।
सासु दोसरि किछुओ नहि जान।
आँखि रतौंधी सुनए नहि कान।
जागह पथिक जाह जनु भोर।
राति अँधार गाम बड़ चोर।
भरमहु भोरि न देअ कोतवार।
काहु क केओ नहि करए बिचार।
अधिप न कर अपराधहु साति।
पुरुष महते सब हमर सजाति।
बिद्यापति कबि यह रस गाब।
उकुतिहु अबला भाव जनाब।

भावार्थ—पूर्व पद की भाँति यहाँ भी सुचतुरा नायिका के कथन का व करते हुए कविवर विद्यापति लिखते हैं—

हे पथिक ! मै तरुणी हूँ, मेरा पति परदेस गया हुआ है। पास में मेरा क एक भी पड़ोसी नही रहता। मेरी सास भी सगी नही है। वह कुछ भी नही जानते ईर्ष्यावश वह कुछ जानना भी नही चाहेगी, क्योंकि सोतेली सास जो है। वह आँख रतौंधी भी है। रात मे कम देख पाती है और कान से कुछ सुनती भी नहीं है। पथिक! जागो, नीद मे न भरमो। आज की रात बड़ी अँधेरी है और इस गाँव चोर भी बहुत हैं। यहाँ भूलकर भी कोतवाल या पहरेदार पहरा देने नहीं आता। यह कोई किसी का विचार ख्याल नही करता। यहाँ का राजा अपराधी को भी दण्ड न देता। यहाँ के अगुआ पुरुष अर्थात् सरपच सब मेरी ही जाति-बिरादरी के है—न मेरे किसी रहस्य को नही खोलेगे। कविवर विद्यापति यह रसमय गान करते है कि वह तथाकथित अबला नारी उक्तियो मात्र से ही अपने काम-भाव को व्यक्त करत है, कितनी सुचतुरा है वह !

विशेष—इस पद मे भी पूर्व की भाँति स्वयदूति नायिका अनजान पथिक को फँसाने के लिए वाग्जाल फैला रही है। सोए पथिक को सभोगार्थ जगाने के लिये ये पंक्तियाँ उत्कृष्ट वक्तृता से कही गई है—

"जागह पथिक जाह जनु भोर।
राति अँधार गाम बड़ चोर।"

सम्पूर्ण पद मे वक्रोक्ति चमत्कार द्वारा पद के भाव-पक्ष को अनूठापन प्रदान किया गया है। वस्तुतः वाग्वैदग्ध्य की दृष्टि से विद्यापति का इससे पूर्व का और यह पद बडे बे-जोड़ कहे जायेगे। यहाँ वचन-वैदग्ध्य की विशिष्टता की दृष्टि से विद्यापति रीतिकालीन कवि बिहारी के समकक्ष कहे जा सकते है। उक्ति-वैशिष्ट्य को ध्यान मे रखते हुए विद्यापति की लिखी इस पक्ति का महत्त्व हमे आँख मीचे स्वीकार करना पड़ता है—

"बिद्यापति कबि यह रस गाब।
उकुतिहु अबला भाव जनाब।"

शब्दार्थ—गेलाह बिदेस=परदेस गए है। लग नहि=पास मे नही। बसए बसता है। पडोसियाक लेस=एक भी पड़ौसी। सासु दोसरि=दूसरी सास, पति की विमाता (Step-mother)। रतौंधी=रात मे कम दीखने का रोग। जागह= जागो। जाह जनु भोर='नीद मे मत भरमो' से आशय है। भरमहु=भूल से भी। भौरि=पहरा। अधिप=राजा। साति=दण्ड। अपराधहु=अपराधियो को भी। पुरुष महते=सम्मानीय पुरुष, महंत लोग या सरपंच। हमर सजाति=मेरी स्वजाति के। उकुतिहु=उक्ति से ही। भाव=काम-भाव से तात्पर्य है।

कविवर विद्यापति का निधन

(२६७)

दुल्लहि तोहरि कतए छथि माय।
कहुन ओ आबथु एखन नहाय।
बृथा बुझथु संसार बिलास।
पल पल नाना तरहक त्रास।
माया बाप जौं सदगति पाब।
संतति काँ अनुपम सुख आब।
बिद्यापतिक आयु अबसान।
कातिक धवल त्रयोदसि जान।

प्रसग-संकेत—कहते है कि कविवर विद्यापति को अपनी मृत्यु का समय स्वयं ज्ञात हो गया था। मृत्यु-समय निकट देखकर वह अपनो से अलविदा लेकर गंगा-स्नान के लिये चले। इसकी सत्यता मे कहा जा सकता है कि अत समय मे हमारे वृद्धजन गंगातट की अभिलाषा तो रखते ही है। खैर···गगाघाट से कुछ ही दूर पर विद्यापति की मृत्यु मँडरा गई, वे शिथिल तन होने लगे। तब उन्होने भक्ति-प्रताप से गंगा से प्रार्थना की कि उन्हे आकर अपने स्नेह अक मे भर ले। भक्त की प्रार्थना पर गंगा आई और उन्हे अपने पावन जल से स्नान कराया। और प्रात काल लोग यह देखकर गदगद हो गए कि कविवर विद्यापति ने अपने प्राण विसर्जन कर दिये है। उनका महाप्रयाण-स्थल वाजीदपुर गाँव जिला दरभगा एव मुंगेर की सीमा पर आज भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। प्रस्तुत पद मे उनकी महाप्रयाण के समय की सत्य आत्माभिव्यजना व्यक्त हुई है। यह उनका Swan Song है।

भावार्थ—विद्यापति कहते है कि हे पुत्री दुल्लही! तुम्हारी माता इस समय कहाँ है? जाओ, उनसे कहो कि वह स्नान करके इस घडी मेरे पास आएँ। इस ससार के ऐश्वर्य-विलास को वृथा समझो, यहाँ पल-पल मे नाना प्रकार के त्रास और कष्ट है। यदि माता-पिता को सद्गति मिले तो उनकी सन्तान को अनुपम या महान् सुख प्राप्त होता है। अब विद्यापति की अवस्था का अन्त होता है। आज कार्त्तिक मास की त्रयोदशी है और शुक्लपक्ष है।

विशेष—यह पद कवि के अन्तःसाक्ष्य पर प्रकाश डालता है। वह अपनी मृत्यु का दिवस निश्चित करते हुए लिखते है—

"विद्यापतिक आयु अबसान
कातिक धवल त्रयोदसि जान।"

यह पद कवि की अन्तिम रचना (Swan Song) है। अन्ततः कवि की महाप्राण आत्मा इस संसार को असार ठहरा देती है—

"वृथा बुझथु संसार बिलास।
पल पल नाना तरहक त्रास।"

जिन्होंने विद्यापति की पदावली का आद्योपांत रसास्वादन किया है इन पंक्तियों को पढकर उनके मन में एक नई प्रतिक्रिया होगी कि फिर जीवन के सुख-संभोग का अर्थ क्या है ? किन्तु विद्यापति ने यहाँ जीवन के अनुभव की सत्यता को वाणी दी है। वे सब कुछ भोग चुके थे। उनके लिये सुख-सभोग कोई नये पदार्थ नही रहे थे। और जैसे संसार के विलास को 'वृथा' कहकर उन्होंने जीवन के चिरन्तन और अन्तिम सत्य को एक सांस में मुखरित कर दिया है। अतः पद की पाठक पर पड़ी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जो कुछ शेष रहता है वह है संसार के प्रति विरक्ति भाव ! फिर वह 'सदगति' की महत्ता भी स्वीकार करते हैं, जैसे वह विद्यापति ने पा ली हो। सत्यता यह है कि विद्यापति ने भोग की चरमावस्था पर पहुँचकर योग की वास्तविक आस्था जानी थी और अन्ततः वे भक्ति-भावना में लीन हो गए थे। गगा की स्तुति उनकी इस आस्था वृत्ति की अभिव्यक्ति है। अतः उन्होने सद्गति पायी होगी, इसमे क्या सन्देह। उनका यह पद ससार के महान् कवियो की अन्त समय में लिखी रचनाओं मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है—सत्य, शिव दोनो ही दृष्टि से और सुन्दर तो वह जीवन भर मुखरित करते ही रहे है। अतः विद्यापति के पद और उनका अंतर स्थित कवि दोनो ही महान् हैं।

शब्दार्थ—दुल्लहि=विद्यापति की पुत्री। तोहरि=तेरी। कतए=कहाँ। छथि=है। कहुन ओ=उनसे कहो। आबथु=आएँ। एखन=इस समय। वृथा=व्यर्थ। बुझथु=जानो। त्रास=दु ख। सदगति=मोक्ष। संतति=सतान। काँ=को। आयु अबसान=महाप्रयाण, प्राणान्त, निधन। कातिक=कार्त्तिक मास। छवल=ल्लपक्ष से आशय है।